हिन्दी भाषा

और उसके

साहित्य का विकास

इस ग्रंथ के पृष्ट १३ मे मैंने यह प्रतिपादन किया है, कि आर्य-जातिका मूल निवास-स्थान भारतवर्ष ही है, वह किसी दूसरे स्थान से न तो आई है, और न वह उसका उपनिवेश है। इसकी पुष्टि के कुछ और प्रमाण नीचे लिखे जाते है—

विद्वद्वर श्रीनारायण भवनराव पावगी मराठी भाषा के प्रकाण्ड विद्वान् हैं, उन्हों ने अंगरेजो में एक गवेषणापूर्ण ग्रंथ लिखा है, उसका नाम है 'दि आर्यावर्टिक होम एण्ड दि आर्यन क्रेडल इन दि सप्तसिंधु। इस ग्रंथका अनुवाद हिन्दी भाषा में हो गया है, उसका नाम है 'आर्य्यों का मूल स्थान, उसके कुछ अंश ए है—

'एम० लुई जैकोलिअट लिखते हैं, भारत संसार का मूल स्थान है, वह सब की माता है। 'भारत, मानव-जाति की माता, हमारी सारी परम्पराओं का मूल स्थान प्रतीत होता है, इस प्राचीन देशके सम्बन्ध मे, जो गोरी-जाति का मूल-स्थान है, हमने सत्य बात का पता पाना प्रारंभ कर दिया है। पृष्ट ३५

फरासीस विद्वान् क्रूजर स्पष्ट शब्दों में लिखते है—

"यदि पृथ्वी पर ऐसा कोई देश है, जो मानव-जाति का मूल-स्थान या कमसे कम आदिम सभ्यता का लीलाक्षेत्र होने के आदर का दावा न्यायतः कर सकता है, और जिसकी वे समुन्नतिया और उससे भी परेविद्याकी वे न्यामतें जो मनुष्य जाति का दूसरा जीवन है, प्राचीन जगत के सम्पूर्ण भागों में पहुंचाई गई हैं, तो वह देश निस्सन्देह भारत है" पृष्ठ ७३

अट यह लिखते हैं—

।जनिक माता ने अपनी सन्तानको नितान्त पश्चिम ओर भी भेजकर हमारी उत्पत्ति सम्बंधी अमिट प्रमाणों मे, हमलोगों को अपनी भाषा, अपने कानून, अपना चरित्र, अपना साहित्य और अपना धर्म प्रदान किया है' पृ० ७४

मिस्टर म्यूर कहते हैं—

"जहातक मैं जानता हू; किसी भी संस्कृत पुस्तक मे, अत्यन्त प्राचीन पुस्तक मे भी भारतीयो की विदेशी उत्पत्ति के सम्वन्ध मे कोई स्पष्ट उल्लेख या संकेत नहीं है' पृ० १८२ *

मोशियोलुई जैकोलिअट एक दूसरे स्थान पर यह लिखते है—

योरप की जातिया भारतीय उत्पत्ति की है, और भारत उनकी मातृ-भूमि है, इसका अखण्डनीय प्रमाण स्वयम् संस्कृत भाषा है। वह आदिम भाषा (संस्कृत) जिससे प्राचीन और अर्वाचीन मुहावरे निकले है। 'पुरातन देश (भारत) गोरी-जातियो का उत्पत्ति स्थान था, और जगत का मूल स्थान है'। पृष्ट २७३

गंगा मासिक पत्रिका के पुरा तत्वाक मे जो माघ सम्बत् १९८९ मे निकली है, डाक्टर अविनाशचन्द्र दास एम० ए०, पी० एच० डी० का एक लेख आर्य्यों के निवास-स्थान के विषय मे निकला है, उसमे एक स्थान पर वे यह लिखते है -

"आधुनिकनृतत्ववित् पाश्चात्य पण्डितों का मत है कि वर्त्तमान पंजाब और गाधार देश मानव-जाति का उत्पत्ति-स्थल है। प्रसिद्ध नृतत्ववित् अध्यापक सर आर्थर कीथ का मत है कि भारत के उत्तर पश्चिम सीमान्त प्रदेश मे मानव जाति की उत्पत्ति हुई है। दूसरे नृतत्ववित् अध्यापक

That is so far as I know none of the Sanskrit even the most ancient contain any distinct reference or a foreign origin of the Indians Muir's Sanskrit text book

जे० बी० हाॅल्डेन ने लण्डन की 'रायल इन्सटिट्यूशन नामक सभा मे २१-२-३१को यह व्याख्यान दिया था † पृथ्वीके भिन्न भिन्न चार केन्द्रो मे मानव-जाति की उत्पत्ति हुई थी। उनमे पंजाब और अफगानिस्तान का मध्यवर्त्ती प्रदेश भी मानव जनन का एक केन्द्र है। भिन्न भिन्न केन्द्रो मे (जैसे चीन ओर मिश्र मे) भिन्न भिन्न जातियों की उत्पत्ति हुई है। पंजाब और गाधार मे जिस मानव-जाति की उत्पत्ति हुई थी उसके वंशधर गण आज कहा है? ऋग्वेद के अति प्राचीन मंत्रो का आलोचना करनेसे मेरे विचार मे ऐसा आता है कि पंजाब और गाधार मे ही आर्य्यों की उत्पत्ति हुई थी एवं यही प्रदेश इनकी आदि उत्पत्ति का स्थान (Gradle) है। अपने सृष्टि-काल मे आर्य्य-जाति यहीं वसती थी पीछे भिन्न भिन्न प्रदेशो मे फैली।" पृष्ठ ८४, ८५

† " The origin of civilisation occurred independently in different places one probably in Egypt and another some where between Afghanistan and the 'Punjab" He further said that it was generally belived that the cradle of the human race was one particular place namely, the garden of Eden and perhaps in Egypt, China or else where It now seemed probable however that humanity began in, four different places with each race distinct from the others

विषय-सूची ।

विषय	पृष्ठ

साहित्य का विकास।

प्रथम खण्ड

प्रथम प्रकरण

भाषा की परिभाषा

भाषा का विषय जितना सरस और मनोरम है, उतना ही गंभीर और कौतूहल जनक। भाषा मनुष्यकृत है, अथवा ईश्वरदत्त, उसका आविर्भाव किसी काल विशेष मे हुआ, अथवा वह अनादि है। वह क्रमश विकसित होकर नाना रूपों मे परिणत हुई, अथवा आदि कालसे ही अपने मुख्य रूप मे वर्त्तमान है। इन प्रश्नों का उत्तर अनेक प्रकार से दिया जाता है। कोई भाषा को ईश्वरदत्त कहता है, कोई उसे मनुष्यकृत बतलाता है। कोई उसे क्रमश विकाश का परिणाम मानता है, और कोई उसके विषय में 'यथा पूर्वमकल्पयत्' का राग अलापता है। मैं इसकी मीमासा करूंगा। मनुस्मृतिकार लिखते है—

> सर्वेषांतु सनामानि कर्माणि च पृथक् पृथक्।
> वेद शब्देभ्य एवादौ पृथक् संस्थांश्च निर्ममे।१।२१।
> तपो वाचं रतिं चैव कामं च क्रोधमेव च।
> सृष्टिं ससर्ज चैवेमां स्रष्टुमिच्छन्निमा प्रजाः।१।२५।

'ब्रह्मा ने भिन्न भिन्न कर्मों और व्यवस्थाओ के साथ साथ सारे नामों का निर्माण सृष्टि के आदि मे वेदशब्दों के आधार से किया'। प्रजा उत्पन्न करने की इच्छा से परमात्मा ने, तप, वाणी, रति, काम और क्रोध को उत्पन्न किया।

पवित्र वेदों मे भी इस प्रकार के वाक्य पाये जाते है—यथा

"यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्यः"

मैने कल्याणकारीवाणीमनुष्यो को दी'

अध्यापक मेक्समूलर इस विषय मे क्या कहते है, उसको भी सुनिये-"भिन्न भिन्न भाषा परिवारो मे जो ४०० या ५०० धातु उनके मूलतत्व-रूप से शेष रह जाते है, वे न तो मनोराग व्यञ्जकध्वनियाँ है, और न केवल अनुकरणात्मक शब्द ही। हम उनको—वर्णात्मक शब्दो का सांचा कह सकते है। एक मानसविज्ञानी या तत्वविज्ञानी उनकी किसी प्रकार की व्याख्या करे-भाषाके विद्यार्थी के लिये तो ये धातु अन्तिम तत्व ही है। प्लेटो के साथ हम यह कह सकते है कि वे स्वभाव से ही विद्यमान है, यद्यपि प्लेटो के साथ हम इतना और जोडदेगे कि, 'स्वभाव से' कहने से हमारा आशय है 'ईश्वर की शक्ति से'" १

प्रोफेसर पाट कहते है—

"भाषा के वास्तविक स्वरूप मे कभी किसी ने परिवर्तन नहीं किया, केवल वाह्य स्वरूप मे कुछ परिवर्तन होते रहे है, पर किसी भी पिछली जाति ने एक धातु भी नया नही वनाया। हम एक प्रकार से वही शब्द बोल रहे है, जो सर्गारम्भ मे मनुष्य के मुंह से निकले थे" २ जेक्सन-डेविस कहते है—भाषा भी जो एक आन्तरिक और सार्वजनिक साधन है, स्वाभाविक और आदिम है। "भाषा के मुख्य उद्देश्य मे उन्नति होना कभी सभव नहीं। क्यो कि उद्देश सर्वदेशी और पूर्ण होते है, उनमे किसी प्रकार भी परिवर्तन नही हो सकता। वे सदैव अखण्ड और एक रस रहते है"। २

इस सिद्धान्त के विरुद्ध जो कहा गया है, उसे भी सुनिये—

डार्विन और उसके सहयोगी, 'हक्सले' 'विजविड' और 'कोनिनफार' यह कहते है—"भाषा ईश्वर का दिया हुआ उपहार नहीं है, भाषा शनै शनै ध्वन्यात्मक शब्दों और पशुओं की बोली से उन्नति करके इस दशा को पहुंची है"

---

१ देखो मैक्समूलर—के 'लेकचर्स आन दि साइन्स आफलांगवेज का पृष्ट ४३९

२ देखो अक्षर, विज्ञान, का पृष्ट ३३-३४

'लाक' 'एडमस्मिथ' और 'ड्यूगल्ड स्टुअर्ट' आदि की यह सम्मति है–

"मनुष्य बहुत काल तक गूंगा रहा, संकेत और भ्रूप्रक्षेप से काम चलाता रहा, जब काम न चला तो भाषा बना ली और परस्पर सम्वाद कर के शब्दो के अर्थ नियत कर लिये" १

तुलनात्मक भाषा शास्त्र के रचयिता अपने ग्रन्थ के पृष्ठ १९९ और २०० मे इस विषय मे अपना यह विचार प्रकट करते है—

"पहिला सिद्धान्त यह है कि पदार्थों के और क्रियाओं के पहले नाम जड-चेतनात्मक वाह्य जगत की ध्वनियों के अनुकरण के आधार पर रखे गये। पशुओं के नाम उनकी विशेष आवाजों के ऊपर रखे गये होंगे। कोकिल या काक शब्द स्पष्ट ही इन पक्षियों के बोलियों के अनुकरण से बनाये गये है। इसी प्रकार प्राकृतिक या जड जगत् की भिन्न भिन्न ध्वनियों के अनुसार जैसे वायु का सरसर बहना पत्तियो का मर्मर रव करना, पानीका झरझर गिरना या बहना भारी ठोस पदार्थों का तडकना या फटना इत्यादि के अनुकरण से भी अनेक नाम रखे गये। इस प्रकार अनुकरण के आधार पर मूल शब्दों का पर्याप्त कोश बन गया होगा। इन्ही बीज रूप मूल शब्दों से धीरे २ भाषा का विकास हुआ है। इस सिद्धान्त को हम शब्दा-नुकरण-मूलकता-वाद नाम दे सकते है।

दूसरे सिद्धान्त इस प्रकार है। हर्ष, शोक आश्चर्य आदि के भावोके आवेगमे कुछ स्वाभाविक ध्वनियाँ हमारे मुंह से निकल पडती है जैसे हाहा, हाय हाय ! वाह वाह, इत्यादि। इस प्रकार की स्वाभाविक ध्वनियाँ मनुष्यों में ही नही और प्राणियो मे भी विशेष विशेप रूप की पाई जाती है। प्रारम्भ मे ये ध्वनियाँ बहुत करके हमारे मनोरागों की ही व्यञ्जक रही होंगी, विचारो की नही। भाषा का मुख्य उद्देश्य हमारे विचारों को प्रकट करना होने से इन ध्वनियों ने भाषा के बनाने मे जो भाग लिया, उसके लिये यह आवश्यक था, कि ये ध्वनिया मनोरागो के स्थान मे विचारों की द्योतक समझी जाने लगी हों। इन्ही ध्वनियों के दोहराने, कुछ देर तक बोलने, और स्वरके उतार चढाव द्वारा इनके अर्थ या अभिधेय का क्षेत्र

१ देखो हारमोनिया भाग ९ पृष्ठ ७३

विस्तीर्ण होता गया होगा। धीरे धीरे वर्णात्मक स्वरूप को धारण करके यही ध्वनिया मानवीभाषा के रूपको प्राप्त हो गई होंगी। इस प्रकार हमारी भाषा की नीव आदि मे इन्हीं स्वाभाविक ध्वनियों पर रखी गई होगी। इस सिद्धान्त का नाम हम मनोराग-व्यञ्जक-शब्द-मूलकता-वाद रख सकते है"।

उभय पक्षने अपने अपने सिद्धान्त के प्रतिपादन में ग्रन्थ के ग्रन्थ लिख डाले है, और बडा गहन विवेचन इस विषय पर किया है। परन्तु आजकल अधिकाश सम्मति यही स्वीकार करती है कि भाषा मनुष्यकृत और क्रमश विकास का परिणाम हे। श्रीयुत बाबू नलिनी मोहन सान्याल एम० ए० अपने भाषा विज्ञान की प्रवेशिका मे यह लिखते है—

"मेक्समूलर ने कहा है कि हम अभी तक नही जानते कि भाषा क्या है - यह ईश्वर दत्त है, या मनुष्यनिर्मित या स्वभावज। परन्तु उन्होंने पीछे से इसको स्वभावज माना है, और बाद के दूसरे विद्वानों ने भी इसको स्वभावज प्रमाणित किया है"।

भापा चाहे स्वभावज हो अथवा मनुष्यकृत, ईश्वर को उसका आदि कारण मानना ही पडेगा, क्योकि स्वभाव उसका विकास है और मनुष्य स्वयं उसकी कृति है। मनुष्य जिन साधनों के आधार से संसार के कार्यकलाप करने मे समर्थ होता है, वे सब ईश्वरदत्त है, चाहे उनका सम्बंध वाह्य जगत् से हो अथवा अन्तर्जगत् से। जहा पंचभूत और समस्त दृश्यमान जगत मे उसकी सत्ता का विकास दृष्टिगत होता है, वहा मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार ज्ञान विवेक विचार आदि अन्त प्रवृत्तियो मे भी उसकी शक्ति कार्य करती पाई जाती है। ईश्वर न तो कोई पदार्थविशेष है, न व्यक्तिविशेप, वरन जिस सत्ता के आधार से समस्त संसार, किसी महान् यंत्र के समान परिचालित होता रहता है, उसीका नाम है ईश्वर। संसार स्वयं विकसित अवस्था में है, किसी बीज हो से इसका विकास हुआ है, इसी प्रकार मनुष्य भी किसी विकास का ही परिणाम है, किन्तु उसका विकास संसार विकास के अन्तर्गत है। कहने वाले कह सकते है कि मनुष्य लाखों वर्ष के विकास का फल है, अतएव वह ईश्वर कृत नही। किन्तु यह कथन ऐसा ही होगा, जैसा वहुवर्ष व्यापी विकास के परिणाम किसी पीपल के प्रकाण्ड वृक्ष को देख कर कोई

यह कहे कि इसका सम्बन्ध किसी "अनन्तकाल व्यापी बीज से नही हो सकता"। भाषा चिरकालिक विकास का फल हो, और उसके इस विकास का हेतु मानव समाज ही हो, किन्तु जिन योग्यताओ और शक्तियों के आधार से वह भाषा को विकसित करने मे समर्थ हुआ, वे ईश्वर दत्त है, अतएव भाषा भी ईश्वर कृत है, वैसे ही जैसे संसार के अन्य बहुविकसित पदार्थ। भगवान् मनु के ऊपर के श्लोकों का यही मर्म्म है। प्रजा उत्पन्न करने की इच्छा से जिस प्रकार परमात्मा ने तप, रति, काम, और क्रोध को उत्पन्न किया, उसी प्रकार वाणी को भी, यही उनका कथन है"। जैसे कोई तप और काम को आदि से मनुष्य कृत नही मानता, उसी प्रकार वाणी को भी मनुष्य कृत नही कह सकता। मनुष्य की वाणी ही भाषा की जड है, वाणी ही वह बीज है, जिससे भाषा पल्लवित हो कर प्रकाण्ड वृक्ष के रूप मे परिणत हुई है, फिर वह ईश्वर कृत क्यो नही ?

'यथेमा वाचं कल्याणी मा वदानि जनेभ्य, इस श्रुति मे भी 'वाचं' शब्द है, भाषा शब्द नही। प्रथम श्लोक के वेद शब्देभ्य, वाक्य मे भी शब्द का ही प्रयोग है, उस शब्द का जो आकाश का गुण है, और आकाश के समान ही व्यापक और अनन्त है। वाणी मनुष्य समाज तक परिमित है, किन्तु शब्द का सम्बन्ध प्राणिमात्र से है, स्थावर और जड पदार्थों मे भी उसकी सत्ता मिलती है। यही शब्द भाषा का जनक है, ऐसी अवस्था मे यह कौन नही स्वीकार करेगा। कि भाषा ईश्वरीय कला की ही कला है। कोल-रिक, कहता है—

"भाषा मनुष्य का एक आत्मिक साधन है, इसकी पुष्टि महाशय ट्रीनिच ने इस प्रकार की है "ईश्वर ने मनुष्य को वाणी उसी प्रकार दी है, जिस प्रकार बुद्धि दी है, क्यों कि मनुष्य का विचार ही शब्द है, जो बाहर प्रकाशित होता है" १

मै ने मनुभगवान के विचारों को स्पष्ट करने और भाषा की सृष्टि पर प्रकाश डालने के लिये अब तक जो कुछ लिखा है, उससे यह न समझना

---

१ देखो स्टडी आफ वर्डस् आर सी. ट्रीनिच डी डी.

चाहिये कि ईश्वर और मनुष्य की कृति मे जो विभेद सीमा है, मैं उसको मानना नहीं चाहता। गजरे को हाथ मे लेकर कौन यह न कहेगा कि यह माली का बनाया है, परंतु जिन फूलो से गजरा तैयार हुआ उनको उसने कहा पाया, जिस वुद्धि विचार एवं हस्तकौशल से गजरा बना, उन्हे उसने किससे प्राप्त किया। यदि यह प्रश्न होने पर ईश्वर की ओर दृष्टि जाती है और उसके प्राप्त साधनों और कार्यो मे ईश्वरीय विभूति देख पडती है, तो गजरे को ईश्वर कृत मानने मे आपत्ति नही हो सकती, मेरा कथन इतना ही है। अनेक आविष्कार मनुष्यों के किये है, बडे २ नगर मनुष्यो के बनाये और बसाये है। उसने बडी बडी नहरे निकालीं, बडे बडे व्योमयान बनाये, रेल तार आदि का उद्भावन किया, ऊंची ऊंची मीनारे खडी कीं, सहस्रो प्रकाण्ड प्रकाशस्तम्भ निर्माण किये, इसको कौन अस्वीकार करेगा। मनुष्य विद्याओ का आचार्य्य है, अनेक कलाओ का उद्भावक है, वरन यह कहा जा सकता है कि ईश्वरीय सृष्टि के सामने अपनी प्रतिभा द्वारा उसने एक नयी सृष्टि ही खडी कर दी है, यह सत्य है, इसको सभी स्वीकार करेगा। परन्तु उसने ऐसी प्रतिभा कहा पाई, उपयुक्त साधन उसको कहा मिले, जब यह सवाल छिड़ेगा, तो ईश्वरीय सत्ता की ओर ही उंगली उठेगी, चाहे उसे प्रकृति कहे या और कुछ। इसी प्रकार यह सत्य है कि संसार की समस्त भाषाये क्रमश, विकास का फल है, देश काल और आवश्यकताये ही उनके सृजन का आधार है, मनुष्य का सहयोग ही उनका प्रधान सम्वल है, किन्तु सब मे अन्तर्निहित किसी महानशक्ति का हाथ है-यह स्वीकार करना ही पड़ेगा। ऐसा कह कर न तो मैने ईश्वर दत्त मनुष्य की वुद्धि और प्रतिभा आदिका तिरस्कार किया, और न उनकी महिमा ही कम की। न वादग्रस्त विषय को अधिक जटिल बना दिया और न सुलझे हुये विषय को और उलझन मे डाला। वरन वास्तविक बात बतला, जहा मानव की आन्तरिक प्रवृत्तियों को ईश्वरीय शक्ति सम्पन्न कहा, और इस प्रकार उन्हे विशेष गौरव प्रदान किया। वहा दो परस्पर टकराते और उलझते हुये विषयों के बीच मे ऐसी बाते रखीं जिनसे वर्द्धमान जटिलता बहुत कुछ कम हो सकती है, और उभयपक्ष अधिकतर सहमत हो सकते है। संसार मे जितनी भाषाये

यथा समय विकसित होकर इस समय जीवित, और कर्मक्षेत्र मे, उतर कर रातदिन कार्य्यरत है, उन्हों मे से एक हमारी हिन्दी भाषा भी है। यह कैसे विकसित हुई, इसमे क्या क्या परिवर्तन हुए, इसकी वर्तमान अवस्था क्या है? और उन्नति पथ पर वह किस प्रकार दिन दिन अग्रसर हो रही है, मैं क्रमश इन बातो का वर्णन करूंगा। आशा है यह वर्णन रोचक होगा।

दूसरा प्रकरण

हिन्दीभाषा का उद्गम

आदि भाषा कौन है? सृष्टि के आदि मे एक ही भाषा थी, अथवा कई। इस समय संसार मे जितनी भाषाये प्रचलित है, उनका मूल स्रोत एक है! अथवा भिन्न भिन्न? आजतक इसकी पूरी मीमासा नहीं हुई। इस समय जितनी भाषायें संसार मे प्रचलित है, उनमे इण्डो यूरोपियन एवं सेमिटिक भाषा को ही प्रधानता है, इन्ही दोनों भाषाओ का विस्तार अधिक है, और इन्हों के भेद उपभेद अधिक पाये जाते है। इनके अतिरिक्त हैमिटिक और चीनी भाषा आदि और भी छ भाषाये ऐसी है, जो भिन्न भिन्न वर्ग की है, और जिन मे एक का दूसरे के साथ कोई सम्बन्ध नही पाया जाता। अब प्रश्न यह होता है कि इन भाषाओं का आधार एक है या वे स्वतंत्र हैं। क्या मनुष्यों का उत्पत्ति स्थान भिन्न भिन्न है? यदि भिन्न भिन्न है तो क्या भाषाये भी भिन्न भिन्न रीति से ही, भिन्न भिन्न अवसरों पर आवश्यकतानुसार उत्पन्न हुई है? क्या मनुष्य मात्र एक मा बाप की ही सन्तान नहीं है, यदि है तो भाषा भी उनकी एकही होनी चाहिये। जैसे देश काल के अनुसार मनुष्यो मे भेद हुआ, वैसे ही काल पा कर भाषा मे भी भेद हो सकता है। परंतु आदि में ही मनुष्यो और भाषाओ की भिन्नता उपपत्ति-मूलक नही ज्ञात होती। संसार के समस्त धर्म-ग्रन्थ एक स्वर से यही कहते है कि आदि मे एक पुरुष एवं एक स्त्री से ही संसार का आरम्भ हुआ। यह विचार इतना व्यापक है, कि अबतक इसका विरोध सम्मिलित कण्ठ से बलवती भाषा मे बहु मान्य प्रणाली द्वारा नहीं हुआ। इसी कारण अनेक विद्वानों की यह सम्मति है, कि सृष्टि के आदि मे मनुष्य जाति की उत्पत्ति

एक ही स्थान पर एक ही माता पिता से हुई, और इसलिये आदि मे भाषा भी एक ही थी। मेरा विषय भाषा सम्बन्धी है, अतएव मै देखूंगा कि क्या कुछ विद्वान् ऐसे है कि जिनकी यह सम्मति है कि आदि मे भाषा एक ही थी, और काल पा कर उसमे परिवर्तन हुये है।

अक्षर विज्ञान के रचयिता लिखते है - (पृष्ट ४०)

सेमिटिक भाषाओ को आर्यभाषा से पृथक बतलाते हुये भी मैक्स मूलर आगे चल कर कहते है कि आर्यभाषाओ के धातु रूप और अर्थ मे सेमेटिक अराल-आटक, बंन्टो और ओशीनिया की भाषाओं से मिलते है, अन्त मे कहते है कि 'निस्सन्देह हम मनुष्य की मूलभाषा एक ही थी,,

मिस्टर बाप कहते है —"किसी समय संस्कृत सम्पूर्ण संसार की बोल-चाल की भाषा थी,* एण्ड्रो जकसन डेविस कहते है - "भाषा भी जो एक आन्तरिक और सार्वजनिक साधन है, स्वाभाविक और आदिम है। भाषा के मुख्य उद्देश मे कभी उन्नति का होना संभव नहीं, क्यों कि उद्देश सर्वदेशी और पूर्ण होते है, उनमे किसी प्रकार भी परिवर्तन नहीं हो सकता, वे सदैव अखण्ड और एक रस रहते है,, (हारमोनिया भाग ५ पृष्ट ७३—देखो अक्षर विज्ञान पृष्ट ४) आज कल यह सिद्धान्त आदर की दृष्टि से नहीं देखा जाता। और इसके पक्ष विपक्ष मे बहुत बाते कही गई है। मैंने यहा इसकी चर्चा इसलिये की कि इस प्रकार के कुछ विद्वान् है जो आदि मे किसी एक ही भाषा का होना स्वीकार करते है, यदि यह मान ले तो आगे के लिये हमारा पथ बहुत प्रशस्त हो जाता है, फिर भी मै इस वादग्रस्त विषय को छोडता हूं। मैं उस इण्डोयोरोपियन भाषा को ही लेता हू, जो संसार की सब से बडी और व्यापक भाषा है। संस्कृत ही आदि मे समस्त ससार की भाषा थी और वही कालान्तर मे बदल कर नाना रूपों में परिणत हुई, यद्यपि इसका प्रतिपादन अनेक विद्वानों ने किया है, हाल में श्रीमान् शेषगिरि शास्त्रीने एक पृथक पुस्तक लिखकर भली प्रकार सिद्धकर दिया है, कि उन द्रविड भाषाओं की उत्पत्ति भी संस्कृत से हुई है, जो अन्य वर्ग की

* "At one time Sanskrit was the one language spoken all over the world" Edinburgh Rev Vol XXXIII, 3 43

भाषाये मानी जाती है, तो भी इण्डोयोरोपियन भाषा की चर्चा ही से हम प्रस्तुत विषय पर बहुत कुछ प्रकाश डाल सकते है, इसलिये इसी भाषा को लेकर आगे बढते है। कहा जाता है द्राविड भाषाओ को छोड कर भारत वर्ष की समस्त भाषाये इण्डोयोरोपियन भाषा वर्ग की है, और उन्हीं से प्रसूत हुई है, । हिन्दी भाषा भी इन्ही भाषाओं मे से एक है, अतएव बिचारना यह है कि वह किस प्रकार इण्डोयोरोपियन भाषा से क्रमश विकसित हो कर इस रूप को प्राप्त हुई। इण्डोयोरोपियन भाषा से प्रयोजन उस वर्ग की भाषा से है, जिसका विस्तार योरोप के अधिकाश देशों, फारस और भारतवर्ष के अधिकतर प्रदेशों मे है। पहले इसको इण्डोएरियन भाषा कहते थे, परन्तु अब यह नाम बदल दिया गया है। कारण यह बतलाया गया है कि अबतक यह प्रमाणित नही हुआ कि योरोप वाले अपने को आर्य मानते थे अथवा नही। भारत वाले और ईरान वाले अपने को आर्य कहते थे, इसलिये इनदशों मे जो इण्डोयोरोपियन भाषा की शाखाये प्रचलित है, उनको आर्य परिवार की भाषा कह सकते हैं। आगे हम इन भाषाओं की चर्चा आर्यपरिवार के नाम से ही करेंगे।

आर्यपरिवार भाषा का आदिम रूप वैदिक संस्कृत मे पाया जाता है। यद्यपि अनेक योरोपियन विद्वानो ने इस वैदिक संस्कृत को ही योरोपियन भाषाओं का भी मूल आधार माना है परन्तु आजकल उसके स्थान पर एक मूल भाषा, लिखना ही पसन्द किया जाता है जिसकी एक शाखा वैदिक सस्कृत भी मानी जाती है। इसका विशेष विवेचन आगे मिलेगा, यहा यह विचारणीय है कि वैदिक संस्कृत की भाषा साहित्यिक है, अथवा बोलचाल की। इस विषय मे अपने 'पालिप्रकाश' (पृष्ट २७-२८) नामक ग्रन्थ मे बंगाल प्रान्त के प्रसिद्ध विद्वान् श्री बिधुशेखर शास्त्रीने जो लिखा है उसका अनुवाद मैं आपलोगो के सामने रखता हू—"परिवर्तन शीलता बोलचाल की भाषा का स्वभाव है। वह चिरकाल तक एक भाव से नही रहती। देश काल और व्यक्ति भेद से भिन्न भिन्न रूप धारण करती है। वैदिक भाषा मे यह वात पाई जाती है उसमे एक वाक्य का भिन्न प्रयोग देखा जाता है। उस समय कोई कहता क्षुद्रक कोई कहता क्षुल्लक। एक

बोलता युवाम् तो दूसरा युवम्। किसी के मुख से पश्चात् सुना जाता और किसी के मुखसे पश्चा कोई युष्मासु और कोई युष्मे कहता। इसी प्रकारदेवा देवास -श्रवण-श्रोणा-अवद्योतयति, अव ज्योतयति-इत्यादि भिन्न प्रकार का व्यवहार होता। कोई किसी २ स्थान पर प्रातिपदिक शब्दो के बाद विभक्तियो का प्रयोग बिलकुल नहीं करता जैसे परमेव्योमन्) कोई करता। कोई किसी शब्दका कोई अंश लोप करके उसका उच्चारण करता जैसे ("त्मना") कोई ऐसा नहीं करता। कोई बिशेषण के अनुसार बिशेष्यण के लिङ्गादि को भी ठीक करके उसका व्यवहार करता, कोई इसकी परदा नही करता, जिसमे सुविधा होती वही करता (जैसे 'बहुलापृथूनि' भुवनानि विश्वा') कभी कोई संयुक्त वर्ण के पूर्वस्थित दीर्घस्वर को ह्रस्व करके उच्चारण करता (जैसे रोदसिप्राम्) और अनेक अवस्थाओं मे ऐसा नही करता। एक मनुष्य किसी अक्षर को जैसे उच्चारण करता दूसरा उसको उसे दूसरे प्रकार से कहता। एक ड किसी स्थान पर ल और कही ळ उच्चरित होता (देखो ऋ० प्रा० १-१० ११) पदान्त मे वर्गके तृतीय वर्ग को और दूसरे उसके प्रथम वर्णको उच्चारण करते। जिनका वैदिक भाषा के साथ थोडा परिचय भी है, वे भलीभाति जानते है कि वैदिक भाषा मे इस प्रकार प्रयोगो की कितनी भिन्नता है। यह बात भलीभाति प्रमाणित करती है कि वैदिक भाषा बोलचाल की भाषा थी"।

सभव है कि यह बिचार सर्व सम्मत न हो, परन्तु प्रश्न यह है कि जो मूल भाषा की पुकार मचाते है, उनसे यदि पूछा जावे, कि आप की 'मूल भाषा का' रूप कही कुछ पाया जाता है तो वैदिक मन्त्रोंको छोड वे किसकी ओर उगली उठावेगे। ऋगवेद ही ससार की लाइब्रेरी मे सबसे प्राचीन पुस्तक है, जो उसमे मूल भाषा प्रति फलित नही, तो फिर उसका दर्शन किसी दूसरी जगह नही हो सकता। दूसरी बात यह कि साहित्यिक होने से किसी भाषा का रूप बिलकुल नही बदल जाता उसको विशेषतायें उसमे मौजूद रहती है अन्यथा वह उस भाषा की रचना हो ही नही सकती। दया ग्राम साहित्य की रचनाओं मे बोलचाल की भाषा का

वास्तविक रूप नही मिलता। साहित्यगत साधारण परिवर्तन भाषा के मुख्य स्वरूप का बाधक कदापि नही।

योरोपियन विद्वान कहते हैं कि वैदिककाल से पहले एक विशाल जाति मध्य एशिया मे रहती थी, जब यह विभक्त हुई तो इसमे से कुछ लोग योरोप की ओर गये, और कुछ ईरान एवं भारतवर्ष मे पहुचे, और अपने अपने उपनिवेश वहा स्थापित किये। किन्तु भारतीय आर्य साहित्य मे इसका पता नही चलता। वैदिक और लौकिक सस्कृत साहित्य का भाण्डार बडा विस्तृत है, उसमे साधारण से साधारण बातो का वर्णन है, किन्तु इस बात की चर्चा कहीं नही है, कि आर्यजाति बाहर से भारतवर्ष मे आई। इसलिये अनेक आर्य्य विद्वान् योरोपियन सिद्धान्त को नहीं मानते उनका विचार है कि आर्यजाति का आदि निवास स्थान भारतवर्ष ही है, और यही से वह दूसरे स्थानो मे गई है। हिन्दू सुपीरियरटी, में इसका अच्छा वर्णन है। बम्बई के प्रसिद्ध विद्वान् खुरशेदजी रुस्तमजी ने बम्बई की ज्ञान प्रसारक मण्डली के उद्योग से एकबार 'मनुष्यो का मूलजन्म स्थान कहा था, इस विषय पर एक व्याख्यान दिया था, उसका साराश यह है —

"जहा से सारी मनुष्य जाति संसार मे फैली। उस मूल स्थान का पता हिन्दुओ, पारसियो, यहूदियो और क्रिश्चियनो के धर्म पुस्तकों से इस प्रकार लगता है कि वह स्थान कहीं मध्य एशिया मे था। योरोप निवासियो की दन्त कथाओ मे वर्णित है कि, हमारे पूर्व राजा कही उत्तर मे रहते थे पारसियों की धर्म पुस्तकों मे लिखा है कि जहा आदि सृष्टि हुई, वहा दस महीने सर्दी और दो महीने गर्मी रहती है। स्टुअर्ट, एलफिन्स्टन, बरनस आदि यात्रियों ने मध्य एशिया मे भ्रमण करके बतलाया है कि हिन्दूकुश और उसके निकटवर्ती पहाडो पर १० महीने सर्दी और दो महीने गर्मी होती है। उनके ऊपर से चारो ओर नदिया बहती है। इस स्थान के ईशान कोण मे 'वालूताग, तथा 'मुसावरा' पहाड है। ये पहाड 'अलबुर्ज' के नाम से पारसियो की धर्मपुस्तको और अन्य इतिहासों मे लिखे है। 'वालूताग, से 'अमू' अथवा 'आक्सस' और जेक जार्टस, नाम की नदिया 'अरेत' सरोवर मे होकर बहती है। इसी पहाड मे से निकल कर 'इन्डस' अथवा सिन्धु

नदी दक्षिण की ओर बहती है। इसी ओर के पहाडो मे से प्रसूत[1] होकर बड़ी बडी नदिया पूर्व ओर चीन मे और उत्तर ओर साइबेरिया मे प्रवेश करती है। ऐसे रम्य और शान्त स्थान मे पैदा हुये लोग अपने को आर्य कहते थे, और 'स्वर्ग' कहकर उसका आदर करते थे" ?

यह प्रदेश भारतवर्ष के उत्तर मे है, और हिन्दूकुश से तिब्बत तक फैला हुआ है, इसी के अन्तर्गत, सुमेरु तथा कैलाश जैसे पुराण प्रसिद्ध पर्वत और मानसरोवर समान प्रशंसित महासरोवर है। यही किन्नर और गन्धर्व रहते है, जो स्वर्ग निवासी बतलाये गये है। तिब्बत का दक्षिणी भाग हमारे आराध्य हिमालय का ही एक अंश है, इसीलिये उसका संस्कृत नाम भी स्वर्ग का पर्यायवाची है—अमर कोशकार लिखते है—

स्वरव्ययं स्वर्ग नाक त्रिदिव त्रिदशालया। सुरलोको द्यौ दिवौ द्वे स्त्रिया क्लीवे त्रिविष्टप ॥

ऋग्वेद मे कंधार निवासी आर्य समुदाय के राजा दिवोदास और सिंधु नद के समीप बसने वाली आर्य जनता के राजा सुदास का वर्णन मिलता है, इसके उपरान्त गंगा यमुना कूल के मंत्रो की रचना का पता चलता है। इससे पाया जाता है कि कंधार अथवा गाधार से ही आर्यलोग पूर्व और दक्षिण की ओर बढे, यदि गाधार के पश्चिमोत्तर प्रदेश से वे आगे बढते तो उनका वर्णन ऋग्वेद मे अवश्य होता। किन्तु ऐसा नहीं है। इसलिये इसी सिद्धान्त को स्वीकार करना पडता है कि आर्य जाति की उत्पत्ति हिमालय के पवित्र अंक मे ही हुई है, और वहीं से वे भारत के और प्रदेशो मे फैले है। स्वामी दयानन्द सरस्वती ने भी सत्यार्थ प्रकाश मे यही लिखा है—

"आदि सृष्टि त्रिविष्टप अर्थात् तिब्बत में हुई"

यदि यह तर्क किया जावे कि फिर आर्य जाति का प्रवेश योरोप मे कैसे हुआ ? तो इसका उत्तर यह है कि जो जाति अपने जन्मस्थान से पूर्व और दक्षिण की ओर बढी, क्या वह पश्चिम और उत्तर को नहीं बढ

---

१ देखो अक्षर विज्ञान पृ० ३१, ३१

सकती, हिमालय पर्वत से निकली हुई नदिया यदि साइबीरिया तक पहुच सकती है, तो उस प्रदेश मे निवास करने वाली जनता योरोप मे क्यो नही पहुच सकती। भले ही हिमालय समीपवर्त्ती प्रान्त मध्य एशियामे न हो, किन्तु क्या वे मध्य एशिया के निकटवर्ती नही। किसी विद्वान् ने निश्चित रूपसे अबतक यह नही बतलाया कि मध्य एशिया के किसस्थान से आर्यलोग पूर्व और पश्चिम को बढे। अबतक स्थान के विषय मे तर्क वितर्क है, कोई किसी स्थान की ओर संकेत करता है, कोई किसी स्थान की ओर। ऐसी अवस्था मे यदि हिमालय प्रदेश को ही वह स्थान स्वीकार कर लिया जावे, तो क्या आपत्ति हो सकती है। महाभारत और पुराणो मे ऐसे प्रसंग मिलते है, जिनमे भारतीय जनो का योरोपीय और अमरीका आदि जाने की चर्चा है। राजा सगरने अपने सौ लडको को क्रुद्ध होकर जब भारतवर्ष मे नही रहने दिया, तब वे देशान्तरों मे गये, और वहा उपनिवेश स्थापित किये। इसी प्रकार की और कथाये है, उनकी चर्चा बाहुल्य मात्र होगा।

चाहे हम यह माने कि मध्य एशिया से आर्यलोग भारतवर्ष मे आये, चाहे यह कि वे हिमालय के उत्तर पश्चिम भाग मे उत्पन्न हुये और वहीं से भारतवर्ष मे फैले, दोनों बाते ऐसी है, जो बतलाती है, कि ज्यों ज्यों वे भारतवर्षमे फैलने लगे होंगे, त्यो त्यों उनकी बोल चालकी भाषा मे स्थान और जल-वायु क बिभेद से अन्तर पडने लगा होगा। ऋग्वेद मे इस बात का भी वर्णन है कि इन आर्यों का सघर्ष भी उनलोगों से बराबर चलता रहा, जा उस समय भारतवर्ष के विभिन्न प्रदेशों मे वास करते थे। इन लोगो की भी कोई भाषा अवश्य होगी, इसलिये दोनो की भाषाओं का परस्पर संमिश्रण भी अनिवार्य था। धीरे धीरे काल पाकर वैदिक भाषा के अनेक शब्द विकृत हो गये, क्यों कि उनका शुद्ध उच्चारण सर्व साधारण द्वारा नहीं हो सकता था। एक शब्द को लोग पहले भी विभिन्न प्रकार से बोलते थे, अब इसकी और वृद्धि हुई। आवश्यकतानुसार अनार्य भाषा के कुछ शब्द भी उसमे मिल गये, इसलिये काल पाकर बोलचाल की एक नई भाषा की सृष्टि हुई। इसी को पहली प्राकृत अथवा आर्ष प्राकृत कहा

गया है। इसी प्राकृत का अन्यतम रूप पाली अथवा मागधी है। कहा जाता है कि इस भाषा मे वैदिक संस्कृत के शब्दो को बेतरह विकृत होते देखकर आर्य विद्वानों को विशेष चिन्ता हुई, अतएव उन्होने उसकी रक्षा और उसके संस्कार का प्रयत्न किया। और इस प्रकार लौकिक सस्कृत की नीव पडी। अनेक विद्वानो ने इस लौकिक सस्कृत से ही सब प्राकृतो की उत्पत्ति मानी है। यह बडा वादग्रस्त विषय है, अतएव मै इसपर विशेष प्रकाश डालना चाहता हू। पालीभाषा अथवा मागधी के विषय मे भी तरह तरह की बाते कही गई है; वे भी विचारणीय है,। 'अतएव मै अब इन्हीं विषयो की ओर प्रवृत्त होता हू। जहा तक बिचार किया गया, निम्न लिखित तीन सिद्धान्त इस विवाद के आधार है—

१—यह कि समस्त प्राकृतो की जननी संस्कृत भाषा है—

२—यह कि प्राकृत स्वयं स्वतन्त्र और मूल भाषा है, वह न तो वैदिक भाषा से उत्पन्न हुई, न संस्कृत से —

३—यह कि प्राचीन वैदिक भाषा ही वह उदगम स्थान है, जहा से समस्त प्राकृतभाषाओं के स्रोत प्रवाहित हुये है, संस्कृत भी उसी का परिमार्जित रूप है।

सबसे पहले प्रथम सिद्धान्त को लीजिये उसके प्रतिपादक सस्कृत और प्राकृत भाषा के कुछ वावदूक विबुध और हमारी हिन्दी भापा के धुरन्धर विद्वान् है वे कहते है—

"प्रकृतिः संस्कृतम् तत्र भवं तत आगतं वा प्राकृतम्"

वैयाकरण हेमचन्द्र

"प्रकृतिः संस्कृतं तत्र भवत्वात् प्राकृतम् स्मृतम्"

प्राकृतचन्द्रिकाकार

"प्राकृतस्य तु सर्वमेव संस्कृतम्योनिः"

प्राकृत संजीवनीकार

यह सर्व सम्मत सिद्धान्त है कि प्रकृति संस्कृत होने पर भी कालान्तर मे प्राकृत एक स्वतंत्र भाषा मानी गई" स्व० पण्डित गोबिन्द नारायण मिश्र

"संस्कृत प्रकृति से निकली भाषा ही को प्राकृत कहते है"

स्व० प० बदरी नारायण चौधुरी

अब दूसरे सिद्धान्त वालो की बात सुनिये। इनमे अधिकाश बौद्ध और जैन विद्वान् है। अपने 'पयोग सिद्धि' ग्रन्थ मे कात्यायन लिखते है—

"सा मागधी मूल भासा नरायायादि कप्पिका'
ब्राह्मणो च स्सुतालापा सम्बुद्धा चापिभासरे।"

आदि कल्पोत्पन्न मनुष्यगण, ब्राह्मणगण, सम्बुद्धगण, और जिन्होने कोई वाक्यालाप श्रवण नही किया है ऐसे लोग जिसके द्वारा बातचीत करते है, वही मागधी मूल भाषा है।

'पतिसम्बिध अत्थूय, नामक ग्रन्थ मे लिखा है—

'मागधी भाषा देवलोक, नरलोक, प्रेतलोक, और पशुजाति मे सर्वत्र प्रचलित है। किरात, अन्धक, योणक, दामिल प्रभृति भाषाये परिवर्तनशील है, किन्तु मागधी आर्य और ब्राह्मणगण की भाषा है। इसलिये अपरिवर्तनीय और चिरकाल से समानरूपेण व्यवहृत है"।

महारूपसिद्धिकार लिखते है—'मागधिकाय स्वभाव निरुत्तिया" मागधी स्वाभाविक (अर्थात मूलभाषा) है।

अपने पाली भाषा के व्याकरण की अंग्रेजी भूमिका मे श्रीयुत सतीश चन्द्र विद्याभूषण लिखते है

* "धीरे धीरे मागधी मे जो इस देशमे बोली जाती थी, बहुत से परिवर्तन हुये, और आजकल की भाषाये, जैसे बंगाली, मरहठो, हिन्दी और उडिया इत्यादि उसी से उत्पन्न हुई है"।

जैनेरा अर्ध मागधीभाषा केई आदि भाषा बलियामने करेन

जैन लोग अर्द्ध मागधी भाषा को ही आदि भाषा मानते है"

बंगला विश्वकोश पृ० ४३८

---

* In course of time this Magadhi—the spoken language of the country underwent immense changes, and gave rise to the modern vernaculars such as Bengali, Marahati, Hindi, Uriya etc.

अब तीसरे सिद्धान्त वालों का विचार सुनिये। यह दल समधिक पुष्ट है, इसमे पाश्चात्य विद्वान् तो है ही, भारतीय विद्वानों की संख्या भी न्यून नही है। क्रमश अनेक विद्वानो की सम्मति मै आपलोगो के सामने उपस्थित करता हू। जर्मन विद्वान् वेबर कहते है - "वैदिक भाषा से ही एक ओर सुगठित और सुप्रणाली वद्ध होकर सस्कृत भाषा का जन्म, और दूसरी ओर मानव प्रकृति सिद्ध और अनियत वेगमे वेगवान प्राकृत भाषा का प्रचलन हुआ। प्राचीन वैदिक भाषा ही क्रमश विगड कर सर्व साधारण के मुखमे प्राकृत भाषा हुई"— वंगला विश्वकोश पृष्ट ४३३

श्रीमान् विधुशेखर शास्त्री अपने पालि प्रकाश नामक वंगला ग्रन्थमे क्या लिखते है उसे भी देखिये—

"आर्यगण की वेदभाषा और अनार्य्यगण की साधारण भाषा मे एक प्रकार का संमिश्रण होने से बहुत से अनार्य शव्द वर्तमान कथ्य वेद भाषा के साथ मिश्रित हो गये, इस संमिश्रणजात भाषा का नाम ही प्राकृत है"
पालि प्रकाश प्रवेशक पृष्ट ३६

हिन्दीभाषा के प्रसिद्ध विद्वान् श्रीमान् पण्डित महाबीर प्रसाद द्विवेदी की यह अनुमति है —

"हमारे आदिम आर्य्यों की भापा पुरानी सस्कृत थी, उसके कुछ नमूने ऋग्वेद मे वर्त्तमान है, उसका विकास होते होते कई प्रकार की प्राकृते पैदा हो गई, हमारी विशुद्ध संस्कृत किसी पुरानी प्राकृतसे ही परिमार्जित हुई है"

अब मै देखूंगा इन तीनो सिद्धान्तो मे से कौनसा सिद्धान्त विशेप उपपत्ति मूलक है। शब्द शास्त्र की गुत्थियो को सुलझाना सुलभ नहीं, लोग जितना ही इसको सुलझाते है, उलझन उतनी ही बढती है। बहुत कुछ छानबीन हुई, किन्तु भाषा-विज्ञान का अगाध रत्नाकर आज भी बिना छाने हुये पडा है। उसे सौ सौ तरह से छाना गया, किन्तु रत्न का हाथ आना सबके भाग्य मे कहा! मै इस उद्योग मे नहीं हू, न मुझमे इतनी योग्यता है, न मै इस घनीभूत अन्धकार मे प्रवेश करने के लिये सुन्दर आलोक प्रस्तुत कर सकता हूं, केवल मै विचारो का दिग्दर्शन मात्र करूंगा। प्रथम सिद्धात के

विषय मे मै कुछ विशेष नही लिखना चाहता, वेदभाषा को प्राचीन संस्कृत कहा जाता है, कोई कोई वेदभापा को वैदिक और पाणिनि काल की और उसके बादके ग्रन्थो की भाषाको लौकिक संस्कृत कहते है। प्रथम सिद्धान्त वालोने संस्कृत से ही प्राकृत की उत्पत्ति बतलाई है। यदि संस्कृत से वैदिक संस्कृत अभिप्रेत है, तो प्रथम सिद्धान्त तीसरे सिद्धान्त के अन्तर्गत हो जाता है, और विरोध का निराकरण होता है। परन्तु वास्तव बात यह है कि प्रथम सिद्धान्त वालो का अभिप्राय वेदिक संस्कृत से नही वरन लौकिक संस्कृत से है क्यों कि षड्भाषा चन्द्रिकाकार यह लिखते है

भाषा द्विधा संस्कृता च प्राकृती चेति भेदतः।
कौमार पाणिनीयादि संस्कृता संस्कृता मता।
प्रकृतेः संस्कृतायास्तु विकृतिः प्राकृता मता।

अतएव दोनो सिद्धान्तो का परस्पर विरोधी होना स्पष्ट है। आइये प्रथम सिद्धान्त की सारवत्ता का विचार करे। शिक्षा नामक वेदाग के पॉचवे अध्याय का यह अर्द्धश्लोक कि - "प्राकृते संस्कृते वापि स्वयं प्रोक्ता स्वयंभुवा" इस विषय को बहुत कुछ स्पष्ट करता है। इसका अर्थ है स्वयं आदि पुरुष प्राकृत अथवा सस्कृत बोलते थे। इस श्लोक मे प्राकृत को अग्र स्थान दिया गया है, जो पश्चादूवर्ती संस्कृत को उसका पश्चादूवर्ती बनाता है। इसलिये लौकिक सस्कृत से प्राकृत की उत्पत्ति नही मानी जा सकती। दूसरी बात यह कि प्राकृत भाषा में अनेक ऐसे शब्द मिलते है कि जिनका लौकिक संस्कृतमें पता तक नही चलता। परन्तु वे शब्द वैदिक संस्कृत अथवा वैदिक भाषा मे पाये जाते है। इससे यह बात स्वीकार करनी पडती है, कि प्राकृत की उत्पत्ति यदि हो सकती है, तो वैदिक भाषा से हो सकती है, लौकिक संस्कृत से नहीं। शब्द व्यवहार की दृष्टि से प्राकृत भाषा, जितनी वेद भाषा की निकटवर्ती है, सस्कृत की नही। बोलचाल की भाषा होनेके कारण वैदिक भाषा मे वे शब्द मिलते है, जो प्राकृत में उसी रूप मे आये, परन्तु संस्कार हो जानेके कारण लौकिक संस्कृत मे उनका अभाव हो गया। यदि सस्कृत से प्राकृत की उत्पत्ति हुई होती, तो इस प्रकार के शब्द उस मे

अवश्य मिलते, जब नही मिलते तब संस्कृत से उसकी उत्पत्ति मानना युक्ति सगत नही। इस प्रकार के कुछ शब्दो का उल्लेख नीचे किया जाता है।

प्राकृत मे पद का आदि वर्ण गत 'र' और "य" प्राय लोप हो जाता है। जैस संस्कृत ग्राम प्राकृत मे गाम होगा, और व्यवस्थित होगा ववत्थित। वैदिक भाषा मे भी इस प्रकार का प्रयोग पाया जाता है, जैसे—अप्रगल्भ के स्थान पर अपगल्भ (तै० स० ४, ५, ६, १) त्रि+ऋच् से त्र्यच् पद न होकर त्रिच और तृच होता है (शत० ब्रा० १, ३, ३, ३३) कात्यायन श्रौत सूत्र मे भी इस प्रकार का प्रयोग देखा जाता है। यास्क कहते है—"अथापि द्विवर्ण लोपस्तृच" (नि० २, १, २) अर्थात् यहाँ त्रिशब्द के रकार और इकार दोनो लोप हो गये।

प्राकृत मे संयुक्त वर्ण का पूर्ववर्ती दीर्घ स्वर प्राय ह्रस्व हो जाता है। जैसे—मात्रा, मत्ता इत्यादि। वैदिक भाषा मे भी इस प्रकार का प्रयोग देखा जाता है। जैसे रोदसीप्रा रोदसिप्रा (ऋ० स० १०, ८८, १०) अमात्र-अमत्र (ऋ० स० ३। ३६। ४)—

प्राकृत मे अनेक स्थानो पर संयुक्त वर्ण के स्थान पर एक व्यञ्जन का लोप करके पूर्ववर्ती ह्रस्व स्वर को दीर्घ कर दिया जाता है जैसे कर्तव्य-कातव्य, निश्वास-नीसास, दुहरि-दूहार। वैदिक भाषा मे भी ऐसा होता है, जैसे—दुर्दभ-दूडभ, (ऋ० स० ४, ९, ८) दुर्णाश-दूणाश (श्रु० प्रा० ३, ४३)

प्राकृत मे बहुत स्थान पर ऋकार के स्थान पर उकार होता है, जैसे ऋतु--उतु अथवा उदु इत्यादि, वैदिक साहित्य मे भी इस प्रकार प्रयोग अलभ्य नही है—यथा वृन्द-वुन्द (दृष्टव्यनि० ६-६-४-६)

प्राकृत मे बहुत स्थान पर दकार डकार हो जाता है। जैसे दहति-डहति, दण्ड-डण्ड। वैदिक साहित्य मे भी ऐसा होता है—जैसे दुर्दभ-दूडभ (बा० स० ३, ३६) पुरोदाश-पुरोडाश (श्रु० प्रा० ३, ४४ शत०) प्रा० १, ५, १, ५)

प्राकृत मे अव के स्थान पर उकार और अय के स्थान पर एकार हो जाता है। जैसे अवहसति उहसित, नयति-नेति। वैदिक साहित्य मे भी

इस प्रकार का बहुत अधिक प्रयोग मिलता है। यथा—श्रवण-श्रोण, (तै० ब्रा० १, ५, १, ४—५. २, ९) अन्तरयति-अन्तरेति (शत० ब्रा० १, २, २, १८,)

प्राकृत मे 'द्य' के स्थान पर 'ज' होता है, और प्राकृत नियमानुसार स्थान-विशेष मे यह जकार द्वित्व को प्राप्त होता है। यथा—द्युति-जुति, विद्या-विज्जा। वैदिक भाषा में इस प्रकार का प्रयोग बहुत अधिक पाया जाता है, अन्तर केवल इतना है, कि यहा 'य' कार का लोप नही होता। जैसे—द्योतिस, ज्योतिस, द्योतते-ज्योतते, द्योतय-ज्योतय (व्यथ० स० ४, ३७, १०) अवद्योतयति अवज्योतयति (शत० ब्रा० १, २, ३, ३, ३६) अव द्योत्य-अवज्योत्य (का० श्रो० ४, १४, ५)। †

दूसरा सिद्धान्त क्या है, मै उसका परिचय दे चुका हूं। वह मागधी को आदि कल्पोत्पन्न मूलभाषा, आदिभाषा, और स्वाभाविक भाषा मानता है। यदि इस भाषा का अर्थ वैदिक भाषा के अतिरिक्त सर्व साधारण मे प्रचलित भाषा है, तो वह सिद्धान्त बहुत कुछ माननीय है। क्योंकि महर्षि पाणिनि के प्रसिद्ध सूत्रो मे वेद अथवा उसमे प्रयुक्त भाषा, छन्द मंत्र, निगम आदि नामों से अभिहित है, यथा—विभाषाछन्दसि (१, २, ३६ अयस्मयादीनिछन्दसि (१, ४, २० नित्यं मन्त्रे (६, १, १०) जनितामन्त्रे (९, ४, ५३) वावपूर्वस्यनिगमे (६, ४, ९) ससूवेति-निगमे (७, ४, ७४)। * परन्तु भाषाओ के लिये लोक, लौकिक, अथवा भाषा शब्द का ही उपयोग उन्होंने किया है यथा—विभाषा भाषायाम् (९, १, ८१) स्थेच भाषायाम् (६, ३, २०) प्रथमायाश्चद्विवचने भाषायाम् (७, २, ८८) पूर्व तु भाषायाम् (८, २, ९८) परन्तु वास्तव बात यह नही है, वरन वास्तव बात यह है कि मागधी को मूलभाषा अथवा आदि भाषा कह कर वेद भाषा पर प्रधानता दी गई है, क्योंकि वह

---

† देखो—पालि प्रकाश पृष्ट—४०, ४१, ४२, ४३ प्रवेशिका।

* सस्कृत प्राकृतं चैवापभ्र शोथ पिशाचकी। मागधी शौरसेनीच षड् भाषाश्च प्रकीर्तिता। प्राकृत लक्षणकार टी०।

अपरिवर्तनीय मानी गई है। और कहा गया है कि नरलोक के अति-रिक्त उसकी व्यापकता देव लोक तक है, प्रेतलोक और पशु जाति मे भी वह सर्वत्र प्रचलित है। धार्मिक संस्कार सभी धर्मवालो के कुछ न कुछ इसी प्रकार के होते है, ऐसे स्थलो पर वितण्डावाद व्यर्थ है, केवल देखना यह है कि भाषा विज्ञान की दृष्टि से यह विचार कहा तक युक्ति संगत है, और पुरातत्ववेत्ता क्या कहते है। वैदिक भाषा की प्राचीनता, व्यापकता और उसके मूल भाषा अथवा आदि भाषा होने के सम्बन्ध मे कुछ विद्वानोकी सम्मति मैं नीचे उद्धृत करता हू, उनसे इस विषय पर बहुत कुछ प्रकाश पड़ेगा। निम्नलिखित अवतरणो मे संस्कृत भाषा से वैदिक संस्कृत अभिप्रेत है, न कि लौकिक संस्कृत।

"सर्व ज्ञात भापाओ मे से संस्कृत अतीव नियमित है, और विशेषतया इस कारण अद्भुत है कि उसमे योरप की अद्यकालीन भिन्न भिन्न भाषाओ और प्राचीन भाषाओ के धातु है" मिस्टर कूवियर *

"यह देख कर कि भाषाओकी एक बडी संख्या का प्रारम्भ संस्कृत से है, या यह कि संस्कृत से उसकी समधिक समानता है, हमको बडा आश्चर्य होता है, और यह संस्कृत के बहुत प्राचीन होने का पूरा प्रमाण है। रेडियर नामक एक जर्मन लेखक का यह कथन है कि संस्कृत सौ से ऊपर भाषाओ और बोलियो की जननी है। इस संख्या में उसने बारह भारतवर्षीय, सात मिडियन फारसी, दो अरनाटिक अलबानियन, सात ग्रीक, अट्ठारह लेटिन, चौदह इस क्लेवानियन और छ गेलिक केल्टिक को रखा है।"

लेखकोंकी एक बडी संख्या ने संस्कृत को ग्रीक और लेटिन एवं जर्मन भाषा की अनेक शाखाओकी जननी माना है। या इन मे से

---

* "It is the most regular language known and is especially remarkable, as containing the roots of various languages of Europe, and the Greek, Latin, German, of Scalvonic—Baron Cwiver—Lectures on the Natural Sciences

कुछ को संस्कृत से उत्पन्न हुई, किसी दूसरी भाषा द्वारा निकला पाया है, जो कि अब नाश हो चुकी है। सरविलियम जोन्स और दूसरे लोगो ने संस्कृत का लगाव पारसी और जिन्द भाषासे पाया है।

हालहेडने संस्कृत और अरबी शब्दो मे समानता पाई है, और यह समानता केवल मुख्य मुख्य बातो और विषयो मे ही नही वरन् भाषा की तह मे भी उन्हे मिली है। इसके अतिरिक्त इण्डोचाइनीज और उस भाग की दूसरी भाषाओंका भी उसके साथ घनिष्ठ सम्बन्ध है।"

मिस्टर एडलिंग

"पुरातन ब्राह्मणों ने जो ग्रन्थ हमे दिये है, उनसे बढ कर निर्विवाद प्राचीनता के ग्रन्थ पृथ्वी पर कही नही मिलते" मिष्टर हालहेड *

"जिन्द के दश शब्दों मे ६ या ७ शब्द शुद्ध संस्कृत के है" मिस्टर हैमर

"जिन्द और वैदिक संस्कृत का इतना अन्तर नही जितना वैदिक संस्कृत और लौकिक संस्कृत का है" मैकडानैल

ईश्वरीयज्ञान पृ-६३, ६४, ६६, ६७

---

* The great number of languages which are said to owe their origin, or bear a close affinity to the Sanskrit, is truly astonishing, and is another proof of its high antiquity A German writer (Rudiger) has asserted it to be the parent of upwards of a hundred languages and dialects, among which he enumerates twelve Indian, seven Median-Persic, two Arnantic-Albanian, seven Greek, eighteen Latin, fourteen Sclavonian, and six Celtic-Gallic

A host of writers have made it the immediate parent of the Greek, and Latin, and German families of languages, or regarded some of these as descended from it through a language now extinct With the Persian and Zend it has been almost identified by Sir William Jones and others Halhed notices the similitude of Sanskrit and Arabic words, and this not merely in technical and metaphorical terms, but in the main ground work of language In a contrary direction the Indo-Chinese, and other dialects in that quarter, all seems to be closely allied to it —Adeling Sans Litareture H 30—40

"The world does not now contain annals of more indisputable antiquity than those delivered down by the ancient Brahmans —Halhed, Code of Hindu Laws.

संसार की आर्यजातीय भाषाओ के साथ वैदिक भाषा का सम्बन्ध प्रकट करने के लिये, मै यहा कुछ शब्दो को भी लिखताहू ।

सस्कृत	मीडी	यूनानी	लैटिन	अगरेजी	फारसी
पितृ	पतर	पाटेर	पेटर	फादर	पिदर
मातृ	मतर	माटेर	मेटर	मदर	मादर
भ्रातृ	ब्रतर	फाटेर	फेटर	ब्रदर	बिरादर
नाम	नाम	ओनोमा	नामेन	नेम	नाम
अस्मि	अह्मि	ऐमी	एम	ऐम	अस

अवतरणो को पढने और ऊपर के शब्दो का साम्य देखकर यह बात माननी पडेगी, कि वैदिक भाषा अथवा आर्य जाति की वह भाषा जिसका वास्तव और व्यापक रूप हमको वेदों मे उपलब्ध होता है, आदि भाषा अथवा मूल भाषा है। आज कल के परिवर्तन और नूतन विचारो के अनुसार यदि ससार भर अथवा योरोपियन भाषाओं की जननी उसे न मानें तो भी आर्य परिवार की जितनी भाषायें है, उनकी आधार भूता और जन्मदात्री तो उसे हमे मानना ही पडेगा। और ऐसी अवस्था मे मागधी भाषा को मूल भाषा अथवा आदि भाषा कहना कहा तक युक्ति संगत होगा आप लोग स्वयं इसको सोच सकते है।

पालि प्रकाश कार एक स्थान पर लिखते है "पालि भाषा का दूसरा नाम मागधी है, और यह उसका भौगोलिक नाम है, (पृष्ट १३) दूसरे स्थान पर वे कहते है, "मूलप्राकृत जब इस प्रकार उत्पन्न हुई, तो उसके अन्यतम भेद पाली की उत्पत्ति का कारण भी यही है, यह लिखना वाहुल्य है (पृष्ट ४८)" इन अवतरणों से क्या पाया जाता है, यही न कि पालि अथवा मागधी से मूल प्राकृत को प्रधानता है, ऐसी अवस्था मे वह आदि और मूल भाषा कैसे हुई ! तत्कालिक कथ्य वेद भाषा के साथ अनार्य भाषा का सम्मिश्रण होनेसे जो भाषा उत्पन्न हुई उसे वे मूल प्राकृत मानते है (देखो पृष्ट० ३६) अतएव मूल प्राकृत भाषा कथ्य वेद भाषा की पुत्री हुई अत वेद भाषा उसकी भी पूर्ववर्ती हुई, फिर पालि अथवा मागधी मूल

भाषा किम्वा आदि भाषा कैसे कही जा सकती है।, विश्वकोषकारने वेदिक सस्कृत से आर्ष प्राकृत, पालि, और उसके बाद की प्राकृत का सम्बन्ध प्रकट करनेके लिये शब्दो की एक लम्बी तालिका पृष्ट ४३४ मे दी है, उनके देखने से यह विषय और स्पष्ट हो जावेगा। अतएव उसके कुछ शब्द यहा उठाये जाते है। विश्वकोषकार ने पालि प्रकाशकार के मूल प्राकृत के स्थान पर आर्य्य प्राकृत लिखा है, यह नामान्तर मात्र है—

संस्कृत	आर्ष प्राकृत	पाली	प्राकृत
अग्नि	अग्गि	अग्गि	अग्गी
वुद्धि	वुद्धि	वुद्धि	वुद्धी
मया	मये, मे	मया	मये, मइये, ममए
त्वम्	ता, तुमन्	ता, तुवम्	तं, तुमं, तुवम्
षोडश	सोलस	सोलस	सोलह
विशति	वीसा	वीसति, वीसम्	वीसा
दधि	दहि, दहिम्	दधि	दहि, दहिम्

प्राकृत लक्षणकार चण्डने आर्ष प्राकृत को, प्राकृत प्रकाशकार वररुचिने महाराष्ट्री को, पयोगसिद्धि कार कात्यायनने मागधी को, और जैन विद्वानो ने अर्ध मागधी को आदि प्राकृत अथवा मूल प्राकृत लिखा है। पालि प्रकाश कार एक स्थान पर (पृष्ट ४८ पालि को सब प्राकृतों से प्राचीन बतलाते है, कुछ लोग पालि और मागधी को दो भाषा समझते है, अपने कथन के प्रमाण मे दोनों भाषाओं के कुछ शब्दोंकी प्रयोग भिन्नता दिखलाते है, ऐसे कुछ शब्द नीचे लिखे जाते है —

संस्कृत	पाली	मागधी
शश	ससा	मो
कुक्कुट	कुक्कुटो	रो
अश्व	अस्स	सागा
श्वान	सुनका	साच
व्याघ्र	व्यग्घो	वी

जो अभेदवादी है, वे इन शब्दोंको मागधी भाषा के देशज शब्द मानते है। जो हो किन्तु अधिकाश विद्वान् पालि और मागधी को एक ही मानते है। कारण इसका यह है कि बुद्धदेवने अपने उपदेश अपनी ही भाषा

मे दिये है। उनकी भाषा मागधी ही थी, क्योकि मगध प्रान्त ही उनकी लीला भूमि थी। बुद्धदेवके समस्त उपदेश पहले पाली भाषा मे ही लिखे मिलते है, वरन् कहा जाय तो यह कहा जा सकता है, कि बौद्ध साहित्य का प्रधान और सर्वमान्य बृहदंश पालि ही मे मिलता है, ऐसी दशा मे दोनों भाषाओं का अभेद स्वीकार करना ही पडता है। किन्तु पाली जब मागधी नाम ग्रहण करती है, तब अपनी व्यापकता खो कर सीमित हो जाती है। पाली ही ऐसी प्राकृत है, जो वैदिक भाषा की अधिकतर निकटवर्ती है, इसीलिये उसको आर्ष प्राकृत का अन्यतम रूप कहा जाता है। अन्य प्राकृत भाषाये उसके बाद की है—कुछ प्रमाण पालि प्रकाश ग्रन्थ से नीचे दिये जाते है -

अकारान्त शब्द के तृतीया बहुबचन मे पालि भाषामे केवल विसर्ग मात्रका त्याग करके वैदिक प्रयोग ही रक्षित रहता है। यथा-देवेभि प्रयोग के स्थान मे पालि मे देवेभि और विकल्प मे भ के स्थान पर ह का प्रयोग करके देवेहि पद बनता है, किन्तु प्राकृत मे भ का प्रयोग बिल्कुल लुप्त हो जाता है, केवल देवेहि रह जाता है, आगे चल कर वह देवेहि और देवेहिँ भी हो जाता है।

क्लीव लिग चित्त शब्द का प्रथमा बहुवचन पालि में चित्ता और चित्तानि दोनो होता है, और यह दोनों रूप ही वेद मूलक है। जैसे विश्वा और विश्वानि (ऋ० १०, १६९, ३) परन्तु बाद की प्राकृतिक भाषाओं मे ऐसा व्यवहार नहीं होता, उन मे चित्तानि, चित्ताइं चित्ताइँ आदि पाया जाता है।

शानच् प्रत्यय के स्थान पर पालि मे प्राचीन वैदिक भाषा के अनुसार आन और मान दोनो प्रत्यय ही प्रयुक्त होते है—जैसे भुञ्ज से भुञ्जान और भुञ्जमान दोनों रूप बनता है, किन्तु प्राकृत में केवल मान अथवा माणका प्रयोग होता है। इसका एक मात्र कारण यही है, कि प्राकृत, मूल भाषा से पालि की अपेक्षा बहुत दूर हट गई, और इस कारण समस्त रूपोंको रक्षित न रख सकी।

पालि में पारगू (पारग) आदि शब्द भी पाये जाते है, ए समस्त शब्द वेदिक भाषा मे से ही उस मे आये है, यथा अग्रग अर्थ में अग्रगू आदि (पाणिनि ६, ४, ४०) ।

वैदिक भाषा मे तुम अर्थ मे तवैं, तवेड् प्रत्यय का प्रयोग अधिकता से देखा जाता है (पा० ३, ४, ९) जैसे पातु के अर्थ मे 'पातवै' इत्यादि। पालि में भी इस प्रकार का प्रयोग बिल्कुल लुप्त नहीं हो पाया है ।

इन बातों पर दृष्टि देने से पालि की प्राचीनता निर्विवाद है, अन्य प्राकृत भाषायें उसके बाद की है । ये विशेषताये मागधी में नहीं है, और उसका नाम प्रान्त विशेप से भी सम्बन्ध रखता है। इसलिये कुछ लोग उसको पाली नहीं मानते, किन्तु अधिकतर विद्वानों की सम्मति वही है, जिसका उल्लेख मैंने पहले किया है ।

कुछ विद्वान् गाथा से पालि की उत्पत्ति मानते है । पालि प्रकाशकार लिखते है—(पृ० ४८, ५०)

"गाथा की भाषा के सम्बन्ध मे पूर्वकालके पण्डितगणने बहुत आलोचना की हैं । इनमे भारतके सुप्रसिद्ध प्राच्य तत्वविद्यावित् डाक्टर राजेन्द्रलाल मित्र ने उसके विषय में जो आलोचना की है, उसको अध्यापक मैक्समूलर और डाक्टर वेबर प्रमुख विद्वानोंने भी स्वीकार किया है ।"

'मिस्टर बर्न उफ कहते है, कि गाथा विशुद्ध संस्कृत और पालि की मध्यवर्ती भाषा है डाक्टर मित्रने इसको माना है, और वे सोचते है कि यह गाथा ही शाक्यसिंह के जन्म ग्रहण के पूर्व देशभापा थी । संस्कृत से गाथा और गाथा से पालि की उत्पत्ति हुई है" *

गाथा के विषय मे ऐसा विचार होने का कारण यह है कि उसमे संस्कृत वाक्यों का बडा अशुद्ध प्रयोग हुआ है । उसकी भाषा न तो

---

*"The language of the Gatha is believed, by M Burnouf, to be intermediate between the Pali and the pure Sanskrit it would not be unreasonab'e to suppose that the Gatha, which preceded it, was the dialect of the millions at the time of Sakya's advent and for sometime before it" Indo-Aryan, Vol VI, p 295

शुद्ध संस्कृत है, और न प्राकृत, उसमें दोनोंका विचित्र संमिश्रण देखा जाता है, इसी लिये उसको संस्कृत और प्राकृतका मध्यवर्ती कहा गया है, और यही कारण है कि सब से प्राचीन प्राकृत पालि की उत्पत्ति उस से मानी गई है। गाथा का एक श्लोक देखिये।

अध्रुवम् त्रिभवम् शरदभ्रनिभम्।
नटरंग समाजगि जन्मिच्युति।
गिरिनद्य समम् लघु शीघ्र जवम्।
व्रजतायुजगे पथ विद्युनभे।

संस्कृत के नियम के अनुसार दूसरे चरण के नटरंग समा को नटरंग समम्—जगिजन्मिच्युति के स्थान पर जगति जन्मच्युति होना चाहिये। तीसरे चरण में गिरिनद्य समम् को गिरिनदी समम् और चतुर्थ चरण को 'व्रजत्यायुर्जगति पथविद्युद्नभसि, लिखना ठीक होगा। परन्तु उस समय भाषा ऐसी विकृत हो रही थी, कि इन अशुद्ध प्रयोगों का ध्यान विल्कुल नहीं किया गया। यह सब होने पर भी पालि प्रकाशकार ने एक लम्बा लेख लिख कर और बहुत से अकाट्य प्रमाणों को देकर यह सिद्ध किया है कि गाथा की रचनाये अपभ्रंश काल के लगभग हुई है जो सब से अन्तिम प्राकृत है। ऐसी अवस्था मे वह पालिभाषा की पूर्ववर्ती नहीं हो सकती, और न इससे उस की उत्पत्ति मानी जा सकती है। उनके प्रमाणों को मैं विस्तार भय से नही उठाता हू। किन्तु उन को पढने के उपरान्त यह स्वीकार करना असंभव हो जाता है कि गाथा से पालि की उत्पत्ति हुई। यदि डाक्टर राजेन्द्र लाल मित्र इत्यादि की सम्मति मान ली जावे तो पालि भाषा उसके बाद की प्राकृत ठहरती है, और ऐसी अवस्था में उसका मूल भाषा होना और असंभव हो जाता है, मागधी की बात ही क्या। अब तक मैं जो कुछ लिख आया उससे पाया जाता हैं कि पालि अथवा मागधी किसी प्रकार मूल भाषा नहीं हो सकती। उसका आधार वैदिक भाषा है, जो अनेक सूत्रो से प्रतिपादित किया जा चुका है।

इस प्रकार के मतभेद और खींचतान का आधार कुछ धार्मिक विश्वास और कुछ आपेक्षिक ज्ञान की न्यूनता है। बौद्ध ग्रन्थों मे लिखा है—

"यदि माता पिता अपनी भाषा बच्चे को न सिखलावे तो वह स्वभावतया मागधी भाषा को ही बोलेगा। इसी प्रकार एक निर्जन बन मे रखा हुआ आदमी यदि स्वभाव-वश बोलने का प्रयत्न करे तो उसके मुख से मागधी ही निकलेगी। इसी भाषा का प्राधान्य तीनो लोको मे है, अन्यान्य भाषाये परिवर्तनशील है, यही सदा एक रूप मे रहती है। भगवान् बुद्धने अपने तिपिटक की रचना भी इसी सनातन भाषा मे की है" १

इस प्रकार के विचारों के विषय मे कुछ अधिक कथन करना व्यर्थ है। केवल एक कथन की ओर आप लोगों की दृष्टि मैं और आकर्षित करूंगा, वह यह कि कुछ लोगो का यह विचार है कि मागधी को देश भाषा मूलक मान कर मूलभाषा कहा गया है। किन्तु यह सिद्धान्त मान्य नहीं, क्यों कि यदि ऐसा होता तो द्राविडी और तेलगू आदि देश भाषाओ के समान वह भी एक देश भाषा मानी जाती, परन्तु उस को किसी पुरा तत्ववेत्ता ने आज तक ऐसा नहीं माना, वह आर्य भाषा संभवा ही मानी गई है, इस लिये यह तर्क सर्वथा उपेक्षणीय है। आर्यभाषा संभवा वह इस लिये मानी गई है, कि उसकी प्रकृति आर्यभाषा अथवा वेदभाषा मूलक है। प्राकृत भाषा के जितने व्याकरण हैं, उन्हों ने संस्कृत के शब्दों और प्रयोगो द्वारा ही प्राकृत के शब्द और रूपों को बनाया है। प्राकृत भाषा का व्याकरण सर्वथा संस्कृतानुसारी है। संस्कृत और प्राकृत के अधिकाश शब्द एक ही झोले के चट्टे बट्टे अथवा एक फूल के दो दल अथवा एक चने की दो दाल ज्ञात होते है, थोडे से ऐसे शब्द नीचे लिखे जाते है—

१ दे० M Muller Lectures on the Science of Language, भाग १, ० १४९।

'Even Buddhaghosa (reminding one of Herodotus' story) says that a child brought up without hearing the human voice would instinctively speak Magadhi (Alw 1 cvii)—Childers, Dictionary of the Pali Language, p xiii

दे० पालिप्रकाश- पृ० ९६।

संस्कृत	मागधी	संस्कृत	मागधी
कृतं	कतं	ऐश्वर्यम्	इस्सरियन
गृहं	गहं	मौक्तिक	मुत्तिकम्
घृतं	घतं	पौर	पौरो
वृत्तान्त	वुत्तन्तो	मन	मनो
चैत्र	चित्तो	भिक्षु	भिक्खु
क्षुद्र	खुद्दं	अग्नि	अग्गी

केवल कुछ शब्दों के मिल जाने से ही किसी भाषा का आधार कोई भाषा नहीं मानी जा सकती, उन दोनों की प्रकृति और प्रयोगों को भी मिलना चाहिये। वैदिक संस्कृत और मागधी अथवा पालि की प्रकृति भी मिलती है, उनका व्याकरण सम्बन्धी प्रयोग भी अधिकाश मिलता है— नीचे के श्लोक इसके प्रमाण है। संस्कृत श्लोक के नीचे जो दो श्लोक है, उनमे से पहला शुद्ध मागधी और दूसरा अर्ध मागधी है। देखिये उनमे परस्पर कितना अधिक साम्य है –

रभसवश नम्र सुरशिरो विगलित मन्दार
राजितांघ्रि युगः।
वीर जिनः प्रक्षालयतु मम सकल मवद्य जम्बालम्।
लहश वश नमिल शुल शिल विअलिद् मन्दाल
लायिदंहि युगे।
वील धिणे पक्खालदु मम शयल मयय्य यम्वालम्।
लभश वश नमिल शुल शिल विअलिद्
मन्दाल लाजिदाई युगे।
वील जिणे पक्खालदु मम शयल मवज्ज जम्बालम्।

ऐसी अवस्था में यदि प्राकृत भाषा अर्थात् पालि और मागधी आदि वैदिक भाषा मूलक नहीं है, तो क्या देश भाषा मूलक है? वास्तव मे मागधी अथवा अर्ध मागधी किम्बा पालि की जननी वैदिक संस्कृत है।

और यही तीसरा सिद्धान्त है, जिस को अधिकाश भाषा विज्ञान वेत्ता स्वीकार करते है। ऐसी अवस्था मे दूसरे सिद्धान्त की अप्रौढता अप्रकट नहीं। जितनी बाते पहले कही जा चुकी है वे भी कम उपपत्ति मूलक नहीं है।

एक बात और है वह यह कि इण्डो योरोपियन भाषा की छानबीन के समय भारतीय भाषाओं मे से संस्कृत ही अन्य भाषाओं की तुलना मूलक आलोचना के लिये ली गई है, पालि, अथवा मागधी किम्बा अन्य कोई प्राकृत नहीं, इससें भी संस्कृत की मूल भाषा मूलकता सिद्ध है। निम्न लिखित पंक्तियाँ इस बात को और पुष्ट करती है—

"यथार्थ वैज्ञानिक प्रणाली से भाषा की चर्चा पहले पहल भारतवर्ष मे ही हुई इसके सम्बन्ध में एक अग्रेज विद्वान् के कथन-१ का साराश यह है कि भारतीयो ने ही सर्व प्रथम भाषा को ही भाषा का रूप दिया। भारतीय ऋषियों ने सैकडो वर्ष तक वैदिक तथा लौकिक संस्कृत भाषा को मथ कर व्याकरण शास्त्र का उत्कर्ष विधान किया। पाणिनि का व्याकरण इन गवेषणाओ का ही सार है" भाषाविज्ञान (पृष्ठ ३ २)।

योरोप के प्रसिद्ध विद्वान् मैक्समूलर क्या कहते है उसे भी सुनिये—

"मानव भाषा समुद्र मे देशभाषाये द्वीप की भाति इधर उधर बिखरी पडीं थीं वे सब मिलकर महाद्वीप का स्वरूप नहीं धारण कर पाती थीं। प्रत्येक विज्ञान के इतिहास मे यह आपत्तिपूर्ण समय सामने आता है। यदि अचानक वह आनन्द मूलक घटना न घटी होती, जिसने इन बिखरे अशो को बिजली की तरह चमक कर एक नियन्त्रित रूप से प्रकाश में ला दिया, तो यह अनिश्चित था कि भाषा के विद्यार्थियों का हार्विंज और एडेलंग की भाषा सम्बंधिनी लम्बी सूचियों में अनुराग बना रहता या नहीं। यह

---

1 "The native grammarians of India had at an early period analysed both the phonetic sounds and vocabulary of Sanskrit with astonishing precision and drawn up far more scientific system of grammar than the philologist of Alexandria or Rome had been able to attain

ज्योति दान करनेवाली बिजली आर्यजाति की प्राचीन और आदिम भाषा संस्कृत है" २

तीसरा प्रकरण।

अन्य प्राकृत भाषायें और हिन्दी

मै पहले लिख आया हू, मूल प्राकृत अथवा आर्ष प्राकृत का अन्यतम रूप पाली है, अतएव सबसे प्राचीन अथवा पहली प्राकृत पाली कही जा सकती है। आर्ष प्राकृत मे उल्लेख योग्य कोई साहित्य नही है, कारण इसका यह है कि आर्षप्राकृत, परिवर्तनशील वैदिक भाषा के उस आदिम रूप का नाम है, जब उसमे देशज शब्दो का मिश्रण आरम्भ हो गया था, उसके शब्द टूटने फूटने लग गये थे, और उनका अन्यथा व्यवहार होने लगा था। काल पाकर यह विकृति दृष्टि देने योग्य हो गई, और इतनी बढ गई, कि भिन्न रूपमे प्रकट हुई। उस समय उसका नाम पाली पडा। यथा समय यह पाली साहित्य की भाषा भी बनी, और उसका व्याकरण भी तैयार हुआ। कुछ काल तक अनेक विद्वानों का यह विचार था कि गाथा से पाली की उत्पत्ति हुई। और इस गाथा की भाषा ही आर्ष प्राकृत है। परन्तु आजकल यह विचार नहीं माना जाता है। यदि गाथा को वैदिक भाषा और पाली की मध्यवर्तिनी मान ले, तो आर्ष प्राकृत में भी साहित्यका

---

2 The languages as have been very beautifully described by Max Muller, floated about "like islands on the ocean of human speech, they did not shoot together to form themselves into larger continent This is the most critical period in the history of every science, and if it had not been for a happy accident, which like an electric spark caused the floating elements to crystalize into a regular form it is more than doubtful whether the long list of languages and dialects enumerated and described in the works of Harnes and Adelung could long have sustained the interest of the students of languages The electric spark was the discovery of Sanskrit the ancient language of the Hindus"

अभाव न रह जावेगा, और ऐसी अवस्था में पहली प्राकृत वही होगी, बोल चाल पर दृष्टि रखकर उसको एक पृथक् भाषा स्वीकार करना पडेगा। किन्तु प्राय विद्वानों ने उसके अन्यतम रूप पाली को ही आदि और सब से प्राचीन प्राकृत होने का गौरव दिया है, अतएव मै भी इसको स्वीकार कर लेता हू। पाली भापा का साहित्य वडा विस्तृत है प्राकृत भापा का पहला व्याकरण पाली मे ही है, और वह कात्यायन का बनाया हुआ है। पालि प्रकाशकार कहते है—(पृ० १०१) कि पालि व्याकरण समूह सस्कृत के आदर्श पर ही रचित है, कात्यायन व्याकरण के अनेक सूत्र, कातन्त्र के संस्कृत व्याकरण के सूत्रों के साथ अधिकतर सम्वन्ध रखते है। अनेक सूत्र उसमे पाणिनि के भी लिये गये है। इस दृष्टिसे भी पालि भाषा को पहली प्राकृत कहा जा सकता है, क्योकि वह अधिकतर संस्कृतानुवर्तिनी है।

अशोक के जितने स्तम्भ प्राप्त हुये है, उनमे से अधिकाश की भाषा पाली ही है। यद्यपि स्तम्भ के लेखों मे कहीं कहीं भाषा भेद दृष्टिगत होता है, और इसलिये कुछ विद्वानों की सम्मति है, कि अशोक के समय मे ही पालीभाषा मे परिवर्तन होने लग गया था, क्योकि यह अनुमान किया जाता है कि प्रत्येक स्तम्भ की भाषा उस स्थान के प्रचलित भाषा से सम्बन्ध रखती है। फिर भी यह स्वीकार करना पडता है कि उस समय प्रधानता पाली को ही थी। चाहे वह दो प्रकार की हो, चाहे चार प्रकार की। मैं पहले कह आया हू कि पाली का दूसरा नाम मागधी भी है, यद्यपि यह कथन सर्वसम्मत नहीं, फिर भी अधिकाश भापा मर्मज्ञ यही स्वीकार करते है। अर्द्धमागधी का नाम ही उसको मागधी का अन्यतम रूप बतलाता है, इसलिये अशोक के जो शिला लेख मागधी अथवा अर्द्धमागधी मे लिखे माने जाते है, उनको पालीभाषा का रूपान्तर कहना असंगत न होगा। ऐसी अवस्था मे शिला लेखों पर विचार करने से भी पाली को ही पहली प्राकृत मानना पड़ेगा।

पाली के अनन्तर हमारे सामने कुछ ऐसी प्राकृत भाषाये आती हैं, जिनका नाम देश परक है। वे है, मागधी, अर्द्धमागधी, महाराष्ट्री और

शौरसेनी, इनको हम दूसरी प्राकृत कह सकते है। यदि हम पाली को ही मागधी मान ले तो मागधी के विषय मे कुछ लिखना आवश्यक नहीं, क्योकि पाली को हम पहली प्राकृत कह चुके है। किन्तु हमे यह न भूलना चाहिये कि मागधी नाम देशपरक है, मगध प्रान्त की भाषा का नाम ही मागधी हो सकता है, इसलिये यह स्वीकार करना पडेगा कि मागधी की उत्पत्ति मगध देश मे ही हुई। फिर पाली का नाम मागधी कैसे पडा ? इसका उत्तर हम बाद को देगे, इस समय देखना यह है कि पाली और मागधी मे कोई अन्तर है या नहीं ? पालि प्रकाशकार (प्रवेशिका पृ० १३, १४) लिखते है—

"प्राकृत व्याकरण और संस्कृत के दृश्यकाव्य समूह में मागधी नाम से प्रसिद्ध एक प्राकृत भाषा पाई जाती है, आलोच्य पाली से यह भाषा इतनी अधिक विभिन्न है, कि दोनो की भिन्नता उनके देखते ही प्रकट हो जाती है। पाठकगणों को दोनो मागधी का भेद जानना आवश्यक है, इसलिये उनके विषय मे यहा कुछ आलोचना की जाती है। आलोचना की सुविधा के लिये हम यहा पाली को बौद्ध मागधी और दूसरी को प्राकृत मागधी कहेगे"

"प्राकृत लक्षणकार चण्ड ने प्राकृत मागधी का इतना ही विशेषत्व दिखलाया है, कि इसमे रकार के स्थान पर लकार और सकार के स्थान पर शकार होता है। जैसे—संस्कृत का निर्झर प्राकृत मागधी मे निज्झल होगा, इसी प्रकार माष होगा माश और विलास होगा विलाश। परन्तु बौद्ध मागधी मे इनका रूप यथाक्रम, निज्झर, मास, विनास होगा। प्राकृत मागधी में अकारान्त प्रातिपदिक पुल्लिङ्ग के प्रथमा विभक्ति का एक वचन एकारयुक्त होता है, जैसे—माष —माशे विलास — विलासे निर्झर—निज्झले। बौद्ध मागधी में इसका रूप यथाक्रम मासो, विनासो, और निज्झरो होगा।"

"इसी प्रकार के कुछ और उदाहरण देकर पालि प्रकाशकार लिखते हैं (पृ० १६-१७) बौद्ध मागधी और प्राकृत मागधी मे परस्पर और अनेक भेद है। वाहुल्य भयसे उन सबको पूर्णतया यहा नहीं दिखलाया गया। किन्तु जितना दिखलाया गया, उसी से यह स्पष्ट हो जाता है कि दोनो भाषाये परस्पर कितनी भिन्न है"

"मृच्छ कटिक नाटक मे शकार का अधिकतर कथन विशुद्ध प्राकृत मागधी मे रचित है। प्राकृत मागधी का मूल शौरसेनी है, इसलिये उसमे शौरसेनो तो मिलती ही है, स्थान स्थान पर महाराष्ट्री के शब्द भी देखे जाते है। इसीलिये कही कही शकार की भाषा को अर्द्धमागधी कहा गया है। अभिज्ञानशाकुन्तल मे रक्षिपुरुष और धीवर की भाषा प्राकृत मागधी है। वेणीसहार नाटक और उदात्तराघव के राक्षस को भाषा भी प्राकृत मागधी है। मुद्राराक्षस आदि मे भी इसका व्यवहार देखा जाता है। किन्तु प्राय. इसके साथ भिन्न जातीय प्राकृत का सम्मिलन पाया जाता है"।

इन सव बातो को लिखकर पालिप्रकाशकार १८ पृष्ठमे यह लिखते है—

"जो कुछ कहा गया उसको पढकर हृदय मे स्वभावत यह प्रश्न उदय होता है, कि 'मागधी, नाम से प्रसिद्ध होकर भी पाली, (बौद्धमागधी), एवं प्राकृतमागधी मे परस्पर इतना भेद क्यो है ? ए एकही स्थान की भाषाये है, यह बात इनका साधारण नाम ही स्पष्टभाव से बतलाता है। तो क्या ए दोनो भाषाये, विभिन्न प्रदेश की है ? अथवा दोनों के मध्य में दीर्घकाल का व्यवधान होनेके कारण एकही अन्य रूप मे परिवर्तित हो गई है। या विस्तृत मगध प्रदेश के अंश विशेष मे एक, और अन्य विभाग मे दूसरी प्रचलित थी ? इनका परस्पर सम्बन्ध क्या है ?'

इन प्रश्नो का उत्तर ६६ पृष्ट मे वे यह देते है -

"पहले हमने बौद्धमागधी, और प्राकृतमागधी के स्थान और काल के सम्बन्ध मे प्रश्न उठाया था। यह प्रश्न पाठको के निकट इसी रूप में रहा। विषय इतना गुरुतर है, कि इस सम्बन्ध में मैने जो अनुसन्धान किया है, वह इस समय प्रकाश योग्य नहीं है। समयान्तर मे मैं इसका उत्तर देने की चेष्टा करूंगा"

कम से कम इन पंक्तियों को पढ कर यह तो स्पष्ट हो गया, कि मागधी दो प्रकार की है, और उनमे परस्पर बहुत बडा अन्तर है। इन पंक्तियों द्वारा यह भी विदित होता है, कि बौद्धमागधी ही पाली है, और बुद्धदेव ने

इसी भाषा में अपने सिद्धान्तों का प्रचार किया। अशोक के शिलालेख अधिकतर इसी मागधी अथवा उसके अन्यतम भेद अर्द्धमागधी मे लिखे पाये जाते है। इसलिये यदि पहली प्राकृत हो सकती है, तो वौद्धमागधी। प्राकृत मागधी को ऐसी अवस्था मे दूसरी प्राकृत मान सकते है। देशपरक नाम निस्सन्देह वौद्धमागधी को भी निर्विवाद रूप से पाली मानने का वाधक है, और इसी विचार से ज्ञात होता है कि एक वौद्ध विद्वान् ने मागधी की यह व्युत्पत्ति की है, 'सोच भगवा मागधो मगधे भवत्ता साच भासामागधी।' अर्थ इसका यह है कि मंगध मे उत्पन्न होने कारण भगवान् वुद्ध को मागध कह सकते है, इसलिये उनकी भाषा को मागधी कहा जा सकता है। किन्तु इस विचार का खण्डन यह कह कर किया गया है कि भाषा का नाम देश-परक होता है, व्यक्ति विशेष परक नहीं। क्योकि ऐसा कहना अस्वाभाविक और उस प्रत्यक्ष सिद्धान्त का वाधक है, जिसके आधार से अन्य देशभाषाओ का नामकरण हुआ १। यह बहुत वडा विवाद है, अवतक छानबीन हो रही है, इसलिये मैं स्वयं इस विषय मे कुछ निश्चितरूप से कहने मे असमर्थ हूं। बंगाल के प्रसिद्ध विद्वान् डाक्टर सुनीति कुमार चटर्जी की सम्मति आपलोगोके अवलोकन के लिये यहा उद्धृत करता हू-वे लिखते है—

"महाराज अशोक के समय मे एक नई साहित्यिक भाषा भारत से सिहल मे फैली, यह पालि भाषा है। पहले पण्डित लोग सोचते थे कि पालि की जड पूर्व मे—मगध मे थी, क्योकि इसका एक और नाम मागधी है। अब पालि के सम्वन्ध में पण्डितो की राय बदल रही है। अब विचार है कि पालि पूर्व की नहीं, वल्कि पछाह की—अर्थात् मध्य देश की ही बोली थी। वह शौरसेनी प्राकृत का प्राचीनरूप थी। वुद्धदेव के उपदेश पूर्व की बोली प्राच्य प्राकृत मे हुये, जो कोशल काशी और मगध मे प्रच-लित थी। फिर वे इस प्राच्य प्राकृत से और प्राकृतो मे अनुदित हुये। मथुरा और उज्जैन की भाषा मे जो अनुवाद हुआ, उसका नाम दिया गया 'पालि'। सिंहल मे जब इस अनुवाद का प्रचार हुआ तब वहा के लोग भूल

१ देखिये पालि प्रकाश पृष्ट १३

स इसे मागधी के नाम से पुकारने लगे, क्योकि पालि बुद्ध वचन था, और भगवान बुद्ध ने मगध मे अपने जीवन का बहुत अंश बिताया। इस कारण बुद्ध वचन या पालि से मगध का सम्बन्ध सोचकर उसका नाम मागधी रखा। सिहल से ब्रह्मदेश, तथा श्याम और कम्बोज मे यह पालि भाषा फैली। इस प्रकार दो हजार वर्ष से पहले मध्यदेश की भाषा, वहिर्भारत के बौद्धो की धार्मिक भाषा बनी" २

डाक्टर सुनीति कुमार चटर्जी 'ओरिजन एण्ड डिवलेपमेंट आफ् दी बगाली लागवेज, नामक प्रसिद्ध और विशाल ग्रन्थ के रचयिता और आर्य-भाषा शास्त्र के पण्डित है, उनको डी० लिट् की उपाधि भी प्राप्त हो चुकी है, इसलिये उन्हों ने जो कुछ लिखा है, उसकी प्रामाणिकता अधिकतर ग्राह्य एवं निर्विवाद है। परन्तु उनके लेख के कुछ अंश ऐसे है, जो तर्करहित नहीं। वे कहते है—"बुद्धदेव के उपदेश पूर्व की बोली (प्राच्य प्राकृत) मे हुये, जो कोशल काशी और मगध मे प्रचलित थी" इसके बाद वे यह लिखते है "फिर वे (उपदेश) इस प्राच्य प्राकृत से और प्राकृतों मे अनुदित हुये, मथुरा और उज्जैन की भाषा मे जो अनुवाद हुआ उसका नाम दिया गया पालि" उनके कथन के इन अंगों को पढकर यह प्रश्न होता है कि जिस प्राच्य प्राकृत में बुद्धदेव ने उपदेश दिये, उसका क्या नाम था ? उसका नाम 'पालि, तो हो नहीं सकता, क्योंकि 'पालि, तो प्राच्य प्राकृत के उस अनुवाद का नाम है, जो मथुरा और उज्जैन मे बोली जानेवाली भाषा (प्राकृत) में हुआ। क्या उसका नाम मागधी था ! निसन्देह उसका नाम मागधी होगा, और उस समय यह भाषा कोशल और काशी मे भी बोली जाती होगी। यह बात निश्चित है कि बुद्धदेव ने अपने उपदेश देशभाषा मे ही दिये, उनका उपदेश मगध, कोशल और काशी मे ही अधिकतर हुआ है, इसलिये उनकी भाषा का नाम मागधी होना ही निश्चित है। बौद्ध लोग इसीलिये कहते हैं—

'मागधिकाय सभाव निरुत्तिया, अथवा 'सा मागधी मूलभासा, इत्यादि।

ऐसी अवस्था में बौद्धमागधी को ही पहली प्राकृत मानना पड़ेगा, और

२ देखो विशालभारत भाग ७ अंक ६ का पृष्ठ ८४०

पाली को स्थानच्युत होना पडेगा। आज दिन भी मागधी और उसके थोडे परिवर्तित रूप अर्धमागधी को प्राच्य प्राकृत ही माना जाता है, स्थान भी उनका अबतक वही है जिनका उल्लेख ऊपर हुआ है। अशोककाल के शिलालेख भी अधिकतर इन्ही भाषाओ मे पाये जाते है, इसलिये एक प्रकार से यह वात निर्विवाद रूप से स्वीकृत होती है कि बुद्धदेव ने जिस भाषा मे उपदेश दिये, वह मागधी ही थी। रहा पाली का स्थान च्युत होना मेरा विचार यह है कि 'पाली' शब्द के नामकरण पर विचार करने से इस जटिल विषय पर वहुत कुछ प्रकाश पड जाता है। पालि प्रकाशकार प्रवेशिका के पृष्ट ३ मे लिखते है—

"उल्लिखित उदाहरण समूहद्वारा यह स्पष्टतया ज्ञात होता है कि पालि शब्द से पहले बौद्धधर्मशास्त्र की पक्ति अथवा मूलशास्त्र त्रिपिटक, समझा जाता। इसके वाद कालक्रम से धीरे धीरे त्रिपिटक के साथ सम्वद्ध अर्थ-कथा, और साक्षात् अथवा परम्परा सम्बन्ध से उससे सम्बद्ध कोई ग्रन्थही पालि शब्द से अभिहित होने का सुयोग पा सका। जैसे मूल संहिता और उससे सम्वन्धित ब्राह्मण ग्रन्थ दोनो ही वेद माने जाते है, और जैसे प्राचीन मनु इत्यादिक धर्मशास्त्र और उससे सम्वद्ध आधुनिक ग्रन्थकार का ग्रन्थ, दोनो ही स्मृति कहकर गृहीत होते है, उसी प्रकार बौद्धसाहित्य मे पहले त्रिपिटक, उसके उपरात अर्थ-कथा और तदनन्तर उससे सम्वद्ध अपर ग्रन्थ-समूह 'पालि' नाम से प्रसिद्ध हुये किन्तु जिन ग्रन्थों के साथ 'पालि' (त्रिपिटक आदिक) का कोई सम्बन्ध नहीं था, उस समय वे पालि नाम से अभिहित नहीं हुये। केवल ग्रन्थ कहलाकर ही वे परिचित होते थे। मूल-शास्त्र को पालि कहते थे, इसीलिये उसकी भाषा का नाम भी पालिभाषा अथवा कालक्रम से संक्षेप में केवल "पालि" हुआ। इन सव बातों पर विचार करने से यह वात स्पष्ट हो जाती है कि पालि भाषा का आदिम अर्थ 'पालि' की अर्थात् बौद्धधर्म के मूल शास्त्र की भाषा है।"

ज्ञात होता है कि इन्हीं बातों पर दृष्टि रखकर किसी पाश्चात्य विद्वान् ने पालि को कृत्रिम अथवा साहित्यिक भाषा लिखा है, परन्तु पालि प्रकाशकार

उनके इस विचार का खण्डन करते है वे प्रवेशिकाके पृष्ट ९८ मे लिखते है—

"किसी पाश्चात्य विद्वान् ने पालि को विल्कुल कृत्रिम भापा बतलाया है, किन्तु यह सर्वथा असंगत है, यह कहना ही बाहुल्य है"

वे ऐसा कहते तो है, परन्तु उन्हों ने जो पहले स्वय लिखा है, वही उनके इस उत्तर कथन का विरोधी है । डाक्टर चटर्जी महोदय ने जो कथन किया है, उसे आप पहले पढ चुके है, वे कहते है, 'पाली' मथुरा-प्रान्त की भापा है, जो शौरसेनी का पूर्वरूप है, और जिसे भूल से सिहल-वालों ने मागधी कहा । लेख इच्छा के विरुद्ध बहुत विस्तृत हो गया, किन्तु मतभिन्नता का निराकरण न हो सका । तथापि यह स्वीकार करना पडेगा, कि आदि अथवा पहली प्राकृत वह है, जिसके उपरान्त देशपरक नामवाली प्राकृतों की रचना हुई । इस पहली प्राकृत को पाली कहिये चाहे बौद्धमागधी अथवा आर्प प्राकृत ।

देशपरक नाम की दृष्टि से मागधी को दूसरी ही प्राकृत मानना पडेगा, चाहे वह बौद्धमागधी न होकर प्राकृतमागधी ही क्यों न हो । ऐसी दशा मे बौद्ध मागधी को प्राकृत मागधी का पूर्वरूप मानना पडेगा । जैसा मै पहले दिखला आया हू, उससे यह वात स्पष्ट हो गई है, कि बौद्धमागधी ही बाद को पाली कहलाई । पाली नाम की कल्पना बौद्धोद्वारा ही हुई है, वे ही इस नाम के उद्भावक है, और बौद्धशास्त्र की पंक्ति उसका आधार है । यह जान लेनेपर यह वात समझ मे आ जाती है कि क्यो पाली का पर्यायवाची नाम मागधी है । यह मै स्वीकार करूंगा कि डाक्टर चैटर्जी महोदय का कथन इस उक्ति का विरोधी है, और जैसा उन्हों ने बतलाया है उससे पाया जाता है, कि वर्त्तमानकाल के विद्वानो का मत ही उनका मत है । तथापि सब बातो पर दृष्टि रख कर यह स्वीकार करना ही पडेगा, कि इन दोनो नामों का जो अभिन्न सम्बन्ध है, उसके पक्ष मे ही प्रवल प्रमाण है । और यह मान लेनेसे ही सब विचारों का समन्वय हो जाता है, कि बौद्ध-मागधी अथवा पाली पहली प्राकृत है, और प्राकृतमागधी दूसरी प्राकृत ।

अर्द्धमागधी भी दूसरी प्राकृत है । जो भाषा मगध प्रान्त मे बोली जाती

थी वह मागधी कहलाई, किन्तु काशी और कोशल प्रदेश की भाषा अर्द्ध-मागधी कही गई है। अर्द्धमागधी शब्द ही बतलाता है, कि इस भाषा की शब्द सम्पत्ति इत्यादि का अर्द्धांश मागधी है। यहाँ प्रश्न यह होगा कि दूसरा अर्द्धांश क्या है? इसका उत्तर क्रमदीश्वर यह देते है, 'महाराष्ट्री मिश्रार्द्ध मागधी, अर्थात् जिस मागधी मे महाराष्ट्री शब्दो का मिश्रण हो गया है, वह अर्द्धमागधी है। किन्तु मारकण्डेय यह कहते है—

"शौरसेन्याविदूरत्वादियमेवार्धमागधी" अर्थात् शौरसेनी के सन्निकट होने के कारण इसका नाम अर्द्धमागधी है। प्रयोजन यह कि जिस मागधी पर शौरसेनी का प्रभाव पड गया है, वह अर्द्धमागधी है। इन दोनो सिद्धान्तो मे प्रथम सिद्धान्त के पोषक अधिक लोग है, और वे कहते है कि अर्द्धमागधी पर अधिक प्रभाव महाराष्ट्री का ही है। मागधी भाषा मे यदि बौद्धों के धर्मग्रन्थ है, तो अर्द्धमागधी में जैनों के। वह यदि बुद्धदेव के प्रभाव से प्रभावित है, तो यह महावीर स्वामी के गौरव से गौरवित। कहा जाता है कि अशोक के समय मे यदि मागधी राजभाषा होने कारण विशेष सम्मानित थी, तो अर्द्धमागधी का समादर भी कम न था, पूर्ण सम्मान का अर्द्धांश उसको भी प्राप्त था। अशोक के स्तम्भों पर पाली अथवा मागधी को यदि स्थान दान किया गया है, तो अर्द्धमागधी भी इस सम्मानसे वंचित नहीं हुई, अनेक शिलालेख अर्द्धमागधी मे लिखे पाये गये है।

महाराष्ट्री भी देशपरक नाम है, और यह भी दूसरी प्राकृत है। परन्तु स्वर्गीय पण्डित बदरीनारायण चौधरी ने अपने व्याख्यान मे लिखा है "महाराष्ट्री शब्द से प्रयोजन दक्षिण देश से नहीं किन्तु भारतरूपी महाराष्ट्र से है" 'प्राकृत प्रकाशकार' वररुचि भी इसी विचार के है। किसी समय यह प्राकृत देशव्यापिनी थी, कहा जाता है महाराष्ट्र शब्द से ही, महाराष्ट्री का नामकरण हुआ है। कुछ लोगों ने सर्व प्राकृतो मे इसी को प्रधान माना है, क्योकि प्राकृत भाषा के व्याकरण रचयिताओ ने उसी के विषयमे विशेष रूप से लिखा है। प्राय व्याकरणो मे देखा जाता है कि अन्य प्राकृतों के कुछ विशिष्ट नियमो को लिखकर शेष के विषय में लिख दिया

गया है, कि महाराष्ट्री के समान उनका आदेशादि होगा। इसका साहित्य भी विस्तृत है।

शौरसेनी के विषय मे श्रीयुत डाक्टर सुनीतिकुमार चटर्जी महोदय यह लिखते है--

"सारे उत्तर भारत मे जिस समय प्राकृत या प्रादेशिक बोलियाँ प्रचलित हुईं, तब प्रान्तीय प्राकृतो मे अन्तर्वेद—विशेषतया ब्रह्मर्षि देश या कुरु पचाल की प्राकृत शौरसेनी सर्वश्रेष्ठ मानी जाती थी। संस्कृत नाटको मे श्रेष्ठ सद्वंशज पात्र बात करने में इस शौरसेनी ही का प्रयोग करते थे। इससे यह साबित होता हे कि प्राकृतयुग मे शौरसेनी का स्थान क्या था। गाने में महाराष्ट्रीय प्राकृत का प्रयोग था, यह ठीक है, परन्तु इसका कारण इतना ही मालूम होता हे कि महाराष्ट्रीय प्राकृत मे स्वर बहुत होने से वह शौरसेनी से श्रुतिमधुर मानी जाती थी, और गाने मे शायद इसीलिये लोग इसे अधिक पसन्द करते थे।"

"ईस्वी सदी के प्रारम्भ से संस्कृत के बाद उत्तरमे शौरसेनी भद्र समाज में बोली जाती थी, इसका प्रभाव दूसरी प्राकृत बोलियो पर भी पडा। भाषातत्व के विचार से ग्रियर्सन आदि पण्डितो ने, राजस्थान, गुजरात, पंजाब और अवध की प्राकृत बोलियों पर शौरसेनी का विशेष प्रभाव स्वीकार किया है। राजस्थानी, गुजराती, पजाबी और अवधी के विकास मे शौरसेनी ने बहुत काम किया हे"

शौरसेनी की गणना भी दूसरी प्राकृत मे ही है, यह कहना बाहुल्यमात्र है। 'प्राकृत लक्षण' कार 'चण्ड' ने चार प्राकृत मानी है 'प्राकृत, 'अपभ्रंश, 'पैशाचिकी, और मागधी। प्राकृत लक्षण के टीकाकार षड्भाषा मानते है, वे उपर्युक्त चार नामो के साथ संस्कृत और शौरसेनी का नाम और बढाते है। वररुचि महाराष्ट्री, पैशाची, मागधी और शौरसेनी, चार और हेमचन्द्र 'मूलप्राकृत, शौरसेनी, मागधी पैशाची, चूलिका और अपभ्रंश छ प्राकृत बतलाते है। अध्यापक लासेन यह कहते है—

"वररुचि वर्णित महाराष्ट्री, शौरसेनी, मागधी और पैशाची, इन चार प्रकार के प्राकृतो मे शौरसेनी और मागधी ही वास्तव मे स्थानीय भाषाये है। इन दोनो मे शौरसेनी एक समय मे पश्चिमाञ्चल के विस्तृत प्रदेश की बोलचाल की भाषा थी। मागधी अशोक की शिलालिपि मे व्यवहृत हुई है, और पूर्व भारत मे यही भाषा किसी समय मे प्रचलित थी। महाराष्ट्री नाम होने पर भी यह महाराष्ट्र प्रदेश की भाषा नही कही जा सकती। पैशाची नाम भी कल्पित मालूम होता है" विश्वकोष पृ० ४३८।

ऊपर के वर्णन मे जहा प्राकृतो मे केवल 'प्राकृत, और 'मूल प्राकृत' लिखा गया है, मेरा विचार है वहा उनका प्रयोग आर्ष-प्राकृत अथवा पाली के अर्थ मे किया गया है। जिनके विषय मे पहले बहुत कुछ लिखा जा चुका है। अपभ्रंश तीसरी प्राकृत है, उसका वर्णन आगे होगा। शेष रही चूलिका पैशाची उसका वर्णन थोडे मे किया जाता है।

'संस्कृत साहित्य मे पिशाच शब्द का प्रयोग अधिकतर दानवों के अर्थ मे हुआ है, क्योंकि वे मासाशी थे, परन्तु वास्तव मे भारत के पश्चिमोत्तर मे रहनेवाली एक विशेष जाति पिशाच कहलाती है। संस्कृत अथवा प्राकृत के वेयाकरणों ने पैशाची को प्राकृत का एक रूप बतलाया है, हेमचन्द्र ने उसका वर्णन विशेषतया किया है, उन्होंने कहा है यह मध्य प्रान्त की भाषा थी, और उसका साहित्य भी है। मारकण्डेय ने बृहत्कथा से शब्द उद्धृत करके यह कहा कि वह केकय प्रान्त की भाषा है, जो भारत के पश्चिमोत्तर मे स्थित है। परन्तु इससे यह स्पष्ट नहीं होता कि पैशाची वास्तव में उस प्रदेश मे बसनेवाली पिशाचो की भाषा थी या क्या? हेमचन्द्र की पैशाची बिल्कुल भारतीय भाषा है, उत्तर पश्चिम की वर्त्तमान पिशाचभाषा इस प्राकृत से भिन्न है। यह संभव हो सकता है कि पिशाच जब मध्यएशिया से आये तो अभारतीय (अर्थात् ईरानियन इत्यादि) विशेषताओं को भूल गये और उन विशेषताओं को सुरक्षित रखा जिससे पैशाची प्राकृत मानी जा सके।

वर्तमान पिशाच भाषाये शुद्ध भारतीय नहीं है, उनमे उच्चारण के बहुत

से नियम ऐसे है, जो कि इण्डोएरियन भापाओ से उनको अलग करते है। जैसे वर्त्तमान पिशाची मे 'र' का उच्चारण। यद्यपि अन्य विपयों मे वे साधारणत इण्डोएरियन भापाओ के समान है, तथापि कभी कभी उनमे ईरानियन विशेषतायें भी झलक जाती है। इनमें से कुछ ईरानी विशेपतायें ऐसी है, कि जिनको देखकर 'कोनो' ने यह विचार प्रगट किया कि पैशाची मे वशगली भाषा ईरानी भापा की वर्त्तमानकालिक प्रतिनिधि है। इस बात का विचार करते हुए कि कुल पिशाची भापाओ मे कुछ ईरानियन विशेपताओ का अभाव है, मेरी राय यह है कि पिशाच भाषायें न तो शुद्ध भारतीय है और न शुद्ध ईरानियन। शायद उन्हो ने इण्डोएरियन भाषाओ की उत्पत्ति के वाद आर्यभापा को जो उसके मा बाप है छोड दिया। परन्तु ज्ञात होता है कि अवेस्ता के ईरानियन विशेपताओ के विकास होने के पहले ही ऐसा हुआ। आर जी भाण्डारकर की राय यद्यपि अन्य शब्दों मे प्रकट की गई है, परन्तु उसमे भी यही भाव प्रकट होता है। वे कहते है "यह पैशाची प्राकृत शायद आर्य-जाति की उस शाखा की भाषा है जो कि अपनी जातिवालो के साथ वहुत दिन तक रही, परन्तु भारत मे पीछे आई, और किनारे पर बस गई। या यह भी हो सकता है कि वह अपनी जाति वालो के साथ ही भारत मे आई, परन्तु किनारे के पहाडी प्रदेशो मे स्वतंत्रतापूर्व्वक बस जाने के कारण अपनी भाषा सम्बन्धी उच्चारण विशेषताओ का ऐसा विकास किया कि जिससे मैदान की सभ्य भाषा से घनिष्टता प्राप्त कर सकी। इसी कारण उनकी भाषाओ के उच्चारण मे वे परिवर्तन नहीं हुये, जो कि संस्कृत से उत्पन्न होनेवाली प्राकृतों मे हो सके' अन्त मे मै यह सोचता हू कि वर्तमान पिशाच भाषा कुछ विषयो में तलचह भापासे मिलती जुलती है, जिससे यह अनुमान होता है कि इसके बोलनेवाले अपने वर्तमान स्थान पर भारत के मैदान से नहीं वरन् सीधे पामीर से आये। और दूसरे लोग जो कि शुद्ध इण्डोएरियन के बोलनेवाले थे भारत के मैदान मे पश्चिम से पहुंचे। यदि वास्तविक घटना ऐसी ही है, तो यह स्वीकार करना पड़ेगा कि आर्य्यों के मुख्य दलों से इनका दल अलग था।*

* Bulletin of the School of Oriental Studies, London, Institute

तीसरी प्राकृत अपभ्रंश है। संसार परिवर्तनशील है, जैसे यथाकाल उसके समस्त पदार्थों मे परिवर्तन होता है, वैसे ही भाषा मे। मागधी, अर्द्धमागधी, महाराष्ट्री और शौरसेनी मे जब अधिक परिवर्तन हुये, और एक प्रकार से उनका व्यवहार सर्व साधारण के लिये असंभव हो गया, तब अपभ्रंश भाषा सामने आई। यह कोई अन्य भाषा नहीं थी, पूर्व कथित भाषाये ही बदल कर अपभ्रंश बन गई। इस समय भारतवर्ष के उत्तरीय प्रदेश और महाराष्ट्र प्रान्त मे जितनी आर्य भाषा सम्बन्धिनी-भाषाये बोली जाती है, उनमे से अधिकाश भाषाओं का आधार अपभ्रंश ही है। अपभ्रंश ही रूप बदल कर अब देशभाषा के रूप मे विराजमान है। प्राय यह कहा जाता है कि जब कोई भाषा साहित्यिक हो जाती है, अर्थात् जब उसमे साहित्यिक विशेषताये आ जाती है, तो वह बोलचाल की भाषा नही रह जाती। यह कारण निर्देश युक्तिसंगत नहीं मालूम होता। किसी भाषा का साहित्य मे गृहीत हो जाना, उसके बोलचाल से वहिष्कृत होने का हेतु नही है। यह प्राकृतिक नियम है कि चिरकाल तक किसी भाषा का एक रूप ही नहीं रहता, विशेष कारणो से उसमे यथा समय ऐसा परिवर्तन हो जाता है, कि वह लगभग उससे इतनी दूर पड जाती है, कि उसका उससे कोई सम्बन्ध ही नहीं ज्ञात होता। भाषामर्मज्ञ लोग भले ही सूक्ष्म-दृष्टि से उनके पारस्परिक सम्बन्ध को देखते रहे, परन्तु यह सम्बन्ध सर्व साधारण का बोधगम्य नहीं रह जाता। इसीलिये बोलचाल की भाषा स्वय उससे अलग हो जाती है, और पूर्ववर्ती भाषा का रूप साहित्य मे रह जाता है। ऐसा सहस्रों वर्ष के उपरान्त ही होता है, परन्तु होता है अवश्य। अपभ्रंश भाषा ऐसे ही परिवर्तनों का फल था। यह बात स्पष्ट है कि जो भाषा बोलचाल की होती है, जनता की शिक्षा की दृष्टि से बाद को उसमे ही ग्रन्थ-रचना होने लगती है, और धीरे धीरे बोलचाल की भाषा ही साहित्य का रूप ग्रहण कर लेती है। अपभ्रंश भाषा भी ज्यो ज्यों पुष्ट होती गई, त्यों त्यों उसको साहित्यिक रूप मिलने लगा। इस भाषा मे बहुत अधिक साहित्य है।

कोषकारों ने अपभ्रंश का अर्थ कुत्सित अथवा अपभाषा किया है—

एक स्थान से भ्रंश होकर जिसका पतन होता है, वही अपभ्रंश कहलाता है (दे० प्रकृतिवाद पृ० ४२) आर्ष शब्दों के बिगडने से ही, प्राकृत-भाषा, और अपभ्रंश की उत्पत्ति हुई है इसीलिये उनका उल्लेख संस्कृत-ग्रन्थो मे इसी रूप मे किया गया है। गरुड पुराण मे तो यहा तक लिख दिया गया है—

(पूर्व खण्ड ९८, १७)—

लोकायतम् कुतर्कश्च प्राकृतं म्लेच्छभाषितम् ।
न श्रोतव्यं द्विजेनैतदधोनयति तद् द्विजम् ॥

एक स्थान पर अपभ्रंश के लिये यह लिखा गया है—

आभीरादि गिरः काव्ये अपभ्रंशगिरः स्मृताः ।

परन्तु स्वाभाविक नियम का प्रत्याख्यान नहीं हो सकता। अपभ्रंश का बहुत अधिक प्रचार हुआ, और उसमे रचनाये भी हुईं। कुछ काल तक उसकी ओर पठित समाज की अच्छी दृष्टि नहीं रही, परन्तु ज्यो ज्यो उसका प्रसार होता गया, त्यों त्यों दृष्टिकोण भी बदलता गया, और उसको साहित्य मे स्थान मिलने लगा। कुछ विद्वानों का विचार है कि दूसरी शताब्दी मे उसकी रचना आरम्भ हो गई थी, और उस काल की कुछ प्राकृत रचनाओं मे वह मिलती है, परन्तु अधिक लोग इस सम्मति को नहीं मानते। इन लोगों का कथन है कि अपभ्रंश की साहित्यिक रचनाये छठी शताब्दी से ही प्रारम्भ होती है। श्रीमान् पण्डित महावीर प्रसाद द्विवेदी डाक्टर ग्रियर्सन के लेखों के आधार पर बनी अपनी 'हिन्दी भाषा की उत्पत्ति' नामक पुस्तक मे यह लिखते है—

"छठे शतक मे अपभ्रंश भाषा मे कविता होती थी। ग्यारहवे शतक के आरम्भ तक इस तरह की कविताके प्रमाण मिलते है। इस पिछले अर्थात् ग्यारहवे शतक मे अपभ्रंश भाषाओ का प्रचार प्राय बन्द हो चुका था।"

"सम्वत् ९९० मे देवसेन नामक एक जैन ग्रन्थकार हो गये है, दोहों मे उनके बने दो ग्रन्थ पाये जाते है, एक का नाम है 'श्रावकाचार' और दूसरे का 'दब्बसहावपयास' इन दोनों ग्रन्थो की भाषा अपभ्रंश कही जा

सकती है। अपभ्रंश की अधिकाश रचना दोहों मे ही मिलती है।

बौद्धमत के महायान सम्प्रदाय की एक 'सहजिया' नामक शाखा है, यह शाखा विक्रमी चौदहवे शतक मे मौजूद थी, उनकी कुछ पुरानी पोथियो का सग्रह महा० म० श्रीहर प्रसाद शास्त्री ने "बौद्धगानओ दोहा" नाम से निकाला है, उसमे कन्ह और सरह के दोहे अपभ्रश भाषा मे लिखे गये प्रतीत होते हैं।

हेमचन्द्र प्राकृत भाषा के बहुत बडे वैयाकरण हो गये है, वे विक्रमी बारहवे शतक मे मौजूद थे, उन्हो ने 'सिद्धहेमचन्द्र शब्दानुशासन, नामक प्राकृत भाषा का एक बडा व्याकरण बनाया है, उसमे अपभ्रंश भाषा के अनेक दोहे उदाहरण मे लिखे गये है, उन दोहो मे से कुछ उनके पहले के भी है।

विक्रमी तेरहवे शतक मे (१२४१) सोमप्रभसूरि नामक एक जैन विद्वान् ने 'कुमार प्रतिबोध' नामक एक ग्रन्थ लिखा है, उसमे भी अपभ्रंश भाषा के दोहे मिलते है, जिनमे से कुछ उनके बनाये है और कुछ प्राचीन है।

विक्रमी चौदहवे शतक (१३६१) मे जैनाचार्य मेरुतुंग ने 'प्रवन्ध-चिन्तामणि' नामक एक संस्कृत ग्रन्थ बनाया, इसमे भी बीच बीच मे अपभ्रंश भाषा के दोहे मिलते है। स्थान स्थान पर मालवराज मुंजके रचे अपभ्रंश दोहे भी इसमे देखे जाते है।

नलसिह भट्ट भी चौदहवे शतक मे हुआ है, इसका बनाया 'विजयपाल रासो' अपभ्रंश मे लिखा गया है। पन्द्रहवे शतक मे मैथिल कोकिल विद्यापति ने भी दो ग्रन्थ अपभ्रंश भाषा मे लिखे, 'कीर्तिलता, एवं 'कीर्तिपताका' परन्तु इनकी रचनाओं में उनके समय मे प्रचलित देशभाषा का ढंग भी पाया जाता है, उसमे प्राय. संस्कृत के तत्सम शब्द भी मिल जाते है, जो प्राकृत परम्परा के विरुद्ध है।,, *

इन अवतरणों से पाया जाता है कि ग्यारहवे शतक मे ही अपभ्रंश का

* देखो हिन्दी साहित्य का इतिहास पृष्ट ७ ता० १७

व्यवहार बन्द नही हो गया था, वरन चौदहवे शतक तक चलता रहा, और पन्द्रहवे शतक मे भी उसमे पुस्तके लिखी गई, चाहे उनकी संख्या कितनी ही अल्प क्यो न हो। यह मै पहले लिख आया हू कि इस समय जितनी भाषाये भारतवर्ष मे आर्य परिवार की बोली जाती है, वे प्राय अपभ्रंश से ही विकसित हुई है, अब मैं उनका उल्लेख पृथक् पृथक् डा० जी० ए० ग्रियर्सन की सम्मति के अनुसार करता हू। इधर जो आविष्कार हुए है, अथवा जो छानवीन की गई है, बाद को उनका उल्लेख भी करूंगा।

सिन्ध नदीके आस पास जो प्रदेश है, उसमे ब्राचडा नाम की अपभ्रंश भाषा प्रचलित थी, आधुनिक सिन्धी एवं लहँडा की उत्पत्ति उसी से हुई। कोहिस्तानी और काश्मीरी भाषा जिस अपभ्रंश से निकली, यह पता नहीं, परन्तु ब्राचडा अपभ्रंश से वह अवश्य प्रभाविन होगी।

दाक्षिणात्य प्रदेश मे बोली जानेवाली भाषाओं का सम्वन्ध वैदर्भी और महाराष्ट्री अपभ्रंश से बतलाया जाता है, इसी प्रकार उत्कली अपभ्रंश उडिया भाषा की जननी कही जाती है।

मागधी अपभ्रंश मगही आदि वर्त्तमान विहारी भाषाओ का आधार है, यही मागधी बंगाल मे पहुच कर प्राच्या अथवा गौडी कहलाई, और उसी के अपभ्रंश से बंगला भाषा और आसामी की उत्पत्ति हुई। मागध अपभ्रंश का बडा विस्तृत रूप देखा जाता है, उत्कल अपभ्रंश भी उसी के प्रभाव से प्रभावित है, और पूर्व मे ढक्की भाषा पर भी उसका अधिकार दृष्टिगत होता है। वह उत्तर दक्षिण और पूर्वमे ही नहीं बढी, उसने पश्चिम में भी अपना विकास दिखलाया और अर्द्धमागधी कहलाई। कि जिसके अपभ्रंश ने अवधी, वघेलखण्डी, और छत्तीसगढी को सृजन किया।

पश्चिमी भारत की वर्त्तमान भाषाओं का सम्वन्ध नागर अपभ्रंश से है, उसका एक रूप शौरसेनी है और दूसरा आवन्ती। शौरसेनी का विस्तार पश्चिमी हिन्दी और पंजाबी में देखा जाता है। और आवन्ती का प्रभाव राजस्थानी और गुजराती मे। कहा जाता है पंजाब से लेकर नैपाल तक के पहाडी प्रदेशों मे जो भाषा इस समय बोली जाती है, उसका सम्वन्ध भी

उज्जैन प्रान्त की आवन्ती भाषा के अपभ्रंश से ही है, क्योंकि राजस्थानो भाषाओं का जनक वही है, और राजस्थानी भाषाओं का ही अन्यतम रूप इन पहाडी भाषाओं मे पाया जाता है।

श्रीयुत् डाक्टर सुनीतिकुमार चटर्जी महोदय इस अपभ्रंश भाषा के विषय मे क्या कहते है, उसे भी सुनिये—*

"ईस्वी प्रथम सहस्र वर्षों के बीच मे प्राचीन भारतवर्ष मे एक नवीन राष्ट्र या साहित्यिक भाषा का उद्भव हुआ। यह अपभ्रंश भाषा थी, जो शौरसेनी प्राकृत का एक रूप थी। अपभ्रंश भाषा—अर्थात् यह शौरसेनी अपभ्रंश पजाब से बगाल तक और नैपाल से महाराष्ट्र तक साधारण शिष्टभाषा और साहित्यिक भाषा बनी। लगभग ईस्वी सन् ८०० से १३ या १४ सौ तक शौरसेनी अपभ्रंश का प्रचारकाल था। गुजरात और राजपुताने के जैनों के द्वारा इस मे एक बडा साहित्य बना। बंगाल के प्राचीन बौद्ध सिद्धाचार्यगण इसमे पद रचते थे, जो अन्तमें भोट (तिब्बती) भाषामे उल्था किये गये। इसके अतिरिक्त भारत मे इस अपभ्रंश मे एक विराट लोक-साहित्य बना। जिसके टूटे फूटे पद और गीत आदि हेमचन्द्र के प्राकृत व्याकरण और प्राकृत पिंगल और छन्दोग्रन्थ मे पाये जाते है। शौरसेनी अपभ्रंश के प्रतिष्ठा के कई कारण थे। ईस्वी प्रथम सहस्रक की अन्तिम सदियो के राजपूत राजाओं की सभा मे यह भाषा बोली जाती थी, क्योंकि यह भाषा उसी समय मध्यदेश और उसके संलग्न प्रान्तों मे—आधुनिक पछाह मे—सधारणत घरेलू भाषास्वरूप मे इस्तेमाल होती थी। द्वितीय कारण यह है कि इस समय गोरखपंथी आदि अनेक हिन्दू समुदाय के गुरु लोग जो पंजाब और हिन्दुस्तान से नवजाग्रत् हिन्दूधर्म की वाणी लेकर भारत के अन्य प्रदेश मे गये, वे भी इसी भाषा को बोलते थे, इसमे पद आदि बनाते थे, और इसी मे उपदेश देते थे। उसी समय उत्तर भारत के कन्नौजिया आदि ब्राह्मण बंगाल आदि प्रदेश मे ब्राह्मण आचार और संस्कृति ले उपनिविष्ट हुये। इन सब कारणों से आज से लगभग एक हजार साल

---

* देखिये—विशाल भारत भाग ७ अंक ६ का पृष्ठ ८४१

आगे, जिसे हम हिन्दी का पूर्वरूप कह सकते है, वही शौरसेनी अपभ्रंश, ठीक उसी प्रकार जैसे आजकल हिन्दी राष्ट्रभाषा बनी है, एक राष्ट्रीय, साहित्यिक तथा धार्मिक भाषा हुई थी"

अब तक जो कुछ लिखा गया, उससे यह बात प्रकट हुई कि किस प्रकार प्राचीन संस्कृत अथवा वैदिक भाषा से प्राकृत भाषाओं की उत्पत्ति हुई, और फिर कैसे प्राकृत भाषाओ से अपभ्रंश भाषाओं का उद्भव हुआ। यह भी बतलाया जा चुका है, कि अपभ्रंश भाषाओ का परिवर्तित रूप ही वर्त्तमानकालिक बोलचाल की भाषाये है, जो आजकल भारतवर्षके अधिकाश भाग मे बोली जाती है। हमारी हिन्दी भाषा उन्हीं भाषाओं मे से बोल-चाल की एक भाषा है। अपना पूर्वरूप बदलकर वह वर्त्तमान रूप मे हमारे सामने है। उसका पूर्वरूप क्या था, उसकी कुछ रचनाये देखिये—विदग्ध मुखमण्डनकार ने अपभ्रंश भाषा की निम्नलिखित कविता बतलाई है—

रसि अह केण उच्चाडण किज्जइ।
जुयदह माणसु केण उविज्जइ।
तिसिय लोउ खणि केण सुहिज्जइ।
एह पहो मह भुवणे विज्जइ।

रसिकों का उच्चाटन किस प्रकार किया जा सकता है, युवतियो का मन किस प्रकार उद्विग्न होता है, तृषितलोक क्षणभर मे किस प्रकार सुखी बनाया जा सकता है, हमारा यह प्रश्न भुवन को विदित हो।

रसिअह=रसिकों, केण=क्यो, उच्चाडन=उच्चाटन, किज्जइ=किया जाय, जुयदह=युवति, माणस=मानस, उविज्जइ=ऊबना, तिसिय=तृषित्, लोउ=लोक, खणि=क्षण, सुहिज्जइ=सुखित, एह=यह पहो=प्रश्न, मह=मम, भुवणे=भुवने, विज्जइ=विदित।

वैयाकरण हेमचन्द्र ने अपभ्रंश भाषा का यह उदाहरण दिया है—

बाह बिछोड़वि जाहि तुहुँ हउँ तेवइँ को दोसु।
हिय पट्ठिय जद नीसरहिं जाणउँ मुंज सरोसु॥

बिछोडवि=छुडाना, जाहि=जाते हो, तुहँ=तू, हऊँ=हौं=हम, तेवइं=तिवई=त्रिया, को=कौन, दोसु=दोष, पट्टिय=पट्टो, जद=यदि, नीसरहि=निकले, जाणउँ=जानूं, सरोसु=सरोष।

ज्ञात होता है हिन्दी भाषा का निम्नलिखित दोहा, इसी पद्य को आधार मानकर रचा गया है, देखिये दोनो मे कितना साम्य है

बाँह छुड़ाये जात हो निबल जानि कै मोहि।
हियरे सों जब जाहुगे सबल बखानौ तोहि।

दोनो दोहो का भाव लगभग एक है, परन्तु शब्द विन्यास मे अन्तर है। पहले दोहे के जितने शब्द है, सभी परिचित से ज्ञात होते है। उसके अनेक शब्द ऐसे है, जो अबतक हिन्दीमे प्रयुक्त होते है, विशेष कर ब्रजभाषा की कविता मे।

एक पद्य और देखिये—

अग्गिएं उण्हउ होइ जगु वाएं सीअलु तेंव।
जो पुणु अग्गिं सीअला तसु उण्हत्तणु केंव।

जग अग्नि से ऊष्ण और वायु से शीतल होता है। जो अग्नि से शीतल होता है, वह फिर ऊष्ण कैसे होगा।

अग्गिएं=अग्नि से, उण्हउ=उष्ण, होइ=होता है, जग=जगत, वाएं=वायु सीअलु=शीतल, तेंव=त्यों, पुणु=पुनि तसु=सो, केंव=क्यो।

अपभ्रंश भाषा की रचनाओं को पढकर उसके शब्दो का मैने जो अर्थ लिख दिया है, उनको देखकर आपलोगों को यह ज्ञात हो जावेगा कि किस प्रकार हिन्दी का विकास अपभ्रंश भाषा से धीरे धीरे हुआ। इस समय हिन्दी भाषा का रूप बहुत विस्तृत है, उसका प्रसार बिहार से पंजाब तक और हिमालय से मध्यप्रदेश तक है। इसलिये यह नहीं कहा जा सकता कि उस पर दूसरी प्राकृतो के अपभ्रंश का कुछ प्रभाव नहीं है, परन्तु यह निश्चित है कि उसकी उत्पत्ति शौरसेनी अपभ्रंश से हुई है। चिरकाल

तक हिन्दी भाषा का परिचय केवल भाषा कहकर ही दिया जाता रहा। हिन्दी भाषा के प्राचीन साहित्य ग्रन्थो मे उसका भाषा नाम ही मिलता है, गोस्वामीजी रामायण मे लिखते है 'भासाभणिति मोरि मत थोरी, अब भी पुराने विचार के लोग और प्राय संस्कृत के पण्डित उसे भाषा ही कहते है। नागरी यद्यपि लिपि है, परन्तु पहले क्या अब भी बहुत से लोग 'हिन्दी' को नागरी कहते है, और नागरी शब्द को हिन्दी का पर्यायवाची शब्द मानते है। परन्तु हिन्दी संसार का पठितसमाज कम से कम पचास वर्ष से उसको 'हिन्दी' ही कहता है, और साधारणतया हिन्दी संसार क्या अन्यत्र भी अब वह इसी नाम से परिचित है। यहा यह प्रश्न हो सकता है कि इस हिन्दी नाम की कल्पना क्या आधुनिक है। वास्तव मे यह कल्पना आधुनिक नही है, चिरकाल से उसका यही नाम है, परन्तु यह सत्य है कि इस नाम के प्रयोग मे भ्रान्ति होती आई है, और अब भी कभी कभी वह अपना प्रभाव दिखलाये बिना नहीं रहती। मुसलमान जब भारतवर्ष मे आये, और उन्हो ने जब दिल्ली एवं आगरे को अपनी राजधानी बनाई तो अनेक कार्य्य सूत्रसे उनको अपने आसपास की देशी भाषा का नाम करण करना पडा। क्योकि फारसी, अरबी, अथवा संस्कृत तो देशभाषा को कह नहीं सकते थे और वास्तव मे वह फारसी, अरबी अथवा संस्कृत थी भी नहीं, इसलिये उन्हो ने देशभाषा का नाम 'हिन्दी' रखा। यह नाम रखने का हेतु यह हुआ कि वे भारतवर्षको 'हिन्द' कहते थे, इसलिये इस देशकी भाषा को उन्हो ने 'हिन्दी' कहना ही उचित समझा। कुछ लोग कहते है कि हिन्दू शब्द से ही हिन्दी शब्द बना, किन्तु यह कहना ठीक नही, क्योंकि हिन्दू शब्द भी हिन्द शब्द से ही बना है। यद्यपि कुछ लोग यह बात नहीं मानते, और अन्य प्रकार से हिन्दू शब्द की व्युत्पत्ति करते है, परन्तु बहुमान्य सिद्धान्त यही है कि 'हिन्द' शब्द से ही हिन्दू शब्द बना है। क्यो यह सिद्धान्त बहुमान्य है, इस विषय मे अपने एक व्याख्यान का कुछ अंश यहा उठाता हू —

'हिन्दी शब्द उच्चारण करते ही, हृदय उत्फुल्ल हो जाता है, और नस नस मे आनन्द की धारा बहने लगती है। यह बडा प्यारा नाम है, कहा जाता है, इस नाम मे घृणा और अपमान का भाव भरा हुआ है, परन्तु जी इसको

स्वीकार नहीं करता। हिन्दू शब्द से हिन्दी का सम्बन्ध नही है, वरन् हिन्द शब्द उसका जनक है—हिन्द शब्द देशपरक है, और भारतवर्ष का पर्य्याय-वाची शब्द है। यदि हिन्दू शब्द से ही उसका सम्बन्ध माना जावे तो भी अप्रियता की कोई बात नहीं। आज दिन हिन्दू शब्दही इक्कीस करोड़ संख्या का सम्मिलन सूत्र है, यह नाम ही ब्राह्मण से लेकर अस्पृश्य जाति के पुरुष तक को एक बन्धन मे बाँधता है। आर्य नाम उतना व्यापक नहीं है, जितना हिन्दूनाम, यह कभी बिष रहा हो, पर अब अमृत है। वह पुण्य सलिला सुरसरी जल विधौत, सप्तपुरी पावन रजकणपूत और पुनीत वेद मंत्रो द्वारा अभिमंत्रित है क्या अब भी उसमे अपावनता मौजूद है। इतना निरा-करण के लिये कहा गया, इस विषय मे मेरा दूसरा सिद्धान्त है। यह सत्य है कि हमारे प्राचीन ग्रन्थो अथवा पुराणो मे हिन्दू शब्द का प्रयोग नही है, यह सत्य है कि मेरुतत्र का "हीनश्च दूषयत्वेव हिन्दुरित्युच्यते प्रिये" और शिव रहस्य का "हिन्दूधर्म प्रलोप्तारोभविष्यन्ति कलौयुगे" आधुनिक श्लोक खण्ड है। किन्तु यह भी सत्य है कि विजेता मुसलमानो ने बलपूर्वक हिन्दुओं से हिन्दूनाम नहीं स्वीकार कराया। यदि बलात् यह नाम स्वीकार कराया गया होता, तो चन्दबरदाई ऐसा स्वधर्माभिमानी अब से सात सौ बरस पहले, अपने निम्न लिखित पद्य मे हिन्दुवान, शब्द का प्रयोग न करता। वह लिखता है—

"हिन्दुवान रान भय भान मुखगहि य तेग चहुँ आन अब"

वास्तव बात यह है कि फारस निवासी चिरकाल से भारत को हिन्द कहते आये है अब से लगभग पाच सहस्र वर्ष की पुरानी पुस्तक जिन्दावस्ता मे इस शब्द का प्रयोग पाया जाता है उसकी १६३वी आयत यह है—

"चूं व्यास हिन्दी बलख आमद
गुस्तास्पज़रतुश्तरा बख्वाँद"

यह हिन्द नाम सिन्धु के सम्बन्ध से पडा है, क्योकि फारसी मे हमारा 'स' 'ह' हो जाता है, जैसे सप्त से हफ्त, असुर से अहुर, सोम से होम बना

वैसे ही सिध से हिध अथवा हिन्द बन गया और इसी हिन्द से ही हिन्दू शब्द की वैसे ही उत्पत्ति है, जैसे इण्डस से इण्डिया और इण्डियन की। जब मुसल्मान जाति विजेता बनकर भारत मे आई, तो वह यहा के निवासियो को इसी प्राचीन नाम से ही पुकारती रही, अतएव उसके संसर्ग और प्रभाव से यह शब्द सर्व साधारण मे गृहीत हो गया। इस सीधी और वास्तविक बात को स्वीकार न करके यह कहना कि हिन्दू माने काफिर के है, अतएव वलात् यह नाम हिन्दुओं से स्वीकार कराया गया, अनुचित और असंगत है"।

डाक्टर जी० ए० ग्रियर्सन क्या कहते है उसे भी सुनिये—

"यूरोपियन लेखको ने 'हिन्दी' शब्द का प्रयोग बडी लापरवाही के साथ किया है। यह फ़ारसी शब्द है, और इसका अर्थ है, भारत का अथवा भारत से सम्वन्ध रखनेवाला। परन्तु लोग इसका सम्वन्ध हिन्दू शब्द से वतलाते है, जो ठीक नहीं। पुराने समय मे भी मध्यभारत की भाषा, भारत मे सब से महत्व की होती थी। यह स्थानीय भाषा ही नही है, वरन् एक प्रकार से 'हिन्दुस्तानी' है— जो कि उत्तरी और पश्चिमी भारत के बोलचाल की भाषा है" * मुसल्मान लोग हमारी देश भाषा को बहुत पहले से हिन्दी कहते आये है, इसका प्रमाण खुसरो की रचनाओं मे मौजूद है। खुसरो ईस्वी तेरहवे शतक मे हुये है—उन्हों ने हिन्दी भाषा मे भी रचना की है। हिन्दुओ को फारसी सिखलाने के लिये उन्हों ने ख़ालिकबारी नाम की एक पुस्तक लिखी है—उसमे वे कहते है—

---

* The term "Hindi" is very laxly employed by European writers It is a Persian word, and properly means "of or belonging to India," as opposed to "Hindu," a person of the Hindu religion As also was the case in ancient times, the language of this tract (i e Madhya-desha) is by far the most important of any of the speeches of India It is not only a local vernacular, but in one of its forms, "Hindustani," it is spoken over the whole of the north and west of continental India as a lingua franca "–Bulletin of the School of Oriental Studies, London Institute pp 50-5 (§ 6)

मुश्क काफ़ूरस्त कस्तूरी कपूर ।
हिन्दवी आनन्द शादी औसरूर ।
सोज़नो रिश्ता ब हिंदी सूई ताग ।

इसका अर्थ हुआ मुश्क को कस्तूरी, काफूर को कपूर, शादी और सरूर को आनन्द, एवं सोजन और रिश्ताको हिन्दी मे सूई तागा कहते है।

अपनी हिन्दी रचना मे एक जगह वे यह कहते है—

फ़ारसी बोली आईना। तुर्की ढूंढी पाईना।
हिन्दी बोली आरसी आए। खुसरो कहे कोई न बताये।

इसका अर्थ हुआ फारसी मे जिसे आईना कहते है, हिन्दी मे उसको आरसी। मालिक मुहम्मद जाईसी भी हिन्दी को हिन्दवी ही कहते है—

तुरकी अरबी हिन्दवी भाषा जेती आहि।
जामें मारग प्रेम का सबै सराहै ताहि।

इन पद्यों से यह स्पष्ट हो गया कि अब से छ सात सौ बरस पहले से हमारे मध्यवर्ती देश की भाषा हिन्दी कहलाती है। परन्तु यह अवश्य है कि हिन्दुओं मे यह नाम बहुत पीछे गृहीत हुआ है, जैसा मै ऊपर लिख आया हूं। पहले हिन्दवी अथवा हिन्दुई को अच्छी दृष्टि से नही देखा जाता था। हिन्दुई शब्द गॅवारी बोलचाल अथवा साधारण कोटि की भाषा के लिये प्रयुक्त होता था। इसीलिये उच्च हिन्दी अथवा उसकी साहित्यिक रचनाओं का नाम भाषा था। परन्तु जब यह भाषा बहुत व्यापक हुई, और उसमें अनेक अच्छे अच्छे ग्रन्थ निर्मित हुए, सुदूर प्रान्तों से सुन्दर सुन्दर समाचार-पत्र निकले तब विचार बदला और उस समय से हिन्दी भाषा कहकर ही उसका परिचय दिया जाने लगा। आज दिन तो हिन्दी अपने नाम के अर्थानुसार वास्तव मे हिन्द की भाषा बन रही है।

चौथा प्रकरण ।

आर्य्य भाषा परिवार ।

हिन्दी के विकास के विषय मे और बातो के लिखने के पहिले यह आवश्यक जान पडता है कि आर्यभाषा परिवार की चर्चा की जावे। क्योंकि इससे हिन्दी सम्बन्धी बहुतसी बातो पर प्रकाश पडनेकी सम्भावना है। डाक्टर जी० ए० ग्रियर्सन ने लन्दन के एक बुलेटिन मे इस विषय पर एक गवेषणापूर्ण लेख सन् १९१८ मे लिखा है, उसी के आधार से मै इस विषय को यहा लिखता हू, कुछ और ग्रन्थो से भी कही कहीं सहायता ली गई है।

भारत की भाषाओ के तीन विभाग किये जा सकते है, वे तीन भाषाये ये है—

१ आर्यभाषाये २ द्रविड भाषाये ३ और अन्य भाषाये। अन्य भाषाओ के अन्तर्गत मुण्डा और तिब्बत वर्मन भाषाये है, द्राविड भाषा मुख्यत दक्षिण मे बोली जाती है। आर्यभाषा उत्तरी मैदानो में फैली हुई है, गुजरात और महाराष्ट्र प्रान्त मे भी उसका प्रचलन है, उसके अन्तर्गत अधिकाश पहाडी भाषाये भी है। हिन्दूकुश के दक्षिणी पहाडी देशों मे एक चौथी भाषा भी पाई जाती है, जिसको डार्डिक अथवा वर्तमानकालिक पिशाचभाषा कहते है।

१ मध्यदेशीय भाषा उत्तरीय भारत के मध्य मे और उसके चारों ओर फैली हुई है, साधारणतया यह पश्चिमी हिन्दी कहलाती है। बागडू, व्रजभाषा, कन्नौजी, और बुन्देलखण्डी भाषाये इसके अन्तर्गत है। बागडू या हरियानी यमुना के पश्चिम में पूर्व दक्षिणी पंजाब की भाषा है, यह मिश्रित भाषा है जिसमे हिन्दी, पंजाबी और राजस्थानी सम्मिलित है। व्रजभाषा मथुरा के चारों ओर और गंगा दोआबा के कुछ भागों मे बोली जाती है, इसका साहित्य भाण्डार बडा विस्तृत है। कन्नौज के आस पास

और अन्तर्वेद मे कन्नौजी भाषा का प्रचलन है, यह भाषा उत्तर मे नैपाल की तराई तक फैली हुई है, इसमे और व्रजभाषा मे बहुत थोडा अन्तर है। बुन्देलखण्ड की बोली बुन्देली है, जो दक्षिणमे नर्वदा की तराई तक पहुचती है, यह भाषा भी व्रजभाषा से बहुत मिलती है।

पश्चिमी हिन्दी का एक रूप वह शुद्ध हिन्दी भाषा है, जो मेरठ और दिल्ली के आसपास बोली जाती है, इसको हिन्दुस्तानी भी कहते है। गद्य हिन्दी साहित्य और उर्दू रचनाओ का आधार आजकल यही भाषा है, आजकल यह भाषा बहुत उन्नत अवस्था मे है, और दिन दिन इसकी उन्नति हो रही है। इसका पद्यभाग उर्दू सम्बन्धी तो बहुत बडा है, परन्तु हिन्दीमे भी आजकल उसका विस्तार बढता जाता है। अधिकाश हिन्दी भाषा की कविताये आजकल इसी भाषामे हो रही है, इसको खडी बोली कहा जाता है।

बागडू जिस प्रान्त मे बोली जाती है, उस प्रान्त का नाम बागडा है, इसी सूत्र से उसका यह नामकरण हुआ है। हरियाना प्रान्तमे इसे हरियानी कहते है—करनाटक मे यह जाटू कही जाती है, क्योंकि जाटों की वह बोलचाल की भाषा है।

कन्नौजी मे साहित्य का अभाव है, इसलिये दिन दिन यह भाषा क्षीण हो रही है, और उसका स्थान दूसरी बोलियाँ ग्रहण कर रही है। बुन्देल-खण्डी भाषा मे कुछ साहित्य है, परन्तु व्रजभाषा का ही उसपर अधिकार देखा जाता है। साहित्य की दृष्टि से इन सब मे व्रजभाषा का प्राधान्य है, जो कि शौरसेनी की प्रतिनिधि है।

'पंजाबी' हिन्दीभाषा के उत्तर-पश्चिम ओर है, और इसका क्षेत्र पंजाब है। पूर्वीय पंजाब मे हिन्दी है, और पश्चिमी पंजाब मे लहँदा, जो बहिरंग भाषा है। पंजाबी के वर्ण राजपुताने के महाजनी और काश्मीर के शारदा से मिलते जुलते है। इसमे तीन ही स्वरवर्ण है, व्यञ्जनवर्ण भी स्थान स्थान पर कई ढंग से लिखे जाते है। गुरु अंगदजी ने इसका संशोधन ईस्वी सोलहवें शतक मे किया, उसी का परिणाम 'गुरुमुखी' अक्षर है। अमृतसर

के चारो ओर उच्च-पंजाबी भाषा बोली जातो है। यद्यपि स्थान स्थान पर उसका कुछ परिवर्तित रूप मिलता है, पर वास्तव में भाषा मे कोई विशेष अन्तर नहीं है। 'डोगरी' जम्मूस्टेट और कुछ परिवर्तन के साथ कागडा जिले मे बोली जाती है। पंजाबी साहित्य कम है। दोनो ग्रन्थसाहब यद्यपि गुरुमुखी अक्षरों मे लिखे गये है, परन्तु उनकी भाषा पश्चिमी हिन्दी है, कोई कोई रचना ही पंजाबी भाषा मे है। पंजाबी भाषा मे संस्कृत,शब्दो का बाहुल्य नहो है, यद्यपि शनै शनै, उसमे संस्कृत तत्सम का प्रयोग अधिकता से होने लगा है।

पंजाबियों की यह सम्मति है कि अमृतसर जिले की माझी बोली ही ऐसी है, जिसमे पंजाबी का ठेठ रूप पाया जाता है। मुसल्मानो ने गुजरात और गुजरानवाला मे बोले जानी वाली पंजाबी के आधार से अपने साहित्य की रचना की है। इनकी भाषा हिन्दू लेखको की अपेक्षा अधिक ठेठ है। इनकी भाषा मे पश्चिमी हिन्दी का रंग भी पाया जाता है, इस भाषा मे अब भी साहित्य की रचना होती है, इस मिश्रित भाषा का पुराना साहित्य भी मिलता है।

मौलवियो और पादरियो ने भी अपने धर्म का प्रचार करने के लिये पंजाबी भाषा में रचना की है, इन मे से अबदुल्ला आसो का बनाया हुआ 'अनवाअ बारॉ' बहुत प्रसिद्ध है।

मुसल्मानो ने कुछ जंगनामे और यूसुफ़ज़ुलेख़ा की कहानी भी पंजाबी भाषा मे पद्यबद्ध की है। हीररॉझे की प्रसिद्ध कथा भी पंजाबी पद्य का सुन्दर ग्रन्थ है, इसकी रचना सय्यद वारिस शाह ने की है, इसकी भाषा ठेठ पंजाबी समझी जाती है।

पंजाबी के दक्षिण मे 'राजस्थानी' है, राजस्थानी द्वारा हिन्दी दक्षिण पश्चिम मे फैली, हिन्दी 'राजस्थानी' के क्षेत्र मे पहुॅच कर गुजरात के समुद्र तक बढी और वहॉ गुजराती बन गई। इसीलिये राजस्थानी और गुजराती बहुत मिलती है। राजस्थानी मे कई भाषाये अथवा बोलिया है, परन्तु उनके चार मुख्य विभाग है। उत्तर मे 'मेवाती' दक्षिण पूर्व मे 'मालवी'

पश्चिम मे "मारवाड़ी" और मध्यप्रदेश मे 'जयपुरी' का स्थान है। प्रत्येक की बहुतसी उपभाषाये है 'दो महत्वपूर्ण विशेषताओ के कारण 'मारवाडी' और 'जयपुरी मे भेद है । 'जयपुरी' मे सम्बन्धकारक का 'चिन्ह हो' और क्रिया का पुराना धातु 'अछ' है। परन्तु 'मारवाडी' मे सम्बन्धकारक का चिन्ह 'रो और "हे" धातु हे । गुजराती मे कोई निर्देश योग्य अवान्तर भेद नहीं है, परन्तु उत्तरी गुजराती दक्षिणी गुजराती से मुख्य बातो मे भेद रखती है। 'राजस्थानी' का स्थान समस्त राजपुताना और उसके आसपास के कुछ विभाग है, और गुजराती का स्थान गुजरात और काठियावाड है, जिनका प्राचीन नाम सौराष्ट्र है।

राजस्थान की बोलियो मे 'मारवाडी' और 'जयपुरी' ही ऐसी है, जिनमे साहित्य पाया जाता है, 'मारवाडी' का साहित्य प्राचीन ही नहीं विस्तृत भी है। जिस मारवाडी भाषा मे कविता लिखी गई है उसे 'डिङ्गल' कहते है, इसमे चारणो की बडी ओजस्विनी रचनाये है । 'जयपुरी' मे दादूदयाल और उनके शिष्यो की वाणिया है। और इस दृष्टि से उसका साहित्य भी मूल्यवान है। व्रजभाषा की कविता को पिंगल कहते है, उससे भेद करने के लिये ही 'डिगल' नाम की कल्पना हुई है।

गुजराती साहित्य बडा विस्तृत है, इसके निर्माण मे जैन साधुओ ने भी हाथ बॅटाया है, उन्हो ने धार्मिक ग्रन्थ ही नहीं लिखे, बड़े बडे काव्यो की भी रचना की है, जिन्हे रासो अथवा रास कहते है। गुजराती साहित्य मे पारसी और मुसलमानो की भी रचनाये मिलती है, परन्तु उनमे फारसी, अरबी शब्दो का प्रयोग अधिकतर हुआ है। गुजराती भाषा का प्रतिष्ठित और अधिक प्रसिद्ध कवि नरसिह मेहता है, जो ईस्वी पन्द्रहवे शतक मे हुये है। ये जाति के नागर ब्राह्मण थे, इनकी रचना भावपूर्ण ही नहीं भक्तिमयी भी है।

मध्यदेशके पूर्व मे पूर्वी हिन्दी' है। पूर्वीय हिन्दी पर मध्यदेशीय अथवा पश्चिमी हिन्दी का प्रभाव बराबर पडता रहा है। साथ ही बाहरी भाषाओं के संसर्ग से भी वह नहीं बची. इसलिये उस पर दोनों का अधिकार देखा

जाता है। साधारणतः इसकी संज्ञाओ और विशेषणो का रूप पूर्व की बहिरंग भाषाओ से मिलता जुलता है, और क्रियाओ एवं धातुओ का रूप मध्यदेशीय हिन्दी से। पूर्वीय हिन्दी मे तीन प्रधान भाषाये है। 'अवधी' 'बघेली' और छत्तीस गढी'। अवधी को बैसवाडी भी कहते है, यह भाषा अवध के दक्षिण पश्चिम मे बोली जाती है। कहा जाता है यह बैसवाडी राजपूतो की भाषा है। अवधी का दूसरा नाम 'कोशली' है। अवधी और बघेली मे बहुत कम अन्तर है। छत्तीसगढी पहाडी भाषा है, और अधिक स्वतंत्र है, उस पर कुछ उत्कल भाषा का प्रभाव भी पाया जाता है। यदि पश्चिमी हिन्दी की ब्रजभाषा भगवान् कृष्णचन्द्र की गुण गाथाओं से पूर्ण है, तो पूर्वी हिन्दी की अवधी भगवान् रामचन्द्र के कीर्तिकलाप से उद्भासित है। यदि पश्चिमी हिन्दी के सर्वमान्य महाकवि प्रज्ञाचक्षु सूरदास जी है, तो पूर्वी हिन्दी के सर्वोच्च महाकवि गोस्वामी तुलसीदास है। यदि उन्होंने प्रेमसिद्धान्त की पराकाष्ठा अपनी रचनाओ मे दिखलाई, तो इन्होने भक्तिरस की वह धारा बहाई, जिससे समस्त हिन्दी संसार आप्लावित है। अवधी भाषा के मलिक मुहम्मद जायसी भी आदरणीय कवि है, उनका 'पद्मावत' अवधी भाषा का बहुमूल्य ग्रन्थ है, उसमे अधिकतर बोलचाल की भाषा का प्रयोग देखा जाता है, अवधी भाषा मे कुछ और ग्रन्थ भी पाये जाते है, परन्तु उनमे कोई विशेषता नही है। कबीर साहब को भी अवधी भाषा का कवि माना जाता है, उन्होने स्वयं लिखा है, 'बोली मेरी पुरब की', परन्तु उनकी रचनाओ के देखने से यह बात स्वीकार नहीं की जा सकती। उनके पद्यो की विचित्र भाषा है, उसमे किसी भाषा का वास्तव रूप नहीं दिखलाई देता। नागरी प्रचारिणी सभा से जो उनकी ग्रन्थावली निकली है, और जो उनके समय मे लिखित पुस्तक के आधार से सम्पादित हुई है, उसमे पंजाबी भाषा का ढंग ही अधिक देखा जाता है। अवधी भाषा मे साहित्य है, परन्तु ब्रजभाषा के समान वह विस्तृत और विशाल नही है। गोस्वामी तुलसीदास और कविवर सूरदास को छोड़कर हिन्दी संसार के जितने कवि और महाकवि हुये है, उन सबकी अधिक रचनाये ब्रजभाषामेही है। एक से एक बडे कवियों का सहारा पाकर पाच सौ वर्ष मे ब्रजभाषाका

साहित्य-भाण्डार जितना बडा और विशाल हो गया है, उतना बडा भाण्डार किसी दूसरी देशभाषा का नही है।

दक्षिण भारत मे मराठी ही एक ऐसी भाषा है, जिसको आर्यभाषा परिवार की कह सकते है। मराठी को महाराष्ट्री प्राकृत की जेठी बेटी कह सकते है। वह दक्षिणी उपत्यका, पश्चिमीघाट और अरब समुद्र के मध्य भाग मे बोली जाती है। यह बरार और उसके पूर्व के कुछ प्रदेशो की भी भाषा है, इसका प्रचार मध्यप्रान्त मे भी देखा जाता है, परन्तु वहाँ उसका शुद्ध रूप अधिक सुरक्षित नहीं मिलता। बस्तर राज्य मे से होते हुये, यह उड़िया भाषा की कुछ भूमि मे भी प्रवेश कर जाती है। इसके दक्षिण मे द्राविड भाषाये है, और उत्तर पश्चिम मे राजस्थानी, गुजराती, और पूर्वी एवं पश्चिमी हिन्दी है। मराठी अपने पूर्व की छत्तीसगढ़ी हिन्दी से बहुत कुछ समानता रखती है।

मराठी मे तीन प्रधान भाषाये अथवा बोलियाँ है। पहली देशी मराठी है, जो पूना के चारो ओर शुद्धतापूर्वक बोली जाती है। उत्तरी और मध्य कोकण मे यही भाषा अनेक रूपों मे दिखलाई देती है, पर सच्ची कोकणी ही दूसरी भाषा है जो कोकण के दक्षिण भाग मे पाई जाती है, और इन सबों से भिन्नता रखती है। तीसरी बरारी और नागपुरी हे जो बरार और मध्यप्रान्त के कुछ भाग मे प्रचलित है, शुद्ध मराठी मे और इसमे उच्चारण सम्बन्धी भिन्नता है। बस्तर मे बोली जानेवाली भाषा को 'हलाबी' कहते है, इसमे मराठी और द्राविडी का मिश्रण देखा जाता है। पहली मराठी ही शिष्टभाषा समझी जाती है, और साहित्य इसी भाषा मे है। मराठी साधारणत नागरी अक्षरो मे लिखी जाती है, कोकणी भाषा के लिखने मे कनारी वर्णो से काम लिया जाता है। मराठी का साहित्य-भाण्डार बडा है, और इसमे मूल्यवान कविता पाई जाती है। एक बात मे मराठी कुल आर्य-परिवार की भाषाओ से पृथक् है, वह यह कि मराठी के उच्चारण पर वैदिक-काल का प्रभाव देखा जाता है, जब कि अन्य भाषाओ ने अपने उच्चारण को स्वतंत्र कर लिया है।

मराठी का पुराना रूप ताम्रपत्रों और शिला-लेखो मे पाया जाता है, ईस्वी बारहवे शतक के कुछ ऐसे ताम्रपत्र और शिलालेख पाये गये है। ईस्वी चौदहवे शतक मे ज्ञानदेव नामक एक प्रसिद्ध महात्मा हो गये है उन्होंने भगवद् गीता पर मराठी मे ज्ञानेश्वरी टीका लिखी है। उन्ही के समय मे नामदेवजी भी हुये, जिनकी हिन्दी रचना भी पाई जाती है। मराठी के अभंगो के रचयिताओ मे एकनाथ और तुकाराम का नाम अधिक प्रसिद्ध है। स्वामी रामदास का 'दासबोध' भी प्रसिद्ध ग्रन्थ है। ईस्वी उन्नीसवे शतक में मोरोपन्त एक बडे प्रसिद्ध कवि हो गये है।

पूर्वी हिन्दी के पूर्व मे बिहारी भाषा है, आजकल बिहारी भाषा भी हिन्दी ही मानी जाती है। बिहारी कुल बिहार छोटानागपुर और संयुक्त-प्रान्त के कुछ पूर्वी भागों मे बोली जाती है। अबतक इसमे मागधी प्राकृत की दो विशेषताये पाई जाती है। 'स' का 'श मे बदल जाना और अकारान्त शब्दों का एकारान्त हो जाना। बिहारी की तीन प्रधान भाषाये है, मैथिली, मगही और भोजपुरी। ईस्वी पन्द्रहवीं शताब्दी से मैथिली मे कुछ साहित्य पाया जाता है। 'मगही' प्राचीन मागधी प्राकृत की प्रतिनिधि है, और उसी के अपभ्रंश से वर्त्तमान रूप मे परिणत हुई है। मैथिली और मगही के व्याकरण और शब्दो में बहुत समानता है, पर मगही मे साहित्य का अभाव है। भोजपुरी का इन दोनो से अधिक अन्तर है, यह दोनों से सीधी है। मगही को तिरहुतिया भी कहते है। हार्नल महोदय ने बिहारी को पूर्वी हिन्दी कहा है।

मैथिल कोकिल विद्यापति मैथिली भाषा के बहुत बड़े कवि हुये है, इनकी रचनाये बडी ही मधुर एवं भावमयी है। उनकी पदावली बहुत ही सरस है, उसमे श्रीमती राधिका के मधुर भावो का बडा हृदयग्राही चित्रण है। उनकी रचना की जितनी ममता हिन्दी भाषावालों को है, उतनी ही बंगला भाषियो को। व्रजभाषा के शब्दों का प्रयोग उनकी रचनाओं मे बडी ही रुचिरता के साथ किया गया है। भोजपुरी मे भी साहित्य नहीं मिलता, परन्तु इस भाषा मे लिखे गये ग्रामीण गीन प्राय सुने जाते है, जो बड़े ही

मनोहर होते है। पं० रामनरेश त्रिपाठी ने हाल मे जो ग्राम्य गीतो का संग्रह प्रकाशित किया है, उसमे भोजपुरी गीतो का भी पर्याप्त संग्रह हो गया है।

बिहारी के दक्षिण पूर्व मे बोलीजानेवाली, भाषा उडिया कहलाती है। मागधी अपभ्रंश से ही इसकी उत्पत्ति भी मानी जाती है, जहा पर यह मराठी भाषा के समीप पहुचती है, वहा इसमे उसका मिश्रण भी देखा जाता है। बगाल के समीप पहुच कर यह बंगाली भाषा से भी प्रभावित है। उडिया को उत्कली और उड्री भी कहते है। इसमे साहित्य भी पाया जाता है और इस भाषा के भी अच्छे अच्छे कवि हुये है। अधिकाश रचनाये इसकी कृष्णलीलामयी है, और उनमे यथेष्ट सरसता है।

यह भाषा उडीसा मे, बिहार, मद्रास' एवं मध्यप्रान्त के कुछ भागो मे बोली जाती है, महाराज नरसिंह देव द्वितीय के एक शिला लेख मे इसके प्राचीन स्वरूप का कुछ पता चलता है, यह शिला लेख विक्रमी चौदहवे शतक का है। इसका आदि कवि उपेन्द्र भज समझा जाता है। कृष्ण दास का रसकल्लोल नामक ग्रन्थ भी प्रसिद्ध है। इस भाषा का आधुनिक साहित्य भी विशेष उन्नत नहीं है।

बंगाल की भाषा बॅगला है। ईस्वी चौदहवे शतक के उपरान्त, इसका साहित्य बढने लगा, और इस समय बहुत ही समुन्नत है। इसकी बोल चाल की भाषा के प्रधान रूप तीन है पूर्वी, पश्चिमीय और उत्तरीय। प्रत्येक मे अलग २ कई बोलिया है। हुगली के चारो ओर पश्चिमीय है, और गंगा के उत्तर प्रदेश मे उत्तरीय, जो कि उडिया भाषा से मिलती जुलती है। ढाका के आस पास पूर्वीय भाषा है, जो स्थान स्थान पर परस्पर बडी भिन्नता रखती है। रंगपुरी भाषा आसाम के पश्चिमी छोर पर है और उत्तरी बंगाल से लगे हुये हिस्सों मे बोली जाती है। चटगॉव के आस पास उच्चारण की विशेषताओंके कारण बिल्कुल एक नये ढंगकी बोली बन गई है, जो कठिनता से बँगला कही जा सकती है। बँगला मे 'स' का उच्चारण 'श' होता है इस विषय मे वह मागधी से मिलती है। प्राचीन बंगाली कविता में मागधी प्राकृत के कर्ता का चिन्ह 'ए, भी सुरक्षित पाया जाता है। जैसे 'इष्टदेव'

और 'नयनम्' के स्थान पर नयने' आदि । यह चिन्ह वर्त्तमान बँगला गद्य मे भी पाया जाता है ।

बॅगला भाषा इस समय आर्य परिवार की समस्त भाषाओ से उन्नत है। उसका साहित्य भाण्डार सर्व विषयो से परिपूर्ण है । प्रत्येक विषय के ग्रन्थों की रचना उसमे हुई है, और होती जा रही है । विश्वकवि श्री युत रवीन्द्रनाथ ठाकुर की रचनाओ से उसको बहुत बडी प्रतिष्ठा प्राप्त हुई है । जैसे कृतविद्य लेखक इस समय बॅगला भाषा मे है, भारतीय किसी भाषा मे नही हैं । बॅगला के साहित्य मे मानिकचन्द्र के गीत सब से प्राचीन है । चण्डी दास और कीर्तिवास भी बहुत बडे कवि हो गये है । आधुनिक कवि और लेखको मे बाबू बंकिमचन्द्र चटर्जी और माइकेल मधुसूदनदत्त आदि ने भी बडी कीर्ति पाई है ।

आसाम मे बोलीजानेवाली भाषा आसामी कहलाती है, यह आर्य्य-परिवारकी एक भाषा है । इसदेश मे रहनेवाली बहुतसी जातियाँ तिब्बती वर्मन भाषा मे बातचीत करती है । मगध की मागधी प्राकृत का पता तीन धाराओ से लगाया जा सकता है । पहली धारा है दक्षिण मे बोलीजानेवाली उडिया, दूसरी है दक्षिण और पूर्व की पश्चिमीय और पूर्वीय बॅगला, तीसरी उत्तर पूर्व की आसामी । बॅगला भाषा ही अधिक उत्तर पूर्व मे पहुच कर आसामी बन गई है । यद्यपि कि आसामी तिब्बती वर्मन भाषा के प्रभाव और संसर्ग के कारण व्याकरण और उच्चारण दोनों मे बॅगला से बहुत भिन्नता रखती है, परन्तु बॅगला से परिवर्तित होकर वर्त्तमान रूप धारण करनेके प्रमाण उसमे बहुत अधिक मौजूद है । इस का साहित्य भी उन्नत है, और इसमे बहुत से ऐतिहासिक ग्रन्थ है, जिनको आसामी 'बूरंजी, कहते है । कुछ काल तक पादरियो की चेष्टा से आसामी भाषा अपने मुख्यरूप मे बॅगला से अधिक उन्नत हो गई थी, पर अब फिर उसमे संस्कृत शब्दों का अधिक प्रवेश हो रहा है ।

आसाम को ही संस्कृत मे कामरूप कहा गया है, बंगाली उसे 'ओशोम, कहते है, इसी 'ओशोम' से पहले 'ओशोमी' और बाद को आसामी उसकी भाषा का नाम पड़ा । इसमे दूसरे प्रकार के साहित्य भी है । आसामी भाषा

का सब से प्राचीन ग्रन्थ भागवत का अनुवाद है, जो कि ईस्वी चौदहवे शतक मे हुआ था। श्री शंकर नामक एक प्रसिद्ध विद्वान् ने यह अनुवाद किया था।

कुछ पहाडी भाषाये भी ऐसी है कि जिनका सम्बन्ध आर्यपरिवार की भाषा से है। इस प्रकार की भाषाये तीन है, और वे पूर्व मे नैपाल से लेकर पश्चिम मे पंजाब की पहाडियो तक फैली हुई है। इनकी संज्ञा है— (१) पूर्वीय पहाडी (२) मध्यपहाडी (३) और पश्चिमीय पहाडी।

योरोपियन लोग नैपाली भाषा को पूर्वीय पहाडी भाषा कहते है परन्तु यह ठीक नहीं। नैपाल की भाषा का नाम 'नेवारी' है। पूर्वीय पहाडी के और भाषाओका नाम, पार्वतीय, पहाडी भाषा और खसकुरा है। यह 'खस-कुरा, खसो की भाषा है, और नागरी लिपि मे लिखी जाती है।

गढवाल और कुमायूं के ब्रिटिश जिलों की और गढवाल रियासत की भाषा मध्यपहाडी कहलाती है। इसकी दो प्रधान शाखाये है, कमायूनी और गढ़वाली। इन दोनों भाषाओं मे साहित्य बहुत कम है, इनी गिनी पुस्तके ही इसमे मिलती है।

शिमला और उसके आस पास की पहाडियो मे एक दूसरे से मिलती जुलती कई भाषाये है, जिन्हे पश्चिमी पहाडी कहते है। इन भाषाओ मे कोई साहित्य नहीं है। इनका क्षेत्र पश्चिमोत्तर प्रदेश मे जौंसार और बावर से प्रारंभ होकर पंजाब की रियासतों सिरमौर, मण्डी, चम्बा, तथा शिमला पहाडी, और कुल्हू होते हुये पश्चिममे काश्मीर तक विस्तृत है। इन भाषाओ मे, जौंसारी, किउँथली, कुल्हुई, चमिआल्ही आदि प्रधान है।

ए पहाडी भाषाये राजस्थानी भाषासे मिलती जुलती है। इनमे गुजराती भाषा का भी पुट है। कारण इसका यह है कि सोलहवे ईस्वी शतक मे और उससे कुछ पहले भी विशेष कर मुसल्मानों के समय मे राजस्थान अथवा गुजरात से कुछ विजयिनी जातिया मुख्यत' राजपूत इन प्रदेशो मे आये, और वहा की मुण्डा तथा तिब्बती वर्मन आदि जातियों को जीत

कर वहा अपना राज्य स्थापित किया। उनके प्रभाव से ही जनता मे उनका धर्म और भाषा भी फैली । कुछ कालोपरान्त इस प्रदेश मे लगभग सभी हिन्दू धर्मावलम्बी हो गये. और सभी की भाषा थोड़े परिवर्तन से राजस्थानी बन गई। मै पहले लिख आया हू कि गुजराती और राजस्थानी मे थोडा ही अन्तर है, यही बात यहा के भाषा मे भी पाई जाती है।

उत्तरी पश्चिमीय समूहकी भाषा लहन्दी और सिन्धी भी आर्य परिवारकी है। लहन्दा पश्चिमी पंजाब की भाषा है, उसको पश्चिमीय पंजाबी, जाटकी, उच्ची और हिन्दकी भी कहते है। लहन्दा का शब्दार्थ है, सूर्य्य का डूबना, अथवा पश्चिम। जटकी का अर्थ है जाटो की भाषा। उच्ची का अर्थ है उच्च नगर की भाषा। 'हिन्दकी, हिन्दुओ की भाषा है, यह पश्चिमी भाग मे बोली जाती है, यहा पश्तो बोलनेवाले मुसलमान रहते है।

लहन्दा की तीन बोलिया है। दक्षिणीय या मुलतानी, उत्तरीय पूर्वी या पोठवारी, उत्तरीय पश्चिमी या धन्नी। लहन्दा मे ग्राम्यगीतके अतिरिक्त और कोई साहित्य नही है। ईस्वी सोलहवे शतकको लिखी हुई गुरु नानक देवकी एक जन्म साखी (जीवन चरित्र) और कुछ साधारण कवितायें जहा तहा मिल जाती है। मुसलमानो की कुछ रचनाये पोठहारी बोली मे पाई जाती है। परन्तु उसको लोग पजाबी भाषा मे लिखी गई मानते है।

सिन्धी सिन्ध की भाषा है, दक्षिणमे यह समुद्र तक फैली हुई है, उत्तरमे आकर यह लहन्दा से मिल जाती है। सिन्ध मे प्राचीन काल का ब्राचड्ड देश था, प्राकृत वैयाकरणोने यहा ब्राचड्ड अपभ्रंश और ब्राचड्ड पैशाची का होना स्वीकार किया है। सिन्धी की पाच भाषाये है, १- बिचोली, सिरादकी, लाडी, थरेली, और कच्छी। बिचोली भाषा मध्य सिध की है, साहित्यिक यही भाषा है, और इसी मे साहित्य है। सिरदकी— बिचोली का एक रूप है वास्तव मे उसकी भिन्न सत्ता नही है। केवल थोडा बहुत उच्चारण का अन्तर है। सिंधी सरादकी को सब से शुद्ध समझते है। लाडी लाड़ प्रदेश की भाषा है- इसमे भद्दापन है। लाड़ का शब्दार्थ है ढालुवा। बिचोली और इसमे यह अन्तर है कि इसमे बहुत से प्राचीन रूप पाये जाते है,

वर्त्तमान पिशाच भाषा की विशेषतायें भी इसमे मिलती है । थरेली और कच्छी दोनो मिश्रित भाषाये है। पहली भाषा थारू मे बोली जाती है, और यह परिवर्तनशील है, क्योकि सिधी भाषाये धीरे धीरे राजस्थानी मारवाडी द्वारा प्रभावित होती जाती है। कच्छी कच्छ मे बोली जाती है, इसमे सिन्धी और गुजराती का मिश्रण है। सिन्धी मे साहित्य है, परन्तु थोडा। थरेली को 'बरोची,' और ढाटका भी कहते है, थलसे थरु शब्द बना है, इस थरु मे बोले जाने के कारण ही 'थरेली, नाम की रचना हुई है। सिरादकी को कुछ सिधी पृथक् बोली मानते है। अब्दुल लतीफ नाम का एक प्रसिद्ध कवि ईस्वी अठारहवी सदी मे हो गया है। उसने जो ग्रन्थ रचा है, उसका नाम 'शाहजो रिसालो है। इसमे सूफी मत के सिद्धान्तों की छोटी छोटी कथाये लिख कर समझाया गया है। सिंधी इसको सिंध का हाफिज कहते है। इस भाषा मे वीररस की कुछ सुन्दर कवितायें भी मिलती है।

पेशाची भाषाके विषय मे पहले कुछ चर्चा हो चुकी है, उसके सम्बन्ध की विशेषता यहा लिखी जाती है। वर्त्तमान पिशाच भाषा के बोलनेवाले दक्षिण मे काबुलनदी के पास और उत्तर पश्चिम और हिमालय की नीची श्रेणियो मे और उत्तर मे हिन्दूकुश एव मुस्तग श्रेणियो के बीच मे रहते है। इसके तीन विभाग है, काफिर, खोआर और डर्ड। काफिरके बोलनेवाले काफिरिस्तान मे रहते है, बशगली इनकी प्रसिद्ध भाषा है, डेविडसन ने इस पर एक अच्छा व्याकरण लिखा है, कोनो ने इस भाषा का एक कोश भी लिख दिया है। इसके बोलनेवाले काफिरिस्तान की बशगल नामक तराई मे रहते है, इसीसे इसका नाम बशगली है। इसके दक्षिण मे बाई—काफिर रहते है, जिनकी बोली बाई-अला है, इसमे और बशगली मे बडी घनिष्टता है। 'वेरो' बशगली के पश्चिम की दुर्गम घाटियों मे रहनेवाले प्रेशुओ की भाषा है, इसमे और बशगली मे बडा अन्तर है। वेरों मे जैसी कि स्थिति संकेत करती है, अन्य भाषा की अपेक्षा ईरानियन प्रभाव ही अधिक है—जैसे कि 'ड' का 'ल' मे बदल जाना। परन्तु दूसरी ओर यह उच्चारण मे डार्ड भाषा से मिलती है, जो बात और काफ़िर भाषाओ मे नहीं पाई जाती। गबरवटी या गब्रभाषा गबेरो की भाषा है जो कि

नसरत देश की एक जाति है, यह देश बशगल और चित्राल नदियों के संगम पर है 'कलाशा' कलाशा—काफिरो की भाषा है, यह भी इन्ही दोनो नदियो के दोआबमे बोली जाती है। विडल्फने गवरबटी भाषाका शब्दकोष बनाया है, लेटनर का डार्डिस्तान, कलाशा के विषय मे बहुत कुछ बतलाता है। पशाई' पैशाची से निकली है, और लगमन के देहकानोकी बोली है। पशाई पर जो कि सबसे दक्षिण की भाषा है, पश्चिमो पंजाब के एण्डोएरियन भाषाओ का प्रभाव है। दूसरी ओर कलाशा लोअर भाषा से प्रभावित है। कुल काफिर भाषाओ पर पास की पश्तो भाषा का बहुत बडा असर देखा जाता है।

खोआर 'खोयाको' जाति को भाषा है, इसका स्थान वर्त्तमान पिशाच भाषाओ के काफ़िर और डार्ड समूह के मध्य मे है। यह अपर चित्राल और यासोन के एक भाग की भाषा है। इसे चित्राली या चत्रारी भी कहते है। लेटनर के डार्डिस्तान' नामक ग्रन्थ मे इसके विषय मे बहुत कुछ लिखा हुआ है, इस भाषा पर विडल्फ और ग्रीयेन ने व्याकरण भी बनाया है।

डार्ड भाषा समूह मे सबसे प्रधान शिना है। यह शिन जाति की भाषा है। ये लोग काश्मीर के उत्तर के रहनेवाले है। विडल्फ की ट्राइव्स आव दि हिन्दूकुश और लेटनर, के 'डार्डिस्तान' के देखने से इस बडी जाति और इसकी भाषा के विषय का पूरा ज्ञान होता है। मेगस्थिनीज़ ने इनको 'डरडेई' कहा है, और महाभारत मे इन्हे डारडस लिखा गया है। शिना की बहुत सी बोलिया है, उनमे सबसे मुख्य 'जिलजित' घाटी की 'जिलजित' भाषा है। अस्तोर घाटी मे बोली जाने वाली भाषा अस्तोरी कहलाती है। चिलासी, गुरेजी, ट्रास और डाहहनू की दो दो भाषाये है, जिनके साथ बालती' का व्यवहार भी किया जाता है। यूरोपियनों ने 'डार्ड' शब्द का प्रयोग हिन्दूकुश के दक्षिण मे बोलीजानेवाली कुल इण्डोएरियन भाषाओं के लिये किया है। डार्डिक शब्द इसी से निकला है, जो वर्त्तमान पिशाची भाषा का भी वोधक है।

काश्मीरी अथवा काशीरु काश्मीर की भाषा है, इसका आधार शिना

की तरह की एक भाषा है। काश्मीरी के बहुत से शब्द—जैसे व्यक्तिवाचक, सर्वनाम अथवा घनिष्टताबोधक—प्राय शिना के समान है। बहुत पहले से ही सस्कृत के प्रभाव मे रहकर इसने अपने साहित्य का विकास अधिक किया है, इस कारण इसके शब्द भाण्डार पर सस्कृत या उसके अन्य अंगों का बहुत प्रभाव पडा है। विशेप करके पश्चिम पजाब की लहन्दा भाषा का जो कि काश्मीर के दक्षिणी सीमा पर प्रचलित है। ईस्वी चौदहवे शतक से अट्ठारहवे शतक के आरम्भ तक काश्मीर मुसलमानो के अधिकार मे रहा है। इन पाच सौ वर्षों मे बहुत लोग मुसलमान हो गये, और इसी सूत्र से काश्मीरी भापा मे अनेक अरबी, फारसी के शब्द भी सम्मिलित हो गये इसका प्रभाव बचे हिन्दुओं की भापा पर भी पडा है। काश्मीरी मे आदरणीय साहित्य है। १८७५ ई० मे ईश्वर कौल ने संस्कृत भाषा के व्याकरणकी प्रणाली पर काश्मीर शब्दामृत नामक एक व्याकरण भी बनाया है। इन्हो ने इस भाषा की उच्चारण प्रणाली को बहुत सुधारा है, फिर भी वह सर्वथा निर्दोष नहीं हुई है। स्थान स्थान पर काश्मीरी भाषामे भिन्नता भी है. इसकी सबसे प्रधान भाषा काष्टवारी है। स्थानीय भाषाओ के नाम 'दोडी' रामबनी और 'पौगुली' है। काश्मीरी ही एक ऐसी पैशाची भाषा है, कि जिसके लिखने के वर्ण निजके है, उसे शारदा कहते है। प्राचीन पुस्तके इसी वर्ण मे लिखी हुई है।

'मैया' एक और भाषा है जो वास्तवमे बिगडी हुई शिना है, यही नहीं, कोहिस्तान मे शिनाके आधारसे बनी हुई, बहुतसी बोलिया बोली जाती है। परन्तु दक्षिणी भागमे लहन्दा और पश्तो का अधिक प्रभाव देखा जाता है। ये सब भाषाये कोहिस्तानी कहलाती है, परन्तु इनमें 'मैया' को प्रधानता है। इन भाषाओ का उल्लेख विडल्फ ने अपने ग्रन्थ ट्राइब्स आव दि हिन्दूकुश, मे किया है। इनमे से किसी मे न तो साहित्य है, और न लिखने के वर्ण। कोहिस्तान् पर बहुत समय तक अफगानो का अधिकार रहा है, इसीलिये वहा अब पश्तो का ही अधिक प्रचार है, कोहिस्तानी उन मुसलमानों की ही भाषा रह गई है, जिनको अपनी प्राचीन भाषा से प्रेम है।

सिंध नदी के इस कोहिस्तान के पश्चिम मे स्वातनदी का कोहिस्तान है, यहा की प्रधान भाषा भी पश्तो ही है, पर यहा भी अब तक कुछ ऐसी जातिया है, जो शिना के आधार पर बनी हुई बोलियाँ बोलती है। प्रधान भाषा गरबी, और अन्य भाषाये तोरवाली या तोरवल्लाव और वाश्कारिक है। बिडल्फ ने इन बोलियो का भी वर्णन किया है। मैया और गरबी दोनों मिश्रित भाषाये है ।

अन्त मे यह कह देना आवश्यक है कि प्राचीन पैशाची के बहुत से शब्द और रूप वर्तमान पैशाची की बिविध शाखाओ मे अब तक थोड़े से परिवर्त्तन के साथ पाये जाते है। जैसे कलाशा में ककबक, बेरों मे ककोकु, वशगली मे ककक इत्यादि, इस शब्द का अर्थ है चिडिया। वैदिक संस्कृतमे इसको 'कृकवाकु कहते है। खोआरमे द्रोखम शब्द मिलता है, जो संस्कृत का द्रम है, जिसका अर्थ है चादी। संस्कृत क्षीर वशगली का शीर है, जिसका अर्थ श्वेत है। संस्कृत का स्वसार खोआर का इस्युसार है, जिसका अर्थ बहिन होता है।

हिन्दूकुश मे दो छोटे छोटे राज्य है, हुञ्जा और नागर। यहा के रहनेवालो की एक अलग भाषा है, परन्तु यह आर्य भाषा नहीं है । इसका सम्बन्ध किसी भी भाषा के बंश के साथ अब तक नहीं हुआ है। यह भाषा अपने प्राचीन रूप मे, वर्त्तमान पिशाच भाषा बोले जानेवाले देशो मे, और बलतिस्तान के पश्चिम मे जहा कि अब तिब्बतीवर्मन भाषा बोली जानी है, एक समय मे बोली जाती थी। ए अनार्य्य भाषाये 'वुरुशस्की, 'विद्दल्प, की ब्रूगेश्की और लेतनेट की खजुवा है। लगभग कुल वर्त्तमान पिशाच भाषाओं मे इसके फुटकल शब्द पाये जाते है । जैसे—बर्मी शब्द, चोमार, जिसका अर्थ लोहा है, काश्मीरी के सिवा प्रत्येक वर्त्तमान पिशाच भाषाओं मे बोला जाता है। यह शायद इसी भाषा का प्रभाव है, कि वर्त्तमान पिशाच भाषा मे 'र' अक्षर का विचित्र प्रयोग है। इन सब भाषाओं मे यह 'र' अक्षर तालव्य होने की ओर झुकाव रखता है। इस झुकाव की उत्पत्ति वर्त्तमान पिशाच भाषा से नहीं हुई है। क्यों कि इसका सम्बन्ध केवल इसीं भाषा से

नहीं है, और न यह किसी एक समूह की सम्बन्धित भाषाओं की विशेषता है। वरन् यह एक देश की भाषा विशेष की विशेषता है, अर्थात् कुल वर्त्तमान पिशाच भाषाओ और निकटके बलतिस्तान भर मे इसका प्रचार है। तिब्बती वर्मन भाषा बालती मे कुछ ऐसे परिवर्तन होते है, जो कि पूर्वी तिब्बती वर्मन भाषाओ मे (जैसे पुरिक और लद्दाखी) मे नही दिखाई देते। तिब्बती वर्मन भाषा बालती और वर्त्तमान आर्य भाषा पैशाचो की अर्थात् दोनो की यह विशेषता एक ही उद्गम से आई है, और इस देश मे वही इनका पूर्वज है। खास बुरुशस्की मे परिवर्तन के इस तरह के उदाहरणो का मिलना असंभव है, क्योकि उसके आस पास कोई ऐसी भाषा नही है, जिस से उस की तुलना की जा सके। यह अकेली है, और जाने हुये इसके एक भी सम्बन्धी नहीं है।

कहा जाता हे पैशाची भाषा मे गुणाढ्य नामक एक बिद्वान्ने 'बड्डुकथा' अर्थात् 'वृहत्कथा' नामक एक ग्रन्थ लिखा था, यह ग्रन्थ अब नहीं प्राप्त होता। इसका संस्कृत अनुवाद पाया जाता है, जो काश्मीर के दो विद्वानो का किया हुआ है, इनका नाम क्षेमेन्द्र और सोमदेव था। इस संस्कृत ग्रन्थ का नाम 'कथासरित्सागर' है। 'बड्डुकथा, पैशाची भाषा के साहित्य का प्रधान ग्रन्थ है। इसके अतिरिक्त काश्मोरी भाषामे कुछ और ग्रन्थ है, परन्तु उनमे कोई विशेष प्रसिद्ध नही है।

काश्मीरी भाषा की प्रथम कवि एक स्त्री है, जिसका नाम लल्ला अथवा लालदेद था, वह चौदहवीं ईस्वी शताब्दी मे हुई है। मुसलमान कवियो मे महमूद गामी प्रसिद्ध है, यह अठारहवे शतक मे था, इसने 'यूसुफजुलेखा' 'लैलामजनू' और 'शीरींफरहाद' नाम की पुस्तके फारसी ग्रन्थो के आधार से लिखी है।

हेमचन्द्र ने दो प्रकार की पैशाची का वर्णन अपने प्राकृत व्याकरण मे किया है पहली को केवल पैशाची और दूसरी को चूलिकापैशाची लिखा है। पैशाची का वर्णन पाद ४ के ३०३ मे ३२४ तक के सूत्रो मे और चूलिका पैशाची का निरूपण ३२५ से ३२८ तक के सूत्रों मे किया गया

है। रामशर्म्मा ने अपने प्राकृत कल्पतरु मे पैशाची के दो भेद लिखे है, (१) शुद्ध और (२) संकीर्ण। शुद्ध के सात और संकीण के चार उपभेद उन्हो ने बतलाये है—शुद्ध के सात भेद ये है—

(१) मगधपैशाचिका (२) गौड पेशाचिका (३) शौरसेनी पैशाचिका (४) केकयपैशाचिका (५) पाचाल पैशाचिका (६) ब्राचडपैशाचिका (७) सूक्ष्मभेदपैशाचिका।

संकीर्ण के चार उपभेद ये है –

(१) भाषाशुद्ध (२) पदशुद्ध (३) अर्द्धशुद्ध (४) चतुष्पद शुद्ध।

आर्यभापा परिवार मे सिंहली और जिप्सी भाषाओं की भी गणना की जाती है।

अब से ढाई सहस्र वर्ष पहले विजयकुमार अपने अनुयायियों के साथ सिंहल गया था, और वहा उसने बुद्ध धर्म के साथ आर्य भाषा का भी प्रचार किया था। उसीकी संतान सिंहली है, जो अब तक वहा प्रचलित है। सिहली का प्राचीन रूप ईस्वो दशवे शतक का है, उसको 'इलू' कहते है। इस सिंहली का प्रभाव मालद्वोपभाषा पर भी पडा है। इस भाषा मे थोडा बहुत साहित्य भी है। किन्तु कोई प्रसिद्ध ग्रन्थ नहीं है।

पश्चिमी एशिया एवं यूरप के कई भागो मे फिरने वाली कुछ जातिया 'जिप्सी' कहलाती है, ये किसी स्थान विशेष मे नहीं रहती, यत्र तत्र सकुटुम्ब पर्यटन करतो रहतो है। इनकी भाषा का नाम भी जिप्सी है। ईस्वी पॉचवी शताब्दी मे जो प्राकृत रूप आर्यभापा का था, इनकी भाषा उसी की संतान है। यद्यपि भिन्न भिन्न स्थानों मे भ्रमण करते रहने और अनेक भापाभाषियो के संसर्ग से उनके भाषा मे बहुत अधिक परिवर्तन हो गया है। परन्तु उनकी भापा के शब्द भाण्डार पर आर्यभाषा की छाप लगी स्पष्ट दृष्टिगत होती है।

पांचवां प्रकरण ।

अन्तरंग और बहिरंग भाषा ।

जिन आर्य परिवार की भाषाओं का वर्णन अभी हुआ, कहाजाता है, उनमे दो विभाग है। एक का नाम है अन्तरंगभाषा और दूसरी का वहिरंग। इनभाषाओ की मध्य की भाषा को मध्यवर्ती भाषा कहते है और वह है अर्धमागधी से प्रसूत वर्त्तमान काल की पूर्वी हिन्दी। अन्तरंग भाषा मे निम्नलिखित भाषाओं की गणना है १ पश्चिमी हिन्दी २ पूर्वी पहाडी ३ मध्यपहाडी ४ पंजाबी ५ राजस्थानी ६ गुजराती और ७ पश्चिमीय पहाडी ।

निम्न लिखित भाषाये बहिरंग कहलाती है—

१ मराठी । २ उडिया । ३ विहारी । ४ बगाली ५ आसामी । ६ सिंधी और ७ पश्चिमी पंजाबी ।

'हौर्नेलका विचार है कि आर्यों के भारत मे दो दल आये एक पहले आया और दूसरा बाद को। जो दल पहले आया, वह मध्य देश मे आकर वही बस गया। इस दल के पश्चात् दूसरा प्रबलदल आया, और उसने अपने सजातियो को मध्य देश से निकाल बाहर किया। निकाले जाने पर पहले दल वाले मध्यदेश के ही चारो ओर, अर्थात् उसके पूर्व, पश्चिम उत्तर और दक्षिण ओर फैल गये, और वही बस गये। नवागत आर्यमध्य देश मे बस जाने के कारण 'अन्तरंग', और प्रथमागत आर्य मध्यदेश के बाहर निवास करने के कारण 'वहिरंग' कहलाये। 'अन्तरंग' आर्यो मे ही वैदिक संस्कृति और ब्राह्मण कालीन बिचारों का विकास हुआ। भारत मे दो भिन्न विरोधी दल आने के सिद्धान्त को डाक्टर जी० ए० ग्रियर्सन ने भी स्वीकार किया है। वे कहते है 'वहिरंग' आर्यो का 'डार्डिक' भाषाभाषियो से घनिष्ट सम्बन्ध था; और ऐसा ज्ञात होता है कि वे उन्ही की एक शाखा थे। मध्यदेश से चले जाने पर वहिरंग आर्य पंजाब, सिंध, गुजरात, राजपुताना, महाराष्ट्र प्रदेश,

पूर्वीयहिन्दीक्षेत्र विहार और उत्तर मे हिमालय की तराइयों मे बसे। मध्यदेश के अन्तरंग आर्यो की भाषा का वर्त्तमान प्रतिनिधि पश्चिमी हिन्दी है। अन्यप्रचलित आर्यभाषाये, 'वहिरंग' आर्यभाषा से विकसित हुई है" १

यहा यह प्रश्न हो सकता है कि जब पंजाब, गुजरात और राजपुताना वहिरंग आर्यो का ही निवास स्थान था, तो वहा की भाषाये अन्तरंग कैसे हो गई ? सिंध, महाराष्ट्र और बिहार के समान वहिरंग क्यो नहीं हुईं ? इसका उत्तर यह दिया जाता है कि प्रचारको और विजेताओ द्वारा मध्यदेश की शौरसेनी भाषाका बहुत बडा प्रभाव बाद को पंजाब, गुजरात और राजस्थान पर पडा, इसलिये इन स्थानो की भाषाये काल पाकर अन्तरंग बनगईं। इसी प्रकार राजस्थान और गुजरात के कुछ विजयी आगन्तुकों के प्रभाव से हिमालय की तराइयो की भाषा भी अन्तरंग हो गई। डा जी० ए० ग्रियर्सन लिखते है -

'मध्यदेशनिवासी आर्यो के वहा से राजपुताना और गुजरात मे आ बसने के विषय मे बहुत सी प्रचलित कथाये है। पहली यह है कि महाभारत के युद्ध काल मे द्वारिका की नींव गुजरात मे पड़ी। जैनों के प्राचीन कथानको के अनुसार गुजरात का सब से पहला चालुक्य राजा कन्नौज से आया। कहा जाता है नवीं ईस्वी शताब्दी के प्रारम्भ काल मे पश्चिमीय राजपुताने के भीलमाल अथवा भीनमाल नामक स्थान के एक गुर्जर राजपूत ने भी गुजरात को जीता। मारवाड के राठौर कहते है कि वे वहा पर बारहवी ईस्वी शताब्दी मे कन्नौज से आये। जयपुर के कछवाहे अयोध्या से आने का दावा करते है। गुजरात और राजपुतानेका घनिष्ट राजनैतिक सम्बन्ध इस ऐतिहासिक घटना से भी प्रकट होता है कि मेवाड के गहलौत वहा पर सौराष्ट्र से आये"

"गुर्जरों ने हूण तथा अन्य आक्रमण कारियो के साथ ईस्वी छठवींशताब्दी मे भारत मे प्रवेश किया, और वे शीघ्र ही बडे शक्ति शाली

1 The origin and development of the Bengali Language (§ 29) p 30

हो गये। भारत के चार प्रदेशों ने इन्हीं के नाम के आधार से अपना नाम ग्रहण किया है, उन मे से दो है गुजरात और गुजरानवाला, ये दोनो पजाब के जिले है, तीसरा है गुजरात प्रान्त। आलबरूनी जो दशवीं ईस्वी शताब्दी मे यहाँ आया, चौथा नाम बतलाता है, यह वह प्रदेश है जो जयपुर के उत्तर पूर्वीय भाग तथा अलवर राज्य के दक्षिण भाग से मिलकर बना है, डाक्टर भाण्डारकर भी इस कथन की पुष्टि करते है। वे यह भी कहते है कि पिछले गुर्जर हिमालय के उस भाग से आये जिसे सपादलक्ष कहते है। यह प्रदेश आधुनिक कमायूं गढवाल और उसका पश्चिमी भाग माना जासकता है। पूर्वीयराजपुताना उस समय इन गुर्जरों से भर गया था। १

इन पक्तियो के पढने से आशा है यह स्पष्ट हो गया होगा कि किस प्रकार मध्य देश के विजयी गुजरात और राजस्थान मे पहुँचे, और कैसे उनके प्रभाव से प्रभावित होने के कारण इन प्रान्तों मे अन्तरंग भाषा का प्रचार हुआ। यहा मै यह भी प्रकट कर देना चाहता हू कि गुर्जर विदेशी भले ही हों, परन्तु वे मध्य देश वालो की सभ्यता के ही उपासक और प्रचारक थे क्योकि ब्राह्मणों द्वारा दीक्षित हो कर उन्होने वैदिक धर्म मे प्रवेश किया था। डाक्टर ग्रियर्सन लिखते है—

अब इस बात को बहुत से विद्वानो ने स्वीकार किया है, कि कतिपय राजपूतो के दल परदेशी गुर्जरों के वंशज है, उनका केन्द्र आबू पहाड तथा उसके आस पास का स्थान था। प्रधानत वे कृषक थे, पर उनके पास भी प्रधान लोग और योद्धा थे। जब यह दल गण्यमान हो गया, तो उनको ब्राह्मणों ने क्षत्रिय पदवी दी, और वे राजपुत्र अथवा राजपूत कहलाने लगे, कुछ उनमे से ब्राह्मण भी बनगये" २—गुर्जरों के ब्राह्मण क्षत्रिय बनने के सिद्धान्त का आजकल प्रबल खण्डन हो रहा है, परन्तु मुझ को इस बितण्डावाद मे नही पडना है। मै ने इन पंक्तियो

---

१ देखो Bulletin of the School of Oriental Studies London Institue (§ 13) p 58

2 Ibid (§ 12) p. 57

को यहा इसलिये उठाया है, कि जिस से इस सिद्धान्त पर प्रकाश पड सके कि किस प्रकार गुज़रात, राजस्थान और पूर्वीय पंजाब मे अन्तरङ्ग भाषा का प्रचार हुआ। अब बिचारना यह है कि अन्तरंग और वहिरंग भाषाओं में कौनसी ऐशी विभिन्नताये है, जो एक को दूसरी से अलग करती है। डाक्टर चटर्जी कहते है—

"डाक्टर ग्रियर्सन ने जिन कारणो के आधार से अन्तरंग और बहिरंग भाषाओ को माना है, वे प्रधानत भाषा सम्बन्धी है। विचार करने पर उन्हे ज्ञात हुआ कि पश्चिमी हिन्दी तथा अन्य आर्य भाषाओ मे कुछ विषमताये है। उन्हो ने देखा कि ये विषमताये जो कि सब 'वहिरंग' भाषाओ मे एक ही है, प्राचीन आर्यभाषाओ के दोनो विभागों अर्थात् अन्तरंग और वहिरंग भाषाओं के भेद से ही उत्पन्न हुई है। केवल इतना ही नही कि वहिरंग भाषाओं की पारस्परिक समानता उन्हीं बातों मे है, जिनमें अन्तरंग भाषा से भिन्नता है, वरन् डार्डिक भाषाये प्राय. उन्ही कुछ विशेषताओ से भरी है, जिनसे कि वहिरंग भाषाये परिपूर्ण है। इस लिये अन्तरंग से उसकी भिन्नता और स्पष्ट हो जाती है"। १

कुछ मुख्य २ भिन्नताये लिखी जाती है

"इन दोनों शाखाओं की भाषाओ के उच्चारण मे अन्तर है। जिन वर्णो का उच्चारण सिसकार के साथ करना पडता है, उनको अन्तरंग भाषावाले बहुत कडी आवाज से बोलते है, यहा तक कि वह 'दन्त्य स हो जाता है। परन्तु वहिरंग भाषावाले ऐसा नहीं करते। इसी से मध्यदेश वालों के 'कोस' शव्द को सिन्धवालो ने 'कोह' कर दिया। पूर्व की ओर बंगाल मे यह 'स' श' हो जाता है। आसाम मे गिरते गिरते 'स' की आवाज 'च' की सी हो गई है। काश्मीर मे तो उसकी कडी आवाज बिल्कुल जाती रही है, वहाँ भी अन्तरंग भाषा का 'स' बिगड कर 'ह' हो गया है।

1 Dr S K Chatterjee The origin and development of the Bengali Language (§ 29) p 31

संज्ञाओं मे भी अन्तर है, अन्तरंग भाषाओं की मूल विभक्तिया प्राय गिर गई है, उनका लोप होगया है और धीरे धीरे उनकी जगह पर और ही छोटे छोटे शब्द मूल शब्दो के साथ जुड गये है, जो विभक्तियों का काम देते है। उदाहरण के लिये हिन्दी भाषा की 'का' 'को' 'से' आदि विभक्तियो को देखिये ए जिस शब्द के अन्त मे आती है, उस शब्द का उन्हे मूल अंश न समझना चाहिये। ये पृथक् शब्द है, और विभक्तिगत अपेक्षित अर्थ देने के लिये जोडे जाते है। इसलिये वहिरंग भाषाओ को व्यवच्छेदक भाषाये कहना चाहिये। वहिरंग भाषाये जिस समय पुरानी संस्कृत के रूप मे थीं, संयोगात्मक थीं। 'का' 'को' 'से' आदि से जो अर्थ निकलता है उसके सूचक शब्द उनमे अलग न जोडे जाते थे। इस के बाद उन्हे व्यवच्छेदक रूप प्राप्त हुआ, सिंधी और काश्मीरी भाषाये अब तक कुछ कुछ इसी रूप मे है। कुछ काल बाद फिर ये भाषाये संयोगात्मक होगई, और व्यवच्छेदक अवस्था मे जो विभक्तिया अलग हो गई थीं, वे इनके मूलरूप मे मिल गई। बॅगला मे षष्ठी विभक्ति का चिन्ह "एर" इसका अच्छा उदाहरण है।

क्रियाओ मे भी भेद है, वहिरंग भाषाये पुरानी संस्कृत की किसी ऐसी एक या अधिक भाषाओं से निकली है, जिनकी भूतकालिक भाववाच्य क्रियाओं से सर्वनामात्मक कर्त्ता के अर्थ का भी बोध होता था। अर्थात् क्रिया और कर्त्ता एक ही में मिले होते थे। यह विशेषता वहिरंगभाषा मे भी पाई जाती है। उदाहरण के लिये बँगलाभाषा का 'मारिलाम' देखिये। इसका अर्थ है मैं ने मारा। परन्तु अन्तरंग भाषाये किसी ऐसी एक या अधिक भाषाओं से निकली है, जिनमे इस तरह के क्रियापद नही प्रयुक्त होते थे। उदाहरण के लिये हिन्दी का मारा लीजिये, इससे यह नही ज्ञात होता कि किसने मारा। मैने मारा, तुमने मारा, उसने मारा, जो चाहिये समझ लीजिये। 'मारा' का रूप सब के लिये एकही होगा। इससे साबित है कि अन्तरंग और वहिरंग-भाषाये प्राचीन आर्यभाषा की भिन्न भिन्न शाखाओ से निकली है, इनका उत्पत्तिस्थान एक नही है"। २

---

२ देखो हिन्दी भाषा की उत्पत्ति नामक ग्रन्थ का पृष्ट १४।

पहले पृष्ठो मे मै ने इस सिद्धान्त को नहीं स्वीकार किया है, कि आर्यजाति बाहर से आई। मैने प्रमाणो के द्वारा यह सिद्ध किया है कि आर्य जाति भारत के पश्चिमोत्तर भाग से ही आकर भारतवर्ष मे फैली। यद्यपि इस सिद्धान्त के मानने से भी मध्यदेश में आर्यों के एक दल का पहले और दूसरे दल का बाद मे आना स्वीकार किया जा सकता है, किन्तु इस स्वीकृति की बाधक वह विचार-परम्परा है जो इस बात को भलीभाति प्रमाणित कर चुकी है कि पश्चिमागत आर्यजाति का समूह चिरकाल तक सप्तसिन्धु मे रहा, और वहीं वैदिक संस्कृति और सभ्यता का विकास हुआ। मेरा विचार है पूर्वागत और नवागत आर्य्य समूह की कल्पना, और इस सिद्धान्त के आधार पर अन्तरंग और वहिरंग भाषाओं की सृष्टि युक्ति संगत नहीं, हर्ष है कि आजकल इस विचार का विरोध होने लगा है।

कुछ विवेचक भाषा विभिन्नता सिद्धान्त को साधारण मानते है, उनका कथन है कि विभिन्नताये वे विशेषताये नहीं बन सकतीं, जो किसी एक भाषा को दूसरी भाषा से अलग करती है। वहिरंगभाषा की जिन विभिन्नताओं के आधार पर अंतरंग भाषा को उससे अलग किया जाता है, वे स्वयं उसमे मौजूद है। इन लोगो ने जो प्रमाण दिये है, उनमे से कुछ नीचे लिखे जाते है। अंतरंग और वहिरंग भाषा की उपरिलिखित विभिन्नताओं की चर्चा करके "हिन्दी भाषा और साहित्य" नामक ग्रन्थ मे यह लिखा गया है

"इसमत का अब खण्डन होने लगा है। और दोनों प्रकार की भाषाओं के भेद के जो कारण ऊपर दिखाये गये है, वे अन्यथा सिद्ध है। जैसे—'स' का 'ह' हो जाना केवल वहिरंग भाषा काही लक्षण नही है, किन्तु अन्तरंग मानी जाने वाली पश्चिमी हिन्दी मे भी ऐसा होता है। इसके तस्थ-तस्स-तास-ताह-ता (ताको-ताहि इत्यादि) करिष्यति—करिस्सदि-करिसद-करिहइ-करि है, एवं केसरी से केहरी आदि बहुत से उदाहरण मिलते है। इसी प्रकार वहिरंग मानी जाने वाली भाषाओं मे

भी 'स' का प्रयोग पाया जाता है—जैसे राजस्थानी (जयपुरी) करसी, पश्चिमी पंजाबी 'करेसी' इत्यादि। इसी प्रकार संख्यावाचको मे 'स' का 'ह' प्राय सभी मध्यकालीन तथा आधुनिक आर्यभाषाओ मे पाया जाता है। जैसे पश्चिमी हिन्दी मे 'ग्यारह' 'बारह' चौहत्तर इत्यादि"। १

'अंतरंग वहिरंग भेद के संयोगावस्था के प्रत्ययो और वियोगावस्था के स्वतंत्र शब्दो के भेद की कल्पना भी दुर्बल है। अंतरंग मानी गई पश्चिमी हिन्दी तथा अन्य सभी आधुनिकभाषाओ मे संयोगावस्थापन्नरूपो का आभास मिलता है। यह दूसरी बात है कि किसी मे कोई रूप सुरक्षित हे किसी मे कोई। पश्चिमी हिन्दी और अन्य आधुनिक आर्यभाषाओ की रूपावली मे स्पष्टत हम यही भेद पाते है कि उसमे कारक चिन्हो के पूर्व विकारी रूपही आते है। जेमे—'घोडे का' मे 'घोडे'। यह घोडे, घोडहि (घोटस्य अथवा घोटक+ तृतीया बहुवचन बिभक्ति, 'हि'—भि) से निकला है। यह बिकारी रूप संयोगावस्थापन्न होकर भी अन्तरंग मानी गई भाषाका है। इसके विपरीत वहिरंग मानीगई बँगला का घोडार, और विहारी का 'घोराक' रूप संयोगावस्थापन्न नहीं, किन्तु घोटक+कर और घोडार+क-क्क से घिस घिसाकर बना हुआ सम्मिश्रण है। पुनश्च अतरंग मानी हुई जिस पश्चिमी हिन्दी मे वियोगावस्थापन्न रूप ही मिलने चाहिये, कारको का बोध स्वतंत्र सहायक शब्दों के द्वारा होना चाहिये, उसी मे प्राय सभी कारको मे ऐसे रूप पाये जाते है जो नितान्त संयोगावस्थापन्न है। अतएव वे बिना किसी सहायक शब्द के प्रयुक्त होते है।

उदाहरण लीजिये

कर्त्ता एकवचन—घोडो (ब्रजभाषा) घोडा (खडीबोली) घरु (ब्रजभाषा नपुंसकलिंग)।

१—देखो 'हिन्दी भाषा और साहित्य' पृष्ठ ३२

कर्त्ता बहुवचन—घोड़े (—घोड़ेह घोडहि=तृतीया बहुवचन 'मैं' के समान प्रथमा मे प्रयुज्यमान)।

करण—आखो (=अक्खिहिं, खुसरूवाको आखो दीठा-अमीर खुसरो) कानो (कण्णहिं)

करण —(कर्त्ता)—मैं (ढोला मइं तुहुं वारिआ) मैं सुन्यो साहिबिन ऑषिकीन—पृथ्वी) तै, मै ने, तै ने (दुहरी विभक्ति) -

अपादान—एकवचन—मुक्खा (=भूखसे—बागडू) भूखन, भूखो (ब्रज-भाषा, (कनौजी)

अधिकरण - एकवचन—घरे-आगे-हिडोरे (बिहारी लाल) माथे (सूरदास)

दूसरे वहिरंग मानी गई पश्चिमी पंजाबी मे भी पश्चिमी हिन्दी के समान सहायक शब्दों का प्रयोग होता है। घोडेदा (घोडे का) घोडे ने घोडे नूं इत्यादि। इससे यह निष्कर्ष निकला कि बॅगला आदि में पश्चिमी हिन्दी से बढ कर कुछ संयोगावस्थापन्न रूपावली नही मिलती। अत उसके कारण दोनो मे भेद मानना अयुक्त है"। १

डाक्टर चटर्जी ने इस विषय पर बहुत कुछ लिखा है, और अपने सिद्धान्त के प्रतिपादन मे बडा पाण्डित्य प्रदर्शन किया है। खेद है कि मै उनके सम्पूर्ण विवेचन को स्थान की संकीर्णता के कारण यहा नहीं उठा सकता। परन्तु विवेचना के अन्तिम निर्णय को लिख देना चाहता हू, वह यह है और मै उससे पूर्णतया सहमत हूं—

"पुरातत्व और मानव इतिहास के आधार पर 'वहिरंग' आर्योका 'अन्तरंग' आर्यों के चारों ओर वस जाने की बात को पुष्ट करने की चेष्टा उसी प्रकार अप्रमाणित रह जाती है, जैसे भाषासम्बन्धी सिद्धान्त के सहारे से निश्चित की हुई बाते। २

"The attempt to establish on anthropometrical and ethnological grounds a ring of "Outer" Aryandom round an "Inner" core is as unconvincing as that on linguistic grounds"

१ देखो—'हिन्दी भाषा और साहित्य' पृ० १९१, १९२।

२ देखो—'ओरिजन एंड डिवलेपमेन्ट आफ बंगाली लांगवेज पृ० ३३ (६३१)

छठा प्रकरण ।

हिन्दी भाषा की विभक्तियाँ, सर्वनाम, और उसकी क्रियायें

हिन्दी विभक्तियों के विषय में कुछ विद्वानों ने ऐसी बाते कही है, जिससे यह पाया जाता है, कि वे विदेशीय भाषाओं से अथवा द्राविड भाषा से उसमे गृहीत हुई है, इसलिये इस सिद्धान्त के विषय मे भी कुछ लिखने की आवश्यकता ज्ञात होती है। क्योकि यदि हिन्दी भाषा वास्तव मे शौरसेनी अपभ्रंश से प्रसूत है, तो उसकी विभक्तियो का उद्गम भी उसी को होना चाहिये। अन्यथा उसकी उत्पत्ति का सर्वमान्य सिद्धान्त संदिग्ध हो जावेगा। किसी भाषा के विशेष अवयव और उसके धातु किसी मुख्य भाषा पर जबतक अवलम्बित न होगे, उस समय तक उससे उसकी उत्पत्ति स्वीकृत न होगी। ऐसी अनेक भाषाये है, जिनमे विदेशी भाषाओ की बहुत सी संज्ञाये पाई जाती है परिवर्तित रूप मे उनमें उन भाषाओं की कुछ क्रियायें भी मल जाती है। यदि केवल उनके आधार से हम वचार करने लगेगे तो उस विदेशी भाषा से ही उनकी उत्पत्ति माननी पडेगी, कन्तु यह बात वास्तविक और युक्तिसंगत न होगी। दूसरी बात यह क एक ही भाषा मे वभन्न भाषाओ के अनेक व्यवहारिक शब्द मिलते है, विशेष करके आदान-प्रदान अथवा खान पान एवं व्यवहार सम्बन्धी। यदि ऐसे कुछ शब्दो को ही लेकर कोई यह निर्णय करे कि इस भाषा की उत्पत्ति उन सभी भाषाओ से हे, जिनके शब्द उसमे पाये जाते है, तो कितनी भ्रान्ति जनक बात होगी, और इस विचार से तथ्य का अनुसंधान कितना अव्यवहारिक हो जावेगा। इन्हीं सब बातो पर दृष्टि रख कर किसी भाषा का मूल निर्धारण करने के लिये उससे सम्बन्ध रखनेवाले मौलिक आधारो की ही मीमासा आवश्यक होती है। बिभक्तियो और प्रत्ययो की गणना भाषा के मौलिक अंगो मे ही की जाती है। इस लिये विचारणीय यह है कि हिन्दी भाषा की विभक्तिया कहा से आई है, और उनका आधार क्या है।

"डाक्टर ' के, कहते हैं कि हिन्दी का 'को' (जैसे-हमको) और

ंगला का 'के, (जैसे राम के) तातार देशीय अन्त्यवर्ण 'क, से आगत हुआ है। डाक्टर 'काल्डवेल, अनुमान करते है कि द्राविड भाषा के 'कु, से हिन्दी भाषा का 'को' लिया गया है। वे यह भी कहते है कि हिन्दी प्रभृति देशी भाषाये द्राविड भाषा से उत्पन्न हुई है। डाक्टर हार्नली और राजा राजेन्द्र लाल मित्र ने इन सबमतों का अयुक्त होना सिद्ध किया है।" डाक्टर हार्नली की सम्मति यहा उठाई जाती है—

"डाक्टर 'काल्डवेड, का कथन है कि आर्यगण, आर्य्यावर्त जय करके जितना आगे बढने लगे, उतना ही देश में प्रचलित अनार्य भाषा संस्कृत शब्दों के ऐश्वर्य द्वारा पुष्टि लाभ करने लगी । इसलिये यह भ्रम होता है, कि अनार्य भाषाये संस्कृत से उत्पन्न है। किन्तु संस्कृत का प्रभाव कितना ही प्रवल क्यों न हो, इन सब भाषाओं का व्याकरण उसके द्वारा परिवर्तित न हो सका। इसके उत्तर मे डाक्टर हार्नली कहते है, आर्यगण बहुत समय तक आर्यावर्त्त में रह कर सहसा अनार्य गणों की भाषा ग्रहण कर लेंगे, यह बात विश्वास योग्य नही। उनलोगो ने चिरकाल तक संस्कृत जातीय पालि और प्राकृतभाषा का व्यवहार किया था, यह बात विशेष रूप से प्रमाणित हो गई है। नाटकादिकों के प्राकृत द्वारा यह भी दृष्टिगत होता है कि विजित अनार्यो ने भी अपने प्रभुओं की भाषा को ग्रहण कर लिया था। इतने समय तक हिन्दूलोग अपनी भाषा और व्याकरण को अनार्यगण मे प्रचलित रख कर भी अन्त में क्यों अनार्य व्याकरण के शरणागत होंगे, यह विचारणीय है। दूसरी बात यह कि देशभाषाओं की उत्पत्ति के समय (आर्यभाषा की दीर्घकाल व्यापी अखण्ड राजत्व के उपरान्त) विजित अनार्यगण की भाषा देश मे प्रचलित थी। इसका भी कोई प्रमाण नहीं है। इतिहासमे अवश्य कभी कभी यह भी देखा गया है, कि विजेता जातियो ने विजित जातियो का व्याकरण ग्रहण कर लिया है, जैसे नार्मन लोगो ने इंगलेण्ड में और अरब एवं तुर्की लोगों ने आर्य्यावर्त मे तथा फ्रान्सवालों ने गल मे। किन्तु इन सब स्थानों में विजेता लोग विजित लोगों की अपेक्षा अल्प शिक्षित थे । उपनिवेश स्थापन के प्रारम्भ काल से ही भाषाग्रहण का सूत्रपात उन्हों ने कर दिया था। विजयी जाति बहुकाल पर्यन्त अपनी भाषा और स्वातन्त्र्य

गौरव की रक्षा करके अन्त मे असभ्य जातियों के निकट उसको विसर्जित कर दे, इतिहास मे कही यह बात दृष्टिगत नहीं होती ।" १

देशीय भाषाओ को समस्त विभक्ति प्राकृत से ही प्राप्त हुई है, इस बात को डाक्टर राजेन्द्रलाल मित्र, हार्नली, और अन्य जर्मन पण्डितोने दिखलाने की चेष्टा की है। और विद्वानो ने भी इस सिद्धान्त को पुष्ट किया है। मै क्रमश. प्रत्येक विभक्तियो के विषय मे उन लोगों के विचारों का उल्लेख करता हू ।

(१) कर्त्ता कारक मे भूतकालिक सकर्मक क्रिया के साथ ब्रजभाषा एवम् खडी बोली मे 'ने' का प्रयोग होता है, किन्तु अवधीमे ऐसा नहीं होता ब्रज भाषा मे भी प्राय कवियो ने इस प्रयोग का त्याग किया है, फिर भी यह नहीं कहा जा सकता कि अवधी के समान ब्रजभाषा मे 'ने' का प्रयोग होता ही नहीं। प्रथमा एक बचन मे कहीं कहीं कर्त्ता के साथ 'ए का प्रयोग देखा जाता है। यथा— "शु अणेहु शिचाण कम्पके शामीए निद्धणके बिशोहेदि) मृ० क० ३ अंक" बॅगला भाषा मे भी पहले इस प्रकार का प्रयोग देखा जाता है— यथा

कदाचित ना दे सिद्धहेनो रूप ठान ।

कोन मते <u>विधाताए</u> करिछे निर्माण। रामेश्वरी महाभारत पृ० ८६ "किन्तु अब बॅगलामें भी प्रथम एक वचन मे इस 'ए' का अभाव है, अब बॅंगला में प्रथमा का रूप संस्कृत के समान होता है, किन्तु अनुस्वार अथवा बिसर्ग वर्ज्जित"। २ प्रश्न यह है कि प्राकृत भाषा के उक्त 'ए' का सम्बन्ध क्या हमारी हिन्दी भाषा के 'ने' से है ?

'एक विद्वान् की सम्मति है कि यह 'ने' वास्तव मे करण कारक का चिन्ह है, जो हिन्दी मे गृहीत कर्मवाच्य रूप के कारण आया है, 'संस्कृत मे करण कारक का 'इन' प्राकृत मे 'एण' हो जाता है, इसी 'इन का वर्ण विपरीत हिन्दी रूप मे 'ने' है" ३

---

१ बगभाषा और साहित्य—पृ० ३६

२—बगभाषा और साहित्य ३८ पृष्ट।

३—दे० हिन्दी भाषा और साहित्य का पृ० १३८।

(२) कम और सम्प्रदान। टम्पका अनुमान है कि बॅगला कर्म्म और सम्प्रदान कारक का के' संस्कृत के सप्तमी में प्रयुक्त 'कृते' शब्द से आया है। इस 'कृते' के निमित्तार्थक प्रयोग का उदाहरण स्थान स्थान पर मिलता है—यथा

बालिशो बत कामात्मा राजा दशरथो भृशम्।
प्रस्थापयामास वनं स्त्रीकृते यः प्रियंसुतम्॥

•यह कृते शब्द प्राकृत मे 'किते' किउ एवं 'को' इन तीनों रूपों मे ही व्यवहृत हुआ है। इसी लिये टम्प का यह अनुमान है कि शेषोक्त 'को' के साथ हिन्दी के को' और बॅगला के 'के' का सम्वन्ध है' १

' बॅगभाषा और साहित्य, नामक ग्रन्थ के रचयिता टम्प की सम्मति से सहमत न होकर अपनी सम्मति यों प्रकट करते है—

"मैक्समूलर कहते है कि संस्कृत के स्वार्थे 'क' से बॅगला का के (हिन्दी का को) आया है। पिछले समय मे संस्कृत मे स्वार्थे 'क' का प्रयोग अधिकतर देखा जाता है। मैं मैक्समूलर के मत को ही समीचीन समझता हू। २

श्रीमान् पण्डित महावीर प्रसाद द्विवेदी कहते है—

"पुरानी सस्कृत का एक शब्द 'कृते,' है जिसका अर्थ है (लिये) होते होते इसका रूपान्तर 'कहु' हुआ, वर्त्तमान 'को' इसीका अपभ्रंश है" हिन्दी-भाषा की उत्पत्ति पृ० ७०

एक विद्वान् की सम्मति और सुनिये—

"संस्कृत रूप 'कृते' प्राकृत मे किते हो गया, और नियमानुसार त का लोप होने से 'किये' हुआ, और फिर वही के मे परिणत हो गया। 'को' प्रत्यय संस्कृत के कर्म्मकारक के नपुसक 'कृतं' से हुआ। प्राकृत मे 'कृतं' बदल कर 'कितो' हुआ, और त के लोप होने से 'किओ' बना, और अन्त मे उसने 'को' का रूप धारण कर लिया" ३

१, २ वंगभाषा और साहित्य पृ० ३९।
३—देखिये (ओरिजन) आफ़ दी हिन्दी लैंग्वेज पृ० ११।

आपलोगों ने सब सम्मतियाँ पढ लीं, अधिकाश सम्मति यही है कि 'को' की उत्पत्ति 'कृते' से है। 'को' का प्रयोग कर्म्मकारक मे तो होता ही है, संप्रदान के लिये भी होता है, संप्रदान की एक विभक्ति 'केलिये' भी है। कृते' मे यह निमित्तार्थक भाव भी है, जैसा कि ऊपर दिखलाया गया है। इस लिये मै भी 'कृते' से ही 'को' की उत्पत्ति स्वीकार करता हू।

(३) करण और अपादान कारक की विभक्ति हिन्दीभाषा मे 'से' है। करण कारक के साथ 'से' प्राय उसी अर्थ का द्योतक है, जिसको संस्कृत का 'द्वारा' शब्द प्रकट करता है, इस 'से' मे एक प्रकार से सहायक होने अथवा सहायक बनने का भाव रहता है। यदि कहा जाये कि 'वाण से मारा' तो इसका यही अर्थ होगा कि वाण द्वारा अथवा वाण के सहारे से या वाण की सहायता से मारा। परन्तु अपादान का 'से, इस अर्थ मे नहीं आता, उसके 'से' मे अलग करने का भाव है। जब कहा जाता है 'घर से निकल गया' तो यही भाव उससे प्रकट होता है कि निकलने वाला घर से अलग हो गया। जब कहते हैं 'पर्वत से गिरा' तो भी वाक्य का 'से' पर्वत से अलग होने का भाव ही सूचित करता है। 'से' एक विभक्ति होने पर भी करण और अपादान कारको मे भिन्न भिन्न अर्थों मे प्रयुक्त होता है। 'बंगभाषा और साहित्य' कार लिखते हैं—"प्राकृत मे 'हितो' शब्द पञ्चमी के बहुवचन मे व्यवहृत होता है, इसी 'हितो' शब्द से बँगला 'हइते' की उत्पत्ति हुई है"। उन्होंने प्रमाण के लिये वररुचि का यह सूत्रभी लिखा है 'भावो हितो सुतो'। व्रजभाषा मे 'से' का प्रयोग नहीं मिलता उसमे ते का प्रयोग 'से' के स्थान पर देखा जाता है। 'से' के स्थान पर कबीर दास को 'सेती' अथवा 'सेती' औ चदवरदाई को 'हुँत' लिखते पाते है। इससे अनुमान होता है कि जैसे बँगला मे 'हितो' से हइते बना उसी प्रकार हिन्दी मे 'हुत' और 'ते'। और ऐसे ही 'सुंतो' के आधार से 'सेती' और से। कुछ विद्वानो की यह सम्मति है कि संस्कृत के 'सह' अथवा सम से 'से' की उत्पत्ति हुई है। करण मे सहयोग का भाव पाया जाता है, ऐसी अवस्था मे उसकी विभक्ति की उत्पत्ति 'सह' से होने की कल्पना स्वाभाविक

है। इसी प्रकार 'सम' से 'से' की उत्पत्ति का विचार इस कारण से हुआ पाया जाता है कि प्राचीन कवियो को सम को 'से' के स्थान पर प्रयोग करते देखा जाता है। निम्नलिखित पद्यो को देखिये—

कहि सनकादिक इन्द्र सम।
बलि लागौ जुध इन्द्र सम॥

पृथ्वीराज रासो।

अवधी मे, कहीं ब्रजभाषा मे भी 'से' के स्थान पर 'सन' का प्रयोग किया जाता है। इस 'सन' के स्थान पर 'से' और सों भी होता है। इसलिये कुछ भाषा मर्मज्ञो ने यह निश्चित किया है कि 'सम' से 'सन' हुआ और 'सन' से सो और फिर 'से' हुआ। ऊपर लिख आया हू कि प्राकृत मे पंचमी वहुवचन मे 'हितो' होता है। अनुमान किया गया है कि 'हितो' से ही पञ्चमी का 'ते' बना, परन्तु 'से' का ग्रहण पंचमी मे कैसे हुआ, यह बात अब तक यथार्थ रूप से निर्णीत नहीं हुई।

(४) सम्बन्ध कारक की विभक्ति के विषय मे अनेक मत देखा जाता है—मिस्टर बप् अनुमान करते है कि हिन्दी का 'का' और बॅगला-भाषा की षष्ठी विभक्ति का चिन्ह, संस्कृत षष्ठी बहुबचन के 'अस्माकम्' एवं युष्माकम्' इत्यादि के 'क' से गृहीत है। १ किन्तु हार्नली साहब ने बप् के अनुमान के विरुद्ध अनेक युक्तियॉ दिखलाई है, उनके मत से संस्कृत के 'कृते' के प्राकृत रूपान्तर से ही बँगला और हिन्दी के षष्ठी कारक का चिन्ह ,का' अथवा विभक्ति ली गई है २ कृते' से प्राकृत 'केरक' उत्पन्न हुआ है। इस 'केरक' का अनेक उदाहरण पाया जाता है, जहा यह 'केरक,' शब्द प्रयुक्त हुआ है, वहा उसका कोई स्वकीय अर्थ दृष्टिगत नहीं होता, वहा वह केवल षष्ठी के चिन्ह स्वरूप ही व्यवहृत हुआ है—यथा

"तुमम् पि अप्पणो केरिकम् जादि मसुमरेसि"
"कस्स केरकम् एदम् पवँणम्" मृ-क-षष्ठ अंक

इसीं केरक अथवा केरिक से हिन्दी 'कर' 'केर' और 'केरी' की उत्पत्ति हुई है। ३

१, २ और ३—बगभाषा और साहित्य पृ० ४३, ४४

पहले लिखा गया है कि मैक्समूलरकी यह सम्मति है कि संस्कृत का स्वार्थे 'क' ही बदल कर कर्म्मकारक का को' हो गया है. 'बंगभाषा और साहित्य' के रचयिता ने इसको स्वीकार भी किया है, मेरा विचार है कि इसी स्वार्थे क' से षष्ठी विभक्ति के 'का' की उत्पत्ति हुई है। केरक के स्थान मे प्राकृत भाषा मे केरओ प्रयोग मिलता है. यही केरओ काल पाकर केरो बन गया, कर, केर और केरी भी हुआ परन्तु सम्बन्ध का चिन्ह 'का' 'की' 'के' भी यही बन गया, यह कुछ क्लिष्ट कल्पना ज्ञात होती है। जैसे— केरो, केरी, और कर का प्रयोग हिन्दी साहित्य मे मिलता है—यथा

बंदो पदसरोज सब केरे— तुलसी
क्षत्र जाति कर रोष— तुलसी
हौ पंडितन केर पछलगा— जायसी

उसी प्रकार 'क' का प्रयोग भी देखा जाता है—यथा

बनपति उहै जेहि क संसारा—
बनिय क सखरज ठकुर क हीन।
बैद क पूत व्याध नहिँ चीन।

जब सम्बन्ध मे क का प्रयोग देखा जाता है, तो यह विचार होता है कि क्या यही स्वार्थे क बदल कर सम्बन्ध की विभक्ति तो नही बन गया है ? जो कहीं अपने मुख्यरूप मे और कहीं 'का' 'के' 'की' बन कर प्रकट होता है। यदि वह कर्म्म का चिन्ह मैक्समूलर के कथनानुसार हो सकता है, तो सम्बन्ध का चिन्ह क्यो नहीं बन सकता। पहला विचार यदि विवाद ग्रस्त हो तो हो सकता है, परन्तु यह विचार उतना वादग्रस्त नहीं वरन् अधिकतर सभव परक है। यदि कहा जावे कि स्वार्थे क का अर्थ वही होता है, जो उस शब्द का होता है, जिसके साथ वह रहता है, उसका अलग अर्थ कुछ नहीं होता जैसे संस्कृत का वृक्षक, चारुदंतक, अथवा पुत्रक आदि, एवं हिन्दी का बहुतक, कबहुक एवं कछुक आदि। तो जाने दीजिये उसको, निम्नलिखित सिद्धान्त को मानिये—

प्राय तत्सम्बन्धी अर्थ मे संस्कृत मे एक प्रत्यय क' आता है—जैसे—मद्रक=मद्र देशका, रोमक=रोमदेशका । प्राचीन हिन्दी मे का के स्थान मे क पाया जाता है, जिस से यह जान पडता है कि हिन्दी का 'का , संस्कृत के क प्रत्यय से निकला है । १

जो कुछ अब तक कहा गया उससे इस सिद्धान्त पर उपनीत होना पडता है कि प्राकृतभाषा का 'केरक, केरओ', आदि से 'केरा, केरी, और केरो', आदि की और सम्बन्ध सूचक संस्कृत के 'क' प्रत्यय से "का, के," की उत्पत्ति अधिकतर युक्ति संगत है ।

(५) अधिकरण कारक का चिन्ह हिन्दी मे 'मैं' 'माहि' 'माझ' इत्यादि है । साथ ही "पै, पर" आदि का प्रयोग भी सप्तमी मे देखा जाता है, जैसे कोठे पर है । केवल "ए का प्रयोग भी संस्कृत के समान ही हिन्दी मे भी देखा जाता है—जैसे, आप का कहा सिर माथे, मे थे का "ए" । सप्तमी मे इस प्रकार का जो क्वचित् प्रयोग खडी बोलचाल मे देखा जाता है, वह बिल्कुल संस्कृत के गहने कानने आदि सप्तम्यन्त प्रयोग के समान है, ब्रजभाषा और अवधी मे इस प्रकार का अधिक प्रयोग मिलता है – जैसे घरे गेलै, आदि । "पर और पै" का प्रयोग संस्कृत के "उपरि" शब्दसे हिन्दी मे आया है । एक विद्वान् की यह सम्मति है—

"हिन्दी के कुछ रूपो मे अधिकरण कारक के 'मे' चिन्ह के स्थान पर 'पै' का प्रयोग होता है, इसकी उत्पत्ति संस्कृत के उपरि शब्द से हुई है । पहले पहल उपरि का पर हुआ, जैसे मुख पर—बाद को पै बन गया" २

मै, मॉहि, मॉझ इत्यादिकी उत्पत्ति कहा जाता है कि मध्य से हुआ है। ब्रजभाषा और अवधी दोनो मे मॉहि और मॉझ का प्रयोग देखा जाता है, किन्तु खडी बोली मे केवल मे' का व्यवहार होता है । ब्रजभाषा मे 'मे' के स्थान पर 'मै' ही प्राय लिखा जाता है । प्राकृत भाषा का यह नियम है कि पद के आदि का 'ध्य' 'झ' और अन्त का 'ध्य' 'ज्झ' हो जाता है ३ ।

१—देखो 'हिन्दी भाषा और साहित्य' का पृष्ठ १४३ ।
२—देखो 'ओरिजन आफ् दी हिन्दी लैंग्वेज का पृष्ठ १२ ।
३—देखो 'पालिप्रकाश' मुख्य ग्रन्थ का पृष्ठ १९

इस नियम के अनुसार मध्य शब्द का अन्त्य 'ध्य' जब 'ज्झ' से बदल जाता है, तो मज्झ शब्द बनता है, यथा—बुध्यते, बुज्झते, सिध्यति-सिज्झति इत्यादि। यही मज्झ शब्द ब्रजभाषा और अवधी मे माँझ, और अधिक कोमल होकर माँह, माहिँ आदि बनता है। इसी माँह, माँहि से मै और मे की उत्पत्ति भी बतलाई जाती है। प्राकृत की सप्तमी एक वचन मे "स्मि" का प्रयोग होता है कुछ लोगो की सम्मति है कि प्राकृत के स्मि अथवा म्मि से मे अथवा मै की उत्पत्ति है १

विभक्तियो के विषय मे यद्यपि यह निश्चित है कि वे संस्कृत अथवा प्राकृत से ही हिन्दी अथवा अन्य गौडीय* भाषाओं मे आई है। परन्तु कभी कभी विरुद्ध बाते भी सुनाई पडती है, जैसे—यह कि द्राविड भाषा के सम्प्रदान कारक के 'कु' विभक्ति से हिन्दी भाषा के 'को अथवा बँगला भाषा के 'के' की उत्पत्ति हुई। ऐसी बातों मे प्राय अधिकाश कल्पना ही होती है। इसलिये, उनमे वास्तवता नहीं होती, विशेष विवेचन होने पर उनका निराकरण हो जाता है। तो भी यह स्वीकार करना पडेगा कि अबतक निर्विवाद रूप से विभक्तियो के विषय मे कुछ नहीं कहा जा सकता। जितनी बाते ज्ञात हो सकी है, उनका ही उल्लेख यहा किया जा सका।

सर्वनाम भी भाषाके प्रधान अंग है, और किसी भाषाके वास्तविक स्वरूप ज्ञान के लिये क्रिया सम्बन्धी प्रयोगों का अवगत होना भी आवश्यक है, इसलिये यहा पर कुछ उनकी चर्चा भी की जाती है।

उत्तम पुरुष एक बचन मे 'मैं' और बहुवचन मे 'हम' होता है, संस्कृतके 'अस्मद्' शब्द से दोनों की उत्पत्ति बतलाई जाती है। प्राकृत मे तृतीया के एकवचन का रूप 'मया, और बहुवचन का रूप 'अम्हेहि, और 'अम्हेभि होता है। प्रथमा के बहुवचन का रूप 'अम्हे, है २ अपभ्रंश में यह "मया"

१—देखिये पालि प्रकाश पृ० ८४ हिन्दीभाषा और साहित्य पृ० १४७,

* हार्नली साहब ने निम्नलिखित भाषाओं को गौडीयभाषा कहा है सुबिधा के लिये इन भाषाओं को हमभी कभी कभी इसी नाम से स्मरण करेंगे।

उडिया, बँगला, हिन्दी, नैपाली, महाराष्ट्री, गुजराती, सिंधी, पजाबी, और काश्मीरी।

२—देखिये पालिप्रकाश पृ० १९३

'मइ' मइँ हो जाता है। यथा—'ढोला मइँ तुहुँ वारिया, इसी मइँ से हिन्दी के मै की और वहुवचन 'अम्हेहि" अथवा "अम्हे" से हम की उत्पत्ति बतलाई जाती है। मृच्छ कटिक नाटक मे "अस्मद्' का प्राकृत रूप आम्हि भी मिलता है, कहा जाता है इसी आम्हि से बँगला के आमि की उत्पत्ति हुई है १ बँगला के आमि से हमारे मै और हम की बहुत कुछ समानता है। आगे चल कर इसी मै से मुझे" 'मुझको" और 'मेरा" आदि 'और हम से "हमको और हमारा" आदि रूप बनते है। एक विद्वान् की सम्मति है कि अहम् से 'हम' की उत्पत्ति वैसे ही है, जैसे अ के गिर जाने से अहै से है की।

मध्यम पुरुष का तू, तुम सॅस्कृत् युष्मत् से बनता है। प्राकृत मे प्रथमा का एकवचन त्वं और तुवं और वहुवचन 'तुम्ह' होता है। चतुर्थी और षष्टी का एकवचन "तुम्हं" बनता है २ इन्हीं के आधार से तू और तुम की उत्पत्ति हुई है। बँगला मे तुमको तुमि लिखते है, दोनो मे बहुत अधिक समानता है, कहा जाता है कि इस तुमि की उत्पत्ति भी 'तुम्हि" से ही हुई है ३ इसी तुमसे "तुझ" और तुम्हारा एवं तेरा आदि रूप आगे चल कर बने। हिन्दी मे अबतक "तुम्ह" का प्रयोग भी होता है। मध्यम पुरुष के लिये आप शब्द भी प्रयुक्त होता है, इस शब्द का आधार संस्कृत का 'आत्मन्' शब्द है। इसका प्राकृत रूप अप्पा और अप्पि है ४ इसी से आप शब्द निकलता है, बँगला मे आप के स्थान पर आपनि और बिहार में आपुन बोला जाता है, जिसमें, आत्मन् की पूरी झलक है।

अन्य पुरुष के शब्द वह और वे संस्कृत के (अदस्) शब्द से बने है, यह कुछ लोगों की सम्मति है। प्रथमा एक वचन मे इसका प्राकृतरूप असु और वहुवचन मे अमू होता है। ५ संस्कृत के प्रथमा एकवचन मे असौ होता है, प्राकृत मे यही असौ, असु होजाता है। अपभ्रंश मे प्राय वह के स्थान पर सु प्रथमा एकवचन मे आता है – यथा "अन्नु सुघण थण हारु"

१—देखिये 'वंगभाषा और साहित्य' पृ० २५ २—देखिये पालिप्रकाश पृ० १५२
३—देखिये बंगभाषा और साहित्य पृ०२६। ४—देखिये 'बगभाषा और साहित्य' पृ०२४
५—देखिये पालिप्रकाश पृ० १४७।

" सु गुण लायण्ण निधि " ऐसी अवस्था मे कहा जा सकता है कि इसी 'सु' से वह की उत्पत्ति है। परन्तु यहाँ स्वीकार करना पड़ेगा कि अ गिर गया है। यह क्लिष्ट कल्पना है। एक दूसरे विद्वान् भी संस्कृत के असौ सेही वह और वे कि उत्पत्ति मानते है—१ तद् के प्रथमा एकबचन का रूप स' और वहुवचन का रूप ते होता है पुल्लिंग मे । स्त्रीलिंग मे यही सा और ता हो जाता है। तद् के द्वितीया का एकबचन पुल्लिग मे तं और स्त्रीलिग मे ताम् होगा। अपभ्रंश के निम्नलिखित पद्यो मे इनका व्यवहार देखा जाता है।

'सा दिसि जोइ म रोइ' 'सा मालइ देसन्तरिअ'
'तंतेवड्डुउँ समरभर' 'सो च्छेयहु नहिंलाहु'
तं तेत्तिउ जल्लु सायर हो सो ते वहुवित्थारु'
'जइ सो वड़दि प्रयावदी' 'ते मुग्गडा हराविआ'
'अन्ने ते दीहर लोअण'

इससे पाया जाता है कि स से 'सो' और वह की और 'ते' से 'वे' की उत्पत्ति है। ब्रजभाषा और अवधी दोनों मे वह के स्थान पर 'सो' का और वे के स्थान पर ते का बहुत अधिक प्रयोग है। गद्य मे अब भी 'वह' के स्थान पर 'सो' का प्रयोग होते देखा जाता है । यदि ते से वे की उत्पत्ति मानने मे कुछ आपत्ति हो तो उसको वह का वहुबचन मान सकते है।

प्राकृत भाषा का यह सिद्धान्त है कि तवर्ग, 'ण', 'ह', और 'र' के अतिरिक्त जब किसी दूसरे व्यंजनवर्ण के बाद यकार होता है तो प्राय उसका लोप हो जाता है, और तत् संयुक्तवर्ण को द्वित्व प्राप्त होता है २ इस सिद्धान्त के अनुसार कस्य का कस्स और यस्य का जस्स और नस्य का तस्स प्राकृत मे होता है, और फिर उनसे क्रमश किस, कास, कासु+जास, जासु और

१—पालि प्रकाश पृ० २१

२—ओरिजन आफ दि हिन्दी लेंगवेज पृ० १२।

तास, तासु आदि रूप बनते हैं । ऐसे ही संस्कृत क से प्राकृत को और हिन्दी कौन— संस्कृत य से प्राकृत मे जो बनता है । जो हिन्दी मे उसी रूप मे गृहीत हो गया है । संस्कृत किम् से हिन्दी का क्या और कोपि से हिन्दी का कोई निकला है । अपभ्रंश मे किम् का रूप कॉइ और कोपि का रूप कोबि पाया जाता है यथा "अम्हे निन्दहु कोबिजण अम्हे बण्णउ कोबि" "काईं न दूरे देक्खइ"

हिन्दी भाषा की अधिकाश क्रियायें संस्कृत से ही निकली हैं । ससकृत मे क्रियाओं के रूप ५०० से अधिक पाये जाते है, उन सब के रूप हिन्दी मे नही मिलते, फिर भी जो क्रियाये सस्कृत से हिन्दी मे आई है, उनकी संख्या कम नही है । हिन्दी मे कुछ क्रियायें, अन्य भाषाओं से भी बना ली गई है, परन्तु उनकी संख्या बहुत थोडी है । उनकी चर्चा आगे के प्रकरण मे की जायगी । संस्कृत क्रियाओं का विकास हिन्दी मे किस रूप मे हुआ है, और हिन्दी मे किस विशेषता से वे ग्रहण की गई हैं. केवल इसी विषय का वर्णन थोडे मे यहा करूंगा प्रत्येक विषयो का दिग्दर्शन मात्र ही इस ग्रन्थ मे हो सकता है, क्योकि अधिक विस्तार का स्थान नहीं । विशेष उल्लेख योग्य खडी बोली की क्रियाये हैं । जिनका मार्ग अपनी पूर्ववर्ती भाषाओं से सर्वथा भिन्न है ।

खडी बोलचाल की हिन्दी मे 'है' का एकाधिपत्य है 'था' का व्यवहार भी उसमे अधिकता से देखा जाता है । बिना इनके अनेक वाक्य अधूरे रह जाते है, और यथार्थ रीति से अपना अर्थ प्रकट नही कर पाते । 'है' की उत्पत्ति के विषय मे मतभिन्नता है । कोई कोई इसकी उत्पत्ति अस् धातु से बतलाते है और कोई भू धातु से । ओरिजन आफ दि हिन्दी लागवेज के रचयिता यह कहते है—

"संस्कृत मे भू-भवामि-भव, भोमि के स्थान पर वररुचि ने भू-हो-हुआ, आदि रूप दिया है दो सहस्त्र वर्ष से 'हो' का प्रयोग होने पर भी ब्रजभाषा के भूतकाल मे भू-धातु का रूप भया-भये-भयो आदि का प्रयोग अबतक

होता है। 'हो' का प्राकृत रूप होमे' और हिन्दी रूप 'हू' है।" १

इस अवतरण से यह स्पष्ट है कि वररुचि ने भू धातु से ही होना, धातु की उत्पत्ति मानी है, इसी होनाका एक रूप ' हे ' है। अवधी मे 'है' के स्थान पर 'अहै का प्रयोग भी होता है। यथा

"सांची अहै कहनावतिया अरीऊँचीदुकानकी फीकी मिठाई"

इसलिये यह विचार अधिकता से माना जाता है कि अस् सेही है की उत्पत्ति है। अस् से अहै स् के ह हो जाने कारण बना, और व्यवहाराधिक्य से अ के गिर जाने के कारण केवल है का प्रयोग होने लगा। दोनों सिद्धान्तो मे कौन माननीय है, यह बात निश्चित रीति से नहीं कही जा सकती, दोनो ही पर तर्क वितर्क चल रहे है, समय ही इसकी उचित मीमासा कर सकेगा। 'था' की उत्पत्ति 'स्था' धातु से मानी जाती है, ओरिजन आफ दि हिन्दी लागवेज के रचयिता भी इसी सिद्धान्त को मानते है। २

इस है, और था के आधार से बने कुछ हिन्दी क्रियाओं के प्रयोग की विशेषताओ को देखिये। संस्कृत चलति का अपभ्रंश एवं अवधी मे चलइ और ब्रजभाषा मे चलय अथवा चलै रूप वर्त्तमानकाल मे होगा। परन्तु खडी बोलचाल की हिन्दी मे इसका रूप होगा चलता है। संस्कृत मे प्रत्यय न तो शब्द से पृथक् है, न अवधी मे, ब्रजभाषा मे भी नहीं जो कि पश्चिमी हिन्दी ही है। इनके शब्द संयोगात्मक है, उनमे है का भाव मौजूद है। परन्तु खडी बोली का काम बिना है के नहीं चला, उसमे है लगा, और बिल्कुल अलग रह कर। खडी बोली की अधिकाश क्रियाये है से युक्त हैं। था के विषय मे भी ऐसी ही बाते कही जा सकती है। खडी बोली के प्रत्ययों और बिभक्तियों को प्रकृति से मिलाकर लिखने के लिये दस बरस पहले बडा आन्दोलन हो चुका है। कुछ लोग इस विचार के अनुकूल थे और कुछ प्रतिकूल। संयोगवादी प्राचीन प्रणाली की दुहाई देते थे, और

१—देखो ओरिजन आफ दि हिन्दी लांगवेज पृ० १३ २ देखो ओरिजन आफ़ दी हिन्दी पृ० १४।

कहते थे कि वैदिककाल से लेकर आज तक आर्य्यभाषा की जो सर्वसम्मत रीति प्रचलित है, उसका त्याग न होना चाहिये । प्रकृति से प्रत्ययो और विभक्तियो को अलग करने से पहले तो शब्दो का अयथा विस्तार होता है, दूसरे उनके स्वरूप पहचानने और प्रयोग मे बाधा उपस्थित होती है। वियोगवादी कहते संयोग जटिलता का कारण है, संयुक्त वर्ण जिसके प्रमाण है। इसलिये सरलता जन साधारण की सुविधा और बोलचाल पर ध्यान रखकर जो नियम आजकल इस बारे मे प्रचलित है, उनको चलते रहना चाहिये। जीत वियोग वादियो की ही हुई अब भी कुछ लोग प्रकृत और प्रत्ययो को मिलाकर लिखते है, परन्तु साधारणतया वे अलग ही लिखे जाते है। कहा जाता है हिन्दी भाषा मे यह प्रणाली फ़ारसी भाषा से आई है। फारसी मे प्राय. इस प्रकार के शब्द अलग लिखे जाते है। और उर्दू उन्हीं अक्षरो मे लिखी जाती है जिन अक्षरों मे फारसी। इस लिये जैसे हिन्दी के क्रिया आदि उर्दू मे लिखे जाते हैं, वैसे ही हिन्दी मे भी लिखे जाने लगे। १ इस कथन मे बहुत कुछ सत्यता है, परन्तु मै इस विवाद मे पड़ना नहीं चाहता। मेरा कथन इतना ही है कि विभक्तिया अथवा प्रत्यय प्रकृति के साथ मिलाकर लिखे जाये या न लिखे जाये। परन्तु ये ही हिन्दी भाषा के वे सहारे है, जिनके आधार से वह संसार को अपना परिचय दे सकती है। इस प्रकरण मे मैने जिन विभक्तियों, सर्वनामों, प्रत्ययो, और क्रियाओका वर्णन किया है वे हिन्दी भाषाके शब्दों, वाक्यों, और उनके अवयवो के ऐसे चिन्ह है, जो उसको अन्य भाषाओ से अलग करते है, इसलिये उनका निरूपण आवश्यक समझा गया।

१—दे० ओरिजिन एण्ड डेवलपमेन्ट ऑफ दि बॅगला लैंग्वेज पृ० १२२।

सप्तम प्रकरण ।

हिन्दी भाषा पर अन्य भाषाओं का प्रभाव

हिन्दी भाषा मे सबसे अधिक सस्कृतके शब्द पाये जाते है। इस हिन्दी भाषा से मेरा प्रयोजन साहित्यिक हिन्दी भाषा से है। बोलचाल की हिन्दी मे भी संस्कृतके शब्द हैं, परन्तु थोडे उसमे तद्भव शब्दोकी अधिकता है।- हिन्दुओकी बोलचालमे अब भी संस्कृतके शब्दोके प्रयुक्त होनेका यह कारण है, कि विवाह यज्ञोपवीत आदि संस्कारोके समय कथा वार्ता और धर्मचर्चाओ मे, व्याखानो और उपदेशो मे, नाना प्रकार के पर्व और उत्सवो मे, उनको पंडितों का साहाय्य ग्रहण करना पडता है। पण्डितो का भाषण अधिकतर संस्कृत शब्दो मे होता है, वे लोग समस्त क्रियाओको संस्कृत पुस्तको द्वारा कराते है। अतएव उनके व्यवहार मे भी सस्कृत शब्द आते रहते है। सुनते सुनते अनेक संस्कृत शब्द उनको याद हो जाते है, अतएव अवसर पर वे उनका प्रयोग भी करते है। जब पुलकित चित्त से भगवान का स्मरण करने केलिये गोस्वामी तुलसी दास के अथवा कविवर सूरदास के पदो को गाते है, अन्य भक्तो के भजनो को सुनते है उस समय भी अनेक संस्कृत शब्द उनकी जिह्वा पर आते रहते है, और उनके विषय मे उनका ज्ञान बढता रहता है। इसलिये हिन्दुओ की बोलचाल मे संस्कृत शब्दो का होना स्वाभाविक है। तथापि यह स्वीकार करना पडेगा, कि इनकी सख्या अधिक नही है। जो सॅस्कृत के शब्द अपने शुद्ध रूप मे व्यवहृत होते है, उनको तत्सम कहते है, यथा हर्ष, शोक, कार्य्य, कर्म, व्यवहार, धर्म्म आदि। जो सस्कृत शब्द प्राकृत मे होते हुए हिन्दी तक परिवर्तित रूप मे पहुचे है उनको तद्भव कहते है। जैसे काम, कान, हाथ इत्यादि। हिन्दी भाषा इन तद्भव शब्दो से ही बनी है। तद्भव शब्द के लिये यह आवश्यक नही है, कि जिस रूप मे वह प्राकृत मे था उस रूपको बदल कर हिन्दी मे आवे तभी तद्भव कहलावे यदि उसने अपना सस्कृत रूप बदल दिया है और प्राकृत रूप मे ही हिन्दी मे आया है तो भी तद्भव कहलावेगा। हस्त को लीजिये, जब तक इस शब्द

का व्यवहार शुद्ध रूप मे होगा, तब तक वह तत्सम है। प्राकृत मे हस्त का रूप हत्थ हो जाता है और हत्थ हिन्दीमे हाथ हो जाता है। हिन्दी भाषा की रीढ ऐसे ही शब्द है, यह स्पष्ट तद्भव है। परन्तु यदि हत्थ के रूप मे ही हिन्दी मे लेलिया जाता तो भी तद्भव ही कहलाता। प्राकृत मे लोचन, लोयन, बन जाता है। और हिन्दी मे इसी रूप मे गृहीत होना है थोडा भी नही बदलता, तो भी तद्भव ही कहलाता है। क्योंकि लोचन से उत्पन्न होने के कारण लोयन मे तद्भवता (उत्पन्न होने का भाव) मौजूद है। तत्सम शब्द के आदि और मध्य का हलन्त वर्ण प्राय हिन्दी मे सस्वर हो जाता है, प्राकृत और अपभ्रंश मे भी इस प्रकार का प्रयोग पाया जाता है, क्यो कि सुखसुखोच्चारण के लिये जन साधारण प्राय सयुक्त वर्णों के हलन्त वर्णो को सस्वर कर देता है. संस्कृत मे इसको युक्तविकर्ष कहते है, ऐसे ही शब्द अर्ध तत्सम कहलाते है। धरम, करम, किरपा, हिरदय, अगिन, सनेह आदि ऐसे हो शब्द है जो धर्म, कर्म, हृदय, अग्नि, स्नेह के वे रूप है जो जनता के मुखो से निकले है। अवधी और बृजभाषा मे ऐसे शब्दो का अधिकाश प्रयोग मिलता है। इन भाषाके कवियो ने भी भाषा को कोमल करनेके लिये ऐसे कुछ शब्द गढे है। परन्तु खडी बोलीके कवियोंका मार्ग बिलकुल उलटा है, वे अर्द्ध तत्सम शब्दो का प्रयोग करते ही नही। हिन्दी का गद्य तो उस को पास फटकने नही देता। १ तत्सम २ अर्ध तत्सम और ३ तद्भव के अतिरिक्त हिन्दी भाषा मे और एक प्रकार के शब्द पाये जाते है इनको ४ देशज कहते है। ये देशज वे शब्द है जिनके आधार सस्कृत अथवा प्राकृत शब्द नही है। वे अनार्य्यों अथवा विजातीय भाषाओं से हिन्दी मे आये है। जैसे गोड, टॉग, उर्दू आदि। किसी किसीकी यह सम्मति है कि ऐसे शब्दो के विषय मे यह ठीक पता नही चलता, कि वे कहा से आये, इसलिये वे देशज मान लिये गये। कुछ अनुकरणात्मक शब्द भी हिन्दी मे है—जैसे खटखटाना, गडबडाना, बडबडाना, फडफडाना, चटपट, झटपट, खटपट इत्यादि। कहा जाता है ऐसे कुल शब्द देशज है, परन्तु अनेक भाषा मर्मज्ञोंने इस प्रकार के बहुत से शब्दो की उत्पत्ति संस्कृत से ही बतलाई है। सीधा मार्ग देशज शब्दो के निर्धारण का यही ज्ञात होता है कि जो

तत्सम, तद्भव, अर्द्ध तत्सम, तत्समाभास अथवा विदेशी शब्द नहीं है, उन्हे देशज मान लिया जावे। हिन्दी भाषा मे कुछ ऐसे शब्द भी प्रयुक्त होते है, जो देखने मे तत्सम ज्ञात होते है, परन्तु वास्तव मे वे तत्सम शब्द नही होते। जिनको संस्कृत का ज्ञान साधारण होता है, आदि मे उनके द्वारा ऐसे शब्दो का प्रयोग होता है जब उनके अनुकरण से दूसरे लोग भी उनका व्यवहार करने लग जाते है, तो काल पाकर वे गृहीत हो जाते और भाषा मे चल जाते है। इस प्रकार के शब्द है, हरीतिमा, लालिमा, सत्यानाश, प्रण और मनोकामना आदि। कुछ संस्कृत के विद्वान् इस प्रकार के शब्दो का व्यवहार करने के विरोधी है, उनके द्वारा अब भी इस प्रणाली का यथा समय विरोध होता रहता है, परन्तु मेरा विचार है कि ऐसे चल गये और व्यापक बन गये, शब्दो का विरोध सफलता नहीं लाभ कर सकता। कारण इसका यह है कि समस्त प्राकृतो और अपभ्रंश भाषाओ की उत्पत्ति ही इस प्रकार हुई है। भाषा मे जब स्थान मिल गया है तब इस प्रकार के शब्दो का निकाल बाहर करना साधारण बात नही, ऐसी अवस्था मे उनको उस भाषा का स्वतंत्र प्रयोग मान लेना ही अधिक युक्ति-संगत ज्ञात होता है। अनेक व्याकरण रचयिताओ ने इस पथ का अवलम्बन किया है, ऐसे शब्दो को तत्समाभास कह सकते है॥

हिन्दी शब्द-भाण्डार पर बिदेशी भाषाओं के शब्द का भी बहुत कुछ प्रभाव पडा है। 'नानक' शब्द का प्रयोग नामकरण के लिये प्राय. काम मे लाया जाता है, नानकचंद, नानक बख्श नाम अब भी रखे जाते है परन्तु वास्तव मे 'नानक' यूनानी शब्द है। 'कचहरी' शब्द घर घर प्रचलित है, और साहित्यिक भाषा मे भी चलता रहता है परन्तु है यह पुर्तगाली भाषा का शब्द। शक और हूणो के शब्द भी प्राकृत और अपभ्रंश से होकर हिन्दी मे आये है, परन्तु सबसे अधिक उसमे फारसी, अरबी और अङ्गरेजी के शब्द पाये जाते हैं। ६०० ईस्वी के लगभग मुहम्मदबिन कासिम ने सिन्धु को जीता, भारत के एक बड़े प्रदेश में मुसल्मानों की यह पहली विजय थी, उसके बाद १०० वर्ष तक पंजाब मे मुसल्मानो का राज्य रहा तदुपरान्त वे धीरे धीरे भारत भर मे फैल गये और लगभग

८०० वर्ष तक उनका शासन चलता रहा। विजेता की भाषाका कितना प्रभाव विजित जाति पर पडता है, यह अप्रकट नहीं। इस आठ सौ वर्ष के बहुव्यापी समय मे उसने कितना अधिकार भारतीय भाषाओं पर जमाया, इसका प्रमाण वे स्वयं दे रही है। हिन्दी भाषा वहाकी भाषा थी, जहा पर मुसल्मानोंके साम्राज्य का केन्द्र था, और जहा उनकी विजय वैजयन्ती उस समय तक उडती रही जबतक उनका साम्राज्य ध्वंस नही हुआ। इसीलिये हिन्दी भाषा पर उनकी भाषा का बहुत अधिक प्रभाव देखा जाता है। अरबी मुसल्मानो की धार्म्मिक भाषा थी। विजयी मुसल्मान भारत मे अरब से ही नहीं, ईरान और तुर्किस्तान से भी आये। इसलिये हिन्दी भाषा पर अरबी, फारसो और तुर्की तीनों का प्रभाव पडा। इन तीनो भाषाओं के शब्द अधिकता से उसमे पाये जाते है। अधिकता का प्रत्यक्ष प्रमाण उर्दू है, जो कठिनता से हिन्दी कही जा सकती है।

इन भाषाओं के अधिकतर शब्द संज्ञा रूप मे गृहीत हुए है। मुसल्मानो के साथ बहुत से ऐसे पदार्थ और सामान भारत मे आये, जिनका कोई संस्कृत और देशज नाम नहीं था, इसलिये हिन्दी मे उनका अरबी, फारसी आदि नाम ही व्यवहार मे आया। जैसे साबुन, चिलम, नैचा, हुक्का, रिकाबी, तश्तरी आदि। प्राय देखा जाता है कि शिक्षितजन ही नहीं, अपठित लोग भी राजकीय भाषा बोलने मे अपना गौरव समझते है, इस कारण अनेक संस्कृत और हिन्दी शब्दों के स्थान पर भी अरबी, फारसी एवं तुर्की शब्दोका प्रचार हुआ। और यह दूसरा हेतु हिन्दीमे विदेशी शब्दो के आधिक्य का हुआ।

आज कल वायु, मसिभाजन, लेखनी आदि के स्थान पर हवा 'दवात' और कलम आदि का ही अधिक प्रयोग देखा जाता है। नीचे लिखे शब्दों जैसे अनेक शब्द ऐसे है, कि जिनके स्थान पर हम गढे शब्दो का ही प्रयोग कर सकते है, फिर भी वे इतने सुबोध न होंगे, इसलिये ऐसे शब्द ही प्राय मुखो से निकलते, और उनकी व्यापकता हिन्दी मे बढाते है—

मजदूर, वकील, गुलाब, कोतल, परदा, रसद कारीगर आदि

इस प्रकार के शब्दो को छोडकर इन भाषाओं के कुछ सज्ञाओ को लेकर उन्हे क्रिया का रूप हिन्दी नियमानुसार दिया गया, और आज कल वे क्रियायें हिन्दी मे निस्संकोच भाव से प्रचलित है। शरमाना, फरमाना कबूलना बदलना, बख्शना, आदि ऐसी ही क्रियायें है। शर्म, फ़रमान, कबूल, बदल, बख्श, आदि सज्ञाओ के अन्त मे हिन्दी का धातु चिन्ह लगा कर इन्हे क्रिया का रूप दिया गया, और आज कल उनसे सब काल की क्रियाये हिन्दी व्याकरण के नियमानुसार बनती रहती है। इन भाषाओं के आधार से बहुत से ऐसे शब्द भी बन गये है कि जिनका आधा हिस्सा हिन्दी शब्द है, और दूसरा आधा अरबी, फ़ारसी इत्यादि का कोई शब्द। जैसे पानदान, पीकदान, हाथीवान, समझदार, ठीकेदार आदि। इस प्रकार की कुछ क्रियाये भी बना ली गई है। जैसे खुशहोना, खनाहोना, दिल लगाना, जखम पहुचाना, इलाज करना, हवा हो जाना आदि।

मुसलमानो का अदालत और दफ्तरो के काम पहले प्राय हिन्दी मे होते थे, परन्तु अकबर के समय मे राजा टोडरमल ने दफ़्तर को हिन्दी से फारसी मे कर दिया। जिसका परिणाम यह हुआ कि हिन्दू फारसी पढने के लिये विवश हुए, और कचहरी एवं दफतरों का काम फारसी मे होने लगा। इससे भी प्रचुर फारसी अरबी आदि के शब्दो का प्रचार जन साधारण और हिन्दी मे हुआ, और कानून एवं अदालत सम्बन्धी सैकडों पारिभाषिक शब्द व्यवहार मे आने लगे। काजी, नाज़िम, कानूनगो, समन, नाबालिग बालिग,दस्तावेज, आदि ऐसे ही शब्द है।

अरबी, फ़ारसी मे कुछ ऐसी ध्वनिया है, जो उनकी वर्णमाला मे मौजूद है, परन्तु हिन्दी वर्णमाला मे उनका अभाव है। जब फ़ारसी, अरबी, और तुर्की के शब्दो का प्रचार हुआ तो उनके शब्दगत अक्षरों की विशेष ध्वनियों की ओर भी लोगो की दृष्टि आकर्षित हुई, क्योंकि बिना उन ध्वनियोंकी रक्षा किये शब्दोका शुद्धोच्चारण असंभव था। परिणाम यह हुआ कि कुछ विशेष चिन्ह के द्वारा इस न्यूनता की पूर्त्ति की गई। यह विशेष चिन्ह वह बिन्दु है जो अरबी के अपेक्षित अक्षरो के नीचे लगाया जाता

है ع، غ، ق، خ، ز، ف की ध्वनियो की रक्षा अ़, ग़, क़, ख़, ज़, फ़, लिख कर की जाती है। किन्तु कुछ भाषा मर्मज्ञ इस प्रणाली के प्रतिकूल है। उनका यह कथन है कि ग्राहक भाषा सदा ग्राह्य भाषाओ के शब्दों को अपने स्वाभाविक उच्चारणो के अनुकूल बना लेती है। ऐसी अवस्था मे हिन्दी वर्गों पर बिन्दु लगा कर अरबी फ़ारसी के अक्षरो की ध्वनियों की रक्षा करना युक्तिमूलक नही। ऐसा करने से व्यर्थ वर्णमाला के वर्णो का विस्तार होता है। मेरा बिचार है कि जब पठित समाज अरबी, फ़ारसी के विशेष अक्षरो का उच्चारण उसी रूप मे करता है, जिस रूप मे उनका उच्चारण उन भाषाओ मे होता है तो इस प्रकार के उच्चारणो की रक्षा के लिये हिन्दी भाषा के अक्षरों मे विशेष संकेतो के द्वारा कुछ परिवर्तन करने की जो प्रणाली गृहीत है वह सुरक्षित क्यो न रखी जावे। उर्दू कोर्ट की भाषा है, कचहरी दरबार मे उसी का प्रचार है। सरकारी दफतरो मे उसीसेही काम लिया जाता है। उर्दू की लिपि वही है, जो अरबी, फ़ारसीकी है, इसलिये अरबी, फ़ारसीके शब्द उसमे शुद्ध रूपमे लिखे जाते है। शुद्ध रूपमे लिखे जाने के कारण उनका उच्चारण भी शुद्ध रूप मे होता है। सरकारी कचहरियोसे कुछ न कुछ सम्बन्ध प्रजा मात्रका होता है। मानकी रक्षा कौन नहीं करता। जब लोग देखते है कि अरबी फ़ारसी शब्दों का शुद्ध उच्चारण न करने से प्रतिष्ठा मे बट्टा लगता है, शिष्ट प्रणाली मे अन्तर पडता है' अधिकारियो की दृष्टि से गिरना पडता है, तो उनको बिवश हो कर अरबी फ़ारसी शब्दों के उच्चारण के समय उनकी विशेषताओं की रक्षा करनी पडती है। पठित समाज अवश्य ऐसा करता है, गँवार और मूर्खों की बात दूसरी है। यदि आवश्यकताये अथवा कारण विशेष हमको अरबी और फारसी शब्दो का शुद्धोच्चारण करने के लिये बिवश करते है। और सभा, समाज, पारस्परिक व्यवहार, एवं कुछ अंतर्जातीय लोगों से सम्मिलन के अवसरो पर हमको शुद्ध उर्दू बोलने की आवश्यकता होती है, तो उसके फ़ारसी अरबी के विशेष शब्दों को हिन्दी अक्षरों मे शुद्ध लिखने की प्रणाली प्रचलित क्यों न रखी जावे। दूसरी बात यह कि पूर्णता लाभके लिये जैसे भाषा की व्यापक और पूर्ण होने की आवश्यकता है, वैसे ही

लिपि को। लिपि की अपूर्णता प्राय भाषा की पूर्णता का बाधक होती है। यह ज्ञात है कि उर्दू अरबी लिपि मे लिखी जाती है अरबी लिपि मे हिन्दी का टवर्ग है ही नहीं, उसमे हिन्दी के ख, घ, छ; झ, थ, ध, फ, भ अक्षरो का भी अभाव है। उर्दू वालो ने एक नहीं, अनेक चिन्हो का उद्भावन कर अपने अभावो की पूर्त्ति की, और इस प्रकार अपनी लिपि को पूर्ण बना लिया है। रोमन अक्षरो को पूर्ण बनाने के लिये आये दिन इस प्रकार की उद्भावनाये होती ही रहती है। फिर हिन्दी, वह हिन्दी पीछे क्यो रहे, जो सभी लिपियों से शक्तिशालिनी है। और जिसमे ही यह गुण है, कि जो लिखा जाता है, वही पढा जाता है। यदि अपनी आवश्यकताओ की पूर्त्ति करके, कोई लिपि पूर्ण बन सकती है, तो हिन्दी मे यह शक्ति सबसे अधिक है। वह अपूर्ण क्यो रहे, और क्यो यह प्रकट करे कि वह न्यूनताओ से भरी है, और पूर्णता लाभ करने की उसमे शक्ति नहीं।

अरबी फ़ारसी लिपियो मे जो ऐसे वर्ण है, जिनका उच्चारण हिन्दी वर्णों के समान है, उनके लिखने मे कुछ परिवर्तन नहीं होता, वरन् फारसी अरबी के कई वर्णों के स्थान पर हिन्दी का एक ही वर्ण प्राय काम देताहै। परिवर्तन उसी अवस्था मे होता है जब उनमे फारसी अरबी बर्णों से अधिकतर उच्चारण की बिभिन्नता पाई जाती है। नीचे कुछ इसका वर्णन किया जाता है।

अरबी मे कुल २८ अक्षर है, इनमे फारसी भाषा के चार विशेष अक्षरों पे, चे, जे, गाफ के मिलाने से वे ३२ हो जाते है उनको मै नीचे लिखता हू—

ا ب ب ب ب ح ح ح ح د ذ ر ر س ش ص ص ط ط ع ع ف ک ی گ ل م ن و ہ ی

इनमें से, से, हे, साद, जाद, तो, जो,अैन और काफ अरबी के विशेष अक्षर है—फारसी और अरबी के विशेष अक्षरों को, निम्न लिखित शेर म स्पष्ट किया है—

सावो, हावो, सादो, जादो, तावो, जावो, अैन, काफ। हर्फे ताजी

फ़ारसीदा, पे' वो, चे, वो, जे, वो, गाफ़। इनमे से ا ب پ ج چ د ر س ک گ ل م ن و ی के स्थान पर हिन्दी मे, अ, ब, प, ज, च, द, र, श, क ग, ल, म न, व य, लिखा जाता है। दोनो भाषाओं के उक्त अक्षरों का उच्चारण कुछ भिन्न ज्ञात होता है परन्तु प्रयोग मे कोई भिन्नता नहीं है, इसलिये फ़ारसी के इन तेरह अक्षरो के स्थान पर हिन्दी अक्षरो का व्यवहार बिना किसी परिवर्तन के होता है। फ़ारसी के शेष अक्षरो मे से कुछ अक्षर तो ऐसे है जिनमे से दो या तीन अक्षरो के स्थान पर हिन्दी का एक अक्षर काम देता है और कुछ ऐसे है जिनके लिये समान उच्चरित अक्षरों के नीचे बिन्दु लगाना पडता है, नीचे ऐसे अक्षर लिखे जाते है। (१) ق خ ع غ ف के स्थान पर क ख अ़ ग और फ़ लिखा जाता है जैसे قوم का क़ौम خربوزہ का ख़रबूज़ा عینک का अ़ैनक غائب का गायब और فضول का फ़ुज़ूल आदि किन्तु ع के स्थान पर प्राय. अ ही लिखने की प्रणाली है। कारण इस का यह है कि अ़ैन का उच्चारण अधिकतर पठित समाज भी अ कासाही करता है. इसका प्रमाण यह है कि मअ़लूम के स्थान पर मालूम ही लिखा जाता है عام को अ़ाम नहीं आम ही कहते और लिखते है।

(२) ح और ہ दोनों के स्थान पर हिन्दी का ह ही काम देता, है जैसे حال का हाल और हवा का हवा। ت और ط का काम हिन्दी का त देता है। طور और تیر तौर और तीर ही लिखे जाते है।

(३) ث ص और س हिन्दी मे स बन जाते है। जैसे صورت का सूरत ثواب का सवाब और سر का सर इत्यादि।

ذ ز ض ظ इन पाचों अक्षरों का उच्चारण प्राय ज के समान है, इसलिये हिन्दी मे इनके स्थान पर ज ही लिखा जाता है जैसे ذیل का जैल زور का जोर, ضامن का जामिन ظاہر का जाहिर इत्यादि।

फ़ारसी में एक हे मुखफ़ी कहा जाता है, ذرہ—سبزہ—کوزہ—روزہ के अन्त मे जो हे है वही हे मुख़फी है। हिन्दी मे यह आ हो जाता है जैसे रोजा कूजा, सबजा, जरा आदि। कुछ लोगों ने इस हे के स्थान पर विसर्ग लिखना प्रारम्भ किया था, अब भी कोई कोई इसी प्रकार से लिखना

पसन्द करते है जैसे रोज , कूज , सब्ज , जर्र आदि । परन्तु अधिक सम्मति इसके विरूद्ध है, मै भी प्रथम प्रणाली को ही अधिकतर युक्ति सम्मत समझता हू ।

हिन्दी भाषा का अन्यतम रूप उर्दू है । दिल्ली मुसलमान सम्राटो की राजधानी अन्तिम समय तक थी । दिल्ली के आस पास और उसके समीपवर्ती मेरठ के भागोमे जो हिन्दी बोली जाती है, उसीमे लश्करके लोगो की बोलचालका मिश्रण होनेसे जिस भाषा की उत्पत्ति हुई, शाहजहॉके समयमे उसी का नाम उर्दू पडा । कारण इसका यह है कि तुर्की भाषा मे लश्कर को उर्दू कहते है । किसी भाषा मे अन्य भाषा के कुछ शब्द मिल जाये तो इससे उस भाषा का कुछ रूप बदल जा सकता है परन्तु वह भाषा अन्य भापा नहीं बन जाती । उर्दू भाषा की रीढ हिन्दी भापा के सर्वनाम, विभक्तियो, प्रत्यय और क्रियाये ही है, उसकी शब्द योजना भी अधिकतर हिन्दी भाषा के समान ही होती हे, ऐसी अवस्था मे वह अन्य भापा नहीं कही जा सकती ।

मैने चतुर्दश हिन्दी साहित्य सम्मेलन के सभापतित्व सूत्र से जो इस बारे मे लिखा था, विषय को और स्पष्ट करने के लिये उसे भी यहा उद्धृत करता हू ।

"यदि अन्य भाषा के शब्द सम्मिलित होने से किसी भाषा का नाम बदल जाता है, तो फारसी अगरेजी आदि बहुत सी भाषाओं का नाम बदल जाना चाहिये । फारसी मे अरबी और तुर्की के इतने अधिक शब्द मिल गये है, कि उतने शब्द आज भी हिन्दी मे इन भाषाओ अथवा फारसी के नही मिले, फिर क्यो फारसी फारसी कही जाती है, और हिन्दी उर्दू कहलाने लगी । फारस के बिख्यात महाकबि फिरदोसी ने अपने शाहनामा मे एक स्थान पर लिखा है, फ़लक गुफ्त अहमन मलक गुफ्त जेह" अहसन और जेह अरबी शब्द है, अतएव उनसे प्रश्न हुआ कि आपने कुल किताब तो ख़ालिस फारसी मे लिखी, इस शेर मे दो अरबी के शब्द कैसे आ गये उन्होंने कहा कि "फ़लक व मलक गुफ्त न मन गुफ्त" मतलब

यह कि फ़लक और मलक ने कहा मैंने नहीं कहा१ । कहाँ यह भाव और कहा यह कि एक तिहाई से अधिक अरबी शब्द फ़ारसी मे दाख़िल हो गये, तो भी फ़ारसी का.नाम फ़ारसी ही रहा । उर्दू भाषा की प्रकृति आज भी हिन्दी है, व्याकरण उसका आज भी हिन्दी प्रणाली मे ढला हुआ है, उसमें जो फ़ारसी मुहावरे दाखिल हुए है, वे सब हिन्दी रंग मे रँगे है। फ़ारसी के अनेक शब्द हिन्दी के रूप मे आकर उर्दू की क्रिया बन गये है। एक बचन बहुधा हिन्दी रूप मे बहुबचन होते है, फिर उर्दू हिन्दी क्यो नहीं है ? यदि कहा जावे फारसी, अरबी, और संस्कृत शब्दो के न्यूनाधिक्य से ही उर्दू हिन्दी का भेद स्थापित होता है, तो यह भी नही स्वीकार किया जा सकता, क्यो कि अनेक उर्दू शायरो का बिल्कुल हिन्दी से लबरेज शेर उर्दू माना जाता है और अनेक हिन्दी कवियो का फारसी और अरबी से लबालब भरा पद्य हिन्दी कहा जाता है-कुछ प्रमाण लीजिये—

तुम मेरे पास होते हो गोया ।
जब कोई दूसरा नहीं होता ॥

(मोमिन)

लोग घबरा के यह कहते हैं कि मर जायेंगे ।
मर के गर चैन न पाया तो किधर जायेंगे ॥

(जौक)

लटों में कभी दिल को लटका दिया ।
कभी साथ वालों के झटका दिया ।

(मीरहसन)

हिन्दी भरी कविता आपने उर्दू की देख ली । अब अरबी फारसी भरी हिन्दी की कविता देखिये—

---

१ मुसल्मानों का धार्मिक विश्वास है कि फ़लक (आकाश) और मलक (देवता) की भाषा अरबी है ।

जेहि मग दौरत निरदई तेरे नैन कजाक।
तेहि मग फिरत सनेहिया किये गरेबां चाक। रसनिधि।
यों तिय गोल कपोल पर परी छूट लट साफ़।
ख़ुशनवीस मुंशी मदन लिख्यो कांच पर क़ाफ़।

श्रृंगार सरोज।

मै यहाँ कुछ अङ्गरेज और भारतीय विद्वानों की सम्मति उठाना चाहता हू—आप लोग देखे वे क्या कहते है—

'उर्दू का व्याकरण ठीक हिन्दी के व्याकरण से मिलता है, उर्दू हिन्दी से भिन्न नही है" १

डाक्टर राजेन्द्र लाल मित्र

' उर्दू के बडे प्रसिद्ध कवि वली और सौदा की भाषा, तथा हिन्दी के अति प्रसिद्ध कवि तुलसी दास और बिहारी लाल की भाषा मे कुछ अन्तर नही है, दोनों ही आर्य्य -भाषा है। इसलिये हिन्दी उर्दू को अलग मानना वडी भारी भूल है" २

मिस्टरबीम्स

"जो भाषा आज हिन्दुस्तानी कहलाती है उसी का नाम हिन्दी,

---

(1) The Grammar of Urdu is unmistakably the same as that of Hindi, and it must follow therefore that the Urdu is a Hindi and an Aryan dialect —Dr R L Mittra

(2) Such words, however, in no way altered or influenced the language itself, which, when its inflectional or phonetic elements are considered, remains still a pure Aryan dialect, just as pure in the pages of Wali and Souda, as it is in those of Tulsi Das or Biharilal It betrays, therefore, a radical misunderstanding of the whole learnings of the question and of whole Science of philology to speak of Urdu and Hindi as two distinct languages —Mr Beems

उर्दू और रेखता भी है। इसमे अरबी, फारसी, संस्कृत भाषाके शब्द है" ३

डाक्टर गिल क्राइस्ट

आज कल उर्दू अधिक बदल रही है, उस मे फारसी तरकीबों का अधिकतर प्रयोग होने लगा है। मेवा का मेवो, निशानका निशानों, मजदूर का मजदूरो, शहर का शहरों, दवा का दवाओं और कसबा का कसबों ही पहले लिखा जाता था, क्यो कि हिन्दी के नियमानुसार उनका बहुबचन रूप यही बनता है। परन्तु अब फारसी के अनुसार उनका बहुवचन रूप मेवात, निशानात, मजदूरान्, शहरात, अदविया कसबात अथवा कसबाजात लिखना अधिक पसंद किया जाता है। इसी प्रकार हिन्दी के कुछ कारक चिन्हो का लोप करके फारसी शब्दों को फारसी तरकीब मे ढाला जाने लगा है, रोजेसियह इशरते कतरा, नशयेइश्क, मुर्दादिल, गरीबुलवतनी मसायलेतसव्वुफ आदि इसके प्रमाण है। लम्बे लम्बे समस्त पदो की भी अधिकता हो चली है—जैसे 'जेरे कदमे वालिदा फिरदोस बरीं है, परन्तु तो भी उर्दू का अधिकाश प्रचलित रूप हिन्दी ही है।

इस प्रकार के प्रयोगो से हिन्दी मे कुछ फ़ारसी शब्द अधिक मिलगये है, और उर्दू नाम करण ने विभेद मात्रा अधिक बढा दी है, तथापि आज तक उर्दू हिन्दी ही है, कतिपय प्रयोगो का रूपान्तर हो सकता है भाषा नही बदल सकती। फिर भी यह स्वीकार करना पड़ेगा कि हिन्दी भाषा पर अरबी फारसी और तुर्की शब्दो का इतना अधिक प्रभाव है कि एक विशेष रूप मे वह अन्य भाषा सी प्रतीत होती है।

सौ बर्ष के भीतर हिन्दी मे बहुत से योरोपियन विशेष कर अगरेजी शब्द भी मिल गये है, और दिन दिन मिलते जा रहे है। रेल, तार, डाक, मोटर आदि कुछ ऐसे शब्द है, जो शुद्ध रूप मे ही हिन्दी मे व्यवहृत हो रहे है, और लालटेन, लम्प आदि कितने ऐसे शब्द है, जिन्होने हिन्दी रूप ग्रहण

---

(3) The language at present best known as the Hindustanee, is also frequently denominated Hindi, Urdu and Rekhta It is compounded of the Arabic, Persian and Sanskrit, or Bhasha which last appears to have been in former ages the current language of Hindustan —Dr Gilchrist

कर लिया है, और आज कल इनका प्रचार इसी रूप मे है। बहुत से सामान पाश्चात्य देशों से भारत वर्ष मे ऐसे आ रहे है, जिनका हिन्दी नाम है ही नही ऐसी अवस्था मे उनका योरोपियन अथवा अमरीकन नाम ही प्रचलित हो जाता है। और इस प्रकार उन देशों की भाषा के अनेक शब्द इस समय हिन्दी भाषा मे मिलते जा रहे है। यह स्वाभाविकता है, विजयी जाति के अनेक शब्द विजित जाति के भाषा मे मिल जाते ही है, क्यो कि परिस्थिति ऐसा कराती रहती है। किन्तु इससे चिन्तित न होना चाहिये। इससे भाषा पुष्ट और व्यापक होगी, और उसमे अनेक उपयोगी विचार संचित हो जावेगे। यत्न इस बात का होना चाहिये, कि भाषा विजातीय शब्दो, वाक्यों और भावो को इस प्रकार ग्रहण करे कि उसकी विजातीयता हमारी जातीयता के रंग मे निमग्न हो जावे।

आज कल कुछ शब्द अन्य प्रान्तो के भी हिन्दी भाषा मे गृहीत हो गये है। कुछ विचारमान पुरुष इसको अच्छा नही समझते, वे सोचते है, इससे अपनी भाषा का दारिद्रय सूचित होता है। मै कहता हू इस बिचार मे गंभीरता नही है। प्रथम तो हिन्दी भाषा राष्ट्रीय पद पर आरूढ हो रही है, इस लिये राष्ट्र की सम्पत्ति उसी की है। दूसरी बात यह है कि राष्ट्रोपयोगी जो व्यापक शब्द है, अथवा जो कारण बिशेष से ऐसे बन गये है, जो भावद्योतन मे किसी हिन्दी शब्द से विशेष क्षमतावान है, तो वे क्यों न ग्रहण कर लिये जावे। यदि विदेशीय शब्दों का कुछ स्वत्व हिन्दी भाषा पर विशेष कारणो से है, तो ऐसे शब्दों का क्यों नहीं। मेरा विचार है कि उनका तो सादर अभिनन्दन करना चाहिये। इस प्रकार के शब्द मराठी के लागू, चालू आदि, गुजराती के हडताल आदि, बॅगला के गल्प, प्राणपण आदि और तामिल भाषा के चुरुट आदि है। जब ये शब्द प्रचलित हो गये है, और सर्व साधारण के वोधगम्य है, तो इन के स्थान पर न तो दूसरा शब्द गढने का उद्योग करना चाहिये और न इनका बायकाट। इस प्रकार का सम्मिलन भाषा विकास का साधक है, बाधक नही यदि वह सीमित और मर्यादित हो।

द्वितीय खण्ड

प्रथम प्रकरण।

साहित्य।

हिन्दी भाषा-साहित्य के विकास पर कुछ लिखने के पहले मै यह निरूपण करना चाहता हू कि साहित्य किसे कहते है। जब तक साहित्य के वास्तविक रूप का यथार्थ ज्ञान नहीं होगा, तब तक इस बात की उचित मीमासा न हो सकेगी, कि उसके विषय मे अब तक हिन्दी संसार के कवियों और महाकवियो ने समुचित पथ अवलम्बन किया या नहीं। और साहित्य-विषयक अपने कर्त्तव्य को उसी रीति से पालन किया या नहीं, जो किसी साहित्य को समुन्नत और उपयोगी बनाने मे सहायक होती है। प्रत्येक समय के साहित्य मे उस काल के परिवर्त्तनों और सँस्कारो का चिन्ह मौजूद रहता है। इस लिये जैसे जैसे समय की गति बदलती रहती है, साहित्य भी उसी प्रकार विकसित और परिवर्त्तित होता रहता है। अतएव यह आवश्यक है कि पहले हम समझ ले कि साहित्य क्या है, इस विषय का यथार्थ बोध होने पर विकास की प्रगति भी हमको यथातथ्य अवगत हो सकेगी।

"सहितस्य भाव साहित्यम्" जिसमे सहित का भाव हो उसे साहित्य कहते है। इसके विषय मे संस्कृत साहित्यकारो ने जो सम्मतिया दी है मैं उनमे से कुछ को नीचे लिखता हू। उनके अवलोकन से भी साहित्य की परिभाषा पर बहुत कुछ प्रकाश पडेगा 'श्राद्ध विवेककार' कहते है —

"परस्पर सापेक्षाणाम तुल्य रूपाणाम युगपदेक क्रियान्वयित्वम् साहित्यम्"।

'शव्दशक्ति प्रकाशिका' के रचयिता यह लिखते है —

"तुल्यवदेक क्रियान्वयित्वम् वृद्धि विशेष बिपयित्वम् वा साहित्यम् ।"

शब्द कल्पद्रुम कार की यह सम्मति है —'

'मनुष्य कृत श्लोकमय ग्रन्थ विशेप साहित्यम् ।"

कवीन्द्र "रवीन्द्र" कहते है —

"सहित शब्द से साहित्य की उत्पत्ति है—अतएव, धातुगत अर्थ करने पर साहित्य शब्द मे मिलन का एक भाव दृष्टि गोचर होता है। वह केवल भाव का भाव के साथ, भाषा का भाषा के साथ, ग्रन्थ का ग्रन्थ के साथ मिलन है यही नहीं, वरन् वह बतलाता है कि मनुष्य के साथ मनुष्य का अतीत के साथ वर्त्तमान का, दूरके सहित निकट का अत्यन्त अन्तरंग योग साधन साहित्य व्यतीत और किसी के द्वारा सम्भव पर नही। जिस देश मे साहित्य का अभाव है उस देशके लोग सजीव बन्धन से बँधे नहीं, विच्छिन्न होते है"। १

"श्राद्धविवेक" और "शव्द शक्ति प्रकाशिका" ने, साहित्य की जो व्याख्या की है "कवीन्द्र" का कथन एक प्रकार से उसकी टीका है। वह व्यापक और उदात्त है। कुछ लोगों का विचार है कि साहित्य शब्द काव्य के अर्थ मे रूढि है। 'शब्द कल्पद्रुम' की कल्पना कुछ ऐसी ही है। परन्तु ऊपर की शेप परिभाषाओं और अवतरणों से यह विचार एक देशीय पाया जाता है। साहित्य शब्द का जो शाब्दिक अर्थ है वह स्वयं बहुत व्यापक है, उसको संकुचित अर्थ मे ग्रहण करना संगत नहीं। साहित्य समाज का जीवन है, वह उसके उत्थान पतन का साधन है, साहित्य के उन्नत होने से उन्नत और उसके पतन से समाज पतित होता है। साहित्य वह आलोक है जो देश को अन्धकार रहित, जाति-मुख को उज्ज्वल और समाज के प्रभाहीन नेत्रो को सप्रभ रखता है। वह सवल जाति का वल, सजीव जाति का जीवन, उत्साहित जाति का उत्साह, पराक्रमी जाति का पराक्रम अध्यवसायशील जाति का अध्यवसाय, साहसी जाति का साहस और कर्तव्य परायण जाति का कर्तव्य है।

१ देखिये 'साहित्य' नामक बँगला ग्रन्थ का पृ० ५०

एनसाईक्लो पीडिया ब्रिटैनिका मे साहित्य की परिभाषा इस प्रकार की गई है —

" Literature, a general term which in default of precise definition, may stand for the best expression of the best thought reduced to writting. Its various forms are the result of race peculiarities, or of diverse individual temperament or of political circumstances securing the predominance of one social class which is thus enabled to propagate its ideas and sentiments "

Encyclopaedia Britannica

" साहित्य एक व्यापक शब्द है जो यथार्थ परिभाषा के अभाव में सर्वोत्तम विचार की उत्तमोत्तम लिपिबद्ध अभित्यक्ति के स्थान में व्यवहृत हो सकता है। इसके विचित्र रूप जातीय विशेषताओं के, अथवा विभिन्न व्यक्तिगत प्रकृति के अथवा ऐसी राजनैतिक परिस्थितियो के परिणाम हैं जिनसे एक सामाजिक वर्ग का आधिपत्य सुनिश्चित होता है और वह अपने विचारो और भावों का प्रचार करने में समर्थ होता है। "

national literature - - एन साईक्लो पीडिया ब्रिटैनिका

As behind every book that is written lies the personality of the man who wrote it, and as behind every national literature lies the character of the race which produced it, so behind the literature of any period lie the combined forces—personal & impersonal—which made the life of that period, as a whole, what it was Literature is only one of the many channels in which the energy of an age discharges itself, in its political movements, religious thought, philosophical speculation, art, we have the same energy overflowing into other forms of expression '

The study of literature, William Henery Hudson

जैसे प्रत्येक ग्रन्थ की ओट मे उसके रचयिता का और प्रत्येक राष्ट्रीय साहित्य की ओट मे उसको उत्पन्न करनेवाली जाति का व्यक्तित्व छिपा रहता हैं वैसे ही काल विशेष के साहित्य की ओट मे उस काल के जीवन को रूप विशेष प्रदान करनेवाली व्यक्तिमूलक और अव्यक्तिमूलक अनेक सयुक्त शक्तियां काम करती रहती है। साहित्य उन अनेक साधनो में से एक है जिसमे काल विशेष की स्फूर्ति अपनी अभिव्यक्ति पाकर उन्मुक्त होती है, यही स्फूर्ति परिप्लावित होकर ,राजनैतिक आन्दोलनो, धार्म्मिक विचार, दार्शनिक तर्क वितक और कला में प्रकट होती है।

स्टडी आव् लिटरेचर, विलियम हेनरी हडसन

वह धर्मभाव जो सब भावनाओं का विभव है वह ज्ञान गरिमा जो गौरव-कामुक को सगौरव करती है वह विचार परम्परा जो विचार शीलता की शिला है, वह धारणा जो धरणी मे सजीव जीवन-धारण का आधार है। वह प्रतिभा जो अलौकिकता से प्रतिभासित हो पतितो को उठाती है, लोचन हीन को लोचन देती है और निरावलम्ब का अवलम्बन होती है। वह कविता जो सूक्ति-समूह की प्रसविता हो, संसार की सारवत्ता बतलाती है। वह कल्पना जो कामद-कल्प लतिका बन सुधा फल फलाती है, वह रचना जो रुचिर रुचि सहचरी है, वह ध्वनि जो स्वर्गीय-ध्वनि से देशको ध्वनित बनाती है साहित्य का सम्बल और विभूति है। वह सजीवता जो निर्जीवता संजीवनी है, वह साधना जो समस्त सिद्धि का साधन है, वह चातुरी जो चतुर्वर्ग जननी है, एवं वह चारु चरितावली, जो जाति चेतना और चेतावनी की परिचायिका है, जिस साहित्य की सहचरी होती है वास्तव मे वह साहित्य ही साहित्य कहलाने का अधिकारी है। मेरा विचार है कि साहित्य ही वह कसौटी है जिस पर किसी जाति की सभ्यता कसी जा सकती है। असभ्य जातियों मे प्राय साहित्य का अभाव होता है इसलिये उनके पास वह संचित सम्पत्ति नही होती जिसके आधार से वे अपने अतीत काल का यथार्थ ज्ञान प्राप्त कर सके। और उसके आधार से अपने वर्त्तमान और भावी सन्तानो मे वह स्फूर्ति भर सके, जिसको लाभ कर सभ्य जातिया समुन्नति-सोपान पर आरोहण करती है, इसीलिये उनका जीवन प्राय ऐसी परिमित परिधि मे बद्ध होता है जो उनको देश काल के अनुकूल नहीं बनने देता और न उनको उन परिस्थितियो का यथार्थ ज्ञान होने देता है जिनको अनुकूल बनाकर वे ससार क्षेत्र मे अपने को गौरवित अथवा यथार्थ सुखित बना सके। यह न्यूनता उनके प्रति दिन अध पतन का कारण होती है, और उनको उस अज्ञानान्धकार से बाहर नहीं निकलने देती जो उनके जीवन को प्रकाशमय अथवा समुज्ज्वल नहीं बनने देता। सभ्य जातिया सभ्य इसीलिये है और इसीलिये देश कालानुसार समुन्नत होती रहती है कि उनका आलोकमय वर्द्धमान साहित्य उनके प्रगति-प्राप्त-पथ को तिमिर रहित करता रहता है। ऐसी अवस्था मे साहित्य की

उपयोगिता और उपकारिता स्पष्ट है। आज दिन जितनी जातिया समुन्नत है उन पर दृष्टि डालने से यह ज्ञात होता है कि जो जातिया जितनी ही गौरव प्राप्त और महिमामयी है उनका साहित्य भी उतना ही प्रशस्त और महान है। क्या इससे साहित्य की महत्ता भली भाति प्रकट नही होती ?

जो जातियाँ दिन दिन अवनति-गर्त्त मे गिर रही है उनके देखने से यह ज्ञात होता है कि उनके पतन का हेतु उनका वह साहित्य है जो समयानुसार अपनी प्रगति को न तो बदल सका और न अपने को देश-कालानुसार बना सका। मानवी अधिकाश सँस्कारों को साहित्य ही बनाता है। वंशगत विचार-परम्परा ही मानव जाति के सॅस्कारो की जननी होती है। जिस जाति के साहित्य मे विलासिता की ही धारा चिरकाल से बहती आई हो उस जाति मे यदि शूरता और कर्मशीलता का अभाव प्राय देखा जाय तो क्या आश्चर्य ? इसी प्रकार जिस जाति के साहित्य मे विरागधारा प्रवलतर गतिसे प्रवाहित होती रहे। यदि वह संसार त्यागी बनने का मंत्र पाठ करे तो कोई विचित्रता नही, क्योकि जिन बिचारो और सिद्धान्तो को हम प्राय पुस्तको मे पढ़ते रहते है, विद्वानो के मुखसे सुनते है अथवा सभा-समाजो मे घर और बाहर जिनका अधिकतर प्रचार पाते है उनसे प्रभावित हुये बिना कैसे रह सकते है ? क्योकि सिद्धान्त और विचार ही मानव की मानसिक भावो का संगठन करते है।

इन कतिपय पंक्तियो मे जो कुछ कहा गया उससे यह सिद्ध होता है कि साहित्य का देश और समाज पर बहुत बडा प्रभाव पडता है। यदि वे साहित्य के आधार से विकसित होते, बनते और बिगडते है तो साहित्य भी उनकी सामयिक अवस्थाओ पर अवलम्बित होता है। जहा इनदोनो का सामञ्जस्य यथारीति सुरक्षित रहता है और उचित और आवश्यक पथ का त्याग नहीं करता वहाँ एक दूसरे के आधार से पुष्पित, पल्लवित और उन्नत होता है, अन्यथा पतन उसका निश्चित परिणाम है। मेरा विचार है कि इनबातो पर दृष्टि रखने से साहित्य-विकास का प्रसंग अधिकतर बोध गम्य होगा।

(दूसरा प्रकरण)

हिन्दी साहित्य का पूर्व रूप और आरम्भिक काल

आविर्भाव-काल ही से किसी भाषा मे साहित्य की रचना नहीं होने लगती। भाषा जब सर्वसाधारण मे प्रचलित और शब्द सम्पत्ति सम्पन्न बन कर कुछ पुष्टता लाभ करती है तभी उसमे साहित्य का सृजन होता है। इस साहित्य का आदिम रूप प्राय छोटे छोटे गीतो अथवा साधारण पद्यो के रूप मे पहले प्रकटित होता है और यथा काल वही विकसित हो कर अपेक्षित विस्तार-लाभ करता है। हिन्दी भाषा के लिये भी यही बात कही जा सकती है। इतिहास बतलाता है कि उसमे आठवीं ईस्वी शताब्दी मे साहित्य-रचना होने लगी थी। इस सूत्र से यदि उसका आविर्भाव-काल छठीं या सातवीं शताब्दी मान लिया जाय तो मै समझता हू, असंगत न होगा। हमारा विषय साहित्य का विकास ही है इसलिये हम इस विचार मे प्रवृत्त होते है कि जिस समय हिन्दी भाषा साहित्य रूपमे गृहीत हो रही थी उस समय की राजनैतिक धार्म्मिक और सामाजिक परिस्थिति क्या थी।

हमने ऊपर लिखा है हिन्दी-साहित्य का आविर्भाव-काल अष्टम शताब्दी का आरम्भ माना जाता है। इस समय हिन्दी साहित्य के विस्तार-क्षेत्र की राजनैतिक, धार्म्मिक एवं सामाजिक दशा समुन्नत नही थी। सातवे शतक के मध्यकाल मे ही उत्तरीय भारत का प्रसिद्ध शक्तिशाली सम्राट् हर्ष-वर्धन स्वर्गगामी हो गया था। और उसके साम्राज्य के छिन्न भिन्न होने से देश की उस शक्ति का नाश हो गया था जिसने अनेक राजाओं और महाराजाओ को एकतासूत्र मे बाँध रखा था। उस समय उत्तरीय भारत मे एक प्रकार की अनियन्त्रित सत्ता राज्य कर रही थी और स्थान स्थान पर छोटे छोटे राजे अपनी अपनी क्षीण-क्षमता का बिस्तार कर रहे थे। यही नहीं, उनमे प्रतिदिन कलह की मात्रा बढ रही थी और वे लोग परस्पर एक दूसरे को द्वेष की दृष्टि से देखते थे। जिससे वह संगठन देश में नहीं

था जो उनको सुरक्षित और समुन्नत बनाने के लिये आवश्यक था। यह बात सर्वजन विदित है कि जहा छोटे मोटे राजे परस्पर लडते रहते है वहा की साधारण जनता न तो अपना शान्तिमय जीवन बिता सकती है और न वह विभूति लाभ कर सकती है जिसे पाकर प्रजा-वृन्द समुन्नति-सोपान पर आरोहण करता रहता है। राजनैतिक अवस्था जैसी दुर्दशा ग्रस्त थी, धार्म्मिक अवस्था उससे भी अधिक संकटापन्न थी। [इन दिनो बौद्ध-धर्म का अपने कदाचारो के कारण प्रतिदिन पतन हो रहा था और प्राचीन वैदिकधर्म उत्तरोत्तर बलशाली बन रहा था]) इस कारण वैदिक धर्मावलम्बियो और बौद्धो मे ऐसा संघर्ष हो रहा था जो देश के लिये बाछनीय नही कहा जा सकता।

जिस समय विशाल दो धार्मिक दलो मे इस प्रकार द्वन्द्व चल रहा था उस समय उत्तरीय भारत की सामाजिक अवस्था कितनी दयनीय होगी, इसका अनुभव प्रत्येक विचार-शील सहज ही कर सकता है। सामाजिकता अधिकतर धार्म्मिक भावों और पारस्परिक सम्बन्ध सूत्रो, व्यवहारों, एवं रीति रवाजो पर निर्भर रहती है। जिस स्थान की धार्मिकता कलह जाल मे पड कर प्रतिदिन उच्छृङ्खलित और आडम्बर-पूर्ण बनती रहती है। जहा का पारस्परिक सम्बन्ध, व्यवहार, अथच रीति-नीति कपटा-चरण का अवलम्बन करती है। वहाँ की समाजिकता कितनी विपन्न अवस्था को प्राप्त होगी, इसके उल्लेख की आवश्यकता नहीं। भारतवर्ष का पतन उस समय से आज तक जिस प्रकार क्रमश होता आता है, वही उसका प्रबल प्रमाण है।

जिस समय उत्तरीय भारत इस प्रकार विपत्तिग्रस्त था उस समय विजयोन्मत्त अरब निवासियो की विजय-वैजयन्ती ईरान मे फहरा चुकी थी और वे क्रमश भारत की ओर विभिन्न मार्गो से अग्रसर होने का पथ ढूंढ रहे थे। इस समय के बहुत पहले से अरब के व्यापारियों के साथ भारत का व्यापारिक सम्बन्ध चला आता था और इस सूत्र से अरब के मुसल्मानों को स्वर्णप्रसू भारत वसुन्धरा का बहुत कुछ ज्ञान था। वे वाणिज्य

विस्तार के लिये भारत के किसी सामुद्रिक प्रदेश मे एक बन्दरगाह बनाना चाहते थे। इसलिये सिन्ध प्रदेश पर पहले पहल उनकी आखे गडीं और ईस्वी नवीं शताब्दी मे मुहम्मदबिन कासिम ने नाना प्रपञ्चो से उस पर अधिकार कर लिया। कहते बडी व्यथा होती है कि वैदिक-धर्मावलम्बियो और बौद्धो का पारस्परिक कलह ही मुसल्मानो के इस विजय का कारण हुआ। इस विषय मे अरब के ग्रन्थकारों के आधार से मौलाना मुहम्मद सुलेमान नदवीने अपने व्याख्यान मे जो कुछ कहा है, उसके हिन्दी अनुवाद का कुछ अंश अरब और भारत के सम्बन्ध नामक पुस्तक से नीचे उद्धृत किया जाता है –

'सिन्ध का सबसे पहला और पुराना इस्लामी इतिहास जो साधारणत 'चचनामा' के नाम से प्रसिद्ध है (जिसके दूसरे नाम तारीखुलहिन्द वल् सन्द और मिनहाजुल ममालिक है) उसको देखने से भलीभाति यह बात स्पष्ट हो जाती है कि उस समय सिन्ध मे बौद्धो और ब्राह्मणों के बीच विरोध और शत्रुता चल रही थी। यह भी पता चलता है कि कुछ घरानो मे ये दोनो धर्म इस प्रकार फैले हुये थे कि उनमे से एक हिन्दू था तो दूसरा बौद्ध। सिन्ध के राजाओ के विवरण पढकर इसी आधार पर मुझे यह निर्णय करना पडा है कि राजा चच हिन्दू ब्राह्मण थे। उसने लडभिड कर छोटे छोटे बौद्ध राजाओ को या तो मिटा दिया था या उन्हे अपना करद बना लिया था। यह राजा ई० छठीं शताब्दी के अन्त मे सिन्ध का शासक था, उसके बाद उसका भाई चन्द्र राजा हुआ। यह बौद्ध मत का कट्टर अनुयायी था। जिन लोगो ने पहले अपना धर्म छोड दिया था, उन्हे इसने बलपूर्वक बौद्ध बनाया था, यह देख हिन्दू ब्राह्मणों ने सिर उठाया, वह विबश होकर लडने के लिये निकला, पर सफल नहीं हुआ। उसके बाद चच का लडका दाहर उसके स्थान पर राजा हुआ।"

"ऐतिहासिक अनुमानों से यह ज्ञान पडता है कि जिस समय मुसल्मान लोग सिन्ध की सीमा पर थे उस समय देश मे इन दोनों धर्म्मों मे भारी लडाई हो रही थी और बौद्ध लोग ब्राह्मणो का सामना करने मे अपने

आपको असमर्थ देखकर मुसलमानो की ओर मेल और प्रेम का हाथ बढा रहे थे। हम देखते है कि ठीक जिस समय मुहम्मदबिन कासिम की विजयी सेना नयरूॅ नगर मे पहुॅचती है उस समय वहा के निवासियो ने अपने बौद्ध पुजारियो को उपस्थित किया था। उस समय पता चला था कि इन्होने अपने विशेष दूत इराक के हज्जाज के पास भेजकर उससे अभय दान प्राप्त कर लिया था, इसलिये नयरू के लोगो ने मुहम्मद का बहुत अच्छा स्वागत किया। उसके लिये रसद की व्यवस्था की अपने नगर मे उसका प्रवेश कराया और मेल के नियमो का पूरा पूरा पालन किया। इसके बाद जब इस्लामी सेना सिन्ध की नहर को पार करके सदउसान पहुॅचती है तब फिर बौद्धलोग शान्ति के दूत बनते है। इसी प्रकार सेवस्तान मे होता है कि बौद्धलोग अपने राजा विजयराम को छोडकर प्रसन्नतापूर्वक मुसलमानो का साथ देते है और उनका मान हृदय से करते है।" ऐसा जान पडता है कि जब सिन्ध के बौद्धो ने एक ओर मुसलमानो को और दूसरी ओर ब्राह्मणो को तौला तब उन्हे मुसलमान अच्छे जान पड़े। दूसरा कारण यह हो सकता है कि इससे पहले तुर्किस्तान और अफगानिस्तान के बौद्धों के साथ मुसलमानो ने जो अच्छा व्यवहार किया था और उनमे से बहुत अधिक लोगो ने जिस शीघ्रता से इस्लामधर्म ग्रहण किया था उसका प्रभाव इस देश के बौद्धो पर भी पडा था।"

सिन्ध पर अधिकार होने के बाद अरब विजेताओ ने भारत के बिभिन्न प्रान्तो पर आक्रमण करना प्रारम्भ किया। इस कारण से उस समय भारत का कुछ उत्तरीय और दक्षिणी प्रान्त रणक्षेत्र बन गयां और ऐसी अवस्था मे आक्रमित प्रान्तो मे युद्धोन्माद का आविर्भाव होना स्वाभाविक था। ये झगडे नवी और दशवीं शताब्दी मे उत्तरोत्तर वृद्धि पाते रहे। इसीलिये हिन्दी साहित्य की अधिकाश आदिम रचनाये वीर-गाथाओ से ही सम्बन्ध रखती है। इन दोनों शताब्दियों मे जितन साहित्य-ग्रन्थ रचे गये उनमे से अधिकतर मे रण-भेरी-निनाद ही श्रवणगत होता है। खुमानरासो आदि इसके प्रमाण है। वीर गाथाओ का काल आगे भी बढता है और तेरहवी शताब्दी तक पहुचता है। कारण इसका

यह है कि विजयी मुसलमानों की विजय-सीमा ज्यों ज्यो बढती गई त्यो त्यो वे प्रबल होते गये और क्रमश भारत के अनेक प्रदेश उनके अधिकार मे आते गये, क्योंकि उस समय हिन्दू जाति असगठित थी और उसमे कोई ऐसा शक्ति सम्पन्न सम्राट् नहो था जो जाति-मात्र को केन्द्रीभूत कर दुर्दान्त यवन दल का दलन करता। इसलिये विजयोत्साही मुसलमान विजेताओं और विजित भारतीयो का युद्ध क्रम लगातार चलता ही रहा और इसी आधार से बीर गाथाओं की रचना भी होती रही क्योकि उस समय हिन्दू जाति की सुप्त-शक्ति को जागरित करने की आवश्यकता थी। मेरे इस कथन का यह भाव नहीं है कि नौ सौ से तेरहवीं शताब्दी तक साहित्य के दूसरे ग्रन्थ रचे ही नहीं गये वरन् मेरा कथन यह है कि इस काल के जितने प्रसिद्ध और मान्य काव्य-ग्रन्थ है, उनमे वीर-गाथामय ग्रन्थों ही को अधिकता और विशेषता है। हिन्दी साहित्य का पहला उल्लेखयोग्य ग्रन्थ खुमान रासो है जो नवे शतक मे लिखा गया। इसके पहले का पुष्प कवि कृत एक अलंकार ग्रन्थ बतलाया जाता है जो आठवी शताब्दी मे रचा गया है। किन्तु उसका उल्लेख मात्र है, ग्रन्थ का पता अब तक नहो चला। यह नहीं कहा जा सकता कि पुष्प का अलंकार ग्रन्थ किस रस मे लिखा गया। कविराज भूषण के 'शिवराज भूषण" ग्रन्थ के समान उसका ग्रन्थ भी केवल वीर रसात्मक हो सकता है। यदि यह अनुमान सत्य हो तो यह कहा जा सकता है कि हिन्दी भाषा के साहित्य का आरम्भ बीर रस से ही होता है, कारण वे ही है जिनका निर्देश मैंने ऊपर किया है। ब्रह्मभट्ट कवि का खुमान रासो, चन्द कबि कृत पृथ्वीराज रासो, जगनिक का आल्ह खंड, नरपति नाल्ह कृत वीसलदेव रासो और सारंगधर-कृत हम्मीर रासो नामक उल्लेखनीय ग्रन्थ भी इसके प्रमाण है।

आरम्भिककाल मैंने आठवीं शताब्दीसे तेरहवी शताब्दी तक माना है। इन पाच सौ वर्षों मे बीर-गाथा-कार कवियो और लेखकों के अतिरिक्त अन्य विषयो के ग्रन्थकार और रचयिता भी हुये है, अतएव मैं उन पर भी विचार करना चाहता हू। जिससे यह निश्चित हो सके कि हिन्दी साहित्य की आरम्भिक रचनाओं के विषय मे मेरा जो कथन है वह कहा तक युक्ति-

संगत है। मिश्र वन्धुओं का विवरण यह है १

दशवीं शताब्दी मे भुआल कवि ने भगवद् गीता का अनुवाद पद्य-वद्ध हिन्दी भाषा मे किया। यह ग्रन्थ उपलब्ध है।

ग्यारहवी शताब्दी मे कालिंजर के राजा नन्द ने कुछ कवितायें की है, किन्तु पुस्तक अव अप्राप्य है।

बारहवी शताब्दी मे जैन श्वेताम्वराचार्य जिन वल्लभ सूरी ने "वृद्ध नवकार" नामक ग्रन्थ बनाया जो जेन हिन्दी साहित्य मे सबसे प्राचीन माना जाता है। इसी शताब्दी मे महाराष्ट्र मे चालुक्य वंशी सोमेश्वर नामक राजा, मसऊद कुतुब अली, सॉईदान चारण और अकरम फैज ने के रचनाये कीं। इनमे से सोमेश्वर, मसऊद और कुतुब अली के ग्रन्थ न तो मिलते। शेष लोगो मे से सांईदानचारण ने "सामन्तसार" नामक ग्रन्था को की रचना की। और अकरम फेज ने "वर्त्तमाल" नामक ग्रन्थ ब काल एवं संस्कृत के वृत्तरत्नाकर नामक ग्रन्थ का अनुवाद किया॥ ती।

डाक्टर जी० ए० ग्रियर्सन ने भी इस काल के कुछ कवियो के नाम लिखे है २। वे है केदार, कुमारपाल और अनन्यदास। (१) केदार कवि का समय सन् ११५० ई० के लगभग है। डाक्टर साहब ने इसके किसी ग्रन्थ का नाम नही लिखा किन्तु कहा जाता है कि इसने "जयचन्द-प्रकाश" नामक महाकाव्य की रचना की थी, जो अब नही मिलता। (२) कुमारपाल बारहवे शतक मे हुआ इसने "कुमारपाल चरित्र" की रचना की, जो उपलब्ध है। (३) अनन्यदास बारहवी शताब्दी मे हुआ, इसका "अनन्य-जोग" नामक ग्रन्थ प्राप्य है।

पं० रामचन्द्र शुक्ल ने अपने " हिन्दी साहित्य का इतिहास " नामक ग्रन्थ मे एक नवीन कवि मधुकर का भी नाम बतलाया है जो बारहवीं शताब्दी में था। वे कहते है इसने " जय मयंक जस चन्द्रिका " नामक ग्रन्थ की रचना की' किन्तु वह ग्रन्थ प्राप्य नही है।

---

१ देखिये 'मिश्र वधु विनोद' पृष्ट ९२

२ देखिये माडर्न वर्नाक्यूलर लिटरेचर आव दी हिन्दुस्थान पृ २

जिन ग्रन्थकारों का नाम ऊपर लिया गया, इनमे से कुछ तो ऐसे है जिनके किसी ग्रन्थ का नाम तक नही बतलाया गया, कुछ ऐसे है जिनके ग्रन्थों का नाम लिखा गया पर वे अप्राप्य है, जिन लोगो के ग्रन्थ मिलते है, जिनका नाम भी बतलाया गया, वे उस कोटि के कवि और ग्रन्थकार नहीं ज्ञात होते, जिनकी रचनाओ का विशेष स्थान होता है। भुआल कवि की भगवद्गीता ही को लीजिये। प्रथम तो वह अनुवाद है, दूसरे उसके अनुवाद की भाषा ऐसी है कि जिस पर दृष्टि रख कर पं० रामचन्द्र शुक्ल १ उसे दशवो शताब्दी का ग्रन्थ मानने को तैयार नही है। अन्य प्राप्य ग्रन्थो के विषय मे भी ऐसी ही बाते कहा जा सकती है, उनमे कोई ऐसा नहीं जो तेरह वयोग्य हो अथवा जिसने ऐसी ख्याति लाभ की हो जैसी बीर गाथा-कथन ी ग्रन्थो को प्राप्त है। किम्वा जिनमें वे विशेषताये हो जो किसी उनमे व अथवा कृति को विद्वन्मण्डली मे वा सुपठित जनता की दृष्टि मे साहित् बनाती हो। इसलिये मेरा यह कथन ही युक्ति-सगत ज्ञात होता है गया न्दी साहित्य के आरम्भिक काल मे बीर गाथा सम्बन्धी ग्रन्थों की ही है जे नता रही और इन बातो पर दृष्टि रख कर डा० जी० ए० ग्रियर्सन आदि विद्वानो ने जो आरम्भिक काल को बीर-गाथा-काल माना है वह असंगत नहीं। इन समस्त ग्रन्थो मे 'खुमान रासो'' ही ऐसा है जो सबसे प्राचीन और उपलब्ध ग्रन्थ है, उसमे वीररस की ही प्रधानता है, अतएव यह कौन नही स्वीकार करेगा कि हिन्दी साहित्य को आदि रचना वीर गाथा से ही प्रारम्भ होती है।

कहा जाता है कि खुमानरासो मे सोलहवी शताब्दी तक की रचनाये सम्मिलित है, जैसा कि ग्रियर्सन साहब के निम्न लिखित उद्धरण से सिद्ध होता है। २

---

१ देखिये हिन्दी साहित्य का इतिहास पृ० ३०

2 'This is the most ancient poetic chronicle of Mewar and was written in the ninth century It gives a history of Khuman Raut and of his family It was recast during the reign of Partap Singh (fl 1575), and, as we now have it, carries the narrative down to the wars of that prince with Akbar, devoting a great portion to the seige of Chitour by Alaubdin Khilji in the thirteenth century '' Modern vernacular Litera ture Hindustan p 3

'यह (खुमान रासो) मेवाड का अत्यन्त प्राचीन पद्य-वद्ध इतिहास है, नवीं शताब्दी मे लिखा गया है। इसमे खुमान रावत और उनके परिवार का वर्णन है। महाराणा प्रताप के समय मे (सन् १५७५) इसमे बहुत से परिवर्तन किये गये। वर्त्तमान रूप मे इसमे अकबर के साथ प्रतापसिंह के युद्धों का वर्णन भी मिलता है। तेरहवी शताब्दी मे चित्तौड पर किये गये अलाउद्दीन खिलजी के आक्रमण का भी इसमे विस्तृत वर्णन है।"

परन्तु इस कथन का यह अर्थ नही है कि खुमान रासो को आदिम रचना की भाषा आदि भी वदल दी गई है। ग्रियर्सन साहब के लेख से इतना ही प्रकट होता है कि उसमे अलाउद्दीन खिलजी और अकबर के समय तक को कथाये भी सम्मिलित कर दी गई है। ऐसी अवस्था मे न तो उसके आदिम रचना होने का महत्व नष्ट होता है और न उसकी भाषा को सन्दिग्ध कहा जा सकता है। जिस समय उसकी रचना हुई थी उस काल का वातावरण ही ऐसा था कि इस प्रकार के ग्रन्थो की सृष्टि होती। क्योंकि यह असम्भव था कि उत्तरोत्तर मुसल्मान पवित्र भारत वसुन्धरा के विभागो को अधिकृत करते जावे और जिन सहृदय हिन्दुओ मे देशानुराग था वे अपने सजातियो को देश और जाति-रक्षा के लिये विविध रचनाओ द्वारा उत्तेजित और उत्साहित भी न करे। यह सत्य है कि भारतवर्ष की सार्वजनिक शक्ति किसी काल मे मुसल्मानो का विरोध करने के लिये कटिबद्ध नहीं हुई और न समस्त हिन्दू जाति किसी काल मे उनसे लोहा लेने के लिये केन्द्रीभूत हुई। किन्तु यह भी सत्य है कि मुसल्मानो की विजय प्राप्ति मे कम वाधाये नहीं उपस्थित की गंई और यह इस प्रकार की कृतियों और रचनाओ का ही अंशत परिणाम था। जिस काल मे हिन्दू जाति को संगठन शक्ति सब प्रकार छिन्न भिन्न थी उस समय वीरगाथा सम्वन्धी रचनाओ ने जो कुछ लाभ पहुचाया उसको अस्वीकार नहीं किया जा सकता। इन्ही बातो पर दृष्टि रखकर मै पहले कह आया हू कि वे तात्कालिक वातावरण और संघषण से ही उत्पन्न हुई थीं। वास्तव बात यह है कि सामाजिक रुचियो और भावों ही

का परिणाम किसी काल का साहित्य होता है। उनका बीररस प्रधान होना भी हमारे कथन की पुष्टि करता है।

अब मै भापा विकास सम्वन्धी विषय पर प्रकाश डालना चाहता हूँ, अतएव इसी कार्य मे प्रवृत्त होता हूँ। भाषा-विकास के प्रकरण मे मैं यह लिख आया हूँ कि अपभ्रंश भाषा से क्रमश विकसित हो कर हिन्दी भाषा वर्त्तमान रूप मे परिणत हुई। इस लिये पहले मै कुछ ऐसे पद्य आप लोगो के सामने रखता हू जो अपभ्रंश भाषा के है। इन पद्यो की रचना प्रणाली और उनके शब्द-विन्यास का ज्ञान हो जाने पर आप लोग उस रीति से अभिज्ञ हो जावेगे जिसको ग्रहण कर हिन्दी साहित्यकारो ने हिन्दी भाषा को आधुनिक रूप दिया। अपभ्रंश के निम्नलिखित पद्यो को देखिये —

१—बिट्टीए मइ भणिय तुहुं मा कुरु बङ्को दिट्ठि।
पुत्ति सकर्णी भल्लि जिवँ मारइ हियइ पविट्ठि॥

बिट्टीए=बिटिया। मइ=मैने। भणिय=कहा। तुहु=तू। मा=मत। कुरु=कर। बङ्को=बॉकी। पुत्ति=पुत्री। सकर्णी=कानवाली, नुकीली। भल्लि=भाला। जिवॅ=जेसे। मारइ=मारतो है। हियइ=हिये मे। पविट्ठि=प्रविष्ट होकर पैठ कर।

बेटी! मैने कहा, तू बॉकी दृष्टि न कर, हे पुत्री! नुकीला भाला हृदय मे पेठ कर मार देता है।

२—जे महुं दियणादियहड़ा दइये पवसन्तेण।
ताण गणन्तिय अंगुलिउ जज्जरियाउ नहेण॥

जे=जो। महुं=हमको। दियण= दिया। दियहडा=दिवस। दइये=दयित, प्यारा। पवसन्तेण=प्रवास मे जाता हुआ। ताण=तिन्हे, तिनको। गणन्तिय=गिनती हुई। अंगुलिउ=ॲगुली। जज्जरियाउ=जर्जरितहो गई। नहेण=नख से॥

प्रवास करते हुये प्यारे ने जो दिन मुझको दिये उनको उंगलियो पर गिनने से वे नखो से जर्जर हो गई॥

३—सायर उप्परि तणु धरइ तलि घल्लै रैणाइँ।
सामि सुभुच्चुभि परिहरइ सम्माणे खल्लाइँ॥

सायर=सागर। उप्परि=ऊपर। तणु=तृण। धरइ=रखता है। तलि=नीचे। घल्लै=डालता है। रैणाइं=रत्नों को। सामि=स्वामी। सुभुच्चुभि=सुन्दर भृत्य को। परिहरइ=त्यागता है। सम्माणे=सम्मान करता है। खलाइं=खलो को।

सागर ऊपर तृण धारण करता है और नीचे रत्नो को डाल देता है। इसी प्रकार स्वामी सुन्दर भृत्यो को छोड देता है और खलो का सम्मान करता है।

४—वायसु उड्डावन्तिए पिउ दिट्ठउ सहसत्ति।
अद्धा बलया महिहि गय अद्धा फुट्टु तड़त्ति॥

वायसु=कौवा। उड्डावन्तिए=उडाती हुई। पिउ=पति। दिट्ठउ= देखा। सहसत्ति=सहसा इति, एकबएक। अद्धा=आधा। बलया=कडा (चूडी)। महिहि=पृथ्वी पर। गय=गिरगई। फुट्टु=फूटगई। तडत्ति=तड से।

कौआ उडाने वाली स्त्री ने सहसा प्यारे को देखा, आधी चूडी पृथ्वी पर गिर गई और आधी तड से फूट गई॥

५—भमरु म रुणि झुणि अण्णदइ सा दिसि जोइ मरोइ।
सा मालइ देसन्तरिय जसु तुहुँ मरइ वियोइ॥

भमरू= भ्रमर। म= मत। रुणिझुणि= रुनझुन शब्द कर। अण्णदइ=अरण्य मे। सा=वह। दिशि=दिशा। जोइ=देख कर। रोइ=रो। मालइ=मालती। देसन्तरिय=देशान्तरित हो गई। जसु=जिसके लिये। तुहुँ=तू। मरइ=मरता है। वियोइ=वियोग मे।

भ्रमर! अरण्य में रुन झुन शब्द मत कर। उस दिशा को देख कर मत रो। वह मालती देशान्तरित हो गई जिसके वियोग मे तू मरता है॥

सब से प्राचीन पुस्तक पुण्ड या पुष्प के अलंकार ग्रन्थ अथवा खुमान रासो के पद्यों का कोई उदाहरण अब तक प्राप्त नहीं हो सका। इस लिये इनकी रचनाओ के विषय मे कुछ लिखना असम्भव है। भुआल कबि का

गीता का अनुवाद दसवे शतक का बतलाया जाता है, परन्तु उसकी भाषा बिल्कुल माध्यमिक काल की मालूम होती है। इस लिये पं० रामचन्द्र शुक्ल से सहमत हो कर मैं उसको आरम्भिक काल का कवि नही मानता। सब से पहले आरम्भिक काल की प्राप्य रचना का उदाहरण, मेरे विचारानुसार, जिन बल्लभ सूरि का है जो बारहवे शतक के आरम्भ मे हुआ। उसकी रचना के कुछ पद्य ये है —

कि कप्पतरु रे अयाण चिन्तउ मणभिन्तरि।
कि चिंतामणि कामधेनु आराहउ बहुपरि।
चित्राबेली काज किसे देसंतर लंघउ।
रयण रासि कारण विसेइ सायर उल्लंघउ।

इस पद्य को आप ऊपर के उन पद्यों से मिलाइये जो अपभ्रश भाषा के है, तो यह ज्ञात हो जायगा कि किस प्रकार अपभ्रश से क्रमश हिन्दी भाषा का विकास होरहा था। प्राकृत और अपभ्रंश मे नकार के स्थान पर णकार हो जाता है। इस पद्य मे भी आप देखेगे कि 'अयाण' मण', 'रयण' आदि मे इसी प्रकार का प्रयोग हुआ है। अपभ्रंश के पाचवे पद्य मे 'देसन्तरिय' का जैसा प्रयोग है, इस पद्य के 'देसन्तर' का भी वैसा ही प्रयोग है। 'भितरि', 'लंघउ', 'उल्लंघउ', 'सायर' इत्यादि शब्दो का भी व्यवहार अपभ्रंश रचना के अनुसार ही हुआ है। प्राकृत मे, और अपभ्रंश मे भी 'ध' का 'ह' हो जाता है। इस पद्य मे भी 'आराधउ' का 'आराहउ' लिखा गया। 'कल्पतरु के स्थान पर 'कप्पतरु' का प्रयोग भी प्राकृत भापा के नियमानुसार है। यह सब होने पर भी उक्त पद्य मे हिन्दीपन की झलक भी 'कामधेनु' 'काज' और 'किसे' आदि शब्दों मे मिलती है जो विकास प्रणाली का प्रत्यक्ष उदाहरण है।

इसी शताब्दी के दूसरे कवि नरपति नाल्ह की भी कुछ रचनाओं को देखिये। यह कवि बीसलदेव रासो नामक ग्रन्थ का रचयिता है। अधिकतर विद्वानो ने इसकी रचना को कुछ तर्क-वितर्क के साथ बारहवे शतक का माना है।

"एक उड़ीसा को धनी बचन हमारइ तू मानि जु मानि ।
ज्यों थारइ सांभर उग्गहइ राजा उणि भरि उगहइ हीरा खानि ।
जीभ न जीभ विगोयनो दव दाधा का कुपली मेल्हइ ।
जीभ का दाधा नुपॉगुरइ नाल्हकहइ सुण जइ सब कोइ ।"

इस पद्य मे भी अपभ्रंश की झलक बहुत कुछ मौजूद है । इसमे अधिकाश राजस्थानी भाषा का रंग है । इसी कारण अपभ्रंश की भाषा से वह बहुत कुछ मिलती जुलती है । अब तक राजस्थानी भाषा पर अपभ्रंश भाषा का बहुत कुछ प्रभाव अवशिष्ट है । फिर भी उसमे ब्रजभापा के शब्दो का इतना मेल है कि उसको अन्य भापा नही कह सकते । पंडित रामचन्द्र शुक्ल वीसल देव रासो की भापा के विषय मे यह लिखते है —

"भाषा की परीक्षा कर के देखते है तो वह साहित्यिक नहीं राजस्थानी है, जैसे 'सूकइ छै' (सूखता है), पाटण थीं (पाटन से), भोजतण (भोज का), खण्ड खण्ड रा (खण्ड खण्ड का), इत्यादि । इस ग्रन्थ से एक बात का आभास अवश्य मिलता है । वह यह कि शिष्ट काव्य-भाषा मे ब्रज और खड़ी बोली के प्राचीन रूप का ही राजस्थान मे भी व्यवहार होता था । साहित्य की सामान्य भापा हिन्दी ही थी, जो पिंगल भाषा कहलाती थी । बीसल देव रासो मे बीच बीच मे बराबर इस साहित्यिक भापा (हिन्दी) को मिलाने का प्रयत्न दिखायी पडता है । भापा की प्राचीनता पर विचार करने से पहले यह बात ध्यान मे रखनी चाहिये कि गाने की चीज होने के कारण इसकी भापा मे समयानुसार बहुत कुछ फेरफार होता आया । पर लिखित रूप मे रक्षित होने के कारण इसका पुराना ढॉचा बहुत कुछ बचा हुआ है । उदाहरण के लिये देखिये 'मेलवि'=मिलाकर, जोड कर । चितईं=चित्त मे । रणि=रण मे । प्रापिजयि=प्राप्त हो या किया जाय । ईणी विधि=इस विधि । ईसउ=ऐसा । बालहो=बाला का । इसी प्रकार नयर (नजर), पसाउ (प्रसाद), पयोहर (पयोधर) आदि प्राकृत शब्द भी है जिनका प्रयोग कविता मे अपभ्रंश काल से ले कर पीछे तक होता रहा ।"

१—देखिये हिन्दी साहित्य के इतिहास का पृष्ठ ३० और ३१

आरम्भिक काल का प्रधान कवि चन्द है जो हमारे हिन्दी संसार का चासर है। वह भी इसी शताब्दी मे हुआ मै कुछ उसकी रचनाये भी उपस्थित करना चाहता हू, जिससे यह स्पष्टतया प्रकट होगा कि किस प्रकार अपभ्रंश मे हिन्दी भाषा रूपान्तरित हुई है। कुछ विद्वानो की यह सम्मति है कि चन्द कवि कृत पृथ्वीराज रासो की रचना पन्द्रहवी या सोलहवीं शताब्दी की है। पृथ्वीराज रासो मे बहुत सी रचनाये ऐसी है जो इस विचार को पुष्ट करती है। परन्तु मेरा विचार है कि इन प्रक्षिप्त रचनाओ के अतिरिक्त उक्त ग्रथ मे ऐसी रचनाये भी है जिनको हम बारहवीं शताब्दी की रचना निस्संकोच भाव से मान सकते है। इस विषय मे बहुत कुछ तर्क-वितर्क हो चुका है और अब तक इसकी समाप्ति नही हुई। तथापि ऐतिहासिक विशेषताओं पर दृष्टि रख कर पृथ्वीराज रासो की आदिम रचना को बारहवीं शताब्दी का मानना पडेगा। बहुत कुछ विचार करने पर मैं इस सिद्धान्त पर पहुचा हू कि पृथ्वीराज रासो मे प्राचीनता की जो विशेषताये मौजूद है वे वीर गाथा काल की किसी पुस्तक मे स्पष्ट रूप से नहीं पायी जातो। कुछ वर्णन इस ग्रन्थ के ऐसे है जिनको प्रत्यक्षदर्शी ही लिख सकता है। कोई इतिहासज्ञ यह नही कहता कि चन्द बरदाई पृथ्वीराज के समय मे नही था। कुछ ऐतिहासिक घटनाएं इस ग्रन्थ की ऐसी है जो पृथ्वीराज और चन्द बरदाई के जीवन से विशेष सम्बन्ध रखती है। जब तक उनको असत्य न सिद्ध किया जाय तब तक पृथ्वीराज रासो को कृत्रिम नहीं कहा जा सकता। किसी भाषा की आदिम रचनाओ मे जो अप्राञ्जलता और शब्द विन्यास का असंयत भाव देखा जाता है वह पृथ्वीराज रासो मे मिलता है। इसलिये मेरी यह धारणा है कि इस ग्रन्थ का कुछ आदिम अंश अवश्य है जिसमे बाद को बहुत कुछ सम्मिश्रण हुआ। इस आदिम अंश मे से ही उदाहरण स्वरूप कुछ पद्यनीचे लिखे जाते है —

१—उड़ि चल्यो अप्प कासी समग्ग
आयो सु गंग तट कज्ज जग्ग
सत अट्ठ खण्ड करि अंग अब्बि, ओमें सु अप्प वर मद्धि हबि।
मंग्यो सु ईस यँहि बर पसाय, सत अद्ध पुत्त अवतरन काय।

२—हय हथ्थि दंत संखय न मन खग्ग मग्ग खूनी बहै ।
३—छपी सेन सुरतान, मुट्ठि छुट्टिय चावद्दिसि ।
मनु कपाट उद्धर्यो, कूह फुट्टिय दिसि विद्दिसि ।
मार मार मुष किन्न, लिन्न चावण्ड उपारे ।
परे सेन सुरतान, जाम इक्कह परि धारे ।
गल वत्थ घत्त गाढ़ो ग्रहौ, जानि सनेही भिटयौ ।
चामण्डराइ करवर कहर, गौरी दल बल कुट्टियौ ।

पहले मै जिन अपभ्रंश पद्यो को लिख आया हू उनसे इनको मिलाइये देखिये कितना साम्य है। ज्ञात होता है कि ये उन्ही की छाया है। इनपद्यों मे यह देखा जाता है कि जहा प्राकृत अथवा अपभ्रंश के 'समग्ग' 'कज्ज', 'जग्ग 'अट्ठ' 'अप्प मद्धि' 'पसाय' 'अद्ध 'पुत्त' 'हथ्थि', 'खग्ग' 'मग्ग' मुट्ठि' आदि प्रातिपदिक शब्द आये है वही छुट्ठि', 'फुट्टिय' 'भिंटयौ' 'कुट्टियौ' आदि क्रियाये भी आई है। इनमे 'हय' 'कपाट', 'दल' 'बल', इत्यादि संस्कृत के तत्सम शब्द भी मौजूद है और यह कवि द्वारा गृहीत उसकी भाषा की विशेषता है। प्राकृत अथवा अपभ्रंश मे प्राय संस्कृत के तत्सम शब्दो का अभाव देखा जाता है। विद्वानो ने प्राकृत और अपभ्रंश की यह विशेशता मानी है कि उसमे संस्कृत के तत्सम शब्द नही आते। परंतु चन्द की भाषा बतलाती है कि उसने अपने पद्यो मे संस्कृत तत्सम शब्दों के प्रयोग की चेष्टा भी की है। उसने 'नकार' के स्थान पर 'णकार' का प्रयोग प्राय नहीं किया है और यह भी हिन्दी भाषा का एक विशेष लक्षण है। प्राकृत और अपभ्रंश मे नकार का भी एक प्रकार से अभाव है। डिगल अथवा राजस्थानी मे भी प्राय नकार का प्रयोग नहीं होता देखा जाता। इन पद्यो मे कुछ ऐसी क्रियाएं भी आई है जो ब्रजभाषा की मालूम होती है, वे है 'उडि चल्यो', 'आयो' 'करि', आदि और ये सब वे ही विशेषताये है जो प्राकृत और अपभ्रंशसे हिन्दी भाषा को अलग करतीं और उसके शनै शनै विकसित होने का प्रमाण देती है। मै कुछ ऐसे पद्यों को

भी उपस्थित करना चाहता हू जिनकी रचना इन पद्यो से सर्वथा भिन्न है। वे पद्य ये है ।—

दूहा

सरस काव्य रचना रचौं. खल जन सुनि न हसन्त ।
जैसे सिंधुर देखि मग, इवान स्वभाव भुसन्त ।
तौ यनि सुजन निमित्त गुन, रटये तन मन फूल ।
जूं का भय जिय जानि कै, क्यों डारिये दुकूल ।
पूरन सकल विलास रस, सरस पुत्र फल दान ।
अन्त होय सह गामिनी, नेह नारि को मान ।
जस हीनो नागो गनहु, ढंक्यो जग जस बान ।
लम्पट हारै लोह छन, तिय जीतै बिनु बान ।
समदर्शी ते निकट है, भुगति मुकति भर पूर ।
विषम दरस वा नरन ते, सदा सर्वदा दूर ।

मेर विचार है, ए पद्य सोलहवीं शताब्दी के है और बाद को ग्रन्थ की मुख्य रचना मे सम्मिलित किये गये है। परन्तु कोई भाषा मर्मज्ञ भिन्न प्रकार के दोनो पद्य समूहों को देख कर यह न स्वीकार करेगा कि वे एक काल की ही रचनाये है। मेरा तो यह विचार है कि ये दोनो भिन्न प्रकार की रचनाएं ही इस बात का प्रमाण है, कि उनके निर्माण-कालमे शताब्दियो का अन्तर है। डाक्टर ग्रियर्सन साहब कहते है कि इस ग्रन्थ मे १००००० पद्य है १। क्या पद्यो की यह बहुलता यह नहीं प्रमाणित करती कि इस ग्रन्थ मे धीरे धीरे बहुत अधिक प्रक्षिप्त अंश सम्मिलित किये गए है। हिन्दी भाषा मे अब तक इतने बड़े ग्रन्थ का निर्माण नहीं हुआ है। संस्कृत मे भी महा-भारत को छोडकर कोई ऐसा विशाल ग्रन्थ नहीं है। महाभारत में भी जब क्रमश. बहुत से सामयिक श्लोक यथा समय सम्मिलित होते गये तभी

१ देखिये माडर्न वर्नाक्यूलर लिटरेचर आव हिन्दुस्तान पृष्ट ३

उसका इतना विस्तार हुआ। यही बात पृथ्वीराज रासो के विषय मे भी कही जा सकती है। जैसे बाद के प्रक्षिप्त अंशोकी उपस्थिति मे भी महाभारत प्राचीन श्लोकों से रहित नहीं हो गया है उसी प्रकार रासो मे भी प्राचीन रचनाओ का अभाव नही है।

इस विषय मे अनेक विद्वानो की सम्मतियॉ मेरे विचारानुकूल है। हा कुछ विद्वान् उसको सर्वथा जाली कहते है। यह मत-भिन्नता है। डा० ग्रियर्सन साहब की इस विषय मे क्या सम्मति है और उसकी भाषाके विषय मे १ उनका क्या विचार है उसको मैं नोचे उद्धृत करता हू।

उसकी (चन्द वरदाई की) रचनाओं का मेवाड के अमरसिंहने सत्रहवीं शताब्दी के आरंभ मे संग्रह किया। यह भी असम्भव नहीं है कि उसी समय किसी किसी अंश को नवीन रूप दे दिया गया हो। जिससे इस सिद्धान्त का भी प्रचार हो गया है कि कुल का कुल ग्रन्थ जाली है।"

"इस कवि (चन्द वरदायी) के ग्रन्थों के अध्ययन ने मुझे उसके कवित्व-सौन्दर्य पर मुग्ध बना दिया है परन्तु मुझे सन्देह है कि राजपूताना की बोलियो से अपरिचित कोई व्यक्ति इसे आनन्द पूर्वक पढ सकेगा। तथापि यह भाषा-विज्ञान के विद्यार्थी के लिये अत्यन्त मूल्यवान् है, क्योकि यूरोपीय अनुसन्धान कर्त्ताओ को आधुनिकतम प्राकृत और प्राचीनतम गौडीय कवियों के मध्य में रिक्त स्थान की पूर्ति करने वाली कडी एक मात्र यही है। हमारे पास चन्द का मूल ग्रन्थ भले ही न हो, फिर भी उसकी रचनाओं मे हमे शुद्ध अपभ्रंश, शौरसेनी प्राकृत रूपो से युक्त, गौड साहित्य के प्राचीनतम नमूने मिलते है।" १

1—"His poetical works were collected by Amar Singh (cf no 191), of Mewar in the early part of the seventeenth Century They were not improbably recast and modernised in parts at the same time, which has given rise to a theory that the whole is a modern forgery"

"My own studies of this poet's work have inspired me with a great admiration for its poetic beauty, but I doubt if anyone not perfectly master of the various Rajputana dialects could even read it with pleasure

पद्यों की आदिम रचना इतनी प्राञ्जल और उतनी प्रौढ नही होतीं जितनी उत्तरकाल की, यह मै पहले लिख आया हू। चन्द बरदाई की रचनाओं मे ये बाते पाई जाती है, जो उन्हे आरम्भिक काल की मानने के लिये बिवश करती है। किसी विषय का दोष गुण उस समय ही यथा-तथ्य सामने आता है, जब उस पर अधिकतर विचार दृष्टि पडने लगती है, नियम उसी समय निर्दोष वन सकते है, जब कार्य क्षेत्र मे आने पर उन पर विवेचना का अवसर प्राप्त होता है। आदिम रचनाओं मे प्राय अप्राञ्जलता और अनियमबद्धता इसलिये पाई जाती है कि उनका पथ विचार-क्षेत्र मे आकर प्रशस्त नही हो गया होता और न आलोचना और प्रत्यलोचनाओ के द्वारा उनकी प्रणाली परिमार्जित हो गई होती। जिस काल मे पृथ्वीराज रासो की मुख्य रचना प्रारम्भ होती है उस समय साहित्य की अवस्था ऐसी ही थी और यह दूसरा प्रमाण है जो उसके आदिम अंशको आरंभिक-काल की कृति बतलाता है। उदाहरण लीजिये —

चले दस्सहस्सं असव्वार जानं।
मदं गल्लितं मत्त सै पंच दंती।
रँगं पंच रंगं ढलक्कन्त ढालं।
सुरं पंच सावद्द वाजित्र बाजं।
सहस्सं सहन्नाय मृग मोहि राजं।
मँजारी चखी मुष्ष जम्बक्क लारी।
एराकी अरब्बी पटी तेज ताजी।
तुरक्की महाबान कम्मान बाजी।

It is, however, of the greatest value to the student of philology, for it is at present the only stepping stone available to European explorers in the chasm between the latest Prakrit and the earliest Gaudian authors Though we may not possess the actual text of Chand, we have certainly in his writings some of the oldest known specimens of Gaudian literature, abounding in pure Apabhransha, Shaur eni p akrit forms'

रजंपुत्त पचास जुट्टे अमोरं ।
बजै जीत के नद्द नीसान घोरं ।
सामना सूर सव्वय अपार ।
झटं जाहु तुम कीर दिल्ली सुदेसं ।
कंद्रप्प जाति अवगार रूप ।

जो चिन्हित शब्द है उनमे कवि की निरंकुशता और मनमानी रीति से शब्द गढ लेने की प्रवृत्ति स्पष्टतया दृष्टिगत होती है। मै यह स्वीकार करूँगा कि उत्तर काल की कुछ रचनाओ मे भी इस प्रकार का प्रयोग मिलता है। किन्तु मै उसको चन्द बरदाई की ही रचनाओ का अनुकरण मात्र समझता हू। इस निरंकुशता के प्रवर्त्तक पृथ्वीराज रासोकार ही है। यह अप्राञ्जलता और अनियमवद्धता जो उनकी रचना मे आई है उसका कारण उनका आरम्भिक काल का होना है। निम्नलिखित शब्द विदेशी भाषा के है —

'असव्वार', 'सहन्नाय','अरव्वी','तुरक्की 'कम्मान', इत्यादि।

इनका ग्रहण अनुचित नहीं, परन्तु इनका मनगढन्त प्रयोग उचित नहीं। इन शब्दो का शुद्ध रूप 'सवार', 'शहनाई' अरबी', 'तुरकी', 'कमान' है, किन्तु उनका जो रूप कवि ने बनाया है वह न तो उस भाषा के व्याकरण पर अवलम्बित है न हिन्दी भाषा अथवा प्राकृत या अपभ्रंश के नियमो के अनुकूल है। ऐसी अवस्था मे उनका प्रयोग जिस रूप मे हुआ है वह अप्रौढता और अनियमवद्धता का ही परिचायक है, जो तत्कालिक हिन्दी भाषा की अपरिपक्वता का सूचक है। शेष शब्द हिन्दी भाषा अथवा प्राकृत किंबा अपभ्रंश के है। उनका भी मन माना प्रयोग किया गया है जैसे 'गलित' को 'गल्लितं', 'ढलकत' को 'ढलक्कंत', 'शब्द' को 'सावद', 'वादित्र' को 'बाजित्र', 'मुख' को 'मुष', 'जम्बुक' को 'जम्बक', 'राजपूत' को 'रजंपुत्त', 'पचास' को 'पच्चास', 'नाद' को 'नद्द', 'सब' या'सब्ब'को 'सव्वय', 'झटिति' या 'झट'को 'झटं', कंदर्प'को 'कंद्रप्प'

इत्यादि। ये शब्द हिन्दी, प्राकृत, अथवा अपभ्रंश व्याकरण के अनुकूल न तो बने है और न इनमे साहित्य-सम्बन्धी कोई नियमबद्धता पाई जाती है। इसलिये मेरा विचार है, कि ये कवि के गढ़े शब्द है और इसी कारण से इनकी सृष्टि हुई है कि आरम्भिककाल मे इस प्रकार की उच्छृङ्खलता का कोई प्रतिबन्ध नही था। अतएव मै यह कहने के लिये बाध्य हू कि जिन रचनाओ मे इस प्रकार के शब्दो का प्रयोग हुआ है वे अवश्य रासो की आदिम अप्रक्षिप्त रचनाये है।

पृथ्वीराज रासो के कुछ छन्द भी इस बात के प्रमाण है कि उसकी मुख्य रचनाएँ बारहवीं शताब्दी की है। आज तक हिन्दी साहित्य मे गाथा छन्द का व्यवहार नहीं होता, किन्तु चन्दवरदाई इस छन्द से काम लेता है। वैदिककाल से प्रारम्भ करके बौद्धकाल तक गाथा मे रचनाएँ हुई है, अपभ्रंश काल मे भी गाथा मे रचना होती देखी जाती है। १ ऐसी अवस्था मे जब देखते है कि चन्दबरदाई भी गाथा छन्द का व्यवहार करता है तो इससे क्या पाया जाता है? यही न कि पृथ्वीराज रासोकी रचना आरम्भिककाल की ही है, क्योंकि अपभ्रंश के बाद ही हिन्दी भाषा का आरम्भिक-काल प्रारम्भ होता है। रासो का एक गाथा छन्द देखिये, और उसकी भाषा पर भी बिचार कीजिये —

पुच्छति बयन सुबाले उच्चरिय करि सच्च सचाए।
कवन नाम तुम देस कवन पंद करै परवेस।

अबतक मैने पृथ्वीराज रासो के प्राचीन अंश के विषय मे जो कुछ लिखा है उससे मै नहीं कह सकता कि अपने विषय के प्रतिपादन मे मुझको कितनी सफलता मिली। यह बडा वाद-ग्रस्त विषय है। यदि डाक्टर ग्रियर्सन की सम्मति पृथ्वीराज रासो की प्राचीनता के अनुकूल है तो डाक्टर बूलर की सम्मति उसके प्रतिकूल। वे इस ग्रन्थ की यहाँ तक प्रतिकूलता करते है कि उसका प्रकाशन तक बन्द करा देना चाहते है। यदि पंडित मोहनलाल बिष्णुलाल पंड्या अनेक तर्क-वितर्कों से पृथ्वीराज रासो की

१—देखिये पालि प्रकाश, पृष्ठ ६२, ६३, ६४।

प्राचीनता का पक्ष-ग्रहण करते है तो जोधपुर के मुरारिदान और उदयपुर के श्यामल दास भी उसका विरोध करने के लिये कटिबद्ध दिखलाई पडते है। थोडा समय हुआ कि रायबहादुर पं० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा ने भी अपनी प्रवल युक्तियो से इस ग्रन्थ को सर्वथा जाली कहा है। परन्तु, जब हम देखते है कि महामहोपाध्याय पं० हरप्रसाद शास्त्री सन् १६०९ से सन् १९१३ तक राजपूताने मे प्राचीन ऐतिहासिक काव्यो की खोज करके पृथ्वीराज रासो को प्राचीनता की सनद देते है तो इस विवर्द्धित बाद की विचित्रता ही सामने आती है। इन विद्वान् पुरुषो ने अपने अपने पक्ष के अनुकूल पर्य्याप्त प्रमाण दिये है। इसलिये इस विषय मे अब अधिक लिखना बाहुल्य मात्र होगा। मैने भी अपने पक्ष की पुष्टि के लिये उद्योग किया है। किन्तु यह नही कहा जा सकता कि मैने जो कुछ लिखा है वह निर्विवाद है। हा, एक बात ऐसी है जो मेरे विचार के अधिकतर अनुकूल है। वह यह कि बहुत कुछ तर्क-वितर्क और विवाद होने पर भी किसी ने चन्दवरदाई को सोलहवे शतक का कवि नहीं माना है। विवाद करनेवालोने भी साहित्य के वर्णन के समय उसको बारहवे शतक मे ही स्थान दिया है। यदि पृथ्वीराज रासो की प्राचीनता की सत्यता मे सन्देह है तो उसको बारहवे शतक मे क्यो स्थान अबतक मिलता आता है। मेरा विचार है कि इसके पक्ष मे ऐसी सत्यता अवश्य है जो इसको बारहवे शतक का काव्य मानने के लिये बाध्य करती है। इसके अतिरिक्ति जबतक संदिग्धता है तबतक उस पद से किसी को कैसे गिराया जा सकता है जो कि चिरकाल से उसे प्राप्त है।

चन्दबरदाई का समसामयिक जगनायक अथवा जगनिक नामक एक ऐसा प्रसिद्ध कवि है जिसकी बीरगाथा मय रचनाओं का इतना अधिक प्रचार सर्व्व साधारण मे है जितना उस समय की और किसी-कवि-कृति का अब तक नही हुआ। इसकी रचनाये आज दिन भी उत्तर भारत के अधिकाश विभागो के हिन्दुओ की सूखी रगो मे रक्त-धारा का प्रवाह करती रहती है। पश्चिमोत्तर प्रान्त के पूर्व और दक्षिण के अंशो मे इसके गीतों का अब भी बहुत अधिक प्रचार है। वर्षाकाल में जिस वीरोन्माद के साथ

इस गीति-काव्यका गान ग्रामो के चौपालो और नगरो के जनाकीर्ण स्थानो मे होता है वह किसके हृदय मे वीरता का सचार नही करता ? इसके रचे गीतों मे महोबा के राजा के दो प्रधान वीर आल्हा और ऊदनके वीर कर्म्मों का वडा ही ओजमय वर्णन है। यद्यपि यह बात बडी ही मर्म्म-भेदी है कि इन दोनो वीरो के वीर कर्म्मों की इति श्री गृहकलह मे ही हुई। (महोबे के प्रसिद्ध शासक परमाल और उस काल के प्रधान क्षत्रिय भूपाल पृथ्वीराज का संघर्ष ही इस गीति-काव्य का प्रधान विषय है।) यह वह सघर्ष था कि जिसका परिणाम पृथ्वीराज का पतन और भारतवर्ष के चिर-सुरक्षित दिल्ली के उस फाटक का भग्न होना था जिसमे प्रवेश कर के विजयी मुसल्मान जाति भारत की पुण्य भूमि मे आठ सौ वष तक शासन कर सकी। तथापि यह बात गर्व के साथ कही जा सकती है कि जैसा बीररस का ओजस्वी वर्णन इस गीति काव्य मे है हिन्दी साहित्य के एक दो प्रसिद्ध ग्रंथो मे ही वैसा मिलता है। यह ओजस्वी रचना, कुछ काल हुआ, आल्हा खड के नाम से पुस्तकाकार छप चुकी है, परन्तु बहुत ही परवर्त्तित रूप मे। उसका मुख्य रूप क्या था, इसकी मीमांसा करना दुस्तर है। जिस रूप मे यह पुस्तक हिन्दी साहित्य के सामने आई है उसके आधार से इतना ही कहा जा सकता है कि इस कवि का उस काल की साहित्यिक हिन्दी पर, जैसा चाहिए वेसा, अधिकार नही था। प्राप्त रचनाओ के देखने से यह ज्ञात होता है कि उसमे बुन्देलखण्डी भाषा का ही बाहुल्य है। हिन्दी भाषा के विकास पर उससे जैसा चाहिये वेसा प्रकाश नही पडता, विशेप कर इस कारण से कि मौखिक गीति-काव्य होने से समय के साथ साथ उसकी रचना मे भी परिवर्तन होता गया है। किन्तु हिन्दी भाषा के आरम्भिक काल मे जो संघर्ष यहा के विद्वेष-पूर्ण राजाओ मे परस्पर चल रहा था उसका यह ग्रंथ पूर्ण परिचायक है। इसी लिये इस कवि की रचनाओ की चर्चा यहा की गई। मै समझता हू कि जितने ग्रामीण गीत हिन्दी भाषा के सर्व साधारण मे प्रचलित है उनमे जगनायक के आल्हाखंड को प्रधानता है। उसके देखने से यह अवगत होता है कि सर्व साधारण की बोलचाल मे भी कैसी ओज-पूर्ण रचना हो सकती है। इस उद्देश्य से भी इस कवि की चर्चा आवश्यक

ज्ञात हुई। उसकी रचना के कुछ पद्य नीचे लिखे जाते है।

कूदे लाखन तब हौदा से, औ धरती मैं पहुंचे आइ।
गगरी भर के फूल मँगाओ सो भुरुही को दओ पियाइ।
भांग मिठाई तुरतै दइ दइ, दुहरे घोट अफीमन क्यार।
रानी भाती हथिनी करि कै दुहरे आँदू दये डराय।
चहुँ ओर घेरे पृथीराज हैं, भुरुही रखि हौ धर्म हमार।
खैंचि सरोही लाखन लीन्ही समुहैं गोलगये समियाय।
साँकरि फेरै भुरुही दल में, सब दल काट करो खरियान।
जैसे भेड़हा भेड़न पैठै, जैसेसिंहबिड़ारै गाय।
वह गत कीनो है लाखन ने, नही बितवै के मैदान।
देवि दाहिनी भइ लाखनको, मुरचा हटोपिथौरा क्यार।

उस समय युद्धोन्माद का क्या रूप था और किस प्रकार मुसल्मानो के साथ ही नही, हिन्दू राजाओ मे भी परस्पर संघर्ष चल रहा था, इस गीति-काव्य मे इसका अच्छा चित्रण है। (इस लिए उपयोगिता की ही दृष्टि से नही, जातीय दुर्बलताओं का ज्ञान कराने के लिये भी यह ग्रन्थ रक्षणीय और संग्रहणीय है।) इन पद्यो को वर्तमान भाषा यह स्पष्टतया बतलाती है कि वह बारहवी ई० शताब्दी की नही है। हमने तेरहवीं ई० शताब्दी तक आरम्भिक काल माना है। इस लिये हम इस शतक के कुछे कवियो की रचनाये ले कर भी यह देखना चाहते है कि उन पर भाषा सम्बन्धी विकास का क्या प्रभाव पडा। इस शतक के प्रधान कवि अनन्य दास, धर्मसूरि, विजयसूरि एवं विनय चन्द्र सूरि जैन है। इनमे से अनन्य दास की रचना का कोई उदाहरण नहीं मिला। धर्म्मसूरि जैन ने जम्बू स्वामी रासा नामक एक ग्रन्थ लिखा है उसके कुछ पद्य ये है (रचना काल २०९ ईस्वी)

करि सानिधि सरसत्ति देवि जीयरै कहाणउँ।
जम्बू स्वामिहिं गुण गहण संखेवि बखाणउँ।

जम्बु दीवि सिरि भरत खित्ति तिहि नयर पहाणउँ।
राजग्रह नामेण नयर पुहुवी बक्खाणउँ।
राज करइ सेणिय नरिन्द नखरहं नुसारो।
तासु वट तणय बुद्धिवन्त मति अभय कुमारो।

विजय सेन सूरि ने 'रेवंतगिरि रासा' की रचना की है। (रचनाकाल १२३१ ई०) । कुछ उनके पद्य भी देखिये —

परमेसर तित्थेसरह पय पंकज पणमेवि।
भणि सुरास रेवंतगिरि अम्बकिदिवि सुमिरेवि।
गामा गर पुर बरग गहण सरि वरि सर सुपयेसु।
देवि भूमि दिसि पच्छिमंह मणहर सोरठ देसु।
जिणु तहिं मंडण मंडणउ मर गय मउडु महन्तु।
निर्म्मल सामल सिहिर भर रेहै गिरि रेवंन्तु।
तसु मुंहुं दंसणु दस दिसवि देसि दिसन्तर संग।
आवइ भाव रसाल मण उड्डलि रंग तरंग।

विनय चन्द्रसूरि ने नेमनाथ चौपई' और एक और ग्रन्थ लिखा है (रचना काल १२९९ ई०) कुछ उनके पद्य देखिये —

"बोलइ राजल तउ इह वयणू। नत्थि नेंमबर समवर रयणू।
धरइ तेजु गहगण सविताउ। गयणि नउग्गइ दिणयर जाउ।
सखी भणय सामिणि मन झूरि। दुज्जण तणमन वंछितपूरि"।

ऊपर के पद्यो मे जो शब्द चिन्हित कर दिये गये है वे प्राकृत अथवा अपभ्रंश के है। इससे प्रगट होता है कि तेरहवीं शताब्दी तक अपभ्रंश शब्दों का हिन्दी रचनाओं मे अधिकतर प्रचलन था। अपभ्रंश में नकार के स्थान पर णकारका प्रयोग अधिकतर देखाजाता है। उल्लिखित पद्योंमे भी

१—देखिये पाली प्रकाश पृ० ९९

नकार के स्थान पर णकार का वहुल प्रयोग पाया जाता है। जैसे तणय, मणहर, मण, गयण, दिणयर, दुज्जण इत्यादि। अपभ्रंश भाषा का यह नियम है कि अकारान्त शब्द के प्रथमा और द्वितीया का एक बचन उकारयुक्त होता है १। इन पद्यो मे भी ऐसा प्रयोग मिलता है जैसे देसु, पहन्तु, रेवन्तु, तेजु इत्यादि। प्राकृत और अपभ्रंश मे शकार और षकार का बिलकुल प्रयाग नहीं होता, उसके स्थान पर सकार प्रयुक्त होता है १। जैसे श्रमण समणो, शिष्य मिस्सो। इन पद्यो मे भी ऐसा प्रयोग मिलता है। परमेसर देस, सामल, दस दिसवि, देसि, दिसन्तरु, देसणु इत्यादि। अपभ्रंश का यह नियम भी है कि अनेक स्थानो मे दीर्घ स्वर ह्रस्व एव ह्रस्व स्वर दीर्घ हो जाता है। इन पद्यो मे बयणू, और रयणू का ऐसा ही प्रयोग है। इनमे जो हिन्दी के शब्द आये है जैसे करि, राज करइ सारो, तासु, मुंह, दस, आवइ, रंग, बोलइ, धरइ, मन इत्यादि। इसी प्रकार जो संस्कृत के तत्सम शब्द आए है जैसे गुण, राजग्रह मति, अभय, पंकज, गिरि, सरि, सर, भूमि, रसाल, तरंग, सम, सखी इत्यादि वे विशेष चिन्तनीय है। हिंन्दी शब्द यह सूचित कर रहे है कि किस प्रकार वे धीरे २ अपभ्रंश भाषा मे अधिकार प्राप्त कर रहे थे। संस्कृत के तत्सम शब्द यह बतलाते है कि उस समय प्राकृत नियमों के प्रतिकूल वे हिन्दी भाषा मे गृहीत होने लगे थे। इन पद्यो मे यह बात विशेष दृष्टि देने योग्य है कि इनमे एक शब्द के विभिन्न प्रयोग मिलते है जैसे मन के मण आदि। प्राय 'न, के स्थान पर णकार का प्रयोग देखा जाता है, जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है, परन्तु न का सर्वथा त्याग भी नहीं है। जैसे नयर नायेण, नेमि इत्यादि।

मै समझता हू, आरम्भिक काल मे किस प्रकार अपभ्रंश भाषा परिवर्तित हो कर हिन्दी भाषा मे परिणत हुई, इसका पर्याप्त उदाहरण दिया जा चुका। उस समय की परिस्थिति के अनुकूल जो सामाजिक और राजनीतिक परिवर्तन हुए उनका वर्णन भी जितना अपेक्षित था उतना किया

(१) देखिये पाली प्रकाश पृ० २

गया। आरम्भिक काल मे कुछ ऐसे ग्रन्थ भी लिखे गये है जिनका सम्बन्ध वीरगाथाओं से, नही है परन्तु प्रथम तो उन ग्रंथोका नाम मात्र लिया गया है, दूसरे जो ग्रन्थ उपलब्ध है वे थोडे है और उनकी प्राय रचनाये ऐसी है जो उस काल की नही, वरन माध्यमिक काल की ज्ञात होती है। इसलिये उनका कोई उद्धरण नहीं दिया गया। अन्त मे मैने जेन सूरियो की जो तीन रचनाये उद्धृत की है वे वोर रस की नही है। तथापि मैने उनको उपस्थित किया केवल इस उद्देश्य से कि जिस मे यह प्रगट हो सके कि वीर-गाथा सम्बन्धी रचनाओ मे ही नहीं आरम्भिक काल मे ओज लाने के लिये प्राकृत और अपभ्रंश शब्दो का प्रयोग किया गया है, वरन अन्य रचनाओं मे भी इस प्रकार के प्रयोग मिलते है जो यह बतलाते है कि उस काल की वास्तविक भाषा वही थी जो विकसित होकर अपभ्रंश से हिन्दी भापा के परवर्ती रूप की ओर अग्रसर हो रही थी।

तीसरा प्रकरण।

हिन्दी साहित्य का माध्यमिक काल।

हिन्दी साहित्य का माध्यमिककाल, मेरे विचार से चौदहवी ईस्वी शताब्दी से प्रारम्भ होता है। इस समय विजयी मुसल्मानो का अधिकार उत्तर भारत के अधिकाश विभागो मे हो गया था और दिन दिन उनकी शक्ति वर्द्धित हो रही थी। दक्षिण प्रान्त मे उन्होने अपने पाव बढाये थे और वहा भी विजय-श्री उनका साथ दे रही थी। इस समय मुसल्मान विजेता अपने प्रभाव विस्तार के साथ भारतवर्ष की भाषाओ से भी स्नेह करने लगे थे। और उन युक्तियो को ग्रहण कर रहे थे जिनसे उनके राज्य मे स्थायिता हो और वे हिन्दुओं के हृदय पर भी अधिकार कर सके। इस सूत्र से अनेक मुस्लिम विद्वानों ने हिन्दी भापा का अध्ययन किया, क्योकि वह देश-भाषा थी। मुसल्मानों मे राज्य प्रचार के साथ अपने

धर्म-प्रचार की भी उत्कट इच्छा थी। जहा वे राज्य रक्षण अपना कर्तव्य समझते वहीं अपने धर्म के विस्तार का आयोजन भी बडे आग्रह के साथ करते। उस समय का इतिहास पढने से यह ज्ञात होता है कि जहा विजयी मुसलमानो की तलवार एक प्रान्त के बाद भारत के दूसरे प्रान्तो पर अधिकार कर रही थी वहा उनके धर्म-प्रचारक अथवा मुल्ला लोग अपने धर्म की महत्ता बतला कर हिन्दू जनता को भी अपनी ओर आकर्षित कर रहे थे। यह स्वाभाविकता है कि विजित जाति विजयी जाति के आचार-विचार और रहन-सहन की ओर खिँच जाती है। क्योकि अनेक कार्य सूत्र से उनका प्रभाव उनके ऊपर पडता रहता है। इस समय बौद्ध धर्म प्राय भारतवर्ष से लोप हो गया था। बहुतो ने या तो मुसलमान धर्म स्वीकार कर लिया था या फिर अपने प्राचीन वैदिक धर्म की शरण ले ली थी। कुछ भारतवर्ष को छोड कर उन देशो को चले गये थे जहा पर बौद्ध धर्म उस समय भी सुरक्षित और ऊर्जित अवस्था मे था। इस समय भारत मे दो ही धर्म मुख्यतया विद्यमान थे, उनमे एक विजित हिन्दू जाति का धर्म था और दूसरा विजयी मुसलमान जाति का। राज धर्म होने के कारण मुसलमान धर्म को उन्नति के अनेक साधन प्राप्त थे, अतएव वह प्रति दिन उन्नत हो रहा था और राजाश्रय के अभाव एवं समुन्नति-पथ मे प्रतिबन्ध उपस्थित होने के कारण हिन्दू धर्म दिन दिन क्षीण हो रहा था। इसके अतिरिक्त विविध-राज कृपावलंबित प्रलोभन अपना कार्य्य अलग कर रहे थे। इस समय सूफी सम्प्रदाय के अनेक मुसलमान फकीरों ने अपना वह राग अलापना प्रारम्भ किया था, जिस पर कुछ हिन्दू बहुत विमुग्ध हुए और अपने वंश गत धर्म को तिलाजलि देकर उस मंत्र का पाठ किया, जिससे उनको अपने अस्तित्व-लोप का सर्वथा ज्ञान नहीं रहा। ऐसी अवस्था मे जहा हिन्दुओ की क्षीण-शक्ति प्रान्तिक राजा महाराजाओ के रूप मे अपने दिन दिन ध्वंस होते छोटे मोटे राजाओ की रक्षा कर रही थी, वहा पुण्यमयी भारत-वसुन्धरा मे ऐसे धर्मप्राण आचार्य भी आविर्भूत हुए, जिन्हों ने पतन प्राय वैदिकधर्म की बहुत कुछ रक्षा की। डाक्टर ईश्वरी प्रसादने बंगाल

प्रान्त मे सूफियो के धर्म्म-प्रचार के विषय मे अपने (मेडिवल इंडिया) नामक ग्रन्थ मे जो कुछ लिखा है उसमे इस समय का सच्चा चित्र अंकित है। अभिज्ञता के लिए उसका कुछ अंश मैं यहा उद्धृत करता हू । १

" चौदहवीं शताब्दी बंगाल मे मुसल्मान फकीरो की क्रियाशीलता के लिये प्रसिद्ध थी। पैण्डुआ मे अनेक प्रसिद्ध और पवित्र सन्तो का निवास था। इसी कारण इस स्थान का नाम हजारत पड १ गया था।

अन्य प्रसिद्ध सन्त थे अलाउल हक और उनके पुत्र नूर कुतुबुलआलम। अलाउलहक शेख निजामुद्दीन औलिया का शिष्य था। बंगाल का हुसेन शाह (१४९३-१५१९ ई०) सत्यपीर नामक एक नये पंथ का प्रवर्तक था, जिसका उद्देश्य था हिन्दुओ और मुसल्मानो को एक कर देना। सत्यपीर एक समस्त शब्द है, जिसमे सत्य संस्कृत का और पीर अरबी भाषा का शब्द है।" १

यह एक प्रान्त की अवस्था का निदर्शन है। अन्य विजित प्रान्तो की भी ऐसी ही दशा थी। उस समय सूफ़ी सिद्धान्त के मानने वाले महात्माओं के द्वारा उनके उद्देशों का प्रचुर प्रचार हो रहा था, और वे लोग दृढता के साथ अपनी संस्थाओ का संचालन कर रहे थे। यह धार्मिक अवस्था की बात हुई, राजनीतिक अवस्था भी उस समय ऐसी ही थी, साम दाम दण्ड विभेद से पुष्ट हो कर वह भी कार्य-क्षेत्र मे अपने प्रभाव का विस्तार अनेक सूत्रों से कर रही थी। मैं पहले लिख आया हू कि जैसा वातावरण होता है साहित्य भी उसी रूप मे विकसित होता है। माध्यमिक काल के साहित्य

---

1 The fourteenth century was remarkable for the activity of the Muslim faquirs in Bengal, There were several saints of reputed sanctity in Pandua which owing to their presence, came to be called Hazarat other noted saints were Alaul Haq and his son Nur Qutbul Alam, Alaul Haq was also disciple of Saikh Nizamuddin Aulia, Husain Shah of Bengal (1493-1519 A D) was the founder of a new cult called Satyapir, which aimed at uniting the Hindus and the Muslims Satyapir was compounded of Satya, a Sanskrit word and Pir which is an Arabic word

मे भी यह बात पाई जाती है। चौदहवी ईस्वी शताब्दी से सत्रहवी शताब्दी तक मुसल्मान साम्राज्य दिन दिन शक्तिशाली होता गया। इसके बाद उसका अचानक ऐसा पतन हुआ कि कुछ वर्षो मे ही इति श्री हो गई। यह एक संयोग की बात है कि हिन्दी-संसार के वे कवि और महाकवि, जिनसे हिन्दी-भाषा का मुखउज्जवल हुआ इसी काल मे हुए। इस माध्यमिक काल मे जेसा सुधा-वर्षण हुआ, जैसी रस धारा बही, जैसे ज्ञानालोक से हिन्दी-संसार आलोकित हुआ जेसा भक्ति-प्रवाह हिन्दी काव्य-क्षेत्र मे प्रवाहित हुआ, जेसे समाज के उच्च कोटि के आदर्श उसको प्राप्त हुए उसका वर्णन बडाही हृदय-ग्राही और मर्म-स्पर्शी होगा। मै ने इस कार्य्यसिद्धि के लिये ही इस समय को धार्मिक, राजनैतिक और सामाजिक अवस्थाओ का चित्र यहा पर चित्रित किया है। अब प्रकृत विषय को लीजिये।

चौदहवे शतक मे भी कुछ जैन विद्वानोने हिन्दी भाषा मे कविता की है। इनके अतिरिक्त नल्ल सिंह भाट सिरोहिया ने विजयपाल रासा शार्ङ्ग-धर नामक कबि ने शार्ङ्गधर-पद्धति, हम्मीर काव्य और हम्मीर रासो नामक तीन ग्रंथ बनाये जिनमे से हम्मीर रासो अधिक प्रसिद्ध है। बारहवीं और तेरहवो शताब्दी मे जेसे शब्दो से युक्त भाषा लिखी गयी है उससे इन लोगो की रचनाओ मे हिन्दी का स्वरूप विशेष परिमार्जित मिलता ह। प्रमाणस्वरूप कुछ पद्य नीचे उद्धृत किये जाते है।

कवि शार्ङ्गधर (रचना काल १३०६ ई०)

१—ढोलामारियढिल्लिमहँ मुच्छिउ मेच्छ सरीर।
पुर जज्जल्ला मंत्रिवर चलिय वीर हम्मीर।
चलिअ बीर हम्मीर पाअभर मेइणि कंपइ।
दिग पग डह अंधार धूलि सुरिरह अच्छा इहि।

ग्रथ-संघपति समरा रासो, कबि अम्बदेव जैन, (रचना काल १३१४ ई०)

२—निसि दीवो झलहलहि जेम उगियो तारायण।
पावल पारुन पामिय बहई वेगि सुखासण।

आगे बाणिहिं संचरए सँघपति सहु देसल।
बुद्धिवंत बहु पुण्यवंत पर कमिहि सुनिश्चल।

ग्रन्थ, थूलि भद्र फागु, कवि जिन पद्मसूरि (रचना काल १३२० ई०)

३—अह सोहग सुन्दर रूपवंत गुण मणिभण्डारो।
कंचण जिमि झलकंत कंति संजम सिरिहारो।
थूलिभद्र मणिराव जाम महि अलो बुहन्तउ।
नयर राम पाउलिय मांहि पहुँतउ विहरंतउ।

ग्रन्थ विजयपाल रासो (रचना काल १३२५ ई०) नल्लसिह भाट सिरोहिया।

४—दश शत वर्ष निराण मास फागुन गुरु ग्यारसि।
पाय-सिद्ध बरदान तेग जद्दव कर धारसि।
जीतिसर्व तुरकान बलख खुरसान सुगजनी।
रूम स्याम अस्फहाँ फ्रंग हबसान सु भजनी।
ईराण तोरि तूराण असि खौसिर बंगखँधारसब।
बलवंड पिड हिंदुवान हद चढिव बोर बिजपालसब।

जिस क्रम से कविताओ का उद्धरण किया गया है उसके देखने से ज्ञात हो जायगा कि उत्तरोत्तर एक से दूसरी कविता की भाषा का अधिक तर परिमार्जित रूप है। शार्ङ्गधर की रचना मे अधिक मात्रा मे अपभ्रंश शब्द है। ऐसे शब्द चिन्हित कर दिये गये है। उसके बाद की नम्बर २ और ३ की रचनाओ मे इने गिने शब्द अपभ्रंश के है, उनमे हिन्दी शब्द-ही अधिकतर दिखलाई देते है। जिससे पता चलता है कि इस शताब्दी की आदि की रचनाओं पर तो अपभ्रंश शब्दो का अवश्य अधिक प्रभाव है। परन्तु बाद की रचनाओ मे उसका प्रभाव उत्तरोत्तर कम होता गया है। यहा तक कि अमीर खुसरो की रचनाएं उससे सर्वथा मुक्त दिखलाई पडती है।

अमीर ख़ुसरो इस शताब्दीका सर्वप्रधान कवि है। यह अनेक भाषाओं

का पंडित था। इसके रचे फारसी भाषा के अनेक ग्रंथ है। इसकी हिन्दी रचनाएं वहुमूल्य है। वे इतनी प्राञ्जल और सुन्दर है कि उनको देख कर यह आश्चर्य होता है कि पहले पहल एक मुसल्मान ने किस प्रकार ऐसी परिष्कृत और सुन्दर हिन्दी भाषा लिखी। मै पहले लिख आया हू कि माध्यमिक काल मे मुसल्मान अनेक उद्देश्यो से हिन्दी भाषा की ओर आकर्षित हो गये थे। ऐसे मुसलमानो का अग्र-गण्य मै अमीर खुसरो को मानता हू। इसके पद्यो मे जिस प्रकार सुन्दर ब्रजभाषा की रचना का नमूना मिलता है उसी प्रकार खडी बोली की रचना का भी। इस सहृदय कवि की कविताओ को देख कर यह अवगत होता है कि चौदहवीं शताब्दी मे भी ब्रजभाषा और खडी बोली दोनो की कविताओ का समुचित विकास हो चुका था। परन्तु उसके नमूने अन्य कहीं खोजने पर भी नहीं प्राप्त होते। इसलिये इन भाषाओ की परिमार्जित रचनाओं का आदर्श उपस्थित करने का गौरव इस प्रतिभाशाली कवि को ही प्राप्त है। मै उनकी दोनों प्रकार की रचनाओं के कुछ उदाहरण नीचे लिखता हू। उनको पढ कर यह बात निश्चित हो सकेगी कि मेरा कथन कहा तक युक्ति-संगत है।

१—एक थाल मोतीसे भरा, सबकेसिर पर औंधा धरा।
चारों ओर वह थाली फिरे, मोती उससे एक न गिरे।

२—आवे तो अँधेरी लावे, जावे तो सबसुख ले जावे।
क्या जानूं वह कैसा है, जैसा देखा वैसा है।

३—बात की बात ठठोली की ठठोली।
मरद की गांठ औरत ने खोली।

४—एक कहानी मैं कहूं तू सुन ले मेरे पूत।
बिना परों वह उड़ गया, बाँध गले में सूत।

५—सोभा सदा बढावन हारा, आँखिन ते छिन होत न न्यारा
आये फिर मेरे मन रंजन ऐ सखि साजन ना सखि अंजन

६ स्यामबरनपीताम्बर काँधे मुरली धर नहिं होइ
बिन मुरली वह नाद करत है, बिरला बूझै कोइ
७ – उज्ज्वल बरन अधीनतन एक चित्त दो ध्यान ।
देखत में तो साधु है, निपट पाप को खान ।
८—एक नार तरवर से उतरी मा सो जनम न पायो ।
बाप को नांव जो वासे पूछ्यो आधो नाँव बतायो ।
आधो नावँ बतायो खुसरो कौन देस की बोली ।
वाको नाँव जो पूछ्यो मैने अपने नांव न बोली ।
९—एक गुनी ने यह गुन कीना हरियल पिँजरे में दे दीना ।
देखो जादूगर का हाल डाले हरा निकाले लाल ।

इन पद्यो मे नम्बर १ से ४ तक के पद्य ऐसे है जो शुद्ध खडी बोली मे लिखे गये है, नम्बर ५ और ६ शुद्ध ब्रजभाषा के है और नम्बर ७ से ९ तक के ऐसे है कि जिनमे खडी बोलचाल और ब्रजभाषा दोनो का मिश्रण है। मैं समझता हू कि इस अन्तर का कारण उस भेद की अनभिज्ञता है जो खडी बोली को ब्रजभाषा से अलग करती है। इसके प्रमाण वे पद्य भी है जिनमे दोनों भाषाओ का मिश्रण है। उस समय खडी बोली या ब्रज-भाषा का कोई विवाद नहीं था और न ऐसे नियम प्रचलित थे जो एक को दूसरे से अलग करते। वे हिन्दी भाषा के सब प्रकार के प्रयोगो को एक ही समझते थे। इसलिये इतना सूक्ष्म विचार न कर सके। यह संयोग से ही हो गया है कि कुछ पद्य शुद्ध खडी बोली के और कुछ ब्रजभाषा के बन गये है। उनकी दृष्टि इधर नहीं थी। इस समय जब खडी बोल चाल और ब्रजभाषा की धाराएं अलग अलग बह रही है, उनकी रचनाओं की इस त्रुटि पर चाहे विशेष दृष्टि दी जावे, परन्तु उस समय उन्हो ने हिन्दी भाषा सम्बन्धी जैसी मर्मज्ञता, योग्यता और निपुणता दिखलाई है वह उल्लेखनीय है। उनके पहले के कवियों की रचनाओं से उनकी रचनाओं में अधिकतर प्राञ्जलता है, जो हिन्दी के भाण्डार पर उनका प्रशंसनीय

अधिकार प्रकट करती है। उनकी रचनाओं मे फारसी और अरबी इत्यादि के शब्द भी आये है, परन्तु वे इस सुन्दरता से खपाये गए है कि जिसकी बहुत कुछ प्रशंसा की जा सकती है। चन्दवरदाई के समय से ही हिन्दी भाषा मे अरबी, फारसी और तुर्की क शब्द गृहीत होने लगे थे और यह सामयिक प्रभाव का फल था। परन्तु जिस सावधानी और सफाई के साथ उन भाषाओ के शब्दो का प्रयोग इन्हो ने किया है वह अनुकरणीय है। उन भाषाओ के अधिकतर शब्द अन्य कवियो द्वारा तोड मरोड कर या विगाड कर लिखे गये है, किन्तु यह कवि प्राय इन दोषो से मुक्त था। एक विशेषता इनमे यह भी देखी जाती है कि अरबी के बह्रो मे इन्हो ने हिन्दी पद्यो की रचना सफलता-पूर्वक की है, साथ ही फारसी के वाक्यों के साथ हिन्दी वाक्योको अपने एक पद्य मे इस उत्तमता से मिलाया है, जो मुग्ध कर देता है। मै उस पद्य को यहा लिखता हू। आपलोग भी उसका रस ले—

"ज़ेहाले मिस्कीं मकुन तग़ाफ़ुल दुराय नैना बनाय बतियाँ।
किताबे हिज्रां न दारमऐजां नलेहु काहें लगाय छतियाँ।
शबाने हिज्रां दराज़ चूँ जुल्फ व रोज़े वसलत चूँ उम्र कोतह।
सखी पिया को जो मैं न देखूँ तो कैसे काटूं अँधेरी रतियाँ।
एकाएक अज़ दिल दो चश्मे जादू बसद फ़रेबम् बेबुर्द तस्कीं।
किसे पड़ी है जो जा सुनावे पियारे पीको हमारी बतियाँ।
चूं शमा सोज़ा चूं ज़र्रा हैरां हमेशा गिरियाँ बइश्क़ आँमह।
न नींद नैना न अङ्ग चैना न आप आवें न भेजैं पतियाँ।
बहक्क़ रोज़े विसाल दिलबर कि दाद मारा फ़रेबखु सरो।
सपीत मन को दुराय राखूँ जो जान पाऊँ पियाकी घतियाँ।

इस पद्यका अरबी बह्र है फउल फेलुन फऊल फेलुन फऊल फेलुन-फऊल फेलुन। पहले दो चरणों मे हिन्दी शब्दो का प्रयोग निर्दोष हुआ है यद्यपि

वे शुद्ध ब्रज भाषा मे लिखे गए है। केवल 'नैना' का 'ना' दीर्घ कर दिया गया है। किन्तु यह अपभ्रंश और ब्रज भाषा के नियमानुकूल है। शेष पद्यो की भाषा खडी हिन्दी की बोलचाल मे है। केवल 'रतिया, 'बतिया', 'पतिया' 'घतिया का प्रयोग ही ऐसा है जो ब्रजभाषा का कहा जा सकता है। उनके इस प्रकार के मिश्रण के सम्बन्ध मे मै अपनी सम्मति प्रकट कर चुका हू। हा, मात्रिक छन्दो के नियमो की दृष्टि से ये खडी बोली के पद्य निर्दोष नही है। अनेक स्थानो पर लघु के स्थान पर गुरु लिखा गया है यद्यपि कि वहा लघु लिखना चाहिये था। जैसे 'सखी पिया को जो मै न देखू तो कैसे काटू अँधेरी रतिया' इस पद्यमे 'जो' के स्थान पर 'जु' तो क स्थान पर 'त', कैसे के स्थान पर 'कैस' और अँधेरी के स्थान पर 'अँधेरे', पढनेसेही छन्द की गति निर्दोष रहेगी। ऐसही हिन्दी भाषाके शेष पद्यो की पंक्तिया सदोष है, परन्तु जब हम वर्त्तमानकाल के उन्नति-प्राप्त उर्दू पद्यो को देखते है तो उनके इस प्रकार के पद्य-गत हिन्दी भाषा के शब्द-विन्यास को दोषावह नही समझते, क्योकि अरबी बहूोमे हिन्दी शब्दोका व्यवहार प्राय बिबश होकर इसीरूपमे करना पडता है। वरन कहना यह पडता है कि उद कविताके प्रारम्भ होनेसे २०० वर्ष पहलेही इस प्रणालीका आविर्भाव कर उन्हो ने उर्दू संसार के कवियो को उस मार्गका प्रदर्शन किया जिसपर चलकर हा आज उर्दू पद्य-साहित्य इतना समुन्नत है। इस दृष्टि से उनकी गृहीत प्रणाली एक प्रकार से अभिनन्दनीय ही ज्ञात होती है, निन्दनीय नहीं। खुसरो ने हिन्दुस्तानी भावो का चित्रण करते हुए कुछ ऐसे गीत भी लिखे है जो बहुत ही स्वाभाविक है। उनमे से एक देखिये —

॥ सावन का गीत ॥

अम्मा मेरे बाबा को भेजो जी कि सावन आया।
बेटी तेरा बाबा तो बुड्ढा री कि सावन आया।
अम्मा मेरे भाई को भेजो जी कि सावन आया।
बेटी तेरा भाई तो बालारी कि सावन आया।

अम्मा मेरे मामूं को भेजो जी कि सावन आया।
बेटो तेरा मामूँ तो बॉंकारो कि सावन आया।

दो दोहे भी देखिये, कितने सुन्दर हैं।

१—खुसरो रैनि सुहाग की, जागी पी के संग।
तन मेरो मन पीउ को, दोऊ भये इक रंग।
२—गोरी सोवै सेज पर, मुख पर डारे केस।
चल ख़ुसरो घर आपने, रैनि भई चहुँ देस।

इच्छा न होने पर भी खुसरो की कविता के विषय मे इतना अधिक लिख गया। बात यह है कि खुसरो की विशेषताओ ने ऐसा करने के लिये बिवश किया। यदि उन्होने सब से पहले बोलचाल की साफ सुथरी चलती हिन्दी का आदर्श उपस्थित किया तो शब्द भी तुले हुए रक्खे। न तो उन को तोडा-मरोडा, न बदला और न उनके वर्णों को द्वित्त बना कर उन्हे संयुक्त शब्दो का रूप दिया। अपनी रचना मे भाव भी वे ही भरे जो देश भाषा के अनुकूल थे। प्राकृत शब्दो का प्रयोग भी उनकी रचनाओ मे पाया जाता है। परन्तु वे ऐसे है जो सर्वथा हिन्दी के रंग मे ढले हुए है, जैसे पीत, उज्जल और रैन इत्यादि। प्राकृत मे शकार के स्थान पर स हो जता है इन्होने भी अपनी रचना मे इस नियम का पालन किया है, जैसे 'सोभा', 'स्याम', 'केस', 'देस' इत्यादि। संस्कृत के तद्सम शब्द भी इनकी रचना मे है परन्तु चुने हुए। हिन्दी आरम्भिक काल से ही इस प्रणाली को ग्रहण करती आई है। यह बात इनके इस प्रकार के प्रयोगो मे भी प्रकट होती है। यह उनके कवि-हृदय की विशेषता है कि जो तत्सम शब्द संस्कृत के इन के पद्य मे आये है वे कोमल और हिन्दी के तद्भव शब्दो के जोड के है। जैसे सुख, मुरलीधर, रंजन, अधीन, नाद, ध्यान साधु पाप इत्यादि। ये सब ऐसी ही विशेषताएं है जो माध्यमिक काल के रचयिताओं में खुसरो को एक विशेष स्थान प्रदान करती है। खुसरो का निवास दिल्ली मे था। मेरा विचार है कि उसके अथवा

मेरठ के आस पास जो बोली उस समय बोली जाती थी उसी पर दृष्टि रखकर उन्होंने अपनी रचनायें कीं। इसीलिये वे अधिकतर बोलचाल की भाषा के अनुकूल हैं और इसी से उनमें विशेष सफ़ाई आ गई है। उनकी कविता में ब्रजभाषा के कुछ शब्दों और क्रियाओं का प्रयोग भी पाया जाता है। जैसे वढावनहारा, वासे, बनायो वाको पूछ्यो, दुराय, बनाय, बतिया इत्यादि। मैं समझता हूं कि इन शब्दों का व्यवहार आकस्मिक है और इस कारण हो गया है कि उस समय ब्रज-भाषा फैल चली थी और उसकी मधुरता कवि हृदय को अपनी ओर खींचने लगी थी॥

अमीर खुसरो का समकालीन एक और मुल्लादाऊद नामक ब्रजभाषा का कवि हुआ। कहा जाता है कि उसने नूरक एवं चन्दा की प्रेम-कथा नामक दो हिन्दी पद्य-ग्रन्थों की रचना की, किन्तु ये दोनों ग्रन्थ अप्राप्त से हैं। इस लिए इसकी रचना की भाषा के विषय में कुछ लिखना असम्भव है। इसके उपरान्त महात्मा गोरखनाथ का हिन्दी साहित्य-क्षेत्र में दर्शन होता है। हाल में कुछ लोगों ने इनको ग्यारहवीं ई० शताब्दी का कवि लिखा है, किन्तु अधिकांश सम्मति यही है कि ये चौदहवीं शताब्दी में थे। ये धर्म्माचार्य्य ही नहीं थे, बहुत बड़े साहित्यिक पुरुष भी थे। इन्होंने सँस्कृत भाषा में नौ ग्रंथों की रचना की है, जिनमें से 'विवेक-मार्तण्ड', 'योग-चिन्तामणि' आदि प्रकाण्ड ग्रन्थ हैं। इनका आविर्भाव नैपाल अथवा उसकी तराई में हुआ। उन दिनों इन स्थानों में विकृत बौद्ध धर्म्म का प्रचार था, जो उस समय नाना कुत्सित विचारों का आधार बन गया था। इन बातों को देख कर उन्हों ने उसका निराकरण करके आर्य्य-धर्म्म के उत्थान में बहुत बड़ा कार्य किया। उन्होंने अपने सिद्धान्त के अनुसार शैव धर्म का प्रचार किया, किन्तु परिमार्जित रूप में। उस समय इनका धर्म इतना आदृत हुआ कि उनकी पूजा देवतों के समान होने लगी। इनका मंदिर गोरखपुर में अब तक मौजूद है। गोरख पंथ के प्रवर्तक आप ही हैं। इनके अनुयायी अब तक उत्तर भारत में जहां तहां पाये जाते हैं। इनकी रचनाओं एवं शब्दों का मर्म समझने के लिये यह आवश्यक है कि उस काल के बौद्ध धर्म की अवस्था आप लोगों के सामने

उपस्थित की जावे। इस विषय मे 'गंगा' नामक मासिक पत्रिका के प्रवाह १, तरंग ९ मे राहुल सास्कृत्यायन नामक एक बौद्ध विद्वान् ने जो लेख लिखा है उसी का एक अंश मै यहा प्रस्तुत विषय पर प्रकाश डालने के लिये उद्धृत करता हू —

भारत से बौद्धधर्म का लोप तेरहवी, चौदहवीं शताब्दी मे हुआ। उस समय की स्थिति जानने के लिये कुछ प्राचीन इतिहास जानना आवश्यक है।"

'आठवी शताब्दी मे एक प्रकार से भारत के सभी बौद्ध सम्प्रदाय वज्रयान-गर्भित महायान के अनुयायी हो गये थे। बुद्ध की सीधी-साधी शिक्षाओ से उनका विश्वास उठ चुका था और वे मनगढन्त हजारो लोकोत्तर कथाओं पर मरने लगे थे। बाहर से भिक्षु के कपड़े पहनने पर भी वे भैरवी चक्र के मजे उडा रहे थे। बडे बड़े विद्वान् और प्रतिभाशाली कवि आधे पागल हो, चौरासी सिद्धों मे दाखिल हो, सन्ध्या-भाषा मे निर्गुण गा रहे थे। सातवीं शताब्दी मे उडीसे के राजा इन्द्रभूति और उसके गुरु सिद्ध अनंग-वज्र स्त्रियों को ही मुक्तिदात्री प्रज्ञा, पुरुषोकोही मुक्तिका उपाय, और शराब को ही अमृत सिद्ध करने मे अपनी पंडिताई और सिद्धाई खर्च कर रहे थे। आठवीं शताब्दी से बारहवीं शताब्दी तक का बौद्ध धर्म बस्तुत वज्रयान या भैरवी चक्र का धर्म था। महायान ने ही धारणीयो और पूजाओ से निर्वाण को सुगम कर दिया था। वज्रयान ने तो उसे एक दम सहज कर दिया। इसी लिये आगे चल कर वज्रयान सहजयान भी कहा जाने लगा।"

"वज्रयान के विद्वान्, प्रतिभाशाली कवि, चौरासी सिद्ध, विलक्षण प्रकार से रहा करते थे। कोई पनही बनाया करता था, इसलिये उसे पनहिया कहते थे, कोई कम्बल ओढ़े रहता था, इसलिये उसे कमरिया कहते थे, कोई डमरू रखने से डमरुआ कहलाता था, कोई ओखली रखने से ओखरिया आदि। ये लोग शराब मे मस्त, खोपडी का प्याला लिये श्मशान या विकट जंगलों में रहा करते थे। जन साधारण को जितना ही

ये फटकारते थे उतना ही वे इनके पीछे दौडते थे । लोग वोधिसत्व प्रतिमाओं तथा दूसरे देवताओं की भाति इन सिद्धों को अद्भुत चमत्कारो और दिव्य शक्तियो के धनी समझते थे । ये लोग खुल्लम-खुल्ला स्त्रियों और शराव का उपभोग करते थे । राजा अपनी कन्याओ तक को इन्हे प्रदान करते थे । ये लोग त्राटक या hypnotism की कुछ प्रक्रियाओं से वाकिफ थे । इसी वल पर अपने भोले भाले अनुयाइयो को कभी कभी कोई कोई चमत्कार दिखा देते थे । कभी हाथ की सफ़ाई तथा श्लेषयुक्त अस्पष्ट वाक्यो से जनता पर अपनी धाक जमाते थे । इन पाँच शताब्दियो मे धीरे धीरे एक तरह से सारी भारतीय जनता इनके चक्कर मे पड़ कर कामव्यसनी, मद्यप और मूढ विश्वासी बनगयी थी ।"

महात्मा गोरखनाथ ही ऐसे पहले ब्राह्मण है जिन्हों ने संस्कृत का विद्वान् होने पर भी हिन्दी भाषा के गद्य और पद्य मे धार्मिक ग्रन्थ निर्माण किये । जनता पर प्रभाव डालने के लिए उसकी बोलचाल की भाषा ही विशेष उपयोगिनी होती है । सिद्ध लोगों ने इसी सूत्र से बहुत सफलता लाभ की थी, इसलिये महात्मा गोरख नाथ जी को भी अपने सिद्धान्तो के प्रचार केलिए इस मार्गका अवलम्बन करना पड़ा । उनके कुछ पद्य देखिये

आओ भाई धरिधरि जाओ, गोरखबाला भरिभरि लाओ।
झरै नपारा बाजै नाद, ससिहर सूर न वाद विवाद ।१।
पवनगोटिका रहणि अकास, महियल अंतरि गगन कविलास।
पयाल नी डीबी सुन्न चढ़ाई, कथत गोरखनाथमछींद्र बताई।२।
चार पहर आलिंगन निद्रा संसार जाइ विषिया बाही।
उभयहाथें गोरखनाथ पुकारै तुम्हें भूल महारौ मछ्याभाई।३।
वामा अंगे सोइबा जम चा भोगिबा सगे न पिवणा पाणी।
इमतो अजरावर होई मछिंद्र बोल्यो गोरख वाणी ।४।

छाँटै तजौगुरु छाँटै तजौ लोभ माया।
आत्मा परचै राखौ गुरु देव सुन्दर काया ।५।
एतैं कछु कथीला गुरु सर्वें भैला भोलै।
सर्वें कमाई खोई गुरु बाघ नी चै बोलै ।६।
हबकि न बोलिबा ठबकि न चलिबा धीरे धरिबा पाँवं।
गरब न करिबा सहजै रहिबा भणत गोरखरावं ।७।
हँसिबा खेलिबा गाइबा गीत। दृढ़ करि राखै अपना चीत।
खाये भी मरिये अणखाये भी मरिये।
गोरख कहै पूता संजमही तरिये ।८।
मद्धि निरंतर कीजै वास। निहचल मनुआ थिर व्है साँस।
आसण पवन उपद्रह करै। निसिदिन आरँभ पचिपचि मरै।९।

इनकी भाषा अमीर खुसरो के समान न तो प्राञ्जल है, न हिन्दी की बोलचाल के रंगमें ढली, फिर भी बहुत सुधरी हुई और हिन्दीपन लिये हुये है। उसके देखने से यह ज्ञात होता है कि किस प्रकार पन्द्रहवीं ईसवी शताब्दी के आरंभ मे हिन्दी भाषा अपने वास्तविक रूप मे प्रकट हो रही थी। गोरखनाथ जी की रचना मे विभिन्न प्रान्तो के शब्द भी व्यवहृत हुए है, जैसे गुजराती, 'नी' मरहठी 'चा' और राजस्थानी 'बोलिबा' धरिबा, चलिबा इत्यादि। उस समय के महात्माओ की रचना में यह देखा जाता है कि अधिकतर देशाटन करने के कारण उनकी रचनाओं मे कतिपय प्रान्तिक शब्द भी आ जाते है। यह बात अधिकतर उस काल के और बाद के सन्तो की बानियों में पाई जाती है। मेरा विचार है, गोरखनाथजी ही इसके आदिम प्रवर्त्तक है, जिसका अनुकरण उनके उपरान्त बहुत कुछ हुआ। इन दो एक बातों को छोडकर इनकी रचनाओं मे हिन्दी भाषा की सब विशेषताएं पाई जाती है। उनमे संस्कृत तत्सम शब्दों का अधिकतर प्रयोग है जो प्राकृत प्रणाली के अनुकूल नहीं। धार्मिक शिक्षा-प्रसार के लिये अग्रसर होने पर अपनी रचनाओं मे उनका संस्कृत तत्सम शब्दों का प्रयोग करना स्वाभा-

विक था। हिन्दी कविता मे आगे चलकर हमको प्रेम-धारा, भक्ति-धारा एवं सगुण-निर्गुण विचार-धारा बड़े वेग से प्रवाहित होती दृष्टिगत होती है, किन्तु इन सबसे पहले उसमे ज्ञान और योग-धारा उसी सबलता से बही थी, जिसके आचार्य्य महात्मा गोरखनाथ जी है। इन्हीं के मार्ग को अवलम्बन कर बाद को अन्य धाराओं का हिन्दी भाषा मे विकास हुआ। योग और ज्ञान का विषय भी ऐसा था जिसमे संस्कृत तत्सम शब्दो से अधिकतर काम लेने की आवश्यकता पडी। इसीलिये उनकी रचनाओ मे सूर्य, 'वाद-विवाद', पवन', 'गोटिका' गगन' 'आलिंगन' 'निद्रा' 'संसार' आत्मा' 'गुरुदेव' 'सुन्दर' 'सर्वे' इत्यादि का प्रयोग देखा जाता है। फिर भी उनमे अपभ्रंश अथवा प्राकृत शब्द मिल ही जाते है जैसे 'अकास' 'महियल' अजरावर' इत्यादि। हिन्दी तद्भव शब्दों की तो इनकी रचनाओं मे भरमार है और यही बात इनकी रचनाओ मे हिन्दी- पन की विशेषता का मूल है। वे अपनी रचनाओं मे 'ण' के स्थान पर 'न' का ही प्रयोग करते है और यह हिन्दी भाषा की विशेषता है। कभी कभी 'न' के स्थान पर णकार का प्रयोग भी करते है। यह अपभ्रंश भाषा का इनकी रचनाओं मे अवशिष्टांश है अथवा इनकी भाषा पर पंजाबी भाषा के प्रभाव का सूचक है, जैसे 'पिवण,' 'पाणी,' 'अणखाए,' 'आसण' इत्यादि ॥

वेदान्त धर्म के प्रवर्त्तक स्वामी शंकराचार्य्य थे। उनका वेदान्त वाद अथवा अद्वैतवाद व्यवहार क्षेत्र मे आ कर शिवत्व धारण कर लेता है। इसी लिये उनका सम्प्रदाय शैव माना जाता है। भगवान शिव की मूर्ति जहाँ गम्भीर ज्ञानमयी है वहीं विविध विचित्रतामयी भी। इसीलिये उसमे यदि निर्गुणवादियों के लिये विशेष विभूति विद्यमान है तो सगुणोपासक समूह के लिये भी बहुत कुछ दैवी ऐश्वर्य्य मौजूद है। यही कारण है कि शैव सम्प्रदाय का वह परम अवलम्ब है। गोरखनाथ की सँस्कृत और भाषा की रचनाओं में वेदान्तवाद की विशेष विभूतियां जहा दृष्टिगत होती है, वही शिव के उपासना की ऐसी प्रणालिया भी उपलब्ध होती है जो सर्व साधारण को उनकी ओर आकर्षित करती है। इन्हीं विशेषताओं के कारण गोरखनाथ जी ने शैव धर्म का आश्रय ले कर उस समय हिन्दू धर्म के संरक्षण का

भगीरथ प्रयत्न किया और बहुत कुछ सफलता भी लाभ की। नैपालमे आज भी शैव धर्म का बहुत बडा प्रभाव है। जिस समय सिद्ध लोग अपने आडम्बरों द्वारा सर्व-साधारण को उन्मार्ग गामी बना रहे थे, उस समय गोरखनाथ जी ने किस प्रकार सन्मार्ग का प्रचार सर्व साधारण मे किया, उसका प्रमाण उनका धर्म और उनकी वे सुन्दर रचनाएँ है जिनमे लोक-हितकारी शिक्षाये भरी पडी है। गोरखनाथ जी की महत्ता इतनी प्रभाव शालिनी थी कि उसने पाप-पङ्क मे निमग्न अपने गुरु मत्स्येन्द्र नाथ (मछंदर नाथ) का भी उद्धार किया। जो पद्य ऊपर उद्धृत किये गये है उनमे से तीसरे, चौथे, और पॉचवें तथा छठे पद्यो को देखिये। उनके देखने से आप लोगों को यह ज्ञात हो जायगा कि उन्हों ने किस प्रकार अपने गुरु को सासारिक व्यसनों से बचने की शिक्षा दी और कैसे उनको स्त्रियों के प्रपंच से विरत रहने का उपदेश दिया। उन्हो ने आत्म परिचय और अजरामर होने का मार्ग उन्हे बड़े सुन्दर शब्दों में बतलाया और कभी कभी उनमे आत्मग्लानि उत्पन्न करने की चेष्टा भी की, जैसा छठे पद्य के देखने से प्रकट होता है। उनका यह उद्योग अपने गुरुदेव के विषय ही मे नहीं देखा जाता, सर्व-साधारण पर भी उनकी शिक्षाओ ने बडा प्रभाव डाला, और इस प्रकार उस समय के पतन-प्राय हिन्दू समाज का बहुत बडा उपकार किया। उनकी रचनाओं मे योग-सम्बन्धी बहुत सी बाते पाई जाती है। उद्धृत पद्यो में से पहले दूसरे पद्य ऐसे ही है। उनके सातवे, आठवे, नवे पद्यों में ऐसी शिक्षाये है जिन्हे सब सन्मार्ग के पथिकों को ग्रहण करना चाहिये। हिन्दी-साहित्य में इस प्रकार की धार्मिक शिक्षाओ के आदि प्रचारक भी गोरखनाथजी ही है। इन सब बातों पर दृष्टि रख उनकी रचनाओं पर विचार करने से वे बहुमूल्य ज्ञात होती है। और उनसे इस बात का भी पता चलता है कि किस प्रकार आदि मे हिन्दी अपने तद्भव रूप मे प्रकट हुई।

इसी चौदहवीं ईसवी शताब्दी में विनय-प्रभु जैन और छोटे छोटे कई दूसरे जैन कवि होगये है, जिनकी रचनाये लग भग वैसी ही है जैसी ऊपर लिखे गये जैन कवियों की है। उनमें कोई विशेषता ऐसी नहीं पाई जाती कि जिससे उनकी पृथक् चर्चा की आवश्यकता हो। इसलिये मैं उनलोगो

को छोडता हू। इसके बाद पन्द्रहवीं शताब्दी प्रारम्भ होती है। चौदहवीं शताब्दी का अन्त और पन्द्रहवी शताब्दी का आदि मैथिल-कोकिल विद्यापति का काव्य-काल माना जाता है। अतएव अब मै यह देखूंगा कि उनकी रचनाओं मे हिन्दी भाषा का क्या रूप पाया जाता है। उनकी रचनाओ के विषय मे अनेक भाषा-मर्मज्ञो का यह विचार है कि वे मैथिली भाषा की है। किन्तु उनके देखने से यह ज्ञात होता है कि जितना उन मे हिन्दी भाषा के शब्दों का व्यवहार है उतना मैथिली भाषा के शब्दों का नहीं। अवश्य उनमें मैथिली भाषा के शब्द प्राय मिल जाते है, परन्तु उनकी भाषा पर यह प्रान्तिकता का प्रभाव है, वैसा ही जैसा आज कल के बिहारियों की लिखी हिन्दी पर। बंगाली विद्वान् विद्यापति को बंगभाषा का कवि मानते है, यद्यपि उनकी भाषा पर बंगाली भाषा का प्रभाव नाम मात्र को पाया जाता है। ऐसी अवस्था मे विद्यापति को हिन्दी भाषा का कवि मानने का अधिक स्वत्त्व हिन्दी भाषा—भाषियों ही को है और मै इसी सूत्र से उनकी चर्चा यहा करता हू। उन्होने अपभ्रंश भाषा मे भी दो ग्रंथ लिखे है। उनमे से एक का नाम 'कीर्तिलता' और दूसरी का नाम कीर्तिपताका' है। कीर्तिलता छप भी गई है। उनकी सॅस्कृत की रचनाये भी है जो उनको सॅस्कृत का प्रकाण्ड विद्वान् सिद्ध करती है। जब इन बातो पर दृष्टि डालते है तो उनकी सर्वतोमुखी प्रतिभा सामने आ जाती है जो उनके लिये हिन्दी भाषा मे सुन्दर रचना करना असंभव नहीं बतलाती। मेरी ही सम्मति यह नहीं है। हिन्दी साहित्य का इतिहास लिखने वाले सभी सज्जनों ने इनको हिन्दी भाषा का कवि माना है। फिर मै इनको इस गौरव से वंचित करूॅ तो कैसे करूँ ?

मेरा विचार है कि विद्यापति ने बडी ही सरस हिन्दी मे अपनी पदावली की रचना की है। उनके पद्योसे रस निचुडा पडता है। गीत गोविन्दकार वीणापाणि के वरपुत्र जयदेव जी की मधुर कोमल कान्त पदावली पढ कर जैसा आनन्द अनुभव होता है वैसा ही विद्यापति की पदावलियों का पाठ कर। अपनी कोकिल-कण्ठता ही के कारण वे मैथिल-कोकिल कहलाते हैं। उनके समय में हिन्दी भाषा कितनी परिष्कृत और प्राञ्जल हो गयी थी,

इसका विशेष ज्ञान उनकी रचनाओं को पढ कर होता है। उनके कतिपय पद्यो को देखिये —

१- माधव कत परबोधब राधा।
हा हरि हा हरि कहतहिँ बेरि बेरि अब जिउ करब समाधा।
धरनि धरिये धनि जतनहि बैसइ पुनहिं उठइ नहिं पारा।
सहजइ बिरहिन जग महँ तापिनि बौरि मदन सर धारा।
अरुण नयन नीर तीतल कलेवर विलुलित दीघल केसा।
मंदिर बाहिर कर इत संसय सहचरि गनतहि सेसा।
आनि नलिनि केओ रमनि सुनाओलि केओ देईमुख पर नीरे।
निस बत पेखि केओ सांस निसारै केओ देई मन्द समीरे।
कि कहब खेद भेद जनि अन्तर घन घन उतपत साँस।
भनइ विद्यापति सेहो कलावति जीउ बँधल आसपास।

२-चानन भेल विषम सररे भूषन भेल भारी।
सपनहु हरि नहि आयल रे गोकुल गिरधारी।
एकसरि ठाढ़ि कदम तर रे पथ हेरथि मुरारी।
हरि बिनु हृदय दगध भेल रे आमर भेल सारी।
जाह जाह तोहिं ऊधव हे तोहि मधुपुर जाहे।
चन्द बदनि नहि जीवत रे बध लागत काहे।

३-के पतिया लए जायतरे मोरा पिय पास।
हिय नहिं सहै असह दुखरे भल साओन मास।
एकसर भवन पिया बिनुरे मोरा रहलो न जाय।
सखियन कर दुख दारुनरे जग के पतिआय।

मोर मन हरि हरि लै गेल रे अपनो मन गेल।
गोकुल तजि मधुपुर बसि रे कति अपजस लेल।
विद्यापति कवि गाओल रे धनि धरु पिय आस।
आओत तोर मन भावन रे एहि कातिक मास।

इन पद्यो को पढ कर यह स्वीकार करना पड़ेगा कि इनमे मैथिली शब्दों का प्रयोग कम नहीं है। विद्यापति मैथिल कोकिल कहलाते है। डाक्टर ग्रियर्सन साहब ने भी इनको मैथिल कवि कहा है।१ बँगलाके अधिसाश विद्वान् एक स्वर से उनको मैथिल भापा का कवि ही बतलाते है। और इसी आधार पर उनको बॅगला का कवि मानते है- क्योकि बॅगला का आधार मैथिली का पूर्व रूप है। वे मिथिला निवासी थे भी। इस लिये उनका मैथिल कवि होना युक्ति-संगत है। परन्तु प्रथम तो मैथिली भापा अधिकतर पूर्वी हिन्दी भापा का अन्यतम रूप है, दूसरे विद्यापति की पदावली मे हिन्दी शब्दों का प्रयोग अधिकता, सरसता एवं निपुणता के साथ हुआ है। इसलिये उसको हिन्दी भापा की रचना स्वीकार करना ही पडता है। जो पद्य ऊपर लिखे गये है वे हमारे कथन के प्रमाण है। इनमे मैथिली भाषा का रंग है, किन्तु उससे कहीं अधिक हिन्दीभाषा की छटा दिखाई पडती है। इस विषय मे दो एक हिन्दी विद्वानो की सम्मति भी देखिये। अपने 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' मे (५६, ६० पृष्ट) पं० रामचन्द्र शुक्ल लिखते है —

''विद्यापति को बंगभाषा वाले अपनी ओर खींचते है। सर जार्ज ग्रियर्सन ने भी बिहारी और मैथिली को मागधी से निकली होनेके कारण हिन्दी से अलग माना है। पर केवल भाषा शास्त्रकी दृष्टिसे कुछ प्रत्ययो के आधार पर ही साहित्य-सामग्री का विभाग नहीं किया जा सकता। कोई भाषा-कितनी दूर तक समझी जाती है, इसका विचार भी तो आवश्यक होता है। किसी भाषाका समझा जाना अधिकतर उसकी शब्दावली (Vocabulary) पर अवलम्बित होता है। यदि ऐसा न होता तो उर्दू और हिन्दी का एक ही साहित्य माना जाता।

१—देखिये वर्नाक्युलर लिटरेचर आफ् हिन्दुस्तान पृष्ट ९ पंक्ति ३४

"खडी बोली, बॉगडू, व्रज, राजस्थानी, कन्नौजी, बैसवाडी, अवधी इत्यादिमें रूपों और प्रत्ययोका परस्पर अधिक भेद होते हुये भी सब हिन्दीके अन्तर्गत मानी जाती है ! बनारस, गाजीपूर, गोरखपुर बलिया आदि जिलों मे आयल-आइल, गयल—गइल, हमग तोहरा आदि बोले जानेपर भी वहां की भाषा हिन्दी के सिवाय दूसरी नहीं कही जाती । कारण है शब्दावलीकी एकता । अत जिस प्रकार हिन्दी माहित्य बीसलदेव रासो पर अपना अधिकार रखता है, उसी प्रकार विद्यापति की पदावली पर भी ।"

हिन्दी भाषा और साहित्यकार यह लिखते है १ —

' सारे बिहार-प्रदेश और उसके आसपास संयुक्त प्रदेश, छोटा नागपुर और बंगाल मे कुछ दूर तक बिहारी भाषा बोली जाती है । यद्यपि बँगला और उडिया की भाति बिहारी भाषा भी मागध अपभ्रंश से ही निकली है तथापि अनेक कारणों से इसकी गणना हिन्दी में होती है और ठीक होती है ।"

"बिहारी भाषामे' मैथिली, मगही' और भोजपुरी तीन बोलियाँ हैं। मिथिला या तिरहुत और उसके आसपास के कुछ स्थानो मे मैथिली बोली जाती है। पर उसका विशुद्ध रूप दरभंगे मे पाया जाता है। इस भाषा के प्राचीन कवियो मे विद्यापति ठाकुर बहुत हो प्रसिद्ध और श्रेष्ठ कवि हो गये है, जिनकी कविता का अब तक बहुत आदर होता है। इस कविता का अधिकाश सभी बातों मे प्राय हिन्दी ही है।"

आज कल बिहार हिन्दी भाषा-भाषी प्रान्त माना जाता है। वहा के विद्यालयों और साहित्यक समाचार पत्रों अथच मासिक पुस्तको मे हिन्दी भाषा का ही प्रचार है। ग्रन्थ-रचनाये भी प्राय हिन्दी भाषा में ही होती हैं और वहाँ के पठित समाज की भाषा भी हिन्दी ही है। ऐसी अवस्था में बिहारी भाषा पर हिन्दी भाषा का कितना अधिकार है यह अप्रकट नहीं।

मैं समझता हू विद्यापति की रचनाओ पर हिन्दी भाषा का कितना स्वत्व है, इस विषय में पर्याप्त लिखा जा चुका। मैंने उनकी रचना इसी

१—देखिये 'हिन्दी भाषा और साहित्य' का पृ० ३९

लिये यहा उपस्थित की है, कि जिससे आप लोगो को यह ज्ञात होसके कि उस समय हिन्दी भाषा का क्या रूप था। उनकी कविता को देखने से यह ज्ञात होता है कि उनके समय मे हिन्दी भाषा प्राय प्राकृत शब्दो से मुक्त हो गई थी, और उसमे वडी सरस रचनाये होने लगी थीं। मुझको विश्वास है कि उनकी रचना के अधिकाश शब्दो और प्रयोगो को हिन्दी मानने मे किसी को आपत्ति न होगी। वे ब्रजभाषा के चिर परिचित शब्द हैं जो अपने वास्तविक रूप मे पदावली मे गृहीत हुए है। श्रीमती राधिका की विरह वेदना का वर्णन होने के कारण उनपर और अधिक ब्रजभाषा की छाप लग गई है। जो शब्द चिन्हित है, उन्हे हम ब्रजभाषा का नहीं कह सकते। किन्तु उनमे से भी 'हेरथि' इत्यादि दो चार शब्दों को छोड कर शेष को निस्संकोच भाव से अवधी कह सकते है और यह अविदित नहीं कि अवधी भाषा पूर्वी हिन्दी का ही रूप है ॥

मेरा विचार है कि पन्द्रहवें शतक मे प्रान्तिक भाषाओ मे हिन्दी वाक्यो और शब्दों के प्रवेश का सूत्र-पात हो गया था, जो आगे चलकर अधिक विकसित रूप मे दृष्टिगत हुआ।

मै इस प्रणाली का आदि प्रवर्त्तक विद्यापति को ही मानता हू। यदि गुरु गोरख नाथ हिन्दी भाषा मे धार्मिक शिक्षा के आदि प्रवर्त्तक है और उसको ज्ञान और योग की पुनीत धाराओ से पवित्र बनाते है तो मैथिल कोकिल उसको ऐसे स्वरों से पूरित करते है जिसमे सरस शृंगार रस की मनोहारिणी ध्वनि श्रवणगत होती है। सरसपदावली का आश्रय लेकर उन्होने भगवती राधिका के पवित्र प्रेमोद्गारों से अपनी लेखनी को रसमय ही नहीं बनाया, साहित्य क्षेत्र मे अपूर्व भावों की भी अवतारणा की। यहा पर यह प्रश्न उपस्थित होता है कि विद्यापति स्वयं इस प्रणालीके उद्भावक है या उनके सामने इससे पहले का और कोई आदर्श था। मै यह स्वीकार करूँगा कि उनके सामने प्राचीन आदर्श अवश्य था। परन्तु हिन्दी भाषामे राधा भावके आदि प्रवर्त्तक विद्यापति ही है। पदावलीमे राधाकृष्णके संयोग और वियोग शृंगार का जैसा भावमय और हृदयग्राही वर्णन विद्यापति ने किया है, हिन्दी भाषा मे उनसे पहले इस प्रकार का भावुकतामय वर्णन पहले किसीने नहीं किया।

श्री मद्भागवत मे गोपियो का प्रेम भगवान कृष्ण चन्द्र के प्रति जिस उच्चभाव से वर्णित है वह अलौकिक है। प्रेम त्यागमय होता है, स्वार्थ मय नही। रूप-जन्य मोह क्षणिक और अस्थायी होता है। उसमे सुख-लिप्सा होती है आत्मोत्सर्ग का भाव नहीं पाया जाता। किन्तु वास्तविक प्रेम अपना आदर्श आप होता है। उसमे जितनो स्थायिता होती है उतना ही त्याग। वह आन्तरिक निस्स्वार्थ भावो पर अवलम्बित रहता है, स्वार्थ मय प्रवृत्तियो पर नहीं। उसमे प्रेमी पर अपने को उत्सर्ग कर देने की शक्ति होती है, और वह इसी मे अपनी चरितार्थता समझता है। भागवत मे गोपियों को ऐसे ही प्रेम की प्रेमिका वर्णित किया गया है। विद्यापति संस्कृत के विद्वान् थे। साथ ही सहृदय और भावुक थे। इस लिये भागवत के आदर्श को अपनी रचनाओ मे स्थान देना उनके लिये असंभव नहीं था। मेरा विचार है कि जयदेव जो की मधुर रचनाओं से भी उनकी कविता बहुत कुछ प्रभावित है क्योकि वे उनसे कई शतक पूर्व सँस्कृत भाषा मे इस प्रकार की सरस पदावली का निर्माण कर चुके थे। श्री मद्भागवत मे श्री मती राधिका का नाम नहीं मिलता। परन्तु ब्रह्म बैवर्त्त पुराण मे उनका नाम मिलता है और उसमे वे उसी रूप मे अंकित की गई है जिस रूप मे गीत गोविन्दकार ने उनको ग्रहण किया है। यह सत्य है कि गीत गोविन्द मे सरस शृंगार ही का स्रोत बहता है, परन्तु यह भी उतना ही सत्य है कि जयदेव जी ने उस ग्रन्थ की रचना भक्ति भाव से की है और वे भगवती राधिका और भगवान कृष्ण मे उतना ही पूज्य भाव रखते थे जितना कोई बल्लभाचार्य के सम्प्रदाय का भक्त रख सकता है। उनके ग्रन्थ मे ही इसके प्रमाण विद्यमान है। विद्यापति की रचनाओं के देखनेसे पाया जाता है कि १ जयदेवजी का यह भक्ति-भाव उनमे भी भरित था। डाक्टर जी० ए० ग्रियर्सन लिखते हैं. " मथिली भाषा में अमूल्य पदावली-रचना के लिये ही उनका

---

1 " But his chief glory consists in his matchless sonnets (Pad a) in the Maithili dialect dealing allegorically with the relations of the soul to God under the form of love which Radha dore to Krishna " •

Modern Vernacular Literature of Hindustan By Dr Grierson

(विद्यापति का) श्रेष्ठ गौरव है। अपने समस्त पदों मे उन्होंने श्री मती राधिका का प्रेम भगवान कृष्णचन्द्र के प्रति वर्णन किया है। इस रूपक के द्वारा उन्होंने यह विज्ञापित किया है कि किस प्रकार आत्मा का परमात्मा के प्रति प्रेम-सम्वन्ध है।"

विद्यापति शैव थे। इसलिये सम्भव है कि यह तर्क उपस्थित किया जाय कि एक शैव की राधा-कृष्ण की मूर्ति मे भक्ति कैसी? किन्तु इस विचार मे संकीर्णता है। कवि का हृदय इतना संकीर्ण नहीं होता। गोस्वामी तुलसीदास यदि सीताराम के अनन्य उपासक होकर भगवान् भूतनाथ की भक्ति कर सकते है तो शिव के अनन्य भक्त होकर कविवर विद्यापति राधा-कृष्ण की भक्ति क्यो नही कर सकते। वास्तव बात यह है कि अधिकाश गृहस्थ हिन्दू विद्वान् पञ्चदेवोपासक होता है। उसमे वह भेद-भावना नहीं होती जो किसी कट्टर शैव या वैष्णव मे पाई जाती है। मैं समझता हूं विद्यापति इस दोष से मुक्त थे और इसीलिये उनको इस प्रकार राधा-कृष्ण का प्रेम वर्णन करने मे कोई बाधा नहीं हुई। उनके पद्यो में ही युगल मूर्ति के भक्ति भाव के प्रमाण मौजूद है। उनके पद मे जो माधुर्य्य विद्यमान है उसको माधुर्य्य-उपासना का मर्मज्ञ ही प्राप्त कर सकता है। मै सोचता हूं कि उस समय पौराणिक धर्म विशेष कर श्री मद्भागवत जैसे वैष्णव ग्रन्थो के प्रभाव से वैष्णव धर्म का जो उत्थान देश मे नाना रूपों से हो रहा था उसी के प्रभाव से बंगाल प्रान्त मे चण्डीदास की, और बिहार भूमि मे विद्यापति की रचनाएं प्रभावित है।

जो कुछ अब तक विद्यापति के विषय मे लिखा गया उससे यह पाया जाता है कि पन्द्रहवीं शताब्दी के प्रारम्भ मे उन्होने अपनी अभूतपूर्व कविताओं की रचना कर के जहाँ पदावली-रचना की प्रणाली हिन्दी भाषा मे चलायी वहाँ उसको राधा कृष्ण की प्रेममयी लीलाओं के सरस वर्णन से भी अलंकृत किया। हिन्दी मे भावमय शृंगारिक रचनाओं का आरम्भ भी उन्हीं से होता है ओर उन्हीं से ऐसे सरस सुन्दर पद-विन्यास हिन्दी को प्राप्त हुये है जैसे उसको आज तक कतिपय हिन्दी आकाश के उज्ज्वल नक्षत्रों से ही प्राप्त हो सके है।

यह पन्द्रहवीं शताब्दी कबीर साहब की कविताओं का रचना-काल भी है। कबीर साहब की रचनाओ के विषय मे अनेक तर्क-वितर्क है। उनकी जो रचनाये उपलब्ध है उनमे बडी विभिन्नता है। इस विभिन्नता का कारण यह है कि वे स्वयं लिखे-पढ़े न थे। इस लिये अपने हाथ से वे अपनी रचनाओ को न लिख सके। अन्य के हाथो मे पड कर उनकी रचनाओं का अनेक रूपो मे परिणत होना स्वाभाविक था। आज कल जितनी रचनाये उनके नाम से उपलब्ध होती है उनमे भी मीन मेख है। कहा जाता है कि सत्य लोक पधार जाने के बाद उनकी रचनाओं मे लोगों ने मनगढन्त बहुत सी रचनाये मिला दी है और इसी सूत्र से उनकी रचना की भाषा मे भी विभिन्नता दृष्टिगत होती है। ऐसी अवस्था मे उनकी रचनाओ को उपस्थित कर इस बात की मीमासा करना कि पन्द्रहवीं शताब्दी मे हिन्दी का क्या रूप था दुस्तर है। मै पहले लिख आया हू कि भ्रमण शील सन्तो की बानियो मे भाषा की एक रूपता नहीं पाई जाती। कारण यह है कि नाना प्रदेशो मे भ्रमण करने के कारण उनकी भाषामे अनेक प्रान्तिक शब्द मिले पाये जाते है। कबीर साहब की रचना मे अधिकतर इस तरह की बाते मिलती है। इन सब उलझनो के होने पर भी कबीर साहब की रचनाओ की चर्चा इस लिये आवश्यक ज्ञात होती है कि वे इस काल के एक प्रसिद्ध सन्त है और उनकी बानियों का प्रभाव बहुत ही व्यापक बतलाया गया है। कबीर साहब की रचनाओं मे रहस्यवाद भी पाया जाता है, जिसको अधिकाश लोग उनके चमत्कारों से सम्बन्धित करते है और यह कहते है कि ऐसी रचनाये उनका निजस्व है जो हिन्दी संसार की किसी कविकी कृति मे नहीं पायी जाती। इस सूत्र से भी कबीर साहब की रचनाओं के विषय मे कुछ लिखना उचित ज्ञात होता है, क्योंकि यह निश्चित करना है कि इस कथन मे कितनी सत्यता है। विचारना यह है कि क्या वास्तव मे रहस्यवाद कबीर साहब की उपज है या इसका भी कोई आधार है।

काशी नागरी प्रचारिणी सभा ने 'कबीर-ग्रन्थावली' नामक एक ग्रन्थ कुछ वर्ष हुये, एक प्राचीन ग्रन्थ के आधार से प्रकाशित किया है। 'यह प्राचीन ग्रन्थ सम्बत् १५६१ का लिखा हुआ है और अब तक उक्त सभा के

पुस्तकालय में सुरक्षित है। जो ग्रन्थ सभा से प्रकाशित हुआ है, उससे इस लिये कुछ पद्य नीचे उद्धृत किये जाते हैं, जिसमे उनकी रचना की भाषा के विषय मे कुछ विचार किया जा सके —

१—घूणैं पराया न छूटियो, सुणिरे जीव अबूझ।
कविरा मरि मैदान मैं इन्द्रय्यांसूं जूझ।

२—गगनदमामा बाजिया पर्‌या निसाणै घाव।
खेत बुहार्‌यो सूरिवाँ मुझ मरने का चाव।

३—काम क्रोध सूं झूझणां चौड़े माड़्या खेत।
सूरै सार सँवाहिया पहर्‌या सहज सँजोग।

४—अब तो झूझ्यॉ ही बणै मुणि चाल्यॉघर दूरि।
सिर साहब कौं सौंपता सोच न कीजै सूरि।

५—जाइ पुछौ उस घाइलैं दिवसपीड़ निंस जाग।
बाहण हारा जाणि है कै जाणै जिस लाग।

६—हरिया जाणै रूखणा उस पाणी का नेह।
सूका काठ न जाणई कबहूं बूठा मेंह।

७—पारब्रह्म बूठा मोतियाँ घड़ बाँधी सिष राँह।
सबुरा सबुरा चुणि लिया चूक परी निगुराँह।

८—अवधू कामधेनु गहि बाँधी रे।
भाँड़ा भंजन करै सबहिन का कछू न सूझै आँधा रे।
जो ब्यावै तो दूध न देई ग्याभण अमृत सरवै।
कौली घाल्यां बीदरि चालै ज्यूं घेरौं त्यूं दरवै।
तिहीं धेन थैं इच्छ्यां पूगी पाकड़ि खूंटै बाँधी रे।
ग्वाड़ा मां है आनँद उपनौ खूंटै दोऊ बाँधी रे।

साँई माइ सास पुनि साईं साईं याकी नारी।
कहै कबीर परमपद पाया संतो लेहु बिचारी।]

कबीर साहब ने स्वयं कहा है, 'बोली मेरी पुरुब की', जिससे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि उनकी रचना पूर्वी हिन्दी मे हुई है और इन कारणों से यह बात पुष्ट होती है कि वे पूर्व के रहने वाले थे और उनकी जन्म भूमि काशी थी। काशी और उसके आस पास के जिलों मे भोज-पुरी और अवधो-भाषा ही अधिकतर बोली जाती है। इस लिये उनकी भाषा का पूर्वी भाषा होना निश्चित है और ऐसी अवस्था मे उनकी रच-नाओ को पूर्वी भाषा मे हो होना चाहिये। यह सत्य है कि उन्होने बहुत अधिक देशाटन किया था और इससे उनकी भापा पर दूसरे प्रान्तो की कुछ बोलियो का भी थोडा बहुत प्रभाव हो सकता है। किन्तु इससे उनकी मुख्य भाषा मे इतना अन्तर नही पड सकता कि वह बिलकुल अन्य प्रान्त की भाषा बन जावे। सभाद्वारा जो पुस्तक प्रकाशित हुई है उसकी भाषा ऐसी ही है जो पूर्व की भापा नहीं कही जा सकती, उसमे पंजाबी और राजस्थानी भाषा का पुट अधिकतर पाया जाता है। ऊपर के पद्य इसके प्रमाण हैं। कुछ लोगों का बिचार है कि कबीर साहब के इस कथन का कि 'बोली मेरी पुरुब की' यह अर्थ है कि मेरी भाषा पूर्व काल की है, अर्थात् सृष्टि के आदि की। किन्तु यह कथन कहा तक संगत है, इसको बिद्वज्जन स्वयं समझ सकते है। सृष्टि के आदि की बोली से यदि यह प्रयोजन है कि उनकी शिक्षाये आदिम है तो भी वह स्वीकार-योग्य नहीं, क्योंकि उनकी जितनी शिक्षाये है उन सब मे परम्परागत बिचार की ही झलक है। यदि सृष्टि की आदि की बोली का यह भाव है कि उस काल की भाषा में कबीर साहब की रचनाये है तो यह भी युक्ति संगत नहीं, क्योंकि जिस भाषा में उनकी रचनाये है वह कोई सहस्र वर्षों के विकास और परिवर्तनों का परिणाम है। इस लिये यह कथन मान्य नहीं। वास्तव बात यह है कि कबीर साहब की रचनाये पूर्व की बोली मे ही है और यही उनके उक्त कथन का भाव है। अधिकाश रचनाय उनकी ऐसी ही है भी। सभा द्वारा प्रकाशित ग्रन्थ के पहले उनकी जितनी रचनाये प्रकाशित हुई है या हस्त-

लिखित मिलती है, या जन साधारण मे प्रचलित है उन सब की भाषा अधिकाश पूर्वी ही है। हा, सभा द्वारा प्रकाशित ग्रन्थ का कुछ अंश अवश्य इस विचार का बाधक है, परन्तु मै यह सोचता हू कि जिस प्राचीन-लिखित ग्रंथ के आधार से सभा की पुस्तक प्रकाशित हुई है उसके लेखक के प्रमाद ही से कबीर साहब की कुछ रचनाओं, की भाषा मे विशेष कर बहुसंख्यक दोहो मे उल्लेख-योग्य अंतर पड गया है। प्राय. लेखक जिस प्रान्त का होता है अपने सँस्कार के अनुसार वह लेख्यमान ग्रन्थ की भाषा मे अवश्य कुछ न कुछ अन्तर डाल देता है। यही इस ग्रन्थ-लेखन के समय भी हुआ ज्ञात होता है अन्यथा कबीर साहब की भाषा का इतना रूपान्तर न होता।

मैं कबीर साहब की भाषा के विषय में विचार उन्हीं रचनाओं के आधार पर करूंगा जो सैकडो वर्ष से मुख्य रूप मे उनके प्रसिद्ध धर्म स्थानों के ग्रन्थो मे पाई जाती है। अथवा सिक्खों के आदि ग्रन्थ साहब मे संगृहीत मिलती है। यह ग्रन्थ सत्रहवो ईस्वी शताब्दी मे श्री गुरु अर्जुन द्वारा संकलित किया गया है। इस लिये इसकी प्रमाणिकता विश्वसनीय है। कुछ ऐसी रचनाये देखिये —

१—गंगा के सँग सरिता बिगरी,
सो सरिता गंगा होइ निबरी।
बिगरेउ कबीरा राम दोहाई,
साचु भयो अन कतहि न जाई।
चन्दन के सँग तरवर बिगरेउ,
सो तरुवरु चंदन होइ निबरेउ।
पारस के सँग ताँबा बिगरेउ,
सो ताँबा कंचन होइ निबरेउ।
संतन संग कबिरा बिगरेउ,
सो कबीर रामै होइ निबरेउ।

२—माथे तिलकु हथि माला बाना,
लोगनु राम खिलौना जाना।
जउ हउँ बउरा तउ राम तोरा,
लोग मरम कह जानइँ मोरा।
तोरउँ न पाती पूजउँ न देवा,
राम भगति बिनु निहफल सेवा।
सति गुरु पूजउँ सदा मनावउँ,
ऐसी सेव दरगह सुख पावउँ।
लोग कहै कबीर बउराना
कबीर का मरम राम पहिचाना।

३—जब लग मेरी मेरी करै,
तब लग काजु एक नहिँ सरै।
जब मेरी मेरी मिटि जाइ,
तब प्रभु काजु सँवारहि आइ।
ऐसा गियानु बिचारु मना,
हरि किन सुमिरहु दुख भंजना।
जब लग सिंघु रहै बन माहि,
तब लगु बनु फूलै ही नाहिँ।
जब ही सियारु सिंघ कौ खाइ,
फूलि रही सगली बनराइ।
जीतो बूड़ै हारो तिरै,
गुरु परसादी पारि उतरै।
दास कबीर कहइ समझाइ,
केवल राम रहहु जिउलाइ।

४—सभुकोइ चलन कहत हैं ऊहां,
ना जानौं बैकुण्ठु है कहाँ ।
आप आप का मरम न जाना,
बातनहीं बैकुण्ठ बखाना ।
जब लगु मन बैकुण्ठ की आस,
तब लग नाहीं चरन निवास ।
खाई कोटु न परल पगारा,
ना जानउँ बैकुण्ठ दुवारा ।
कह कबीर अब कहिये काहि,
साधु संगति बैकुण्ठै आहि ।

सभा की प्रकाशित ग्रन्थावली मे भी इस प्रकार की रचनाये मिलती है । मैं यहा यह भी प्रकट कर देना चाहता हूँ कि सिक्खों के आदि ग्रन्थ साहब मे कबीर साहब की जितनी रचनाये संगृहीत है वे सब उक्त ग्रन्थावली मे ले ली गई है । उनमे वैसा परिवर्त्तन नहीं पाया जाता जैसा सभा के सुरक्षित ग्रन्थ की रचनाओं मे मिलता है । मैं यह भी कहूंगा कि उक्त सुरक्षित ग्रन्थकी पदावली उतनी परिवर्त्तित नहीं है जितने दोहे । अधिकाश पदावली मे कबीर साहब की रचना का वही रूप मिलता है जैसा कि सिक्खो के आदि ग्रन्थ साहब मे पाया जाता है । मै इसी पदावली मे से तीन पद्य नीचे लिखता हूं -

१—हम न मरैं मरिहै संसारा,
हमकूं मिल्या जियावन हारा ।
अब न मरौं मरनै मन माना,
तेई मुए जिन राम न जाना ।
साकत मरै संत जन जीवै,
भरि भरि राम रसायन पीवै ।

हरि मरिहैं तो हमहूं मरिहैं,
हरि न मरैं हम काहे कूं मरि हैं।
कहै कबीर मन मनहिं मिलावा,
अमर भये सुख सागर पावा।
२—काहे रे मन दह दिसि धावै,
विषया सँगि संतोष न पावै।
जहाँ जहाँ कलपै तहाँ तहाँ बंधना,
रतन को थाल कियो तै रंधना।
जो पै सुख पइयत इन माहीं,
तौ राज छाड़ि कत बन को जाहीं।
आनन्द सहत तजौ विष नारी,
अब क्या झीषै पतित भिषारी।
कह कबीर यहु सुख दिन चारि,
तजि बिषया भजि चरन मुरारि।
३—बिनसि जाइ कागद की गुड़िया,
जब लग पवन तबै लगि उड़िया।
गुड़िया को सबद अनाहद बोलै,
खसम लिये कर डोरी डोलै।
पवन थक्यो गुड़िया ठहरानी,
सीस धुनै धुनि रोवै प्रानी।
कहै कबीर भजि सारँग पानी,
नहिं तर ह्वै है खैंचा तानी।

मेरा विचार है कि जो पद्य मैंने ग्रन्थ साहब से उद्धृत किये है, और जो पद्य कबीर ग्रन्थावली से लिये है उनकी भाषा एक है, और मैं कबीर

साहब की वास्तविक भाषा मे लिखा गया इन पद्यो को ही समझता हूं। वास्तव बात यह हे कि कबीर ग्रन्थावली की अधिकाश रचनाये इसी भाषा की है। उसके अधिकतर पद ऐसी ही भाषा मे लिखे पाये जाते है। बहुत से दोहे की भाषा का रूप भी यही हे। इस लिये मुझे यह कहना पडता है कि कबीर साहब की रचनाये पन्द्रहवी शताब्दी के अनुकूल है। आप देखते आये है कि क्रमश हिन्दी भाषा परिमार्जित होती आई है। जैसा उसका परिमार्जित रूप पन्द्रहवीं शताब्दी की अन्य रचनाओ मे मिलता है वैसा ही कबीर साहब की रचनाओ मे भी पाया जाता हे। इस लिये मुझे यह कहना पडता है कि उनकी रचनाए पन्द्रहवी शताब्दी के भाषाजनित परि-वर्त्तन-सम्बन्धी नियमो से मुक्त नहीं हे वरन् क्रमिक परिवर्त्तन की प्रमाण भूत है। हा, उनमे कहीं कही प्रान्तिकता अवश्य पाई जाती है और पश्चिमी हिन्दी से पूर्वी हिन्दी का प्रभाव उनकी रचना पर अधिक देखा जाता है। किन्तु यह आश्चर्य जनक नहीं। क्योंकि प्रान्तिक भाषा मे कविता करने का सूत्रपात विद्यापति के समय मे ही हुआ था, जिसकी चर्चा पहले हो चुकी है।

मै यह स्वीकार करूंगा कि कबीर साहब की रचनाओ मे पंजाबी और राजस्थानी भाषाके कुछ शब्दो क्रियाओ और कारकोका प्रयोग मिल जाता है। किन्तु, उसका कारण उनका विस्तृत देशाटन है, जैसा मै पहले कह भी चुका हूं। अपनी मुख्य भाषा मे इस प्रकार के कुछ शब्दो का प्रयोग करते सभी संत कवियो को देखा जाता है और यह इतना असंगत नहीं जितना अन्य भाषा के शब्दो का उतना प्रयोग जो कवि की मुख्य भाषा के वास्तविक रूप को संदिग्ध बना देता है। मैने कबीर ग्रन्थावली से जो एक पद और सात दोहे पहले उठाये है उनकी भाषा ऐसी है जो कबीर साहब की मुख्य भाषा की मुख्यता का लोप कर देती है। इसी लिये मै उनको शुद्ध रूप मे लिखा गया नहीं समझता। परन्तु उनकी जो ऐसी रच-नायें है जिनमे उनका मुख्य रूप सुरक्षित है और कतिपय शब्द मात्र अन्य भाषा के आगये है उन्हे मै उन्हीं की रचना मानता हूं और समझता हूं

कि वे किसी अल्पज्ञ लेखक की अनधिकार-चेष्टा से सुरक्षित है। उनके इस प्रकार के कुछ पद्य भी देखिये —

१—दाता तरवर दया फल उपकारी जीवन्त।
पंछी चले दिसावरां बिरखा सुफल फलन्त।
२—कबीर संगत साधु की कदे न निरफल होय।
चंदन होसी बावना नीम न कहसी कोय।
३—कायथ कागद काढ़िया लेखै वार न पार।
जब लग सॉस सरीर में तब लग राम सँभार।
४—हरजी यहै बिचारिया, साखी कहै कबोर।
भवसागर मैं जीव हैं, जे कोइ पकड़ै तीर।
५—ऐसी बाणी बोलिये, मन का आपा खोइ।
अपना तन सीतल करै, औरन को सुख होइ।

इन पद्यो के जिन शब्दों पर चिन्ह बना दिये गये है वे पंजाबी या राजस्थानी है। इस प्रकार का प्रयोग कबीर साहब की रचनाओ मे प्राय मिलता है। ऐसे आकस्मिक प्रयोग उनकी मुख्य भाषा को संदिग्ध नहीं बनाते क्योकि जिस पद्य मे किसी भाषा का मुख्य रूप सुरक्षित रहता है उस पद्य मे आये हुए अन्य भाषा के दो एक शब्द एक प्रकार से उसी भाषा के अंग बन जाते है। अवधी अथवा ब्रजभाषा मे बाणी को 'बानी' ही लिखा जाता है, क्योंकि इन दोनो भाषाओं मे 'ण' का अभाव है। पंजाब प्रान्त के लेखक प्राय 'न' के स्थान पर 'ण' प्रयोग कर देते, है, क्योकि उस प्रान्त मे प्राय नकार णकार हो जाता है। वे 'बानी' को 'बाणी' आसन' को 'आसण' 'पवन' को 'पवण' इत्यादि ही बोलते और लिखते है। ऐसी अवस्था मे यदि कबीर साहब के पद्यो मे आये हुए नकार पंजाब के लेखको की लेखनी द्वारा णकार बन जावे तो कोई आश्चर्य नहीं। आदि ग्रन्थ साहब मे भी देखा जाता है कि प्राय. कबीर साहब की

रचनाओं के नकार ने णकार का स्वरूप ग्रहण कर लिया है, यद्यपि इस विशाल ग्रन्थ मे उनकी भाषा अधिकतर सुरक्षित है। इसप्रकार के साधारण परिवर्तन का भी मुख्य भाषा पर कोई प्रभाव नहीं पडता। इसलिये कबीर साहब की रचनाओं मे जहाँ ऐसा परिवर्तन दृष्टिगत हो उसके विषय मे यह न मानलेना चाहिये कि जो शब्द हिन्दी रूप मे लिखा जा सकता था उसको उन्हो ने ही पंजाबी रूप दे दिया है, वरन सच तो यह है कि उस परिवर्तन मे पंजाबी लेखक की लेखनी की लीला हो दृष्टिगत होती है।

कबीर साहब कवि नही थे, वे भारत की जनता के सामने एक पीर के रूप मे आये। उनके प्रधान शिष्य धर्मदास कहते है —

आठवीं आरती पीर कहाये। मगहर अमी नदी बहाये।

मलूक दास कहते है —

तजि कासी मगहर गये दोऊ दीन के पीर १

झासी के शेख तकी ऊँजी और जौनपुरके पीर लोग जो काम उस समय मुसल्मान धर्म के प्रचार के लिये कर रहे थे काशी मे कबीर साहब लगभग वैसे ही कार्य मे निरत थे। अन्तर केवल इतना ही था कि वे लोग हिन्दुओ को नाना रूप से मुसल्मान धर्म मे दीक्षित कर रहे थे और कबीर साहब एक नवीन धर्म की रचना करके हिन्दू मुसल्मान को एक करने के लिये उद्योगशील थे। ठीक इसी समय यही कार्य बंगाल मे हुसेन शाह कर रहे थे जो एक मुसल्मान पीर थे और जिसने अपने नवीन धर्म का नाम सत्य पीर रख लिया था। कबीर साहेब के समान वह भो हिन्दू मुसल्मानों के एकीकरण मे लग्न थे। उस समय में भारतवर्ष मे इन पीरों की बडी प्रतिष्ठा थी और वे बडी श्रद्धा की दृष्टि से देखे जाते थे। गुरु नानकदेव ने भी इन पीरो का नाम अपने इस वाक्य मे सुणिये सिद्ध-पीर सुरिनाथ' आदर से लिया है। जो पद उन्होंने सिद्ध, नाथ और सूरि को दिया है वही पीर को भी। पहले आप पढ आये है कि उस समय सिद्धों का कितना महत्व और प्रभाव था। नाथो का महत्व भी गुरु गोरखनाथजी की

१, हिन्दूस्तानी, अक्टूबर सन् १९३२, पृ० ४९१।

चर्चा मे प्रकट हो चुका है। सूरि जैनियों के आचार्य कहलाते थे और उस समय दक्षिण मे उनकी महत्ता भी कम नही थी। इनलोगो के साथ गुरु नानक देव ने जो पीर का नाम् लिया है, इसके द्वारा उस समय इनकी कितनी महत्ता थी यह बात भली भाति प्रगट होती है। इस पीर नाम का सामना करने ही के लिये हिन्दू आचार्य उस समय गुरु नाम धारण करने लग गये थे। इसका सूत्रपात गुरु गोरखनाथ जी ने किया था। गुरु नानक-देव के इस वाक्य मे 'गुरु ईसर गुरु गोरख बरम्हा गुरु पारबती माई' इस का संकेत है। गुरु नानक के सम्प्रदाय के आचार्यों के नाम के साथ जो गुरु शब्द का प्रयोग होता है उसका उद्देश्य भी यही है। वास्तव मे उस समय के हिन्दू आचार्यों को हिन्दू धर्म की रक्षा के लिये अनेक मार्ग ग्रहण करने पड़े थे। क्योंकि बिना इसके न तो हिन्दू धर्म सुरक्षित रह सकता था, न पीरों के सम्मुख उनको सफलता प्राप्त हो सकती थी क्योंकि वे राजधर्म के प्रचारक थे। कबीर साहब की प्रतिभा विलक्षण थी और बुद्धि बडी ही प्रखर। उन्होने इस बात को समझ लिया था। अतएव उन दोनों से भिन्न तीसरा मार्ग ग्रहण किया था। परन्तु कार्य उन्हो ने वही किया जो उस समय मुसलमान पीर कर रहे थे अर्थात् हिन्दुओ को किसी प्रकार हिन्दू धर्म से अलग करके अपने नव प्रवर्तित धर्म मे आकर्षित कर लेना उनका उद्देश्य था। इस उद्देश्य-सिद्धि के लिये उन्होने अपने को ईश्वर का दूत बतलाया और अपने ही मुख से अपने महत्व की घोषणा बडी ही सबल भाषा में की। निम्नलिखित पद्य इसके प्रमाण है —

काशी में हम प्रगट भये हैं रामानन्द चेताये।
समरथ का परवाना लाये हंस उबारन आये।

कबीर शब्दावली, प्रथम भाग पृ० ७१

सोरह संख्य के आगे समरथ जिन जग मोहि पठाया

कबीर बीजक पृ० २०

तेहि पीछे हम आइया सत्य शब्द के हेत।
कहते मोहिं भयल युग चारी

समझत नाहिं मोहि सुत नारी ।
कह कबीर हम युग युग कही ।
जबहीं चेतो तबहीं सही ।

कबीर बीजक पृ० १२५, ५६७

जो कोई होय सत्य का किनका सो हमको पतिआई ।
और न मिलै कोटि करि थाकै बहुरि काल घर जाई ।

कबीर बीजक पृ० २०

जम्बू द्वीप के तुम सब हंसा गहिलो शब्द हमार ।
दास कबीरा अबकी दीहल निरगुन कै टकसार ।
जहिया किरतिम ना हता धरती हता न नीर ।
उतपति परलै ना हती तबकी कही कबीर ।
ई जग तो जँहड़े गया भया योग ना भोग ।
तिल तिल झारि कबीर लिय तिलठी झारै लोग ।

कबीर बीजक पृ० ८०, ५९८, ६३२

सुर नर मुनि जन औलिया, यह सब उरली तीर ।
अलह राम की गम नहीं, तहँ घर किया कबीर ।

साखी संग्रह पृ० १२५

वे अपनी महत्ता बतला कर ही मौन नहीं हुये बरन हिन्दुओं के समस्त धार्मिक ग्रन्थों और देवताओ की बहुत बडी कुत्सा भी की । इस प्रकार के उनके कुछ पद्य प्रमाण-स्वरूप नीचे लिखे जाते है —

योग यज्ञ जप संयमा तीरथ व्रतदाना नवधा वेद किताब
है झूठे का बाना ।

कबीर बीजक पृ० ४११

चार वेद षट् शास्त्रऊ औ दश अष्ट पुरान ।
आसा दै जग बाँधिया तीनों लोक भुलान ।

कबीर बीजक पृ० १४

औ भूले षट दर्शन भाई। पाखँड भेष रहा लपटाई।
ताकर हाल होयअघकूचा। छदर्शन में जौन बिगूचा।

कबीर बीजक पृ० ९७

ब्रह्मा बिस्नु महेसर कहिये इनसिर लागी काई।
इनहि भरोसे मन कोइ रहियो इनहूं मुक्ति न पाई।

कबीर शब्दावली द्वितीय भाग पृ० १९

माया ते मन ऊपजै मन ते दश अवतार।
ब्रह्म विस्नु धोखे गये भरम परा संसार।

कबीर बीजक पृ० ६५०

चार वेद ब्रह्मा निज ठाना।
मुक्ति का मर्म उनहूं नहि जाना।

कबीर बीजक पृ० १०४

"भगवान कृष्णचन्द्र और हिन्दू देवताओ के विषय मे जैसे घृणित भाव उन्होने फैलाये, उनके अनेक पद इसके प्रमाण है। परन्तु मै उनको यहा् उठाना नहीं चाहता, क्यो कि उन पदों मे अश्लीलता की पराकाष्ठा है॥ उनकी रचनाओं मे योग, निर्गुण ब्रह्म और उपदेश एवं शिक्षा सम्बन्धी बडे हृदय ग्राही वर्णन है। मेरा विचार है कि उन्होंने इस विषय मे गुरु गोरखनाथ और उनके उत्तराधिकारी महात्माओं का बहुत कुछ अनुकरण किया है। गुरु गोरखनाथ का ज्ञानवाद और योगवाद ही कबीर साहब के निर्गुणवाद का स्वरूप ग्रहण करता है। मै अपने इस कथन की पुष्टि के लिये गुरु गोरखनाथ की पूर्वोद्धृत रचनाओं की ओर आप लोगों की दृष्टि फेरता हू और उनके समकालीन एवं उत्तराधिकारी नाथ सम्प्रदाय के आचार्यो की कुछ रचनाये भी नीचे लिखता हू—

१—थोड़ो खाय तो कलपै झलपै, घड़ों खाय तो रोगी।
दुहूँ पर वाकी संधि विचारै, ते को बिरला जोगी॥

यहु संसार कुवधि का खेत, जब लगि जीवै तब लगि चेत।
आख्याँ देखै काण सुणै, जैसा बाहै तैसा लुणै ॥

जलंधर नाथ।

२—मारिबा तौ मनमीर मारिबा, लूटिबा पवन भँडार।
साधिबा तौ पंचतत्त साधिबा, सेइबा तौ निरंजन निरंकार
माली लौं भल माली लौं, सींचै सहज कियारी।
उनमनि कला एक पहूपनि, पाइले आवा गवन निवारी ॥

चौरंगी नाथ।

३—आछै आछै महिरे मंडल कोई सूरा।
मार्‌या मनुवाँ नएँ समझावै रे लो ॥
देवता ने दाणवां एणे मनवैं व्याहूया।
मनवा ने कोई ल्यावै रे लो ॥
जोति देखि देखी पड़ेरे पतंगा।
नादै लीन कुरंगा रे लो ॥
एहि रस लुब्धी मैगल मातो।
स्वादि पुरुष तैं भौंरा रे लो ॥

कणेरी पाव।

४—किसका बेटा किसकी बहू, आपसवारथ मिलिया सहू।
जेता पूला तेती आल, चरपट कहै सब आल जंजाल ॥
चरपट चीर चक्रमन कंथा, चित्त चमाऊँ करना।
ऐसी करनी करो रे अवधू, ज्यो बहुरि न होई मरना ॥

चरपट नाथ।

५—साधी सूधी के गुरु मेरे, बाई सूंव्यंद गगन मैं फेरै।
मनका बाकुल चिड़ियां बोलै, साधी ऊपर क्यों मन डोलै ॥

बाई बंध्या सयल जग, बाई किनहुं न बंध।
बाइबिहूणा ढहिपरै, जोरै कोई न संधि॥

चुणकर नाथ।

कहा जा सकता है कि ये नाथ संम्प्रदाय वाले कबीर साहब के बाद के है। इस लिये कबीर साहब की रचनाओ से स्वय उनकी रचनाये प्रभावित है, न कि इनकी रचनाओ का प्रभाव कबीर साहब की रचनाओ पर पडा है। इस तर्क के निराकरण के लिये मै प्रगट कर देना चाहता हूं कि जलंधर नाथ मछ दर नाथ के गुरुभाई थे जो गोरखनाथ जी के गुरु थे। चौरगीनाथ गारखनाथ के गुरु-भाई, कणेरीपाव जलंधरनाथ के और चरपटनाथ मछन्दरनाथ के शिष्य थे। चुणकरनाथ भी इन्ही के समकालीन थे १। इस लिये इन लोगोका कबीर साहब से पहले होना स्पष्ट है। कबीर साहब की रचनाओं पर, विशेष कर उन रचनाओ पर जो रहस्यवाद से सम्वन्ध रखती है, वौद्धधर्म के उन सिद्धो की रचनाओ का बहुत बडा प्रभाव देखा जाता है जिनका आविर्भाव उनसे सैकडों वर्ष पहले हुआ। कबीर साहब की बहुत सी रचनाये ऐसी है जिनका दो अर्थ होता है। मेरे इस कहने का यह प्रयोजन है कि ऐसी कविताओ के वाच्यार्थ से भिन्न दूसरे अर्थ प्राय किये जाते है। जैसे

घर घर मुसरी मंगल गावै, कछुवा संख बजावै।
पहिरि चोलना गदहा नाचै, भैंसा भगत करावै॥

इत्यादि। इन शब्दो का वाच्यार्थ बहुत स्पष्ट है, किन्तु यदि वाच्यार्थ ही उसका वास्तविक अर्थ मान लिया जाय तो वह बिलकुल निरर्थक हो जाता है। ऐसी अवस्था मे दूसरा अर्थ करके उसकी निरर्थकता दूर की जाती है। वौद्धसिद्धो की भी ऐसी द्व्यर्थक अनेक रचनाये है। मेरा विचार है कि कबीर साहब की इस प्रकार की जितनी रचनाये है वे सिद्धो

१—देखिये नागरी प्रचारिणी पत्रिका भाग ११, अंक ४ में प्रकाशित 'योगप्रवाह' नामक लेख।

की रचनाओ के अनुकरण से लिखी गई है। सिद्धोने योग और ज्ञान सम्बन्धी बाते भी अपने ढंग से कही है। उनकी अनेक रचनाओं पर उनका प्रभाव भी देखा जाता है। जून सन् १९३१ की सरस्वती के अंक मे प्रकाशित चौरासी सिद्ध नामक लेख मे बहुत कुछ प्रकाश इस विषय पर डाला गया है। विषय-बोध के लिये उसका कुछ अंश मै आप लोगो के सामने उपस्थित करता हूं —

"इन सिद्धो की कवितायें एक विचित्र आशय की भाषा को लेकर होती हैं। इस भाषा को संध्या भाषा कहते है, जिसका अर्थ अंधेरे (वाम मार्ग) मे तथा उँजाले (ज्ञान मार्ग, निर्गुण) दोनो मे लग सके। संध्या भाषा को आज कल के छायावाद या रहस्यवाद की भाषा समझ सकते है।"

'भावना और शब्द-साखी मे कबीर से लेकर राधा स्वामी तक के सभी संत चौरासी सिद्धो क ही वशज कहे जा सकते है। कबीर का प्रभाव जैसे दूसरे संतो पर पडा और फिर उन्होने अपनी अगली पीढी पर जैसे प्रभाव डाला, इसको शृंखलाबद्ध करना कठिन नहीं है। परन्तु कबीर का सम्बन्ध सिद्धो से मिलाना उतना आसान नही है, यद्यपि भावनाएं, रहस्योक्तिया, उल्टी बोलियो की समानतायें बहुत स्पष्ट है।"
इसी सिलसिले मे सिद्धो की रचनायें भी देख लीजिये—

१—(मूल) निसि अंधारी सुसार चारा।
अमिय भखअ मूषा करअ अहारा।
मार रे जोइया मूषा पवना।
जेण तूटअ अवणा गवणा।
भव विदारअ मूसा रवण अगति।
चंचल मूसा कलियाॅ नाश करवाती।
काला मूसा ऊहण बाण।
गअणे उठि चरअ अमण धाण।

तब से मूषा उंचल पांचल।
सद्गुरु वोहे करिह सुनिचल ।
जबैं मूषा एरचा तूटअ।
भुसुक भणअ तबै बांधन फिटअ।
भुसुक

छाया—

निसि अँधियारी सँसार सँचारा।
अमिय भक्ख मूसा करत अहारा।
मार रे जोगिया मूसा पवना ।
जेहिते टूटै अवना गवना ।
भव विदार मूसा खनैं खाता।
चंचल मूसा करि नाश जाता।
काला मूसा उरध न वन।
गगने दीठि करै मन बिनु ध्यान।
तबसो मूसा चञ्चल चंचल ।
सतगुरु बोधे करु सो निहचल ।
जबहि मूसा आचार टूटइ ।
भुसुक भनत तब बन्धन पू फाटइ ।

२—मूल—

जयि तुज्झे भुसुक अहेइ जाइबें मारि हसि पंच जना।
नलिनी बन पइसन्ते होहिसि एकुमणा।
जीवन्ते भेला बिहणि मयेलण अणि।
हण बिनु मासे भुसुक पद्म बन पइ सहिणि।

माआ जाल पसन्यो ऊरे बाधेलि माया हरिणी ।
सद् गुरु बोहें बूझिरे कासूं कहिनि ।

भुसुक

छाया—

"जो तोहि भुसुक जाना मारहु पंच जना ।
नलिनी बन पइसंते होहिसि एक मना ।
जीवत भइल बिहान मरि गइल रजनी ।
हाड़ बिनु मासे भुसुक पद्म बन पइसयि ।
माया जाल पसारे ऊरे बाँधेलि माया हरिणी ।
सद्गुरु बोधे बूझी कासों कथनी ।

भुसुक

अणिमिषि लोअण चित्त निरोधे पवन णिरुहइ सिरिगुरु बोहें
पवन बहइ सो निचल जब्बें जोइ कालु करइ किरेतब्वें।

छाया—

अनिमिष लोचन चित्त निरोधइ श्री गुरु बोधे।
पवन बहै सो निश्चल जबै जोगी काल करै का तबै ।

सरहपा

४—मूल—

आगम बेअ पुराणे पंडिउ मान बहन्ति ।
पक्क सिरी फल अलिअ जिमि बाहेरित भ्रमयंति।

अर्थ— आगम वेद पुराण मे पंडित अभिमान करते है। पके श्री फल के बाहर जैसे भ्रमर भ्रमण करते है। करहपा*

कबीर साहब स्वामी रामानन्द के चेले और वैष्णव धर्मावलम्वी बतलाये जाते है। उन्होने इस बात को स्वीकार किया है वे कहते है—'कबीर गुरु बनारसी सिक्ख समुन्दर तीर'। उन्होंने वैष्णवत्व का पक्ष लेकर शाक्तो को खरी खोटी भी सुनाई है। यथा-

---

*देखिये सरस्वती जून सन् १९३१ का पृष्ट ७१६ ७१७ ७१८ ७१९

मेरे संगी द्वै जणा एक वैष्णव एक राम ।
वो है दाता मुक्ति का वो सुमिरावै नाम ।
कबीर धनि ते सुन्दरी जिन जाया वैस्नव पूत ।
राम सुमिरि निरभय हुआ सब जग गया अऊत ।
साकत सुनहा दोनों भाई । एक निंदै एक भौंकत जाई ।

किन्तु क्या उनका यह भाव स्थिर रहा ? मेरा विचार है, नहीं, वह बराबर बदलता रहा । इसका प्रमाण स्वयं उनकी रचनाये है । उन्होंने गोरखनाथ की गोष्ठी नामक एक ग्रंथ की रचना भी की है । वे शेख तकी के पास भी जिज्ञासु बन कर जाते थे और ऊंजी के पीर से भी शिक्षा लेते थे । ऐसा करना अनुचित नहीं । ज्ञान प्राप्त करने के लिये अनेक महात्माओं का सत्संग करना निन्दनीय नहीं—किन्तु यह देखा जाता है कि कबीर साहब कभी वैष्णव है, कभी पीर, कभी योगी और कभी सूफी और कभी वेदान्त के अनुरागी । उनका यह बहुरूप श्रद्धालु के लिये भले ही उनकी महत्ता का परिचायक हो, परन्तु एक समीक्षक की दृष्टि इस प्रणाली को संदिग्ध हो कर अवश्य देखेगी । मेरा विचार है कि अपने सिद्धान्त के प्रचार के लिये उन्होंने समय समय पर उपयुक्त पद्धति ग्रहण की है और जनता के मानस पर अपनी सर्वज्ञता की धाक जमा कर उन्हे अपनी ओर आकर्षित करने का विशेष ध्यान रखा है । इसी लिये वे अनेक रूप रूपाय है । मैंने उनकी रचनाओ का आधार ढूंढने की जो चेष्टा की है उसका केवल इतना ही उद्देश्य है कि यह निश्चित हो सके कि वास्तव मे उनकी रचनाये उनके कथनानुसार अभूतपूर्व और अलौकिक है या उनका स्रोत किसी पूर्ववर्त्ती ज्ञान-सरोवर से ही प्रसूत है । 'सरस्वती' मे 'चौरासी सिद्ध' नामक लेख के लेखक बौद्ध विद्वान् राहुल सास्कृतायन ने कबीर साहब की रचनाओं पर सिद्धों की छाप बतलाते हुये यह लिखा है कि "कबीर का सम्बन्ध सिद्धों से मिलाना उतना आसान नहीं है ।" किन्तु मै समझता हू कि यह आसान है, यदि सिद्धो के साथ नाथ-सम्प्रदाय वालों

को भी सम्मिलित कर लिया जाय। मै नहीं कह सकता कि इस बहुत ही स्पष्ट विकास की ओर उनकी दृष्टि क्यो नहीं गई।

महात्मा ज्ञानेश्वर ने अपने ज्ञानेश्वरी नामक ग्रथ मे अपनी गुरु-परम्परा यह दी है— (१) आदिनाथ (२ मत्स्येन्द्रनाथ (३) गोरखनाथ, (४) गहनी नाथ, (५) निवृत्तिनाथ, (६) ज्ञानेश्वर १ ज्ञानेश्वर के शिष्य थे नामदेव २। उनका समय है १३७० ई० से १४४० ई० तक। इस लिये उनका कबीर साहब से पहले होना निश्चित है। उन्होने स्वयं अपने मुख से उनको महात्मा माना है। वे लिखते है—

"जागे सुक ऊधव औ अक्रूर।
हनुमत जागे लै लंगूर।
संकर जागे चरन सेव।
कलि जागे नामा जयदेव।

सिक्खो के ग्रन्थ साहब मे भी उनके कुछ पद्य संग्रहीत है। ज्ञानेश्वर जैसे महात्मा से दीक्षित हो कर उनकी वैष्णवता कैसी उच्च कोटि की थी और वे कैसे महापुरुष थे उसे निम्न लिखित शब्द बतलाते है—

बदो क्यों न होइ माधो मोसों।
ठाकुर ते जन जनते ठाकुर खेल पर्यो है तोसों।
आपन देव देहरा आपन आप लगावै पूजा।
जल तें तरँग तरँग ते है जल कहन सुनन को दूजा।
आपहि गावै आपहि नाचै आप बजावै तूरा।
कहत नामदेव तू मेरे ठाकुर जन ऊरा तू पूरा॥

१—देखिये, हिन्दुस्तानी, जनवरी, सन् १९३२ के पृ० ३२ में डाक्टर हरि रामचन्द्र दिवेकर एम' ए० डी लिट० का लेख।

२—देखये मिश्रबन्धु बिनोद प्रथम भाग का पृ० २२३।

२—दामिनि दमकि घटा घहरानी बिरह उठे घनघोर।
चित चातक ह्वै दादुर बोलै ओहि बन बोलत मोर।
प्रीतम को पतिया लिख भेजौं प्रेम प्रीति मसि लाय।
वेगि मिलो जन नामदेव को जनम अकारथ जाय।
हिन्दू पूजै देहरा, मुस्सलमान मसीत।
नामा सोई सेविया, ना देहरा न मसीत।

मेरा विचार है कि कबीर साहब की रचनायें नामदेव के प्रभाव से अधिक प्रभावित हैं। फिर यह कहना कि सिद्धों के साथ कबीर की शृंखला मिलाना आसान नहीं, कहाँ तक संगत है। गुरु गोरख नाथ के मानस के साथ अपने मानस को सम्बन्धित कर कबीर साहब उनकी महत्ता किस प्रकार स्वीकार करते हैं, उसको उनका यह कथन प्रकट करता है—

गोरख भरथरि गोपीचंदा। तामनसों मिलि-करैं अनंदा।
अकल निरंजन सकल सरीरा। तामन सौं मिलि रहा कबीरा

वास्तव बात यह है कि कबीर साहब के लगभग समस्त सिद्धांत और विचार वैष्णवधर्म और महात्मा गोरखनाथ के ज्ञानमार्ग और योग मार्ग अथच उनकी परम्परा के महात्माओं की अनुभूतियों पर ही अधिकतर अवलम्बित हैं। और उन सिद्धों के विचारों से भी सम्बन्ध रखते हैं। जिनकी चर्चा ऊपर की गई है।

सारांश यह कि जैसे स्वयं कबीर साहब सामयिकता के अवतार और नवीन धर्म-प्रवर्त्तन के इच्छुक हैं वैसे ही उनकी रचनायें भी पूर्ववर्त्ती सिद्ध और महात्माओं के भावों और विचारों से ओत प्रोत हैं। किन्तु उनमें कुछ व्यक्तिगत विलक्षणतायें अवश्य थीं, जिनका विकास उनकी रचनाओं में भी दृष्टिगत होता है। उनकी इन्हीं विशेषताओं ने उन्हें कुछ लोगों की दृष्टि में निर्गुण धारा का प्रवर्त्तक बना रखा है। परन्तु यदि सूक्ष्म दृष्टि और विवेचनात्मक बुद्धि से निरीक्षण किया जाय तो यह बात स्पष्ट हो जाती है

कि जिन सिद्धान्तो के कारण उनके सिरपर सन्तमत के प्रवर्त्तक होने का सेहरा बाधा जाता है वे सिद्धान्त परम्परागत और प्राचीनतम ही है। हॉ, उनको जनता के सामने उपस्थित करने मे उन्हो ने कुछ चमत्कार अवश्य दिखलाया। कबीर साहब के रहस्यवाद को पढकर कुछ श्रद्धालु यह कहते है कि वे ईश्वर-विद्या के अद्वितीय मर्मज्ञ थे। वे भी अपने को ऐसा ही समझते है। लिखते है—

सुर नर मुनि जन औलिया ए सब उरली तीर।
अलह राम की गम नहीं, तहँ घर किया कबीर।

किसी के श्रद्धा विश्वास के विषय मे मुझको कुछ वक्तव्य नहीं। कबीर साहब स्वयं अपने विषय मे जो कहते है, उसका उद्देश्य क्या था, इस पर मै बहुत कुछ प्रकाश डाल चुका हू। इष्ट-सिद्धि के लिये वे जो पथ ग्रहण करना उचित समझते थे, ग्रहण कर लेते थे। प्रत्येक धर्म प्रवर्त्तक मे यह बात देखी जाती है। इसलिये इस विषय मे अधिक लिखना पिष्टपेषण है, किन्तु यह मै स्वीकार करूंगा कि कबीर साहब हिन्दी संसार मे रहस्यवाद के प्रधान स्तम्भ है। उनका रहस्यवाद कुछ पूर्व महज्जनों की रचनाओं पर आधारित हो, परन्तु उनके द्वारा वह बहुत कुछ पूर्णता को प्राप्त हो गया। उनकी ऐसी रचनाओं मे बडी ही विलक्षणता और गम्भीरता दृष्टिगत होती है। कुछ पद्य देखिये —

१—ऐसा लो तत ऐसा लो मैं केहि विधि कथौं गँभीरा लो।
बाहर कहूँ तो सत गुरु लाजै भीतर कहूँ तो झूठा लो।
बाहर भीतर सकल निरन्तर गुरु परतापै दीठा लो।
दृष्टि न मुष्टि न अगम अगोचर पुस्तक लखा न जाईलो।
जिन पहचाना तिन भल जाना कहे न कोऊ पतिआईलो।
मीन चले जल मारग जोवै परम तत्व धौं कैसा लो।
पुहुपबास हूं ते अति झीना परम तत्व धौं ऐसा लो।

आकासे उड़ि गयो बिहंगम पाछे खोज न दरसी लो।
कहै कबीर सतगुरु दाया तें बिरला सतपद परसी लो।

२--साधो सतगुरु अलख लखाया जब आप आप दरसाया।
बीज मध्य ज्यों बृच्छा दरसै बृच्छा मद्धे छाया।
परमातम में आतम तैसे आतम मद्धे माया।
ज्यों नभ मद्धे सुन्न देखिये सुन्न अंड आकारा।
निह अच्छर ते अच्छर तैसे अच्छर छर बिस्तारा।
ज्यों रवि मद्धे किरन देखिये किरन मध्य परकासा।
परमातम में जीव ब्रह्म इमि जीव मध्य तिमि साँसा
स्वाँसा मध्ये सब्द देखिये अर्थ सब्द के माहीं।
ब्रह्म ते जीव जीव ते मन यों न्यारा मिला सदाहीं।
आपहि बीज बृच्छ अंकूरा आप फूल फल छाया।
आपहि सूर किरन परकासा आप ब्रह्म जिव माया।
अंडाकार सुन्न नभ आपै स्वाँस सब्द अरु छाया।
निह अच्छर अच्छर छर आपै मन जिउ ब्रह्म समाया।
आतम में परमातम दरसै परमातम में झाँई।
झाँई में परछाँई दरसै, लखै कबीरा साँई।

३--जीवन को मरिबो भलो, जे मरि जानै कोय।
मरने पहिले जे मरैं, तो अजरावर होय।
मन मारा ममता मुई, अहं गई सब छूट।
जोगी था सो रम रहा, आसणि रही बिभूति।
मरता मरता जगमुआ, औसर मुआ न कोय।
कबिरा ऐसे मर मुआ, बहुरि न मरना होय।

रहस्यवाद की ऐसी सुन्दर रचनाओं के रचयिता हो कर भी कही कही कबीर साहब ने ऐसी बातें कही है जो बिलकुल ऊटपटांग और निरर्थक मालूम होती हैं। इस पद को देखिये —

ठगिनी क्या नैना झमकावै।
कबिरा तेरे हाथ न आवै।
कद्दू काटि मृदंग बनाया नीबू काटि मँजीरा।
सात तरोई मंगल गावै नाचै बालम खीरा।
भैंस पदमिनी आसिक चूहा मेड़क ताल लगावै।
चोला पहिरि गदहिया नाचै ऊंट बिसुनपद गावै।
आम डार चढ़ि कछुआ तोड़ै गिलहरि चुनिचुनि लावै।
कहै कबीर सुनो भाई साधो बगुला भोग लगावै।

ऐसे पदों के अनर्गल अर्थ करने वाले मिल जाते है। परन्तु उनमे वास्तवता नही, धींगा धींगी होती है। मेरा विचार है उन्होंने ऐसी रचनाये जनता को विचित्रता-समुद्र मे निमग्न कर अपनी ओर आकर्षित करने ही के लिये की है। उनकी उलटवासियाँ भी विचित्रताओं से भरी है। दो पद्य उनके भी देखिये—

देखौ लोगो घर की सगाई।
माय धरै पितुधिय सँग जाई।
सासु ननद मिलि अदल चलाई।
मादरिया गृह बेटी जाई।
हम बहनोई राम मोर सारा।
हमहिं बाप हरि पुत्र हमारा।
कहै कबीर हरी के बूता।
राम रमैं ते कुकुरी के पूता।

कबीर बीजक पृ० ३९३

देखि देखि जिय अचरज होई ।
यह पद बूझै बिरला कोई ।
धरती उलटि अकासहि जाई ।
चिँउटी के मुख हस्ति समाई ।
बिन पौनै जहँ परबत उड़ै ।
जीव जन्तु सब बिरछा बुड़ै ।
सूखे सरवर उठै हिलोर ।
बिन जल चकवा करै कलोल ।
बैठा पंडित पढ़ै पुरान ।
बिन देखे का करै बखान ।
कह कबीर जो पद को जान ।
सोई सन्त सदा परमान ।

—कबीर बीजक पृ० ३६४

कबीर साहब ने निर्गुण का राग अलापते हुए भी अपनी रचनाओ मे सगुणता की धारा बहाई है। कभी वे परमात्मा के सामने स्वामी सेवक के भाव मे आते है, कभी स्त्री पुरुष अथवा प्रेमी और प्रेमिका के रूप मे, कभी ईश्वर को माता-पिता मान कर आप बालक बनते है और कभी उसको जगन्नियंता मान कर अपने को एक क्षुद्र जीव स्वीकार करते है। इन भावों की उनकी जितनी रचनाये है सरस और सुन्दर है और उनमे यथेष्ट हृदय ग्राहिता है। जनता के सामने कभी वे उपदेशक और शिक्षक के रूप मे दिखलाई देते है कभी सुधारक बन कर। मिथ्याचारो का खंडन वे बडे कटु शब्दो मे करते है और जिस पर टूट पडते है उसकी गत बना देते है। उनकी यह नानारूपता इष्ट-साधन की ही सहचरी है। उनकी रचनाओ मे जहा सत्यता की ज्योति मिलती है, वहीं कटुता की पराकाष्ठा भी दृष्टिगत होती है। वास्तव बात यह है कि हिन्दी संसार मे उनकी रचनाये विचित्रतामयी है। उनका शब्द-विन्यास बहुधा असंयत और उद्वेजक है,

कहीं कहीं वह अधिकतर उच्छृंखल है, छन्दो नियम की रक्षा भी उसमे प्राय नहीं मिलती। फिर भी उनकी कुछ रचनाओं मे वह मन मोहकता, भावुकता, और विचार की प्राञ्जलता मिलती है जिसकी बहुत कुछ प्रशंसा की जा सकती है।

कबीर साहब के समकालीन कुछ ऐसे सन्त और महात्मा है कि जिनकी चर्चा हुये बिना पन्द्रहवी ईसवी शताब्दी की न तो सामयिक अवस्था पर पूरा प्रकाश पडेगा न साहित्यिक परिवर्तनो पर। अतएव अब मै कुछ उनके विषय मे भी लिखना चाहता हू। किन्तु उनके यथार्थ परिचय के लिये यह आवश्यक है कि स्वामी रामानन्द के उस समय के धार्मिक परिवर्त्तनों और सामाजिक सुधारो से अभिज्ञता प्राप्त करली जावे। इसलिये पहले मै इस महापुरुष के विषय मे ही कुछ लिखता हूं। जिस समय स्वामी शंकराचार्य्य के अद्वैतवाद ने भारतवर्ष मे वैदिकधर्म का पुनरुज्जीवन किया और और जब उसकी विजय-वैजयन्ती हिमालय से कुमारी अन्तरीप तक फहरा रही थी। उस समय केवल ज्ञान मार्ग से संतोष न प्राप्त कर अनेक सन्त-महात्मा एक ऐसी भक्तिधारा की खोज मे थे जो दार्शनिक जीवन को सरस बना सके। निर्गुण ब्रह्म अनुभव गम्य भले ही हो किन्तु वह सर्व साधारण का बोध गम्य नहीं था। बडे बड़े महात्माओ की विचार-धारा जिस पंथमे चल कर पद पद पर कुण्ठित होती थी उस पथ का पथिक होना साधारण विद्या-बुद्धि के मनुष्य के लिये असम्भव था। आध्यात्मिक आनन्द के उपभोग का अधिकारी तत्वज्ञ ही हो सकता है, अल्पज्ञ नहीं। इसके लिये किसी प्रत्यक्ष आधार वा अवलम्बन का होना आवश्यक है। दूसरी बात यह है कि ससार की स्वाभाविकता किसी ऐसे आधार का आश्रय ग्रहण करना चाहती है जो उसका जीवन-सहचर हो। समाधि मे समाधिस्थ हो कर ब्रह्मानंद-सुख का अनुभव करना लोकोत्तर हो, परन्तु उससे वह मनुष्य क्या लाभ उठा सकता है जो न तो ऐसी साधनाये कर सकता है जो सर्व-साधारणके लिये सुलभ हों और न ऐसी सिद्धि प्राप्त कर सकताहै जो उसको सांसारिक नाना कष्टों से छुटकारा दे सके। लोक साधारणत. परमार्थिक

नहीं है, वह अधिकतर स्वार्थ ही का दास है। वह सुख का कामुक और कष्टो से निस्तार पाने का अधिक इच्छुक होता है। वह अपनी कामना की पूर्ति के लिये ऐसी साधनाये करना चाहता है जो सीधी और सरल हो और जिनमे पद पद पर जटिलतायें सामने न खडी हो जाये। परमात्मा सर्व लोक का स्वामी हो, प्राणी मात्र का लालन पालन करता हो, परन्तु उसका इतना ही होना पर्य्याप्त नही। लोक चाहता है कि वह दीनबन्धु, दु ख भंजन, आनन्दस्वरूप और विपत्ति मे सहायक भी हो। मानवता की इस प्रवृत्ति को संसार की महान् आत्माओ ने प्रत्येक समय समझा है और देशकालानुसार उसके संतोषउत्पादन की चेष्टा भी की है। यदि भारतवर्ष के धार्मिक परिवर्त्तनों पर सूक्ष्म दृष्टि से विचार किया जाय तो उनमे इस प्रकार के अनेकश उदाहरण प्राप्त होगे। जब स्वामी शंकराचार्य के सर्व्वोच्च ज्ञान का अधिकारी सामयिक महात्माओ ने देशकालानुसार सर्वसाधारण जनता को नहीं पाया तो उन्होने ऐसा मार्ग ग्रहण करने की चेष्टा की जिससे उन प्राणियो का भी यथार्थहित हो सके जो तत्वबोध के उच्च सोपान पर चढने की योग्यता नही रखते। इसी लिये निर्गुण ब्रह्म के स्थान पर सगुण ब्रह्म की कल्पना होती आई है। और इसी हेतु से एक अनिर्वचनीय शक्ति के स्थान पर ऐसी शक्ति की उद्भावना महज्जन करते आये है जो बोध गम्य हो और मानव-जीवन का स्वाभाविक सहचर बन सके। ज्ञानमें गहनता है, साथ ही जटिलता भी। भक्ति मे सरलता और सहृदयता है। इसी लिये ज्ञान से भक्ति अधिकतर बोधसुलभ है, अपने अपने स्थान पर दोनो ही का महत्व है। इसी लिये हिन्दू धर्म मे अधिकारी भेद की व्यवस्था है। ज्ञानाश्रयी सिद्धान्त जब व्यवहारिक बनते है तो उनको भक्ति को साथ लेना पडता है, क्योकि संसार अधिकतर क्रियामय जीवन का प्रेमिक है। जिन महात्माओ ने इन रहस्यों को समझ कर यथाकाल दोनो की व्यवस्था उचित रूप से की उन्ही महात्माओ मे स्वामी रामानुज का स्थान है। उन्होंने स्वामी शंकराचार्य के ज्ञान-मार्ग को भक्तिमय बना दिया और उनके अद्वैतबाद को विशिष्टाद्वैत का रूप दिया। उन्हों ने निर्गुण ब्रह्म को स्वीकार करते हुये भी उसके सगुण रूप को ग्रहण किया

और बतलाया कि यदि यह सत्य है कि सर्व खल्विदं ब्रह्मनेहनानास्ति किंचन' तो विश्व को हम ब्रह्म का स्वरूप क्यों न मानें और क्यों न भक्ति से आर्द्र होकर उसकी उचित परिचर्य्या में लगें ? उन्होंने इस विश्वात्मक सत्ता को विष्णु-स्वरूप बतलाया जिसकी सहकारिणी शक्ति लक्ष्मी है, विष्णु त्रिगुणात्मक है और उनमें सृजन, पालन और संहार तीनों शक्तियां विद्यमान हैं। वे कोटि काम कमनीय और अव्यक्त होने पर भी नील नभोमण्डल-समान श्याम हैं। वे चतुर्भुज अर्थात् चार हाथ से सृष्टिकार्य-परायण हैं और अनन्त ज्ञानमय होने के कारण चतुर्वेदजनक हैं। वे सत्यावलम्बी के रक्षक और पापपरायण प्राणियों के शासक हैं। उनकी दीन-वत्सलता जहाँ अलौकिक है वहीं विपत्ति निवारण उनका स्वाभाविक धर्म। वे शरणागत-पालक और पतित जन-पावन हैं। उनका स्थान वैकुण्ठ है जो सर्वदैव अकुण्ठ रहता है और जिसमें वे उन लोगों को स्थान देते हैं जो प्रेम के पावन पथ पर चलने में कुण्ठित नहीं होते। उनकी सहधर्मिणी लोक-विमोहिनी शक्ति रमा है जो उन्हीं के समान सांसारिक प्रत्येक कार्य में रमणशीला है। परमात्मा के ऐसे सगुण रूप को सांसारिक प्राणियों के सामने लाकर स्वामी रामानुज ने समयानुसार भारतीयजन का जो हित-साधन किया उसका प्रमाण उनके धर्म की व्यापकता है, जो आजकल भारत-वसुंधरा में विस्तृत रूपमें व्याप्त है। उनका आविर्भावकाल ग्यारहवीं ईस्वी शताब्दी है। स्वामी रामानन्द उनकी गद्दी के पांचवें अधिकारी थे। स्वामी रामानन्द ने वैष्णव धर्म को कुछ विशेष नियमों से नियमित बनाया। इसका कारण तात्कालिक समाज था। स्वामी रामानंद का आविर्भाव-काल चौदहवीं शताब्दी है। इस समय मुसल्मान धर्म वर्द्धनोन्मुख था। मुख्यतः नीच जातियों में उसका प्रचार बड़े वेग से हो रहा था। वैदिक धर्म में समदर्शिता की पर्य्याप्त शिक्षा होने पर भी कुछ रूढियों के कारण इस भाव का विकास नहीं हो पाता था। इसके विरुद्ध मुसल्मान पीर वचन-द्वारा ही नहीं, आचरण द्वारा भी यह दिखला रहे थे कि किस प्रकार मनुष्य मात्र परस्पर भाई है। स्वधर्मी होने पर धर्म-क्षेत्र में वे किसी से कोई भिन्नता नहीं रखते थे। स्वामी रामानन्द ने वैष्णव धर्म की इस न्यूनता को समझा

और शास्त्रोंकी उन आज्ञाओंको व्यवहारिक रूप दिया जो इस प्रकारकी थीं—

'शुनी चैव श्वपाके च पंडिता: समदर्शिन:'

'आत्मवत् सर्व भूतेषु य: पश्यति स पण्डित:'

उनके विशाल हृदय ने वैष्णव धर्म को समयानुसार बहुत उदार बनाया और उन बंधनो को दृढता के साथ तोडा जो मानव-मात्र के परस्पर सम्मिलन मे वाधक थे। वे उस समय मुक्त कंठ से यही कथन करते दृष्टिगत होते है कि—

'जाति पांति पूछै नहि कोई। हरि को भजै सो हरि का होई।'

उन्होने विष्णु के अव्यक्त रूप को व्यक्त रूप दिया और भगवान रामचन्द्र मे विष्णु भगवान के समस्त गुणो का आरोप कर उन्हे विष्णु भगवान का अवतार बतलाया। पहले जो विष्णु भगवान कल्पना-क्षेत्र मे विराजमान थे उनको राम रूप मे लाकर उन्होने जिज्ञासुओ के सम्मुख उपस्थित किया और उनके उदार चरित्रो के आधार से मानव जाति को, विशेष कर हिन्दू जाति को, उस लोक धर्म की शिक्षा दी जो काल पाकर उसके लिये संजीवनी शक्ति बन गई। वैष्णव धर्म मे जितनी जटिलताये थी उनको उन्होंने इस प्रकार व्यवहार-सुलभ बनाया कि उसकी ओर लोग बडे उल्लास के साथ आकर्षित हो गये। उनके हृदय की विशालता देखिये कि जो जातिया ठुकराई हुई थीं उन्ही मे से उन्होने ऐसे लोगो का चुना जो हिन्दू-संसार-गगन में चमकते तारे वन कर चमके। उन्हीं के आध्यात्मिक बल का वह महत्व है कि जिससे ~~कबीर~~ कबीर बन गये। ये थे कौन ? एक जुलाहे, हिन्दू भी नहीं, मुसलमान। रविदास का जन्म चमार के घर मे हुआ था। सेन नाई और धन्ना जाट थे। परन्तु स्वामी रामानन्द के प्रभाव से ही आज दिन सन्त समाज मे इनको उच्चस्थान प्राप्त है। सिक्खो के ग्रन्थ साहब मे जिन सोलह प्रधान भक्तो की बानी संगृहीत है उनमे ये लोग भी है। कहा जाता है, उन्होंने अपने बारह शिष्य ऐसी ही जातियों मे से चुन लिये जिनकी पतितो में गणना थी। इस पन्द्रहवीं शताब्दी मे स्वामी रामानन्द ने ही वह भक्ति स्रोत बहाया जिसमे प्रवाहित होकर ऐसे

लोग भी उस स्थान पर पहुँचे जिस स्थान पर पहुँच कर लोग सन्तपद के अधिकारी होते है। स्वामी रामानन्द जी के प्रधान शिष्य कबीर साहब की रचनाओ को मैं उपस्थित कर चुका हू। अब उनके अन्य शिष्यो की कुछ रचनाये भी देखिये —

१— नरहरि चंचल है मति मेरी।
कैसे भगति करूँ मैं तेरी।
तू मोहिं देखै हौं तोहि देखूँ,
प्रीति परस्पर होई।
तू मोहिं देखे तोहि न देखूं,
यह पति सब बिधि खोई।
सब घट अन्तर रमसि निरन्तर,
मैं देखन नहिं जाना।
गुन सब तोर मोर सब अवगुन,
कृत उपकार न माना।
मै तैं तोर मोर असमझिसों,
कैसे करि निस्तारा।
कह रैदास कृष्ण करुणा मय,
जय जय जगत अधारा।

२-फल कारन फूलै बनराई।
उपजै फल तब पुहुप बिलाई।
राखहिं कारन करम कराई।
उपजै ज्ञान तो करम नसाई।
जल में जैसे तूंबा तिरै।
परिचै पिंड जीव नहिं मरै।

जब लगि नदी न समुद्र समावै।
तब लगि बढ़े हंकारा।
जब मनमिल्यो राम सागर सों,
तब यह मिटी पुकारा।
रैदास।

३—एक बूंद जल कारने चातक दुख पावै।
प्रान गये सागर मिलै पुनि काम न आवै॥
प्रान जो थाके थिर नहीं कैसे बिरमाओं।
बूड़ि मुये नौका मिलै कहु काहि चढ़ाओं॥
मैं नाहीं कछु हौं नहीं कछु आहि न मोरा।
औसर लज्जा राखिलेहु सदना जन तोरा॥
सदना।

४-भ्रमत फिरत बहु जनम बिलाने तनु मनु धनु नहिं धीरे।
लालच बिखु काम लुबध राता मन बिसरे प्रभु हीरे।
बिखु फल मीठ लगे मन बउरे चार बिचार न जान्या।
गुनते प्रीति बढ़ी अन भॉती जनम मरन फिर तान्या।
जुगति जानि नहि रिदै निवासी जलत जाल जम फंदपरे।
बिखु फल संचि भरे मन ऐसे परम पुरख प्रभु मन बिसरे।
ग्यान प्रवेसु गुरहिधन दीया ध्यानु मानु मन एक भये।
प्रेम भगति मानी सुख जान्यात्रिपति अघाने मुकतिभये।
जोति समाय समाने जाकैं अछली प्रभु पहिचान्या।
धन्नै धन पाया धरणीधर मिलि जनसंत समान्या।
धन्ना

८-धूप, दीप, घृत साजि आरती वारने जाऊँ कमलापती।
मंगला हरि मंगला नित मंगल राजा राम राय को।
उत्तम दियरा निरमल बाती तुहीं निरंजन कमला पाती।
राम भगति रामानन्दु जानै पूरन परमानंद बखानै।
मदन मूरति भय तारि गुविन्दे। सैन भणय भजु परमानन्दे।

सैन

पीपा गागरौनगढ के एक राजा थे। वे भी स्वामीरामानंद के शिष्य थे। एक पद उनका भी देखिये —

१—काया देवा काया देवल काया जंगम जाती।
काया धूप दीप नैवेदा काया पूजौं पाती।
काया बहु खँड खोजते नवनिद्धीपाई।
ना कछु आइबो ना कछु जाइबो राम की दोहाई।
जो ब्रह्मण्डे सोई पिंडे जो खोजे सो पावै।
पीपा प्रणवै परमतत्तु है सतगुरु होय लखावै।

पीपा

गोविद गोविद गोविंद सँग नामदेव मन लीना।
आठ दाम को छीपरो होइयो लाखीना।
बुनना तनना त्याग कै प्रीति चरन कबीरा।
नीचु कुला जोलाहरा भयो गुनिय गहीरा।
रविदास ढोवन्ता ढोर नित जिन त्यागी माया।
परगट होआ साध सँग हरि दरसन पाया।
सैनु नाई बुतकारिया ओहु घर घर सुनिया।
हिरदै बसिया पारब्रह्म भक्ता महिं गनिया।
'यहि विधि सुनिकै जाटरो उठि भक्ती लागा।
मिले प्रतक्ख गुसाइयाँ धन्ना बड़ भागा।

धन्ना

इन रचनाओ पर सामयिकता की छाप तो लगी ही है। परन्तु उनमे आपको स्वामी रामानन्द जी की महान शिक्षाओ का प्रभाव भी विकसित रूपमे दृष्टिगत होगा। ये रचनाये आपको यह भी बतलायेगी कि पन्द्रहवीं शताब्दी मे हिन्दी भाषा का विकास लगभग एक ही रूप मे हुआ। इसके अतिरिक्त इनके देखने से यह भी पता चलेगा कि किस प्रकार इस शताब्दो मे निर्गुणवाद और भक्ति रस की धाराये बहीं, जो उत्तरवर्त्ती काल मे विविध रूप मे प्रवाहित होकर हिन्दू जाति के सूखते धर्म-भाव के पौधो को हरा भरा बनाने मे समर्थ हुई। इसी शताब्दी मे पंजाब प्रान्त मे गुरु नानक देव का आविर्भाव हुआ। आप वेदी खत्री और अपने समय के प्रसिद्ध धर्म-प्रचारक थे। कुछ लोगो ने इनको कबीर साहब से प्रभावित बतलाया है। किसी किसीने तो उनको इनका शिष्यतक लिख दिया है। किन्तु यह सत्य नहीं है। इस विषय मे बहुत वाद-विवाद हो चुका है। मै उनको यहाँ लिखना बाहुल्य-मात्र समझता हू, किन्तु यह निश्चित बात है कि कबीर साहब का गुरु नानकदेव पर कुछ प्रभाव नही था। प्रत्यक्ष प्रमाण यह है कि कबीर साहब पीर थे और गुरु नानकदेव गुरु। वे एक नवीन धर्म का प्रचार करना चाहते थे और ये हिन्दू धर्म के संरक्षण के लिये यत्नवान थे। इस बात के प्रकट करने के लिये ही उन्होने महात्मा गोरखनाथ के उद्भावित गुरु नाम का अपने नाम के साथ संयोजन किया था। उनके उपरान्त उनको गद्दी पर दस महापुरुष बैठे। वे दसो गुरु कहलाये। पॉच गद्दीके बाद तो इन गुरुओ ने हिन्दूधर्म की रक्षा के लिये तलवार भी ग्रहण की। इन गुरुओमेसे कईने हिन्दूधर्म बलिवेदी पर अपनेको उत्सर्ग भी किया। जब कबीर साहब ने हिन्दू धर्म याजको और पंडितों की कुत्सा करने ही मे अपना गौरव समझा उस समय गुरुनानकदेव पंडितो को इन शब्दो मे स्मरण करते थे —

स्वामी पंडिता तुमदेहुमती, केहि विधि मिलिये प्रानपती।

गुरु नानकदेव की रचनाओं मे वेद शास्त्र की उतनी ही मर्य्यादा दृष्टिगत होती है जितनी एक हिन्दू की कृति मे होनी चाहिये। उसके

विरुद्ध कबीर साहब उनको उन शब्दो मे स्मरण करते है जो भद्रता की सोमा को भी उल्लघन कर जाते है। अतएव यह समझना कि गुरु नानकदेव उसी पथ के पथिक थे जिस पथके पथिक कबीर साहब थे बहुत बडी भ्रान्ति है। गुरु नानकदेव का आविर्भाव यदि उस समय पंजाब प्रान्त मे न होता तो उस प्रान्त से हिन्दू धर्मका विलोप-साधन पीरो के लिये बहुत आसान हो जाता। गुरु नानकदेव की अधिकाश रचनाये पंजाबी मे ही है। परन्तु प्राय सब हिन्दी साहित्य के इतिहासकारो ने गुरु नानकदेव को हिन्दी का कवि माना है। कारण इसका यह है कि उनके बाद उनकी गद्दी पर नौ गुरु और बेठे। इनमे से पाच गुरुओ ने जितनी रचनाये की है उन सब लोगों ने भी अपनी पदावली मे नानक नाम ही दिया हे। इस लिये भ्रान्ति से अन्य गुरुओं की रचनाओं को भी गुरु नानक की रचना मान ली गयी है। गुरु तेगबहादुर नवे गुरु थे वे सत्रहवीं ई० शताब्दी मे हुये है। उनकी रचनाये उस समय की हिन्दो मे हुई है। वेही अधिक प्रचलित भी है। इसी लिये उनकी रचनाओं को गुरु नानकदेव की रचना मान ली गयी है, और इसी से उस भ्रान्ति की उत्पत्ति हुई है जो उनको हिन्दी भाषा का कवि बनाती है। परन्तु वास्तव मे ऐसा नहीं है। मै यह स्वीकार करूँगा कि गुरु नानकदेव के कुछ पद्य अवश्य ऐसी भाषा मे लिखे गये है जो पन्द्रहवी शताब्दी की हिन्दी से सादृश्य रखते है। परन्तु उनकी संख्या बहुत थोडी है, और उनमे भी पंजाबीपन का रग कुछ न कुछ पाया जाता है। मै बिषय को स्पष्ट करने के लिये उनका एक पद्य पंजाबी भाषा का और दूसरा हिन्दी भाषा का नीचे लिखता हू —

१—पवणु गुरुपाणी पिता माता धरति महत्तु।
दिवस रात दुइदाई दाया खेलै सकल जगत्तु।
चँगियाइयां बुरियाइयां वाचै धरमु हदूरि।
करनी आपो आपणी के नेड़ै के दूरि।
जिन्नी नाम धेयाइया गये मसक्कति घालि।
नानक ते मुख उज्जले केती छुट्टी नालि।

२—गुरु परसादी बूझिले तउ होइ निबेरा ।
घर घर नाम निरंजनो सो ठाकुर मेरा ।
बिनु गुरु सबद न छूटिये देखहु बीचारा ।
जे लख करम कमावहीं बिनु गुरु अँधियारा ।
अंधे अकली बाहरे क्या तिन सों कहिये ।
बिनु गुरु पंथ न सूझई किस बिध निरबहिये ।
आवत कौ जाता कहैं जाते कौ आया ।
परकी कौ अपनी कहैं अपनो नहि भाया ।
मीठे को कडुआ कहैं कडुए कौ मीठा ।
राते की निन्दा करहि ऐसा कलि महि दीठा ।
चेरी की सेवा करहि ठाकुरु नहि दीसै ।
पोखर नीरु बिरोलिये माखनु नहि रीसै ।
इसु पद जो अरथाइ ले सो गुरू हमारा ।
नानक चीने आप को सो अपर अपारा ।

गुरु नानकदेव की मातृभाषा पंजाबी थी। इसके अतिरिक्त मुख्यत पंजाब प्रान्त की हिन्दू जनता की जागर्ति के लिये ही उनको धर्म क्षेत्र मे उतरना पडा था। इस लिये पंजाबी भाषा मे उनकी अधिकास रचनाओं का होना स्वाभाविक था। परन्तु जिस समय उनका आविर्भाव हुआ था उसकी यह विशेषता देखी जाती है कि उस समय प्रत्येक प्रान्त के हिन्दू धर्म प्रचारक ओर सुकवि हिन्दी भाषा की ओर आकर्षित हो रहे थे। यदि बंगाल प्रान्त के चण्डीदास और बिहार प्रान्त के विद्यापति हिन्दी भाषा को अपनी रचनाओं मे स्थान देने के लिये आकर्षित हुये तो महाराष्ट्र प्रान्त मे नामदेव जी को भी तत्कालिक हिन्दी भाषा मे उत्तमोत्तम धार्मिक रचनाये करते देखा जाता है। ऐसी अवस्था मे गुरु नानक देव जी का भी हिन्दी भाषा की ओर आकृष्ट होना आश्चर्यजनक नहीं। उनके इसो

भाव का द्योतक उनका हिन्दी भाषा का पद्य है, पहले पद्य मे भी, जो पंजाबी भाषा का है हिन्दी शब्दो का प्रयोग देखा जाता है। और उनकी यह प्रणाली उनके हिन्दू भाषा के अनुराग की स्पष्ट सूचक है। उनके बाद उनके जितने उत्तराधिकारी हुये उनमे यह प्रवृत्ति उत्तरोत्तर बढती दृष्टिगत होती है। दूसरी तीसरी और चौथी गद्दियो के गुरुओ की रचनाये अधिकाश हिन्दी शब्दो से गर्भित है। पाचवी गद्दी के अधिकारी गुरु अर्जुन जी की रचनाये तो सामयिक हिन्दी भाषा का ही उदाहरण है। नवो गद्दी के अधिकारी गुरु तेगबहादुर के भजन तो बिल्कुल हिन्दी भाषा मे ही लिखे गये है। उनके पुत्र दसवीं गद्दी के अधिकारी गुरु गोविन्द सिह ने हिन्दी भाषा मे एक विशाल ग्रन्थ ही लिख डाला जो आदिग्रन्थ साहब के ही बराबर है और दशम ग्रन्थ कहलाता है। यथा स्थान इस विषय का वर्णन विशेषरूप से आपको आगे मिलेगा। इस समय मै कुछ पद्य दूसरी गद्दी से लेकर पाँचवीं गद्दी और नवीं गद्दी के अधिकारियो के नीचे लिखता हू। आप देखे उनमे किस प्रकार उत्तरोत्तर हिन्दी भाषा को अधिक स्थान मिलता गया है।

जासुख तासहु रागियो दुख भी संभालै ओइ।
नानक कहै सियाणिये यों कन्त मिलावा होइ॥

गुरु अंगद।

तू आपे आप सभु करता कोई दूजाहोयसु औरो कहिये।
हरि आपे बोले आपि बुलावे हरि
आपे जलि थलि रवि रहिये।
हरि आपे मारे हरि आपे छोड़े मनहरि सरणी पड़ि रहिये।
हरि बिनु कोई मारि जीवालि न सकै
मन है निचिंद निस्चलु होइ रहिये।
उठंदिया बहंदिया सुतिया सदा हरि नाम ध्याइये।
जन नानक गुरु मुख हरि लहिये।

गुरु अमरदास

हौं क्या सालाहीकिरम जन्तु वड्डी तेरी वडियाई।
तू अगम दयालु अगम्मु है आपि लेहि मिलाई।
मैं तुझ बिन बेला को नहीं, तू अंति सखाई।
जो तेरी सरणागती तिन लेहि छुड़ाई।
नानक बे परवाहु है किसु तिल न तमाई।
संगति संत मिलाये। हरि सरि निरमलि नाये।
निरमलि जलि नाये मैलु गँवाये भये पवित्र सरीरा।
दुर मति मैल गई भ्रम भागा हौं मैं विनठी पीरा।
नदरि प्रभू सत संगति पाई निज घर होआ बासा।
हरि मंगल रसि रसन रसाये नानक नाम प्रगासा।

गुरु रामदासजी

गावहु राम के गुण गीत।
नाम जपत परम सुख पाइये आवागवणु मिटै मेरे मीत।
गुण गावत होवत परगास, चरण कमल महँ होय निवास।
सत संगति महँ होइ उधार, नानक भव जल उतरसि पार।

गुरु अर्जुन जी

प्रानी नारायन सुधि लेह।
छिनु छिनु औधि घटै निसि बासरु बृथा जात है देह।
तरुनापो बिखियन स्यों खोयो बालापन अज्ञाना।
बिरध भयो अजहूँ नहिं समझै कौन कुमति उरझाना।
मानुस जन्म दियो जेहिँ ठाकुर सो तैं क्यों बिसरायो।
मुकति होति नर जाके सुमिरे निमख न ताको गायो।
माया को मदु कहा करतु है संग न काहू जाई।
नानक कहत चेतु चिन्तामणि होइ है अन्त सहाई।

गुरु तेग बहादुर

इसी स्थान पर मैं यह भी प्रकट कर देना चाहता हू कि इस पन्द्रहवीं शताब्दी मे जिस निर्गुणवादधारा की अधिक चर्चा की जाती है, वास्तव मे वह धारा उस काल से प्रारम्भ होती है जिस समय स्वामी शंकराचार्य ने वेदान्तवाद का प्रचार किया। उनकी निर्गुण धारा का रूप वास्तविकता की दृष्टि से सर्वोत्तम है किन्तु वह इतनी उच्च है कि सर्व साधारण की बोधगम्य नहीं। मैक्समूलर ने एक स्थान पर लिखा है कि ईश्वरी विद्या के विषय मे स्वामी शंकराचार्य जितना ऊंचा उठे उससे ऊचा नहीं उठा जा सकता। गुरु गोरखनाथ जी ने इस निर्गुणवाद को जटिलताओ को बहुत कुछ सरलता का रूप दिया और भगवान शिव की उपासना का प्रचार कर के अव्यक्त विषयो को व्यक्त रूप देने को प्रशंशनीय चेष्टा की। उसका विकास ज्ञानदेव और नामदेव की रचनाओं मे अधिकतर बोधगम्य रूप मे देखा जाता है। पन्द्रहवीं सदीके सन्तमतके प्रचारको मे विशेष कर कबीर साहब की उक्तियो मे वह निर्गुणवाद कुछ और स्पष्ट हुआ, किन्तु वह पौराणिक भावो से ओत प्रोत है। पौराणिक धर्म का उत्थान गुप्त सम्राटो के समय मे अर्थात् तीसरी और चौथी ईस्वी शताब्दी में हुआ और उत्तरोत्तर वृद्धि पाकर ईस्वी दसवीं शताब्दी मे वह प्रबल बन गया था। यही कारण है कि पन्द्रहवीं शताब्दी मे जितने धार्मिक प्रचार हुये वे सब पौराणिक धर्म पर अवलंबित है। कबीर साहब के निर्गुणवाद पर भी उसकी छाप लगी हुई है, अन्तर केवल इतना ही है कि उनके निर्गुणवाद पर सूफियों के ईश्वरवाद की भी छाया पड़ी है। वैष्णव धर्म मे जैसा निर्गुणवाद है और उसके साथ जैसा सगुणवाद सम्मिलित है कबीर साहब का निर्गुण ब्रह्म-सम्बन्धी सिद्धान्त भी लगभग वैसा ही है। कारण इसका यह है कि उनकी अधिकाश शिक्षायें वैष्णव धर्म से प्रभावित है और ऐसा होना इस लिये अनिवार्य था कि स्वामी रामानन्द का उनपर बहुत बडा प्रभाव था। कबीर साहब का निर्गुण ब्रह्म अनिर्वचनीय ही नहीं है वह भक्त वत्सल है और पतित पावन भी है। प्रेमातिरेक मे वे उसके दास बनते है और वह उनका स्वामी, वे उसके पुत्र बनते है और वह

उनका पिता, वे उसकी प्रेमिका बनते और वह उनका प्रेमी। वे नरक और आवा गमन से भीत हो कर उसकी शरण मे जाते है और वह उद्धारक बन कर उनका उद्धार करता है। वे कहते है कि वह बिपत्ति मे त्राण देना है भवसागर से पार करता है और अशरण का शरण बनता है और इन बातो को पौराणिक आख्यानो और उदाहरणों-द्वारा प्रमाणित करते है। जब वे और ऊँचा उठते है तो उसको सर्व जगत मे व्याप्त पाते है और विश्व की विभूतियो मे नाना रूपो मे उसे विकसित देख कर अलौकिक आनन्द का अनुभव करते है। कभी जब आत्म-विश्वास का उदय होता है तब वह आत्मज्ञान अथवा आत्मा ही मे परमात्मा के देखने का उद्योग करते है और कभो समाधि मे बैठ कर योग के अनेक साधनों द्वारा ब्रह्मानन्द-सुख-भोगी बनते है। कभी मुक्ति की कामना करते है कभो मुक्ति को तुच्छ गिन कर भगवद्भक्ति को ही प्रधानता देते है। कभी संकेत और इंगितों द्वारा लोकातीत की अलौकिकता बतलाने मे रत देखे जाते है, कभी अनिर्वचनीय की अनिर्वचनीयता देख मौनता-मंत्र ग्रहण करना ही समुचित समझते है। साराश यह कि निर्गुण और सगुण के बिषय मे जो विचार-परम्परा पुराण-वादियों और वेदान्तियों की देखी जाती है, पद पद पर वे उसी का अनुसरण करते दृष्टि गत होते है। कोई पुराण ऐसा नहीं है जिसमें परमात्मा का वर्णन इसी रूप मे न किया गया हो। पुराणो का सगुणवाद जैसा प्रबल है वैसा ही निर्गुणवाद भी। वे भी वेदान्त के भावों से प्रभावित है और वैष्णव पुराणो मे उसका बडा हो हृदयग्राही विवेचन है। परन्तु वे जानते है कि निर्गुणवाद के तत्वो का समझना कतिपय तत्वज्ञों का ही काम है। इस लिये उनमे सगुणावाद का ही विस्तार है, क्योकि वह बोध-सुलभ है। विना उपासना किये उपासक सिद्धि नहीं पाता। उपासना-सोपान पर चढ़कर ही साधक उस प्रभु के सामीप्य-लाभ का अधिकारी बनता है जो ज्ञान-गिरा-गोतीत है। उपासना के लिये उपास्य को प्रयोजनीयता अविदित नहीं। यदि उपास्य अचिन्तनीय अव्यक्त, अथवा ज्ञान का विषय नहीं तो उसमे भावों का आरोप नहीं हो

सकता। ऐसी अवस्था मे भक्ति किसकी होगी ? प्रेम किस से किया जायगा और किसके गुणो का मनन चिन्तन कर के मनुष्य अपनी आत्मा को उन्नत बना सकेगा। इन्ही बातो पर दृष्टि रखकर परमात्मा के सगुण स्वरूप की कल्पना है। जो यह समझता है कि बिना सगुणोपासना किये हम परमात्मा के निर्गुण स्वरूप का ज्ञान प्राप्त कर लेगे वह उसी जिज्ञासु के समान है जो विश्व-नियन्ता का परिचय प्राप्त करना चाहता है किन्तु यह जानता ही नहीं कि विश्व क्या है। पुराण सगुण-पथ का पथिक बना कर निर्गुण की प्राप्ति कराते है, किन्तु बडी बुद्धिमता और विवेक के साथ। यही कारण है कि मुख से निर्गुणवाद का गीत गानेवाले भी अन्तमे पुराण-शैली की परिधि के अन्तर्गत हो जाते है। चाहे कबीर साहेब हो, अथवा पन्द्रहवी सदी के दूसरे निर्गुणवादी, उन सबके मार्गप्रदर्शक गुप्त या प्रकट रूप मे पुराण ही है। हम देखते है कि निर्गुणवाद का नाद करनेवाले जब बिना किसी प्रतीक के अवलम्बित पथ पर चलने मे असमर्थ होते है तो गुरुदेव ही को ईश्वर-स्वरूप मानकर उपासना मे अग्रसर होते है यह क्या है ? सगुण की उपासना ही तो है। आजकल निर्गुणवादियो मे यह प्रवृत्ति अधिक प्रबल हो गई है। निर्गुणवादियों के एक नवीन संप्रदाय ने तो ईश्वर से मुंह मोडकर खुल्लमखुल्ला गुरु को ही ईश्वर मान लिया है। चाहे जितना रूप बदला जाय, परन्तु यह भी पौराणिक सिद्धान्तों का ही अनुगमन है, क्योकि वे कहते है —

गुरु र्ब्रह्मा, गुरु र्विष्णुः गुरुर्देव महेश्वरः,
गुरु साक्षात् परब्रह्म तस्मै श्री गुरुवे नमः।

पन्द्रहवीं शताब्दी मे मुसलमानों का प्रभाव भारतवर्ष पर बहुत पड रहा था। उनकी राज्य-सत्ता उस समय तो प्रबल थी ही उनके धर्म-याजक अथवा पीर भी अपने धर्म के विस्तार मे तन, मन से निरत थे। इसलिये, हिन्दू जाति पर उनके विचारों और भावो का बहुत अधिक प्रभाव पड रहा था। मुसलमान धर्म अवतारवाद, मूर्ति-पूजा और देववाद का कट्टर विरोधी है, और अपने विचारानुसार एकेश्वरवाद का

प्रबल प्रचारक। यही कारण है कि उस समय के कबीर साहब जैसे कुछ धर्म प्रचारकों को निर्गुणवाद का राग अलापते देखा जाता है। क्योंकि समय उनकी अनुकूलता करता था और वे समय की गति पहचान कर स्वधर्म प्रचार मे सफलता लाभ करने के कामुक थे। परन्तु सगुण-वाद का विरोधी होने पर भी वे कभी सन्तो को ईश्वर का स्वरूप कहते थे और कभी गुरु को। कबीर साहब स्वयं कहते है —

निराकार की आरसी साधों ही की देह।
लखा जो चाहै अलख को इनही में लखि लेह।
कबिरा ते नर अंध हैं गुरु को कहते और।
हरि रूठे गुरु ठौर है गुरु रूठे नहिँ ठौर।
तीन लोक नौ खंड में गुरु ते बड़ा न कोय।
करता करै न करि सकै गुरु करै सो होय॥

यह क्या है? रूपान्तर से सगुणवाद का प्रतिपादन है और प्रच्छन्न रूप से उस उद्देश्य का प्रति पालन है जिसकी जननी पौराणिकता है।

इस शताब्दी मे कुछ और ऐसे कवि हुये है जो कबीर साहब के पुत्र या शिष्य है, जैसे कमाल, भग्गूदास, धरमदास और श्रुति गोपाल। इन लोगों की रचनाये लगभग वैसी ही है जैसी पन्द्रहवीं शताब्दी की हिन्दी रचनाये अबतक उपस्थित की गई है। विषय भी इन लोगों का धार्मिक ही है। इसलिये इन लोगो की रचनाओं को लेकर कुछ विवेचन करना वाहुल्य मात्र होगा। चरणदास, दयासागर, और जय सागर जैन भी इसी शताब्दी में हुये है। परन्तु उनकी रचनाये भी लगभग वैसी ही है और समय के प्रवाहानुसार धर्म-सम्बन्धी ही है। इसलिये उनको भी छोडता हू। हाँ—इस शताब्दी का एक दामो नामक कवि ऐसा है जिसने सामयिक प्रवाह के प्रतिकूल 'पदमावती' नामक प्रेम कहानी की रचना की है। उसके ग्रंथ की कुछ पंक्तियाँ ये है.—

सुणो कथा रसलीन विलास ।
योगी मरण (अउर) बनवास ।
पद्मावती बहुत दुख सहई ।
मेलो करि कवि दामो कहई ।

इस पद्यकी भाषा प्राञ्जल है और वैसी ही है जैसा स्वरूप पन्द्रहवीं शताब्दी मे हिन्दी को प्राप्त हुआ था । केवल 'सुणो' शब्द राजस्थानी का है जो प्रान्तिक रचना होने के कारण उसमे आ गया ।

(२)

सोलहवीं ई० शताब्दी को हम हिन्दी भाषा का स्वर्णयुग कह सकते है । इसी शताब्दी के आरम्भ मे मलिक मुहम्मद जायसी ने अपने प्रसिद्ध 'पद्मावत' नामक ग्रन्थ की रचना की जो अवधी भाषा का आदिम ग्रंथ है । इसी शताब्दी मे हिन्दी-साहित्य गगन के उस सूर्य और चन्द्रमा का उदय हुआ, जिनकी आभा से वह आज तक उद्भासित है । आचार्य केशव, जो हिन्दी साहित्य के भाम और मम्मट है, उनका आविर्भाव भी इसी शताब्दी मे हुआ और अकबर के राजत्व का वह उल्लेखनीय समय भी जो मुसलमान साम्राज्य का उच्चतम काल कहा जाता है इस शताब्दी का ही अधिकाश भाग है । इस शताब्दी मे अवधी और ब्रज भाषा का जैसा शृंगार हुआ फिर कभी वैसा गौरव उसको नहीं प्राप्त हुआ । इस शताब्दी के हिन्दी साहित्य के विकाश पर प्रकाश डालने के पहले मुझको एक बहुत बडे धार्मिक परिवर्तन का वर्णन कर देना आवश्यक ज्ञात होता है । क्योंकि, ब्रज-भाषा के उत्थान और उसके बहुप्रान्तव्यापी होने का आधार वही है ।

मैं पहले कह चुका हू कि किस प्रकार सूफी सम्प्रदाय वाले प्रेम मार्ग का विस्तार मुसल्मानो की साम्राज्य-वृद्धि के साथ कर रहे थे और कैसे उनके इन मधुर भावो का प्रभाव भारतीय जनता पर पड़ रहा था । सूफी सम्प्रदाय वाले संसार की समस्त विभूतियों में ईश्वरीय सत्ता का विकास देखते है । वे परमात्मा की कल्पना प्रेम स्वरूप के रूप मे

करते है और अपने को उसका प्रेमिक मान कर प्रेम सम्बन्धी भावों को बडी ही मधुरता और सरसता से वर्णन करते है। उसके सम्मिलन के लिये जो उत्सुकता उनके हृदय मे उत्पन्न होती है उसका बड़ाही मर्मस्पर्शी चित्र उनकी रचनाओ मे अंकित है। उनकी विरह वेदनाये भी बहुत ही विमुग्धकारी और हृदयद्रवीभूत करने वाली है। वे जब अपनी उस अवस्था का वर्णन करते है जिस समय उनको इस बात का अनुभव होता है कि वे उससे किसी अवस्था विशेष के कारण पृथक हो गये है तो उसमे बडी मर्म वेधिनी उक्तियाँ होती हैं जो मनों को बेतरह अपनी ओर खींचती है। उस समय उनके प्रेम मार्ग के इन बडे विमोहक भावो ने हिन्दू जनता को बहुत कुछ अपनी ओर आकर्षित कर रखा था। पर हिन्दुओ के किसी धर्म संप्रदाय मे ऐसी मधुरतम कल्पनाओं का आविष्कार तबतक नहीं हुआ था, जो सफलता के साथ उनका प्रतिकार कर सके। हिन्दू धर्म का भक्ति-मार्ग उच्च कोटि का है और बहुत ही सरस और मधुर भी है, परन्तु उतना सुलभ नहीं, उसमे कुछ गहनता भी है। वह सर्व साधारण के लिये उतना मोहक नहीं जितना प्रेम। भक्ति मे उच्चता है और वह महत्तामय उच्च कोटि के व्यक्तियों पर ही आधारित है। उसमे विशेषता के साथ त्यागमय धार्मिकता है परन्तु प्रेम मे साधारणता है और उसमे सांसारिकता भी पाई जाती है। व्यापक प्रेम या प्रीति की पराकाष्ठा ही भक्ति है। इसी लिये भक्ति से उसमे अधिक व्यवहारिकता है और इस व्यवहारिकता के कारण ही मानव-समाज पर उसका अधिक अधिकार है। प्रेम के आदर्श की न्यूनता हिन्दू संसार मे किसी काल मे नहीं रही। प्रेम की महत्ता और उसकी लोक प्रियता के आदर्श का अभाव हिन्दू संस्कृतिमे कभीनहीं हुआ। प्ररन्तु यह समय ऐसा था कि जब उसके व्यापक और महान आदर्शोंको ऐसे मधुर और मोहक रूपमे उपस्थित करने की आवश्यकता थी, जो सर्वसाधारण को अपनी ओर आकर्षित कर सके, और सूफी सम्प्रदायके उन प्रभावो को बिफल बनावे जो उसके चारों ओर अविरामगति से विस्तृत हो रहे थे। रामावत सम्प्रदाय मे भक्ति भावना जितनी प्रबल है, उतनी प्रेम भावना नहीं। भगवान् रामचन्द्र

मर्य्यादा पुरुषोत्तम है और इसी रूप मे वे हिन्दू ससार के सामने आते है। उनका कार्य्यक्षेत्र भी ऐसा है जहाँ धीरता, गम्भीरता, कर्मशीलता, कार्य्य करती दृष्टिगत होती है। उनके आदर्श उच्च है, साथ ही अतीव संयत। या तो वे कर्म्म-क्षेत्र मे विचरण करते देखे जाते है या धर्म्म-क्षेत्र मे। इसीलिये उनमे वह मधुर भाव की उपासना पहले नहीं लाई जा सकी जो बाद को गृहीत हुई। सब से पहले समयानुसार इस ओर मध्वाचार्य्य जी की दृष्टि गई। उन्होने श्रीमद्भागवत के आधार से भगवान् श्रीकृष्णकी मधुर भावनामय उपासना की नींव डाली। पहले वे स्वामी शंकराचार्य्यके और रामानुज सम्प्रदाय के सिद्धान्तों ही की ओर आकर्षित थे। परन्तु श्रीमद्भागवत की भक्ति-भावना ही उनके हृदय मे स्थान पा सकी और उन्होने दक्षिण प्रान्त मे इस प्रकारकी उपासना का आजीवन प्रचार किया। इनकी उपासना-पद्धति मे भगवान कृष्णचन्द्र प्रेम के महान् आदर्श के रूप मे गृहीत हुये है और गोपिकाये उनकी प्रेमिका के रूप मे। जो सम्बन्ध गोपिकाओं का भगवान श्रीकृष्ण के साथ प्रेम के नाते स्थापित होता है भगवान के साथ भक्त का वही सम्बन्ध वर्णित करके उन्होने अपनी उपासना-पद्धति ग्रहण की। इसीलिये उनका सिद्धान्त द्वैतवाद कहलाता है। उन्हीं के सिद्धान्तो का प्रचार विष्णु स्वामी और निम्बार्काचार्य ने किया, केवल इतना अन्तर अवश्य हुआ कि गोपियों का स्थान उन्हों ने श्रीमती राधिका को दिया। स्वामी बल्लभाचार्य्य ने इसी उपासना की नींव उत्तर-भारत और गुजरात मे बडी ही दृढता के साथ डाली और थोड़े परिवर्त्तन के साथ इस मधुर भावना का प्रसार बडी ही सरसता से भारतवर्ष के अनेक भागों मे किया। स्वामी वल्लभाचार्य ने बालकृष्ण की उपासना ही को प्रधानता दी है इसीलिये उनका दार्शनिक सिद्धान्त शुद्धाद्वैतवाद कहलाता है। परन्तु जैसा मैने ऊपर अंकित किया, समय की गति देखकर उनको राधाकृष्ण की युगलमूर्ति की उपासना ही को प्रधानता देनी पडी। उस समय यह उपासना पद्धति बहुत अधिक प्रचलित और आद्रित भी हुई। क्योंकि इस प्रणाली मे सूफियों के उस प्रेम और प्रेमिक-भाव का उत्तमोत्तम प्रतिकार था जिसका प्रचार वे उस समय भारत के विभिन्न भागो मे

तत्परता के साथ कर रहे थे। सूफियों के सम्प्रदाय मे परमात्मा प्रेमपात्र के रूप मे देखा जाता है और सूफीभक्त अपने को उसके प्रेमिक के रूप में अंकित करते है। यह प्रणाली भारत के लिये इसलिये अधिक उपयोगिनी नहीं सिद्ध हो सकती थी जितनी कि स्वामी वल्लभाचार्य्य की उद्भावित पद्धति। कारण इसका यह है कि पुरुष के प्रति पुरुष के प्रेम मे वह स्वारस्य नहीं है जो पुरुष के प्रति स्त्री के प्रेम मे। भारत की यह चिर प्रचलित परंपरा और इस देश का यही आदर्श है कि स्त्रिया पुरुषो पर आसक्त दिखलायी जाती है। इसलिये श्रीमती राधिका को भगवान कृष्णचन्द्र पर उत्सर्गीकृत-जीवन बनाकर स्वामी वल्लभाचार्य्य या उनके पहले के आचार्यों ने जिस मर्मज्ञता का परिचय दिया और परमात्मा की जिस उपासना-पद्धति का आदर्श उपस्थित किया वह अभूतपूर्व और अधिकतर भाव-प्रवण है। योरोप का प्रसिद्ध विद्वान् न्यूमैन क्या कहता है, उसे सुनिये १ "पुरुषों मे तुम कितने ही पौरुष-विकास-सम्पन्न क्यो न हो, उच्चतर आध्यात्मिक आनन्द की ओर प्रगति करने के लिये तुम्हारी आत्मा को नारीरूप ही ग्रहण करना होगा।"

भगवान के बालभाव की उपासना की कल्पना बडी ही मधुर है, साथ ही सर्वथा नवीन। स्वामी वल्लभाचार्य को छोडकर यह उपासना पद्धति किसी के ध्यान में नहीं आई। जो धर्म अवतारवाद का मर्म नहीं समझ सकते वे बालभाव की उपासना की कल्पना कर भी नहीं सकते। संसार के कुछ धर्म्मों मे परमात्मा को पिता और अपने को पुत्र मान कर उपासना करने की प्रणाली है। पर परमात्मा को बाल स्वरूप मानकर इसी भाव से उसकी उपासना करने की उद्भावना स्वामी वल्लभाचार्य्य का ही आविष्कार है। उपासना का प्रयोजन यह है कि परमात्मा के अशेष गुणो का मंनन और चिन्तन करके तदनुरूप अपने को बनाना, आर्य धर्म का यह सिद्धान्त वाक्य है 'यच्चिन्तति तद्भवति' मनुष्य जैसा सोचता है वैसा ही बनता है। पौराणिक धर्म मे नाम जपने की बडी महिमा है। निर्गुण-

1—" If my soul is to go on into high spiritual blessedness, it must beecome a woman, yes, however, manly thou may be an ong men ,,—
Newman

वादियों मे यह सिद्धान्त बहुत व्यापक रूपमे गृहीत है। उद्देश्य इसका यही है कि विना नामके परिचय नही होता, और बिना परिचय के गुण-ग्रहण की संभावना नही। किन्तु नाम जपनेका लक्ष्य भी तादात्म्य और गुण-ग्रहण ही है, अन्यथा उणमना व्यर्थ हो जाती है। इसीलिये भगवद्गीताका यह महावाक्य है ये यथामाम् प्रपद्यन्ते तान् तथैव भजाम्यहम् '। मुझको जो जिस रूपमे भजता है। मैं उसको उसी रूपमे प्राप्त होता हू। बालभाव की उपासना का अर्थ है बालकोंके समान निरीह, निर्दोप और सरल अवस्थाका प्राप्त करना। कहा जाता है, बालक सदैव स्वर्गीय बातावरणमे बिचरता रहता है, इस कथन का मर्म यह है कि वह समस्त सासारिक बन्धनों और झगडों से मुक्त होता है और उसके भावों मे एक स्वर्गीय मधुरता विद्यमान रहती है। बालभाव की उपासना मे माधुर्य्य-भावना की चरम सीमा दृष्टिगत होती है। परन्तु इस अवस्थाका प्राप्त करना सहज नहीं। बाल्यावस्था के बाद जो अवस्थाये सामने आती है उनको बिल्कुल भूल जाना बहुत बडी साधना से सम्बन्ध रखता है। भारतवर्ष मे सौ डेढ सौ बर्ष के भीतर अनेक महात्माओ का आविर्भाव हुआ है। उनमे से एक परमहंस रामकृष्ण को कभी कभी बाल-भाव मे मग्न देखा जाता था। परन्तु उनको भी यह अवस्था कुछ काल के लिये ही प्राप्त होती थी। सदैव इस दशा मे वे नही रह सकते थे। इसी असम्भवता के कारण स्वामी वल्लभाचार्य प्रचारित बालभाव उपासना की पद्धति को व्यापकता नही प्राप्त हुई। उनकी प्रेमिका और प्रेमिक भावकी उपासना ही व्यापक रूप से गृहीत हुई और आज भी उसकी मधुरता उसके अधिकारियों को विमुग्ध कर रही है। अद्वैतवाद मे साधक को अपनी सत्ता को विलोप कर देना पडता है, क्यो कि द्वैत का भाव उत्पन्न होते ही अद्वैत भाव सुरक्षित नहीं रह सकता। इसीलिये इस मार्ग पर चलना अत्यन्त दुर्लभ है। कोई कोई सच्चा उच्च कोटि का ज्ञान मार्गी ही उस पद्धति का अधिकारी हो सकता है। भक्ति मार्ग मे अपनी सत्ता को सर्वथा लोप करना नहीं पडता। परन्तु, मर्यादा पद पद पर उसकी सहचरी रहती है, क्यो कि भक्ति महत्ता के अभाव मे उत्पन्न नहीं होती और महान् पुरुष के साथ मर्य्यादा का उल्लंघन नहीं हो सकता। इसलिये मानवी सत्ता

भक्ति मार्गमे भी बन्धनोंसे मुक्त नहीं होती। और अनेक अवस्थाओंमे उसकी वाछित स्वतंत्रता मे बाधा भी पडती रहती है। प्रेम पथ इन बन्धनों से मुक्त रहता है। उसमे अपनी सत्ता तो बहुत कुछ सुरक्षित रहती ही है उसकी स्वतत्रता मे भो उतनी बाधा नही पडती। प्रेमिका प्रेम-पात्र को यथावसर टेढी-मेढी बाते भी कह देती है और दिल खोलकर उपालम्भ देने मे भी संकुचित नहीं होती। ऐसा वह प्रेमातिरेक के वश होकर ही करती हे दम्भ अथवा अभिमान से नहीं। यही कारण है कि यह उपासना पद्धति अधिकतर गृहीत हुई और माधुर्य भावना कही गई। आज दिन भारतवर्ष का कौन सा प्रदेश है जिसमे वल्लभाचार्य सम्प्रदाय के मन्दिर नहीं और जिसमे राधा-कृष्ण की मूर्ति विराजमान नहीं? रामावत सम्प्रदाय भी इस माधुर्य्य भाव की उपासना से प्रभावित हुआ और उसमें भी आजकल सखी भाव की सृष्टि होकर यह पद्धति गृहीत हो गई है।

भगवान कृष्णचन्द्र जैसे विलक्षण प्रेम स्वरूप प्रेमिक है श्रीमती राधिका वेसी ही प्रेम प्रतिमा। असंख्य ब्रह्माण्ड के अधिप आकाश का जो वर्ण है वही वर्ण प्रेमावतार श्री कृष्णचन्द्र का है, जो इस बात का सूचक है कि जो इस रंगमे सच्चे जी से रँगा उसने माधुर्य समुद्र मे ही प्रवेश किया, आजन्म उसमे ही निमग्न रहा। श्यामायमाना वसुन्धरा मे भी वही छटा दृष्टिगत होती है और विश्वविरामदायिनी रजनी मे भी। वे विश्वरूप है, इसलिये सूर्य्य, शशाक, वह्नि नयन है, मयूर-मुकुट-मण्डित, बनमाली, एवं गिरिधर भी है। ब्रह्माण्ड की चोटी के ध्वन्यात्मक स्वर से उनकी मुरलिका स्वरित है, जिसको सुन सलिल-प्रवाह रुक जाता है, पवन नर्तन करने लगता है, दिशाये प्रफुल्ल हो जाती है और वृक्ष तक का पत्तापत्ता आनन्द से आन्दोलित होने लगता है। वे लोक ललाम है। अतएव कोटिकाम कमनीय है, वे सच्चिदानन्द है, इसलिये संसार सुखके सर्वस्व है, माधुर्य्यमय विभूतिके मूल है एवं लोक-लीलाओंके लोकोत्तर आधार। उन्हीं की तद्गता प्रेमिका और आराधिका श्रीमती राधिका है। वे भी उन्हीं के समान लोकोत्तर सुन्दरी और अलौकिक शक्ति शालिनी है। उनका संयोगमय जीवन बडा ही भावमय, उदात्त और

सहृदय-हृदय-संवेद्य है । उनकी रागात्मिका प्रकृति जितनी ही लोक रंजिनी है उतनी ही चमत्कारमयी । वे इतनी प्रेम परायणा है कि प्रियतम का क्षणिक वियोग भी सह्य नहीं किन्तु इतनी आत्मावलंबिनी है कि वियोग अवस्था उपस्थित होने पर वे विश्वमात्र मे अपने आराध्यदेव की विभूतियो को अवलोकन करती है और इसप्रकार अपने उन्मत्त प्राय हृदय मे वह रस धारा बहाती है जिसको सुधाधारा से भी सरस कह सकते है। उनका वियोग वेदनाये पत्थर को भी द्रवीभूत करती है, किन्तु इस सिद्धान्त का अनुभव कराती है कि 'प्रेम की पीडाये बडी मधुर होती है।'

(Love's pain is very sweet)

महाप्रभु वल्लभाचार्य का सिद्धान्त इन्हीं युगल मूर्तियो पर अवलम्बित है। इसी लिये वह इतना हृदयग्राही, मनोहर और व्यापक है कि वही विविध विदेशी भाव-प्रवाह मे बहती हुई हिन्दूजनता का प्रधान पोत बना । उनके इस लोक मोहक सिद्धान्त के मूर्तिमन्त अवतार चैतन्य देव थे । यह भी हिन्दू जनता का सौभाग्य है कि वे भी उसी समय मे अवतीर्ण हुए और अपने आचरणो द्वारा उन्हो ने ऐसा आदर्श उपस्थित किया, जिससे इस युगलमूर्ति के प्रेम प्रवाह मे बंगाल प्रान्त निमग्न हो गया। उनके विषय मे बङ्गाल प्रान्त के प्रसिद्ध विद्वान् और प्रतिष्ठित लेखक दिनेशचन्द्र सेन बी॰ ए॰ क्या कहते है सुनिये.—

"यदि चैतन्यदेव न जन्म लेते तो श्रीराधा का जलद-जाल को देखकर नेत्रों से अश्रु वहाना, कृष्ण का कोमल अंग समझ कर कुसुमलता का आलिंगन करना, टकटकी बाँधकर मयूर-मयूरी के कण्ठको देखते रह जाना, और नव-परिचय का सुमधुर भावावेश कवि की कल्पना बन जाता। एवं भाव के उछ्वास से उत्पन्न हुई उनकी विभ्रममय आत्म-विस्मृति आजकल के असरस युग मे कवि-कल्पना कही जाकर उपेक्षित होती। किन्तु चैतन्य देव ने श्रीमद्भागवत और वैष्णव गीतों की सत्यता प्रमाणित कर दी। उन्हो ने दिखलाया कि यह विराट् शास्त्र भक्ति की भित्ति पर, नयनों के अश्रु पर, और चित्त की प्रीति पर अचल भाव से खडा है। इस शास्त्र के

शोभा सर्वस्व पूर्वराग, विरह, सम्भोग, मिलन इत्यादिसे सम्बन्ध रखनेवाली जितनी ललित लीलाओ की सरस धाराये बही है, वे कल्पित नहीं है। उनका आस्वादन हुआ है और वे आस्वादन योग्य है। प्रेम की अद्भुत स्फूर्ति से चैतन्यदेव की देह कदम्ब पुष्प के समान रोमाञ्चित बनती. उन्हे समुद्र की लहरे यमुना की लहरे जान पडतीं, चटक पर्वत गोवर्द्धन प्रतीत होता, और उनके लिये पृथ्वी कृष्णमय हो जाती। इसी अपूर्व भक्ति और प्रेमकी सामग्री के आधार से श्रीमती राधिका सुन्दरी सृष्ट हुई है। उनके विरह जन्य कष्ट को एक कणिका धारण करे, अथवा उनके सुख की एक लहरीका अनुभव कर सके, इस प्रकार का नारी-चरित्र पृथ्वी-तल के काव्योद्यान मे नहीं पाया जाता"। * अबतक इस विषय मे जो कुछ लिखा गया उससे यह सिद्ध होता है कि सोलहवी शताब्दी मे महाप्रभु बल्लभाचार्य्यने कृष्णप्रेमकी जो सरस धारा बहाई वह समयोपयोगी थी और उसका उस काल और उसके बाद के हिन्दी साहित्य पर बहुत बडा प्रभाव पड़ा।

(३)

इस शताब्दी मे जिस प्रकार एक नवीन धर्म का प्रवाह प्रवाहित होकर हिन्दू जाति की धार्मिक प्रवृत्ति मे एक अभिनव स्फूर्ति उत्पन्न करने का साधन हुआ। उसी प्रकार हिन्दी भाषा सम्बन्धी साहित्य मे ऐसी दो मुग्धकारी मूत्तिया भी सामने आईं, जो उसको बहुत बडी बिशेषता प्रदान करने में समर्थ हुईं। वे दो मूर्तिया ब्रजभाषा और अवधी की है। इन दोनों उपभाषाओ मे जैसा सुन्दर और उच्चकोटि का साहित्य इस शताब्दी में विरचित हुआ फिर अब तक वैसा साहित्य हिन्दू संसार सर्वसाधारण के सामने उपस्थित नहीं कर सका। इसलिये इस काल के कविगण की चर्चा करने के पहले यह उचित ज्ञात होता है कि इन उपभापाओ की विशेषता पर कुछ प्रकाश डाला जावे जिससे इनमे हुई रचनाओ की महत्ता और स्वाभाविकता स्पष्टतया बतलायी जा सके। इस विचार को सामने रखकर अब मै इनकी विशेष प्रणालियो को यहा उपस्थित करता हू।

अवधी और ब्रजभाषा की कुछ विशेषताये तो ऐसी है जो दोनों ही मे

* देखिये बंग भाषा और साहित्य का पृ० २४३, २४४।

समान है। इस लिये मैं पहले उन्हीं की चर्चा करता हू बाद मे उनकी भिन्नताये भी बतलाऊंगा। इन दोनो भाषाओ मे प्राकृत भाषा के समान संस्कृत तत्सम शब्दों का प्रयोग अधिकतर नहीं देखा जाता। ये दोनों अर्द्धतत्सम विशेष कर तद्भव शब्दो ही पर अवलम्बित है। सुख, मन, धन जैसे थोडे से सस्कृत् के तत्सम शब्द ही इन मे पाये जाते है। स्वर्गे मे ऋ ॠ और ऌ तथा ॡ का प्रयोग होता ही नही। ऋ के स्थानपर रि का ही प्रयोग प्राय मिलता है। इनमे ऋतु ओर ऋजु रितु और रिजु बन जाते है। हाँ! कृपा जैसे शब्दो मे संयुक्त ॠ का व्यवहार अवश्य देखा जाता है। इन दोनो मे एक प्रकार से 'श', 'ण', और 'क्ष' का अभाव है। क्रमश' उनके स्थान पर स, न, और छ लिखा जाता है। केवल 'श्री' मे शकार का उच्चारण सुरक्षित रहता है। ष का प्रयोग होता है, पर पढा वह ख जाता है। युक्त विकर्ष इनका प्रधान गुण है। अर्थात् संयुक्त वर्णों को ये अधिकतर सस्वर कर लेती हैं, जैसे सर्व को सरब, गर्व को गरब, कर्म को करम, धर्म को धरम, स्नेह को सनेह इत्यादि। ऊर्ध्वगामी रेफ या रकार अवश्य सस्वर हो जाता है, परन्तु जो रकार ऊर्ध्वगामी नहीं पाद लग्न होता है वह प्राय' संयुक्त रूप ही मे देखा जाता है, विशेष कर वह जो आदि अक्षर के साथ सम्मिलित होता है, जैसे क्रम इत्यादि। ऐसे ही कोई कोई संयुक्त वर्णसस्वर नहीं भी होता जैसे अस्त का स। यह देखा जाता है कि संयुक्त वर्ण को जहाँ सस्वर करने से शब्दार्थ भ्रामक हो जाता है वहाँ वह सुरक्षित रह जाता है जेसे यदि क्रम को करम और अस्त को असत लिख दिया जाय तो जिस अर्थ मे उनका प्रयोग होता है उस अर्थ की उपलब्धि दुस्तर हो जाती है। दोनो मे जितने हलन्त वर्ण संस्कृत के आते है वे सब सस्वर हो जातेहै, जेसे वरन् का न् इत्यादि। व्यंजनोका प्रत्येक अनुनासिक अथवा पंचम वर्ण दोनोंहीमे अनुस्वार बन जाता है जैसे अङ्क, कलङ्क, पङ्कज, इत्यादि का क्रमश. अंक, कलंक पंकज लिखा जायगा। इसी प्रकार चञ्चल, सञ्चय, किञ्चित इत्यादि क्रमश चंचल संचय और किंचित हो जॉयगे। कण्टक, खण्डन, मण्डन, पण्डितका रूप क्रमश कंटक खंडन, मंडन, पंडित होगा। आनन्द, अंत और सन्तका रूप क्रमश आनंद, अंत और संत हो

जायगा। और सम्पत्ति, दम्पति, कम्पित इत्यादि क्रमश संपत्ति, दंपति, और कंपित बन जायगे। प्राकृत के कुछ प्राचीन शब्द ऐसे हैं जो दोनो मे समान रूप से गृहीत है जैसे नाह, लोयन, सायर इत्यादि। कुछ शब्दो के मध्य का 'व', 'औ', से, और 'य' 'ऐ' से प्राय बदल जाता है, जैसे पवन का पौन, भवन का भौन, रवन का रौन इत्यादि और नयन का नैन, बयन का बेन, सयन का सैन इत्यादि। परन्तु विकल्प से तत्सम रूप भी कहीं कहीं वाक्य के स्वारस्य पर दृष्टि रख कर लिख दिया जाता है। अपभ्रंश के प्रथमा द्वितीया और षष्ठी विभक्तियों का लोप प्राय. देखा जाता है। अवधी और ब्रजभाषा मे इनका तो लोप होता ही है, सप्तमी विभक्ति का लोप भी होता है यथावसर अन्य विभक्तियों का भी। अपभ्रंश मे प्रथमा और द्वितीया के एक वचन मे प्राय उकार का संयोग प्रातिपादिक शब्दो के अंतिम अक्षर मे देखा जाता है। अवधी और ब्रजभाषा मे भी यह प्रणाली गृहीत है। कभी कभी विशेषण और अव्ययो मे भी वह दिखलाई पडता है। गुरु को लघु और लघु को गुरु आवश्यकतानुसार दोनो मे कर दिया जाता है। पूर्व कालिक क्रिया बनाने क समय धातु का चिन्ह 'ना' दूर करके उसके बाद वाले वर्ण मे इकार का प्रयोग दोनो करते है, जेसे 'करि' धरि' 'सुनि' इत्यादि। यह इकार तुकान्त मे दीर्घ भी हो जाता है। ब्रजभाषा मे बहु बचन के लिये न का प्रयोग होता है। जैसे 'घोरा का 'घोरान', और छोरा' का 'छोरान', परन्तु दूसरा रूप 'घोरन' और 'छोरन' भी बनता है। अवधी मे केवल दूसरा ही रूप होता है। गोस्वामी जी लिखते है—'तुरत सकल लोगन पँह जाहू', 'पुरवासिन देखे-दोउ भाई' 'हरिभक्तन देखेउ दोउ भ्राता'। परन्तु जाई सीको न के स्थान पर न्ह का प्रयोग ही बहुधा करते देखा जाता है। प्रकृति के साथ विभक्ति मिला कर लिखने की प्रणाली दोनों भाषाओ मे समान रूप से पाई जाती है। ब्रजभाषा का पुराना रूप 'रामहि', 'बनहि', 'घरहि और नये रूप 'रामै' बनै', 'घरे' इसके प्रमाण है। अवधी मे भी यह बात देखी जाती है, जेसे 'घरे जात बाटी' का घरे', नैहरे जोय' १ का नैहरे'। 'जाना', 'होना' के

१—बन में अहिर नैहरे जोय। जल में केवट केहुक न होय।

भूतकाल के रूप 'गवा' भवा' मे से व' निकालने पर जैसे अवधी मे 'गा' भा' रूप बनते है वैसे ही ब्रजभाषा मे भी 'य' को हटा कर गो' 'भो' बनाया जाता है जो बहुबचन मे गे' भे' हो जाता है। ब्रजभाषा के करण का चिन्ह 'ते' और अवधी के करण का चिन्ह से' भूतकालिक कृदन्त मे ही लगते है, जैसे 'किये ते' और 'किये से' जिनका अर्थ है 'करने से'। ब्रजभाषा और अवधी दोनो मे कृदन्त का रूप समान अर्थात् लध्वन्त होता है, जैसे 'गावत', 'खात', अलसात', 'जम्हात' इत्यादि। अन्तर इतना ही है कि ब्रजभाषा में गावतो', 'खातो', 'अलसातो', 'जम्हातो' इत्यादि भी लिख सकते है। ब्रजभाषा मे धातु के चिन्ह तीन है—एक के अन्त मे 'नो' होता है जैसे 'करनो' 'कहनो' आदि, दूसरे के अन्त मे 'न' पाया जाता है जैसे लेन' 'देन इत्यादि और तीसरे के अन्त मे बो होता है, जैसे 'दैबो' 'लैबो'। देना लेना के दीबो, लीबो भी रूप बनते है। इन तोनो रूपों मे से पहला रूप कारक चिन्ह-ग्राही नहीं होता। शेष दो मे कारक चिन्ह लगते है, जैसे लेन को, देन को, लैबे को, दैबे को इत्यादि। अवधी में साधारण क्रिया के अन्त मे केवल 'ब' रहता है, जेसे आउब' जाब' 'करब' इत्यादि। मध्यम पुरुष का विधि 'ब मे ई मिला कर ब्रज के दक्षिण भाग मे बुन्देलखण्ड तक बोलते है, जैसे 'आयबी' 'करबी' इत्यादि। यह ब्रज भाषा का व्यापक प्रयोग है।

अब मै ब्रजभाषा और अवधी के उन प्रयोगो को बतलाता हूं जिनमे भिन्नता है। ब्रजभाषा मे भूत काल की सकर्मक क्रिया के कर्त्ता के साथ 'ने' का चिन्ह आता है। हाँ, यह अवश्य है कि इस भाषा के कुछ कवियो ने ही इसका प्रयोग कदाचित किया है। सूरदासादि महाकवियों ने प्राय ऐसा प्रयोग नहीं किया। अवधी मे ने' का प्रयोग बिल्कुल नही होता। बचन के सम्बन्ध मे यह देखा जाता है कि ब्रजभाषा मे एक बचन का बहु बचन सभी अवस्था मे होता है, जैसे 'लडका' का 'लडके' अलि का अलिया इत्यादि। अवधी मे एक बचन का बहु बचन कारक-चिन्ह लगने पर ही होता है। ब्रजभाषा मे भविष्य काल की क्रिया केवल तिङन्त ही नहीं होती, उसमे खड़ी बोली के समान ग' का व्यवहार भी होता है।

जैसे, 'गावैगो' इत्यादि। परन्तु अवधीमे करिहइ' 'कहिहइ' आदि तिङन्त रूपही बनता है। अवधी इकार-बहुला और ब्रजभाषा यकार-बहुला है। पूर्व-कालिक क्रियाका अवधी रूप 'उठाइ', 'लगाइ' 'बनाइ', 'होइ' 'रोइ' इत्यादि होगा। किन्तु ब्रजभाषाका रूप 'उठाय' 'लगाय', 'बनाय', होय' रोय आदि बनेगा। इसी प्रकार अवधी का 'करिहइ', चलिहइ' होइहइ' ब्रजभाषा मे 'करिहय, 'चलिहय', होइहय' हो जायगा। परन्तु अन्तर यह होता है कि लिखने अथवा व्यवहार के समय ब्रजभाषा मे हय' 'है' हो जाता है। इस लिये उसको 'करिहै' 'चलिहै' 'होयहै' इत्यादि लिखते है। इसी प्रकार अवधी का 'इहा' ब्रजभाषा में 'यहा' बन जाता है। अवधी का 'उ' ब्रजभाषा मे व' हो जाता है जैसे 'उहा' का वहा और 'हुआ' का 'ह्वा' ब्रजभाषा के शब्द प्राय खडी बोली के समान दीर्घान्त होते है। खडी बोली की ऐसी पुलिङ्ग संज्ञाये, जो कि आकारान्त है, बृजभाषा मे ओकारान्त बन जाती है। विशेषण एवं सम्बन्ध कारक के सर्वनाम भी इसी रूप मे दृष्टिगत होते है। जैसे 'रगरो' 'झगरो' 'छोरो थोरो' 'साँवरो' 'गोरो' कैसो' 'जैसो' 'तैसो' बडो 'छोटो' 'हमारो' 'तुम्हारो' 'आपनो' इत्यादि। इसी प्रकार आकारान्त साधारण भूत कालिक कृदन्त क्रियाये भी ओकारान्त बनती है, जैसे आयो', दीबो', 'लीबो' इत्यादि। पर अवधी के शब्द अधिकतर लध्वन्त या अकारान्त होते है जिससे लिग भेद का प्रपंच कम होता है जैसे, 'अस', जस', 'तस', 'छोट', 'बड', 'थोड', 'गहिर', साँवर', 'गोर', 'ऊँच', 'नीच' हमार', 'तोहार' इत्यादि। 'मोट, 'दूबर', 'पातर' इत्यादि विशेषण और आपन, मोर, तोर, सर्वनाम एवं केर', 'सन', तथा 'कहँ', 'महँ' कारक के चिन्ह भी इसके प्रमाण है। अवधी मे साधारण क्रिया का रूप भी प्राय लध्वन्त ही होता है जैसे करब', 'धरब' 'हँसब, 'बोलब', इत्यादि। अवधीके हिया' सियार' कियारी', 'बियाह', 'बियाज', 'नियाव' 'पियास' आदि शब्द ब्रजभाषा मे 'ह्या', 'स्यार', 'क्यारी', 'ब्याह', 'ब्याज', 'न्याव, 'प्यास', आदि बन जाते है। अर्थात् ऐसे शब्दों के आदि वर्ण का इकार स्वर लोप हो जाता है और वह हलन्त होकर परवर्ण मे मिल जाता है। ऐसा अधिकाश उसी शब्द में होता है जिसके मध्य में 'या' होता है।

'उ' के पश्चात् 'आ' का उच्चारण भी ब्रजभाषा के अनुकूल नहीं है। अवधी भाषा का 'दुआर' और 'कुँआर' ब्रजभाषा मे द्वार और 'क्वार' अथवा 'क्वारो' बन जाता है। ऐ और औ का उच्चारण अवधी मे अइ और 'अउ' के समान होता है, जैसे 'अउर अइसा' कउआ 'हउआ'। परन्तु ब्रजभाषा मे उसका उच्चारण प्राय ऐ और औ' के समान होता है, जैसे 'ऐसा', कन्हैया, और कौआ इत्यादि। ब्रजभाषा और अवधी दोनों में वर्तमान काल और भविष्य काल के तिङन्त रूप भी मिलते है। और उनमे लिंग भेद नहीं देखा जाता। किन्तु ब्रजभाषा के वर्तमानकालिक क्रिया के रूप मे यह विशेष बात पाई जाती है कि उनमे इस प्रकार की क्रियाये 'होना' धातु के रूप के साथ बोली जाती है। 'पढना' क्रिया का रूप उत्तम पुरुषमे 'पढौ हौं' या पढूँ हूँ', मध्यम पुरुष मे पढौ हो' और अन्य पुरुष मे 'पढै है' होगा। अवधी मे भी इसी प्रकार का प्रयोग होता है। गोस्वामी जी लिखते है —

'गहै घ्राण बिनु बास अशेषा'

'पंगु चढ़ै गिरवर गहन'

परन्तु भविष्य काल के तिङन्त रूप अवधी और ब्रजभाषा मे एक ही प्रकार के होंगे। अवधी में होगा 'करिहइ' 'होइहइ'। और ब्रजभाषा में होगा करिहय=करिहै, होइहय=होयहै या ह्वै है। अवधी के उत्तम पुरुष में होगा 'खइहउँ' किन्तु ब्रजभाषा मे होगा खयहौं=खैहो'। अन्तर केवल यही होगा कि जहाँ अवधी मे इ का प्रयोग होगा वहाँ ब्रजभाषा मे य का। पहले सर्वनाम मे जब कारक-चिन्ह लगाया जाता था तब अवधो और ब्रजभाषा दोनो मे 'हि का प्रयोग कारक के पहले होता था। परन्तु अब दोनों मे हि को स्थान नहीं मिलता है। जैसे अवधो 'केहिकर' और जेहिकर' 'केकर' और 'जेकर' बन गया है उसी प्रकार ब्रजभाषाका 'काहि-को 'जाहि को' अब 'काको' 'जाको बोला जाता है। ब्रजभाषा में आवहि' 'जाहिं' का प्रयोग भी मिलता है और उसके दूसरे रूप 'आवैं', 'जाँय' का भी। कुछ लोगों का बिचार है कि पहला रूप प्राचोन है और दूसरा आधुनिक। इसो प्रकार 'इमि' जिमि तिमि के स्थान पर 'यो ज्यो',

त्यों' का व्यवहार भी देखा जाता है। इनमें भी पहले रूप को प्राचीन और दूसरे को आधुनिक समझते हैं। परन्तु अब तक दोनों रूप ही गृहीत है, कुछ लोग आधुनिक काल में दूसरे प्रयोगों को ही अच्छा समझते है। कुछ भाषा मर्मज्ञ कहते है कि ब्रज की बोलचाल की भाषा मे केवल सर्वनाम के कर्म कारक मे ह कुछ रह गया है जैसे 'जाहि 'ताहि' या जिन्है, तिन्है, आदि मे। परन्तु दिन दिन उसका लोप हो रहा है और अब 'जाहि', 'वाहि' के स्थान पर 'जाय वाय' बोलना हो पसद किया जाता है। किन्तु यह मैं कहूगा कि 'जाय वाय' आदि को बोलचाल मे भले ही स्थान मिल गया हो, पर कविता में अब तक जाहि 'वाहि' का अधिकतर प्रयोग है।

अवधी और ब्रजभाषा को समानता और विशेषताओ के विषय मे मैने अब तक जितना लिखा है वह पर्याप्त नहीं कहा जा सकता, परन्तु अधिकाश ज्ञातव्य बाते मैंने लिख दो है। अवधो और ब्रजभाषा के कवियों एवं महाकवियों की भाषा का परिचय प्राप्त करने और उनके भाषाधिकार का ज्ञान लाभ करने मे जो विवेचना की गई है मैं समझता हू उसमे वह कम सहायक न होगी। इस लिये अब मै प्रकृत विषय की ओर प्रवृत्त होता हू।

(४)

इस शताब्दी के आरम्भ मे सब से पहले जिस सहृदय कवि पर दृष्टि पड़ती है वह पद्मावत के रचयिता मलिक मुहम्मद जायसी है। यह सूफ़ी कवि थे और सूफी सम्प्रदाय के भावो को उत्तमता के साथ जनता के सामने लाने के लिये हो उन्होंने अपने इस प्रसिद्ध ग्रन्थ को रचना की है। जिन्होंने इस ग्रन्थ को आद्योपान्त पढा है वे समझ सकते है कि स्थान स्थान पर उन्होने किस प्रकार और किस सुन्दरता से सूफी भावों का प्रदर्शन इसमे किया है।

इनके ग्रन्थ के देखने से पाया जाता है कि इनके पहले 'सपनावती', 'मुगधावती', 'मृगावती', 'मधुमालती' और 'प्रेमावती' नामक ग्रन्थों की रचना हो चुकी थी। इनमे से मृगावती और मधुमालती नामक ग्रन्थ प्राप्त हो चुके है। शेष ग्रन्थों का पता अब तक नहीं चला। 'मृगावती की रचना कुतबन ने की है और मधुमालती की मंझन नामक

कवि ने। इन दोनो का समय पन्द्रहवीं शताब्दी का अन्तिम काल ज्ञात होता है। ये दोनो भी सूफी कवि थे और इन्होने भी अपने ग्रन्थों मे स्थान स्थान पर अपने सम्प्रदाय के सिद्धान्तो का निरूपण बडी सरलता के साथ किया है। इन सूफी कवियों मे कुछ ऐसी विशेषताये है जो लगभग सब मे पाई जाती है। पहली बात यह कि सब के ग्रन्थो की भाषा प्राय अवधी है। सभी ने हिन्दी छन्दोकोही लिया है, और दोहा—चौपाई मे ही अपनी रचनाये की है। प्रेम—कहानी ही का कथन उनका उद्देश्य होता है, क्योंकि उसी के आधार से सयोग, वियोग और प्रेम के रहस्यों का निरूपण वे यथाशक्ति करते है इस प्रेम का नायक और नायिका अधिकाश कोई उच्च कुल का हिन्दू प्राय कोई राजा या रानी होती है। इन सुकवियों की विशेषता यह है कि वे सद्भाव के साथ अपने ग्रन्थ की रचना करते देखे जाते है, कटुता विल्कुल नहीं आने देते। वर्णन में इतनी आत्मीयता होती है कि उनके पढने से यह नहीं ज्ञात होता कि किसी दुर्भावना के वश होकर इनकी रचना की गयी है, या किसी विधर्मी या विजातीय की लेखनी से वह प्रसूत है। प्रेम-मार्गी होने के कारण वे प्रेम-मार्ग का निर्वाह ही अपनी रचनाओमे करते है और सूफी मत की उदारता पर आरूढ होकर उसमे ऐसी आकर्षिणी शक्ति उत्पन्न करते है जो अन्य लोगों के मानस पर बहुत कुछ प्रभाव डालने मे समर्थ होती है। मलिक मुहम्मद जायसी इन सब कवियो मे श्रेष्ठ है और उनकी कृतिया इस प्रकार के सब कवियों की रचनाओ मे विशेषता और उच्चता रखती है।

जायसी बडे सहृदय, कवित्व-शक्ति-सम्पन्न कवि थे। प्रतिभा भी उनकी विलक्षण थी, साथ ही धार्म्मिक कट्टरता उनमें नहीं पायी जाती। वे अपने पीर, पैगम्बर और धर्मगुरु की प्रशंशा करते है और यह स्वाभाविकता है, विशेषता उनकी यह है कि वे अन्य धर्मवालोके प्रति उदार है और उनको भी आदरकी दृष्टि से देखते है। उनका हिन्दू-धर्म का ज्ञान भी विस्तृत है। उसके भावो को वे बडी ही मार्मिकता से ग्रहण करते है। पात्रों के चरित्र-चित्रण मे उनकी इतनी तन्मयता मिलती है जो यह प्रतीति उत्पन्न करती है कि वे उस समय सर्वथा उन्हीं के भावों मे लीन हो गये है। इन कवियो की

भाषा अधिकतर साफ सुथरी है और सरसता उसमे पर्य्याप्त मात्रा मे पाई जाती है ।

पहले कुतबन की रचना ही देखिये । वे लिखते है —

साहु हुसैन अहै बड़ राजा, छत्रसिहासन उनकोछाजा ।
पंडित औ बुधिवंतसयाना, पढ़ै पुरान अरथ सब जाना ।
धरम जुधिष्ठिरउनकोछाजा, हमसिरछाँह कियो जगराजा ।
दानदेह औ गनत न आवै, बलि औ करन न सरवरि पावै ।

नायक के स्वर्गवास होजाने पर नायिकाओं की दशा का वर्णन वे यो करते है —

रुक्मिनि पुनि वैसहि मरिगयी, कुलवंती सतसों सति भई ।
बाहर वह भीतर वह होई, घर बाहर को रहै न जोई ।
विधिकर चरित नें जानइ आनू, जो सिरजासो जाहि नियानू

उर्दू की शाइरी मे आप देखेगे कि उसके कवि फारस की सभ्यता के ही भक्त है । वे जब प्राकृतिक दृश्यो का वर्णन करते है तो फारस के ही दृश्यों को सामने लाते है । साकी व पैमाना बुलबुल व कुमरी, सर्वे व शमसाद, शमा व फानूस, जवानाने चमन व उरूसाने गुलशन नरगिस व सुम्बुल, फ़रहाद व मजनूं, मानी व बहजाद, जवाने सुराही व खन्दए कुलकुल वगैर. उनके सरमायये नाज है । आम तौर से वे इन्हीं पर फिदा है, शाज व नादिर की बात दूसरी है । हजरत आजाद इन्हीं की तरफ इशारा कर के फरमाते है —

"इनमे बहुत सी बाते ऐसी है जो खास फारस और तुर्किस्तान के मुल्कों से तबई और जाती तअल्लुक रखती है । इसके अलावा बाज ख़याlात में अकसर उन दास्तानो या किस्सों के इशारे भी आगये है जो ख़ास मुल्क फ़ारस से तअल्लुक रखते है । इन ख्यालो ने और वहा की तशबीहों

ने इस कदर जोर पकडा कि उनके मशाबेह जो यहा की बाते थीं उन्हे बिल्कुल मिटा दिया।" १

इन सूफी कवियो की रचनाओ मे ये दोष नहीं पाये जाते है। वे अपने को भारतवर्ष का समझते है और भारतवर्ष के उदाहरण आवश्यकता होने पर सामने लाते है। वे जब प्राकृतिक दृश्यो का वर्णन करते है उस समय भी भारत की सामग्रियो से ही काम लेते है। कुतबन ने हुसेन के वर्णन मे उसकी धर्मज्ञता की समता युधिष्ठिर से ही की है। दान देने का महत्व बलि और कर्ण को ही सामने रख कर प्रगट किया है यद्यपि उसका प्रशंसापात्र मुसलमान था। ऊपर के पद्यों में दो स्त्रियो का सती होना और उनकी दशा का वर्णन भी उसने हिन्दू सभ्यता के अनुसार ही किया है। इससे सूचित होता है कि इन सूफी कवियों के हृदय मे वह विजातीय भाव उस समय घर नहीं कर सका था जो बाद के मुसलमानो मे पाया जाता है। शाह हुसेन शेरशाह का पिता था और क़ुतबन उसीके समय में था। इस समय भी मुसलमानो का प्राबल्य बहुत कुछ था। फिर भी कुतबन मे हिन्दू भावों के साथ जो सहानुभूति देखी जाती है वह प्रेम-मार्गी सूफी की उदारता ही का सूचक है। मंझन और मलिक मुहम्मद जायसी मे यह प्रवृत्ति और स्पष्ट रूप में दृष्टिगत होती है। मैं पहले कह आया हू कि सूफी धर्म के विद्वान् संसार की विभूतियो में परमात्मा की सत्ता को छिपी देखते है और उन्हीं के आधार से वे उसकी सत्ता का अनुभव करना चाहते है। मंझन कवि एक स्थानपर इस भाव को इस प्रकार प्रकट करता है:—

देखत ही पहचानेउँ तोही। एही रूप जेहि छँदर्यो मोही।
एही रूप बुत अहै छिपाना। एही रूप रब सृष्टि समाना।
एही रूप सकती औ सीऊ। एही रूप त्रिभुवन कर जीऊ।
एही रूप प्रगटे बहु भेसा। एही रूप जग रंक नरेसा।

१—देखिये-चतुर्दश हिन्दी साहित्य सम्मेलनके सभापतित्वपदसे लेखकका भाषणपृ०२४

संयोग (वस्ल) के कामुक सूफ़ी प्रेमिको ने वियोगावस्था का वर्णन भी बडा ही मार्मिक किया है। वियोगावस्था मे संयोग कामना कितनी प्रबल हो उठती है इसका दृश्य प्रतिदिन दृष्टिगत होता रहता है। मानव-प्रेम-कहानियो मे भी इसके बडे सुन्दर वर्णन है। सूफियो का वियोग यत ईश्वर सम्बन्धी होता है, इसलिये वह अधिक उदात्त और हृदयग्राही हो जाता है और उसकी व्यापकता भी बढ जाती है। मंझन इस वियोग का वर्णन निम्न लिखित पद्यों मे किस प्रकार करता है, देखिये.—

बिरह अवधि अवगाह अपारा।
कोटि माहिं एक परै त पारा।
बिरह कि जगत अबिरथा जाही?
बिरह रूप यह सृष्टि सबाही।
नयन बिरह अंजन जिन सारा।
बिरह रूप दर्पन संसारा।
कोटि माहिं बिरला जग कोई।
जाहि सरीर बिरह दुख होई।
रतन कि सागर सागरहिँ?
गज मोती गज कोय।
चँदन कि बन बन उपजइ?
बिरह कि तन तन होय?

अब मलिक मुहम्मद जायसी की कुछ रचनाओं को भी देखिये। प्रेम मार्गी सूफ़ी कवियों मे जिस प्रकार वे प्रधान है वैसी ही उनकी रचना मे भी प्रधानता है। उनकी प्रेम-कहानी लिखने की प्रणाली जैसी सुन्दर है वैसा ही स्थान स्थान पर उसमें सूफ़ी भावो का चित्रण भी मनोरम है। वे कवि ही नहीं थे, वरन् उन पीरों में उनकी गणना की जाती है जो उस समय पहुचे हुये ईश्वर के भक्त समझे जाते थे। इसलिये उनकी रचनाओ

मे ईश्वर-परायणता की झलक भी स्थान स्थान पर बडी ही मधुर देख पडती है। पदमावत के अतिरिक्त उनका 'अखरावट' नामक भी एक ग्रन्थ है। इसमे उन्हो ने प्रेम-मार्ग के सिद्धान्तो और ईश्वर-प्राप्ति के साधनो का वर्णन बोध--सुलभ रीति से किया है। किन्तु उनका विशेष आद्रित ग्रन्थ पदमावत है। अतएव उसमे से विविध भावो के कुछ पद्य मै नीचे लिखता हू। पहले संसार की असारता का एक पद्य देखिये —

१—तौलहि साँस पेट महँ अही।
जौ लहि दसा जाउ कै रही।
काल आइ दिखरायो साँटो।
उठि जिउ चला छाँड़ि कै माटी।
काकर लोग कुटुम घर बारू।
काकर अरथ दरब संसारू।
ओही घड़ी सब भयेउ परावा।
आपन सोइ जो परसा खावा।
अहे जे हितू साथ के नेगी।
सबै लाग काढ़ै तेहि बेगी।
हाथ झारि जस चलै जुआरी।
तजा राज होइ चला भिखारी।
जब लगि जीउ रतन सब कहा।
भा बिन जीउ न कौड़ी लहा।

पदमावती एवं नागमती के सती होने के समय का यह पद्य कितना मार्मिक है—

२—सर रचि दान पुन्न बहु कीन्हा।
सात बार फिर भाँवर लीन्हा।

एक जो भाँवर भईं बियाही।
अब दुसरे होइ गोहन जाहीं।
जियत कंत तुम्ह हम्ह गल लाईं।
मुये कंठ नहि छोड़हि साईं।
लेइ सर ऊपर खाट बिछाई।
पौढीं दुवौ कंत गल लाई।
और जो गाँठ कंत तुम जोरी।
आदि अंत लहि जाइ न छोरी।
छार उठाइ लीन्ह एक मूठी।
दीन्ह उड़ाइ पिरथवी झूठी।
यह जग काह जो अथइ न जाथी।
हम तुम नाह दोऊ जग साथी।
लागीं कंठ अंग दै होरी।
छार भईं जरि अंग न मोरी।

३—राती पिउ के नेह की, सरग भयउ रतनार।
जोरे उवा सो अथवा, रहा न कोइ संसार।

४—तुर्की, अरबो, हिन्दवी, भाखा जेती आहि।
जामें मारग प्रेम का, सबै सराहैं ताहि।

उनके कुछ ऐसे पद्यो को भी देखिये जिनमे उनकी सूफियाना रंगत बडी सरसता के साथ प्रतिबिम्बित हो रही है:—

५—आजु सूर दिन अथयेउ।
आजु रयनि ससि बूड़।
आजु नाथ जिउ दीजिये।
आजु अगिन हम जूड़।

६—उन्ह बानन्ह अस को जो न मारा।
बेधि रहा सगरौ संसारा।
गगन नखत जो जाहि न गने।
वै सब बान ओहि के हने।
धरती बान बेधि सब राखी।
साखी ठाढ़ देहि सब साखी।
रोम रोम मानुस तनु ठाढ़े।
सूतहि सूत बेध अस गाढ़े।
बरुनि बान अस ओपँह,
बेधे रन बन ढाँख।
सौजहि तन सब रोआँ,
पंखिहिं तन सब पाँख।
पुहुप सुगंध करइ यहि आसा।
मकु हिरकाइ लेइ हम्ह पासा।
७—पवन जाइ तहँ पहुंचइ चहा।
मारा तैस लोट भुँइ रहा।
अगिनि उठी जरि उठी नियाना।
धुवाँ उठा उठि बीच बिलाना।
पानि उठा उठि जाइ न छूआ।
बहुरा रोइ आइ भुईं चूआ।
८—करि सिगार तापहं का जाऊं।
ओही देखहुँ ठावहिं ठाऊँ।
जौ पिउ महँ तो उहै पियारा।
तन मन सों नहि होइ निनारा।

नैन माँह है उहै समाना।
देखहुँ तहाँ नाहि कोउ आना।
९—देखि एक कौतुक हौं रहा।
रहा अँतर पट पै नहिं रहा।
सरवर देख एक मैं सोई।
रहा पानि औ पानि न होई।
सरग आइ धरती महँ छावा।
रहा धरति पै धरति न आवा।

पंडित रामचन्द्र शुक्ल ने इन प्रेम मार्गी सूफी कवियों और मलिक मुहम्मद जायसी के विषय में जो कुछ लिखा है वह अवलोकनीय है। इस लिये मैं यहाँ उसको भी उद्धृत कर देता हूं —

'कबीर ने अपनी झाड-फटकार के द्वारा हिन्दुओ और मुसल्मानों का कट्टरपन दूर करने का जो प्रयत्न किया वह अधिकतर चिढ़ानेवाला सिद्ध हुआ, हृदय को स्पर्श करनेवाला नहीं। मनुष्य मनुष्य के बीच जो रागात्मक सम्बन्ध है वह उसके द्वारा व्यक्त न हुआ। अपने नित्य के जीवन में जिस हृदय-साम्य का अनुभव मनुष्य कभी कभी किया करता है उसकी अभिव्यंजना उससे न हुई। कुतबन, जायसी आदि इन प्रेम-कहानी के कवियों ने प्रेम का शुद्ध मार्ग दिखाते हुये उन सामान्य जीवन-दशाओं को सामने रक्खा जिनका मनुष्यमात्र के हृदय पर एक सा प्रभाव दिखायी पडता है। हिन्दू हृदय और मुसल्मान हृदय आमने सामने करके अजनबी-पन मिटाने वालो मे इन्हीं का नाम लेना पड़ेगा। इन्होंने मुसल्मान हो कर हिन्दुओं की कहानिया हिन्दुओ ही की बोली मे पूरी सहृदयता से कह कर उनके जीवन की मर्म-स्पर्शिनी अवस्थाओ के साथ अपने उदार हृदय का पूर्ण सामञ्जस्य दिखा दिया। कबीर ने केवल भिन्न प्रतीत होती हुई परोक्ष सत्ता की एकता का आभास दिया था। प्रत्यक्ष जीवन की

एकता का दृश्य सामने रखने की आवश्यकता बनी थी। यह जायसी द्वारा पूरी हुई।" १

अब मैं इन प्रेममार्गी सूफी कवियों की भाषा पर कुछ विचार करना चाहता हू। प्रेममार्गी कवि लगभग सभी मुसलमान और पूर्व के रहने वाले थे। इस लिये इनके ग्रन्थों की भाषा पूर्वी अथवा अवधी है। किन्तु यह देखा जाता है कि वे कभी कभी व्रजभाषा शब्दों का प्रयोग भी कर जाते हैं। कारण यह है कि अवधी जहाँ व्रजभाषा से मिलती है वहा वह उससे बहुत कुछ प्रभावित है। दूसरी बात यह कि अवधी अर्द्ध मागधी ही का रूपान्तर है। और अर्द्ध मागधी पर शौरसेनी का बहुत कुछ-प्रभाव है। शौरसेनी का ही रूपान्तर व्रजभाषा है। इस लिये इटावा इत्यादि के पास जहा अवधी व्रजभाषा से मिलती है वहा की अवधी यदि व्रजभाषा से प्रभावित हो तो यह स्वाभाविक है और उन स्थानों के निवासी यदि इस प्रकार की भाषा मे रचना करे तो यह बात लक्ष्य योग्य नही। परन्तु देखा तो यह जाता है कि पूर्व प्रान्त के रहने वाले कवि भी अपनी अवधी की रचनाओं मे व्रजभाषा के शब्दों का प्रयोग करते है। मेरी समझ मे इसका कारण यही है कि अवधी और व्रजभाषा का घनिष्ट सम्बन्ध है। अधिकाश कवियों को यह ज्ञात भी नही होता कि वे किस भाषा के शब्दों का प्रयोग कर रहे है और अज्ञातावस्था मे एक भाषा के शब्दों का प्रयोग दूसरी भाषा में कर देते है। वे अधिक पठित नहीं थे, इसलिये अपने आसपास की बोलचाल की भाषा में ही रचना करते थे परन्तु अपने निकटवर्ती प्रान्त के लोगों का कुछ संसर्ग उनका रहता ही था इसलिये उनकी बोलचाल की भाषा का प्रभाव कुछ न कुछ पड ही जाता था। संकीर्ण स्थलों पर कवि को समुचित शब्द विन्यास के लिये जिस उधेड बुन मे पडना होता है वह अविदित नहीं। ऐसी अवस्था में अन्यभाषाओं के कुछ शब्द उपयुक्त स्थलों पर कवियों की भाषा में आये बिना नहीं रहते। जिस समय प्रेम-मार्गी कवियो ने अपनी रचना प्रारम्भ की थी उस समय कुछ धार्मिक रुचि, कुछ संस्कृत के विद्वानों के संसर्ग आदि से, संस्कृत तत्सम शब्द भी हिन्दी

१ देखिये हिन्दी साहित्य का इतिहास १०३, १०४ पृष्ठ

भाषा मे गृहीत होने लगे थे। इस कारण इन कवियो की रचनाओ मे सँस्कृत के तत्सम शब्द भी पाये जाते है। इन प्रेम मार्गी कवियो मे प्रधान मलिक मुहम्मद जायसी है। अतएव मैं उन्हीं की रचना को ले कर यह देखना चाहता हू कि वे किस प्रकार की है। आवश्यकता होने पर अन्य कवियो की रचनाओ पर भी दृष्टि डालने का उद्योग करूंगा। पदमावत के जिन पद्यो को मैने ऊपर उद्धृत किया है उन्हे देखिये। मैं पहले लिख आया हू कि अवधी और ब्रजभाषा दोनो अधिकतर तद्भव शब्दो मे लिखी जाती है। उनके पद्यो मे यह बात स्पष्ट दिखाई देती है। तत्सम शब्द उनमे काल' 'दान', बहु', आदि, 'संसार, 'प्रेम', नाथ', 'सूर' इत्यादि है जो इस बात के प्रमाण है कि उस समय सस्कृत के तत्सम शब्द हिन्दी भाषा मे गृहीत होने लगे थे। मै यह भी बतला आया हूं कि इन दोनो भाषाओ मे पंचम वर्ण अनुस्वार के रूप मे लिखे जाते है, कंत, कंठ, अंत और अंग इस बात के प्रमाण है। इन दोनो भाषाओ का नियम भी यह है कि इनमे संयुक्त वर्ण सस्वर हो जाते है, 'अरथ', 'अगिन', 'सरग', 'मारग', 'रतन' आदि मे ऐसा ही हुआ है। यह भी नियम मैं ऊपर बतला आया हू कि इन दोनो भाषाओ मे शकार का सकार और णकार का नकार और क्षकार का छकार हो जाता है। 'दसा' और ससि' का 'स', 'पुन्न', का 'न' और 'छार' का छ' ऐसे ही परिवर्त्तन है। इन-दोनो भाषाओ का यह नियम भी है कि प्रथमा द्वितीया, षष्ठी, सप्तमी के कारक चिन्ह प्राय लोप होते रहते है। इन पद्यों मे भी यह बात पाई जाती है। 'आज सूरदिन अथयो', 'आज रयनि ससि बूड', और रहा न कोई संसार' मे सप्तमी विभक्ति लुप्त है। 'दिन मे' या दिनमँह, 'रयनि मे' या 'रयनि मॅह' और 'संसार मे' या संसार मॅह' होना चाहिये था। 'हम गल लायो' मे द्वितीया का 'को', 'लागो कंठ' में तृतीया का 'से या सो नदारद है। 'गगन नखत जो जाहि न गने' और 'रोम रोम मानुस तनु' ठाढ़े, में षष्ठी विभक्ति का लोप है, 'गगन नखत और मानुस तनु के बीच मे सम्बन्ध-चिन्ह की आवश्यकता है। काल आइ दिखराई साटी', 'जियत कंत तुमहम गल लायीं' इन दोनों पद्यो मे प्रथमा विभक्ति नहीं आई हैं।

'काल और तुम' के साथ ने' का प्रयोग होना चाहिये था। सच्ची बात यह है कि और विभक्तिया तो आती भी है परन्तु प्रथमा की 'ने' विभक्ति अवधी मे आती ही नहीं। ह्रस्व का दीर्घ और दीर्घ का ह्रस्व होना दोनो भाषाओं का गुण है। उपरि लिखित पद्यो मे बारू', 'संसारू, 'आना', ससारा', ठाऊ' ह्रस्व से दीर्घ हो गये है और अॅतरपट, 'धरति', 'बरुनि' 'पानि', 'सिगार' आदि दीर्घ से ह्रस्व बन गये है। इन पद्यो मे जो प्राकृत भाषा के शब्द आये है वे भी ध्यान देने योग्य है जैसे 'नाह', तुम्ह', 'हम्ह' 'पुहुप', मकु' इत्यादि। इनमे अवधी की जो विशेषताये है उनको भी देखिये, 'पियाग', बियाही' ठेठ अवधी भाषा के प्रयोग है। ब्रजभाषा मे इनका रूप 'प्यारा' और 'ब्याही' होगा। काकर, 'ओहो' जिउ', 'आपन' 'जस' 'होइ', 'हुत', 'गा', जाइ', लेइ', 'देइ 'पिउ', उवा', 'अथवा', 'उठाइ', 'उडाइ', 'उहै', मुइ, 'बहुरा', 'रोइ', 'आइ', 'उन्ह', 'बानन्ह' 'अस', 'रोअं रोअं' 'ओपहं', 'हिरकाइ' इत्यादि भा ऐसे शब्द है जिनमे अवधी अपने मुख्यरूप मे पाई जाती है। जायसीने ब्रजभाषा और खडी बोली के शब्दो का भी प्रयोग किया है, कहीं वे कुछ परिवर्तित है और कहीं अपने असली रूप मे मिलते है—

बेधि रहा सगरौ संसारा।
भादौं विरह भयउ अति भारी
औ किँगरी कर गहेउ वियोगी।
तेइ मोहि पिय मो सौं हरा।
लागेउ माघ परै अब पाला।
ऐस जानि मन गरब न होई।

'सगरौ ब्रजभाषा का स्पष्ट प्रयोग है। 'सकल' से 'सगर' पद बनता है। प्राकृत नियम के अनुसार क' का 'ग' हो जाता है और ब्रजभाषा और अवधी के नियमानुसार 'ल' का 'र'। इसलिये अवधी में उसका पुल्लिङ्ग रूप 'सगर' होगा और स्त्रीलिग रूप 'सगरी'। एक स्थान

पर जायसी लिखते भी है — ' भई अहा सगरी दुनियाई। ' इसलिये 'सगरौ' रूप जब होगा तब ब्रजभाषा ही मे होगा । उसके नीचे की चौपाइयो मे 'भयउ' और गहेउ' पद आया है ये दोनों शब्द भी ब्रजभाषा के 'भयो' और 'गह्यो' शब्दो के रूपान्तर है । 'तेहि मोहि पिय मो सौं हरा इस पद्य में दो शब्द ब्रजभाषा के है एक पिय' और दूसरा 'सौं'। 'पिय' शब्द ब्रजभाषा का और पिउ' शब्द अवधी का है । पदमावत मे वैसेही दोनो का प्रयोग देखा जाता हे जैसे 'प्रेम' शब्दको जायसी अपनी रचना मे 'प्रेम' भी लिखते है और पेम' भी, देखिये—'किरिन करा भा प्रेम अँकरू और 'पेम सुनत मन भूल न राजा'। 'सो' शब्द भी ब्रजभाषा से ही अवधीमे आया है। विद्वानों ने इस सौं को पश्चिमी अवधी के कर्ण' का चिन्ह माना है। पश्चिमी अवधी ब्रजभाषासे प्रभावित है इसलिये उसमे यह सौं शब्द पाया जाता है। ठेठ अवधी के 'कर्ण' का चिन्ह है से' और 'सन'। 'लागेउ माघ परे अब पाला' मे लागेउ' का अवधी रूप होगा 'लागा । यह 'लागेउ', ब्रजभाषा के लाग्यो का ही रूपान्तर है । 'ऐस जानि मन गरब न होई ' मे ब्रजभाषा का 'ऐसो', 'जैसो', तेसो' अवधी मे 'अस', 'जस', 'तस' लिखा जाता है। वास्तव मे 'ऐस' अवधी शब्द नहीं है। यह ब्रजभाषासे ही उसमे आया है और ऐसो' की एक मात्रा कम करके बना लिया गया है। इस शब्द का प्रयोग 'ऐस', 'ऐसे' आदि के रूप मे पदमावत मे बहुत अधिक पाया जाता है । और ऐसे ही कैसो' जैसो, तेसो के स्थान पर कैस, जैस, तैस इत्यादि भी। कुछ विद्वानों की सम्मति है कि ऐस, केस, जैस, तेस आदि भी अवधी ही के रूप है, किन्तु मैं इस विचार से सहमत नही हू। सच बात यह है कि ब्रजभाषा के बहुत से शब्द अवधी मे पाये जाते है, जिनका प्रयोग इन प्रेम-मार्गी कवियों ने स्वतंत्रता से किया है।

पदमावत मे ब्रजभाषा शब्दों के अतिरिक्त अन्य प्रान्तिक भाषाओं के कुछ शब्द भी मिलते है। 'स्यों बुंदेलखण्डी है और हिन्दीके 'सह' और से के स्थान पर लिखा जाता है। कविवर केशव दास ने इसका प्रयोग किया है। देखिये—अलिस्यों सरसोरुह राजत है।

जायसी को भी इस शब्द का प्रयोग करते देखा जाता है। जैसे "रुण्ड मुण्ड अब टूटहि स्यो बख्तर औ कूँड", 'बिरिछ उपारि पेडि स्यो लेई'। बंगला मे 'आछे' है' के अर्थ मे आता है। इस शब्द का प्रयोग जायसा को भी करते देखा जाता है। जैसे, 'कवँल न आछै आपनि बारी', 'का निचित रे मानुष आपनि चीते आछु'। वे अरबी फारसी के शब्दो का प्रयोग भी इच्छानुसार करते देखे जाते है। कुछ ऐसे पद्य नीचे लिखे जाते है —

अबूबकर सिद्दीक़ सयाने।
पहले सिदिक़ दीन ओइ आने।
पुनि सो उमर ख़िताव सुहाये।
भा जग अदल दीन जो आये।
सेरसाह देहली सुलतानू।
चारो खण्ड तपै जस भानू।
तहं लगि राज खरग करि लीन्हा।
इसकंदर ज़ुलकरन जो कीन्हा।
नौसेरवाँ जो आदिल कहा।
साहि अदल सरि सोउ न अहा।

जिन शब्दो के नोचे रेखा खींची गई है वे फ़ारसो और अरबी के दुर्बोध शब्द है। एक स्थान पर तो उन्होने फारसी के 'सरतापा' को अपनी कविता मे पूरी तरह खपा दिया है देखिये—

केस मेघावरि सिर ता पाई।

उनको सर्वसाधारण मे अप्रचलित संस्कृत भाषा के तत्सम शब्दों का प्रयोग करते भी देखा जाता है। निम्न लिखित पद्यो के उन शब्दों को देखिये जिन के नीचे लकीर खींच दी गई है। 'सबै नास्ति वह अहथिर ऐस साज

जेहिकेर, 'बेनी छोरिझार जो बार' 'बेधे जनौ मलैगिरि बासा', 'चढ़ा असाढ गगन घन गाजा', जनु घन महँ दामिनि परगसी का सरवर तेहि देहि मयंकू' 'कनकपाट जनुबैठा राजा, 'मान सरोदक उलथहिँ दोऊ', 'उठहि तुरंग लेहि नहि बागा' 'अधर सुरंग अमी रस भरे', हीरा लेइ सो विद्रुम धारा', 'केहि कहँ कँवल बिगासा, को मधुकर रस लेइ । 'रसना कहौं जो कह रस बाता', क्षुद्र घंटिका मोहहि राजा' 'नाभि कुंड सो मलय समीरू', पन्नग पंकज मुख गहे' खंजन तहाँ वईठ'

वे ऐसे शब्दों का व्यवहार भी करते हैं जिनका व्यवहार न तो किसी ग्रन्थ मे देखा जाता है, न वे जनता की बोलचाल मे गृहीत हैं। ऐसे शब्द या तो कविता-गत संकीर्णता के कारण वे स्वयं गढ लेते हैं या अनुप्रास का झमेला उन्हे ऐसा करने के लिये विवश करता है। अथवा इस प्रकार की तोड-मरोड एवं उच्छृंखलता को वे अनुचित नही समझते। नीचे के पद्यो के वे शब्द इसके प्रमाण है जिनपर चिन्ह बना दिये गये है -

कीन्हेसि राकस भूत परीता,
कीन्हेसि भोकस देव दईता।
औ तेहि प्रीति सिहिटि उपराजी
बह अवगाह दीन्ह तेहि हाथी।
उहै धनुस किरसुन पहँ अहा।
बेग आइ पिय बाजहु गाजहु होइ सदूर।
जोबन जनम करै भसमंतू।
कैसे जियै बिछोही पखी।
तन तिनउर भा डोल।
बिरिध खाइ नव जोबन सौ तिरिया सों ऊड़।
रिकवँछ कीन नाइ कै हींग मरिच औ आद।

बतलाइये, 'प्रेत' के स्थान पर 'परीत' 'दैत्य' के स्थान पर 'दईत' 'सृष्टि' के स्थान पर 'सिहिटि' 'हाथ' के स्थान पर 'हाथी', 'कृष्ण' के स्थान पर 'किरसुन', 'शार्दूल' के स्थान पर 'सदूर', 'भस्म' के स्थान पर 'भसमंतू', 'पक्षी' के स्थान पर 'पखी', 'तिनका' के स्थान पर 'तिनउर', 'ऊढ़ा' के स्थान पर 'ऊड', और 'आदि' के स्थान पर 'आद' लिखना कहाँ तक संगत है आप लोग स्वयं इसको विचार सकते हैं। इस प्रकार के प्रयोगों का अनुमोदन किसी प्रकार नहीं किया जा सकता। उनको चारणों के ढंग पर भी कुछ शब्दों का व्यवहार करते देखा जाता है जिनमें राजस्थानी की रंगत पाई जाती है। नीचे कुछ पद्य ऐसे लिखे जाते हैं जिन में इस प्रकार के शब्द व्यवहृत हैं। शब्द चिन्हित कर दिये गये हैं। —

दीन्ह रतन विधि चारि नैन बैन सर्वन्नमुख
गंग जमुन जौ लगि जल तौ लगि अम्मर नाथ।
हँसत दसन अस चमके पाहन उठे छरक्कि
दारिउं सरि जोन कैसका, फाट्यो हिया दरक्कि।
'सुक्ख सुहेला उग्गवै दुःख झरै जिमि मेंह।'
'बीस सहस घुम्मरहि निसाना।'
जौ लगि सधै न तप्पु, करै जो सीस कलप्पु।'

ग्रामीणता के दोष से तो इनका ग्रन्थ भरा पड़ा है। इन्होंने इतने ठेठ ग्रामीण शब्दों का प्रयोग किया है जो किसी प्रकार बोध सुलभ नहीं। ग्रामीण शब्दों का प्रयोग इसलिये सदोष माना गया है कि उनमें न तो व्यापकता होती है और न वे उतना उपयोगी होते हैं जितना कविता की भाषा के लिये उन्हें होना चाहिये देखा जाता है, मलिक मुहम्मद जायसी ने इसका विचार बहुत कम किया है। कहीं कहीं उनकी भाषा बहुत गँवारी हो गयी है जो उनके पद्यों में अरुचि उत्पन्न करने का कारण होती है। नीचे लिखे पद्यों के चिन्हित शब्दों को देखिये —

'मकु हिरकाइ लेइ हम्ह पासा ।
'हिलगि मकोय न फारहु कंथा ।'
'दोठि दवँगरा मेरवहु एका ।'
'औ भिउं जस दुरजोधन मारा ।'
'अलक जँजीर बहुत गिउ बाँधे ।'
तन तन बिरह न उपनै सोइ ।'
जौ देखा तीवइ है साँसा ।'
'घिरित परेहि रहा तस हाथ पहुँच लगि बूड़ ।

मैंने इनकी कविता को भाषा पर विशेष प्रकाश इस लिये डाला है कि जिसमे उसके विषय मे उचित मीमासा हो सके । कहा जाता है कि उनके ग्रन्थ की भाषा ठेठ अवधी है । परन्तु जितने प्रमाण मै ऊपर उद्धृत कर आया हूं उनसे स्पष्ट है कि उसमे अन्य भाषाओ और बोलियो के अतिरिक्त अधिकतर सँस्कृत के तत्सम शब्द भी सम्मिलित है, जो ठेठ अवधी मे कभी व्यवहृत नहीं हुये, ऐसी अवस्था मे उसे हम ठेठ अवधी मे लिखा गया स्वीकार नहीं कर सकते । हा. यह कहना सगत होगा कि पदमावत की मुख्य भाषा अवधी है और इसमे कोई सन्देह नहीं कि पदमावत के रचयिता ने ही पहिले पहिल अवधी भाषा लिखने मे वह सफलता प्राप्त की जिसको उनके पूर्ववर्ती कवि कुतबन और मझन आदि नही प्राप्त कर सके थे । अब तक प्रेम-मार्गी कवियो के जितने ग्रन्थ हिन्दी ससार के सामने आये है उनके आधार से यह बात निस्संकोच कही जा सकती है कि अवधो भाषा का प्रथम कवि होने का सेहरा कुतवन के सिर है । मै पहले लिख आया हू कि प्रान्तिक भाषा मे रचना करने का सूत्र पात मैथिल-कोकिल विद्यापति ने किया । उनके दिखाये मार्ग पर चल कर अवधी मे कविता करने वाला पहला पुरुष कुतबन है । उसकी रचना और उसके बाद की मंझन को कविता पर दृष्टि डालने से यह ज्ञात होता है कि अवधी भाषा मे कविता करने का जो माग इन लोगो ने ग्रहण किया था उसी मार्ग पर

मलिक मुहम्मद जायसी भी चले किन्तु प्रतिभा और भावुकता में उनका स्थान इन लोगों से बहुत ऊँचा है। जिस उच्च कोटि का कवि-कर्म्म पद्मावत में दृष्टिगत होता है उन लोगों के ग्रन्थ में नहीं। उन लोगों की रचनाओं में वह कमी पायी जाती है जो आदिम कृतिओं में देखी जाती है। उन लोगों को यदि मार्ग-प्रदर्शन करने का गौरव प्राप्त है तो पद्मावत के कवि को उसे पुष्टता प्रदान करने का। यह बात देखी जाती है कि हिन्दी भाषा में हिन्दू जाति की प्रेम-कथाओं को अंकित करने में प्रेम-मार्गी सूफ़ी कवियों ने जैसे हिन्दू भावों के सुरक्षित रखने की चेष्टा की है वैसे ही मुख्य भाषा को हिन्दी रखने का भी उद्योग किया है। और इसी मनोवृत्ति के कारण उन्होंने आवश्यकतानुसार संस्कृत शब्दों को भी ग्रहण किया। उस समय उर्दू भाषा का जन्म भी नहीं हुआ था। इसलिये उन्होंने अपनी रचनाओं में थोड़े से आवश्यक फारसी अरबी शब्दों को ही स्थान दिया, जिससे हिन्दी भाषा के मुख्य रूपमें व्याघात नहीं हुआ। जो आधार इस प्रकार पहले निश्चित हुआ था उसके सबसे प्रभावशाली प्रवर्त्तक मलिक मुहम्मद जायसी हैं। उनके बाद भी प्रेम-कथायें अवधी भाषा में लिखी गईं। परन्तु कोई उस उच्च पद को नहीं प्राप्त कर सका जिस पर मलिक मुहम्मद जायसी अब तक आसीन हैं। मैंने ऊपर लिखा है कि जायसी की भाषा कई कारणों से सदोष हो गयी है और उनकी भाषा में ग्रामीणतादोष भी प्रवेश कर गया है। परन्तु अवधी भाषा पर उनका जो अधिकार दृष्टिगत होता है और उन्होंने जिस उत्तमता से इस भाषा में रचना करने में योग्यता दिखलाई है, वे उनके उक्त दोषों और त्रुटियों का पूरा प्रतिकार कर देती हैं। जायसी की भावव्यञ्जना, मार्मिकता और कवि-सुलभप्रतिभा उल्लेखनीय है। उनकी रचना में हिन्दू भाव की मर्मज्ञता, हिन्दू पुराणों और शास्त्रों से सम्बन्ध रखनेवाले विषयों की अभिज्ञता जैसी दृष्टिगत होती है वह विलक्षण और प्रशंसनीय है। उन्होंने जिस सहानुभूति और निरपेक्षता के साथ हिन्दू जीवन के रहस्यों का चित्रण किया है और वर्णनीय विषय के अन्तस्तल में प्रवेश कर के जैसी सहृदयता दिखलायी है उसके लिये उनकी बहुत कुछ प्रशंसा की जा सकती

है। उनको रहस्यवाद-चित्रण-प्रणाली, वर्णन-शैली उनका निरीक्षण और उनकी कवि-कर्म्म कुशलता हिन्दी संसार के लिये गौरव की वस्तु है। मैं समझता हूं, हिन्दी भाषा जब तक जीवित रहेगी तब तक उसके साहित्य भाण्डार का एक रत्न पदमावत' भी रहेगा।

मलिक मुहम्द जायसी के सम्बन्ध मे डाक्टर ग्रियर्सन की यह सम्मति है १ —

वे (मलिक मुहम्मद जायसी) पदमावत के रचयिता थे, जो मेरी समझ मे मौलिक विषय पर गौडी भाषा मे लिखी हुई पहली ही नहीं प्राय. एक मात्र कविता पुस्तक है। मैं नहीं जानता कि कोई अन्य ग्रन्थ भी ऐसा होगा जो पदमावत की अपेक्षा अधिक परिश्रमपूर्ण अध्ययन का पात्र हो। निस्सन्देह परिश्रमपूर्ण अध्ययन इसके लिये आवश्यक है क्योंकि साधारण विद्यार्थी के लिये इस पुस्तक की एक पंक्ति का भी कठिनाई से ही बोध गम्य होना सम्भव है, क्योंकि यह जनता की ठेठ भाषा मे लिखी गयी है। परन्तु काव्यसौन्दर्य और मौलिकता दोनो के उद्देश्य से इस पुस्तक के अध्ययन मे जितना भी परिश्रम किया जाय उचित है।"

मलिक मुहम्मद जायसी के बाद की भी रचनाये प्रेम-मार्गी कवियो को मिलती है और यह परम्परा अठारहवीं शताब्दी तक चलती देखी जाती है। परन्तु मलिक मुहम्मद जायसी के समान कोई दूसरा कवि प्रेम-मार्गी कवियो मे नहीं उत्पन्न हुआ. इन कवियों मे उसमान' सत्रहवीं शताब्दी में और नूर मुहम्मद एवं निसार अठारहवीं मे हुये है जिनकी रचनाये प्राप्त हुई है। सत्रहवीं शताब्दीमे शेख नबी और अठारहवी शताब्दी मे कासिम शाह

---

9 "He was the author of the Padmavat (Rag)which is, I believe, the first poem and almost the only one written in a Gaudian vernacular on an original subject I do not know a work more deserving of hard study than the Padmavat It certainly requires it, for scarcely a line is intelligibl to the ordinary scholar, it being couched in the veriest langu age of the people But it is well worth any amount, both for its originality and for its poetical beauty"

और फाज़िलशाह भी हुये। इन लोगों ने भी अवधी भाषा में प्रेम मार्गी कवियों की प्रणाली ग्रहण कर रचनायें की हैं, किन्तु उनमें कोई विशेषता नहीं है और वे रचनायें मुझे हस्तगत भी नहीं हुईं। इस लिये उनके विषय में विशेष कुछ नहीं लिखा जा सकता। उसमान 'चित्रावली' नामक ग्रन्थ का रचयिता है। इसकी रचना का कुछ अंश नीचे उद्धृत किया जाता है —

'सरवर ढूंढ़ि सबै पचि रहीं।
चित्रिनि खोज न पावा कहीं
निकसी तीर भईं बैरागी।
धरे ध्यान सब बिनवै लागीं।
गुपुत तोहि पावहिं का जानी।
परगट महँ जो रहै छपानी।
चतुरानन पढ़ि चारौ बेदू।
रहा खोजि पै पाव न भेदू।
हम अंधी जेहि आपु न सूझा।
भेद तुम्हार कहाँ लौं बूझा।
कौन सो ठाँउँ जहां तुम नाहीं।
हम चख जोति न देखहिं काही।
पावै खोज तुम्हार सो, जेहि दिखरावहु पंथ।
कहा होइ जोगी भये, औ बहु पढ़े गरंथ।"

नूर महम्मद ने 'इन्द्रावती' नामक ग्रंथ की रचना की है। कुछ उनकी रचना का नमूना भी देखिये —

मन दृग सों इक राति मँझारा।
सूझि परा मोहिं सब संसारा।
देखेउँ नीक एक फुलवारी।
देखेउँ तहां पुरुष औ नारी।

दोउ मुख सोभा बरनि न जाई।
चंद सुरुज उतरे भुंइ आई।
तपी एक देखेउँ तेहि ठाँऊँ।
पूछेउँ तासों तिनकर नाऊँ।
कहाँ अहैं राजा औ रानी।
इन्द्रावति औ कुंवर गियानो।

निसार ने 'मसनवी युसुफ-जुलेखा' नामक ग्रंथ लिखा है। उसकी कुछ पंक्तियाँ ये है —

ऋतु बसंत आये बन फूला।
जोगी जती देखि रँग भूला
पूरन काम कमान चढावा।
बिरही हिये बान अस लावा।
फूलहि फूल सुखी गुंजारहि।
लागे आग अनार के डारहिं।
कुसुम केतकी मालति बासा।
भूले भंवर फिरइँ चहुँ पासा।
मैं का करउँ कहाँ अब जाँऊ।
मों कहं नाहि जगत महं ठाँऊ।
टेसू फूल तो कीन उँजेरा।
लागे आग जरैं चहुँ ओरा।
तैसे धन बाउर भई,
बौरे आम लतान।
मैं बौरी दौरी फिरउँ,
सुनि कोयल कै तान।

इस कवि का एक छन्द भी देखिये.—

ऋतु असाढ़ घन घेर आयो लाग चमकै दामिनी।
ऋतु सुहावन देखि मन महँ हरष बाढै भामिनी।
ऋतु घमंड सोँ मेघ धाये दिवस में जस जामिनी।
रैनि दिन करुना करैं घर में अकेली कामिनी।

जा रचनाये मैंने ऊपर उद्धृत की है उनके देखने से यह ज्ञात होता है कि प्रेम-मार्गी सभी कवियों ने अवधी भाषा मे लिखने को चेष्टा की है और अधिकतर अपनी परम्परा को सुरक्षित रखा है। सब की भाषा पद्मावत का अनुकरण करती है और उस ग्रन्थ की अन्य प्रणाली भी इन रचनाओं मे गृहीत मिलती है। रहस्यवाद और सूफी सम्प्रदाय के विचार भी सब रचनाओं मे ही कुछ न कुछ दृष्टिगत होते हैं। इस लिये इस निश्चय पर पहुँचना पडता है कि मुहम्मद जायसी के परवर्ती कवियों ने कोई नई उद्भावना नही की और न अपनी रचनाओं मे कोई ऐसी विशेषताये दिखलायी जिसमे साहित्य मे उनका विशेष स्थान होता। हा, यह अवश्य है कि निसार और फाजिल शाह ने अपने ग्रन्थो के लिये स्वधर्मी पात्रों को चुना। निसार ने यदि यूसुफ-जुलेखा की कहानी लिखी है तो फाजिल शाह ने नूरशाह और मेहर मुनीर को परन्तु इसने अपने ग्रंथ का हिन्दी नाम कारण हो किया है, अर्थात् अपने ग्रन्थका नाम 'प्रेम-रतन' रखा है।

परवर्ती कवियो की भाषा मुहम्मद जायसी की भाषा से कुछ प्राञ्जल अवश्य है और उनको रचनाओं मे संस्कृत शब्दो का प्रयोग भी अधिक देखा जाता है। परन्तु जो प्रवाह जायसी की रचना मे मिलता है इनलोगों को रचनाओ मे नहीं। अवधो भाषा की जो सादगी सरसता और स्वाभाविकता उनको कविता मे मिलती है इन लोगो की कविता मे नहीं। यह मैं कहूगा कि परवर्ती कवियो की रचनाओ मे गँवारी शब्दो की न्यूनता है किन्तु उनका कुछ झुकाव ब्रजभाषा की प्रणाली और खडी बोली के वाक्य-विन्यास और शब्दो की ओर अधिक पाया जाता है। उनकी रच-

नाओं को पढ कर यह ज्ञात होता है कि वह उद्योग कर के अपनी भाषा को अवधी बनाना चाहते है। उनकी लेखनी स्वत उसकी ओर प्रवृत्त नहीं होती, अनुकरण मे जो कमी और अवास्तवता होती है वह उनमे पाई जाती है। फिर भी यह स्वीकार करना पडेगा कि उन्हो ने हिन्दी भाषा और हिन्दू भावो की ओर अपना अनुराग प्रगट किया है और यथाशक्ति अपने यत्न मे सफलता लाभ करने की चेष्टा भी की है।

मैने मलिक मुहम्मद जायसी के परवर्ती कवियों की चर्चा यहा इस लिये कर दी है कि जिसमे यह ज्ञात हो सके कि प्रेम-मार्गी कवियों की कविता-धारा कहा तक आगे बढी और किस अवस्था मे। इनकी चर्चा सत्रहवी और अठारहवी शताब्दी के अन्य कवियो के साथ की जा सकती थी किन्तु ऐसा करना यथास्थान न होता, इसलिये यहा पर ही जो कुछ उनके विषय मे ज्ञातव्य बाते थी, लिख दी गई।

यहा पर यह प्रगट कर देना भी आवश्यक है कि इसी काल मे कुछ और प्रेम-कहानिया भी हिन्दुओ द्वारा लिखी गई। इनमे से लक्ष्मण सेन की बनाई 'पदमावती' की कथा ही उल्लेख योग्य है। उसकी चर्चा मै पहले कर चुका हूॅ। पौराणिक कथाओ के आधार से कुछ अन्य रचनाये भी हुई है, जैसे ढोलामारू की चउपही इत्यादि परन्तु उनमे अधिकतर पौराणिक प्रणाली ही का अनुकरण किया गया है और कहानी कहने की प्रवृत्ति ही पाई जाती है। इसलिये उनमे वह विशेषता उपलब्ध नहीं होती जो उनका उल्लेख विशेष रीति से किया जाय। अतएव उनकी चर्चा यहाॅ नहीं की गयी।

५

सोलहवीं शताब्दी मे ही हिन्दी संसार के सामने साहित्य गगन के उन उज्ज्वलतम तीन तारों का उदय हुआ जिनकी ज्योति से वह आज तक ज्योतिर्मान है। उनके विषय मे चिर-प्रचलित सर्वसम्मति यह है —

सूर सूर तुलसी ससी उडुगन केसव दास।
अब के कवि खद्योत सम जहँ तहँ करत प्रकास।

काव्य करैया तीन हैं, तुलसी केशव सूर।
कविता खेती इन लुनी, सीला बिनतमजूर।

यह सम्मति कहा तक मान्य है, इस विषयमे मैं विशेष तर्क वितर्क नहीं करना चाहता। परन्तु यह मैं अवश्य कहूगा कि इस प्रकार के सर्व-साधारण के विचार उपेक्षा-योग्य नहीं होते, वे किसी आधार पर होते है। इसलिये उनमें तथ्य होता है और उनको बहुमूल्यता प्राय. असंदिग्ध होती है। इन तीनो साहित्य-महारथियो मे किसका क्या पद और स्थान है इस बात को उनका वह प्रभाव ही बतला रहा है जो हिन्दी-संसार मे व्यापक होकर विद्यमान है। मै इन तीनो महाकवियों के विषय में जो सम्मति रखता हू उसे मेरा वह वक्तव्य ही प्रगट करेगा जो मै इनके सम्बन्ध मे यथा स्थान लिखूंगा। इन तीनो महान् साहित्यकारो मे काल की दृष्टि से सूरदास जी का प्रथम स्थान है, तुलसीदास जी का द्वितीय और केशवदास जी का तृतीय। इसलिये इसी क्रम से मै आगे बढता हूं।

कविवर सूरदास ब्रजभाषा के प्रथम आचार्य है। उन्हो ने ही ब्रजभाषा का वह शृंगार किया जैसा शृंगार आज तक अन्य कोई कवि अथवा महाकवि नहीं कर सका। मेरा विचार है कि कविवर सूरदास जी का यह पद हिन्दी-संसार केलिये आदिम और अंतिम दोनों है। हिन्दीभाषा की वर्त्तमान प्रगति यह बतला रही है कि ब्रजभाषा के जिस उच्चतम आसन पर वे आसीन है सदा वेही उस आसन पर विराजमान रहैंगे, समय अब उनका समकक्ष भी उत्पन्न न कर सकेगा। कहा जाता है, उनके पहले का 'सेन' नामक ब्रजभाषा का एक कवि है। हिन्दी संसार उससे एक प्रकार अपरिचितसा है। उसका कोई ग्रन्थ भी नहीं बतलाया जाता। कालिदासने औरंगजेव के समय मे हजारा नामक एक ग्रन्थ की रचना की थी। उसमें उन्होंने 'सेन' कवि का एक कवित्त लिखा है। वह यह है।

जब ते गोपाल मधुबन को सिधारे आली,
मधुबन भयो मधु दानव विषम सों।

सेन कहै सारिका सिखंडी खंजरीट सुक
मिलि कै कलेस कीनो कालिंदी कदम सों।
जामिनी बरन यह जामिनी मैं जाम जाम
बधिक की जुगुति जनावैं टेरि तम सों।
देह करै करज करेजो लियो चाहति है,
काग भई कोयल कगायो करै हमसों।

कविता अच्छी है, भाषा भी मँजी हुई है। परन्तु इस कवि का काल संदिग्ध है। मिश्र बंधुओं ने शिवसिहसरोज के आधार से उसका काल सन् १५०३ ई० बतलाया है। परन्तु वे ही इसको संदिग्ध बतलाते हैं। जो हो, यदि यह कविता कविवर सूरदास जी के पहले की मान भी ली जावे तो इससे उनके आदिम आचार्यत्व को बट्टा नहीं लगता। मेरा विचार है कि सूरदास जी के प्रथम ब्रजभाषा का कोई ऐसा प्रसिद्ध कवि नहीं हुआ कि जिसकी कृति ब्रजभाषा कविता का साधारण आदर्श बन सके। दो चार कवित्त लिख कर और छोटा मोटा ग्रन्थ बना कर कोई किसी महाकवि का मार्ग- दर्शक नहीं बन सकता। सूरदास जी से पहले कबीरदास, नामदेव, रविदास आदिसन्तों की बानियो का प्रचार हिन्दू संसार में कुछ न कुछ अवश्य था। संभव है कि ब्रज-भाषा के ग्राम्यगीत भी उस समय कुछ अपनी सत्ता रखते हों। परन्तु वे उल्लेख योग्य नहीं। मै सोचता हू कि सूरदास जी की रचनाये अपनी स्वतंत्र सत्ता रखती है और वे किसी अन्य की कृति से उतनी प्रभावित नहीं है जो वे उनका आधार बन सके। खुसरो की कविताओं मे भी ब्रजभाषा की रचनाये मिली है। और ये रचनाये भी थोड़ी नहीं है। यदि उनकी रचनाओं का आधार हम ब्रजभाषा की किसी प्राचीन रचना को मान सकते है तो सूरदास जी की रचनाओं का आधार किसी प्राचीन रचना को क्यों न माने? मानना चाहिये और मैं मानता हूं। मेरा कथन इतना ही है कि सूरदास जी के पहले ब्रजभाषा की कोई ऐसी उल्लेख-योग्य रचना नहीं थी जो उनका आदर्श बन सके।

प्रज्ञाचक्षु सूरदास जी अपना आदर्श आप थे। वे स्वयं-प्रकाश थे।

ज्ञात होता है इसी लिये वे हिन्दी संसार के सूर्य्य कहे जाते हैं। महाप्रभु वल्लभाचार्य उनको सागर कहा करते थे। इसी आधार पर उनके विशाल ग्रन्थका नाम सूर सागर है। वास्तवमे वे सागर थे और सागर के समान ही उत्तालतरंग-माला-संकुलित। उनमे गम्भीरता भी वैसी ही पायी जाती है। जैसा प्रवाह, माधुर्य, सौन्दर्य उनकी कृतिमे पाया जाता है अत्यन्त दुर्लभ है। वे भक्ति-मार्गी थे, अतएव प्रेम- मार्ग का जैसा त्यागमय आदर्श उनकी रचनाओं मे दृष्टिगत होता है वह अभूतपूर्व है। प्रेममार्गी सूफी सम्प्रदाय-वालों ने प्रेम-पंथ का अवलम्बन कर जैसी रस धारा बहाई उससे कहीं अधिक भावमय मर्मस्पर्शी और मुग्धकारिणीप्रेम की धाराये सूरदासजी ने अथवा उनके उत्तराधिकारियो ने बहाई है। यही कारण है कि वे धाराये अंत मे आकर इन्ही धाराओ मे लीन हो गईं। क्योकि भक्ति मार्गी कृष्णावत सम्प्रदाय की धाराओ के समान व्यापकता उनको नही प्राप्त हो सकी। परोक्षसत्ता- सम्बन्धी कल्पनाये मधुर और हृदय ग्राही है और उनमे चमत्कार भी है, किन्तु वे बोध-सुलभ नहीं। इसके प्रतिकूल वे कल्पनाये बहुत ही बोध-गम्य बनीं और अधिकतर सर्व साधारण को अपनी ओर आकर्षित कर सकीं जो ऐसी सत्ता के सम्बन्ध मे की गयीं जो परोक्ष-सत्तापर अवलम्बित होने पर भी [redacted]व से अलौकिक मूर्त्ति धारण कर उपस्थित हुई। भगवान श्री कृष्ण क्या है? परोक्ष सत्ता ही की ऐसी अलौकिकतामयी मूर्ति है जिनमे 'सत्यम् शिवम् सुन्दरम्' मूर्त होकर विराजमान है। सूफी मतके प्रेम मार्गियोकी रचनाओ में यह बात दृष्टिगत हो चुकी है कि वे किसी नायक अथवा नायिका का रूप वर्णन करते करते उसको परोक्ष-सत्ता ही की विभूति मान लेते है और फिर उसके विषय मे ऐसी बाते कहने लगते है जो विश्व की आधार-भूत परोक्ष सत्ता ही से सम्बन्धित होती है। अनेक अवस्थाओ में उनका इस प्रकार का वर्णन बोध- सुलभ नहीं होता, वरन एक प्रकार से संदिग्ध और जटिल बन जाता है। किन्तु भक्ति-मार्गी महात्माओं के वर्णन मे यह न्यूनता नहीं पायी जाती। क्योंकि वे पहले ही से अपनी अपरोक्ष सत्ता को परोक्ष सत्ता का ही अंश-विशेष होने का संस्कार सर्व साधारण

के हृदय में विविध युक्तियों से अंकित करते रहते है। क्या किसी सूफी प्रेम-मार्गी कवि की रचनाओ मे वह अलौकिक मुरली-निनाद हुआ, वह लोक-विमुग्ध कर गान हुआ, उस सुरदुर्लभ शक्ति का विकास हुआ, उस शिव संकल्प का समुदय हुआ और उन अचिन्तनीय सत्य भावो का आविर्भाव हुआ जो महामहिम सूरदास जैसे महात्माओ की महान् रचनाओ के अवलम्बन है ? और यही सब ऐसे प्रवलतम कारण है कि इन महापुरुषो की कृतियो का अधिकतर आदर हुआ और वे अधिकतर व्यापक बनीं। इन सफलताओ का आदिम श्रेय हिन्दी साहित्य मे प्रज्ञाचक्षु सूरदासजी ही को प्राप्त है।

मैं समझता हूं, सूरदास जी का भक्ति-मार्ग और प्रेमपथ श्रीमद्भागवत के सिद्धान्तो पर अवलम्बित है और यह महाप्रभु वल्लभाचार्य्य के सत्संग और उनकी गुरु-दीक्षा ही का फल है। सूरसागर श्रीमद्भागवत का ही अनुवाद है, परन्तु उसमे जो विशेषताये है वे सूरदास जी की निजी सम्पत्तिया है। यह कहा जाता है कि उनकी प्रणाली 'भक्तवर जयदेव जी के 'गीत गोविन्द' एवं मैथिलकोकिल विद्यापतिकी रचनाओंसे भी प्रभावित है। कुछ अंश मे यह बात भी स्वीकार की जा सकती है, परन्तु सूरदासजी की सी उदात्त भक्ति-भावनाये इन महाकवियोकी रचनाओंमे कहा है ? मै यह मानूंगा कि सूरदासजीकी अधिकतर रचनाये शृंगार रस-गर्भित है। परन्तु उनका विप्रलम्भ शृंगार ही, विशेष कर हृदय-ग्राही और मार्मिक है। कारण इसका यह है कि उसपर प्रेम-मार्ग की महत्ताओं की छाप लगी हुई है। यह सत्य है कि मैथिल कोकिल विद्यापति की विप्रलम्भ शृंगार की रचनाये भी बडी ही भावमयी है, परन्तु क्या उनमे उतनी ही हृदय-वेदनाओं की झलक है जितनी सूरदास जी की रचनाओं मे ? क्या वे उतनी ही अश्रु-धारा से सिक्त उतनी ही मानसोन्मादिनी और उतनी ही मर्म्म स्पर्शिनी और हृदयवेधिनी है जितनी सूरदासजीकी उक्तिया ? क्या उनमे भी वैसा ही करुण क्रन्दन सुन पडता है जैसा सूरदास जी की विरागमयी बचनावली में ? इन बातो के अतिरिक्त सूरदास जी की रचनाओ में और भी कई एक विशेषताये है। उनका बाललीला-वर्णन और बालभावों का

चित्रण इतना सुन्दर और स्वाभाविक है कि हिन्दी साहित्य को उसका गर्व है। कुछ लोगों की सम्मति है कि संसार के साहित्य मे ऐसे अपूर्व बाल-भावों के चित्रण का अभाव है। मैं इसपर अपनी ठीक सम्मति प्रकट करने मे असमर्थ हू, परन्तु यह अधिकार के साथ कहा जा सकता है कि हिन्दी भाषा मे ऐसा वर्णन तो है ही नहीं, परन्तु भारतीय अन्य प्रान्तीय भाषाओ मे भी वैसा अपूर्व वर्णन उपलब्ध नही होता। उनकी विनय और प्रार्थना सम्बन्धी रचनायें भी आदर्श है और आगे चल कर परवर्ती कवियों के लिये उन्होने मार्ग-प्रदर्शन का उल्लेखनीय कार्य्य किया है। मैं इस प्रकार के कुछ पद नीचे लिखता हू। उनको देखिये कि उनमे किस प्रकार हृदय खोल कर दिखलाया गया है, उनकी भाषा की प्राञ्जलता और सरसता भी दर्शनीय है।

१—जनम सिरानो ऐसे ऐसे।
कै घरघर भरमत जदुपति बिन कै सोवत कै बैसे।
कै कहुँ खान पान रसनादिक कै कहुँ बाद अनैसे।
कै कहुँ रंक कहूं ईसरता नट बाजीगर जैसे।
चेत्यो नहीं गयो टरि अवसर मीन बिना जल जैसे।
अहै गति भई सूर की ऐसी स्याम मिलैं धौं कैसे।

२—प्रभु मोरे औगुन चित न धरो।
समदरसी है नाम तिहारो चाहे तो पार करो।
एक नदिया एक नार कहावत मैलो नीर भरो।
जब दोनों मिलि एक बरन भये सुरसरि नाम परो।
एक लोहा पूजा में राखत एक घर बधिक परो।
पारस गुन औगुन नहि चितवै कंचन करत खरो।
यह माया भ्रम जाल कहावै सूरदास सगरो।
अबकीबार मोहि पार उतारो नहि प्रन जात टरो।

३—अपनपो आपन हीं बिसरो।
जैसे स्वान काँच के मंदिर भ्रमि भ्रमि भूंकि मरो।
ज्यों केहरि प्रतिमा के देखत बरबस कूप परो।
मरकट मूठि छोड़ि नहि दीन्हीं घरघर द्वार फिरो।
सूरदास नलिनी के सुअना कह कौने पकरो।

४—मेरो मन अनत कहाँ सुख पावै।
जैसे उड़ि जहाज को पच्छी फिरि जहाजपै आवै।
कमल नयन को छाड़ि महातम और देव को ध्यावै।
पुलिन गंग को छाड़ि पियासो दुरमति कूप खनावै।
जिन मधुकर अंबुज रस चाख्यो क्यों करील फलखावै।
सूरदास प्रभु काम धेनु तजि छेरी कौन दुहावै।

कुछ पद्य वाल भाव-वर्णन के भी देखिये —

५—मैया मैं नाहीं दधि खायो।
ख्याल परे ये सखा सबै मिलि मेरे मुख लपटायो।
देखु तुही छीके पर भाजन ऊँचे घर लटकायो।
तुही निरखु नान्हें कर अपने मैं कैसे करि पायो।
मुख दधि पोंछ कहत नँदनंदन दोना पीठि दुरायो।
डारि साँट मुसकाइ तबहि गहि सुत को कंठ लगायो।

६—जसुदा हरि पालने झुलावै।
हलरावै दुलराइ मल्हावै जोई सोई कछु गावै।
मेरे लाल को आउ निदरिया काहें न आनि सुआवैं।
तू काहें न बेगही आवै तोको कान्ह बुलावै।

कबहुं पलक हरि मूंदि लेत हैं कबहुँ अधर फरकावै ।
सोवत जानि मौन ह्वै ह्वै रहि करि करि सैन बतावै ।
येहि अंतर अकुलाइ उठे हरि जसुमति मधुरे गावै ।
जो सुख सूर अमर मुनिदुरलभ सो नँदभामिनिपावै ।

७-सोभित कर नव नीत लिये ।
घुटुरुन चलत रेनु-मंडित तनु मुख दधि लेप किये ।
चारुकपोल लोल लोचन छवि गोरोचन को तिलक दिये ।
लर लटकत मनोमत्त मधुपगन माधुरि मधुर पिये ।
कठुला कंठ वज्र केहरि नख राजत हैं सखि रुचिर हिये ।
धन्य सूर एकौ पल यह सुख कहा भये सत कल्प जिये ।

मैं ऊपर लिख आया हूं कि सूरदासजी का शृंगार-रस वर्णन बडा विशद है और विप्रलम्भ शृंगार लिखने मे तो उन्हों ने वह निपुणता दिखलायी जैसी आज तक दृष्टिगत नही हुई । कुछ पद्य इस प्रकार के भी देखिये:—

८-सुनि राधे यह कहा बिचारै ।
वे तेरे रँग तू उनके रँग अपनो मुख काहे न निहारै ।
जो देखे ते छाँह आपनी स्याम हृदय तव छाया ।
ऐसी दसा नंद नंदन की तुम दोउ निरमल काया ।
नीलाम्बर स्यामल तन की छवि तुव छवि पीत सुवास ॥
घन भीतर दामिनी प्रकासत दामिनि घन चहुँ पास ।
सुनरी सखी बिलच्छ कहौं तो सों चाहति हरिको रूप ।
सूर सुनौ तुम दोउ सम जोरी एक एक रूप अनूप ।

९-काहे को रोकत मारग सूधो ।
सुनहु मधुप निरगुन कंटक सों राजपंथ क्यों रूँधो ।
याको कहा परेखो कीजै जानत छाछ न दूधो ।
सूर मूर अक्रूर ले गये ब्याज निबेरत ऊधो ।

१०-बिलग मत मानहु ऊधो प्यारे ।
यह मथुरा काजर को ओबरी जे आवहिं ते कारे ।
तुम कारे सुफलक सुत कारे कारे स्याम हमारे ।
मानो एक माँठ मैं बोरे लै जमुना जो पखारे ।
ता गुन स्याम भई कालिंदी सूर स्याम गुन न्यारे ।

११-अरी मोहि भवन भयानक लागै माई स्याम बिना ।
देखहिं जाइ काहि लोचन भरि नंद महरि के अँगना ।
लै जो गये अक्रूर ताहि को ब्रज के प्रान धना ।
कौन सहाय करै घर अपने मेरे विघन घना ।
काहि उठाय गोद करि लीजै करि करि मन मगना ।
सूरदास मोहन दरसनु बिनु सुख संपति सपना ।

१२-खंजन नैन रूप रस माते ।
अतिसै चारु चपल अनियारे पल पिँजरा न समाते ।
चलि चलि जात निकट स्रवननि के
उलटि पलटि ताटंक फँदाते ।
सूरदास अंजन गुन अटके नतरु अबहि उड़ि जाते ।

१३-ऊधो अँखिया अति अनुरागी ।
एक टक मग जोवति अरु रोवति भूलेहुँ पलक न लागी ।

बिनु पावस पावस रितु आई देखत हैं बिद्मान।
अबधौं कहा कियौ चाहति है छाड़हु निरगुन ज्ञान।
सुनि प्रिय सखा स्याम सुंदर के जानत सकल सुभाय।
जैसे मिलैं सूर के स्वामी तैसी करहु उपाय।

१४-नैना भये अनाथ हमारे।
मदन गोपाल वहां ते सजनी सुनियत दूरि सिधारे।
वे जलसर हम मीन बापुरी कैसे जिवहिं निनारे।
हम चातकी चकोर स्याम घन वदन सुधा निधि प्यारे।
मधुवन बसत आस दरसन की जोइ नैन मग हारे।
सूर के स्याम करी पिय ऐसी मृतक हुते पुनि मारे।

१५-सखीरी स्याम सबै एकसार।
मीठे बचन सुहाये बोलत अन्तर जारन हार।
भवँर कुरंग काम अरु कोकिल कपटिन की चटसार।
सुनहु सखोरी दोष न काहू जो विधि लिखो लिलार।
उमड़ी घटा नाखि कैं पावस प्रेम की प्रीति अपार।
सूरदास सरिता सर पोषत चातक करत पुकार।

भाषा कविवर सूरदास के हाथों मे पडकर धन्य हो गई। आरम्भिक-काल से लेकर उनके समय तक आपने हिन्दी भाषा का अनेक रूप अवलोकन किया। परन्तु जो अलौकिकता उनकी भापा मे दृष्टिगत हुई वह असाधारण है। जैसी उसमे प्राञ्जलता है वैसी ही मिठास है। जितनी ही वह सरस है उतनी ही कोमल। जैसा उसमे प्रवाह है वेसा ही ओज। भावमूर्तिमन्त होकर जैसा उसमे दृष्टिगत होता है, वैसे ही व्यंजना भी उसमे अठखेलियाँ करतो अवगत होती है। जैसा श्रृंगार-रस उसमे सुविकसित दिखलाई पडता है, वैसा ही वात्सल्य-रस छलकता मिलता है।

जैसी प्रेम की विमुग्धकरी मूर्त्ति उसमें आविर्भूत होती है वैसाही आन्तरिक वेदनाओ का मर्म-स्पर्शी रूप सामने आता है। ब्रजभाषा के जो उल्लेखनीय गुण अबतक माने जाते है और उसके जिस माधुर्य्य का गुणगान अबतक किया जाता है, उसका प्रधान अवलम्बन सूरदासजी का ही कवि कर्म है। एक प्रान्त-विशेष की भाषा समुन्नत होकर यदि देश-व्यापिनी हुई तो वह ब्रजभाषा ही है और ब्रजभाषा को यह गौरव प्रदान करनेवाले कविवर सूरदास है। उनके हाथो से यह भाषा जैसो मॅजो, जितनी मनोहर बनो, और जिस सरसता को उसने प्राप्त किया वह हिन्दी संसार के लिये गौरव की वस्तु है। मैने ब्रजभाषा की जो विशेषताये पहले बतलायो है वे सब उनकी भाषा मे पाई जाती है, वरन् यह कहा जा सकता है कि उनकी भाषा के आधार से ही ब्रजभाषा की विशेषताओ की कल्पना हुई। मेरा विचार है कि उन्हों ने इस बात पर भी दृष्टि रखी है कि कोई भाषा किस प्रकार व्यापक बन सकती है। उनकी भाषा मे ब्रजभाषा का सुन्दर से सुन्दर रूप देखा जाता है। परन्तु ग्रामीणता दोष से वह अधिकतर सुरक्षित है। उसमे अन्य प्रान्तिक भाषाओ के शब्द भो मिल जाते है। किन्तु इनकी यह प्रणाली बहुत मर्य्यादित है। गुरु को लघु और लघु को गुरु करने मे उनको अधिक संयत देखा जाता है। वे शब्दो को कभी कभी तोडते मरोडते भी है। किन्तु उनका यह ढंग उद्वेजक नहीं होता। उसमे भो उनकी लेखनी की निपुणता दृष्टिगत होती है। ब्रजभाषा के जो नियम और विशेषताये मै पहले लिख आया हू उनकी रचनाओं में उनका पालन किस प्रकार हुआ है, मै नीचे उसको उद्धृत पद्यों के आधार से लिखता हू—

१—उनकी रचनाओंमे कोमल शब्द-विन्यास होता है। इसलिये उनमें संयुक्त वर्ण बहुत कम पाये जाते है जो वैदर्भी वृत्ति का प्रधान लक्षण है। यदि कोई संयुक्त वर्ण आ भी जाता है तो वे उसके विषय में युक्त-विकर्ष सिद्धान्त का अधिकतर पालन करते देखे जाते है। जेसे, 'समदरसी', 'महातम', 'दुरलभ', 'दुरमति' इत्यादि। वर्गों के पञ्चम वर्ण के स्थान पर

उनको प्राय अनुस्वार का प्रयोग करते देखा जाता है। जैसे, 'रंक', 'कंचन', 'गंग', 'अंवुज', 'नंदनंदन', 'कंठ' इत्यादि ।

२—णकार, शकार, क्षकार के स्थान पर क्रमश 'न', 'स', और 'छ' वे लिखते है। 'ड' के स्थान पर 'ड', और 'ल' के स्थान पर 'र' एवं संज्ञाओं के आदिके 'य' के स्थान पर 'ज' लिखते उनको प्राय. देखा जाता है। ऐसा वे ब्रज प्रान्त की बोलचाल की भाषा पर दृष्टि रखकर ही करते है। 'बरन', 'रेनु', 'गुन', 'ओगुन', 'निरगुन', सोभित', 'सत', 'स्याम', 'दसा', 'दरसन', 'अतिसै, जसुमति', 'जसुदा', 'जदुपति' 'बिलछि', और 'पच्छी' आदि शब्द इसके प्रमाण है ।

३—गुरु के स्थान पर लघु और लघु के स्थान पर गुरु भी वे करते हैं। किन्तु बहुत कम । 'माधुरि', 'रँग', 'नहि', 'दामिनि', 'केहरि', 'मनो', भामिनि', 'बिन' इत्यादि शब्दो मे गुरु को लघु कर दिया गया है। 'धन', 'मगना', इत्यादि मे ह्रस्व को दीर्घ कर दिया गया है, अर्थात् 'धन' और 'मगन' के 'न' को ना' बनाया गया है।

यह बात भी देखी जाती है कि वे कुछ कारक चिन्हों और प्रत्ययो आदि को लिखते तो शुद्ध रूप मे है, परन्तु पढने मे उनका उच्चारण ह्रस्व होता है। क्योंकि यदि ऐसा न किया जाय तो छन्दोभंग होगा। निम्न-लिखित पंक्तियो मे इस प्रकार का प्रयोग पाया जाता है। चिन्हित कारक चिन्हो और शब्दगत वर्णो को देखिये:—

१—'काहे को रोकत मारग सूधो'

२—'मेरे लालको आउ निदरिया काहे न आनि सुआवै'

३—'सखीरी स्याम सवै एक सार'

४—'सूर सुनौ तुम दोउ सम जोरी एक एक रूप अनूप'

५—'सूर के स्याम करी पुनि ऐसी मृतक हुते पुनि मारे'।

६—'मानो एक मांठ मैं बोरे लै जमुना जो पखारे'।

७—'समदरसी है नाम तिहारो चाहे तो पार करो'।
८—'जब दोनों मिलि एक वरन भये सुरसरि नाम परो'

यह प्रणाली कहा तक युक्ति-संगत है, इसमे मत भिन्नता है। किन्तु जिस मात्रा मे विशेष स्थलो पर सूरदासजी ने ऐसा किया है, मेरा विचार है कि वह ग्राह्य है। क्योकि इससे एक प्रकार से विशेष शब्द-विकृति की रक्षा होती है। दूसरी बात यह कि यदि कुछ शब्दों को ह्रस्व कर दिया जाय तो उसका अर्थ ही दूसरा हो जाता है। जैसे 'भये' को 'भय' लिख कर यदि छन्दोभंग की रक्षा की जाय तो अर्थापत्ति सामने आती है। प्राकृत भाषा मे भी यह प्रणाली गृहीत देखी जाती है। उर्दू कविताओ की पंक्ति पंक्ति मे इस प्रकार का प्रयोग मिलता है। हिन्दी मे विशेष अवस्था और अल्प मात्रा ही मे कहीं ऐसा किया जाता है। यह पिंगल नियमावली के अन्तर्गत भी है। जैसे विशेष स्थानो मे ह्रस्व को दीर्घ और दीर्घ को ह्रस्व लिखने का नियम है उसी प्रकार संकीर्ण स्थलो पर ह्रस्व को दीर्घ और दीर्घ को ह्रस्व पढने की प्रणाली भी है।

४—प्राकृत और अपभ्रंश मे प्राय कारक चिन्हो का लोप देखा जाता है। सूरदासजी की रचनाओं मे भी इस प्रकार की पंक्तिया मिलती है। कुछ तो कारको का लोप साधन बोलचाल की भाषा पर अवलम्बित है और कुछ कवितागत अथवा साहित्यिक प्रयोगों पर, नीचे लिखे हुये वाक्य इसी प्रकार के है —

जो विधि लिखो लिलार', 'मधुकर अंबुज रस चाख्यो', 'मैं कैसे करि पायो' इन वाक्यो मे कर्त्ता का ने चिन्ह लुप्त है। 'कामधेनु तजि छेरी कौन दुहावे', 'प्रभु मोरे औगुन चित न धरो', 'मरकट मूठि छोडि नहि दीन्हीं', सरिता सरपोपत' इन वाक्यो मे कर्म का चिन्ह 'को' अन्तर्हित है। 'नान्हे कर अपने मै कैसे करि पायो' इस वाक्य मे करण का 'से' चिन्ह लुप्त है।

'जो सुख सूर अमर मुनि दुरलभ' मे सम्प्रदान का चिन्ह 'को' या 'केलिये' का लोप किया गया है। 'बरबस कूप परो', 'मेरे मुख लपटायो'

'ऊँचे घर लटकायो', 'पालने झुलावे', 'कर नवनीत लिये' इन वाक्यों मे अधिकरण के मे चिन्ह का अभाव है ।

५—व्रजभाषा मे कुछ ऐसे शब्द प्रयोग मे आते है जिनमे विभक्ति या प्रत्यय शब्द के साथ सम्मिलित होते है, अलग नहीं लिखे जाते । कविता मे इससे बडो सुविधा होती है । इस प्रकार के प्रयोग अधिकतर बोलचाल पर अवलम्बित हैं । पूर्व कालिक क्रिया का चिन्ह 'कर' अथवा 'के' है । व्रजभाषा मे प्राय विधि के साथ इकार का प्रयोग करदेने से भी यह क्रिया बन जाती है । जेसे, 'टरि', 'मिलि', 'करि', इत्यादि । संज्ञा के साथ जब ओकार सम्मिलित कर दिया जाता है तो वह प्राय 'भी' का काम देता है जैसे 'एको , 'दूधो' इत्यादि । 'जसुमति मधुरे गावै' मे 'मधुर' के साथ मिला हुआ एकार भाव वाचकता का सूचक है । 'दोना पीठि दुरायो' मे 'पीठि के साथ मिलित इकार अधिकरण के 'मे' चिन्ह का द्योतक है इत्यादि ।

६—वैदर्भी वृत्ति का यह लक्षण है कि उसमे समस्त पद आते ही नहीं। यदि आते है तो साधारण समस्त पद आते है, लम्बे नही । कविवर सूरदास जी की रचना मे यह विशेषता पाई जाती है। 'जैसे कमल नयन, 'अम्बुज रस', करीलफल इत्यादि ।

७ कोमलता उत्पादन के लिये वे प्राय 'ड' और 'ल' के स्थान पर 'र' का प्रयोग करते है। जैसे 'घोडो' के स्थान पर 'घोरो', 'तोडो' के स्थान पर 'तोरो', 'छोडो' के स्थान पर 'छोरो' । इसी प्रकार 'मूल' के स्थान पर मूर' और 'चटसाल' के स्थान पर 'चटसार । उनकी रचनाओ मे बिकल्प से 'ड' का भी प्रयोग देखा जाता है। और 'ल' के स्थान पर 'र' का प्रयोग सब स्थानो पर ही नहीं होता। शब्द के मध्य का यकार और वकार बहुधा 'ऐ' और औ' होता रहता है। जेसा 'नयन', 'बयन', 'सयन' का 'नैन', 'बेन', 'सैन' इत्यादि। और 'पवन' 'गवन', 'रवन' का 'पौन', 'गौन', 'रौन' इत्यादि। परन्तु उनका तत्सम रूप भी वे लिखते है। प्राय व्रजभाषा मे वह शब्द जिसके आदि मे ह्रस्व इकार युक्त कोई व्यञ्जन होता

है और उसके बाद 'या' होता है तो आदि व्यंजन का इकार गिर जाता है और वह अपने पर वर्ण य' मे हलन्त हो कर मिल जाता है। जैसे 'सियार' का 'स्यार', 'पियास का प्यास' इत्यादि। किन्तु उनकी रचनाओं में दोनो प्रकार का रूप मिलता है। वे 'प्यास' भी लिखते है और 'पियास' भी, 'प्यार' भी लिखते है और 'पियार भी। ऊपर लिखे पद्यों मे आप इस प्रकार का प्रयोग देख सकते है।

८—सूरदास जी को अपनी रचनाओ मे मुहावरों का प्रयोग करते भी देखा जाता है। परन्तु चुने हुये मुहावरे ही उनकी रचना मे आते है, जिससे उनकी उक्तिया बडी ही सरस हो जाती है। ऊपर के पद्यों मे निम्न-लिखित मुहावरे आये है। जिस स्थान पर ये मुहावरे आये है उन स्थानों को देख कर आप अनुमान कर सकते है कि मेरे कथनमे कितनी सत्यताहै.—

१—गोद करि लीजै
२—कैसे करि पायो
३—बिलग मत मानहु
४—लोचन भरि
५—ख्याल परे

९—देखा जाता है कि सूरदास जी कभी-कभी पूर्वी हिन्दी के शब्दों को भी अपनी रचना मे स्थान देते है। 'बैसे', 'पियासो' इत्यादि शब्द ऊपर के पद्यो मे आप देख चुके है। 'सुनो' और 'मेरे' इत्यादि खड़ी बोली के शब्द भी कभो कभी उनकी रचना मे आ जाते है। किन्तु उनकी विशेषता यह है कि वे इन शब्दों को अपनी रचनाओं मे इस प्रकार खपाते है कि वे उनकी मुख्य भाषा (ब्रजभाषा) के अंग बन जाते है। अनेक अवस्थाओं मे तो उनका परिचय प्राप्त होना भी दुस्तर हो जाता है। जिस कवि मे इस प्रकार की शक्ति हो उसका इस प्रकार का प्रयोग तर्क-योग्य नहीं कहा जा सकता। जो अन्य प्रान्त की भाषाओं के शब्दो अथवा प्रान्तिक बोलियो के वाक्यो को अपनी रचनाओ में इस प्रकार स्थान देते है कि जिनसे वे

भद्दी बन जाती है अथवा जो उनकी मुख्य भाषा को मुख्यता मे बाधा पहुचाती है उनकी ही कृति तर्क-योग्य कही जा सकती हैं। दूसरी बात यह है कि जब किसी प्रान्तिक भाषा को व्यापकता प्राप्त होती है तो उसे अपने साहित्य को उन्नत बनाने के लिये संकीर्णता छोड कर उदारता ग्रहण करनी पडती है। जिस भाषा ने इस प्रकार की उदारता ग्रहण की वही अपनी परिधि से निकल कर व्यापकता प्राप्त कर सकी। आज गोस्वामी तुलसीदास और कविवर सूरदास को रचनाये जो उत्तरीय भारत को छोड कर दक्षिणीय भारत के कुछ अंशो मे भो आदृत हो रही है तो उसका कारण यही है कि उन्होने अपनी भाषाको उदार बनाया और उसके निजत्व को सुरक्षित रख कर अन्य भाषाओ के शब्दो को भो उसमे स्थान दिया। इस दृष्टि से देखने पर सूरदास जो ने इस विषय मे जो कुछ स्वतंत्रता ग्रहण को है वह इस योग्य नहीं कि उस पर उँगली उठाई जा सके।

१०—प्राकृत भाषा के जो शब्द सुन्दर और सरस होने कारण ब्रज-भाषा की बोलचाल मे गृहीत रहे। सूरदास जी की रचनाओ में भी उनका प्रयोग उसी रूप मे पाया जाता है। ऐसे शब्द 'सायर', 'लोयन' 'नाह', 'केहरि' इत्यादि है। वे अपभ्रंश भाषा के अनुसार कुछ प्रातिपदिक और प्रत्ययो को भी उकार युक्त लिखते है जैसे तपु, मुहु, आजु बिनु इत्यादि। ब्रजभाषा और अवधी मे अपभ्रंश अथवा प्राकृत भाषा की अनेक विशेषताये पायी जाती है। ऐसी अवस्था मे यदि उसके कुछ शब्द अपने मुख्य रूप मे इन भाषाओ मे आते है तो उनका आना युक्ति संगत है, क्योकि इस प्रकार की विशेषताये और शब्दावली ही उस घनिष्टता का परिचय देती रहतो है जो कि ब्रजभाषा अथवा अवधी का प्राकृत अथवा अपभ्रंश के साथ है। भाषा-शास्त्र की दृष्टि से इस प्रकार की घनिष्टता अधिक वाछनीय है।

११—ब्रजभाषा की बोलचाल मे कुछ शब्द ऐसे है जिनका उच्चारण कुछ ऐसी विशेषता से किया जाता है कि वे बहुत मधुर बन जाते है। इन शब्दो के अन्त मे एक वर्ण अथवा 'आ' इस प्रकार बढ़ा दिया जाता है

कि जिससे उसका अर्थ तो वही रह जाता है कि जिसमें वह मिलाया जाता है परन्तु ऐसा करने से उसमे एक विचित्र मिठास आ जाती है। 'सुअना', नैना', 'नदिया', 'निँदरिया', 'जियरा', 'हियरा' आदि ऐसे ही शब्द है। सूरदासजी इस प्रकार के शब्दो का प्रयोग अपनी रचना में इस सरसता के साथ करते है कि उसका छिपा हुआ रस छलकने लगता है। देखिये—

१—'सूरदास नलिनी के सुअना कह कौने पकरो'।

२—नैना भये अनाथ हमारे ।

३—एक नदिया एक नार कहावत मैलो नीर भरो।

४—'मेरे लाल को आउ निँदरिया काहे न आनि सुआवै'।

अवधी भाषा के इसी प्रकार के शब्द 'करेजवा' 'बदरवा' इत्यादि है। जैसे संस्कृत मे स्वार्थे क' आता है जैसे 'पुत्रक', 'वालक' इत्यादि। इन दोनों शब्दो मे जो अर्थ 'पुत्र' और 'वाल' का है वही अर्थ सम्मिलित 'क' का है, उसका कोई अन्य अर्थ नहीं। इसी प्रकार 'मुखडा', 'बछड़ा', 'हियरा', 'जियरा', 'करेजवा, 'बदरवा', 'अँसुवा', 'नदिया', 'निँदरिया' के डा' 'रा', 'वा', और या' आदि है। जो अन्त मे आये है और अपना पृथक अर्थ नही रखते। केवल 'आ' भी आता है, जैसे 'नैना', 'बैना', 'बदरा', 'अँचरा' का 'आ'

१२—ब्रज भाषा में वहुबचन के लिये शब्द के अन्त में 'न' और 'नि' आता है। ईकारान्त शब्दों मे पूर्ववर्त्ती वर्ण को ह्रस्व करके याँ और अकारान्त शब्दों के अन्त में 'ऐ' आता है। सूरदास जी की रचनाओं मे इन सब परिवर्तनों के उदाहरण मिलते है, जिनसे उनकी व्यापक दृष्टि का पता चलता है। निम्नलिखित पंक्तियों को देखिये —

'कछुक खात कछु धरनि गिरावत छवि निरखत नँदरनियाँ'

'भरि भरि जमुना उमड़ि चलत है इन नैनन के तीर'

'लोगन के मन हाँसी' 'सूर परागनि तजति हिये ते श्री गुपाल अनुरागी। 'अँखिया हरिदरसन की प्यासी' 'जलसमूह बरसत दोउ आँखैं हूं कत लीने नाउँ '

१३—सूरदास की रचना मे यह मुख्य बात पाई जाती है कि वे संस्कृत तत्सम शब्दो का अधिक प्रयोग करते है। परन्तु विशेषता यह है कि उनके शब्द चुने हुये और ऐसे होते है जिनको काव्योपयुक्त कहा जा सकता है। संयुक्त वर्णों को तो मुख्य रूप मे वे कभी कभी संकीर्ण स्थलों पर ही लेते है। परन्तु, कोमल, ललित और सरस तत्सम शब्दों को वे निस्संकोच ग्रहण करते है और इस प्रकार अपनो भाषा को मधुरतम बना देते है। उद्धृत पद्यो मे से सातवे पद्य को देखिये। उनकी रचना मे जो शब्द जिस भाव की व्यंजना के लिये आते है वे ऐसे मनोनीत होते है जो अपने स्थान पर बहुत ही उपयुक्त जान पडते है। अनुप्रास अथवा वर्णमैत्री जैसो उनकी कृति मे मिलती है, अन्यत्रदुर्लभ है। जो शब्द उनकी रचना मे आते है, प्रवाह रूप से आते है। उनके अवलोकन से यह ज्ञात होता है कि वे प्रयत्न पूर्वक नहीं, स्वाभाविक रीति से आकर अपने स्थान पर विराजमान है। रसानुकूल शब्द—चयन उनकी रचना की विशेष सम्पत्ति है। अधिकतर उनकी रचनाये पद के स्वरूप ही मे है अतएव झंकार और संगीत उनके व्यवहृत शब्दो का विशेष गुण है। इतना होने पर भो जटिलता का लेश नहीं। सब ओर प्राञ्जलता और सरलता ही दृष्टिगत होती है।

१४—किसी भाव को यथातथ्य अंकित करना और उसका जीता जागता चित्र सामने लाना सूरदास जी की प्रतिभा का प्रधान गुण है। जिस भाव का चित्र वे सामने रखते है उनकी रचनाओं में वह मूर्त्तिमन्त होकर दृष्टिगत होता है। प्रार्थना और विनय के पदों मे उनके मानसिक भाव किस प्रकार ज्ञान-पथ मे विचरण करते है और फिर कैसे विश्वसत्ता के सामने वे विनत हो जाते है इस बात को उनके विनय के पद्यों की पंक्ति पंक्ति बड़ी ही सरसता से अभिव्यंजित करती पाई जाती है। उद्धृत

पद्यो में से संख्या एक से चार तक के पद्य देखिये उनमें एक ओर यदि मानवों के स्वाभाविक अज्ञान, दुर्बलताओं और भ्रम-प्रमाद पर हृदय मर्माहत होता देखा जाता है तो दूसरी ओर मानसिक करुणा अपने हाथों मे विनय की पुष्पाञ्जलि लिये किसी करुणासागर की ओर अग्रसर होती दिखलाई पडती है। बालभाव का वर्णन जिन पद्यो मे है, देखिये संख्या ५ से ७ तक उनमे बालकों के भोले भाले भाव जिस प्रकार अंकित है वे बड़े ही मर्म-स्पर्शी है। उनके देखने से ज्ञात होता है कि कवि किस प्रकार हृदय की सरल से सरल वृत्तियो और मन के सुकुमार भावों के यथातथ्य चित्रण की क्षमता रखता है। बाल-लीला के पदों को पढते समय ऐसा ज्ञात होने लगता है कि जिस समय की लीला का वर्णन है उस समय कवि खडा होकर वहा के क्रिया-कलाप को देख रहा था। इन वर्णनो के पढ़ते हो ऑखो के सामने वह समाँ आ जाता है जो उस समय वहाँ मौजूद रह कर कोई देखनेवाली ऑखे ही देख सकतीं। इस प्रकार का चित्रण सूरदास के ऐसे सहृदय कवि हो कर सकते है, अन्यो के लिये यह बात सुगम नहीं। उनका शृंगार-वर्णन पराकाष्ठा को पहुंच गया है। उतना सरस और स्वाभाविक वर्णन हिन्दी साहित्य मे नहीं मिलता, यह मैं कहूगा कि शृंगार रस के कुछ वर्णन ऐसे है कि यदि वे उस रूप मे न लिखे जाते तो अच्छा होता, किन्तु कला की दृष्टि से वे बहुमूल्य है। उनका विप्रलम्भ शृंगार ऐसा है जिसके पद पद से रस निचुडता है। संसार के साहित्य-क्षेत्र मे प्रेम-धाराये विविध रूप से बहीं, कहीं वे बडो ही वेदनामयी है, कहीं उन्मादमयी और रोमाचकारी, और कही उनमे आत्मविस्मृति और तन्मयता की ऐसी मूर्त्ति दिखलायी पडती है जो अनुभव करने वाले को किसी अलौकिक संसार मे पहुंचा देती है। फिर भी सूरदास की इस प्रकार की रचनाये पढ कर यह भावनाये उत्पन्न होने लगती है कि क्या ऐसी ही सरसता और मोहकता उन सब धाराओं मे भी होगी? प्रेम-लीलाओं के चित्रण में जैसी निपुणता देखी जाती है, वैसी प्रवीणता उनकी अन्य रचनाओ मे नहीं पाई जाती। उनका विप्रलम्भ शृंगार-सम्बन्धी वर्णन बड़ा ही उदात्त है। उनमें मन के सुकुमार भावों का जैसा अंकन है, जैसी

उनमें हृदय को द्रवित करने वाली विभूतियाँ हैं, यदि वे अन्य कहीं होंगी तो इतनी ही होंगी। वे किसी सच्चे प्रेम-पथिक की ही अनुभवनीय हैं, अन्य की नहीं। कोई रहस्यवादी बनता है, और अपरोक्ष सत्ता को लेकर निर्गुण में गुण की कल्पना करता है। परन्तु कल्पना कल्पना ही है, उसमें मानसिक वृत्तियों का वह सच्चा विकास कहां जो वास्तव में किसी सगुण से सम्बन्ध रखती हैं? जो आन्तरिक आनंद हम पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश के अनुभूत विभवों से प्राप्त कर सकते हैं, पञ्चतन्मात्राओं से नहीं, क्यों कि उनमे सांसारिकता है इनमें नहीं। हम विचारों को दौड़ा लें, पर विचार किसी आधार पर ही अवलम्बित हो सकते हैं। सांसारिकों को सांसारिकता ही सुलभ हो सकती है। संसार से परे क्या है? उसकी कल्पना वह भले ही कर ले, किन्तु उसका मन उन्हीं में रम सकता है जो सांसारिक विषय हैं। यही कारण है कि जो निर्गुणवादी बनने का दावा करते हैं वे जब आनन्दमय जीवन की कामना करते हैं तो सगुण भावों का ही आश्रय लेते हैं। सूरदास जी इसके मर्मज्ञ थे। इस लिये उन्होंने सगुण भावों को ले कर ऐसे मोती पिरोये हैं कि जिनकी बहुमूल्यता चिन्तनीय है कथनीय नहीं। उन्होंने अपने लक्ष्य को प्रकाश में रखा है, अन्धकार में नहीं। इसी लिये उनकी रचनायें प्रेममार्गी अन्य कवियों से सरसता और मोहकता में अधिकतर स्वाभाविक हैं। उनका यह रंग इतना गहरा था कि वे कभी कभी अपनी धुन में मस्त हो कर निर्गुण पर भी कटाक्ष कर जाते हैं। यह उनका प्रमाद नहीं है, वरन् उनकी सगुण परायणता का अनन्य भाव है। मेरा विचार है कि प्रेममार्ग में उनकी विप्रलम्भ शृंगार की रचनायें बड़ा महत्व रखती हैं। यह कहना कि संसार के साहित्य में उनका स्थान सर्वोच्च है, कदाचित् अच्छा न समझा जावे, परन्तु यह मानना पड़ेगा कि संसार के साहित्य की उच्चतम कृतियों में वे भी समान स्थान लाभ करने की अधिकारिणी हैं।

१५—व्रजभाषा की अधिकांश क्रियायें अकारान्त या ओकारान्त हैं। उसके सर्वनामों और कारक चिन्हों प्रत्ययों एवं प्रातिपदिक शब्दों के प्रयोगों में भी विशेषता है। जो उसको अन्य भाषाओं अथवा प्रान्तिक

बोलियों से अलग करती है। सूरदास जी ने अपनी रचना में इनके शुद्ध प्रयोगों का बहुत अधिक ध्यान रखा है। उद्धृत पद्यो के ऐसे अधिकाश शब्दो और क्रियाओ पर चिन्ह बना दिये गये है। उनके देखने से ज्ञात हो जावेगा कि वे ब्रजभाषा पर कितना प्रभाव रखते थे। उनको रचना मे फ़ारसी अरबी के शब्द भी, सामयिक प्रभाव के कारण आये है। परन्तु, उनको भी उन्होने ब्रजभाषा के रंग मे ढाल दिया है। इन सब विषयो पर अधिक लिखने से व्यर्थ विस्तार होगा। इस लिये मै इस वाहुल्य से बचता हू। थोडा सा उन पर विचार-दृष्टि डालने से ही अधिकाश बाते स्पष्ट हो जॉयगी।

पहले लिख आया हूं कि सूरदास जी ही ब्रजभाषा के प्रधान आचार्य है। वास्तव बात यह है कि उन्होने ब्रजभाषा के लिये जो सिद्धान्त साहित्यिक दृष्टि से बनाये और जो मार्ग-प्रदर्शन किया आज तक उसी को अवलम्बन करके प्रत्येक ब्रजभाषा का कवि साहित्य-क्षेत्र मे अग्रसर होता है। उनके समय से जितने कवि और महाकवि ब्रजभाषा के हुये वे सब उन्हीं को प्रवर्त्तित-प्रणाली के अनुग है। उन्हीं का पदानुसरण उस काल से अब तक कवि-समूह करता आया है, उनके समयसे अब तक का साहित्य उठा लीजिये, उसमे स्वयं-प्रकाश सूर की ही प्रभा विकीर्ण होती दिखलायी पड़ेगी। जो मार्ग उन्होंने दिखलाया वह आजतक यथातथ्य सुरक्षित है। उसमे कोई साहित्यकार थोडा परिवर्तन भी नही कर सका। कुछ कवियो ने प्रान्त-विशेष के निवासी होने के कारण अपनी रचना मे प्रान्तिक शब्दों का प्रयोग किया है। परन्तु वह भी परिमित है। उन्होने उस प्रधान आदर्श से मुंह नहीं मोडा जिसके लिये कविवर सूरदास कवि-समाज मे आज तक पूज्य दृष्टि से देखे जाते है।

डाक्टर जी ए ग्रियर्सन ने उनके विषय मे जो कुछ लिखा है आप लोगों के अवलोकनके लिये उसे भी यहा उद्धृत करता हूं। वे लिखते है—

"साहित्य मे सूरदास के स्थान के सम्बन्ध में मै यही कह सकता हूं कि वह बहुत ऊँचा है। सब तरह की शैलियो में वे अद्वितीय है। आव-

श्यकता पडने पर वे जटिल से जटिल शैली मे लिख सकते थे और फिर दूसरे ही पद मे ऐसी शैली का अवलम्बन कर सकते थे जिसमे प्रकाश की किरणों की सी स्पष्टता हो। किसी गुण विशेष मे अन्य कवि भले ही उनकी बराबरी कर सके हो किन्तु सूरदास मे अन्य समस्त कवियो के सर्वोत्कृष्ट गुणो का एकत्री भाव है। १

गोस्वामी तुलसीदास जी की काव्य कला अमृतमयी है। उससे वह संजीवनी धारा निकली जिसने साहित्य के प्रत्येक अङ्ग को ही नवजीवन नहीं प्रदान किया वरन मृतक प्राय हिन्दू समाज के प्रत्येक अङ्ग को वह जीवनी शक्ति दी जिससे वह बडे संकट-काल मे भी जीवित रह सकी इसीलिये वे हिन्दी संसार के सुधाधर है। गोस्वामीजी की दृष्टि इतनी प्रखर थी और सामयिकता की नाडी उन्हो ने इस मार्मिकता से टटोली कि उनकी रचनाये आज भी रुग्न मानसो के लिये रसायन का काम दे रही है। यदि केवल अपने-अलौकिक ग्रन्थ राम चरित मानस को ही उन्हो ने निर्माण किया होता तो भी उनकी वह कीर्ति अक्षुण्ण रहती जो आज निर्मल कौमुदी समान भारत-वसुन्धरा मे विस्तृत है। किन्तु उनके और भी कई ग्रन्थ ऐसे है जिनसे उनकी कीर्ति-कौमुदी और अधिक उज्ज्वल हो गई है और इसीलिये वे कौमुदीश है। ब्रजभाषा और अवधी दोनो पर उनका समान अधिकार देखा जाता है। जैसी ही अपूर्व रचना वे ब्रजभाषा मे करते है वैसी ही अवधी मे। रामचरित मानस की रचना अवधी भाषा मे ही हुई है। किन्तु गोस्वामी जी की अवधी परिमार्जित अवधी है और यही कारण है कि जब मलिक मुहम्मद जायसी की 'पदमावत' की भाषा आजकल कठिनता से समझी जाती है तब गोस्वामीजी को रामायण को सर्व साधारण समझ लेते है। मलिक मुहम्मद जायसी को भाषा के विषय मे मै ऊपर बहुत कुछ लिख आया हू। वे भी संस्कृत

1 "Regarding Surdas' s place in literature, I commonly add that he justly holds a high one He excelled in all styles He could, if occasion required, be more obscure than the sphynu and in the next verse he as clear as a ray of light Other poets may have equalled him in someparticular quality, but he combined the best qualities of all,"

तत्सम शब्दों का प्रयोग करते है। किन्तु उनका संस्कृत शब्दोंका भाण्डार व्यापक नहीं था। इसलिये वे सरस, भावमय एवं कोमल संस्कृत शब्दों के चयन मे उतने समर्थ नहीं बन सके जितने गोस्वामीजी। कही कहीं उन्हों ने संस्कृत शब्दो को इतना विकृत कर दिया है कि उसकी पहचान कठिनता से होती है। जैसा 'शार्दूल' का 'सदूर। परन्तु गोस्वामीजी इस महान दोष से सर्वथा मुक्त है। अवधी शब्दो और वाक्यो के विषय मे भी उनकी सहृदयता नीर-क्षीर का विवेक करने मे हंस की सी शक्ति रखती है। रामचरित-मानस विशाल ग्रन्थ है। परन्तु उसमे ग्रामीण भद्दे शब्द बहुत खोजने पर भी नहीं मिलते। कहीं कहीं तो अवधी शब्द का व्यवहार उनके द्वारा इस मधुरता से हुआ है कि वे बड़े ही हृदयग्राही बन गये है। उनकी दृष्टि विशाल थी और वे इस बात के इच्छुक थे कि उनकी रचना हिन्दू संसार मे नवजीवन का संचार करे। अतएव उन्हों ने हिन्दी-भाषा के ऐसे अनेक शब्दों को भी अपनी रचना मे स्थान दिया है जो अवधी भाषा के नहीं कहे जा सकते। उनकी इस दूर दर्शिनी दृष्टि का हो यह फल है कि आज उनके महान् ग्रन्थ की उतनी व्यापकता है, कि उसके लिये 'गेहे गेहे जने जने,' वाली कहावत चरितार्थ हो रही है।

गोस्वामी जी जिस समय साहित्य-क्षेत्र मे उतरे उस समय निर्गुण-धारा बड़े बेग से बह रही थी। जो जनता को परोक्ष सत्ता की ओर ले जा कर उसके मनों मे सासारिकता से विराग उत्पन्न कर रही थी। विराग वेदिकधर्म का एक अङ्ग है। उसको शास्त्रीय भाषा मे निवृत्ति मार्ग कहते है। अवस्था विशेष के लिये ही यह मार्ग निर्दिष्ट है। परन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि प्रवृत्ति मार्ग की उपेक्षा कर अनधिकारी भी निवृत्ति-मार्गी बन जाये। निवृत्ति मार्ग का प्रधान गुण है त्याग, जो सर्वसाधारण के लिये सुलभ नहीं। इसीलिये अधिकारी पुरुष ही निवृत्ति मार्गी बन सकता है क्योंकि जो तत्वज्ञ नहीं वह निवृत्ति-मार्ग के नियमों का पालन नहीं कर सकता। निवृत्ति मार्ग का यह अर्थ नहीं कि मनुष्य घर बार और बाल बच्चों का त्याग कर अकर्मण्य बन जाये और तमूरा खड़का कर अपना पेट पालता फिरे। त्याग मानसिक होता है और

उसमे वह शक्ति होती है जो देश, जाति, समाज और मानवीय आत्मा को बहुत उन्नत बना देती है। जो अपने गृह को, परिवार को, पडोस को ग्राम को अपनी सहानुभूति, सत्यव्यवहार और त्याग बल से उन्नत नहीं बना सकता उसका देश और जाति को ऊँचा उठाने का राग अलापना अपनी आत्मा को ही प्रतारित नहीं करना है, प्रत्युत दूसरों के सामने ऐसे आदर्श उपस्थित करना है जो लोक संग्रह का बाधक है। निर्गुणवादियों ने लोक संग्रह की ओर दृष्टि डाली ही नहीं। वे संसार की असारता का राग ही गाते और उस लोक की ओर जनता को आकर्षित करने का उद्योग करते देखे जाते है जो सर्वथा अकल्पनीय है। वहा सुधा का स्रोत प्रवाहित होता हो, स्वर्गीय गान श्रवणगत होता हो, सुर दुर्लभ अलौकिक पदार्थ प्राप्त होते हो। वहा उन विभूतियो का निवास हो जो अचिन्तनीय कही जा सकती है। परन्तु वे जीवो के किस काम की जब उनको वे जीवन समाप्त करके ही प्राप्त कर सकते है ? मरने के उपरान्त क्या होता है, अब तक इस रहस्य का उद्घाटन नहीं हुआ। फिर केवल उस कल्पना के आधार पर उसको असार कहना जिसका हमारे जीवन के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध है क्या बुद्धिमत्ता है ? यदि संसार असार है और उसका त्याग आवश्यक है तो उस सार वस्तु को सामने आना चाहिये कि जो वास्तव मे कार्य-क्षेत्र मे आकर यह सिद्ध कर दे कि संसार की असारता मे कोई सन्देह नही। हमारे इन तर्कों का यह अर्थ नहीं कि हम परोक्षवाद का खण्डन करते है, या उन सिद्धान्तो का विरोध करने के लिये कटिबद्ध है जिनके द्वारा मुक्ति, नरक, स्वर्ग आदि की सत्ता स्वीकार की जाती है। यह बडा जटिल विषय है। आज तक न इसकी सर्वसम्मत निष्पत्ति हुई न भविष्य काल मे होने की आशा है। यह विषय सदा ही रहस्य बना रहेगा। मेरा कथन इतना ही है कि सासारिकता की समुचित रक्षा करके ही परमार्थ-चिन्ता उपयोगी बन सकती है, वरन् सत्य तो यह है कि सासारिक समुन्नत त्यागमय जीवन ही परमार्थ है। हम आत्म-हित करते हुये जब लोकहित-साधन मे समर्थ हों तभी मानव जीवन सार्थक हो सकता है। यदि विचार दृष्टि से देखा जावे तो यह स्पष्ट हो जावेगा

कि जो आत्म-हित करने मे असमर्थ है वह लोक हित करने मे समथ नहीं हो सकता । आत्मोन्नति के द्वारा ही मनुष्य लोक-हित करने का अधिकारी होता है। देखा जाता है कि जिसके मुख से यह निकलता रहना है कि 'अजगर करै न चाकरी, पछी करै न काम' 'दास मलूका यों कहै, सब के दाता राम', वह भी हाथ पॉव डाल कर बेठा नहीं रहता। क्योकि पेट उसको बैठने नही देता। हॉ इस प्रकार के विचारो से समाज में अकर्मण्यता अवश्य उत्पन्न हो जाती है, जिससे अकर्मण्य प्राणी जाति और समाज के बोझ बन जाते है। उचित क्या है ? यही कि हम अपने हाथ पॉव आदि को उन कर्मो मे लगावे कि जिनके लिये उनका सृजन है। ऐसा करनेसे लाभ यह होगा कि हम स्वयं संसारसे लाभ उठायेगे और इस प्रवृत्ति के अनुसार सॉसारिक अन्य प्राणियो को भी लाभ पहुँचा सकेगे प्रयोजन यह है कि सासारिकता की रक्षा करते हुये, लोक मे रहकर लोक के कर्त्तव्य का पालन करते हुये, यदि मानव वह विभूति प्राप्त कर सके जो अलौकिक बतलायी जाती है। तब तो उसकी जीवन यात्रा सुफल होगी, अन्यथा सब प्रकार की असफलता ही सामने आवेगी। रहा यह कि परलोक मे क्या होगा उसको यथा तथ्य कौन बतला सका ?

निर्गुणवाद की शिक्षा लगभग ऐसी ही है जो संसार से विराग उत्पन्न करती रहती है। घर छोडो, धन छोडो विभव छोडो, कुटुम्ब-परिवार छोडो करो क्या ? जप, तप और हरि भजन। जीवन चार दिन का है, संसार मे कोई अपना नहीं। इसलिये सबको छोडो और भगवान का नाम जप कर अपना जन्म बनाओ। इस शिक्षा मे लोक संग्रह का भाव कहॉ ? इन्हीं शिक्षाओ का यह फल है कि आज कल हिन्दू समाज मे कई लाख ऐसे प्राणी है जो अपने को संसार त्यागी समझते है और आप कुछ न कर दूसरो के सिर का बोझ बन रहे है। उनके बाल बच्चे अनाथ हो, उनकी स्त्री भूखो मरे उनकी बला से। वे देश के काम आव या न आवे, जाति का उनसे कुछ भला हो या न हो, समाज उनसे छिन्न-भिन्न होता है तो हो, उनको इन बातों से कोई मतलब नहीं, क्योंकि वे भगवान के भक्त बन गये है और उनको इन पचड़ो से कोई काम नही। संसार मे रह कर

कैसे जीवन व्यतीत करना चाहिये ? कैसे दूसरो के काम आना चाहिये ? कैसे कष्ठितो का कष्ट-निवारण करना चाहिये ? कैसे प्राणीमात्र का हित करना चाहिये ? मानवता किसे कहते है ? साधुचरित्र का क्या महत्व है ? महात्मा किसका नाम है ? वे न इन बातो को जानते और न इन्हे जानने का उद्योग करते है। फिर भी वे हरि भक्त है और इस बात का विश्वास रखते है कि उनके लेने के लिये सीधे सत्य लोक से बिमान आयेगा। जिस के ऐसे संस्कार है उससे लोक-संग्रह की क्या आशा है ? किन्तु कष्ट की बात है कि अधिकाश हमारा संसार-त्यागी-समाज ऐसा ही है। क्यो कि उसने त्याग और हरि-भजन का मर्म समझा ही नही, और क्यो समझता जब परोक्ष सत्ता ही से उसको प्रयोजन है और ससार से उसका कोई सम्बन्ध नहीं।

महाप्रभु वल्लभाचार्यने हिन्दू समाजके इस रोग को उस समय पहचाना था और उन्होंने अपने सम्प्रदाय का यह प्रधान सिद्धान्त रक्खा कि गार्हस्थ्य धर्म मे रह कर ही और सासारिक समस्त कर्तव्यो का पालन करते हुये ही परमार्थ चिन्ता करनी चाहिये, जिससे समाज लोक संग्रह के मर्मको न समझ कर अस्त-व्यस्त न हो। त्याग का विरोध उन्होने नही किया, किन्तु त्याग के उस उच्च आदर्श की ओर हिन्दू समाज की दृष्टि आकर्षित की जो मानस-सम्बन्धी सच्चा त्याग है। उनका आदर्श इस श्लोक के अनुसार था।

वनेषु दोषाः प्रभवन्ति रागिणाम्,
गृहेषु पंचेन्द्रिय निग्रहस्तपः
अकुत्सिते कर्मणि यः प्रवर्त्तते,
निवृत्त रागस्य गृहं तपोवनम्।

रागात्मक जनो के लिये वन भी सदोष बन जाता है घर मे रह कर पाँचों इन्द्रियों का निग्रह करना ही तप है। जो अकुत्सित कर्मो में प्रवृत्त होता है उसके लिये घर ही तपोबन है। महाप्रभु वल्लभाचार्य की तरह गोस्वामी जी मे भी लोक-सग्रह का भाव बड़ा प्रबल था। सामयिक मिथ्या-

चारों और अयथा विचारो से वे संतप्त थे। आर्य्य मर्यादा का रक्षण ही उनका ध्येय था। वे हिन्दू जाति की रगो मे वह लहू भरना चाहते थे कि जिससे वह सत्य-संकल्प और सदाचारी बन कर वैदिक धर्म की रक्षा के उपयुक्त बन सके। वे यह भली भाति जानते थे कि लोक-संग्रह सभ्यता की उच्च सीढियो पर आरोहण किये बिना ठीक ठीक नही हो सकता, वे हिन्दू जनता के हृदय मे यह भाव भी भरना चाहते थे कि चरित्र बल ही संसार मे सिद्धि-लाभ का सर्वोत्तम साधन है। इस लिये उन्होने उस ग्रन्थ की रचना की जिसका नाम रामचरित मानस है और जिसमे इन सब बातो की उच्च से उच्च शिक्षा विद्यमान है। उनकी वर्णन-शैली और शब्द-विन्यास इतना प्रबल है कि उनसे कोई हृदय प्रभावित हुये बिना नहीं रहता। अपने महान् ग्रन्थ मे उन्होने जो आदर्श हिन्दू समाज के सामने रखे है वे इतने पूर्ण, व्यापक और उच्च है जो मानव समाज की समस्त आवश्यकताओ और न्यूनताओं की पूर्ति करते है। भगवान् रामचन्द्र का नाम मर्य्यादा पुरुषोत्तम है। उनकी लीलाये आचार-व्यवहार और नीति भी मर्य्यादित है। इसलिये रामचरित मानस भी मर्य्यादामय है। जिस समय साहित्य मे मर्य्यादा का उल्लंघन करना साधारण बात थी, उस समय गोस्वामी जी को ग्रन्थ भर मे कहीं मर्य्यादा का उल्लंघन करते नहीं देखा जाता। कवि कर्म्म में जितने संयत वे देखे जाते है हिन्दी संसार मे कोई कवि या महाकवि उतना संयत नहीं देखा जाता और यह उनके महान् तप और शुद्ध विचार तथा उस लगन का ही फल है जो उनको लोक-संग्रह की ओर खींच रहा था।

गोस्वामी जी का प्रधान ग्रंथ रामायण है। उसमे धर्मनीति, समाज-नीति, राजनीति का सुन्दर से सुन्दर चित्रण है। गृहमेधियो से लेकर संसार त्यागी सन्यासियो तक के लिये उसमे उच्च से उच्च शिक्षाये मौजूद है। कर्त्तव्य-क्षेत्र मे उतर कर मानव किस प्रकार उच्च जीवन व्यतीत कर सकता है, जिसप्रकार इस विषय मे उसमे उत्तम से उत्तम शिक्षाये मौजूद है उसी प्रकार परलोक-पथ के पथिको के लिये भी पुनीत ज्ञान-चर्चा और लोकोत्तर विचार विद्यमान है। हिन्दूधर्म के विविध

मतो का समन्वय जैसा इस महान् ग्रन्थ मे मिलता है वैसा किसी अन्य ग्रन्थ मे दृष्टिगत नहीं होता। शैवो और वैष्णवों का कलह सर्व-जन विदित है परन्तु गोस्वामीजी ने उसका जिस प्रकार निराकरण किया उसकी जितनी प्रशंसा की जाय थोडी है। समस्त वेद, शास्त्र और पुराणों के उच्च से उच्च भावों का निरूपण इस ग्रन्थ मे पाया जाता है और अतीव प्राञ्जलता के साथ। काव्य और साहित्य का कोई उत्तम विषय ऐसा नहीं कि जिसका दर्शन इस ग्रन्थ मे न होता हो। यह ग्रन्थ सरसता मधुरता, और मनोभावो के चित्रण मे जैसा अभूतपूर्व है वैसाही उपयोगिता मे भी अपना उच्चस्थान रखता है। यही कारण है कि तीन सौ वर्ष से वह हिन्दूसमाज, विशेष कर उत्तरीय भारत, का आदर्श ग्रन्थ है। जिस समय मुसलमानो का अव्याहत प्रताप था, शास्त्रो के मनन, चिन्तन का मार्ग धीरे धीरे बन्द हो, रहा था, संस्कृत की शिक्षा दुर्लभतर हो रही थी और हिन्दू समाज के लिये सच्चा उपदेशक दुष्प्राप्य था। उस समय इस महान् ग्रन्थ का प्रकाश ही उस अन्धकार का नाश कर रहा था जो अज्ञात-रूप मे हिन्दुओ के चारो ओर व्याप्त था। आज भी उत्तर भारत के गॉव गॉव मे हिन्दू शास्त्र के प्रमाण-कोटि मे रामायण की चौपाइया गृहीत है। प्राय अंग्रेज विद्वानो ने लिखा है कि योरोप मे जो प्रतिष्ठा बाइबिल (Bible) को प्राप्त है भारतवर्ष मे वह गौरव यदि किसी ग्रन्थ को मिला तो वह रामचरित मानस है। एक साधारण कुटी से लेकर राजमहलों तक मे यदि किसी ग्रन्थ की पूजा होती है तो वह रामायण ही है। उसका श्रवण, मनन और गान सबसे अधिक अब भी होता है। व्याख्याता अपने व्याख्यानों में रामायण की चौपाइयों का आधार लेकर जनता पर प्रभाव डालने मे आज भी अधिक समर्थ होता है। वास्तव बात तो यह है कि आज दिन जो महत्व इस ग्रन्थ को प्राप्त है वह किसी महान् से महान् संस्कृत ग्रन्थ को भी नहीं। इन बातो पर दृष्टि रख कर जब विचार करते हैं तो यह ज्ञात होता है कि गोस्वामी जी हिन्दी साहित्य के सर्वमान्य कवि ही नही है, हिन्दू संसार के सर्वपूज्य महात्मा भी है।]

मैं पहले कविवर सूरदास जी के विषय मे अपनी सम्मति प्रकट कर

चुका हूं और अब भी यह मुक्त कंठ से कहता हूं कि सूरदास जी ने जिस विषय पर लेखनी चलायी है उसमे उनकी समकक्षता करने वाला हिन्दी साहित्य मे कोई अब तक उत्पन्न नहो हुआ। किन्तु जैसी सर्वतोमुखी प्रतिभा गोस्वामो जी मे देखो जाती है सूरदास जी मे नहीं।

गोस्वामोजी नवरस-सिद्ध महाकवि है। सूरदासजी को यह गौरव प्राप्त नहीं। कलाकी दृष्टि से सूरदासजी तुलसीदासजीसे कम नहीं है। दोनो एक दूसरेके समकक्ष है। किन्तु उपयोगिता दृष्टिसे तुलसीदासजीका स्थान अधिक उच्च है। दूसरी विशेषता गोस्वामी जी मे यह है कि उनकी रचनाये बड़ी ही मर्य्यादित है। वे श्रीमती जानकी जी का वर्णन जहाँ करते है वहा उनको जगज्जननी के रूप मे ही चित्रग करते है। उनकी लेखनी जानकी जी की महत्ता जिस रूप मे चित्रित करती है वह बडी ही पवित्र है। जानकी जी के सौन्दर्य-वर्णन की भी उन्होने पराकाष्ठा की है। किन्तु उस वर्णन मे भी उनका मातृ पद सुरक्षित है। निम्न लिखित पंक्तियों को देखिये —

१— जो पट तरिय तीय सम सीया ।
जग अस जुवति कहाँ कमनीया।
गिरा मुखर तनु अरध भवानी।
रति अति दुखित अतनुपति जानी।
विष वारुनी वन्धु प्रिय जेही ।
कहिय रमा सम किमि वैदेही।
जो छवि सुधा पयोनिधि होई ।
परम रूपमय कच्छप सोई ।
सोभा रजु मंदर सिगारू ।
मथै पानि पंकज निज मारू ।
येहि विधि उपजै लच्छि जव, सुंदरता सुख मूल।
तदपि सकोच समेत कवि, कहहि सीय सम तूल।

सूरदास जी मे यह उच्च कोटि की मर्यादा दृष्टिगत नही होती । वे जब श्री मती राधिका के रूप का वर्णन करने लगते है तो ऐसे अंगो का भी वर्णन कर जाते है जो अवर्णनीय है । उनका वर्णन भी इस प्रकार करते है जो संयत नहीं कहा जा सकता । कभी कभी इस प्रकार का वर्णन अश्लील भी हो जाता है । मै यह मानूंगा कि प्राचीन काल से कवि-परम्परा कुछ ऐसी हो रही है । संस्कृत के कवियो मे भी यह दोष पाया जाता है । कवि-कुल-गुरु कालिदास भी इस दोष से मुक्त न रह सके । रघुवंश मे वे इन शब्दो मे पार्वती और परमेश्वर की वंदना करते है —**"वागर्थमिव सम्पृक्तौ वागर्थ प्रतिपत्तये ! जगतः पितरौ वंदे, पार्वती परमेश्वरौ"** । परन्तु उन्होने ही कुमार सम्भव के अष्टमसर्ग मे भगवान शिव और जगज्जननी पार्वती का विलास ऐसा वर्णन किया है जो अत्यन्त अमर्यादित है । संस्कृतके कई विद्वानो ने उनकी इस विषयमे कुत्सा की है । यह कवि-परम्परा ही का अन्धानुकरण है कि जिससे कवि-कुल-गुरु भी नहीं बच सके, फिर ऐसी अवस्था मे सूरदास जी का इस दोष से मुक्त न होना आश्चर्यजनक नही । यह गोस्वामीजी की ही प्रतिभा की विशेषता है कि उन्होने चिरकाल प्रचलित इस कुप्रथाका त्याग किया और यह उनकी भक्तिमय प्रवृत्ति का फल है । इस भक्ति के बल से ही उनकी कविता के अनेक अंश अभूतपूर्व और अलौकिक है । इस प्रवृत्ति ने ही उन को बहुत ऊँचा उठाया और इस प्रवृत्ति के बल से ही इस विषय मे वे सूरदास जी पर विजयी हुये । आत्मोन्नति, सदाचार-शिक्षा, समाज-संगठन, आर्य जातीय उच्च भावो के प्रदर्शन, सद्भाव, सत् शिक्षा के प्रचार एवं मानव प्रकृति के अध्ययन मे जो पद तुलसी दास जी को प्राप्त है उस उच्च पद को सूरदास जी नहीं प्राप्त कर सके । दृष्टि-कोण की व्यापकता मे भी सूरदास का वह स्थान नहीं है जो स्थान गोस्वामी जी का है । मैं यह मानूंगा कि अपने वर्णनीय विषयो मे सूरदास जी की दृष्टि बहुत व्यापक है । उन्होंने एक एक विषय को कई प्रकार से वर्णन किया है । मुरली पर पचासो पद्य लिखे है तो नेत्रो के वर्णन मे सैकडों पद लिख डाले है । परन्तु सर्व विषयों मे अथवा शास्त्रीय सिद्धान्तो के निरूपण मे जैसी विस्तृत दृष्टि गोस्वामीजी की है उनकी

नहीं। सूरदास जी का मुरली निनाद विश्व विमुग्धकर है। उनको प्रेम-सम्बन्धी कल्पनायें भी बड़ी ही सरस एवं उदात्त है। परन्तु गोस्वामी जी की मेघ-गम्भीर गिरा का गौरव विश्वजनीन है और स्वर्गीय भी। उनकी भक्ति भावनायें भी लोकोत्तर है। इसीलिये मेरा विचार है कि गोस्वामीजी का पद सूरदास जी से उच्च है।

मैंने पहले यह लिखा है कि अवधी और व्रजभाषा दोनों पर उनका समान अधिकार था। मै अपने इस कथन की सत्यता-प्रतिपादन के लिये उनकी रचनाओं मे से दोनों प्रकार के पद्यों को नीचे लिखता हूं। उनको पढ कर आपलोग स्वयं अनुभव करेंगे कि मेरे कथन मे अत्युक्ति नहीं है।

१—फोरइ जोग कपारु अभागा।
भलेउ कहत दुख रउरेहि लागा।
कहहि झूठि फुरि बात बनाई।
ते प्रिय तुम्हहि करुइ मैं माई।
हमहुँ कहब अंब ठकुर सोहाती।
नाहिँ त मौन रहब दिन राती।
करि कुरूप विधि परबस कीन्हा।
बवा सो लुनिय लहिय जो दीन्हा।
कोउ नृप होइ हमै का हानी।
चेरि छॉड़ि अब होब कि रानी।
जारइ जोग सुभाउ हमारा।
अनभल देखि न जाइ तुम्हारा।
तातें कछुक बात अनुसारी।
छमिय देवि बड़ि चूक हमारी।
तुम्ह पूंछउ मैं कहत डराऊँ।
धरेउ मोर घरफोरी नाऊँ।

रहा प्रथम अब ते दिन बीते ।
समउ फिरे रिपु होइँ पिरीते ।
जर तुम्हारि चह सवति उखारी।
रूँधहु करि उपाइ बर बारी ।
तुम्हहिँ न सोच सोहाग बल,
निज बस जानहु राउ ।
मन मलीन मुंहु मीठु नृप,
राउर सरल सुभाउ ।
जौ असत्य कछु कहब बनाई ।
तौ बिधि देइहि हमहिं सजाई ।
रेख खँचाइ कहहुँ बल भाखी ।
भामिनि भइहु दूध कै माखी ।

काह करउँ सखि सूध सुभाऊ ।
दाहिन बाम न जानउँ काऊ ।
नैहर जनम भरब बरु जाई ।
जिअत न करब सवति सेवकाई ।

रामायण

२—मोकहँ झूठहि दोष लगावहि ।
मइया इनहि बान परगृह की नाना जुगुति बनावहिं।
इन्ह के लिये खेलिबो छोर्‌यो तऊ न उबरन पावहि ।
भाजन फोरि बोरि कर गोरस देन उरहनो आवहि ।
कबहुंक बाल रोवाइ पानि
गहि एहि मिस करि उठि धावहिं ।

करहिं आप सिर धरहिं
आन के बचन बिरंचि हरावहिं।
मेरी टेव बूझ हलधर सों संतत संग खेलावहिं।
जे अन्याउ करहिँ काहू को ते सिसु मोहि न भावहिं।
सुनि सुनि बचन-चातुरी
ग्वालिनि हँसि हँसि बदन दुरावहिं।
बाल गोपाल केलि कल कीरति।
तुलसि दास मुनि गावहिं

३—अबहि उरहनो दै गई बहुरो फिरि आई।
सुनि मइया तेरी सौं करौं याकी टेव
लरन की सकुच बेंचि सी खाई।
या व्रज में लरिका घने हौं ही अन्याई।
मुँह लाये मूँड़हिं चढ़ी अन्तहु
अहिरिनि तोहिं सूधी करि पाई।

कृष्ण गीतावली।

रामायण का पद्य अवधी बोल चाल का बड़ा ही सुन्दर नमूना है। उसमे भावुकता कितनी है और मानसिक भाव का कितना सुन्दर चित्रण है इसको प्रत्येक सहृदय समझ सकता है। स्त्री-सुलभ प्रकृति का इन पद्यों मे ऐसा सच्चा चित्र है कि जिसको बारबार पढ कर भी जी नहीं भरता। कृष्ण गीतावली के दोनों पद भी अपने ढंग के बडे ही अनूठे है। उनमे व्रजभाषा-शब्दों का कितना सुन्दर व्यवहार है और किस प्रकार महावरो की छटा है वह अनुभव की वस्तु है। बालभाव का जैसा चित्र दोनों पदों मे है उसको जितनी प्रशंसा की जाय थोडी है। गोस्वामी जी की लेखनी का यही महत्व है कि वे जिस भाव को लिखते है उसका यथातथ्य चित्रण कर देते है और यही महाकवि का लक्षण है। गोस्वामी

जी ने अपने ग्रन्थों में से रामायण की मुख्य भाषा अवधी रखी है । जान की मंगल, राम लला नहछू, बरवै रामायण और पार्वती मंगल की भाषा भी अवधी है। कृष्ण गीतावली को उन्होने शुद्ध ब्रजभाषा मे लिखा है। अन्य ग्रन्थो मे उन्होने बडी स्वतंत्रता से काम लिया है। इनमे उन्होने अपनी इच्छा के अनुसार यथावसर ब्रजभाषा और अवधी दोनो के शब्दो का प्रयोग किया है।

गोस्वामीजी की यह विशेषता भी है कि उनका हिन्दी के उस समय के प्रचलित छन्दों पर समान अधिकार देखा जाता है। यदि उन्होंने दोहा-चौपाई मे प्रधान-ग्रन्थ लिख कर पूर्ण सफलता पायी तो कवितावली को कवित्त और सवैया मे गीतावली और विनय-पत्रिका को पदो मे लिख कर मुक्तक विषयो के लिखने मे भी अपना पूर्ण अधिकार प्रकट किया। उनके बरवे भी बडे सुन्दर है और उनकी दोहावली के दोहे भी अपूर्व हैं। इस प्रकार की क्षमता असाधारण महाकवियों मे ही दृष्टिगत होती है। मै इन ग्रन्थो के भी थोडे से पद्य आप लोगो के सामने रखता हूं। उनको पढिये और देखिये कि उनमे प्रस्तुत विषय और भावो के चित्रण मे कितनी तन्मयता मिलती है और प्रत्येक छन्द मे उनकी भाषा का झंकार किस प्रकार भावो के साथ झंकृत होता रहता है। विषयानुकूल शब्द-चयन मे भी वे निपुण थे। नीचे के पद्यो को पढ कर आप यह समझ सकेंगे कि भाषा पर उनका कितना अधिकार था। वास्तव मे भाषा उनकी अनुचरी ज्ञात होती है। वे उसे जब जिस ढंग मे ढालना चाहते है ढाल देते है.—

४—बर दंत की पंगति कुंद कली
अधराधर पल्लव खोलन की।
चपला चमकै घन बीच जगै
छबि मोतिन माल अमोलन की।
घुंघरारी लटैं लटकैं मुख ऊपर
कुण्डल लोल कपोलन की।

निवछावर प्रान करै तुलसी
बलि जाउँ लला इन बोलन की ।

५—हाट बाट कोट ओट अटनि अगार पौरि
खोरि खोरि दौरि दौरि दीन्हों अति आगि है ।
आरत पुकारत सँभारत न कोऊ काहू
व्याकुल जहाँ सो तहाँ लोक चल्यो भागि है ।
बालधी फिरावै बार बार झहरावै झरैं
बूँदियाँसी लंक पघिराई पाग पागि है ।
तुलसी विलोकि अकुलानी जातुधानी कहै
चित्रहूं के कपिसों निसाचर न लागि है ।

कवितावली

६—पौढ़िये लाल पालने हौं झुलावौं ।
बाल बिनोद मोद मंजुल मनि
किलकनि खानि खुलावौं ।
तेइ अनुराग ताग गुहिबे कहँ
मति मृगनैनि बुलावौं ।
तुलसी भनित भली भामिनि
उर सो पहिराइ फुलावौं ।
चारु चरित रघुवर तेरे तेहि
मिलि गाइ चरन चित लावौं ।

७—बैठी सगुन मनावति माता ।
कब अइहैं मेरे बाल कुसल घर
कहहु काग फुरि बाता ।

दूध भात की दोनी दैहौं
सोने चोंच मढ़ैहौं ।
जब सिय सहित बिलोकि
नयन भरि राम लखन उर लैहौं ।
अवधि समीप जानि जननी
जिय अति आतुर अकुलानी ।
गनक बुलाइ पाय परि पूछत
प्रेम मगन मृदु बानी ।
तेहि अवसर कोउ भरत
निकट ते समाचार लै आयो ।
प्रभु आगमन सुनत तुलसी
मनो मरत मीन जल पायो ।

गीतावली

८—बावरो रावरो नाह भवानी ।
दानि बड़ो दिन देत दये
बिनु बेद बड़ाई भानी ।
निज घर की बर बात बिलोकहु
हो तुम परम सयानो ।
सिवकी दई संपदा देखत
श्री सारदा सिहानी ।
जिनके भाल लिखी लिपि
मेरी सुख की नहीं निसानी ।
तिन रंकन को नाक सँवारत
हौं आयों नकवानी ।

दुख दीनता दुखी इनके दुख
जाचकता अकुलानी ।
यह अधिकार सौंपिये
औरहिँ भीख भली मैं जानी ।
प्रेम प्रसंसा विनय व्यंग जुत
सुनि विधि की बर बानी ।
तुलसी मुदित महेस मनहि मन
जगत मातु मुसकानी ।

९—अबलौं नसानी अब ना नसैहौं ।
राम कृपा भव निसा सिरानी
जागे फिर न डसैहौं ।
पायो नाम चारु चिंतामनि
उर कर ते न खसैहौं ।
स्याम रूप सुचि रुचिर कसौटी
चित कंचनहिँ कसैहौं ।
परवस जानि हस्यों इन इन्द्रिन
निज बस ह्वै न हंसैहौं ।
मन मधु कर पन करि तुलसी
रघुपति पद कमल बसैहौं ।

विनयपत्रिका

१०—गरब करहु रघुनन्दन जनि मन माँह ।
देखहु आपनि मूरति सिय कै छाँह ।
डहकनि है उँजियरिया निसि नहि घाम
जगत जरत अस लागइ मोंहि बिनु राम ।

अब जीवन कै है कपि आस न कोइ।
कनगुरिया कै मुँदरी कंकन होइ।
स्याम गौर दोउ मूरति लछिमन राम।
इनते भई सित कीरति अति अभिराम।
विरह आग उर ऊपर जब अधिकाइ।
ए अँखिया दोउ बैरिन देहिं बुताइ।
सम सुबरन सुखमाकर सुखद न थोर।
सीय अंग सखि कोमल कनक कठोर।

बरवै रामायण

११--तुलसी पावस के समै धरी कोकिला मौन।
अबतो दादुर बोलि हैं हमै पूछि है कौन।
हृदय कपट बर बेष धरि बचन कहैं गढ़ि छोलि।
अब के लोग मयूर ज्यों क्यों मिलिये मन खोलि।
आवत ही हरखै नहीं नैनन नहीं सनेह।
तुलसी तहाँ न जाइये कंचन बरसै मेह।
तुलसी मिटै न मोह तम किये कोटि गुन ग्राम।
हृदय कमल फूलै नहीं बिनु रवि कुल रवि राम।
अमिय गारि गारेउ गरल नारि करी करतार।
प्रेम बैर की जननि जुग जानहिं बुध न गँवार।

दोहावली

व्रजभाषा और अवधी के विशेष नियम क्या है, मैं इसे पहले विस्तार से लिख चुका हू। मलिक मुहम्मद जायसी और सूरदास की भाषा मे उक्त भाषाओ के नियमो का प्रयोग भी दिखला चुका हू। गोस्वामी जी की रचना मे भी अवधी और व्रज-भाषा के नियमों का पालन पूरा पूरा

हुआ है। मैं उनकी रचना की पंक्तियो को ले कर इस बात को प्रमाणित कर सकता हू। किन्तु यह बाहुल्य मात्र होगा। गोस्वामी जी की उद्धृत रचनाओ को पढ कर आप लोग स्वयं इस बात को समझ सकते है कि उन्होंने किस प्रकार दोनो भाषाओ के नियमो का पालन किया-मै उसका दिग्दर्शन मात्र ही करूंगा। युक्तिविकर्ष के प्रमाण भूत ये शब्द है, गरब, अरध, मूरति। कारको का लोप इन वाक्यांशो मे पाया जाता है 'बोरि कर गोरस', 'बाल रोवाइ', सिर धरहि आन के', 'बचन बिरंचि हरावहि', 'पालने पौढिये', 'किलकनि खानि', 'तुलसी भनिति', सोनेचोंच मढैहो', रामलखन उर लैहो', बेद बडाई' जगत मातु'। 'श', ण', 'क्ष' इत्यादि के स्थान पर 'स', 'न', 'छ' का व्यवहार 'सिगारू', 'प्रसंसा', 'परबस', 'सिसु', 'पानि' भरन' 'गनक', 'लच्छि', आदि मे है। पञ्चम वर्ण की जगह पर अनुस्वार का प्रयोग मंजुल', 'बिरंचि', 'कंचनहि' आदि मे मिलेगा। शब्द के आदि के 'य' के स्थान पर 'ज' का व्यवहार जुवति, जागु, जुगुति आदि मे आप देखेगे। संज्ञाओं और विशेषणों के, अपभ्रंश के अनुसार, उकारान्त प्रयोग के उदाहरण ये शब्द है, कपारु, मुहु, मीठु, आदि। ह्रस्व का दीर्घ और दीर्घ का ह्रस्व-प्रयोग कमनीया', 'बाता', 'जुवति', रेख' इत्यादि शब्दों मे हुआ है। प्राकृत शब्दो का उसी के रूप में ग्रहण तीय, नाह इत्यादि मे है। ब्रजभाषा की रचना मे आप को संज्ञाये क्रियाये दोनों अधिकतर ओकारान्त मिलेगी। और इसी प्रकार अवधी की संज्ञाये और क्रियाये नियमानुकूल अकारान्त पायी जाऍगी। ढरा हनो, बहुरो, पायो, आयो, बडो कहब, रहब, होब, देन, राउर इत्यादि इसके प्रमाण है। अधिकतर तद्भव शब्द ही दोनों भाषाओ मे आये है। परन्तु जहा भाषा तत्सम शब्द लाने से ही सुन्दर बनती है वहा गोस्वामी जी ने तत्सम शब्दों का प्रयोग भी किया है। जैसे 'प्रिय', 'कुरूप', 'रिपु', 'असत्य', 'पल्लव' इत्यादि। मुहावरों का प्रयोग भी उन्होने अधिकता से किया है। परन्तु विशेषता यह है कि जिस भाषा मे मुहावरे आये है उनको उसी भाषा के रूप मे लिखा है जैसे 'नयनभरि', 'मुंह लाये', 'मूडहि चढ़ी', 'जनम भरब', 'नकवानी आयो', 'ठकुरसुहाती', बवा सो लुनिय' इत्यादि।

अवधो मे स्त्रीलिंग के साथ सम्बन्ध का चिन्ह सदा 'के'' आता है। गोस्वामी जी की रचनाओ मे भो ऐसा ही किया गया है, 'दूध कै माखो', 'कै छॉह', इत्यादि इसके सबूत है। क्रिया बनाने मे विधि के साथ इकार का संयोग किया जाता है उनको कवितामे भी यह बात मिलती है जैसे 'भरि', फोरी', 'बोरि' इत्यादि। अनुप्रास के लिये तुकान्त मे इस 'इ' को दोर्घ भी कर दिया जाता है। उन्होने भी ऐसा किया है। देखिये 'जानी', 'होई' इत्यादि। ऐसे हो नियम-सम्बन्धो अन्य बाते भी आप लोगों को उनमे दृष्टिगत होगी।

सूरदासजी के हाथो मे पड कर ब्रजभाषा और गोस्वामीजी की लेखनी से लिखी जा कर अवधी प्रौढता को प्राप्त हो गयीं। इन दोनो भाषाओ का उच्च से उच्च विकास इनदोनो महाकवियो के द्वारा हुआ। साहित्यिक भाषा मे जितना सौन्दर्य-सम्पादन किया जा सकता है इन दोनो महापुरुषो से इनकी रचनाओं मे उसकी भी पराकाष्टा हो गई। अनुप्रासो और रस एवं भावानुकूल शब्दो का विन्यास जैसा इन कवि-कर्म्मनिपुण महाकवियो की कृति मे पाया जाता है वैसा आज तक की हिन्दी भाषा को समस्त रचनाओ मे नहीं पाया जाता भविष्य मे क्या होगा, इस विषय मे कुछ कहना असम्भव है। "जिनको सजीव पंक्तियॉ कहते है" वे जितनो इन लोगों की कविताओ मे मिलती है उतनी अबतक की किसी कविता मे नहीं मिल सकीं। यदि इन लोगों की शब्द माला में लालित्य नर्तन करता मिलता है तो भाव सुधा-वर्षण करते हैं। जब किसी भाषा की कविता प्रौढता को प्राप्त होनी है उस समय उसमे व्यंजना की प्रधानता हो जाती है। इन लोगों की अधिकाश रचनाओं मे भी यही बात देखी जाती हैं।

गोस्वामी जो के विषय मे योरोपीय या अन्य विद्वानों की जो सम्मतिया हैं उनमे से कुछ सम्मतियो को मै नीचे लिखता हूं। उनके पढने से आप लोगों को ज्ञात होगा कि गोस्वामी जी के विषय मे विदेशी विद्वान् भी कितनी उत्तम सम्मति और कितना उच्च भाव रखते है। प्रोफेसर मोल्टन यह कहते है।

" मानव प्रकृति की अत्यन्त सूक्ष्म और गम्भीर ग्रहणशीलता, करुणा से लेकर आनन्द तक के सम्पूर्ण मनोविकारो के प्रति संवेदनशीलता, स्थान स्थान पर मध्यश्रेणी का भाव जिस पर हँसते हुये महासागर के अनन्त बुद्बुदो की तरह परिहास क्रीडा करता है, कल्पना-शक्ति का स्फुरण जिसमें अनुभव और सृष्टि दोनो एक ही मानसिक क्रिया जान पडती है सामञ्जस्य और अनुपात की वह धारणा जो जिसे ही स्पर्श करेगी कलात्मक बना देगी, भाषा पर वह अधिकार जो विचार का अनुगामी है और वह भाषा जो स्वयं ही सौन्दर्य्य है, ये सब काव्य-स्फूर्ति के पृथक् पृथक् तत्व जिनमे से एक भी विशेष मात्रा मे विद्यमान हो कर कवि की सृष्टि कर सकता है। तुलसीदास मे सम्मिलित रूप से पाये जाते है ' १

एक दूसरे सज्जन की यह सम्मति है—

हम पैगम्बर (ईश्वरीय दूत) को उसके कार्य्यों के परिणामों की कसौटी पर ही कसते है। जब मैं यह कहता हूं कि पूरे नौ करोड मनुष्य अपने नैतिक और धार्मिक आचार-सम्बन्धी सिद्धान्तो को तुलसीदास की कृति

---

1 Grasp of human nature the most profound, the most subtle, responsivenesi to emotion throughout the whole scale from tragic pathes to rollicking jollity, with a middle range, over which plays a humour like the innumerable twinklings of a laughing ocean, powers of imagination so instinctive that to percieve and create seem the same mental act, a sense of symmetry and proportion that that will make everything it touches into art, mastery of language that is the servant of thought and language that is the beauty in it self, all these separate elements of poelic force, any one of which in consicuous degree might make a poet, are in Tulsidasa found in complete combination " Prof Moultons 'World Literature' P 166

1 "We judge of a prophet by his fruits and I give much less than usual estimate when I say that fully ninty millions of people have heard the or theories of moral and religious conduct upon his writtings Is we take the iufluence exercised by him at present time as our test, he in one of the three or four great writers of Asia "

J R, A S,, July 1930 P 455,

ही से ग्रहण करते है तो अत्युक्ति नही करता, मेरा यह अनुमान साधारण जन संख्या से कुछ कम ही है। वर्त्तमान समय मे उनका जितना प्रभाव है यदि उसके आधार पर हम अपना निर्णय स्थिर करे तो वे एशिया के तीन या चार महान लेखको मे परिगणित होंगे" १

डाक्टर जी० ए० ग्रियर्सन का यह कथन है —

"भारतवर्ष के इतिहास मे तुलसीदास का बहुत अधिक महत्व है। उनके काव्य की साहित्यिक उत्कृष्टता की ओर न भी ध्यान दे तो भागलपुर से लेकर पंजाब तक और हिमालय से लेकर नर्मदा तक समस्त श्रेणियो के लोगो का उन्हे आदर पूर्वक ग्रहण करना ध्यान देने योग्य बात है। तीन सौ से भी अधिक बर्षों से उनके काव्यका हिन्दू जनता को बोलचाल, तथा उसके चरित्र और जीवन से सम्बन्ध है। वह उनकी कृति को केवल उसके काव्य-गत सौन्दर्य के लिये ही नही चाहती है उसे श्रद्धा की दृष्टि से ही नहीं देखती है, उसे धार्म्मिक ग्रंथ के रूप मे पूज्य समझती है। दस करोड जनता के लिये वह बाइबिल (Bible) के समान है और वह उसे उतना ही ईश्वरप्रेरित समझती है जितना अंग्रेज पादडी बाइबिल को समझता है। पंडित लोग भले ही वेदों की चर्चा और उनमे से थोडे से लोग उनका अध्ययन भी करे, भले ही कुछ लोग पुराणो के प्रति श्रद्धा भक्ति भी प्रदर्शित करे किन्तु पठित वा अपठित विशाल जनसमूह तो तुलसी कृत रामायण ही से अपने आचार-धर्म की शिक्षा ग्रहण करता है। हिन्दुस्थान के लिये यह वास्तव मे सौभाग्य की बात है, क्योकि इसने देश को शैव धर्म के अनाचरणीय क्रिया-कलाप से सुरक्षित रक्खा है। बंगाल जिस दुर्भाग्य के चक्कर मे पड गया उससे उत्तरी भारत के मूल त्राण करनेवाले तो रामानन्द थे, किन्तु महात्मा तुलसी दास ही का यह काम था कि उन्होने पूर्व और पश्चिम मे उनके मत का प्रचार किया और उसमे स्थायिता का संचार कर दिया।" १]

1 "The importance of Tulsidas in the history of India can not be overrated Pulling the literary merits of his work out of the question, the fact of its universal acceptance by all classes, from Bhagalpur to the

हिन्दी संसार ने सूरदास जी और गोस्वामी जी के बाद का स्थान कविवर केशवदास जी को ही दिया है। मैं भी इसी विचार का हूं।

उनको 'उडुगन' कहा गया है। यदि वे उडुगन है तो प्रभात कालिक शुक्र (कवि) के समान प्रभा-विकीर्णकारी है। कविकर्म शिक्षाकी पूर्ण ज्योति रीति काल के प्रभात काल मे केशवदासजीसे ही हिन्दी संसार को मिली। सब बातो पर विचार करने से यह स्वीकार करना पडता है कि साहित्य सम्बन्धी समस्त अंगो की पूर्ति पहले पहल केशव दास जी ने ही की। इनके पहले कुछ विद्वानो ने रीति ग्रन्थो की रचना का सूत्रपात किया था किन्तु यह कार्य केशवदास जी को प्रतिभा से ही पूर्णता को प्राप्त हुआ। इतिहास बतलाता है कि आदि मे कृपाराम ने ही 'हित-तरंगिणी' नामक रस-ग्रन्थ की रचना की। इनका काल सोलहवीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध है। इन्होंने अपने ग्रन्थ मे अपने समय के पहले के कुछ सुकवियों की कुछ रचनाओं की भी चर्चा की है। किन्तु वे ग्रन्थ अप्राप्य है। ग्रन्थकारो के नाम तक का पता नहीं मिलता। इन्ही के समसामयिक गोप नामक कवि और मोहन लाल मिश्र थे। इनमे से गोप नामक कवि ने, रामभूषण और

Punjab and from the Himalaya to the Narmada is surely worthy of note It has been interwoven into the life, character, and speech of the Hindu population for more than three hundred years, and is not only loved and admired by them for its poetic beauty, but is reverened by them as their scriptures It is the bible of a hundred millions of people, and is looked upon by them as much inspired as the bible is comsidered by the English clergymen Pandits may talk of the vedas and of the Vpnishadas and a few may even study them, others may say they pin their faith on tha puranas but to the vast majority of the people of Hindustan, learned and unlearned alike, their soul room of conduct is the so called Tulsikrit Ramayan It is indeed fortunate that this is so, for it has saved the country from the tantric obscenities of Shaivism Ram chandra was the original saviour of Upper India from the fate which has befallen Bengal, but Tulsidas was the great apostle who carried his doctrine eastand west and made it an abiding faith "—

Modern Vernacular Literature of Hindustan, 42 43 P.

अलंकार चन्द्रिका नामक ग्रन्थो की रचना की है। नाम से ज्ञात होता है कि ये दोनो ग्रन्थ अलंकार के होगे। किन्तु ये ग्रन्थ भी नहीं मिलते। इस लिये यह नहीं कहा जा सकता कि ये ग्रन्थ कैसे थे, साधारण या विशद। मेरा विचार है कि वे साधारण ग्रथ ही थे। अन्यथा इतने शीघ्र लुप्त न हो जाते। मोहन लाल मिश्र ने 'शृंगार सागर' नामक ग्रंथ की रचना की थी। ग्रन्थ का नाम बतलाता है कि वह रस-सम्बन्धी ग्रन्थ होगा। इन लोगों के उपरान्त केशवदास जी ही कार्य-क्षेत्र मे आते है। वे संस्कृत के प्रसिद्ध विद्वान् थे। वंश-परम्परा से उनके कुल मे सस्कृत के उद्भट विद्वान् होते आते थे। उनके पितामह पं० कृष्णदत्त मिश्र संस्कृत के प्रसिद्ध नाटक 'प्रबोध-चन्द्रोदय' के रचयिता थे। उनके पिता पं० काशीनाथ भी संस्कृत भापा के प्रसिद्ध विद्वान् थे। उनके वडे भाई पं० वलभद्र मिश्र संस्कृत के विद्वान् तो थे ही, हिन्दी भापा पर भी बडा अधिकार रखते थे। इनका बनाया हुआ नखशिख-सम्बन्धी ग्रन्थ अपने विषय का अद्वितीय ग्रन्थ है। ऐसे साहित्य-पारंगत विद्वानो के वंश मे जन्म ग्रहण कर के केशवदास जो का हिन्दो भाषा के रीति-ग्रन्थो के निर्माण मे विशेष सफलता लाभ करना आश्चर्यजनक नही। वे संकोच के साथ हिन्दी क्षेत्र मे उतरे, जैसा निम्न लिखित दोहे से प्रकट होता है.—

भाषा बोलि न जानहीं, जिनके कुल के दास।
तिन भाषा कविता करी, जड़मति केशवदास।

परन्तु जिसविपय को उन्होंने हाथ में लिया उसको पूर्णता प्रदान की। उनके बनाये हुए' 'कविप्रिया' और 'रसिकप्रिया' नामक ग्रन्थ रीति ग्रन्थों के सिरमौर है। पहले भी साहित्य विषय के कुछ ग्रन्थ बने थे और उनके उपरान्त भी अनेक रीति ग्रन्थ लिखे गये परन्तु अबतक प्रधानता उन्हीं के ग्रन्थों को प्राप्त है। जब साहित्य शिक्षा का कोई जिज्ञासु हिन्दी-क्षेत्र में पदार्पण करता है, तब उसको 'रसिक-प्रिया' का रसिक और 'कविप्रिया' का प्रेमिक अवश्य बनना पडता है। इससे इन दोनो ग्रन्थों की महत्ता प्रकट है। जिन्होने इन दोनों ग्रन्थो को पढा है वे जानते है कि इनमे कितनी प्रौढ़ता

है। रीति-सम्बन्धी सब विषयो का विशद वर्णन थोडे मे जैसा इन ग्रन्थों मे मिलता है, अन्यत्र नहीं। 'रसिक-प्रिया' मे शृंगार रस सम्बन्धी समस्त विशेषताओ का उल्लेख बडे पाण्डित्य के साथ किया गया है। कवि-प्रिया वास्तवमे कविप्रिया है, कविके लिये जितनी बाते ज्ञातव्य है उनका विशद निरूपण इस ग्रन्थ मे है। मेरा विचार है कि केशवदासजीकी कवि प्रतिभाका विकास जैसा इन ग्रन्थों मे हुआ, दूसरे ग्रन्थो मे नहीं। क्या भापा, क्या भाव, क्या शब्दविन्यास, क्या भाव-व्यञ्जना, जिस दृष्टिसे देखिये ये दोनो ग्रन्थ अपूर्व है। उन्होने इन दोनो ग्रन्थोके अतिरिक्त और ग्रन्थोको भी रचना की है। उनमे सर्व प्रधान रामचन्द्रिका है। यह प्रवन्ध-काव्य है। इस ग्रन्थके संवाद ऐसे विलक्षण है जो अपने उदाहरण आप है। इस ग्रन्थ का प्रकृति-वर्णन भी बडा ही स्वाभाविक है।

कहा जाता है कि हिन्दी संसार के कवियो ने प्रकृतिवर्णन के विषय मे बडी उपेक्षा की है। उन्हो ने जब प्रकृति वर्णन किया है तब उससे उद्दीपनका कार्य ही लिया है। प्रकृति मे जो स्वाभाविकता होती है, प्रकृतिगत जो सौन्दर्य होता है उसमे जो विलक्षणताये और मुग्धकारिताये पायी जाती है उनका सच्चा चित्रण हिन्दी साहित्य मे नहीं पाया जाता। किसी नायिका के बिरह का अवलम्बन कर के ही हिन्दी कवियो और महाकवियों ने प्रकृति-गत विभूतियो का वर्णन किया है। सौन्दर्य्य-सृष्टि के लिये उन्हों ने प्रकृति का निरीक्षण कभी नहीं किया। इस कथन मे बहुत कुछ सत्यता का अंश है। कवि कुलगुरु वाल्मीकि एवं कविपुंगव कालिदास की रचनाओ मे जैसा उच्च कोटि का स्वाभाविक प्रकृतिवर्णन मिलता है निस्सन्देह-हिन्दी साहित्य मे उसका अभाव है। यदि हिन्दी संसार के इस कलंक को कोई कुछ धोता है तो वे कविवर केशवदास के ही कुछ प्राकृतिक वर्णन है और वे रामचन्द्रिका ही में मिलते है। मै आगे चलकर इस प्रकार के पद्य उद्धृत करूंगा। यह कहा जाता है कि प्रवध-काव्यों को जितना सुश्रृङ्खलित होना चाहिये रामचंद्रिका वैसी नहीं है। उसमे स्थान स्थान पर कथा-भागों की शृंखला टूटती रहती है। दूसरी यह बात कही जाती है कि जैसी

भावुकता और सहृदयता चाहिये वैसी इस ग्रन्थ मे नहीं मिलती। ग्रन्थ क्लिष्ट भी वडा है। एक एक पद्यो का तीन तीन चार चार अर्थ प्रकट करने की चेष्टा करने के कारण इस ग्रन्थ की वहुतसी रचनाये बडी ही गूढ और जटिल हो गयी है, जिससे उनमे प्रसाद गुण का अभाव है। इन विचारों के विषय मे मुझे यह कहना है कि किसी भी ग्रन्थ मे सर्वाङ्ग-पूर्णता असम्भव है। उसमे कुछ न कुछ न्यूनता रह ही जाती है। संस्कृत के बडे बडे महाकाव्य भी निर्दोप नही रहे। इसके अतिरिक्त आलोचकों की प्रकृति भी एकसी नहीं होती। रुचिभिन्नता के कारण किसी को कोई विषय प्यारा लगता है और कोई उसमे अरुचि प्रकट करता है। प्रवृत्ति के अनुसार ही आलोचना भी होती है। इसलिये सभी आलोचनाओ मे यथार्थता नही होती। उनमे प्रकृतिगत भावनाओ का विकास भी होता है। इसीलिये एक ही ग्रन्थ के विषय मे भिन्न भिन्न सम्मतिया दृष्टिगत होती है। केशव दास जी की रामचन्द्रिका के विपय मे भी इस प्रकार की विभिन्न आलोचनाये है। किसी के विशेष विचारो के विषय मे मुझे कुछ नही कहना है। किन्तु देखना यह है कि रामचन्द्रिका के विषय में उक्त तर्कनायें कहा तक मान्य है। प्रत्येक ग्रन्थकार का कुछ उद्देश्य होता है और उस उद्देश्य के आधार परही उसकी रचना आधारित होती है। केशवदासजीकी रचनाओं मे, जिन्हे प्रसाद गुण देखना हो वे 'कविप्रिया' और 'रसिक प्रिया' को देखे। उनमे जितनी सहृदयता है उतनी ही सरसता है। जितनी सुन्दर उनकी शब्द-विन्यास-प्रणाली है उतनी ही मधुर है उनकी भाव-व्यञ्जना। रामचन्द्रिका की रचना पाण्डित्य-प्रदर्शन के लिये हुई है और मै यह दृढता से कहता हूं कि हिन्दी संसार मे कोई प्रवन्ध-काव्य इतना पाण्डित्यपूर्ण नहीं है। मै पहले कह चुका हूं कि वे संस्कृतके पूर्ण विद्वान् थे। उनके सामने शिशुपाल-वध और' नेषध' का आदर्श था। वे उसी प्रकार का काव्य हिन्दी में निर्माण करने के उत्सुक थे। इसीलिये रामचन्द्रिका अधिक गूढ है। साहित्य के लिये सब प्रकार के ग्रन्थों को आवश्यकता होती है। यथा-स्थान सरलता और गूढता दोनों वाछनीय है। यदि लघुत्रयी आदरणीय है तो वृहत्रयी भी। रघुवंश को यदि आदर की दृष्टि से देखा जाता है तो

नैषध को भी। यद्यपि दोनों की रचना-प्रणाली मे बहुत अधिक अन्तर है। प्रथम यदि मधुर भाव-व्यञ्जना के लिये आदरणीय है तो द्वितीय अपनी गम्भीरता के लिये। शेक्सपियर और मिल्टन की रचनाओं के सम्बन्ध मे भी यही बात कही जासकती है। केशवदासजी यदि चाहते तो 'कवि प्रिया' और 'रसिक प्रिया' की प्रणाली ही रामचन्द्रिका मे भी ग्रहण कर सकते थे। परन्तु उनको यह इष्ट था कि उनकी एक ऐसी रचना भी हो जिसमे गम्भीरता हो और जो पाण्डित्याभिमानी को भी पाण्डित्य-प्रकाश का अवसर दे अथच उसकी विद्वत्ता को अपनी गम्भीरता की कसौटी पर कस सके। इस बात को हिन्दी के विद्वानों ने भी स्वीकार किया है। प्रसिद्ध कहावत है -'कवि को दीन न चहै बिदाई। पूछे केशव की कविताई।' एक दूसरे कविता-मर्मज्ञ कहते है —

उत्तम पद कवि गंग को, कविता को बलबीर।
केशव अर्थ गँभीरता, सूर तीन गुन धीर।

इन बातों पर दृष्टि रख कर रामचन्द्रिका की गंभीरता इस योग्य नहीं कि उस पर कटाक्ष किया जावे। जिस उद्देश्य से यह ग्रन्थ लिखा गया है, मैं समझता हू, उसकी पूर्त्ति इस ग्रन्थ द्वारा होती है। इस ग्रन्थ के अनेक अंश सुन्दर, सरस और हृदय ग्राही भी है। और उनमे प्रसाद गुण भी पाया जाता है। हाँ, यह अवश्य है कि वह गंभीरता के लिये ही प्रसिद्ध है। मै समझता हू कि हिन्दी संसार मे एक ऐसे ग्रन्थ की भी आवश्यकता थी जिसकी पूर्त्ति करना केशवदास जो का ही काम था। अब केशव-दास जो के कुछ पद्य मै नीचे लिखता हूं। इसके बाद भाषा और विशेषताओ के विषय मे आप लोगों की दृष्टि उनकी ओर आकर्षित करूंगा -

१—भूषण सकल घनसार ही के घनश्याम,
कुसुम कलित केश रही छवि छाई सी।
मोतिन की लरी सिरकंठ कंठमाल हार,
और रूप ज्योति जात हेरत हेराई सी।

चंदन चढ़ाये चारु सुन्दर शरीर सब,
राखी जनु सुभ्र सोभा बसन बनाई सी।
शारदा सी देखियत देखो जाइ केशो राइ,
ठाढ़ी वह कुँवरि जुन्हाई मैं अन्हाई सी।

२—मन ऐसो मन मृदु मृदुल मृणालिका के,
सूत कैसो सुर ध्वनि मननि हरति है।
दार्‌यो कैसो बोज दाँत पाँत से अरुण ओंठ,
केशोदास देखि दृग आनँद भरति है।
एरी मेरी तेरी मोहिं भावत भलाई तातें,
बूझतहौं तोहि और बूझति डरति है।
माखन सी जीभ मुखकंज सी कोमलता में,
काठ सी कठेठी बात कैसे निकरति है।

३—किधौं मुख कमल ये कमला की ज्योति होति
किधौं चारु मुखचन्द्र चन्द्रिका चुराई है।
किधौं मृगलोचन मरीचिका मरीचि कैधौं,
रूप की रुचिर रुचि सुचि सों दुराई है।
सौरभ की सोभा की दलन घन दामिनी की,
केशव चतुर चित ही की चतुराई है।
एरी गोरी भोरी तेरी थोरी थोरी हांसी मेरे,
मोहन की मोहिनी की गिरा की गुराई है।

४—बिधि के समान हैं विमानी कृत राजहंस,
बिबुध बिबुध जुत मेरु सो अचल है।

दीपत दिपत अति साते। दीप दीपियत,
दूसरो दिलीप सो सुदक्षिणा के। बल है।
सागर उजागर के। बहु बाहिनी के। पति,
छनदान प्रिय किधौं सूरज अमल है।
सब विधि समरथ राजै राजा दशरथ,
भगीरथ पथ गामी गंगा कैसो जल है।

५—तरु तालीस तमाल ताल हिताल मनोहर।
मंजुल बंजुल लकुच बकुल कुल केर नारियर।
एला ललित लवंग संग पुंगीफल सोहै।
सारी शुक कुल कलित चित्त कोकिल अलि मोहै।
शुभ राजहंस कलहंस कुल नाचत मत्त मयूर गन।
अति प्रफुलित फलित सदा रहै केशवदास विचित्र बन,

६—चढ़ो गगन तरु धाय, दिनकर बानर अरुण मुख।
कीन्हों झुकि झहराय, सकल तारका कुसुम बिन।

७—अरुण गात अति प्रात, पद्मिनी प्राणनाथ भय।
मानहुं केशवदास, कोकनद कोक प्रेममय।
परिपूरण सिंदूर पूर, कैधौं मंगल घट।
किधौं शक्र के। क्षत्र, मढ़्यो माणिक मयूख पट।
कै शोणित कलित कपाल यह किल कापालिक कालके।,
यह ललित लाल कैधौं लसत दिग्भामिनि के भाल के।,

८—श्रीपुर में बनमध्य हौं, तू मग करी अनीति।
कहि मुँदरी अब तियन की के। करि है परतीति।

९—फलफूलन पूरे तरुवर रूरे कोकिल कुल कलरव बोलैं।
अति मत्त मयूरी पियरस पूरी बनबन प्रति नाचत डोलैं,
सारी शुक पंडित गुनगन मंडित भावनमय अर्थ बखानैं
देखे रघुनायक सीय सहायक मनहुँ मदन रति मधुजानैं।

१०—मन्द मन्द धुनि सों घन गाजै।
तूर तार जनु आवझ बाजैं।
ठौर ठौर चपला चमकैं यों।
इन्द्रलोक तिय नाचति है ज्यों।
सोहैं घन स्यामल घोर घने।
मोहैं तिनमैं वक पाँति मने।
शंखावलि पी बहुधा जलस्यों।
मानो तिनको उगिलै बलस्यों।
शोभा अति शक्र शरासन में।
नाना दुति दीसति है घन में।
रत्नावलि सी दिवि द्वार भनो।
बरखागम बांधिय देव मनो।
घन घोर घने दसहूं दिसि छाये।
मघवा जनु सूरज पै चढ़ि आये।
अपराध बिना छिति के तन ताये।
तिन पीड़न पीड़ित ह्वै उठि धाये।
अति गाजत बाजत दुंदुभि मानो।
निरघात सबै पविपात बखानो।
धनु है यह गौरमदाइन नाहीं।
सर जाल बहै जलधार बृथाहीं।

भट चातक दादुर मोर न बोले ।
चपला चमकै न फिरै खँग खोले ।
दुति वन्तन को विपदा वहु कीन्हीं ।
धरनी कहं चन्द्रवधू धर दीन्हीं ।

११--सुभ सर सोभै । मुनि मन लोभै ।
सर सिज फूले । अलि रस भूले ।
जलचर डोलैं वहु खग बोलैं ।
वरणि न जाहीं । उर उरझाहीं ।

१२--आरक्त पत्रा सुभ चित्र पुत्री
मनो विराजै अति चारु भेषा ।
सम्पूर्ण सिंदूर प्रभा बसै धौं
गणेश भाल स्थल चन्द्र रेखा ।

केशवदासजी को भाषा के विषय मे विचार करने के पहले मैं यह प्रगट कर देना चाहता हू कि इनके ग्रन्थ मे जो मुद्रित हो कर प्राप्त होते है, यह देखा जाता है कि एकही शब्द के भिन्न भिन्न रूप है। इससे किसी सिद्धान्त पर पहुँचना बडा दुस्तर है। फिर भी सब बातों पर विचार करके और व्यापक प्रयोग पर दृष्टि रख कर मै जिस सिद्धान्त पर पहुचा हू उसको आपलोगों के सामने प्रकट करता हूँ। केशवदासजी के ग्रन्थों की मुख्य भाषा ब्रजभाषा है। परन्तु बुन्देलखण्डी शब्दो का प्रयोग भी उनमे पाया जाता है। यह स्वभाविकता है। जिस प्रान्त मे वे रहते थे उस प्रान्त के कुछ शब्दों का उनकी रचना में स्थान पाना आश्चर्य्य-जनक नहीं। इस दोष से कोई कवि या महाकवि मुक्त नहीं। बुंदेलखण्डी भाषा लगभग ब्रजभाषा ही है और उसकी गणना भी पश्चिमी हिन्दी मे ही है। हा, थोड़े से शब्दों या प्रयोगों मे भेद अवश्य है। परन्तु इससे

ब्रजभापा की प्रधानता मे कोई अन्तर नहीं आता । केशवदासजी ने यथा स्थान बुंदेलखण्डो शब्दो का जो अपने ग्रंथ मे प्रयोग किया है मेरा विचार है कि इसी दृष्टि से। ब्रजभाषा के जो नियम है वे सब उनकी रचना मे पाये जाते है। इसलिये उन नियमो पर उनकी रचना को कसना व्यर्थ विस्तार होगा। मै उन्ही बातो का उल्लेख करूंगा जो ब्रजभाषा से कुछ भिन्नता रखती है॥

मै पहले कह चुका हू कि केशवदासजी संस्कृत के पडित थे । ऐसी अवस्था मे उनका संस्कृत के तत्सम शब्दो को शुद्ध रूप मे लिखने के लिये सचेष्ट रहना स्वाभाविकता है। वे अपनो रचनाओ मे यथा शक्ति संस्कृत के तत्सम शब्दो को शुद्ध रूप मे लिखना ही पसन्द करते है। यदि कोई कारण-विशेष उनके सामने उपस्थित न हो जावे। एक बात और है। वह यह कि बुंदेलखण्ड मे णकार और शकार का प्रयोग प्राय बोलचाल में अपने शुद्ध रूप मे किया जाता है। इसलिये भी उन्हों ने संस्कृत के उन तत्सम शब्दों को जिनमे णकार और शकार आते है प्राय शुद्ध रूप मे हो लिखने की चेष्टा की है। उसी अवस्था मे उनको बदला है जब उनके परिवर्त्तन से या तो पद्य मे कोई सौन्दर्य्य आता है या अनुप्रास को आवश्यकता उन्हे विवश करती है । गोस्वामी तुलसीदासजी ने ब्रजभाषा और अवधी के नियमो का पूरा पालन किया किन्तु जब उन्होने किसी अन्य प्रान्त का शब्द लिया। तो उसको उसी रूप मे लिखा। वे रामायण के अरण्य काड मे एक स्थान पर रावन के विषय मे लिखते है -

'इत उत चितै चला भणिआई'। 'भणिआ शब्द बुंदेलखण्डी है। उसका अर्थ है चोर 'भणिआई' का अर्थ है चोरो'। गोस्वामीजी चाहते तो उसको 'भनिआई' अवधी के नियमानुसार बना लेते, परन्तु ऐसा करने मे अर्थ-बोध में बाधा पडती। एक तो शब्द दूसरे प्रान्त का दूसरे यदि वह अपने वास्तव रूप मे न हो तो उसका अर्थ बोध सुलभ कैसे होगा? इसलिये उसका अपने मुख्य रूप मे लिखा जाना ही युक्ति-संगत था। गोस्वामीजी ने ऐसा ही किया। केशवदासजी की दृष्टि भी

इसी बात पर थी इसीलिये उन्होंने वह मार्ग ग्रहण किया जिसकी चर्चा मैंने अभी की है। कुछ पद्य मैं लिख कर अपने कथन को पुष्ट करना चाहता हूं। देखिये —

१—"सब शृंगार मनो रति मन्मथ मोहै।

२— सबै सिँगार सदेह सकल सुख सुखमा मंडित।

३—मनो शची विधि रची विविध विधि वर्णत पंडित।

४—जानै को केसव केतिक बार मैं सेस के सीसन दीन्ह उसासी।

ऊपर की दो पंक्तियों मे एक मे 'शृंगार और दूसरे मे सिँगार' आया है। 'शृंगार' संस्कृत का तत्सम शब्द है। अतएव अपने सिद्धान्तानुसार उसको उन्होंने शुद्ध रूप मे लिखा है, क्योकि शुद्ध रूप मे लिखने से छन्द की गति मे कोई वाधा नही पडो। परन्तु दूमरी पंक्ति मे उन्होंने उसका वह रूप लिखा है जो ब्रजभाषा का रूप है। दोनो पंक्तिया एक ही पद्य की है। फिर उन्होंने ऐसा क्यो किया ? कारण स्पष्ट है। 'शृंगार' मे पाच मात्राये है और 'सिगार मे चार मात्राये है। दूसरे चरण मे शृंगार' खप नहीं सकता था। क्योकि एक मात्रा अधिक हो जाती। इस लिये उन्हे उसको ब्रजभाषा ही के रूप मे रखना पडा अपने अपने नियमानुसार दोनो रूप शुद्ध है। चौथे पद्य मे उन्होंने अपने नाम को दन्त्य स' से ही लिखा, यद्यपि वे अपने नाम मे तालव्य 'श' लिखना ही पसन्द करते है, यहा भी यह प्रश्न होगा कि फिर कारण क्या ? इसी पंक्ति मे 'सेस' और 'सीसन' शब्द भो आये है जिनका शुद्ध रूप शेप' और 'शीशन' है। इस शुद्ध रूप में लिखने मे भी छन्द की गति मे कोई बाधा नहीं पडती। क्योंकि मात्रा मे न्यूनाधिक्य नहीं। फिर भी उन्होंने उसको ब्रजभाषा के रूप में ही लिखा। इसका कारण भी विचारणीय है वास्तव बात यह है कि उनके कवि हृदय ने अनुप्रास का लोभ संवरण नही किया। अतएव उन्होंने उनको ब्रजभाषा के रूप ही मे लिखना पसंद किया। 'केसव' 'सेस' और 'सीसन' ने दन्त्य 'स' के सहित 'उसासी' के साथ आकर जो स्वारस्य

उत्पन्न किया है वह उन शब्दों के तत्सम रूप मे लिखे जाने से नष्ट हो जाता। इस लिये उनको इस पद्य मे तत्सम रूप मे नही देख पाते। ऐसी ही और बाते बतलायी जा सकती है कि जिनके कारण से केशवदास जी एक ही शब्द को भिन्न रूपो मे लिखते है। इससे यह न समझना चाहिये कि उनका कोई सिद्धान्त नही, वे जब जिस रूप मे चाहते है किसी शब्द को लिख देते हैं। मेरा विचार है कि उन्होने जो कुछ किया है नियम के अन्तर्गत ही रह कर किया है। दो ही रूप उनकी रचना मे आते हैं या तो सस्कृत शब्द अपने तत्सम रूप मे आता है अथवा ब्रज-भापा के तद्भव रूप मे, और यह दोनो रूप नियम के अन्तर्गत है। ऐसी अवस्था मे यह सोचना कि शब्द व्यवहार मे उनका कोई सिद्धान्त नहीं, युक्ति-संगत नही।

मैंने यह कहा है कि उनके ग्रन्थ की मुख्य भाषा ब्रजभाषा ही है। इनका प्रमाण समस्त उद्धृत पद्यो मे मौजूद है। उनमे अधिकाश ब्रजभाषा के नियमो का पालन है। युक्त-विकर्ष, कारकलोप 'णकार', 'शकार', 'क्षकार' के स्थान पर न', 'स' और 'छ' का प्रयोग, प्राकृत भाषा के प्राचीन शब्दो का व्यवहार पञ्चम वर्ण के स्थान पर अधिकाश अनुस्वार का ग्रहण इत्यादि जितनी विशेष बाते ब्रजभाषा की है वे सब उनकी रचना मे पायी जाती है। उद्धृत पद्यो मे से पहले, दूसरे और तीसरे नम्बर पर लिखे गये कवित्तो मे तो ब्रजभाषा की सभी विशेषताये मूर्त्तिमन्त हो कर विराजमान् है। हा कुछ तत्सम शब्द अपने शुद्ध रूप मे अवश्य आये है। इसका हेतु मै ऊपर लिख चुका हू। उनकी रचना मे 'गौरमदाइन', 'स्यों', 'बोक', 'बारोठा', 'समदौ', 'भाँडयो' आदि शब्द भी आते है।

नीचे लिखी हुई पंक्तिया इसके प्रमाण है —

१--देवन स्यों जनु देवसभा शुभ सीय स्वयम्बर देखन आई।

२— "दुहिता समदौ सुख पाय अबै।"

३ — कहूं भांड़ भांड़्यो करैं मान पावैं।

४— कहूं बोक बाँके कहूं मेष सूरे।

५— धनु है यह गौरमदाइन नाहीं।

६ — 'बारोठे को चार कहि करि केशव अनुरूप'।

ये बुन्देलखण्डी शब्द है। उनके प्रान्त की बोलचाल मे ये शब्द प्रचलित है। इस लिये विशेष स्थलों पर उनको इस प्रकार के शब्दों का प्रयोग करते देखा जाता है। किन्तु फिर भी इस प्रकार के प्रयोग मर्य्यादित है और संकीर्ण स्थलो पर ही किये गये है। इस लिये मै उनको कटाक्ष योग्य नही मानता। उनकी रचना मे एक विशेषता यह है कि वे तत्सम शब्दो को यदि किसी स्थान पर युक्त-विकर्ष के साथ लिखते है तो भी उसमे थोडा ही परिवर्तन करते है। जब उनको क्रिया का स्वरूप देते है तो भी यही प्रणाली ग्रहण करते है। देखिये —

१— इनहीं के तपतेज तेज बढ़ि है तन तूरण।
इनहीं के तपतेज होहिगे मंगल पूरण।

२— रामचन्द्र सीता सहित शोभत हैं तेहि ठौर।

३— मनो शची विधि रची विविध बिधि वणत पंडित ।

'तूरण' 'पूरण', 'शोभत' 'वणत', इत्यादि शब्द इसके प्रमाण है। ब्रजभाषा के नियमानुसार इनको 'तूरन', 'पूरन', सोभत', बरनत', लिखना चाहिये था। किन्तु उन्होंने इनको इस रूप मे नही लिखा। इसका कारण भी उनका सँस्कृत तत्सम शब्दानुराग है। बुन्देलखण्डी भाषा में 'हतो' एक वचन पुलिंग मे और 'हते' वहुवचन पुल्लिग मे बोला जाता है। इनका स्त्रीलिंग रूप 'हतीं', और हती होगा। ब्रजभापा मे ए दोनो तो लिखे जाते ही है, 'हुतो' और हुती' भी लिखा जाता है। वे भी दोनो रूपो का व्यवहार करते है। जैसे 'सुता बिरोचन की हुती दीरघ जिह्वा नाम।'

उनको अवधी के 'इहाँ', 'उहाँ', दिखाउ' 'रिझाउ', 'दीन', 'कौन', इत्यादि का प्रयोग करते भी देखा जाता है। वे 'होइ' भी लिखते है, 'होय', भी देखिये :—

१- एक इहाँऊं उहाँ अतिदीन सुदेत दुहूंदिसि केजनगारी
२- प्रभाउ आपनो दिखाउ छोंड़ि बालि भाइ कै।
३- रिझाउ रामपुत्र मोहि राम लै छुड़ाइ कै।
४- अन्न देइ सीख देइ। राखिलेइ प्राण जात।
५- हँसि बंधु त्यों दृगदीन। श्रुतिनासिका विनु कीन।
६- कीधौं वह लक्षमण होइ नहीं।

इसका कारण यही मालूम होता है कि उस काल हिन्दी भाषा के बड़े बडे कवियो का विचार साहित्यिक भाषा को व्यापक बनाने की ओर था। इस लिये वे लोग कम से कम अवधी और ब्रजभाषा मे कतिपय आवश्यक और उपयुक्त शब्दो के व्यवहार मे कोई भेद नही रखना चाहते थे। इस काल के महाकवि सूर तुलसी और केशव को इसी ढंग से ढला देखा जाता है। उन्होने अपनी रचना एक विशेष भाषा मे ही अर्थात् अवधी या ब्रज-भाषा मे की है। परन्तु एक दूसरे मे इतना विभेद नहीं स्वीकार किया कि उनके प्रचलित शब्दो का व्यवहार विशेष अवस्थाओ और संकीर्ण स्थलों पर न किया जावे। इन महाकवियो के अतिरिक्त उस काल के अन्य कवियो का झुकाव भी इस ओर देखा जाता है। उनकी रचनाओ को पढने से यह बात ज्ञात होगी।

केशव दास जी की रचनाओं मे पांडित्य कितना है, उसके परिचय के लिये आप लोग उद्धृत पद्यो मे से चौथे पद्य को देखिये। उस मे इस प्रकार के वाक्यो का प्रयोग है जो दो अर्थ रखते है। मैं उनको स्पष्ट किये देता हू। चौथे पद्य मे उन्होंने महाराज दशरथ को विधि के समान कहा है, क्योंकि दोनो ही 'विमानी कृत राजहंस' है। इसका पहला अर्थ जो विधिपरक है यह है कि राजहंस उनका वाहन (विमान) है। दूसरा अर्थ जो महाराज दशरथ परक है, यह है कि उन्होने राजाओ की आत्मा (हंस) को मानरहित बना दिया, अर्थात् सदा वे उनके चित्त पर चढे रहते है। सुमेरु पर्वत अचल है। दूसरे पद्य मे उसी के समान उन्होंने महाराज दशरथ को भी अचल बनाया। भाव इसका यह है कि वे स्वकर्त्तव्य-पालन

मे दृढ है। दूसरी बात यह है कि यदि वह विविध 'विबुध-जुत' है, अर्थात विविध देवता उस पर रहते है तो महाराज दशरथ जी के साथ विविध विद्वान् रहते है। 'विबुध' का दोनो अर्थ है देवता और विद्वान्। दूसरे चरण मे 'सुदक्षिणा' शब्द का दो अर्थ है। राजा दशरथ को अपने पूर्व पुरुष 'दिलीप' के समान बनाया गया है। इस उपपत्ति के साथ कि यदि उनके साथ उनकी पत्नी सुदक्षिणा थीं, जिनका उनको बल था, तो उनको भी सुन्दर दक्षिणा का अर्थात् सत्पात्र मे दान देने का बल है। तीसरे चरण मे उनको सागर समान कहा है, इस लिये कि दोनो ही बाहिनी' के पति और गम्भीर है। 'बाहिनी' का अर्थ सरिता और सेना दोनों है। इसी चरण मे उनको सूर्य के समान अचल कहा है। इस कारण कि 'छनदान प्रिय' दोनो है। इस लिये कि महाराज दशरथ को तो क्षण क्षण अथवा पर्व पर्व पर दान देना प्रिय है और सूर्य 'छनदा' (क्षणदा) न-प्रिय है अर्थात् रात्रि उसको प्यारी नहीं है। चौथे चरण मे महाराज दशरथ को उन्होने गंगा-जल बनाया है, क्योकि दोनो भगीरथ-पथ गामी है। महाराज दशरथ के पूर्व पुरुष महाराज भगीरथ थे अतएव उनका भगीरथ पथावलम्बी होना स्वाभाविक है। इस अंतिम उपमा मे बडी ही सुन्दर व्यञ्जना है। गंगा-जल का पवित्र और उज्ज्वल अथच सद्भाव के साथ चुपचाप भगीरथ पथावलम्बी होना पुराण-प्रसिद्ध बात है। इस व्यंजना द्वारा महाराज दशरथके भावोंको व्यंजित करके कविने कितनी भावुकता दिखलायी है, इसको प्रत्येक हृदयवान भलीभाति समझ सकता है। अन्य उपमाओमे भी इसी प्रकारकी व्यंजना है, परन्तु उनका स्पष्टीकरण व्यर्थ विस्तार का हेतु होगा। इस प्रकार के पद्यों से 'रामचन्द्रिका' भरा पडा है। कोई पृष्ट इस ग्रन्थका शायद ही ऐसा होगा कि जिसमे इस प्रकार के पद्य न हों। दो अर्थ वाला, आप ने देखा, उसमें कितना विस्तार है। तीन तीन चार चार अर्थ वाले पद्य कितने विचित्र होंगे उनका अनुभव आप इस पद्य से ही कर सकते है। मै उन पद्यो में से भी कुछ पद्य आप लोगों के सामने रख सकता था। परन्तु उसकी लम्बी-चौडी व्याख्या से आप लोग तो घबरायेंगे ही, मै भी घबराता हूं। इस लिये उनको छोडता हूं। केशवदासजी के

पाडित्य के समर्थक सब हिन्दी साहित्य के मर्मज्ञ है। इस दृष्टि से भी मुझे इस विषय का त्याग करना पडता है ॥

केशवदासजी का प्रकृति वर्णन कैसा है, इसके लिये मै आप लोगों से उद्धृत पद्यो मे से नम्बर ५, ६, ७, ९, १०, ११ को रचनाओ को विशेष ध्यान-पूर्वक अवलोकन करने का अनुरोध करता हूं। इन पद्यों मे जहा स्वाभाविकता है वहा गम्भीरता भी है। कोई कोई पद्य बडे स्वाभाविक है और किसी किसी पद्य का चित्रण इतना अपूर्व है कि वह अपने चित्रों को आख के सामने ला देता है ॥

'रामचन्द्रिका' अनेक प्रकार के छन्दो के लिये भी प्रसिद्ध है। इतने छन्दोंमे आज तक हिन्दो भाषाका कोई ग्रंथ नहीं लिखा गया। नाना प्रकार के हिन्दी के छन्द तो इस ग्रन्थ मे है ही। केशवदासजी ने इसमे कई संस्कृत वृत्तों को भी लिखा है। सस्कृत वृत्तों की भाषा भी अधिकाश सस्कृत गर्भित है, वरन उसको एक प्रकार से संस्कृत की ही रचना कही जा सकती है। उद्धृत पद्यों मे से बारहवा पद्य इसका प्रमाण है। भिन्न तुकान्त छन्दो की रचना का हिन्दी साहित्य मे अभाव है। परन्तु केशव दास जी ने रामचन्द्रिका मे इस प्रकार का एक छन्द भी लिखा है जो यह है —

मालिनी

गुणगण मणि माला चित्त चातुर्य्य शाला।
जनक सुखद गीता पुत्रिका पाय सीता।
अखिल भुवन भर्त्ता ब्रह्म रुद्रादि कर्त्ता।
थिरचर अभिरामी कीय जामातु नामी।

संस्कृत वृत्तों का व्यवहार सबसे पहले चन्द बरदाईने किया है। उनका वह छन्द यह है —

"हरित कनक कांतिं कापि चंपेव गौरा।
रसित पद्म गंधा फुल्ल राजीव नेत्रा।

उरज जलज शोभा नाभि कोषं सरोजं।
चरण कमल हस्ती लीलया राजहंसी।

इसके बाद गोस्वामी जी को सँस्कृत छन्दों मे सँस्कृत गर्भित रचना करते देखा जाता है। विनय पत्रिका का पूर्वार्द्ध तो सँस्कृत-गर्भित रचनाओ से भरा हुआ है। गोस्वामी जी के अनुकरणसे अथवा अपने सँस्कृत साहित्य के प्रेमके कारण केशवदासजी को भी सॅस्कृत गर्भित रचना सँस्कृत वृत्तों मे करते देखते है। इनके भी कोई कोई पद्य ऐसे है जिनको लगभग सॅस्कृत का ही कहसकते है। इन्होंने ३०० वर्ष पहले भिन्न तुकान्त छन्द की नींव भो डाली, और वे ऐसा संस्कृत वृत्तो के अनुकरणसे ही कर सके।

(क)

इस सोलहवीं शताब्दी में और भी कितने ही प्रसिद्ध कवि हिन्दी भाषा के हो गये है। उनकी रचनाओं का उपस्थित किया जाना इस लिये आवश्यक है कि जिससे इस शताब्दी की व्यापक भाषा पर पूर्णतया विचार किया जा सके। इसी शताब्दी मे एक भक्त स्त्री भी कवियित्री के रूप मे सामने आती है और वे है मीरावाई। पहले मै उनकी रचनाओ को आपके सामने उपस्थित करताहू। मीराबाई बहुत प्रसिद्ध महिला है। वे चित्तौड के राणा की पुत्रवधू थीं। परन्तु उनमे त्याग इतना था कि उन्हों ने अपना समस्त जीवन भक्ति भाव मे ही बिताया। उनके भजनों में इतनी प्रवलता से प्रेम-धारा बहती है कि उससे आर्द्र हुए बिना कोई सहृदय नहीं रह सकता। वह सच्ची वैष्णव महिला थी और उनके भजनों के पद पद से उनका धर्म्मानुराग टपकता है इसी लिये उनकी गणना भगवद्भक्त स्त्रियो में होती है। उस काल के प्रसिद्ध सन्तों और महात्माओ मे से उनका सम्मान किसी से कम नहीं है। उनकी कुछ रचनाये देखिये —

"मेरे तो गिरधर गुपाल दूसरा न कोई।
दूसरा न कोई साधो सकल लोक जोई।
भाई तजा बन्धु तजा तजा सगा सोई।
साधु संग बैठि बैठि लोक लाज खोई।

भगत देखि राजी हुई जगत देखि रोई।
अँसुअन जल सींचि सींचि प्रेम बेलि बोई।
दधि मथ घृत काढ़ि लियो डार दई छोई।
राणा विष प्यालो भेज्यो पीय मगन होई।
अब तो बात फैलि गई जाणै सब कोई।
मीरा राम लगण लागी होणी होय सो होई।

२—एरी मैं तो प्रेम दिवाणी मेरा दरद न जाणे कोय।
सूली ऊपर सेज हमारी किस विध सोणा होय।
गगन मंडल पै सेज पिया की किस विध मिलना होय।
घायल की गति घायल जानै की जिन लाई होय।
जौहरीकी गति जौहरी जाने की जिन जौहर होय।
दरद की मारी बन बन डोलूं बैद मिला नहिँ कोय।
मीरा की प्रभु पीर मिटैगी (जब) बैद सँवलिया होय।

३—बसो मेरे नैनन में नँदलाल।
मोहनि मूरति सांवरि सूरति नैना बने विसाल।
अधर सुधारस मुरली राजित उर बैजन्ती माल।
छुद्र घंटिका कटि तट शोभित नूपुर शब्द रसाल।
मीरा प्रभु संतन सुखदाई भक्त बछल गोपाल।

४—बंसी वारो आयो म्हारे देस।
थारी सांवरी सूरत बारी बैस।
आऊं आऊं कर गया साँवरा कर गया कौल अनेक।
गिणते गिणते घिसगई उँगली घिसगई उँगलीकी रेख।
मैं बैरागिन आदि की थारे म्हारे कद को सँदेस।

जोगिण हुइ जंगल सब हेरूं तेरा नाम न पाया भेस।
तेरी सूरत के कारणे धर लिया भगवा भेस ।
मोर मुकुट पीताम्बर सोहै घूंघरवाला केस ।
मीरा को प्रभु गिरधर मिलि गये दूना बढ़ा सनेस ।

सरस कविता के लिये इस शताब्दी मे अष्ट छाप के वैष्णवों का विशेष स्थान है। इनमे से चार महाप्रभु वल्लभाचार्य्य के प्रमुख शिष्य थे— सूरदास, कृष्णदास, परमानन्ददास, तथा कुंभनदास । और शेष चार नन्ददास, चतुर्भुजदास, छीतस्वामी तथा गोविन्दस्वामी, गोस्वामी विट्ठल नाथ के प्रमुख सेवकों में से थे। इनमे से सूरदासजी की रचनाओं को आपलोग देख चुके है, अन्यो की रचनाओं को भी देखिये —

कृष्णदासजी जाति के शूद्र थे किन्तु अपने भक्ति-वल से अष्टछाप के वेष्णवों मे स्थान प्राप्त किया था। उनके रचित (१) 'जुगलमान चरित्र' (२) 'भक्तमाल पर टीका' (३) 'भ्रमरगीत' और (४) 'प्रेम सत्व निरूप' नामक ग्रन्थ बतलाये जाते है। उनका रचा एक पद देखिये —

" मोमन गिरधर छबि पै अटक्यो ।
ललित त्रिभंग चाल पै चलि
कै चिबुक चारु गड़ि ठटक्यो ।
सजल श्याम घन बरन लीन ह्वै
फिरि चित अनत न भटक्यो ।
कृष्णदास किये प्रान निछावर
यह तन जग सिर पटक्यो ।

परमानन्दजी कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे । इनमे भक्ति-विषयक तन्मयता बहुत थी। 'परमानंद सागर' नामक इनका एक प्रसिद्ध ग्रंथ है। इनका एक शब्द सिक्खों के आदि ग्रन्थ साहब मे भी है। वह यह है:—

"तैं नर का पुराण सुनि कीना।
अनपायनी भगति नहि उपजी भूखे दान न दीना।
काम न बिसर्‌यो, क्रोध न बिसर्‌यो, लोभ न छूट्यो देवा।
हिंसा तो मन ते नहिं छूटी बिफल भई सब सेवा।
बाट पारि घर मूंसि बिरानो पेट भरै अपराधी।
जेहि परलोक जाय अपकीरति सोई अविद्या साधी।
हिसा तो मन ते नहि छूटी जीव दया नहिँ पाली।
परमानंद साधु संगति मिलि कथा पुनीत न चाली।"

उनका एक पद और देखिये —

"व्रज के विरही लोग बिचारे।
बिन गोपाल ठगे से ठाढ़े अति दुर्बल तन हारे।
मातु जसोदा पंथ निहारत निरखत साँझ सकारे।
जो कोई कान्ह कान्ह कहि बोलत अँखियन बहत पनारे।
यह मथुरा काजर की रेखा जे निकसे ते कारे।
परमानंद स्वामि बिनु ऐसे जस चन्दा बिनु तारे।

कुंभनदासजी गौरवा ब्राह्मण थे। इनमे त्याग-वृत्ति अधिक थी। एकबार अकबर के बुलाने पर फतेहपुर सीकरी गये, परन्तु उनको व्यथित होकर यह कहना पडा —

"भक्तन को कहा सीकरी सों काम।
आवत जात पनहियां टूटी बिसरि गयो हरिनाम।
जाको मुख देखे दुख लागै तिनको करिबे परी सलाम।
कुंभन दास लाल गिरधर बिन और सबै बेकाम।"

इनके किसी ग्रन्थ का पता नहीं चलता। एक पद्य और देखिये.—

"जो पै चोप मिलन की होय।
तो क्यों रहै ताहि बिन देखे लाख करौ किन कोय।
जो ए बिरह परस्पर ब्यापै जो कछु जीवन बनै।
लोक लाज कुल की मरजादा एकौ चित्त न गनै।
कुंभनदास जाहि तन लागी और न कछू सुहाय।
गिरधर लाल तोहि बिन देखे छिन छिन कलप बिहाय।"

अष्ट छाप के वैष्णवो मे कवित्व शक्ति मे सूरदास जी के उपरान्त नंददास जी का ही स्थान है। आप की सरस रचनाओ पर ब्रजभाषा गर्व कर सकती है। कहा जाता है कि आप गोस्वामी तुलसीदास जी के छोटे भाई थे। इस की सत्यता मे सदेह भी किया जाता है। जो हो, परन्तु पद-लालित्य के नाते वे गोस्वामी जी के सहोदर अवश्य है। हिन्दी संसार मे उनके विषय मे एक कहावत प्रचलित है—"और कवि गढिया नंददास जडिया।" मेरा विचार है कि यह कथन सत्य है। उन्होंने अठारह ग्रन्थो की रचना की है। 'रास पंचाध्यायी' से इनकी कुछ रचनाये यहा उद्धृत की जाती है —

"परम दुसह श्री कृष्ण बिरह दुख व्याप्योतिनमें।
कोटि बरस लगि नरक भोग दुख भुगते छिनमें।
सुभग सरित के तीर धीर बलबीर गये तहँ।
कोमल मलय समीर छबिन की महा भीर जहँ।
कुसुम धूरि धूँधरी कुंज छबि पुंजनि छाई।
गुंजत मंजु मलिंद बेनु जनु बजत सुहाई।
इत महकति मालती चारु चम्पक चित चोरत।
उत घनसारु तुसारु मलय मंदारु झकोरत।
नव मर्कत मनि स्याम कनक मनि मय ब्रजबाला।
बृन्दाबन गुन रीझि मनहुं पहिराई माला।"

चतुर्भुज दास जी कुम्भन दास जी के पुत्र थे। वे बाल्यकाल ही से कृष्ण-लीला-गान मे मत्त रहते थे। लीला सम्बन्धी उनकी अनेक रचनाये है। उन्होने द्वादशयश', भक्ति प्रताप, और हित जू को मंगल' नामक तीन ग्रन्थ बनाये। उनकी रचना देखिये —

"जसोदा कहा कहौं बात ?
तुम्हरे सुत के करतब मोपै कहत कहे नहि जात।
भाजन फोरि, ढारि सब गोरस, लै माखन दधि खात।
जौ बरजौं तौ आंखि दिखावै, रंचहुँ नाहि सकात।
दास चतुर्भुज गिरिधर गुन हौं कहति कहति सकुचात।"

छीत स्वामी मथुरा के चोबे थे। जादू टोना से इनको बडा प्रेम था। मथुरा मे पाच चोबे गुण्डे माने जाते थे। ये उनके प्रधान थे। परन्तु श्री विट्ठलनाथ जी के सत्संग से उनके हृदय मे भगवद्भक्ति का ऐसा प्रवाह बहा कि उनकी गणना अष्टछापके वैष्णवोमे हुई। इनका ग्रन्थ कोई नहीं मिलता, फुटकर रचनाये मिलती है। इनमे से एक पद्य नीचे दिया जाता है.—

"भई अब गिरिधर सों पहचान।
कपट रूप छलबे आये हो पुरुषोत्तम नहि जान।
छोटो बड़ो कछू नहि जान्यो छाय रह्यो अज्ञान।
छीत स्वामि देखत अपनायो बिट्ठल कृपा निधान।"

गोबिन्द स्वामी सनाढ्य ब्राह्मण थे। उनकी भक्ति प्रसिद्ध है। वे बडे आनन्दी जीव थे। बिट्ठलनाथजी के मुख से भागवत के भगवल्लीला सम्बन्धी पदो को सुन कर कभी कभी उन्मत्त हो जाते थे। इनके भी फुटकर पद ही प्राप्त होते है। उनमे से एक यह है —

प्रात समै उठि जसुमति जननी
गिरधर सुत को उबटि न्हवावति

करि श्रृंगार बसन भूषन सजि
फूलन रचि रचि पाग बनावति।
छुटे बंद बागे अति सोभित
बिच बिच चोव अरगजा लावति।
सूथन लाल फूँदना सोभित आजु
कि छवि कछु कहत न आवति।
विविध कुसुम की माला उर धरि
श्री कर मुरली बेत गहावति।
लै दरपन देखे श्री मुख को गोविंद
प्रभु चरनन सिर नावति।"

अष्टछाप के वैष्णवो के अतिरिक्त ब्रजमंडल मे दो ऐसे महापुरुष हो गये है जिनकी महात्माओ मे गणना है। एक है स्वामी हित हरिवंश और दूसरे स्वामी हरिदास। 'हित हरिवंस जी ने राधा-वल्लभी सम्प्रदाय स्थापित किया था। इन्होंने 'राधा सुधानिधि' नामक एक संस्कृत काव्य की रचना भी की है। उनके ब्रजभाषा के ८४ पद्य बहुत प्रसिद्ध है। वास्तव में उनमें बडी सरसता है। उनके पद्यों मे संस्कृत शब्द अधिक आते है। किन्तु उनका प्रयोग वे बडी रुचिरता से करते है। कुछ रचनाये उनकी देखिये —

१—आजु बन नीको रास बनायो।
पुलिन पवित्र सुभग जमुना तट मोहन बेनु बजायो।
कल कंकन किंकिनि नूपुर धुनि सुनि खग मृग सचुपायो।
जुवतिन मंडल मध्य श्याम घन सारँग राग जमायो।
ताल मृदंग उपंग मुरज डफ मिलिरस सिंधु बहायो।
सकल उदार नृपति चूड़ामणि सुख बारिद बरखायो।
बरखत कुसुम मुदित नभ नायक इन्द्र निसान बजायो।
हित हरिबंस रसिक राधापति जस बितान जगछायो।

२—तनहिं राखु सतसंग में मनहि प्रेम रस भेव।
सुख चाहत हरिवंस हित कृष्ण कल्पतरु सेव।
रसना कटौ जु अनरटौ निरखि अन फुटौ नैन।
श्रवन फुटौ जो अन सुनौ विन राधा जसु बैन।

स्वामी हरिदास ब्राह्मण थे। कोई इन्हे सारस्वत कहता है, कोई सनाढ्य। ये बहुत बडे त्यागी और विरक्त थे। ये निम्बार्क सम्प्रदाय के महात्मा थे। इनके शिष्यो मे अनेक सुकवि और महात्मा हो गये है। ये गान-विद्या के आचार्य थे। तानसेन और बैजू बावरा दोनो इनके शिष्य थे। ये वृन्दावन मे ही रहते थे। और बडी ही तदीयता के साथ अपना जीवन व्यतीत करते थे। इनके पद्यो के तीन चार संग्रह बतलाये जाते है। उनके कुछ पद देखिये:—

१—"गहो मन सब रस को रस सार।
लोक वेद कुल कर्म्मै तजिये भजिये नित्य विहार।
गृह कामिनि कंचन धन त्यागो सुमिरो श्याम उदार।
गति हरिदास रीति संतन की गादी को अधिकार।"

२—"हरि के नाम को आलस क्यों करत है रे।
काल फिरत सर साधे।
हीरा बहुत जवाहिर संचे कहा भयो हस्ती दर बाँधे।
बेर कुबेर कछू नहि जानत चढ़े फिरत हैं काँधे।
कहि हरिदास कछू न चलत जब आवत अंतक आँधे।"

(ख)

अब मै अकबर के दरबारी कवियों की चर्चा करूंगा। इनके दरबार में भी उस समय अच्छे-अच्छे सुकवि थे। मंत्रियो मे रहीम खान खाना, बीरबल और टोडरमल भी कविता करते थे। दरबारी कवियों मे गंग और नरहरि का नाम बहुत प्रसिद्ध है। रहीम खान खाना मुसलमान थे। परन्तु हिन्दी भाषा के बड़े सरस हृदय कवि थे। उनकी रचनाये बडे आदर की

दृष्टि से देखी जाती है। वे बड़े उदार भी थे और सहृदय कवियों को लाखो दे देते थे। उन्होने फारसी मे भी रचनाये की थीं। उनका 'दीवान फारसी', और 'वाक़याते बाबरी' का फारसी अनुवाद बहुत प्रसिद्ध है। हिन्दी मे भी उन्होंने कई ग्रन्थो की रचना की है। उनकी कुछ हिन्दी-रचनाये देखिये —

१—कहि रहीम इकदीप तें, प्रगट सबै दुति होय।
तन सनेह कैसे दुरै, जरु दृग दीपक दोय।

२—छार मुंड मेलतु रहतु, कहि रहीम केहि काज।
जेहि रज रिषि पत्नी तरी, सो ढूंढ़त गजराज।

३—रहिमन राज सराहिये, जो ससि के अस होय।
रवि को कहा सराहिये, जो उगै तरैयन खोय।

४—योँ रहीम सुख होत है, बढ़त देखि निज गोत।
ज्यों बड़री अखियाँन लखि, आँखिन को सुख होत

५—ज्यों रहीम गति दीप की, कुल कपूत गति सोय।
बारे उँजियारो लगै, बढ़े अंधेरो होय।

६—बालम अस मन मिलयउं जस पय पानि।
हंसिनि भई सवतिया लइ बिलगानि।
भोरहि बोलि कोइलिया बढ़वति ताप।
एक घरी भरि सजनी रहु चुपचाप।
सघन कुंज अमरैया सीतल छाँहि।
झगरति आइ कोइलिया पुनि उड़ि जाहि।
लहरत लहर लहरिया लहर बहार।
मोतिन जरी किनरिया बिथुरे बार।

७—कलित ललित माला वा जवाहिर जड़ा था।
चपल चखन वाला चाँदनी में खड़ा था।
कटि तट बिच मेला पीत सेला नवेला।
अलिबन अलबेला यार मेरा अकेला।

टोडरमल अकबर के कर-विभाग के प्रधान मत्री थे। बही खाता का प्रचार सब से पहले इन्हीं के द्वारा हुआ। हिन्दी दफ्तर को पहले पहल इन्होंने ही फारसी मे किया। ये प्रधान कवि नहीं है और न इनका कोई ग्रन्थ है। स्फुट कवितायें इनकी मिल जाती है। इनकी एक रचना देखिये।

गुन बिनु धन जैसे गुरु बिनु ज्ञान जैसे।
मान बिनु दान जैसे जल बिनु सर है।
कंठ बिनु गीत जैसे हित बिनु प्रीति जैसे।
वेश्या रस रीति जैसे फल बिनु तर है।
तार बिनु जंत्र जैसे स्याने बिनु मंत्र जैसे।
नर बिनु नारि जैसे पुत्र बिनु घर है।
टोडर सुकबि तैसे मन में बिचार देखो।
धर्म बिनु धन जैसे पच्छी बिना पर है॥

बीरबल अकबर के प्रधान मत्रियो मे से थे। जाति के ब्राह्मण थे, बड़े बीर भी थे। कविता के रसिक थे और स्वयं कविता करते थे। अपने समय में कविजन के कल्पतरु थे। प्रत्युत्पन्नमति ऐसे थे कि अकबर की दृष्टि मे इसी कारण उनका विशेष आदर था। बड़े सरस हृदय थे और ललित कविता भी करते थे। दो एक पद्य देखिये —

१—उछरि उछरि भेकी झपटै उरग पर
उरग पै केकिन के लपटैं लहकि है।
केकिन के सुरति हिये की ना कछू है भय
एकी करी केहरि न बोलत बहकि है।

कहै कवि ब्रह्म वारि हेरत हरिन फिरैं
बैहर बहति बड़े जोर सों जहकि है।
तरनि के तावन तवासी भई भूमि रही
दसहू दिसान में दवारि सी दहकि है।

२—पेट में पौढ़ि के पौढ़े मही पर
पालना पौढि के बाल कहाये।
आई जबै तरुनाई तिया सँग
सेज पैं पौढ़ि के रंग मचाये।
छीर समुद्र के पौढ़नहार को
ब्रह्म कबौंचित तें नहि ध्याये।
पौढ़त पौढ़त पौढ़त ही सों
चिता पर पौढ़न के दिन आये।

नरहरि अकबरी दरबार के प्रसिद्ध कवि थे। वे जिला फतहपूर—असनी गाँव के निवासी थे। शायद जाति के बदीजन थे, कहा जाता है कि इनके एक छप्पे पर रीझ कर अकबर ने अपने समय मे गावकुशी बद कर दी थी। वह छप्पे यह है –

अरिहुं दन्त तृन धरैं ताहि मारत न सबल कोइ।
हम संतत तृन चरहिँ बचन उच्चरहि दीन होइ।
अमृत पय नितस्रवहि बच्छ महि थम्भन जावहि।
हिन्दुहि मधुर न देहि कटुक तुरकहि न पियावहि।
कह नरहरि कवि अकबर सुनो
बिनवत गऊ जोरे करन।
अपराध कौन मोहि मारियतु
मुयेहुं चाम सेवत चरन।

एक पद्य उनका और देखिये.—

सरवर नीर न पीवहीं स्वाति बुन्द की आस।
केहरि कबहुँ न तृन चरै जो ब्रत करै पचास।
जो ब्रत करै पचास विपुल गज-जूह बिदारै।
धन ह्वै गर्व न करै निधन नहि दीन उचारै।
नरहरि कुल क सुभाउ मिटै नहि जब लगि जीवै।
बरु चातक मरि जाय नीर सरवर नहिं पीवै।

कवि गंग अकबर-दरबार के एक नामी कवि थे। रचना जो इनकी मिलती है वह प्रौढ है। इनका कोई ग्रन्थ अब तक नहीं मिला है परन्तु जो स्फुट पद्य पाये गये है उनसे उनकी योग्यता का पूरा परिचय मिलता है। किसी किसी की यह सम्मति है कि इनका अन्तिम समय बडा दु:खद था। कहा जाता है कि वे हाथी के पैरों से रौन्दवा दिये गये। भिखारी दास का एक दोहा है जिसमे उन्होंने गोस्वामी तुलसीदास जी के साथ इनकी भी प्रशंसा की है और इनको अच्छा कवि माना है। वह दोहा यह है —

तुलसी गंग दुवौ भये, सुकबिन के सरदार।
इनकी कविता में मिली, भाषा विविध प्रकार।

रहीम खा खान खाना इनका बडा आदर करते थे, कवि गंग ने उनकी प्रशंसा मे कुछ रचनाये भी की है। उनकी कुछ कविताये नीचे लिखी जाती है —

बैठी थी सखिन संग पिय को गवन सुन्यो,
सुख के समूहमें वियोग आग भरकी।
गंग कहै त्रिविधि सुगंध लै पवन बह्यो,
लागतही ताके तन भई बिथा जर की।

प्यारी को परसि पौन गयो मानसर पँह
लागत ही औरै गति भई मानसर की।
जलचर जरे औ सेवार जरि छार भयो,
जल जरि गयो पंक सूख्यो भूमि दरकी।
मृगहूं ते सरस विराजत बिसाल दृग देखिये,
न अस दुति कौलहू के दल मैं।
गंग घन दुज से लसत तन आभूषन ठाढ़े
द्रुम छाँह देख ह्वै गई विकल मैं।
चख चित चाय भरे शोभा के समुद्र माहिँ
रही ना सँभार दसा औरै भई पल में।
मन मेरो गरुओ गयो री बूड़ि मैं न पायो,
नैन मेरे हरुये तिरत रूप जल में।

इन प्रसिद्ध कवियो के अतिरिक्त इस सोलहवीं सदी मे नरोत्तमदास नामक एक बडे सहृदय कवि हो गये है। वे जिला सीतापुर के रहने वाले ब्राह्मण थे। इनके दो ग्रन्थ बतलाये जाते है। एक 'सुदामा चरित्र' और दूसरा 'ध्रुव चरित्र'। ये दोनों खण्ड काव्य है। इनमे से सुदामाचरित्र की कविता बडी ही सरस है। उसमे से दो पद्य नीचे लिखे जाते है —

१—कोदो समाँ जुरतौ भरि पेट न
चाहति तौ दधिदूध मिठौती।
सीत न बीतत जो सिसियात
तौ हौं हठती पै तुम्हें न हठौती।
जो जनती न हितूहरि से तो मैं
काहे को द्वारिका ठेलि पठौती।

या घर से कबहूं न गयो पिय
टूटो तवा अरु फूटी कठौती।

२—काहे बेहाल बिवाइन सों पुनि
कंटक जाल लगे पग जोये।
हाय महादुख पायौ सखा तुम
आये इतै न कितै दिन खोये।
देख सुदामा की दीन दसा
करुना करिकै करुना निधि रोये।
पानी परात को हाथ छुयौ
नहिं नैनन के जल सों पग धोये।

केशवदास जी के बडे भ्राता बलभद्र जी की चर्चा मै पहले कर चुका हू – आप संस्कृत भाषा के प्रसिद्ध विद्वान् थे। आप की संस्कृत रचनाये अधिक है। भागवत भाष्य और बलभद्री व्याकरण आप के उत्तम ग्रन्थ है। इनकी बनाई हुई हनुमन्नाटक एवं गोवर्धन सप्तशती की टीकाये भी बडी विशद् है। संस्कृत के इतने बडे विद्वान् होने पर भी आप ने हिन्दी भाषा मे दो ग्रन्थ लिखे, एक का नाम है दूषण विचार और दूसरा है नखशिख। दूषण विचार सुना है कि बडा उपयोगी ग्रन्थ है, परन्तु मैने इस ग्रन्थ को नहीं देखा। नखशिख सुन्दर ग्रन्थ है, और इसकी रचना बडी प्रौढ है। इसके जोड का नृपशंभु का नखशिख नामक ग्रन्थ है, परंतु यह ग्रन्थ उक्त ग्रन्थ के अनुकरण से ही लिखा गया है— और भी नखशिख के ग्रन्थ है, परन्तु बलभद्र जी के नखशिख की समता कोई नहीं कर सका। उसके दो पद्य नीचे लिखे जाते है —

पाटल नयन कोक नद के से दल दोऊ
बलभद्र बासर उनीदी लखी बाल मैं।
शोभा के सरोवर मैं बाड़वकी आभा कैधों
देवधुनि भारती मिली है पुन्य काल मैं।

काम कैवरत कैधों नासिका उडुंप बैठ्यो
खेलत सिकार तरुनी के मुखताल मैं ।
लोचन सितासित मैं लोहित लकीर मानों
बाँधे जुग मीन लाल रेसम के जालमें ।१।
मरकत के सूत कैधों पन्नग के पूत अति राजत,
अभूत तमराज के से तार हैं ।
मखतूल गुन ग्राम सोभित सरस श्याम
काम मृग कानन कै कुहू के कुमार हैं ।
कोपकी किरिन कै जलज नाल नील तंतु
उपमा अनंत चारु चँवर सिँगार हैं ।
कारे सटकारे भींजे सोंधे सों सुगंध बास
ऐसे बलभद्र नव बाला तेरे बार हैं ।२।

इसी समय मे हरिनाथ, तानसेन, प्रवीण राय, होलराय, करनेस, लालनदास, मनोहर, रसिक आदि ऐसे कवि भी साहित्य क्षेत्र मे आये, जो बहुत प्रसिद्ध नही है, परन्तु उनकी रचनाये सुन्दर और भावमयी है। सब की रचनाओं के नमूने के लिये इस ग्रन्थ मे स्थान का संकोच है। जो रचनाये अधिक मधुर है और जिनमे कुछ विशेपता है, उनमे से कुछ नीचे लिखी जाती है.—

बलि बोई कीरति लता कर्ण करी द्वैपात,
सींची मान महीप ने जब देखी कुम्हलात ।
जाति जाति ते गुन अधिक सुन्यो न कबहूँ कान ।
सेतु बाँधि रघुबर तरे हेलादे नृप मान ।

हरिनाथ

खात हैं हरामदाम करत हराम काम धाम
धाम तिनही के अपजस छावैंगे ।

दोजख में जैहैं तब काटि काटि कीड़े खैहैं
खोपड़ी को गूद काक टोंटन उड़ावैंगे।
कहै करनेस अबैधूस खात लाजैं नाहि
रोजा औनेवाज अंत काम नहिँ आवैंगे।
कबिन के मामिले में करैं जौन खामी
तौन निमक हरामी मरे कफन न पावैंगे।

करनेस

दीप कैसी जाकी जोति जगर मगर होति
गुलाबास बादर मैं दामिनी अलूदा है।
जाफरानी फूलन मैं जैसे हेमलता लसै
तामैं उग्यो चन्द्र लेन रूप अजमूदा है।
लालन जू लालन के रंग से निचोरि रँगी
सुरँग मजीठ ही के रंगन जमूदा है।
बकि न बहूदा लखिछबिन को तूदाओप
अतर अलूदा अंगना का अंग ऊदाहै।

लालनदास

स्वामी हितहरिवंस की शिष्य परम्परा और शिष्यों में तथा हरिदास स्वामी आदि महात्माओं के संसर्ग से अनेक सहृदय कवि इस शतक में उत्पन्न हुये, उनकी रचनाये बडी सरस है। उनमे से हितरूप लाल, गदाधर भट्ट, भगवान हित, नागरीदास, बिहारिन दास, भट्ट महाराज, ब्यासजी, सेवक जो, हरिवंस अली, और बिट्ठल बिपुल का नाम विशेष उल्लेखनीय है। इनमे से कुछ लोगों की रचाये भी देखिये'—

बिथुरी सुथरा अलकैं झलकैं
बिच आनि कपोल परीं जुछली।

मुसुकात जबै दसनावलि देखि
लजात तबै तब कुन्द कली।
अति चंचल नैनफिरैं चहुघां नित
पोखत लाल है भांति भली।
तिन के पद पंकज को मकरंद
सुनित्य लहै हरिबंस अली।

हरिवंस अली

जैसे गुरु तैसे गोपाल।
हरि तौ तबहीं मिलिहैं जबहीं श्रीगुरु होयँ कृपाल।
गुरु रूठे गोपाल रूठि हैं वृथा जात है काल।
एक पिता बिन गनिका सुत को कौन करे प्रतिपाल।

व्यासजी

सजनी नवल कुंज बन फूले।
अलिकुल संकुल करत कुलाहल सौरभ मनमथ मूले।
हरखि हिंडोरे रसिक रास बर जुगुल परस्पर झूले।
बिट्ठल बिपुल बिनोद देखि नभ देव बिमानन भूले।

यह बिट्ठल विपुल जी का पद्य है। स्वामी हरिदास जी के आप शिष्य थे, उनका स्वर्गारोहण होने पर आप ही उनकी गद्दी पर बैठे। गुरु के चरणो मे आप का इतना अनुराग था कि उनके शरीर का पात होने पर उन्होने अपनी आँखों पर पट्टी बाँध ली। एक रास के समय कहा जाता है कि स्वयं श्रीकृष्णजी ने उनकी आँखो को पट्टी खोली। एक बार रास मे आप इतने प्रेमोन्मत्त हुये कि तत्काल देहान्त हो गया।

बने बन ललित त्रिभंग बिहारी।
बंसीधुनि मनु बंसी लाई आई गोपकुमारी।

अरप्यो चारु चरन पद ऊपर लकुट कच्छ तरधारी ।
श्री भट मुकुट चटक लटकनि मैं अटकि रहे दृगप्यारी ।

श्री भट्ट

रक्त पीतसित असित लसत अंवुज वन सोभा ।
टोल टोल मद लोल भ्रमत मधुकर मधु लोभा ।
सारस अरु कलहंस कोक कोलाहल कारी ।
पुलिन पवित्र विचित्र रचित सुन्दर मनहारी ।

गदाधर भट्ट

सबै प्रेम के साधन तरु हरि ।
निकसत उमग प्रगट अंकुर वर पात पुराने परिहरि ।
गुन सुनि भई दास की आसा दरस्यो परस्यो भावै ।
जब दरस्यो तब बोलै चाहै बोले हूँ हंसि आवै ।

बिहारिनिदास

जसुमति आनंद कन्द नचावति ।
पुलकि पुलकि हुलसाति देखि मुख अति सुख पुंजहिँ पावति
बाल जुवा वृद्धा किसोर मिलि चुटकी दै दै गावति ।
नुपुर सुर मिश्रित धुनि उपजति सुर विरंचि विसमावति ।
कुंचित ग्रंथित अलक मनोहर झपकि वदन पर आवति ।
जन भगवान मनहुँ घन विधु मिलि चाँदनि मकर लजावति ।

हित भगवान

दिन कैसे भरूं री माई विनदेखे प्रान अधार ।
ललित तृभंगी छैल छबीलो पीतम नंद कुमार ।
सुन री सखी कदमतर ठाढ़ो मुरली मंद बजावै ।
गनिगनि प्यारी गुनगन गावै चितवत चितहि रिझावै ।

जियरा धरत न धीरज सजनी कठिन लगन की पीर।
रूप लाल हित आगर नागर सागर सुख की सीर।

हितरूप लाल

इन महात्माओं मे अधिकतर ग्रन्थकार है, और एक एक ने कई कई ग्रन्थ लिखे है, इन सब बातो की चर्चा करने से अधिक विस्तार और विषयान्तर होगा अतएव मैं इस विषय को यहीं छोडता हू। नाभादास जी के गुरु अग्रदास जी भी इसी शताब्दी मे हुये। आप ने भी कई ग्रन्थो की रचना की है, 'राम भजन मंजरी' और 'भाषा हितोपदेश' उनके सुन्दर ग्रन्थ है। एक कविता उनकी भा देखिये —

कुण्डल ललित कपोल जुगुल अरु परम सुदेसा।
तिनको निरखि प्रकास लजत राकेस दिनेसा।
मेचक कुटिल विसाल सरोरुह नैन सुहाये।
मुख पंकज के निकट मनो अलि छौना आये।

इन उद्धरणो को देखकर आप सोचते होगे, कि यह व्यर्थ विस्तार किया गया है, परन्तु आवश्यकताओ ने मुझको ऐसा करने के लिये विवश किया। मै यह दिखलाना चाहता हू कि सोलहवी शताब्दी मे हिन्दो भाषा कैसे समुन्नत हुई किस प्रकार व्रजभापा को प्रधानता मिली और उसका क्या स्वरूप स्थिर हुआ। अतएव मुझको सब प्रकार की रचनाओ का संकलन करना पडा। इस शताब्दी मे अवधी और व्रजभाषा दोनो का सर्वांगीण शृंगार हुआ, दोनों मे ऐसे लोकोत्तर ग्रन्थ लिखे गये, जैसे आज तक दृष्टिगोचर न हो सके। परन्तु एक बात देखी जाती है, वह यह कि ब्रजभाषा का विकास बाद की शताब्दियों मे भी बहुत कुछ हुआ, वह आगे चल कर भी अच्छी तरह फूली, फली और फैली, किन्तु अवधी को यह गौरव नहीं प्राप्त हुआ। प्रेम मार्गी सूफियो के कुछ ग्रन्थ गोस्वामी जी के पश्चात् भी अवधी भाषा मे लिखे गये है, परन्तु प्रथम तो उनकी संख्या उंगलियो पर गिनी जा सकती है, दूसरे व्रजभाषा की ग्रंथावली के सामने वे शून्य के

बराबर है। बाबा रघुनाथ दास का विश्राम सागर भी अवधी भाषा मे लिखा गया है, और इसमे सन्देह नहीं कि यह भी अवधी भाषा का उत्तम ग्रन्थ है। उसका प्रचार भी हुआ। परन्तु इन कतिपय ग्रन्थों के द्वारा उस न्यूनता की पूर्ति नहीं होती जो व्रजभाषा की विशाल ग्रंथमालाओ के सामने अवधी को प्राप्त हुई। जब यह विचार किया जाता है कि व्रज-भाषा के इस व्यापकता और विस्तार का क्या कारण है तो कई बाते सामने आती है। मै उनको प्रगट करना चाहता हू।

यह देखा जाता है कि चिरकाल से मध्यदेश की भाषा को ही प्रधानता मिलती आयी है। जिस समय संस्कृत भाषा का गौरवकाल था। उस समय भी इस प्रान्त से ही उसका प्रचार अन्य प्रदेशों मे हुआ। जब प्राकृत भाषा का प्रचार हुआ तब भी शौरसेनी को ही अन्य प्राकृतो पर विशिष्टता मिली और उसी का अधिक विस्तार अन्य प्रदेशो मे हुआ। संस्कृत के नाटको मे शिष्ट भाषा के रूप मे शौरसेनी ही गृहीत हुई है। कारण इसका यह है कि आर्य सभ्यता इसी स्थान से अन्य प्रदेशोमे फैली। और इसी स्थान से आर्य्यों के विशिष्ट दलो ने जाकर अन्य प्रदेशो पर अधिकार किया। ऐसी अवस्था मे उनकी भाषाओं का महत्व जो अन्य प्रान्तवालो ने स्वीकार किया तो यह आश्चर्य्यजनक नहीं, क्योकि यह देखा जाता है कि राज्यभाषा ही प्रधानता लाभ करती है। जिस समय व्रज-भाषा का उदय हुआ उस समय भी मध्यदेश की ही राज्य-सत्ता का प्रभाव भारतवर्ष पर था। उन दिनो अकबर सम्राट् था और उसकी राजधानी अकबराबाद या आगरे मे थी। जो व्रजप्रान्त के अन्तर्गत है। अतएव वहा की भाषा का प्रभाव अन्य प्रदेशो पर पडना स्वाभाविक था, विशेष कर उस अवस्था मे जब कि अकबर के समस्त बडे अधिकारी व्रजभाषा से स्नेह करते थे। इतना ही नहीं वे व्रजभाषा मे स्वयं रचना करके भी उन दिनो उसे समादृत बना रहे थे। मैं राजा बीरबल, राजा टोडरमल और रहीम खा खानखाना की रचनाओ को ऊपर उद्धृत कर आया हू। वे ही मेरे कथन के प्रमाण है, अकबर स्वयं व्रजभाषा मे कविता करता था। कुछ पद्य उसके भी देखिये —

"जाको जस है जगत में सबै सराहै जाहि ।
ताको जीवन सफल है कहत अकब्बर साहि ।
साहि अकब्बर एक समै चले,
कान्ह बिनोद बिलोचन बालहिं ।
आहट ते अबला निरख्यो चकि
चौंकि चली करि आतुर चालहि ।
त्यों बलि बेनी सुधारि धरी सुभई,
छबियों ललना अरु लालहि ।
चम्पक चारु कमान चढ़ावत,
काम ज्यों हाथ लिये अहि बालहि ।

यही नहीं, उनके दरबार के राजे महाराजे भी इस रंग मे रंगे हुये थे। उनकी व्रजभाषा की रचनाये बतलाती है कि जो राजे व्रजप्रान्त से दूर के थे वे भी उसके प्रभाव से प्रभावित थे। बीकानेर के राजा के भाई पृथ्वी-राज की एक रचना देखिये। आप अकबर के प्रसिद्ध दरबारी थे। उन्होंने तीन ग्रन्थ लिखे थे। उनमे से एक ग्रन्थ 'प्रेम-प्रदीपिका' का एक पद्य यह है:—

"प्रेम इकंगी नेम प्रेम गोपिन को गायो ।
बचनन विरह विलाप सखी ताकी छवि छायो ।
ज्ञान जोग वैराग मधुर उपदेसन भाख्यो ।
भक्ति भाव अभिलाष मुख्य बनि तनु मन राख्यो ।
वहुविधि वियोग संयोग सुख सकल भाव समुझै भगत।
यह अद्भुत 'प्रेम-प्रदीपिका' कहि अनंत उदित जगत ।"

कुछ लोगों ने यह लिखा है कि महाराज मानसिह भी ब्रजभाषा मे कविता करते थे, परन्तु उनकी कोई कविता मेरे देखने मे नहीं आयी।

मैंने अब तक जो लिखा, उससे यह पाया जाता है कि उस समय अकबर के दरबार मे ब्रजभाषा की बडी चर्चा थी। यह मै स्वीकार करूंगा कि रहीम खा खान खाना ने अवधी भाषामे भी रचना की है, पर उनकी अधिकाश रचनाये ब्रजभाषा की ही है। 'नरहरि' और गंग' की जो रचनाये ऊपर उद्धृत की गई हे। उनकी भाषा भी प्रौढ ब्रजभाषा है। इससे ब्रजभाषा के अधिक प्रचार होने का रहस्य समझ मे आ जाता है। इसके अतिरिक्त उन दिनो मथुरा वृन्दावन मे कृष्णावत संप्रदाय के ऐसे प्रसिद्ध महात्मा हुये जिनका वहुत बडा प्रभाव अन्य प्रदेशो पर भी पडा। इन महात्माओ मे से अधिकाश की रचनाये मै ऊपर उद्धृत कर आया हू। उनके पढने से आप को ज्ञात होगा कि उस समय ब्रजभाषा कविता का प्रवाह कितना प्रबल था। जिस भाषा के सहायक सम्राट से लेकर उनके मंत्रि-मण्डल उनके दरबारी राजे महाराजे और सामयिक अधिकाश महात्मागण हो उसका विशेष आदृत और विस्तृत हो जाना आश्चर्य्यजनक नहीं। मोरावाई के भजनो को भी आप पढ चुके है। वह भी भगवान कृष्णचन्द्र के प्रेम मे ही रंगी थीं। उनकी रचनाओ से यह बात स्पष्टतया बिदित होती है। उस समय ब्रजभाषा की समुन्नति में उनका भी कम प्रभाव नहीं पडा। यह सच है कि उनकी भाषा मे राजस्थानी शब्द मिलते है। परन्तु उनको अधिकतर रचनाये ब्रजभाषा के ही रङ्ग मे रँगी है। ब्रजभाषा के विस्तार का एक बहुत बडा हेतु और भी है। वह यह कि कृष्णावत सम्प्रदाय जहाँ जहाँ गया वहाँ वहाँ उस सम्प्रदाय की प्रिय भाषा ब्रजभाषा भी उसके साथ गई। भगवान् कृष्णचन्द्र और श्रीमती राधिका जिनके आराध्यदेव हो वे उनकी प्रिय भाषाका आदर क्यों न करते? भगवान कृष्णचन्द्र के गुणगान का अधिक सम्बन्ध ब्रजलीला ही से है। फिर ब्रजप्रान्त की भाषा आदृत क्यो न होती? कृष्ण-भक्ति के साथ ब्रजभाषा का घनिष्ट सम्बन्ध है। इसलिये वह भी उनकी भक्ति के साथ साथ ही उत्तरीय भारत मे, राजस्थान और गुजरात में, अपना प्रभाव विस्तार करने मे समर्थ हुई।

एक बात और है, वह यह कि भगवान कृष्णचन्द्र श्रृंगार रस के देवता

है। पहले कुछ गीति ग्रन्थ के आचार्य्यों ने विष्णु भगवान को देवता माना। परन्तु उत्तर-काल मे भगवान् कृष्णचन्द्र ही की प्रधानता हुई। इस लिये शृंगार रसके वर्णनमे उनकी व्रजलीलाको अधिकतर स्थान दिया गया। और व्रजलीला के साथही व्रजभाषा भी सादर गृहीत हुई। सत्रहवीं से लेकर उन्नीसवीं शताब्दी तक जहा थोडे से अन्य साहित्यके ग्रन्थ लिखे गये वहा शृंगार रसके ग्रन्थोकी भरमार रही। पहले शृंगार रसके वर्णनमे कुछ संकोच भी होता था। परन्तु उसके कृष्ण-लीलामय होने के कारण जब यह भाव भी आकर उसमे सम्मिलित हो गया कि यह रूपान्तर से कृष्ण गुणगान है १ जो पवित्र और निर्दोष है तो बडे असंयत भाव और अधिकतासे शृंगार रसकी रचनाये होने लगी। काल पाकर साहित्य पर उसका अच्छा प्रभाव नही पडा। कृष्ण गुणगान करने के बहाने उच्छृंखलताओ और अयथा वर्णनों ने स्थान ग्रहण किया, जिससे शृंगार-सम्बन्धी ग्रन्थ अनेक अंशों मे कलुषित होने से न बचे और यह उक्त त्यागशील महात्माओ के उत्तम आदर्शों का बहुत बडा दुरुपयोग हुआ, जो बाद को अनेक लाछनो का कारण बना। अष्ट छाप के वैष्णवों मे जो भक्ति और पवित्रता पायी जाती है, स्वामी हित हरिवंश, स्वामी हरिदास आदि महात्माओंमे जो सच्ची भक्ति और तन्मयता अथच तदीयता देखी जाती है, बिट्ठल विपुल मे जो प्रेमोन्माद और तल्लीनता मिलती है, उसका शताश भी उत्तर काल के शृंगार रस के ग्रन्थकारों मे दृष्टिगत नहीं होता। इसलिये उनकी रचनाओ का कुछ अंश ऐसा बन गया जो निंदनीय कहा जा सकता है। यह मै कहूंगा कि उस काल के कुछ रसिक राजा-महाराजाओ ने इस रोग को बढ़ाया और कुछ उस काल के उर्दू और फारसी साहित्य के संसर्ग ने। परन्तु यह सत्य है कि जहाँ व्रजभाषा की रचनाओ के विस्तार के और कारण हुये वहा एक कारण यह शृंगार रस का व्यापक प्रवाह भी हुआ। ऊपर जो पद्य उद्धृत किये गये है उनमेसे 'करनेस' 'लालनदास' की रचनाओ

---

१ भिखारीदासजी लिखते हैं —

'आगे के सुकवि रीझि है तो कविताई,

ना तौ राधिका कन्हाई सुमिरन को बहानो है।'

की ओर मैं आपलोगों की दृष्टि विशेष रूप से आकर्षित करता हूं। उनके देखने से आपलोगों को यह ज्ञात होगा कि इसी शताब्दी में ही कुछ कवियों ने ब्रजभाषा की रचना में फारसी और अरबी के अधिकतर शब्दों का भरना आरम्भ किया था। परन्तु ऐसे कवियों को सफलता प्राप्त नहीं हुई और न उनका अनुकरण हुआ। फारसी अरबी के शब्दों के ग्रहण करने के वही नियम गृहीत रहे। अपनी आदर्श रचना द्वारा जिनका प्रचार सूरदास जी और गोस्वामी तुलसीदास जी ने किया था अर्थात् ब्रज-भाषा की कविता में वेही शब्द आवश्यकतानुसार लिये गये जो अधिकतर बोलचाल में आते अथवा प्रचलित थे।

(ग)

इसी शतक में दादूदयाल जी का आविर्भाव हुआ। उनकी गणना निर्गुणवादी संतों में की जाती है। कोई उनको ब्राह्मण संतान कहता है, कोई यह कहता है कि वे एक धुनियाँ थे जिनको एक नागर ब्राह्मण ने पाला पोसा था। वे जो हों, किन्तु उनका हृदय प्रेम मय और उदार था। उनमें दयालुता की मात्रा अधिक थी, इसी लिये उनको दादूदयाल कहते हैं। उनको कलहविवाद प्रिय नहीं था। शान्तिमय जीवन ही उनका ध्येय था, इस लिये उनकी रचनाओं में वह कटुता नहीं मिलती जो कबीर साहब की उक्तियों में मिलती है। उनके ग्रन्थों के पढ़ने से यह ज्ञात होता है कि वे हिन्दू जाति से सहानुभूति रखते थे और उनके देवी-देवताओं और महात्माओं पर व्यंग बाण प्रहार करना उचित नहीं समझते थे। उनका विचार यह था कि संत होने के लिये संत भाव की आवश्यकता है। इस दृष्टि से वे किसी महापुरुष की कुत्सा कर के अपने को सर्वोपरि बनाना नहीं चाहते थे। अतएव उनकी रचनाओं में यथेष्ट गंभीरता पायी जाती है। उनको यह ज्ञात था कि उस समय हिन्दू धर्म पर किस प्रकार आक्र-मण हो रहा था, इस लिये उसके प्रति वे सहानुभूतिपूर्ण थे ओर इसी कारण उन्होंने वह मार्ग नहीं ग्रहण किया जिससे उसका धर्म-क्षेत्र कंटकित हो और औरों को उस पर अयथा आक्रमण करने का अधिक अवसर प्राप्त हो। वे हिन्दू संतान थे। इसलिये उनका हिन्दू संस्कार जाग्रत था और यही कारण है कि वे उसके धर्म-याजकों पर अनुचित कटाक्ष करते

नहीं देखे जाते। वे जितने ही मिथ्याचार के विरोधी थे उतने ही मिथ्या-वाद से दूर। वे यह जानते थे कि सत्य मे बल है। इस लिये वे सत्य का प्रचार सत्य भाव ही से करते थे असंयत भावो के साथ नहीं। लगभग यह बात सभी हिन्दू निर्गुणवादियों मे पायी जाती है, यहा तक कि कबीर साहब के प्रधान शिष्य धर्मदास, श्रुतगोपालदास आदि मे भी यही भाव कार्य रत देखा जाता है। इन लोगो मे भी हिन्दू धर्म के प्रति वह दुर्भाव नहीं देखा जाता जिससे हिन्दू धर्म के प्रति उनका असद्भाव प्रगट हो दादू-दयाल के हृदय का विनीत भाव इससे भी प्रगट होता है कि वे सब को दादा कहते थे और इसी लिये उनका नाम दादू पडा। उनकी कुछ रच-नाये आप के सामने उपस्थित की जाती है। इनको पढ कर आप लोगो को स्वयं यह ज्ञात होगा कि वे क्या थे—

(१) अजहुँ न निकसे प्रान कठोर।

दरसन बिना बहुत दिन बीते सुन्दर प्रीतम मोर।
चार पहर चारहुँ जुग बीते रैनि गंवाई भोर।
अवधि गये अजहूँ नहि आये कतहुँ रहे चित चोर।
कबहूँ नैन निरख नहि देखे मारग चितवत तोर।
दादू अइसहि आतुरि विरहिनि जैसहि चन्दचकोर।

(२) भाई रे! ऐसा पंथ हमारा।

द्वै पख रहित पंथ गह पूरा अबरन एक अधारा।
वाद विवाद काहु सों नाहीं मैं हूँ जग थें न्यारा।
सम दृष्टी सूं भाइ सहज में आपहिँ आप विचारा।
मैं तैं मेरी यहु मति नाहीं निरवैरी निरविकारा।
पूरण सबै देखि आपा पर निरालंब निरधारा।
काहु के संगी मोह न ममता संगी सिरजन हारा।
मनही मनसूं समझु सयाना आनँद एक अपारा।

काम कलपना कदे न कीजे पूरण ब्रह्म पियारा।
यहि पथ पहुँचि पार गहि दादू सो तत सहज संभारा।

(३) यह मसीत यह देहरा सत गुरु दिया देखाय।
भीतर सेवा बन्दगी बाहर काहे जाय।

(४) सुरग नरक संसय नहीँ, जिवन मरण भय नाहिँ।
राम विमुख जे दिन गये सो सालै मन माहिँ।

(५) जे सिर सौंप्या राम कों, सो सिर भया सनाथ।
दादू दे ऊरण भया जिसका तिसके हाथ।

(६) कहताँ सुनताँ देखताँ लेताँ देताँ प्राण।
दादू सो कतहूं गया माटी भरी मसाण।

(७) आवरे सजणा आव सिर पर धरि पाँव।
जाणी मैंडा जिद असाड़े
तू रावैंदा राव वे सजणा आव।
इत्थां उत्थां जित्थां कित्थां हौं जीवां तो नाल वे।
मीयां मैंडा आव असाड़े
तू लालों सिर लाल वे सजणा आव।

(८) म्हारे व्हाला ने काजे रिदै जो वानेहूं ध्यान धरूँ।
आकुल थाए प्राणम्हारा को ने कही पर करूँ।
पीवे पाखे दिन दुहेलां जाए घड़ी बरसांसौं केम भरूँ।
दादू रे जन हरिगुण गातां पूरण स्वामी ते वरूँ।

दादू दयाल मे यह विशेषता थी कि वे पंजाबी और गुजराती भाषा मे भी कविता कर सकते थे। उनकी इस प्रकार की रचनाये भी ऊपर उद्धृत की गयी है। नम्बर ७ की रचना पंजाबी और नम्बर ८ की गुजराती

भाषा की है। इस प्रकार की उनकी रचनाये थोडी है। अधिकांश रचनाये व्रज भाषा की ही है जिसमे अधिकतर शब्द राजस्थानी भाषा के और थोड़े अवधी के आये है। उनकी भाषा भी संतो की भाषा के समान स्वतन्त्र है। उसमे विशेष बन्धन नहीं। जब जहाँ आवश्यक समझते है अन्य भाषा के उपयुक्त शब्दो को ग्रहण कर लेते है। फिर भी यह कहा जा सकता है कि उनकी भाषा पर व्रज भाषा और राजस्थानी भाषा का ही विशेष प्रभाव है। पहले पद्य को देखिये। वह बहुत ही प्राजल है और इस भाव से लिखा गया है कि ज्ञात होता है कि वे सूरदासजी का अनुकरण कर रहे है। ऐसी उनकी कितनी ही रचनाये है। दूसरा पद्य ऐसा है जिसमे राजस्थानी शब्द अधिक आये है। फिर भी उसकी भाषा साफ और चलती है। दादूदयाल के विचार निर्गुणवादियो के से है, परन्तु अन्य निर्गुणवादियो के समान वे भी सगुणोपासक है और परमात्मा मे अनेक गुणो की कल्पना करते रहते है। उन्होने अपनी रचनाओं मे अपने पूर्व के कबीर साहब इत्यादि निर्गुणवादियो को भी स्मरण किया है और स्थान स्थान पर पौराणिक महात्माओ को भी। स्वर्ग नरक इत्यादि का वर्णन भी उनकी रचनाओ मे है और पौराणिक उन पापियों का भी जो पतितपावन के अपार अनुग्रह से पाप-मुक्त हो कर अच्छे पद को प्राप्त हो सके। इस लिये उनके विचार भी पौराणिक भावो से ही ओत-प्रोत है जो समय पर दृष्टि रख कर उनके द्वारा प्रकट किये गये है। राजस्थान मे उनके पंथवाले अधिक है उनका कार्य-क्षेत्र भी आजीवन राजस्थान ही रहा है।

चौथा प्रकरण।

उत्तर—काल।

(१)

सोलहवीं शताब्दी मे हिन्दी साहित्यक्षेत्र मे तीन धाराये प्रबल वेग से बहती दृष्टिगत होती है। पहली निर्गुणवाद सम्बन्धी दूसरी सगुणवाद या भक्तिमार्ग-सम्बन्धी और तीसरी रीति ग्रन्थ-रचना-सम्बन्धी। इस सदी मे निर्गुणवाद के प्रधान प्रचारक कबीर साहब गुरु नानकदेव और

दादूदयाल थे। सगुणोपासना अथवा भक्तिमार्ग के प्रधान प्रवर्त्तक कविवर सूरदास और गोस्वामी तुलसीदास थे। रीति ग्रंथ-रचना के प्रधान आचार्य केशवदास जी कहे जा सकते हैं। इन लोगोंने अपने अपने विषयोमे जो प्रगल्भता दिखलायी वह उत्तर काल मे दृष्टिगत नहीं होती। परन्तु उनका अनुगमन उत्तर काल मे तो हुआ ही, वर्त्तमान काल मे भी हो रहा है। मैं यथा शक्ति यह दिखलाने की चेष्टा करूंगा कि ई० सत्रहवीं शताब्दी मे इन धाराओ का क्या रूप रहा और फिर अठ्ठारवीं और उन्नीसवीं शताब्दी मे उनका क्या रूप हुआ। इन तीनों शताब्दियो मे जो देश कालानुसार अनेक परिवर्त्तन हुये हैं और भिन्न भिन्न विचार भारत वसुन्धरा मे फैले है। उनका प्रभाव इन तीनो शत्ताब्दियो की रचनाओ मे देखा जाता है। साथ ही भाव और भाषा मे भी कुछ न कुछ अन्तर होता गया है। इसलिये यह आवश्यक ज्ञात होता है कि इन शताब्दियो के क्रमिक परिवर्त्तन पर भी प्रकाश डाला जावे और यह दिखलाया जावे कि किस क्रम से भाषा और भावमे परिवर्तन होता गया। यह बात निश्चित रूपसे कही जा सकती है कि इन तीनो शताब्दियो मे न तो कोई प्रधान धर्म्म-प्रवर्त्तक उत्पन्न हुआ, न कोई सूरदास जी एवं गोस्वामी तुलसीदास जी के समान महाकवि, और न केशवदास जी के समान महान रीति-ग्रन्थकार। किन्तु, जो साहित्य-सम्बन्धी विशेष धाराये सोलहवीं शताब्दी मे बहीं वे अविच्छिन्न गति से इन शताब्दियों मे भी बहती ही रहीं, चाहे वे उतनी व्यापक और प्रबल न हो। इन तीनो शताब्दियो मे उस प्रकार की प्रभावमयी धारा बहाने मे कोई कवि अथवा महाकवि भले ही समर्थ न हुआ हो, परन्तु इन धाराओ से जल ले ले कर अथवा इनके आधार से नई नई जल प्रणालिया निकाल कर वे हिन्दी साहित्य-क्षेत्र के सेचन और उसको सरस और सजल बनाने से कभी विरत नहीं हुये। इन शताब्दियो मे भी कुछ ऐसे महान् हृदय और भावुक दृष्टिगत होते है जिनको साहित्यिक धाराय यदि उक्त धाराओ जैसी नहीं है तो भी उनसे बहुत कुछ समता रखने की अधिकारिणी कही जा सकती है, विशेष कर रीतिग्रन्थ-रचना के सम्बन्ध मे। परन्तु उनमे वह व्यापकता और विशदता नहीं मिलती, जो उनको उनकी समकक्षता का

गौरव प्रदान कर सके। मैंने जो कुछ कहा है वह कहा तक सत्य है, इसका यथार्थ ज्ञान आप लोगो को मेरी आगे लिखी जाने वाली लेखमाला से होगा।

मै पहले लिख आया हूं कि हिन्दी-साहित्य-क्षेत्र मे सोलहवीं शताब्दी मे ही ब्रजभाषा को प्रधानता प्राप्त हो गयी थी। और कुछ विशेष कारणो से हिन्दी के कवि और महाकवियों ने उसी को हिन्दी साहित्य की प्रधान भाषा स्वीकार कर लिया था। यह बात लगभग यथार्थ है परन्तु यह स्वीकार करना पडेगा कि उत्तर-काल के कवियो की मुख्य भाषा भले ही ब्रजभाषा हो, किन्तु उसमे अवधी के कोमल, मनोहर अथच भावमयशब्द भी गृहीत है। जो कवि कर्म्म के मर्मज्ञ है वे भली भाँति यह जानते है कि अनेक अवस्थाओ मे कवियो अथवा महाकवियो को ऐसे शब्द-चयन की आवश्यकता होती है, जो उनको भाव-प्रकाशन मे उचित सहायता दे सके और छन्दोगति मे बाधक भी न हो। यदि वे 'ऐसो' लिखना चाहते है, परन्तु इस शब्द को वे इस लिये नहीं लिख सकते कि उससे छन्दोगति में बाधा पडती है और 'अस' लिखने से वे अपने भाव का द्योतन कर सकते है और छन्दोगति भी सुरक्षित रहती है तो वे ऐसी विशेष अवस्था मे यह नहीं विचारते कि 'अस' शब्द अवधी का है, इस लिये उसको कविता मे स्थान न मिलना चाहिये, वरन् वे यह सोचते है, कि हिन्दी भाषा का ही यह शब्द है और उसका प्रयोग हिन्दी साहित्य के एक विभाग मे पाया जाता है। इस लिये संकीर्ण स्थलों पर उसके ग्रहण मे आपत्ति क्या? हिन्दी साहित्य के महाकवियो को ऐसा करते देखा जाता है। क्योकि वे जानते है कि बोलचाल की भाषा और साहित्यिक भाषा मे कुछ न कुछ भिन्नता होती ही है। मेरे कथन का साराश यह है कि उत्तर काल के कवियो ने जिसे साहित्यिक भाषा के रूप मे ग्रहण किया उनमे से अधिकाश की मुख्य भाषा ब्रजभाषा ही है, परन्तु अवधी के भी उपयुक्त शब्द उसमे गृहीत है। मेरा विचार है कि इससे साहित्य की व्यापकता बढी है, उसका पथ अधिक प्रशस्त हुआ है, और कवि-कर्म्म मे भी बहुत कुछ सुविधा प्राप्त हुई है। भाषा की शुद्धता की ओर दृष्टि आकर्षण कर

कुछ लोग इस प्रणाली का विरोध करते है। उनका कथन है कि सुविधा पर दृष्टि रख कर यदि एक ही शब्दके अनेक रूप गृहीत होने लगेगे तो इससे भाषा सम्बन्धी नियम की रक्षा न होगी और निरंकुशता को प्रश्रय मिलेगा। लोग बेतरह शब्दो को तोड मरोड कर मनमानी करेगे और साहित्यक्षेत्र मे उच्छृंखलता विप्लव मचा देगी। यह कथन बहुत कुछ युक्ति-संगत है, परन्तु व्रजभाषा साहित्य के मर्म्मज्ञो अथवा महाकवियों ने यदि उक्त प्रणाली ग्रहण की तो इस उद्देश्य से नही कि निरंकुशता को प्रश्रय दिया जाय। शब्द गढने के पक्ष पाती वे नही थे, न शब्दो को अधिक तोडने-मरोडने के समर्थक। वरन् उनका विचार यह था कि विशेष स्थलों पर यदि उपयुक्त अवधी के शब्द आ जॉय तो वे आपत्ति जनक नही। अवधी भाषा के कवियो को भी इस प्रणाली का अनुमोदन करते देखा जाता है। क्योंकि उनकी रचनाओ मे भी व्रजभाषा के शब्द विशेष स्थलों पर गृहीत होते आये है। किन्तु इसका यह अर्थ कदापि नहीं कि यदि कोई विशेष क्षमतावान है और वह शुद्ध व्रजभाषा मे या शुद्ध अवधी ही मे रचना करना चाहता है तो अनुचित करता है। भाषाधिकार कविता का विशेष गुण है। गुण का त्याग किसे वाछनीय होगा ? परन्तु यह स्मरण रहना चाहिये कि कवि-परम्परा (Poetic license) का भी कुछ आधार है, कवि कार्य्य के जटिल पथ मे वह सुविधा का अंगुलि-निर्देश है। इसी लिये व्रजभाषा के साहित्यकारो ने चाहे वे प्रारम्भिक काल के हो, अथवा माध्यमिक काल या उत्तर काल के, इस सुविधा से मुख नही मोडा।

एक बात और है। वह यह कि व्रजभाषा और अवधी में अधिकतर उच्चारण का विभेद है। अन्यथा दोनों मे बहुत कुछ एक रूपता है। इसका कारण यह है कि अवधी पर शौरसेनी का अधिकतर प्रभाव रहा है। भरत मुनि कहते हैं—

'शौरसेन्याऽविदूरत्वात् इयमेवार्द्ध मागधी।''

इसका अर्थ यह है कि शौरसेनी से अविदूर (सन्निकट, होनेके कारण) मागधी अर्द्ध मागधी कहलाती है। यह कौन नहीं जानता कि शौरसेनी से

व्रजभाषा की और अर्धमागधी से अवधी की उत्पत्ति है। व्रजभाषा और खडी बोली दोनो पश्चिमी है और अवधी पूर्वी। पछाह वालो की भाषा खडी होती है और पूर्व वालो की पडी। पछाह वालो के उच्चारण मे उठान होती है और पूर्व वालों के उच्चारण मे लचक या उसमे चढाव होता है और इसमें उतार। पछाँह वाले कहेगे 'ऐसे' 'जैसे' 'कैसे', 'तैसे' और पूर्व वाले कहेगे 'अइसे', 'जइसे', 'कइसे, तइसे वे कहेगे गयो' ये कहैगे 'गयउ'। वे कहेगे 'होयहै' या 'ह्वैहै' और ये कहैगे 'होइहै'। वे कहेगे रिझै है' ये कहेगे 'रिझइहै'। वे कहैगे 'कौन' ये कहैगे 'कवन'। वे कहैगे 'मैल' ये कहैगे 'मइल'। वे कहेगे 'पाँव' ये कहैगे पाउ'। वे कहेगे 'कीनो', 'लीनो', 'दीनो' और ये कहैगे 'कीन', 'लीन', 'दीन'। इसी प्रकार बहुत से शब्द बतलाये जा सकते है। मेरा विचार है, इस साधारण उच्चारण विभेद के कारण एक दूसरे को परस्पर सर्वथा सम्पर्क-हीन समझना युक्ति संगत नही। उच्चारण-विभेद के अतिरिक्त कारक-चिन्हों, सर्वनामों और अनेक शब्दोमें कुछ विभिन्नताये भी दोनोमे है विशेष कर ग्रामीण शब्दोंमें। उनसे जहाँ तक संभव हो बचनेकी चेष्टा करनी चाहिये, यद्यपि हमारे आदर्श कवियों और महाकवियों ने अनेक संकीर्ण स्थलो पर इन बातो की भी उपेक्षा की है।

(क)

अब मैं प्रकृत विषय को लेता हूं, सत्रहवीं शताब्दी के निर्गुणवादी कवियों मे मलूक दास और सुन्दरदास अधिक प्रसिद्ध है। क्रमशः इनकी रचनाये आप लोगों के सामने उपस्थित करके इनकी भाषा आदि के विषय मे जो मेरा विचार है उसको मै प्रकट करूंगा और विकास सूत्र से उनकी जाच पडताल भी करता चलूंगा। मलूकदास जी एक खत्री बालक थे। बाल्यकाल से ही इनमे भक्ति का उद्रेक दृष्टिगत होता है। वे द्रविड देश के एक महात्मा विट्ठल दास के शिष्य थे। इनका भी एक पंथ चला जिसकी मुख्य गद्दी कडा मे है। भारतवर्ष के अन्य भागों मे भी उनकी कुछ गद्दिया पाई जाती है। उनकी रचनाओं से यह सिद्ध होता है कि उनमे निर्गुण-वादी भाव था, फिर भी वे अधिकतर सगुणोपासना मे ही लीन थे। सच्ची बात तो यह है कि पौराणिकता उनके भावों मे भरी थी और वे उसके

सिद्धान्तों का अनुकरण करते ही दृष्टिगत होते है। वे दर्शन के लिये जगन्नाथ जी भी गये थे। वहाँ पर उनके नाम का टुकडा अब तक मिलता है। उनकी कुछ रचनायें देखिये —

१—भील कब करी थी भलाई जिय आप जान।
फ़ील कब हुआ था मुरीद कहु किसका।
गीध कब ज्ञान की किताब का किनारा छुआ।
व्याध और बधिक निसाफ कहु तिसका।
नाग कब माला लै के बन्दगी करी थी बैठ।
मुझको भी लगा था अजामिल का हिसका।
एते बदराहों की बदी करी थी माफ़ जन।
मलूक अजाती पर एती करी रिस का।

२—दीनदयाल सुनी जबते तबते हिय में कछु ऐसी बसी है।
तेरोकहाय कै जाऊँ कहाँ मैं तेरे हितकी पटखैंचिकसीहै।
तेरोही एक भरोस मलूक को तेरे समान न दूजो जसीहै।
एहो मुरारि पुकारि कहौं अबमेरी हँसी नहिं तेरीहँसीहै।

३—ना वह रीझै जप तप कीने ना आतम के जारे।
ना वह रीझै धोती नेती ना काया के पखारे।
दाया करै धरम मन राखै घर में रहे उदासी।
अपना सा दुख सबका जाने ताहि मिलै अबिनासी।
सहै कुसबद बादहू त्यागै छाड़ै गरब गुमाना।
यही रीझ मेरे निरंकार की कहत मलूक दिवाना।

४—गरब न कीजै बावरे हरि गरब प्रहारी।
गरबहि ते रावन गया पाया दुख भारी।

जर न खुदी रघुनाथ के मन मॉहि सोहाती ।
जाके जिय अभिमान है ताकी तोरत छाती ।
एक दया औ दीनता ले रहिये भाई ।
चरन गहो जाय साधु के रीझैं रघुराई ।
यही बड़ा उपदेस है पर द्रोह न करिये ।
कह मलूक हरि सुमिरि के भौसागर तरिये ।

८—दर्द दिवाने बावरे अलमस्त फकीरा ।
एक अकीदा लै रहे ऐसा मन धीरा ।
प्रेम पियाला पीउ ते बिसरे सब साथी ।
आठ पहर यों झूमते ज्यों माता हाथी ।
साहब मिलि साहब भये कछु रही न तमाई ।
कह मलूक तिस घर गये जहँ पवन न जाई ।

९—अजगर करै न चाकरी पंछी करै न काम ।
दास मलूका यों कहै सब के दाता राम ।
प्रभुताही को सब मरै प्रभु को मरै न कोय ।
जो कोई प्रभु को मरै प्रभुता दासी होय ।

इनकी भाषा स्वतंत्र है। परन्तु खडी बोली और व्रजभाषा का रंग ही उसमे अधिक है। ये फारसी के शब्दो का भी अधिकतर प्रयोग करते है और कही कहीं छन्द की गति की पूरी रक्षा भी नही कर पाते। ऊपर के पद्यों में जिन शब्दो और वाक्यो पर चिन्ह बना दिया गया है उनको देखिये। ये शब्द विन्यास और वाक्य-रचना में अधिकतर व्रजभाषा के नियमों का पालन करते है। परन्तु वहुधा स्वतन्त्रता भी ग्रहण कर लेते है। इनकी रचना में संस्कृत के तत्सम शब्द भी आते है पर अधिकतर उन पर युक्त-विकर्ष का प्रभाव ही देखा जाता है।

साधुओं मे सुदरदास ही ऐसे है जो विद्वान् थे और जिन्होंने काशी मे बीस वर्ष तक रह कर वेदान्त और अन्य दर्शनों की शिक्षा संस्कृत द्वारा पाई थी। वे जाति के खण्डेल वाल बनिये और दादूदयाल के शिष्य थे। उन्होंने देशाटन अधिक किया था अतएव उनका ज्ञान विस्तृत था। वे बाल ब्रह्मचारी और त्यागी थे। उनका कोई पथ नहीं है। परन्तु सुन्दर और सरस हिन्दी रचनाओं के लिये वे प्रसिद्ध है। उनकी अधिकाश रच-नाओ पर वेदान्त-दर्शन की छाप है और उन्होंने उसके दार्शनिक बिचारों को बहुत ही सरलता से प्रकट किया है। कहा जाता है उन्होंने चालीस ग्रन्थों की रचना की, जिनमे से 'सुन्दरसाख्य-तर्क चिन्तामणि', 'ज्ञान विलास' आदि ग्रन्थ अधिक प्रसिद्ध है। उन्होने साखियो की भी रचना की है। शब्द भी बनाये है। और बडे ही सरस कवित्त और सवैये भी लिखे है। उनमे से कुछ नीचे लिखे जाते है।

१—बोलिये तो तब जब बोलिबे की सुधि होइ।
न तौ मुख मौन गहि चुप होइ रहिये।
जोरिये तो तब जब जोरिबे की जान परै
तुक छंद अरथ अनूप जामैं लहिये।
गाइये तो तब जब गाइबे को कंठ होइ।
जौन के सुनत ही सुमन जाइ गहिये।
तुक भंग छंद भंग अरथ मिलै न कछु।
सुंदर कहत ऐसी बानी नहि कहिये।

२—गेह तज्यो पुनि नेह तज्यो,
पुनि खेह लगाइ कै देह सँवारी।
मेघ सहै सिरसीत सहै,
तन धूप समै में पँचागिन बारी।

भूख सहै रहि रूख तरे
पर सुन्दर दास यहै दुख भारी ।
आसन छाड़ि के कासन ऊपर,
आसन मार्यो पै आस न मारी ।

३—देखहु दुर्मति या संसार की ।
हरि सो हीरा छांड़ि हाथ तें बाँधत मोट विकार की ।
नाना विधि के करम कमावत खबर नहीं सिरभार की ।
झूठे सुख में भूलि रहे हैं फूटी आँख गँवार की ।
कोइ खेती कोई बनिजी लागे कोई आस हथ्यार की ।
अंध धुंध में चहुं दिसि धाये सुधि बिसरी करतार की ।
नरक जानि कै मारग चालैसुनि सुनि बात लबारकी
अपने हाथ गले में बाही पासी माया जार की ।
बारम्बार पुकार कहतहौं सौंहैं सिरजनहार की ।
सुंदरदास बिनस करि जैहै देह छिनक में छार की ।

४—धाइ पर्‍यो गज कूप में देखा नहीं विचारि ।
काम अंध जानै नहीं कालबूत की नारि ।
लालन मेरा लाड़ला रूप बहुत तुझ माहि ।
सुन्दर राखै नैन में पलक उघारै नाहिं ।
सुन्दर पंछी बिरछ पर लियो बसेरा आनि ।
राति रहे दिन उठि गये त्यों कुटुंब सब जानि ।
लवन पूतरी उदधि में, थाह लैन को जाइ ।
सुन्दर थाह न पाइये बिचही गयो बिलाइ ।

८—तो सही चतुर तू जान परवीन
अति परै जनि पींजरे मोह कूआ।
पाइ उत्तम जनम लाइ लै चपल
मन गाइ गोविन्द गुन जीति जूआ।
आपुही आपु अज्ञान नलिनी बँध्यो
बिना प्रभु विमुख कैबेर मूआ।
दास सुंदर कहै परम पद तौ लहै
राम हरि राम हरि बोल सूआ।

इनकी भाषा साहित्यिक व्रजभाषा है परन्तु उसमे कहीं कही खडी बोली का शब्द-विन्यास भी मिल जाता है। जहा उन्होंने दार्शनिक विषयों का वर्णन किया है वहा उनकी रचना मे अधिकतर संस्कृत शब्द आये है। जैसे निम्न लिखित पद्य मे -

ब्रह्म ते पुरुष अरु प्रकृति प्रगट भई,
प्रकृति ते महतत्व पुनि अहंकार है।
अहंकार हूं ते तीन गुण सत रज तम,
तमहू ते महा भूत विषय पसार है।
रजहूं ते इन्द्री दस पृथक पृथक भई,
सत हूं ते मन आदि देवता विचार है।
ऐसे अनुक्रम करि सिष्य सों कहत गुरु,
सुन्दर सकल यह मिथ्या भ्रम जार है।

देशाटन के समय प्रत्येक प्रान्त मे जो बाते अरुचिकर देखीं अपनी रचनाओं में उन्होंने उनकी चर्चा भी की है। उनकी ऐसी रचनाओं मे प्रान्तिक और गढे शब्दों का प्रयोग भी प्रायः देखा जाता है। निम्न लिखित पद्यांशों के उन शब्दो को देखिये जो चिन्हित है.—

१—आभड़ छोत अतीत सों कीजिये

२—बिलाईरु कूकुरु चाटत हांडी

३—रांधत प्याज बिगारत नाज न आवत लाज करैं सब भच्छन।

४—ब्राह्मण छत्रिय बैसरु सूदर चारों ही बर्नके मच्छ बघारत

५—फूहड़ नार फतेपुर की.......................।

६—फिर आवा नग्र मँझारी।

इनकी रचनाओं में विदेशी भाषा के शब्द भी आते हैं, किन्तु बहुत कम और नियमानुकूल। निम्न लिखित पद्य के उन शब्दों को देखिये जो चिन्हित हैं:—

१—'खबरि नहीं सिर भार की'

२—'कागद की हंथिनी कीनी'

३—'खंदक कीना जाई'

४—'तब बिदा होइ घर आवा'

५—'मन में कछु फिकिरि उपावा'

इन पद्यों में 'आवा', 'उपावा' इत्यादि का प्रयोग भी चिंतनीय है। ये प्रयोग अवधी के ढंग के हैं। उनकी समस्त रचनाओं पर दृष्टि डालकर यह कहा जा सकता है कि निर्गुणवादियों की जितनी रचनायें हैं उनमें भाषा की प्राञ्जलता एवं नियम पालन की दृष्टि से सुंदरदासजी की कृति ही सर्वप्रधान है। जो भाषा-सम्बन्धी विभिन्नता कहीं कहीं थोड़ी बहुत मिलती है, साहित्यिक दृष्टि से वह उपेक्षणीय हैं। कतिपय शब्दों और वाक्य-विन्यास के कारण यह नहीं कहा जा सकता कि उनकी भाषा खिचड़ी है और उन्होंने भी सधुक्कड़ी भाषा ही लिखी। इन्हीं के समय में दादू सम्प्रदाय में निश्चलदास नाम के एक प्रसिद्ध साधु-विद्वान् हो गये हैं,

जिन्होंने वेदान्त के विषयों पर सुंदर ग्रंथ लिखे है। उनकी भाषा के विषय मे यही कहा जा सकता है कि वह लगभग सुंदरदास की सी ही है। इसी शताब्दी मे लालदासी पंथ के प्रवर्त्तक लालदास और साधु सम्प्रदाय के जन्म दाता बीरभान एवं 'सत्यप्रकाश' नामक ग्रन्थ के रचयिता और एक नवीन मत के निर्माण कर्त्ता धरणीदास भी हुये। परन्तु उनकी रचनाये अधिकतर साधुओं की स्वतंत्र भाषा ही मे है, विचार भी लगभग वैसे ही है। इसलिये मै उनकी रचनाओ को ले कर उनके विषय मे कुछ अधिक लिखने की आवश्यकता नहीं समझता।

(ख)

इस शताब्दी के भक्ति मार्गवाले सगुणवादी भक्तो की ओर जब दृष्टि जाती है तो सबसे पहले हमारे सामने नाभादासजी आते है। वैष्णवो में इनकी रचनाओ का अच्छा आदर है। इनकी विशेषता यह है कि इन्होंने शृंगार रस से मुख मोडकर भक्ति-रस की धारा बहायी और 'भक्तमाल' नामक ग्रंथ की रचना की, जिसमे लगभग २०० भक्तों का वर्णन है। अपनी रचना मे उन्हो ने वैष्णवमात्र को समान दृष्टि से देखा, और स्वय रामभक्त होते हुए भी कृष्णचन्द्र के भक्तोमे भी उतनी ही आदर वुद्धि प्रकट की जितनी रामचन्द्रजी के भक्तों में। उनके विषय में जो कुछ उन्हों ने लिखा है उसमें भी उनके हृदयकी उदारता और पक्षपात हीनता प्रकट होती है। उनका ग्रंथ व्रजभाषा मे लिखा गया है। इसका कारण उसकी सामयिक व्यापकता ही है। प्रियादासजी ने उनके ग्रन्थ पर टीका लिखी है, क्योकि थोडे मे अधिक बाते कहने से उनका ग्रन्थ दुर्बोध हो गया है। उन्हों ने एक छप्पय में ही एक भक्त का हाल लिखा है। इसलिये थोडे में ही उनको बहुत बाते कहनी पडीं। ऐसी अवस्था मे उनका ग्रंथ गूढ क्यों न हो जाता? प्रियादासजी की टीका ने इस गूढता को अधिकतर अपनी टीका के द्वारा बोधगम्य बना दिया। पद्य ही मे 'अष्टयाम' नामक उनका एक ग्रन्थ और है। यह ग्रन्थ भी साहित्यिक व्रजभाषा ही में लिखा गया है। दोनों का एक एक पद्य देखिये —

१—मधुर भाव सम्मिलित ललित लीला सुवलित छवि।
निरखत हरखत हृदय प्रेम बरखत सुकलित कवि।

भव निस्तारन हेत देत दृढ़ भक्ति सबन नित्त।
जासु सुजस ससि उदै हरत अति तम भ्रम श्रमचित्त।
आनन्द कंद श्रीनंद सुत श्रीवृषभानु सुता भजन।
श्री भट्ट सुभट प्रगट्यो अघट रस रसिकन मनमोद घन।

भक्तमाल

२—परिखा प्रति चहुं दिसि लसत कंचन कोटि प्रकास।
विविध भांति नग जगमगत प्रति गोपुर पुरवास।
दिव्य फटिक मय कोट की शोभा कहि न सिराय।
चहुं दिसि अद्भुत जोति मैं जगमगाति सुखदाय।

इनकी भाषा के विषय मे कुछ अधिक लिखने की आवश्यकता मुझे नहीं ज्ञात होती। जो नियम साहित्यिक व्रजभाषा का मै ऊपर लिख आया हू उसका पालन इनकी कविता मे अधिकतर पाया जाता है। इनकी रचनामे अनुप्रासों एवं ललित पद-विन्यास की भी छटा है। पद्यमे संस्कृत के तत्सम शब्द भी आये है। परन्तु वे अधिकतर ऐसे है जो मधुर और कोमल कहे जा सकते है। इनकी रचना को देखने से यह ज्ञात होता है कि उत्तम वर्णके न होनेपर भी ये सुशिक्षित थे और ऐसा सत्संग उनको प्राप्त था जिसने उनके हृदय को भक्तिमान और भावुक बना दिया था। किसी किसी ने उनको अछूत जाति का लिखा है, और किसी ने यह लिखकर उनकी जाति-पाँति बताने मे आनाकानी की है कि हरि-भक्तो की जाति नहीं पूछी जाती। वे जो हों, परन्तु वे भक्त थे और जैसा भक्त का हृदय होना चाहिये वैसाही उनका हृदय था, जो उनकी रचनाओमे स्पष्ट प्रतिबिंबित है।

नाभादासजी के बाद हमारे सामने एक बडे ही सरस हृदय कवि आते है। वे है रसखान। ये मुसलमान थे और इन्हो ने अपने को राजबंशी बतलाया है। नीचे के दोहे इस बात के प्रमाण है --

देखि गदर, हित साहिबी, दिल्ली नगर मसान।
छिनहि बादसा बंस की, ठसक छोड़ि रसखान।

प्रेम निकेतन श्री बनहिं, आय गोबरधन धाम।
लह्यो सरन चित चाहि कै, जुगल सरूप ललाम।

इनमें एक और विशेपता पाई जाती है वह यह है कि एक विजातीय और विधर्मी पुरुप का भगवान् श्री कृष्ण के प्रेममे तन्मय हो कर सर्वस्व-त्यागी बन जाना कम आश्चर्यजनक नहीं। परन्तु प्रेम मे बडी शक्ति है। सच्चा प्रेम क्या नहीं कर सकता ? रसखान की रचनाये पढने से ज्ञात होता है कि उनमे प्रेम की कितनी लगन थी। वे इतने सच्चे प्रेमी थे और भगवान श्री कृष्णके चरणों मे उनका इतना अनुराग था कि गोस्वामी विट्ठलनाथ के प्रधान शिष्यो मे उनकी भी गणना हुई और २५२ वैष्णवो की वार्त्ता मे भी उनको स्थान मिला। इस घटना से भी इस बात का पता चलता है कि महाप्रभु वल्लभाचार्य की प्रचारित प्रेम-धारा कितनी सबल थी। रसखान का सूफी प्रेममार्गियो की ओर से मुंह मोड कर कृष्णावत सम्प्रदाय मे सम्मिलित होना यह बात प्रकट करता है कि उस समय जनता का हृदय किस प्रकार इस सम्प्रदाय की ओर आकर्षित हो रहा था। जब रसखान के निम्नलिखित पद्यो को हम पढते है तो यह ज्ञात होता है कि किस प्रकार उनका हृदय परिवर्तित हो गया था और वे कैसे भगवान कृष्ण के अनन्य उपासक बन गये थे। इन पद्यो में अकृत्रिम भक्ति और प्रेमरस का स्रोत सा बह रहा है।

१--"मानुस हौं तो वही रस खान
बसौं ब्रज गोकुल गाँव के ग्वारन।
जो पसु हों तो कहा बस मेरो
चरौं नित नंद की धेनु मंझारन।
पाहन हों तो वही गिरि को जो
धर्‍यो कर क्षत्र पुरंदर धारन।
जो खग हों तो बसेरो करौं वही
कालिँदी कूलकदंब की डारन।

२-या लकुटी अरु कामरिया पर
राज तिहूं पुर को तजि डारौं।
आठहुँ सिद्धि नवो निधि को
सुख नन्द की गाइ चराइ बिसारौं।
आँखिन सोँ रसखान कबै
ब्रज के बन बाग तड़ाग निहारौं।
कोटिन हूं कलधौत के धाम
करील के कुंजन ऊपर वारौं।

भगवान कृष्णचन्द्र को देवादिदेव कह कर भी उन्होंने उन्हे किस प्रकार पेम के वश मे बतलाया है, इसको यह पद्य भली भॉति प्रकट कर रहा है —

"सेस गनेस महेस दिनेस सुरेसहुं
जाहि निरन्तर गावैं ।
जाहि अनादि अनन्त अखंड
अछेद अभेद सुबेद बतावैं ।
जाहि हिये लखि आनँद ह्वै जड़
मूढ जनौ रसखान कहावैं ।
ताहि अहीर की छोहरियाँ छछिया
भरि छाछ पै नाच नचावैं ।"

रसखान की भाषा चलती और साफ सुथरी है। जितने पद्य उन्होंने बनाये है उनसे रस निचुडा पडता है। निस्संदेह व्रजभाषा ही मे उनकी कविता लिखी गयी है। परन्तु खड़ी बोली के भी कोई कोई शब्द उसमे मिल जाते है। इसी प्रकार अवधी के भी।

रसखान के लिखे हुये दो ग्रन्थ पाये जाते है, 'सुजान रसखान' और 'प्रेम वाटिका' दोनो की भाषा एक ही है और दोनो मे प्रेम का प्रवाह वहता दिखलायी पडता है। 'सुजान रसखान' के पद्य आप देख चुके है। दो दोहे 'प्रेम,वाटिका' के भी देखिये —

अति सूछम कोमल अति हि अति पतरो अति दूर।
प्रेम कठिन सब ते सदा नित इक रस भर पूर।
डरै सदा चाहै न कछु सहै सबै जो होय।
रहै एक रस चाहि कै प्रेम बखानै सोय।

इसी प्रेम परायणता के कारण रसखान की गणना भक्तों मे की जाती है। और यह निस्संकोच कहा जा सकता है कि उनके दोनो ग्रन्थ भक्ति भावना से पूर्ण है। वे छोटे हो, परन्तु उनमे इतना प्रेम रस भरा है कि उसके कवि को सच्चा प्रेमिक मानने के लिये विवश होना पडता है। सच्ची तल्लीनता ही भक्ति है। इसलिये रसखान की गणना यदि वैष्णव भक्तो में हुई तो यथार्थ हुई। विधर्म्मी और विजातीय हो कर भी यदि उन्होंने भगवान कृष्णचन्द्र को पूर्ण रूपेण आत्म-समर्पण किया तो यह उनकी सच्ची भक्ति भावना ही थो। और ऐसी दशा में उनको कौन भक्त स्वीकार न करेगा?

वनारसीदास जैन की गणना भी भक्त कवियों मे होती है। यह कभी आगरा और कभी जौनपुर मे रहते थे। इनका यौवन-काल प्रमादमय था। परन्तु थोड़े दिनों वाद इनमे ऐसा परिवर्तन हुआ कि इन्होंने अपने शृंगार रस के ग्रन्थ को फाड कर गोमती मे फेक दिया और ऐसी रचनाओं के करने में तल्लीन हुये जो भक्ति और ज्ञान-सम्बन्धी कही जा सकती है। इनके भाव-पूर्ण ग्रन्थो की संख्या आठ-दस बतलायी जाती है, जिनमे से अधिकतर पद्यमे लिखे गये है। इनकी गद्य रचनाये भी है। ये जैन विद्वान् थे, परन्तु इनमे संकीर्णता नहीं थी। इनका ध्रुव वंदना नामक ग्रंथ इसका प्रमाण है। इनके कुछ पद्य देखिये —

१—काया सों विचार प्रीति, माया ही में हार जीति,
लिये हठ रीति जैसे हारिल की लकरी।
चंगुल के जोर जैसे गोह गहि रहै भूमि,
त्योंही पाँय गाड़ै पै न छाड़ै टेक पकरी।
मोह की मरोर सों मरम को न ठौर पावै,
धावैं चहुं ओर ज्यों बढ़ावै जाल मकरी।
ऐसी दुरबुद्धि भूलि झूठ के झरोखे झूलि,
फूली फिरै ममता जँजीरन सों जकरी।

२—भौंदू समझ सबद यह मेरा।
जो तू देखै इन आँखिन
को बिनु परकास न सूझै।
सो परकास अगिनि रवि
ससि को तू अपनो करि बूझै।
तेरे दृग मुद्रित घट अंतर
अंध रूप तू डोलै।
कै तो सहज खुलैं वै आँखैं
कै गुरु संगति खोलै।

३—भौंदू ते हिरदै की आंखैं।
जे करखैं अपनी सुख-सम्पति
भ्रम की सम्पति नाखैं
जिन आँखिन सों निरखि
भेद गुन ज्ञानी ज्ञान विचारैं।
जिन आँखिन सों लखि सरूप
मुनि ध्यान धारना धारैं।

इनकी भाषा प्राञ्जल व्रजभाषा है। इसमे कभी कभी कोई अपरिमार्जित शब्द आ जाता है परन्तु उससे इनकी भाषा की विशेषता नहीं नष्ट होती। बनारसी दास ही ऐसे जैन कवि है जिन्होने व्रजभाषा लिखनेमें पूरी सफलता लाभ की। इनकी गणना प्रतिष्ठित व्रजभाषा-कवियो मे की जा सकती है। इनकी रचना इस बात का भी प्रमाण है कि सत्रहवीं सदी मे व्रजभाषा इतनी प्रभावशालिनी हो गयी थी कि अन्य धर्मवाले भी उसमे अपनी रचनाये करने लगे थे।

(ग)

इस सत्रहवीं शताब्दी मे रीति ग्रन्थकार बहुत अधिक हुये। और उन्होंने शृंगार रस, अलंकार और अन्य विषयो की इतनी अधिक रचनाये कीं, कि व्रजभाषा-साहित्य श्री सम्पन्न हो गया। यह अवश्य स्वीकार करना पडेगा कि रीति ग्रन्थकारो ने शृंगार रस को ही अधिक प्रश्रय दिया परन्तु यह समय का प्रभाव था। यह शताब्दी जहागीर और शाहजहाँ के राज्य-काल के अन्तर्गत है, जो विलासिता के लिये प्रसिद्ध है। जैसे मुसलमान बादशाह और उनके प्रभावशाली अधिकारीगण इस समय विलासिता-प्रवाह मे बह रहे थे वैसे ही इस काल के राजे और महाराजे भी। यदि मुस्लिमदरबारो मे आशिकाना मजामीन और शाइरी का आदर था तो राजे-महाराजाओ मे रसमय भावो एवं विलासितामय वासनाओ का सम्मान भी कम न था। ऐसी अवस्था मे यदि शृंगार रसके साहित्य का अधिक विकास हुआ तो कोई आश्चर्य की बात नहीं। ज्ञान विराग योग इत्यादि मे एक प्रकार की नीरसता सर्व-साधारण को मिलती है। उसके अधिकारी थोडे है। शृंगाररस की धारा ही ऐसी है जिसमें सर्व-साधारण अधिक आनन्द लाभ करता है क्योकि उसका आस्वादन जैसा मोहक और हृदयाकर्षक है वैसा अन्य रसों का नही। स्त्री-पुरुषो के परस्पर सम्मिलन मे जो आनन्द और प्रलोभन है बाल बच्चों के प्यार और प्रेम मे जो आकर्षण है उसमे ही सासारिकता और स्वाभाविकता अधिक है। प्राणीमात्र इस रस में निमग्न है। परमार्थ का आनन्द न इतना व्यापक है और न इतना मोहक, चाहे वह उच्च कोटि का भले ही हो। आहार-विहार, स्त्री-पुत्रों का स्नेह और उससे उत्पन्न आनंदानुभव पशु-

पक्षी-कृमि तक मे व्याप्त है। परमार्थभावना उनमे है ही नहीं। यदि यह भावना मिलती है तो मनुष्य मे ही मिलती है। परन्तु मनुष्य की इस भावना पर अधिकतर सासारिकता का ही रंग चढा है। परमार्थ-चिन्ता तो वह कभी कभी ही करता है। वह भी समष्टि-रूप से नहीं, व्यष्टि रूप से। यही कारण है कि कुछ महात्माओ और विद्या व्यसनी विद्वानो को छोड कर अधिकाश जनता शृ गार रस की ओर ही विशेप आकर्षित रहती है। और ऐसी दशा मे यदि उसी के गीत अधिक कंठों से गाये जाते सुने जावे, उसी के ग्रन्थ अधिकतर सरस हृदय द्वारा रचे जावे और उनमे अधिकतर सरसता लालित्य और सुन्दर शब्द-विन्यास पाये जावे तो कोई आश्चर्य्य नही। अतएव सत्रहवी शताब्दीमे यह स्वाभाविकता ही यदि बलवती हो कर कवि वृन्द द्वारा कार्य-क्षेत्र मे आयी तो कोई विचित्र बात नहीं। इस शताब्दी के जितने बडे बडे कवि और रीतिग्रन्थकार है उनमे से अधिकाश इसी रंग मे रँगे हुये है और उनकी संख्या भी थोडी नहीं है। मैं सब की रचनाओ को आप लोगों के सामने उपस्थित करने मे असमर्थ हू। उनमे जो अग्रणी और प्रधान है और जिनकी कृतियो में 'भावगत' सुन्दर व्यंजनाये अथवा अन्य कोई विशेषताये है। मै उन्हीं की रचनाये आप लोगों के सामने उपस्थित कर के यह दिखलाऊंगा कि उस समय ब्रजभाषा का शृंगार कितना उत्तम और मनोमोहक हुआ और किस प्रकार ब्रजभाषा सुन्दर ओर ललित पदों का भाडार बन गयी। जिन सुकवियों अथवा महाकवियों की रचनाओं ने ब्रजभाषा ससार मे उस समय कल्पना राज्य का विस्तार किया था उनमे से कुछ विशिष्ट नाम ये है—

(१) सेनापति, (२) बिहारी लाल, (३) चिन्तामणि, (४) मति राम, (५) कुलपति मिश्र, (६) जसवन्त सिह, (७) बनवारी, (८) गोपाल चन्द्र-मिश्र, (९) बेनी और (१०) सुखदेव मिश्र। मै क्रमश इन लोगों के विषय मे अपना विचार प्रकट करूंगा और यह भी बतलाऊंगा कि इनकी रचनाओं का क्या प्रभाव ब्रजभाषा पर पडा। बीच बीच मे अन्य रसो के विशिष्ट महाकवियों की चर्चा भी करता जाऊंगा॥

(१) सेनापति कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। उन्होंने 'काव्य-कल्पद्रुम' और 'कवित्त-रत्नाकर' नामक दो ग्रन्थों की रचना की। वे अपने समय के बड़े ही विख्यात कवि थे। हिन्दू प्रतिष्ठित लोगो मे इनका सम्मान तो था ही मुसल्मानो के दरबारों मे भी उन्होंने पूरी प्रतिष्ठा प्राप्त की थी। ब्रजभाषा जिन महाकवियो का गर्व कर सकती है उनमे सेनापति का नाम भी लिया जाता है। उनकी रचनाये अधिकतर प्रौढ सुन्दर सरस और भावमयी है। षड्ऋतु का जेसा उदात्त और व्यापक वर्णन सेनापति ने किया वैसा दो एक महाकवियो की लेखनी ही कर सकी। उन्होंने अपना परिचय इस प्रकार दिया है—

दीक्षित परशुराम दादा हैं विदित नाम।
जिन कीन्हें जज्ञ जाकी विपुल बड़ाई है।
गंगाधर पिता गंगाधर के समान जाके।
गंगातीर वसति "अनूप" जिन पाई है।
महा जानमनि विद्या दान हूँते चिन्ता मनि।
हीरामनि दीक्षित ते पाई पंडिताई है।
सेनापति सोई सीतापति के प्रसाद जाकी।
सब कवि कान दै सुनत कविताई है।

कहा जाता है कि अंत में वे बिरक्त हो गये थे और क्षेत्र-सन्यास ले लिया था। इस भाव के पद्य भी उनकी रचनाओं में पाये जाते है। एक पद्य देखिये—

केतो करौ कोय पैये करम लिखोय ताते।
दूसरो न होय डर सोय ठहराइये।
आधी ते सरस बाति गई है बयस।
अब कुजन बरस बीच रस न बढ़ाइये।

चिंता अनुचित धरु धीरज उचित
सेनापति ह्वै सुचित रघुपति गुन गाइये।
चारि बरदानि तजि पांय कमलेच्छन के
पायक मलेच्छन के काहे को कहाइये।

विरक्ति-सम्बन्धी उनके दो पद्य और देखिये —

१—पान चरनामृत को गान गुन गानन को।
हरिकथा सुने सदा हिये को हुलसिबो।
प्रभु के उतीरनि की गूदरी औ चीरनि की।
भाल भुज कंठ उरछापन को लखिबो।
सेनापति चाहत है सकल जनम भरि
वृंदावन सीमा ते न बाहर निकसिबो।
राधा मनरंजन की सोभा नैन कंजन की
मालगरे गुंजन की कुंजन को बसिबो।

२—महामोह कंदनि में जगत जकंदनि में
दीन दुख दुंदनि में जात है बिहाय कै।
सुख को न लेस है कलेस सब भांतिन को
सेनापति याही ते कहत अकुलाय कै।
आवै मन ऐसी घरबार परिवार तजौं
डारौं लोक लाज के समाज बिसराय कै।
हरिजन पुंजनि में वृंदावन कुंजनि में
रहौं बैठि कहूं तरवर तर जाय कै।

एक पद्य उनका ऐसा देखिये जिसमें आर्य ललना की मर्यादाशीलता का बड़ा सुंदर चित्र है —

फूलन सों बाल की बनाइ गुही बेनी लाल,
भालदीनी बेंदी मृगमद की असित है।
अंग अंग भूषन बनाइ ब्रजभूषन जू
बीरी निज कर की खवाई अति हित है।
ह्वै कै रस-बस जब दीबे को महावर के
सेनापति श्याम गह्यो चरन ललित है।
चूमि हाथ नाथ के लगाइ रही आँखिन सों
कही प्रानपति यह अति अनुचित है।

अब कुछ ऐसे पद्य देखिये जो ऋतु वर्णन के है, इनमे कितनी स्वाभाविकता, सरसता और मौलिकता है, उसका अनुभव स्वयं कीजिये —

कातिक की राति थोरी थोरी सियराति
सेनापति को सुहाति सुखीजीवनकेगन हैं
फूले हैं कुमुद फूली मालती सघन बन
फूलि रहे तारे मानो मोती अनगन हैं।
उदित विमल चंद्र चांदनी छिटिक रही
राम कैसो जस अध ऊरध गगन है।
तिमिर हरन भयो सेत है बरन सब
मानहुं जगत छीर सागर मगन है।
सिसिर मैं ससि को सरूप पावै सविताऊ
घामहुं मैं चांदनी की दुति दमकति है।
सेनापति होती सीतलता है सहस गुनी
रजनी की झांईं बासर में झमकति है।
चाहत चकोर सूर ओर दृगछोर करि
चकवा की छाती धरि धीर धमकति है।

चन्द के भरम होत मोद है कुमोदिनी को
ससि संक पंकजिनी फूलि ना सकति है।
सिसिर तुषार के बुखार से उखारतु है
पूस बीते होत सून हाथ पाथ ठिरिकै।
द्योस की छुटाई की बड़ाई बरनी न जाइ
सेनापति गाई कछू, सोचिकै सुमिरिकै।
सीत ते सहस कर सहस चरन ह्वै कै
ऐसो जात भाजि तम आवतहै घिरिकै
जौ लौं कोक कोकीसों मिलत तौ लौं होत राति
कोक अति बीच ही ते आवतु है फिरिकै

एक मानसिक भाव का चित्रण देखिये और विचारिये कि उसमें कितनी स्वाभाविकता है —

जो पै प्रान प्यारे परदेस को पधारे
ताते बिरहते भई ऐसी तातिय की गतिहै
करि कर ऊपर कपोलहिं कमल नैनी
सेनापति अनिमनि बैठियै रहति है।
कागहिं उड़ावै कबौं-कबौं करै सगुनौती
कबौं बैठि अवधि के बासर गिनतिहै।
पढ़ी-पढ़ी पाती कबौं फेरि कै पढ़ति
कबौं प्रीतम के चित्र में सरूप निरखतिहै।

आप कहेंगे कि भापा-विकास के निरूपण के लिये कवि की इतनी अधिक कविताओं के उद्धरण की क्या आवश्यकता थी। किन्तु यह सोचना चाहिये कि भाषा के विकास का सम्बन्ध शाब्दिक प्रयोग ही से नहीं है, वरन् भाव-व्यंजना से भी है। भाषा की उन्नति के लिये जैसे चुस्त और

सरस शब्द-विन्यास की आवश्यकता होती है। उसी प्रकार मनोहर भाव-व्यंजना की भी। भाषा के विकास से दोनों का सम्बन्ध है। इस बात के प्रकट करने के लिये ही उनकी कविता कुछ अधिक उठाई गई। सेनापति की भाषा साहित्यिक व्रजभाषा है। हम उनकी भाषा को टकसाली कह सकते है। न तो उनकी रचना मे खडी बोली की छूत लग पायी है न अवधी के शब्दो का ही प्रयोग उनमे मिलता है। कहीं दो एक इस प्रकार के शब्दों का मिल जाना कवि के भाषाधिकार को लाछित नहीं करता। व्रजभाषा की पूर्व कथित कसौटी पर कसकर यदि आप देखेगे तो सेनापति की भाषा बावन तोले पाव रत्ती ठीक उतरेगी। मै स्वयं यह कार्य करके विस्तार नही करना चाहता। समस्त पदो से वे कितना बचते है, और किस प्रकार चुन चुन कर संस्कृत तत्सम शब्दों को अपनी रचना में स्थान देते है इस बात को आप ने स्वयं पद्यो को पढते समय समझ लिया होगा। बे शब्दों को तोडते-मरोडते भी नहीं। दोषो से बचने की भी वे चेष्टा करते है। ये बाते ऐसी है जो उनको कविता को बहुत महत्व प्रदान करती है। उनके नौ पद्य उठाये गये है। उनमे से एक पद्य मे ही एक शब्द 'द्यौस' ऐसा आया है जिसको हम विकृत हुआ पाते है। परन्तु यह ऐसा शब्द है जो व्रजभाषा की रचनाओ में गृहीत है। इसलिये इस शब्द को स्वयं गढ लेने का दोष उनपर नहीं लगाया जा सकता। किसी कविता का सर्वथा निर्दोष होना असंभव है। फिर भी यह कहा जा सकता है कि साहित्यिक दोषों से उनकी कविता अधिकतर सुरक्षित है। इससे यह पाया जाता है कि उनकी कविता कितनी प्रौढ है। उनकी कविता की अन्य विशेषताओं पर मैं पहले ही दृष्टि आकर्षित करता आया हू। इसलिये उसपर कुछ और लिखना बाहुल्य मात्र है। इनके जिन दो ग्रन्थोंकी चर्चा मैं ऊपर कर आया हूँ उनमें से 'कवित्त रत्नाकर' अलंकार और काव्य की अन्य कलाओं के निरूपण का सुंदर ग्रन्थ है। काव्य-कल्पद्रुम' मे उनकी नाना-रसमयो कविताओं का संग्रह है। दोनों ग्रन्थ अनूठे है और उनकी विशेषता यह है कि घनाक्षरी अथवा कवित्तों मे ही वे लिखे गये है। कुछ दोहों को छोड कर दूसरा कोई छंद उसमे है ही नहीं।

(२) बिहारीलालका ग्रंथ व्रजभाषासाहित्य का एक अनूठा रत्न है और

इस बात का उदाहरण है कि घट मे समुद्र कैसे भरा जाता है। गोस्वामी तुलसीदास की रामायण छोड कर और किसी ग्रंथ को इतनी सर्व-प्रियता नहीं प्राप्त हुई जितनी 'बिहारी सतसई को"। रामचरित मानस के अतिरिक्त और कोई ग्रन्थ ऐसा नही है कि उसकी उतनी टीकाये बनी हों जितनी सतसई की अब तक बन चुकी है। बिहारी लाल के दोहाओं के दो चरण बडे बडे कवियो के कवित्तो के चार चरणो और सहृदय कवियो के रचे हुये छप्पयों के छ: चरणो से अधिकतर भाव-व्यंजन मे समर्थ और प्रभावशालिता मे दक्ष देखे जाते है। एक अंग्रेज़ विद्वान् का यह कथन कि "Brevity is the soul of wit and it is also the soul of art" 'संक्षिप्तता काव्य चातुरी की आत्मा तो है ही, कला की भी आत्मा है।" बिहारी की रचना पर अक्षरश घटित होता है। बिहारी की रचनाओं की पंक्तियों को पढ कर एक संस्कृत विद्वान् की इस मधुर उक्ति में संदेह नहीं रह जाता कि "अक्षरा कामधेनव।" (अक्षर कामधेनु है) वास्तव मे बिहारी के दोहो के अक्षर कामधेनु है जो अनेक सूत्र से अभिमत फल प्रदान करते है। उनको पठन कर जहा हृदय मे आनंद का स्रोत उमड उठता है वही विमुग्ध मन नंदन कानन में बिहार करने लगता है। यदि उनकी भारती रस-धारा प्रवाहित करती है तो उनकी भाव-व्यंजना पाठकों पर अमृत-बर्षा करने लगती है। सतसई का शब्द-विन्यास जैसा ही अपूर्व है वैसा ही विलक्षण उसमे झंकार है। काव्य एवं साहित्य का कोई गुण ऐसा नहीं जो मूर्तिमन्त हो कर इस ग्रन्थ मे विराजमान न हो और कवि कर्म्म की ऐसी कोई विभूति नहीं जो इसमें सुविकसित दृष्टिगत न हो। मानसिक सुकुमार भावो का ऐसा सरस चित्रण किसी साहित्य मे है या नहीं, यह नहीं कहा जा सकता। परन्तु जी यही कहता है कि यह मान लिया जावे कि यदि होगा तो ऐसा ही होगा किन्तु यह लोच कहाँ ? इस ग्रन्थ में शृंगार रस तो प्रवाहित है ही, यत्र तत्र अनेक सासारिक विषयो का भी इसमे बड़ा ही मर्म-स्पर्शी वर्णन है। अनेक रहस्यों का इसमें कहीं कहीं ऐसा निरूपण है जो उसकी स्वाभाविकता का सच्चा चित्र आखों के सामने ला खडा करता है। बिहारी

लाल ने अपने पूर्ववर्त्ती संस्कृत अथवा भाषा कवियों के भाव कहीं कही लिये है। परन्तु उनको ऐसा चमका दिया है कि यह ज्ञात होता है, कि घन-पटल से बाहर निकल कर हँसता हुआ मयंक सामने आ गया। इनकी सतसई के अनुकरण मे और कई सतसइया लिखी गई, जिनमे से चंदन, विक्रम और रामसहाय की अविक प्रसिद्ध है, परन्तु उस बूंद से भेट कहा। पीतल सोना का सामना नहीं कर सकता। संस्कृतमे भी इस सतसईका पूरा अनुवाद पंडित परमानंद ने किया है और इसमे कोई सन्देह नहीं कि उन्होने कमाल किया है। परन्तु मूल मूल है और अनुवाद अनुवाद।

बिहारीलालकी सतसई का आधार कोई विशेष ग्रन्थ है अथवा वह स्वयं उनकी प्रतिभा का विकास है, जब यह विचार किया जाता है तो दृष्टि सस्कृत के 'आर्य्या सप्तशती' एवं गोवर्धन सप्तशती की ओर आकर्षित होती है। निस्सन्देह इन ग्रन्थो मे भी कवि-कर्म्म का सुन्दर रूप दृष्टिगत होता है। परन्तु मेरा विचार है कि रस निचोडने मे बिहारीलाल इन ग्रन्थ के रचयिताओं से अधिक निपुण है। जिन विषयो का उन लोगों ने विस्तृत वर्णन करके भी सफलता नही प्राप्त की उनको बिहारीने थोड शब्द में लिख कर अद्भुत चमत्कार दिखलाया है। इस अवसर पर कृपा राम की 'हित तरंगिनी, भी स्मृतिपथ मे आती है। परन्तु प्रथम तो उस ग्रन्थ मे लगभग चार सौ दोहे है, दूसरी बात यह कि उनकी कृति मे ललित कला इतनी विकसित नहीं है जितनी बिहारीलाल की उक्तियों मे। उन्होंने सक्षिप्तता का राग अलापा है, परन्तु बिहारीलाल के समान वे इत्र निकालने में समर्थ नहीं हुये। उनके कुछ दोहे नीचे लिखे जाते है। उनको देखकर आप स्वयं विचारे कि क्या उनमे भी वही सरसता, हृदयग्राहिता और सुन्दर शब्द-चयन-प्रवृत्ति पाई जाती है जैसी बिहारीलाल के दोहोंमे मिलती है।

लोचन चपल कटाच्छ सर, अनियारे विष पूरि।
मन मृग बेधैं मुनिन के, जगजन सहित विसूरि।
आजु सबारे हौं गयी, नंद लाल हित ताल।
कुमुद कुमुदिनी के भटू निरखे औरै हाल।

पति आयो परदेस ते, ऋतु बसंत की मानि ।
झमकि झमकि निज महल में, टहलै करैं सुरानि।

बिहारी के दोहो के सामने ये दोहे ऐसे ज्ञात होते है जैसे रेशम के लच्छो के सामने सूत के डोरे। संभव है कि हित-तंरगिणी को बिहारी लाल ने देखा हो, परन्तु वे कृपागम को बहुत पीछे छोड गये है। मेरा बिचार है कि बिहारो लाल की रचनाओ पर यदि कुछ प्रभाव पड़ा है तो उस काल के प्रचलित फारसी साहित्य का। उर्दू शाइरी का तो तब तक जन्म भी नहीं हुआ था। फारसी का प्रभाव उस समय अवश्य देश मे विस्तार लाभ कर रहा था क्यो कि अकबर के समय मे ही दफ्तर फारसी मे हो गया था और हिन्दू लोग फारसी पढ पढ कर उसमे प्रवेश करने लगे थे। फारसी के दो बन्द के शेरो मे चुने शब्दो के आधार से वैसो ही बहुत कुछ काव्य-कला बिकसित दृष्टिगत होती है जेसी कि बिहारी लाल के दो चरण के दोहों मे। उत्तर काल मे उर्दू शाइरी मे फारसी रचनाओ का यह गुण स्पष्टतया दृष्टिगत हुआ। परन्तु बिहारीलाल को रचनाओ के विषय मे असंदिग्ध रीति से यह बात नही कही जा सकती, क्योकि अब तक बिहारीलाल के बिषय मे जो ज्ञात है उससे यह पता नहीं चलता कि उन्होंने फारसी भी पढी थी। जो हो, परंतु यह बात अवश्य माननी पड़ेगी कि बिहारीलालके दोहों मे जो थोडे मे बहुत कुछ कह जाने की शक्ति है वह अद्भुत है। चाहे यह उनकी प्रतिभा का स्वाभाविक विकास हो अथवा अन्य कोई आधार, इस विषय मे निश्चित रूपसे कुछ नही कहा जा सकता।

अब मै उनकी कुछ रचनाये आप लोगों के सम्मुख उपस्थित करूंगा विहारी लाल को शृंगार रस का महाकवि सभी ने माना है। इसलिये उसको छोडकर पहले मै उनकी कुछ अन्य रस की रचनाये आप लोगो के सामने रखता हू। आप देखिये उनमे वह गुण और वह सार ग्राहिता है या नहीं जो उनकी रचनाओं की विशेषताये है। संसार का जाल कौन नहीं तोडना चाहता, पर कौन उसे तोड सका? मनुष्य जितनी ही इस उलझन के सुलझाने की चेष्टा करता है उतनाही वह उसमे उलझता जाता

है। इस गम्भीर विषय को एक अन्योक्ति के द्वारा बिहारीलाल ने जिस सुन्दरता और सरसता के साथ कहा है वह अभूतपूर्व है। वास्तव मे उनके थोडे से शब्दो ने बहुत वडे व्यापक सिद्धात पर प्रकाश डाला है —

को छूट्यो येहि जाल परि कत कुरंग अकुलात।
ज्यों २ सरुझि भज्यो चहै त्यों २ अरुझ्यो जात॥

यौवन का प्रमाद मनुष्य से क्या नही कराता ?, उसके प्रपंचों मे पड कर कितने नाना संकटो मे पडे, कितने अपने को बरबाद कर बैठे, कितने पाप—पंक में निमग्न हुये, कितने जीवन से हाथ धो बैठे और कितनोंही ने उसके रस से भींग कर अपने सरस जीवन को नीरस बना लिया। हम आप नित्य इस प्रकार का दृश्य देखते रहते है। इस भाव को किस प्रकार बिहारीलाल चित्रण करते है उसे देखिये —

इक भींजे चहले परे बूड़े बहे हजार।
किते न औगुन जग करत नै बै चढ़तीबार॥

परमात्मा आख वालों के लिये सर्वत्र है। परंतु आज तक उसको कौन देख पाया ? कहा जा सकता है कि हृदय की आख से ही उसे देख सकते है, चर्म-चक्षुओं से नहीं। चाहे जो कुछ हो, किन्तु यह सत्य है कि वह सर्व व्यापो है और एक एक फूल और एक एक पत्ता मे उसकी कला विद्यमान है। शास्त्र तो यहा तक कहता है, कि 'सर्व खल्विदं ब्रह्म नेह नानास्तिकिचन। जो कुछ संसार में है वह सब ब्रह्म है, इसमे नानात्व कुछ नही है। फिर क्या रहस्य है कि हम उसको देख नहीं पाते ? बिहारीलालजी इस विषय को जिस मार्मिकता से समझाते है उसकी सौ मुख से प्रशंसा की जा सकतो है। वे कहते है —

जगत जनायो जो सकल सो हरि जान्यो नाहिं।
जिमि आंखिनि सब देखिये आंखि न देखी जाहिं॥

एक उर्दू शायर भी इस भाव को इस प्रकार वर्णन करता है —

बेहिजाबी वहकि जल्वा हर जगह है आशिकार।
इसपर घूँघट वहकि सूरत आजतक नादीदा है॥

यह शेर भी बडा हो सुन्दर है। परन्तु भाव प्रकाशन किस मे किस कोटि का है इसको प्रत्येक सहृदय स्वयं समझ सकता है। भावुक भक्त कभी कभी मचल जाते है और परमात्मा से भी परिहास करने लगते है। ऐसा करना उनका विनोद-प्रिय प्रेम है असंयत भाव नहीं। 'प्रेम लपेटे अटपटे बैन' किसे प्यारे नही लगते। इसी प्रकार की एक उक्ति बिहारी की देखिये। वे अपनी कुटिलता को इसलिये प्यार करते है। जिसमें त्रिभंगीलाल को उनके चित्त मे निवास करने मे कष्ट न हो, क्योंकि यदि वे उसे सरल बनालेगे तो वे उसमे सुख से कैसे निवास कर सकेंगे ? कैसा सुन्दर परिहास है। वे कहते है —

करौ कुबत जग कुटिलता तजौं न दीन दयाल।
दुखी होहुगे सरल चित बसत त्रिभंगी लाल।

परमात्मा सच्चे प्रेम से ही प्राप्त होता है। क्योंकि वह सत्य स्वरूप है। जिसके हृदय मे कपट भरा है उसमें वह अन्तर्यामी कैसे निवास कर सकता है जो शुद्धता का अनुरागी है ? जिसका मानस-पट खुला नहीं। उससे अन्तर्पट के स्वामी से पटे तो कैसे पटे ? इस विषय को बिहारी लाल, देखिये कितने सुन्दर शब्दो मे प्रकट करते है —

तौ लगि या मन सदन में हरि आवैं केहि बाट।
बिकट जटे जौ लौं निपट खुलैं न कपट कपाट।

अब कुछ ऐसे पद्य देखिये जिनमे बिहारीलाल जीने सासारिक जीवन के अनेक परिवर्तनों पर सुन्दर प्रकाश डाला है —

यद्यपि सुंदर सुघर पुनि सगुनौ दीपक देह।
तऊ प्रकास करैं तितो भरिये जितो सनेह।
जो चाहै चटकन घटै मैलो होय न मित्त।
रज राजस न छुवाइये नेह चीकने चित्त।
अति अगाध अति ऊथरो नदी कूप सर बाय।

सो ताको सागर जहाँ जाकी प्यास बुझाय।
बढ़त बढ़त संपति सलिल मन सरोज बढ़ि जाय।
घटत घटत पुनि ना घटै बरु समूल कुम्हिलाय।
को कहि सकै बड़ेन सों लखे बड़ीयौ भूल।
दीन्हें दई गुलाब की इन डारन ये फूल।

कुछ उनके शृंगार रस के दोहे देखिये —

बतरस लालच लाल की मुरली धरी लुकाय।
सौंह करै भौंहन हँसै देन कहै नटि जाय।
दृग अरुझत टूटत कुटुम जुरत चतुर चित प्रीति।
परति गाँठ दुरजन हिये दई नई यह रीति।
तच्यो आंच अति बिरह की रह्यो प्रेम रस भींजि।
नैनन के मग जल बहै हियो पसीजि पसीजि।
सघन कुंज छाया सुखद सीतल मन्द समीर।
मन ह्वै जात अजौं वहै वा यमुना के तीर।
मानहुं विधि तनअच्छ छबि स्वच्छ राखिबे काज।
दृग पग पोंछनको कियो भूखन पायंदाज।

विहारीलाल के उद्धृत दोहो मे से सब का मर्म समझाने की यदि चेष्टा की जाय तो व्यर्थ विस्तार होगा, जो अपेक्षित नही। कुछ दोहो का मैने स्पष्टी करण किया है। वही मार्ग ग्रहण करने से आशा है, काव्य मर्मज्ञ सुजन अन्य दोहो का अर्थ भी लगा लेगे और उनकी व्यंजनाओं का मर्म समझ कर यथार्थ आनन्दलाभ करेगे। बिहारी के दोहों का यो भी अधिक प्रचार है और सहृदय जनो पर उनका महत्व अप्रगट नहीं है। इसलिये उनके विषय मे अधिक लिखना व्यर्थ है। मैं पहले उनको रचना आदि पर बहुत कुछ प्रकाश डाल चुका हू। इतना फिर और कह देना

चाहता हू कि कला की दृष्टि से 'बिहारी सतसई' अपना उदाहरण आप है। कुछ लोगों ने बिहारी लाल की शृंगार सम्बन्धी रचनाओ पर व्यंग भी किये है और इस सूत्र से उनकी मानसिक वृत्ति पर कटाक्ष भी। मत भिन्नता स्वाभाविक है और मनुष्य अपने विचारों और भावों का अनुचर है। इसलिये मुझ को इस विषय मे अधिक तर्क-वितर्क वाछनीय नहीं। परन्तु अपने विचारानुसार कुछ लिख देना भी संगत जान पडता है।

बिहारीलाल पर किसी किसी ने यह कटाक्ष किया है कि उनकी दृष्टि सासारिक भोग-विलास मे ही अधिकतर बद्ध रही है। उन्होंने सासारिक वासनाओं और विलासिताओ का सुंदर से सुंदर चित्र खीच कर लोगो की दृष्टि अपनी ओर आकर्षित की। न तो उस 'सत्यं शिवं सुन्दरं' का तत्व समझा और न उसकी अलौकिक और लोकोत्तर लीलाओं और रहस्यों का अनुभव प्राप्त करने की यथार्थ चेष्टा की। वाह्य जगत् से अन्तर्जगत् अधिक विशाल और मनोरम है। यदि वे इसमे प्रवेश करते तो उनको वे महान् रत्न प्राप्त होते जिनके सामने उपलब्ध रत्न काच के समान प्रतीत होते। परन्तु मैं कहूगा न तो उन्हो ने अन्तर्जगत से मुंहमोड़ा और न लोकोत्तरकी लोकोत्तरतासेही अलग रहे। क्या स्त्रीका सौन्दर्य 'सत्यं शिवं सुन्दरम्' नहीं है? कामिनी-कुलके सौन्दर्यमे क्या ईश्वरीय विभूतिका विकास नहीं? क्या उनकी सृष्टि लोक-मङ्गलकी कामनासे नहीं हुई? क्या उनके हाव-भाव, विभ्रम-विलास लोकोपयोगी नही? क्या विधाता ने उनमें इस प्रकार की शक्तिया उत्पन्न कर प्रवंचना की? और संसार को भ्रान्त बनाया? मैं समझता हू कि कोई तत्वज्ञ इसे न स्वीकार करेगा। यदि यह सत्य है कि संसार की रचना मङ्गलमयी है, तो इस प्रकार के प्रश्न हो ही नहीं सकते। जो परमात्मा की विभूतिया विश्व के समस्त पदार्थों में देखते है और यह जानते है कि परमात्मा सच्चिदानन्द है वे संसार की मङ्गलमयी और उपयोगी कृतियो को बुरी दृष्टि से नहीं देख सकते। यदि बिहारीलाल ने स्त्री के सौन्दर्य-वर्णन मे उच्च कोटि की कवि-कल्पना से काम लिया, उनके नाना आनन्दमय भावों के चित्रण मे अपूर्व कौशल दिखलाया, मानस की सुकुमार वृत्तियो के निरूपण मे सच्ची भावुकता

प्रगट की। विश्व की साग्भूत दो मङ्गलमयी मूर्तियों (स्त्री पुरुष) की मङ्गलमयी कामनाओ की कमनीयता प्रदर्शित की और अपने पद्यों मे शब्द और भाव विन्यास के मोती पिरोये तो क्या लोक-ललाम की लोकोत्तर लीलाओं को ही रूपान्तर से प्रगट नहीं किया ? और यदि यह सत्य है तो बिहारी लाल पर व्यंग-वाण वृष्टि क्यो ? मयंक मे धब्बे है, फूल मे काटे है तो क्या उनमे सत्यं' 'शिवं' सुन्दरम्' का विकास नहीं है ? बिहारी की कुछ कविताये प्रकृति नियमानुसार सर्वथा निर्दोष न हो तो क्या इससे उनकी समस्त रचनाये निदनीय है ? लोक-ललाम की ललामता लोकोत्तर है, इसलिये क्या उसका लोक से कुछ सम्वन्ध नही ? क्या लोक से ही उसकी लोकोत्तरताका ज्ञान नहीं होता ? तो फिर, लोकका त्याग कैसे होगा ? निस्सदेह यह स्वोकार करना पडेगा कि लोक का सदुपयोग ही वाछनीय है, दुरुपयोग नही। जहाँ सत्य, शिवं सुन्दरम् है वहा उसको उसी रूप में ग्रहण करना कवि कर्म्म है। बिहारीलाल ने अधिकाश ऐसा ही किया है, वरन मै तो यह कहूगा कि उनकी कला पर गो.स्वामी जी का यह कथन चरितार्थ होता है कि 'सुंदरता कहँ 'सुंदर करहीं'। संसार मे प्रत्येक प्राणी का कुछ कार्य होता है। अधिकारी-भेद भी होता है। संसार में कवि भी है वैज्ञानिक भी है, दार्शनिक भी है, तत्वज्ञ भी है एवं महात्मा भी। जो जिस रूप मे कार्यक्षेत्र मे आता है, हमको उसी रूपमे उसे ग्रहण करना चाहिये और देखना चाहिये कि उसने अपने क्षेत्रमे अपना कार्य्य करके कितनी सफलता लाभ की। कविकी आलोचना करते हुये उसके दार्शनिक और तत्वज्ञ न होनेका राग अलापना बुद्धिमत्ता नही। ऐसा करना प्रमाद है, विवेक नहीं। मेरा विचार है कि बिहारी लाल ने अपने क्षेत्र मे जो कार्य्य किया है वह उल्लेखनीय है एवं प्रशंसनीय भी। यदि उनमे कुछ दुर्वलताये है तो वे उनकी वशेषताओं के सम्मुख मार्जनीय है, क्योंकि यह स्वाभाविकता है, इससे कौन बचा ?

बिहारीलाल को भाषा के विषय मे मुझे यह कहना है कि वह साहित्यिक व्रजभाषा है। उसमें अवधी के 'दीन' 'कोन' इत्यादि, बुन्देलखण्डी के लखबी और प्राकृत के मित्त ऐसे शब्द भी मिलते है। परन्तु उनकी संख्या

नितान्त अल्प है। ऐसे ही भाषागत और भी कुछ दोप उसमें मिलते है। किन्तु उनके महान् भाषाधिकार के सामने वे सब नगण्य है। वास्तव बात तो यह है कि उन्होंने अपने ७०० दोहो मे क्या भाषा और क्या भाव, क्या सौन्दर्य, क्या लालित्य सभी विचार से वह कौशल और प्रतिभा दिखलायी है कि उस समय तक उनका ग्रन्थ समादर के हाथो से गृहीत होता रहेगा जब तक हिन्दी भाषा जीवित रहेगी ॥

बिहारी लाला के सम्बन्ध मे डाक्टर जी ए ग्रियर्सन की सम्मति नीचे लिखी जाती है —

"इस दुरूह ग्रन्थ (बिहारी सतसई) मे काव्य-गत परिमार्जन, माधुर्य्य और अभिव्यक्ति-सम्बन्धी विदग्धता जिस रूप मे पाई जाती है वह अन्य कवियो के लिये दुर्लभ है। अनेक अन्य कवियो ने उनका अनुकरण किया है, लेकिन इस विचित्र शैली मे यदि किसी ने उल्लेख-योग्य सफलता पायी है तो वह तुलसीदास है, जिन्होने बिहारी लाल के पहले सन् १५८५ मे एक सतसई लिखी थी। बिहारी के इस काव्य पर अगणित टीकाये लिखी गई है। इसकी दुरूहता और विदग्धता ऐसी है कि इसके अक्षरो को कामधेनु कह सकते है"। १

३—त्रिपाठी बन्धुओं मे मतिराम और भूषण विशेष उल्लेख योग्य है। इनके बडे भाई चिन्तामणि थे और छोटे नीलकंठ उपनाम जटाशंकर।

1 The elegance, poetic flavour, and ingenuity of expiession in this difficult work, are considered to have been unapproached by any other poet He has been imitated by numerous other poets, but the only one who has achieved any considerable excellence in this peculiar style is Tulsidas (No 128) who preceded him by writing a Satsai (treating of Ram as Bihari Lall's treated of Krishna) in the year 1585 A D

Behari's poem has been dealt with by innumerable commentatorso Its difficulty and ingenuity one so great that it is colled a veritable 'Akshar Kamdhenu'

Modern Vernacular Literature of Hindustan P 75

चारों भाई साहित्य के पारंगत थे और उन्हों ने अपने समय मे बहुत कुछ प्रतिष्ठा लाभ की। आजकल कुछ विवाद इस विषय मे छिड गया है कि वास्तव मे ये लोग परस्पर भाई थे या नहीं, परन्तु अब तक इस विषय में कोई ऐसी प्रमाणिक मीमासा नहीं हुई कि चिरकाल की निश्चित बात को अनिश्चित मान लिया जावे। चितामणि राजा-महाराजाओं के यहाँ भी आदृत थे। उन्होंने सुन्दर रीति-ग्रन्थों की रचना की है, जिनका नाम 'छन्द-विचार', 'काव्य-विवेक', 'कविकुल कल्पतरु' एवं 'काव्य-प्रकाश, है। उनकी बनाई एक रामायण भी है। परन्तु वह विशेष आदृत नहीं हुई। कविता इनकी सुन्दर, सरस और परिमार्जित व्रजभाषा का नमूना है। इनको गणना आचार्य्यों मे होती है। कहा जाता है कि प्राकृत भाषा की कविता करने मे भी ये कुशल थे। कुछ हिन्दी रचनाये देखिये —

१ चोखी चरचा ज्ञान की आछी मन की जीति।
संगति सज्जन की भली नीकी हरि की प्रीति।

२—एइ उधारत हैं तिन्हें जे परे मोह
महोदधि के जल फेरे।
जे इनको पल ध्यान धरैं मन ते
न परैं कबहूं जम घेरे।
राजै रमा रमनी उपधान
अभै बरदान रहै जन नेरे।
हैं बल भार उदंड भरे हरि के
भुज दंड सहायक मेरे।

३—सरद ते जल की ज्यों दिन ते कमल की ज्यों,
धन ते ज्यों थल को निपट सरसाई है।
घन ते सावन की ज्यों ओप ते रतन की ज्यों।
गुन ते सुजन की ज्यों परम सहाई है।

चिन्तामनि कहै आछे अच्छरनि छंद की ज्यों,
निसागम चंद की ज्यों दृग सुखदाई है।
नगते ज्यों कंचन बसंत ते ज्यों बन की,
यों जोवन ते तन की निकाई अधिकाई है।

नीलकण्ठजी की रचनायें भी प्रसिद्ध हैं। किन्तु वे अधिकतर जटिल हैं। एक रचना उनकी भी देखिये —

तन पर भारतीन तन पर भारतीन,
तन पर भारतीन तन पर भार हैं।
पूजैं देव दार तीन पूजैं देव दार तीन,
पूजैं देवदार तीन पूजैं देव दार हैं।
नीलकंठ दारुन दलेल खां तिहारी धाक,
नाकती न द्वार ते वै नाकती पहार हैं।
आँधरेन कर गहे, बहरे न संग रहे,
बार छूटे बार छूटे बार छूटे बार हैं।

इनमे मतिराम बडे सहृदय कवि थे। ये भी राजा-महाराजाओ से सम्मानित थे। इन्होने चार रीति ग्रन्थो की रचना की है। उनके नाम है, ललित ललाम, रस-राज, छन्दसार और साहित्यसार। इनमे ललित ललाम और रस राज अधिक प्रसिद्ध है। इनकी और चितामणि की भाषा लगभग एक ही ढंग की है दोनों मे वैदर्भी रीति का सुन्दर विकास है। इनकी विशेषता यह है कि सीधे सादे शब्दों मे ये कूट कूट कर रस भर देते है। जैसा इनकी रचना में प्रवाह मिलता है वैसा ही ओज। जैसे सुन्दर इनके कवित्त है वैसे ही सुन्दर सवैये। इनके अधिकतर दोहे बिहारीलाल के टक्कर के है, उनमें बडी मधुरता पायी जाती है। यदि इनके बडे भाई चिन्तामणि नागपुर के सूर्य्यबंशी भोंसला मकरन्दशाह के यहा रहते थे, तो ये बून्दी के महाराज भाऊसिह के यहा समादृत थे। इससे

यह सूचित होता है कि उस समय ब्रजभाषा के कवियों की कितनी पहुंच राजदर्बारों मे थी और उनका वहाँ कितना अधिक सम्मान था। देखिये कविवर मतिराम बूंदी का वर्णन किस सरसता से करते है —

सदा प्रफुल्लित फलित जहँ द्रुम बेलिन के बाग।
अलि कोकिल कल धुनि सुनत रहत श्रवन अनुराग।
कमल कुमुद कुवलयन के परिमल मधुर पराग।
सुरभि सलिल पूरे जहाँ बापी कूप तड़ाग।
सुक चकोर चातक चुहिल कोक मत्त कल हंस।
जहँ तरवर सरवरन के लसत ललित अवतंस।

इनके कुछ अन्य पद्य भी देखिये —

गुच्छनि के अवतंस लसै सिखि
पच्छनि अच्छ किरीट बनायो।
पल्लव लाल समेत छरी कर
पल्लव में मति राम सुहायो।
गुञ्जन के उर मंजुल हार
निकुंजन ते कढ़ि बाहर आयो।
आजु को रूप लखे ब्रजराजु को
आजु ही आंखिन को फल पायो।
कुंदन को रँग फीको लगै झलकै
असि अंगनि चारु गोराई।
आंखिन मैं अलसानि चितौनि
मैं मंजु बिलासनि की सरसाई।
को बिन मोल बिकात नहीं
मतिराम लहे मुसुकानि मिठाई।

ज्यों ज्यों निहारिये नेरे ह्वै नैननि
त्यों त्यों खरी निकरै सुनिकाई ।
चरन धरै न भूमि बिहरै तहाँई जहाँ
फूले फूले फूलन बिछायो परजंक है ।
भार के डरनि सुकुमारि चारु अंगनि मैं
करति न अंगराग कुंकुम को पंक है ।
कहै मतिराम देखि वातायन बीच आयो
आतप मलीन होत बदन मयंक है ।
कैसे वह बाल लाल बाहर विजन आवै
बिजन बयार लागे लचकति लंक है ।

मतिराम को कोमल और सरस शब्द माला पर किस प्रकार भाव-लहरी अठखेलिया करती चलती है' इसे आप ने देख लिया। उनके सीधे सादे चुने शब्द कितने सुंदर होते है, वे किस प्रकार कानों में सुधा वर्षण करते, और कैसे हृदय मे प्रवेश करके उसे भाव-विमुग्ध बनाते है, इसका आनंद भी आप लोगों ने लेलिया। वास्तव बात यह है कि जिन महाकवियो ने ब्रजभाषा की धाक हिन्दी साहित्य मे जमादी उनमें से एक मतिराम भी है। मिश्रबन्धुओं ने इनकी गणना नव-रत्नो मे की है। मै भी इससे सहमत हू। इनकी भाषा साहित्यिक ब्रजभाषा है, परंतु उसमें उन्होंने ऐसी मिठास भरी है जो मानसों को मधुमय बनाये बिना नहीं रहती। साहित्यिक ब्रजभापा के लक्षण मै ऊपर बतला आया हू। उनपर यदि इनकी रचना कसो जावे तो उसमे भाव और भाषा-सम्बन्धी महत्ताओं की अधिकता ही पायी जायगी, न्यूनता नहीं। उन्होने जितने प्रसून ब्रज-भाषा देवी के चरणों पर चढाये है, उनमें से अधिकाश सुविकसित और सुरभित है और यह उनकी सहृदयता को उल्लेखनीय विशेषता है।

वीर हृदय भूषण इस शताब्दी के ऐसे कवि है जिन्होने समयानुकूल वीर रस-धारा के प्रवाहित करने मे ही अपने जोवन की चरितार्थता समझी

जब उनके चारो ओर प्रवल वेग से शृंगार रस की धारा प्रवाहित हो रही थी उस समय उन्होने वीर रस की धारा मे निमग्न हो कर अपने को एक विलक्षण प्रतिभा-सम्पन्न पुरुष प्रतिपादित किया। ऐसे समय मे भी जब देशानुराग के भाव उत्पन्न होने के लिये वातावरण बहुत अनुकूल नहीं था, उन्होंने देश-प्रेम-सम्बन्धी रचनाये करके जिस प्रकार एक भारत-जननी के सत्पुत्र को उत्साहित किया उसके लिये कौन उनकी भूयसी प्रशंसा न करेगा? यह सत्य है कि अधिकतर उनके सामने आक्रमित धर्म्म की रक्षा ही थी और उनका प्रसिद्ध साहसी वीर धर्म-रक्षक के रूप में ही हिन्दू जगत के सम्मुख आता है। परन्तु उसमे देश प्रेम और जाति-रक्षा की लगन भी अल्प नहीं थी। नीचे की पंक्तिया इसका प्रमाण है, जो शिवाजी की तलवार की प्रशंसा मे कही गयी है —

तेरो करवाल भयो दच्छिन को ढाल भयो
हिन्द को दिवाल भयो काल तुरकान को

इसी भाव का एक पूरा पद्य देखिये —

राखी हिंदुआनी हिंदुआन को तिलक राख्यो
अस्मृति पुरान राखे वेद विधि सुनी मैं।
राखी रजपूती राजधानी राखी राजन की धरा में
धरम राख्यो राख्यो गुन गुनी मैं।
भूषन सुकबि जीति हदमरहट्टन की
देस देस कीरति बखानी तव सुनी मैं।
साह के सपूत सिवराज समसेर तेरो
दिल्ली दल दाबिके दिवाल राखी दुनी मैं।

भूषण की जितनी रचनाये है वे सब वीर रस के दर्प से दर्पित है। शृंगार रस की ओर उन्हों ने दृष्टिपात भी नहीं किया। देखिये, नीचे के पद्यों की पदावली मे धर्मरक्षा की तरंग किस प्रकार तरंगायमान है —

१—देवल गिरावते फिरावते निसान अली,
ऐसे डूबे राव राने सबै गये लब की।
गौरा गनपति आप औरन को देत ताप,
आप के मकान सब मार गये दबकी।
पीरां पैगम्बरां दिगम्बरां दिखाई देत,
सिद्ध की सिधाई गयी रही बात रबकी।
कासिहुं ते कला जाती मथुरा मसीत होती,
सिवाजी न होतो तौ सुनति होतीसबकी।
२—वेद राखे विदित पुरान राखे सारजुत,
रामनाम राख्यो अति रसना सुघर मैं।
हिन्दुन की चोटी रोटी राखो है सिपाहिन की,
कांधे मैं जनेऊ राख्यो माला राखी गरमैं।
मींड़ि राखे मुगल मरोरि राखे पादशाह,
बैरी पीसि राखे बरदान राख्यो कर मैं।
राजन की हद्द राखी तेग बल सिवराज,
देव राखे देवल स्वधर्म राख्यो घर मैं।

उनके कुछ बीररस के पद्यो को भी देखिये।

३—डाढ़ी के रखैयन की डाढ़ी सी रहति छाती,
बाढ़ी मरजाद जस हद्द हिन्दुआने की।
कढ़ि गयी रैयत के मन की कसक सब,
मिटि गयी ठसक तमाम तुरकाने की।
भूषन भनत दिल्लीपति दिल धकधक,
सुनि सुनि धाक सिवराज मरदाने की।

मोटी भई चंडी बिन चोटी के चबाय मुंड,
खोटी भई संपति चकत्ता के घराने की।

४—जीत्यो सिवराज सलहेरि को समर सुनि,
सुनि असुरन के सुसीने धरकत हैं।
देवलोक नागलोक नरलोक गावैं जस,
अजहूं लौं परे खग्ग दाँत खरकत हैं।
कटक कटक काटि कीट से उड़ाय केते,
भूषन भनत मुख मोरे सरकत हैं।
रनभूमि लेटे अधकटे कर लेटे परे,
रुधिर लपेटे पठनेटे फरकत हैं।

दो पद्य ऐसे देखिये जो अत्युक्ति अलकार के है। उनमे से पहले मे शिवाजी के दान की महिमा वर्णित है और दूसरे मे शत्रु-दल के वाला और वालको की कष्ट कथा विशद रूपमे लिखो गयी है। दोनो मे उनके कवि-कर्म्म का सुन्दर विकास हुआ है।

५—आज यहि समै महाराज सिवराज तूही,
जगदेव जनक जजाति अम्बरीष सों।
भूषन भनत तेरे दान-जल जलधि में
गुनिन को दारिद गयो बहि खरीक सों।
चंद कर कंजलक चांदनी पराग
उड़बृंद मकरंद बुंद पुंज के सरीक सों।
कंद सम कयलास नाक गंग नाल,
तेरे जस पुंडरीक को अकास चंचरीकसों।

६—दुर्जन दार भजि भजि बेसम्हार चढ़ीं
उत्तर पहार डरि सिवा जी नरिंद ते।

भूषन भनत बिन भूषन बसन साधे भूषनपियासन
हैं नाहन को निंदते।
बालक अयाने बाट बीच ही बिलाने,
कुम्हिलाने मुख कोमल अमल अरबिन्दते।
दृग-जल कज्जल कलित बढ्यो कढ्यो मानो,
दूजो सोत तरनि तनूजा को कलिंद ते।

भूषण की भाषा मे जहाँ ओज की अधिकता है वहाँ उस मे उतनी सरसता और मधुरता नहीं। जितनी मतिराम की भाषा में है। यह सच है कि भूषण वीररस के कवि है और मतिराम शृंगार रस के। दोनों की प्रणाली भिन्न है। साहित्य-नियमानुसार भूपण की परुषा वृत्ति है और मतिराम की वैदर्भी। ऐसी अवस्था मे भाषा का वह सौन्दर्य जो मतिराम की रचनाओं मे है भूपण की वृत्ति मे नहीं मिल सकता। किन्तु जहा उनको वैदर्भी वृत्ति-ग्रहण करनी पडी है, जैसे छठे और सातवे पद्यों मे, वहा भी वह सरसता नहीं आयी जैसी मतिराम की रचनाओं मे पायी जाती है। सच्ची बात यह है कि भाषा लालित्य मे वे मतिराम की समता नहीं कर सकते। किंतु उनकी विशेषता यह है कि उनमे धर्म की ममता है, देशका प्रेम है और है जातिका अनुराग। इन भावो से प्रेरित हो कर जो राग उन्होंने गाया उसकी ध्वनि इतनी विमुग्धकरी है, उसमे यथाकाल जो गूंज पैदा हुई, उसने जो जीवनी धारा बहायी वह ऐसी ओजमयी है कि उसकी प्रतिध्वनि अब तक हिन्दी साहित्य मे सुन पड़ रही है। उसी के कारण हिन्दी-संसार मे वे वीर-रस के आचार्य माने जाते है। उनका समकक्ष अब तक हिन्दी-साहित्य मे उत्पन्न नहीं हुआ। आज तक इस गौरवमय उच्च सिंहासन पर वे ही आसीन है। और क्या आश्चर्य कि चिरकाल तक वे ही उस पर प्रतिष्ठित रहे।

इनकी मुख्य भाषा साहित्यिक व्रजभाषा है और उसमे उसके सब लक्षण पाये जाते है। परंतु अनेक स्थानो पर इनकी रचना मे खडी बोली के प्रयोग भी मिलते है। नीचे की पंक्तियों को देखिये.—

१—'अफजलखान को जिन्हों ने मयदान मारा'
२—'देखत में रुसतमखां को जिन खाक किया'
३—'कैद किया साथ का न कोई बीर गरजा'
४—'अफजल का काल सिवराज आया सरजा'

उन्होने प्राकृत भाषा के शब्दो का भी यत्र तत्र प्रयोग किया है। 'खग्ग' शुद्ध प्राकृत शब्द है। पर निम्न लिखित पंक्ति मे वह व्यवहृत है।

'भूषन भनत तेरी किम्मति कहाँ लौं कहौं
अजहूँ लौं परे खग्ग दाँत खरकत हैं।

पंजाबी भाषा का प्रयोग भी कहीं कही मिलता है। 'पीरा पैगंवरा दिगंवरा दिखाई देत' इस वाक्य मे चिन्हित शब्द पंजाबी है। 'कीबी कहै कहाँ औ गरीबी गहे भागी जाहि इसमे कीबो' शब्द बुंदेलखंडी है। इसी प्रकार फारसी शब्दो के प्रयोग करने मे भी वे अधिक स्वतंत्र है, शब्द गढ भी लेते है। गाढे गढ लीने अरु बेरी कतलाम कीन्हे' 'चारि को सो अंक लंक चंद सरमाती है', 'जानि गैर मिसिल गुसीले गुसा धारि उर' इन वाक्य खंडो के चिन्हित शब्द ऐसे ही है। प्रयोजन यह कि उनकी मुख्य भाषा व्रजभाषा अवश्य है, परन्तु शब्द-विन्यास मे उन्होंने बहुत स्वतंत्रता ग्रहण को है। फारसी के शब्दों का जो अधिक प्रयोग उनकी रचना मे हुआ, उसका हेतु उनका विषय है, शिवाजी की विजय का सम्बन्ध अधिकतर मुसलमानो की सेना और वर्त्तमान सम्राट् औरंगजेब से था। इस लिये उनको अनेक स्थानों पर अपनी रचना मे फारसी अरबो के शब्दों का प्रयोग करना पडा। कहीं कहीं उनको उन्होंने शुद्ध रूप मे ग्रहण किया और कहीं उनमे मनमाना परिवर्तन छन्द की गति के अनुसार कर लिया। इसी सूत्र से खडी बोली के वाक्यों का मिश्रण भी उनकी कविता मे मिलता है। परन्तु इन प्रयोगो का इनना वाहुल्य नहीं कि उनसे उनकी मुख्य भाषा लाञ्छित हो सके।

(४) कुलपति मिश्र आगरे के निवासी चतुर्वेदी ब्राह्मण थे। ये संस्कृतके बडे विद्वान् थे इन्हो ने काव्य-प्रकाश के आधार पर 'रस-रहस्य' नामक

एक ग्रन्थ लिखा है, उसमे काव्य के दसों अङ्गो का विशद वर्णन है इनके और भी ग्रन्थ बतलाये जाते है । जिनमे संग्रह-सार', 'युक्ति-तरंगिनी, और 'नख शिख' अधिक प्रसिद्ध है। ये जयपुर के महाराज जयसिह के पुत्र रामसिह के दरबारी कवि थे। अपने 'रस रहस्य' नामक ग्रन्थ मे इन्होंने रामसिह की बहुत अधिक प्रशंसा की है। इनकी अधिकाश रचना की भाषा साहित्यिक ब्रजभाषा है। जिसमे बडी ही प्राञ्जलता और मधुरता है। किंतु कुछ रचनाये इनकी ऐसी भी है जिनमे खडी बोली के साथ फारसी, अरबी शब्दो का प्रयोग अधिकता से मिलता है। इससे पाया जाता है कि इन्हों ने फारसी भी पढी थी । इन्होने ऐसी रचना भी की है जिस मे प्राकृत के शब्द अधिकता से आये है । इन तीनो के उदाहरण क्रमश नीचे दिये जाते है —

१—ऐसिय कुञ्ज बनै छवि पुंज रहैं
अलि गुंजत यों सुख लीजै ।
नैन विसाल हिये बनमाल बिलोकत
रूप सुधा भरि पीजै ।
जामिनि जाम की कौन कहै जुग
जात न जानिये ज्यों छिन छीजै ।
आनँद यों उमग्यो ही रहै पिय
मोहन को मुख देखिबो कीजै ।

२—हूं मैं मुशताक़ तेरी सूरत का नूर देखि
दिल भरि पूरि रहै कहने जवाब से ।
मेहर का तालिब फ़क़ीर है मेहरबान
चातक ज्यों जीवता है स्वातिवारे आब से ।
तू तो है अयानी यह खूबी का खजाना तिसे
खोलि क्यों न दीजै सेर कीजिये सवाब से ।

दे्र की न ताब जान होत है कबाब
बोल हयाती का आब बोलो मुख महताब से।

३—दुज्जन मद मद्दन समत्थ जिमि पत्थ दुहूँनि कर।
चढ़त समर डरि अमर कंप थर हरि लग्गय धर।
अमित दान दै जस बितान मंडिय महि मंडल।
चंड भानु सम नहिं प्रभानु खंडिय आखंडल।

कुलपति मिश्र अपने समय के प्रसिद्ध कवियों मे थे उनकी गणना आचार्य्यों मे होती है।

(५) जोधपुरके महाराज जसवन्तसिंह जिस प्रकार एक वीर हृदय भूपाल थे उसी प्रकार कविता के भी प्रेमी थे। औरङ्गजेब के इतिहास से इनका जीवन सम्बन्धित है। इन्हो ने अनेक संकट के अवसरो पर उसकी सहायता की थी, किन्तु निर्भीक बडे थे। इसलिये इन्हे काबुल भेज कर औरङ्गजेबने मरवा डाला था। इनको वेदांत से बडा प्रेम था। इसलिये 'अपरोक्ष सिद्धान्त', 'अनुभव प्रकास', 'आनन्द-विलास', 'सिद्धान्तसार' इत्यादि ग्रन्थ इन्होने इसी विषय के लिखे। कुछ लोगो की सम्मति है कि इन्होने पारंगत विद्वानो द्वारा इन ग्रन्थों की रचना अपने नाम से कराई। परन्तु यह बात सर्व-सम्मत नहीं। मेरा विचार है, इन्हों ने ऐसे समय मे जब शृंगार रस का स्रोत बह रहा था, वेदान्त सम्बन्धी ग्रंथ रच कर हिन्दी-साहित्य भाण्डार को उपकृत किया था। 'भाषा भूषण' इनका अलंकार-सम्बन्धी ग्रंथ है। इस रचना मे यह विशेपता है कि दोहे के एक चरण मे लक्षण और दूसरे मे उदाहरण है, यह संस्कृत के चन्द्रालोक ग्रंथ का अनुकरण है, मेरा विचार है कि इस ग्रन्थ के आधार से ही इन्हो ने अपनी पुस्तक बनाई है।

कविता की भाषा व्रजभाषा है ओर उसमे मौलिकता का सा आनन्द है। हा, संस्कृत अलंकारों के नामो का बीच बीच में व्यवहार होने से प्राजलता मे कुछ अन्तर अवश्य पड गया है। कुछ स्फुट दोहे भी है,

उनमे अधिक सरसता पायी जाती है । दोनो के उदाहरण नीचे लिखे जाते है ।

मुख ससि वा ससि सों अधिक उदित जोति दिन राति।
सागर तें उपजी न यह कमला अपर सोहाति ।
नैन कमल ये ऐन हैं और कमल केहि काम ।
गमन करत नीकी लगै कनक लता यह बाम ।
अलंकार अत्युक्ति यह बरनत अति सै रूप ।
जाचक तेरे दान ते भये कल्प तरु भूप ।
पर जस्ता गुन और को और विषे आरोप ।
होय सुधाधर नाहि यह बदन सुधाधर ओप ।

महाराज जसवन्त सिह ऐसे पहले हिन्दी साहित्यक है, जिन्होंने हिन्दी भाषा को एक नहीं कई सुन्दर पद्य ग्रन्थ राज्यासन पर विराजमान हो कर भी प्रदान किये । यह इस बात का प्रमाण है कि उन दिनो ब्रजभाषा किस प्रकार समादृत हो कर विस्तार-लाभ कर रही थी ।

(६) गोपाउचन्द्र मिश्र छत्तीसगढ के रहनेवाले थे। इनके पुत्र का नाम माखनचन्द्र था । इन्होंने पाच ग्रन्थों की रचना की थो, जिनमे से जैमिनी अश्वमेध', 'भक्ति-चितामणि' और छन्दविलास' अधिक प्रसिद्ध है । कहा जाता है कि एक हैहयवंशी राजा के ये मन्त्री थे और उनके यहाँ इनका बड़ा सम्मान था । छन्द-विलास' नामक ग्रन्थ वे अधूरा छोड गये थे । जिसे उनके पुत्र माखनचन्द्रने उनकी आज्ञासे पूरा किया था । ये सरस हृदय कवि थे और भावमयी रचना करनेमे समर्थ थे । इनके कुछ पद्य देखिये --

१—सोई नैन नैन जो बिलोके हरि मूरति को।
सोई बैन बैन जे सुजस हरि गाइये ।
सोई कान कान जाते सुनिये गुनानुवाद
सोई नेह नेह हरि जू सों नेह लाइये ।

सोई देह देह जामैं पुलकित रोम होत,
सोई पाँव पाँव जाते तीरथनि जाइये ।
सोई नेम नेम जे चरन हरि प्रीति बाढ़ै
सोई भाव भाव जो गुपाल मन भाइये ।

२—दान सुधा जल सों जिन सींचि
सतो गुन बीच बिचार जमायो ।
बाढ़ि गयो नभ मण्डल लौं महि
मण्डल घेरि दसो दिसि छायो ।
फूल घने परमारथ फूलनि
पुन्य बड़े फल ते सरसायो ।
कीरति बृच्छ बिसाल गुपाल
सु कोबिद बृन्द विहंग बसायो ।

इनकी कविता की भाषा साहित्यिक व्रजभाषा है और उसमे मधुरता के साथ प्राजलता भी है ।

(७) सुखदेवमिश्र को गणना हिन्दी के आचार्यों मे है । उन्होने रीति ग्रन्थो की रचना बडे पाडित्य के साथ की है। वे सस्कृत और भाषा दोनो के बडे विद्वान् थे । उनके 'वृत्तविचार , रसार्णव', 'शृंगारलता' और 'नखशिख' आदि बडे सुन्दर ग्रन्थ है । उनका अध्यात्म-प्रकाश प्रसिद्ध ग्रन्थ है। अनेक राज्य दरबारों मे उनका सम्मान था। उन्हे कविराज को पदवी मिली थी। उनकी रचनाये प्रौढ, काव्य-गुणो से अलंकृत, और साहित्यिक व्रजभाषा के आदर्श-स्वरूप है। कुछ पद्य देखिये।

जोहै जहाँ मगु नन्द कुमार तहाँ
चली चन्दमुखी सुकुमार है ।
मोतिन ही को कियो गहनों सब
फूल रही जनु कुन्द की डार है ।

भीतर ही जु लखी सु लखी अब
बाहिर जाहिर होति न दार है।
जोन्ह सी जोन्है गई मिलि यों
मिलि जात ज्यों दूध में दूध की धार है।
मंदर महिद गन्ध मादन हिमालय में
जिन्हें चल जानिये अचल अनुमाने ते।
भारेक जरारे तैसे दीरघ दतारे मेघ
मण्डल विहंडैं जे वै सुंडा दंड ताने ते।
कीरति विसाल क्षिति पाल श्री अनूप तेरे
दान जो अमान कापै बनत बखाने ते।
इतै कवि मुख जस आखर खुलत
उतै पाखर समेत पील खुलै पीलखाने ते।

इनका अध्यात्म-प्रकाश वेदांतका बडा सुन्दर ग्रंथ है। उसको रचना की बडी प्रशंसा है, उसमे विषय-सम्बन्धी ऐसी महत्ताये है कि उनके आधार से लोग इनको महात्मा कहने लगे थे। इसमे संदेह नहीं कि इनकी रचनाये व्रज-भाषा-साहित्य मे अमूल्य है। उसी के बल से इन्होंने औरंगजेब के मंत्री फाजिल अली से बडा सत्कार प्राप्त किया था, जो इस बातका सूचक है कि अकबर के समय से जो व्रजभाषा को धाक उनके बंशवालो पर जमी वह लगातार बहादुर शाह तक अचल रही।

(८) कालिदास त्रिवेदी सहृदयता मे यथा नाम' तथा गुण अर्थात दूसरे कालिदास थे। 'कालिदास हजारा' इनका बडा सुंदर संग्रह कहा जाता है इसमे २०० से अधिक कवियो की रचनाये संगृहीत है। इसके आधार से शिवसिह सरोजकार ने अनेक प्राचीन कवियो की जीवनी का उद्धार किया था। इनका नायिका-भेद का वधू-विनोद' नामक ग्रंथ भी प्रसिद्ध ग्रंथ है। इन्होने 'जंजीराबंद' नाम का एक ग्रंथ भी बनाया था। उसमे ३२ कबित्त

है, उसे सभी कवि-जीवनी लेखकों ने बडा अद्भुत बतलाया है। वास्तव मे कालिदास बडे सहृदय कवि थे। उनकी रचनाये एक सुविकसित सुमन के समान मनोहर और सुधानिधि की कला के समान कमनीय है। उनकी रचना की रसीली भाषा इस बात का सनद ब्रजभाषा को देती है कि वह सरस से सरस है—

चूमौं करकंज मंजु अमल अनूप तेरो,
रूप के निधान कान्ह मोतन निहारि दै।
कालिदास कहै मेरी ओर हरे हेरि हरि,
माथे धरि मुकुट लकुट कर डारि दै।
कुंवर कन्हैया मुखचंद की जुन्हैया चारु,
लोचन चकोरन की प्यासन निवारि दै।
मेरे कर मेंहदी लगी है नंद लाल प्यारे,
लट उरझी है नेक बेसर सुधारि दै।
हाथ हंसि दीन्हों भीति अंतर परसि प्यारी,
देखत ही छकी मति कान्हर प्रवीन की।
निकस्यो झरोखे मांझ बिगस्यो कमल सम,
ललित अंगूठी तामें चमक चुनीन की।
कालिदास तैसी लाली मेँहदी के बुंदन की,
चारु नखचंदन की लाल अँगुरीन की।
कैसी छबि छाजत है छाप के छलान की
सुकंकन चुरीन की, जड़ाऊ पहुंचीन की।

(९) आलम रसखानके समानही बडेही सरसहृदय कवि थे। कहाजाता है कि ये ब्राह्मण कुल के बालक थे। परंतु प्रेम के फंदे मे पड कर अपने धर्म को तिलाजली देदी थी। शेख नामक एक मुसलमान स्त्री सरसहृदया कवि थी। उसके रस से ये ऐसे सिक्त हुये कि अपने धर्म को भी उसमे

डुबो दिया। अच्छा होता यदि जैसे मनमोहन की ओर रसखान खिँच गये उसी प्रकार वे शेख को भी उनकी ओर खींच लाते। परंतु उसने ऐसी मोहनी डाली कि वे ही उसकी ओर खिच गये। जो कुछ हो लेकिन स्त्री-पुरुष दोनो की ब्रजभाषा की रचना ऐसी मधुर और सरस है जो मधु-वर्षण करती ही रहती है। ब्रजभाषा-देवी के चरणो पर इस युगल जोडी को कान्त कुसुमावलि अर्पण करते देख कर हम उस वेदना को भूल जाते है जो उनके प्रेमोन्माद से किसी स्वधर्मानुरागी जन को हो सकती है। इन दोनों मे वृन्दावन विहारिणी युगल मूर्ति के गुणगान की प्रवृत्ति देखी जाती है। उससे भी मर्माहत चित्त को बहुत कुछ शान्ति मिलती है, उनका जो धर्म हो, परतु युगलमूर्त्ति उनके हृदय मे सदा विराजती दृष्टिगत होती है। औरंगजेब के पुत्र मुअज्जम की दृष्टि मे इन दोनो का अपने गुणो के कारण बडा आदर था। इनको कुछ मनोहारिणी रचनाये नीचे लिखी जाती है —

१—जा थल कीन्हें विहार अनेकन
ता थल कांकरी बैठि चुन्यो करैं।
जा रसना सों करी बहु बातन
ता रसना सों चरित्र गुन्यो करैं।
आलम जौन से कुंजन में करी
केलि तहाँ अब सीस धुन्यो करैं।
नैनन में जो सदा रहते तिनकी
अब कान कहानी सुन्यो करैं।

२—चन्द को चकोर देखै निसि दिन को न लेखै,
चंद बिन दिन छबि लागत अँध्यारी है।
आलम कहत आली अलि फूल हेत चलै,
काँटे सी कटीली बेलि ऐसो प्रीति प्यारी है।

कारो कान्ह कहति गँवारी ऐसी लागति है,
मोहि वाकी स्यामताई लागत उँज्यारी है।
मन की अटक तहाँ रूप को बिचार कहां
रीझिबे को पैंडो तहाँ बूझ कछु न्यारी है।

३—प्रेम रंग पगे जगमगे जगे जामिनि के
जोबन की जोति जगि जोर उमगत है।
मदन के माते मतवारे ऐसे घूमत हैं
झूमत हैं झुकि झुकि झँपि उघरत हैं।
आलम सों नवल निकाई इन नैननि को
पाँखुरी पदुम पै भँवर थिरकत हैं।
चाहत हैं उड़िबे को देखत मयंक मुख
जानति हैं रैनि ताते ताहि मैं रहत हैं।

४—कैधों मोर सोर तजि गयेरी अनत भाजि
कैधों उत दादुर न बोलत हैं ए दई।
कैधों पिक चातक बधिक काहू मारि डारे
कधों बकपाँति उत अंत गति ह्वै गई।
आलम कहत आली अजहूं न आये स्याम
कैधों उतरीति बिपरीति बिधि ने ठई।
मदन महीप की दुहाई फिरिबे ते रही
जूझि गये मेघ कैधों बीजुरी सती भई।

५—पैंडो समसूधो बैंडो कठिन किवार द्वार
द्वारपाल नहीं तहाँ सबल भगति है।

शेख भनि तहां मेरे त्रिभुवन राम हैं जु
दीनबंधु स्वामी सुरपतिन को पति है ।
वैरी को न बैर बरिआई को न परवेस
हीने को हटक नाहीं छीने को सकति है।
हाथी की हँकार पल पाछे पहुँचन पावै
चींटी की चिघार पहिले ही पहुंचति है ।

कहा जाता है कि आलमने माधवानल कामकंदला नामक एक प्रेम कहानी भो लिखो है । आशा है, कि इनका यह ग्रंथ भी सरसतापूर्ण होगा और इसमे भी इनके प्रेम-मय हृदय की कमनीय कलाये विद्यमान होगी। किन्तु यह ग्रंथ देखने मे नहीं आया। इसकी चर्चा ही मात्र मिलती है। अच्छा होता यदि इस पुस्तक का कुछ अंश मै आपलोगो की सेवा मे उपस्थित कर सकता। परन्तु यह सौभाग्य मुझको प्राप्त नहीं हुआ। आलम-दम्पति की रचनाओ मे हृदय का वेह सोन्दर्य्य दृष्टिगत होता है जिसको ओर चित्त स्वभावतया खिच जाता है। इनके ऐसे भावुक कवि ही किसी भाषा को अलकृत करते है। जेसी ही इनकी भावमयी सुन्दर रचनाये है वैसी ही सरस और मुग्धकरी इनकी व्रजभाषा है। इनके अधिकाश पद्य सहृदयता की मूर्ति है, इन्हो ने इनके द्वारा हिन्दी-साहित्य-भाडार का बडे सुन्दर रत्न प्रदान किये है ।

इन्ही सहृदय दम्पति के साथ मे ताज की चर्चा भी कर देना चाहता हू । ये एक मुसलमान स्त्री थी । इनके वंश इत्यादि का कुछ पता नहीं । परंतु इनकी स्फुट रचनाये यत्र तत्र पाई जाती है। मुसलमान स्त्री होने पर भो इनके हृदय मे भगवान कृष्णचंद्र का प्रेम लबालब भरा था । इनकी रचनाओं मे कृष्ण-प्रेम की ऐसी सुंदर धाराये बहती है जो हृदय को मुग्ध कर देती है । इनके पद्यो का एक एक पद कुछ ऐसी मनमोहकता रखता है जो चित्त को बलात् अपनी और आकर्षित कर लेता है । इनकी रचना मे पंजाबी शब्द अधिक मिलते है । इससे ज्ञात होता है कि ये पंजाब प्रान्त

को रहनेवाली थी। इनकी पद्य रचना मे खडी बोली का पुट भी पाया जाता है। किन्तु इन्हों ने व्रजभाषा मे ही कविता करने की चेष्टा की है। इनके कुछ पद्य नीचे लिखे जाते है। देखिये इनकी लगन में कितनी अधिक बिचारों की दृढता है।

सुनौ दिल जानी मेड़े दिल की कहानी
तुम दस्त ही बिकानी बदनामी भी सहूंगी मैं।
देव पूजा ठानी मैं निवाज हूं भुलानी
तजे कलमा कुरान साड़े गुनन गहूंगी मैं।
साँवला सलोना सिर ताज सिर कुल्ले दिये
तेरे नेह दाग मैं निदाग हो दहूंगी मैं।
नन्द के कुमार कुरबान ताँड़ी सूरत पै
ताँड़ नाल प्यारे हिंदुआनी हो रहूंगी मैं।

२—छैल जो छबीला सब रङ्ग में रङ्गीला
बड़ा चित्त का अड़ीला कहूं देवतों से न्यारा है।
माल गले मों है नाक मोती सेत सोहै कान
मोहै मनि कुंडल मुकुट सीस धारा है।
दुष्ट जन मारे सन्त जन रखवारे ताहि
चित हित वारे प्रेम-प्रीति कर वारा है।
नन्द जू का प्यारा जिन कंस को पछारा
वह बृन्दावन वारा कृष्ण साहब हमारा है।

(१०) सिताराके राजा शंभुनाथ सुलंको भी रीति ग्रन्थकारो मे से है। उनके एक नायिका-भेद के ग्रन्थ की बडी प्रशंसा है, परन्तु वह अब मिलता नहीं। उनका एक नख-शिख का ग्रन्थ भी बडा चमत्कारपूर्ण है वे बडे सहृदय और कवियो के कल्पतरु थे। कविता मे कभी 'नृपशंभु' और

कभी 'शंभुकवि अथवा 'नाथ कवि अपनेको लिखते थे। बडी सरस ब्रजभाषामे उन्होने रचना की है। उनकी उत्प्रेक्षाये बडी मनोहर है। उनके जितने पद्य है उनमे से अधिकाश सरस है। उनकी भाषा को निस्संकोच टकसाली कह सकते है। ब्रजभाषा को अपनी रचना द्वारा उन्होने भी गौरवित बनाया है। उनके दो पद्य नीचे लिखे जाते है —

१—फाग रच्यो नन्द नन्द प्रवीन बजैं
बहु बीन मृदंग रबावैं।
खेलतीं वै सुकुमारि तिया जिन
भूषण हूं की सही नहीं दावैं।
सेत अबीर के घूंघरु मैं इमि
बालन की बिकसी मुख आवैं।
चाँदनी में चहुँ ओर मनों नृप
शंभु बिराज रही महतावैं।

२—कौहर कौल जपा दल विद्रुम का
इतनी जु वँधूक मैं कोति है।
रोचन रोरी रची मेंहदी नृपशंभु
कहै मुकुता सम पोति है।
पांय धरै ढरै ईंगुरई तिन मैं
खरी पायल की घनी ज्योति है।
हाथ है तीनक चार हूं ओर लौं
चाँदनी चूनरी के रँग होति है।

इस शतक मे एक मुसलमान सहृदय कवि भी रीति ग्रंथकार हो गये है। उनका नाम मुबारक है। अवध के बाराबंकी जिले मे बिलग्राम नामक एक प्रसिद्ध कस्बा है, जिसको विद्वानों और सहृदयो के जन्मभूमि होने

का गौरव प्राप्त है यहीं अरबी, फारसी और संस्कृत के विद्वान मुबारक अली का जन्म हुआ था। इन्होंने 'अलक शतक' और 'तिल शतक' नामक दो ग्रन्थ सरस दोहों में लिखे है। इनकी स्फुट कवितायें भी बहुत सी मिलती है। इनकी भाषा व्रजभाषा है और उसमें प्रांजलता इतनी है कि मुक्त कंठ से उसकी प्रशंसा की जा सकती है इनकी रचना में प्रवाह है और इनकी कथनशैली भी मोहक है। मधुरता इनके शब्दों में भरी मिलती है। मुसलमान होने पर भी इन्होंने हिन्दी भाषा पर अपना जैसा अधिकार प्रकट किया है वास्तवमें वह चकितकर है। इनकी कुछ रचनायें देखिये —

२—कान्ह की बाँकी चितौनि चुभी
झुकि काल्हि ह्वै झांकी है ग्वालि गवाछनि
देखी है नोखी सी चोखी सी कोरनि
ओछे फिरै उभरै चित जा छनि।
मार्यो सँभारि हिये में मुबारक
ए सहजै कजरारे मृगाछनि।
सींक लै काजर दे री गंवारिनि
आँगुरी तेरी कटैगी कटाछनि।

२—कनक बरन बाल नगन लसत भाल
मोतिन के माल उर सोहै भलीभांति है
चंदन चढ़ाई चारु चंदमुखी मोहिनी सी
प्रात ही अन्हाइ पगु धारे मुसकाति है।
चूनरी विचित्र स्याम सजि कै मुबारक जू
ढाँकि नख सिख ते निपट सकुचाति है।
चंद मैं लपेटि कै समेटि कै नखत मानो
दिन को प्रनाम किये रात चली जाति है।

(३) जगी मुबारक तिय बदन अलक ओप अति होइ ।
मनो चंद की गोद में रही निसा सी सोइ ।
(४) चिबुक कूप मैं मन पर्‍यो छबि जल तृषा बिचारि ।
गहत मुबारक ताहि तिय अलक डोर सी डारि ।
(५) चिबुक कूप रसरी अलक तिल सुचरस दृग बैल ।
बारी बैस सिँगार की सींचत मनमथ छैल ।
(६) गोरी के मुख एक तिल सो मोहि खरो सुहाय ।
मानहुं पंकज की कली भौंर बिलंब्यो आय ।

कभी कभी वे अपनी रचना में दुरूह फारसी शब्दों का प्रयोग भी कर देते है, परन्तु उसको ब्रजभाषा के ढंग मे बडी ही सुन्दरता से ढाल लेते है। नीचे का दोहा देखिये —

अलक मुबारक तिय बदन लटक परी यों साफ़ ।
खुशनवीस मुनंशी मदन लिख्यो काँच पर क़ाफ़ ।

(४)

इस शताब्दी मे प्रसिद्ध प्रबन्धकार भी हुये। इनमे गुरु गोबिंद सिंह सब से प्रधान है। उनके अतिरिक्त उसमान, सबलसिंह चौहान, लाल और कवि हृदयराम का नाम लिया जा सकता है। प्रेम-मार्गी कवियों के वर्णन में उसमान के विषय मे मै पहले कुछ लिख चुका हूं। इस शताब्दी मे इनकी ही रचना ऐसी है जो अवधी भाषा मे की गयी है। इसके द्वारा उन्होने उस परम्परा की रक्षा की है जिसको कुतबन अथवा मलिक मुहम्मद जायसी ने चलाया था। इनको छोड कर और सब प्रबन्धकार ब्रजभाषा के सुकवि है। मै पहले सबलसिंह चौहान और लाल के विषय मे लिख कर उसके उपरात पंजाब निवासी गुरु गोबिन्दसिंह और कवि हृदयराम के विषय मे कुछ लिखूंगा —

सबलसिंह चौहान इटावा जिले के प्रतिष्ठित जमींदार थे। उन्होंने महाभारत के अठारहों पर्वों के कथा भाग की रचना दोहा-चौपाई मे की

है। 'रूप विलास पिगल', षट् ऋतु बरवै' और 'ऋतूपसहार' नामक ग्रन्थ भी उनके रचे बतलाये जाते है। उन्होंने महाभारत की रचना गोस्वामी जी के रामायण के आधार से की है। परन्तु उनकी भाषा साहित्यिक व्रजभाषा है। वे पछाँह के रहने वाले थे। इस लिये उनकी रचना मे खडी बोली और अवधी का पुट भी है। भाषा न तो जेसी चाहिये वैसी सरस है और न प्राजल। फिर भी महाभारत की कथा का जनता को परिचय कराने के लिये उनका उद्योग प्रशसनोय है। उनके इस ग्रन्थ का कुछ प्रचार भी हुआ। परन्तु वह सर्व साधारण को अपनी ओर अधिक आकर्षित न कर सका। उनकी रचना का नमूना लीजिये —

लै के शूल कियो परिहारा।
वीर अनेक खेत महं मारा।
जूझी अनी भभरि कै भागे।
हँसि के द्रोण कहन अस लागे।
धन्य धन्य अभिमनु गुन आगर।
सब छत्रिन महं बड़ो उजागर।
धन्य सहोद्रा जग में जाई।
ऐसे वीर जठर जनमाई।
धन्य धन्य जग में पितु पारथ।
अभिमनु धन्य धन्य पुरुषारथ।
एक बार लाखन दल मारे।
अरु अनेक राजा संहारे।
धनु काटे शंका नहि मन में।
रुधिर प्रवाह चलत सब तन में।
एहि अंतर बोले कुरु राजा।
धनुष नाहिं भाजत केहि काजा।

एक बीर को सबै डरत है ।
घेरि क्यों न रस धाय धरत हैं ।
बालक देखु करी यह करणी ।
सेना जूझि परी सब धरणी ।
दुर्योधन या विधि कह्यो,
कर्ण द्रोण सों बैन ।
बालक सब सेना बधी,
तुम सब देखत नैन ।

उनकी रचना मे ब्रजभाषा के नियम के बिरुद्ध शकार, णकार और संयुक्त वर्णों का प्रयोग भी देखा जाता है। इसका कारण यह मालूम होता है कि बीर रस के लिये शायद परुषावृत्ति का मार्ग ग्रहण करना ही उन्होने युक्तिसंगत समझा।

पुरोहित गोरेलाल महाराज छत्रसाल के दरबार के मान्य कवि थे। वे एक युद्ध मे महाराज छत्रसाल के साथ गये और वहां बीरता के साथ लड कर मरे। बीर रस की ओजमयी रचना करने मे भूषणके उपरान्त इन्हीं का नाम लिया जाता है। 'छत्र प्रकाश' इनका प्रसिद्ध ग्रन्थ है। जिसमे इन्होंने महाराज छत्रसाल की बीरगाथाये बडी निपुणता से लिखी है। यह दोहा चौपाई मे लिखा गया है और प्रबन्ध ग्रन्थ है। इनकी भाषा साहित्यिक ब्रजभाषा है। किन्तु उसमे बुन्देलखंडो शब्दो का प्रयोग आवश्यकता से कुछ अधिक है। फिर भी इनकी रचना ओजमयी और प्राजल है और वे सब गुण उसमे मौजूद है जिन्हे वीर-रस की कविता मे होना चाहिये। 'छत्रप्रकाश' विशाल ग्रन्थ है और इनका कीर्तिस्तम्भ है। इसके अतिरिक्त 'विष्णु विलास' और 'राजविनोद' नामक दो ग्रन्थ इन्हो ने और रचे। ये दोनों ग्रन्थ भी अच्छे है, परन्तु इनमे वह विशेषता नहीं पायी जाती जो 'छत्रप्रकाश' मे है। गोरेलाल जी का उपनाम 'लाल' है। इनकी कुछ रचनाये देखिये:—

दान दया घमसान में जाके हिये उछाह।
सोई बीर बखानिये ज्यों छत्ता छितिनाह।
उमड़ि चल्यो दाराके सौंहैं, चढ़ी उदंड युद्ध-रस भौंहैं।
तबदारादिल दहसति बाढ़ी, चूमन लगे सबन की दाढ़ी।
को भुजदंड समर महिं ठोंकै, उमड़े प्रलय-सिंधु को रोकै।
छत्रसाल हाड़ा तहँ आयो, अरुन रंग आननछबिछायो
भयो हरौल बजाय नगारो, सारधार को पहिरनहारो
दौरि देस मुगलनके मारो, दपटि दिली के दलसंहारो।
ऐंड़ एक सिवराज निबाही, करै आपने चित की चाही।
आठ पात साही झक झोरै, सूबन पकरिदंड लै छोरै।
काटि कटक किरवान बल बाँटि जंबुकनि देहु।
ठाटि जुद्ध एहिरीति सों, बाँटि धरनि धरि लेहु।

मैं यह बराबर प्रकट करता आया हू कि सत्रहवीं शताब्दी मे उत्तरी भारत में ब्रजभाषा का प्रसार अधिक हो गया था। इस विस्तार के फलसे ही पंजाब प्रान्त मे दो प्रतिष्ठित प्रबंधकार दृष्टिगत होते है। उनमे से एक हृदय-राम है और दूसरे गुरु गोविन्द सिह। कवि हृदयराम जाति के खत्री थे। उन्होंने संस्कृत हनुमन्नाटक के आधार से अपने ग्रंथ की रचना की और उसका नाम भी हनुमन्नाटक ही रक्खा। इस ग्रंथ की रचना इतनी सरस है और इस सहृदयता के साथ वह लिखा गया है कि गुरु गोबिन्द सिह इस ग्रंथ को सदा अपने साथ रखते और उसकी मधुर रचनाओ को पढ पढ मुग्ध हुआ करते थे। इस ग्रंथ की भाषा साहित्यिक ब्रजभाषा है। कहीं कहीं एक दो पंजाबी शब्द मिल जाते है। ग्रंथ की सरस और प्राजल रचना देख कर यह प्रतीत नहीं होता कि यह किसी पंजाबी का लिखा हुआ है। कविहृदयराम मे भाव चित्रण की सुंदर शक्ति है। उन्हों ने इस ग्रंथ को लिख कर यह बतलाया है कि उनमे प्रबंध काव्य लिखने की

कितनी योग्यता थी। रामायण की समस्त कथा इसमे वर्णित है किन्तु इस क्रम से कि उसमे कहीं अरोचकता नहीं आई। इसमे कवित्त और सवैये ही अधिक है। कोई कोई पद्य बडे ही मनोहर है। उनमे से दो नीचे लिखे जाते है —

१-ए बनबास चले दोउ सुंदर कौतुक को सियसंग जुटी है।
पाँवनपाव, न कोस चली अजहूं नहीं गाँव की सींवछुटी है।
हाथ धरे कटिपूछति रामहि नाथ कहौ कहाँ कंज कुटी है।
रोवत राघव जोवत सी मुख मानहुं मोतिन माल टुटी है।
२-एहो हनू कह श्रीरघुवीर कछू सुधि है सिय की छिति माँही।
है प्रभु, लंक कलंक बिना सुबसै बन रावन बाग की छाँहीं।
जीवत है कहिबेहि को नाथ! सु क्यों न मरी हमतें बिछुराहीं।
प्रान बसै पद पंकज में जम आवत है पर पावत नाहीं।

गुरु गोबिद सिह ब्रजभाषा के महाकवि थे। इनका बनाया हुवा दशम ग्रंथ बडा विशाल ग्रंथ है। समस्त ग्रंथ सरस ब्रजभाषा मे लिखा गया है। ये बडे बीर और सिक्ख धर्म के प्रवर्त्तक थे। गुरु नानक से ले कर गुरु अर्जुनदेव तक इनके सम्प्रदाय मे शान्ति रही, परन्तु जहागीर ने अनेक कष्ट दे कर गुरु अर्जुन देव को प्राण त्याग करने के लिये वाध्य किया तब सम्प्रदायवालों का रक्त खौल उठा और उन्हो ने मुसलमानों के सर्व-नाश का व्रत ग्रहण किया क्रमश वर्द्धमान हो कर गुरु गोविन्दसिह के समय मे यह भाव बहुत प्रवल हो गया था। और इसी कारण जब गुरु तेगबहादुर उनके पिता का औरङ्गजेब द्वारा संहार हुआ तो उन्हों ने बडी बीरता से मुसल्मानों से लोहा लेना प्रारंभ किया। गुरु अर्जुनदेव ने ही आदि ग्रन्थ साहब का संग्रह तैयार किया था। इस ग्रन्थ मे उनकी बहुत अधिक रचनाये है, जो अधिकतर ब्रजभाषा मे लिखो गई है। उनकी कुछ रचनाये मैं पहले लिख आया हूं। बिषय को स्पष्ट करने के लिये उनके कुछ पद्य यहाँ और लिखे जाते है.—

बाहरु धोइ अंतरु मन मैला दुइ ओर अपने खोये ।
इहाँ काम क्रोध मोह व्यापा आगे मुसि मुसि रोये ।
गोविद भजन की मति है होरा ।
बरमी मारी साँप न मरई नामु न सुनई डोरा ।
माया की कृति छोड़ि गंवाई भक्तीसार न जानै ।
वेद सास्त्र को तरकन लागा तत्त्व जोगु न पछानै ।
उघरि गया जैसा खोटा ढेवुआ नदरि सराफा आया ।
अंतर्यामी सब कछु जानै उस ते कहा छपाया ।
कूर कपट बंचन मुनियाँदा बिनसि गया ततकाले ।
सति सति सति नानक कह अपने हिरदै देखु समा ले ।
२-बंधन काटि बिसारे औगुन अपना बिरद समाऱ्या ।
होइ कृपाल मात पित न्याईं बारक ज्यों प्रति पाऱ्या ।
गुरु सिष राखे गुरु गोपाल ।
लीये काढ़ि महा भव जल ते अपनी नदर निहाल ।
जाके सिमरणि जम ते छुटिये हलति पलति सुख पाइये ।
सांसि गेरासि जपहु जप रसना नीति नीति गुण गाइये ।
भगती प्रेम परम पद पाया साधु संग दुख नाटे ।
छिजै न जाइ न किछु भव व्यापै हरि धनु निरमल गाँठे ।
अन्तकाल प्रभु भये सहाई इत उत राखन हारे ।
प्रान मीत हीत धन मेरे नानक सद बलिहारे ।

गुरु अर्जुनदेव सत्रहवीं शताब्दी के आदि मे थे । उनकी रचनाये उसी समय की है । मै यह कह सकता हू कि वह परमार्जित व्रजभाषा नहीं है, परन्तु यही भाषा गुरु गोबिन्दसिंह के समय में अपने मुख्य रूपमे दृष्टिगत होती है । गुरु गोविन्दसिह ने दशम ग्रन्थ मे विष्णु के चौबीस

और ब्रह्म। एवं शिव के सात सात अवतारो की कथा लिखी है उन्होंने दुर्गापाठ का तीन अनुवाद कर के उसका नाम 'चंडी चरित्र' रखा है। पहला अनुवाद सवैयो मे, दूसरा पौडियो मे, और तीसरा नाना छन्दों मे है। उन्होने इस ग्रन्थ मे ४०४ स्त्री-चरित्र भी लिखे है, और इस सूत्र से अनेक नीति और शिक्षा सम्बन्धी बाते कही है, उन्हो ने उसमे कुछ अपने जीवन-सम्बन्धी बाते भी लिखी है और कुछ परमात्मा की स्तुति और ज्ञान सम्बन्धी विषयो का भी निरूपण किया है। फारसी भाषा मे उन्हो ने जफरनामा' नामक एक राजनीति-सम्बन्धी ग्रन्थ लिख कर औरङ्गजेब के पास भेजा था। वह ग्रन्थ भी इसमे सम्मिलित है। अवतारो के वर्णन के आधार से उन्हो ने इसग्रन्थमे पुराणोकी धर्म नीति, समाज नीति' एवं राजनीति-सम्बन्धी समस्त बाते एकत्रित कर दी है। यह बडा उपयोगी ग्रंथ है सिक्ख सम्प्रदाय के लोग इसको बड़े आदर की दृष्टि से देखते है। ब्रजभाषा-साहित्य का इतना बडा ग्रन्थ सूर सागर को छोड कर अन्य नहीं है। इस ग्रन्थ मे जितनी रचनायें गुरु गोविन्दसिह की निज की है उनके सामने श्री मुख वाक पातसाही दस लिखा है। अन्य रचनाओं के विषय मे यह कहा जाता है कि वे गुरु गोवन्दसिहजी के द्वारा रचित नही है वे श्याम और राम नामक दो अन्य कवियो की कृति है जो उनके आश्रित थे। उक्त ग्रन्थ की कुछ रचनाये नीचे उपस्थित की जाती है। उनको पढ कर आपलोग समझ सकगे कि वे कैसी है और उनके भाव और भाषा मे कितना सौन्दर्य्य एवं लालित्य है। पहले गुरु गोविन्दसिंह की निज रचनाओ को ही देखिये —

१—चक्र चिन्ह अरु बरन जात
अरु पाँत नहिन जेहि।
रूप रङ्ग अरु रेख भेख
कोउ कहि न सकत केहि।
अचल मूरति अनभव
प्रकास अमितोज कहिज्जै।

कोटि इन्द्र इन्द्राणि साहि
साहाणि गणिज्जै ।
त्रिभुवण महीप सुर नर असुर
नेति नेति वर्णत कहत ।
तव सरब नाम कत्थय कवन
कर्म नाम वरणत सुमत ।

२—प्रभु जू तो कहँ लाज हमारी ।
नील कण्ठ नर हरि नारायन
नील बसन बनवारी ।
परम पुरुष परमेसर स्वामी
पावन पवन अहारी ।
माधव महा ज्योति मधु
मर्दन मान मुकुंद मुरारी ।
निर्विकार निर्जुर निद्रा बिन
निर्बिष नरक निवारी ।
किरपासिंधु काल त्रय दरसी
कुकृत प्रनासन कारी ।
धनुर्पानि धृत मान धराधर
अन विकार असि धारी ।
हौं मति मन्द चरनसरनागत
कर गहि लेहु उबारी ।

३—जीति फिरे सब देस दिसान को
बाजत ढोल मृदंग नगारे ।

गूंजत गूढ़ गजान के सुंदर
हींसत हीं हय राज हजारे ।
भूत भविक्ख भवान के भूपति
कौन गनै नहीं जात विचारे ।
श्री पति श्री भगवान भजे बिन
अन्त को अन्तक धाम सिधारे ।
४—दीनन की प्रति पालि करै नित
सन्त उबार गनीमन गारै ।
पच्छ पसू नग नाग नराधिप
सर्व समै सब को प्रति पारै ।
पोखत है जल मैं थल मैं पल मैं
कलि के नहीं कर्म विचारै ।
दीन दयाल दयानिधि दोखन
देखत है पर देत न हारै ।
५—मेरु करो तृण ते मोहि जाहि
गरीब नेवाज न दूसरो तोसों ।
भूल छमो हमरी प्रभु आप न
भूलन हार कहूं कोउ मोसों ।
सेव करी तुमरी तिन के सभ ही
गृह देखिये द्रव्य भरो सो ।
या कलि में सब काल कृपानिधि
भारी भुजान को भारो भरोसो ।

अब दशम ग्रन्थ साहब की कुछ अन्य रचनाये भी देखिये —

१—रारि पुरंदर कोपि कियो इत
जुद्ध को दैंत जुरे उत कैसे ।
स्याम घटा घुमरो घन घोर कै
घेरि लियो हरि को रवि तैसे ।
सक्र कमान के बान लगे सर
फोंक लसै अरि के उर ऐसे ।
मानो पहार करार में चोंच
पसार रहे सिसु सारक जैसे ।
मोन मुरझाने कंज खंजन खिसाने
अलि फिरत दिवाने बन डोलैं जित तित ही
कीर औ कपोत बिंब कोकिला कलापी
बन टूटे फूटे फिरैं मन चैन हूं न कितहीं ।
दारिम दरकि गयो पेखि दसनन पाँति
रूप ही की काँति जग फैलि रही सित ही ।
ऐसी गुन सागर उजागर सुनागर है लीनो
मन मेरो हरि नैन कोर चित ही ।
३—चतुरानन मो बतिया सुन लै
सुनि के दोउ श्रौननि में धरिये ।
उपमा को जबै उमगै मन तो
उपमा भगवानहि की करिये ।
परिये नहीं आन के पाँयन
पै हरि के गुरु के द्विज के परिये ।
जेहि को जुग चारि मैं नाम जप्यो
तेहि सों लरिये, मरिये, तरिये ।

४—जेहि मृग राखे नैन बनाय।
अंजन रेख स्याम पै अटकत सुंदर फांद चढ़ाय।
मृग मद देत जिनैं नरनारिन रहत सदा अरुझाय।
तिनके ऊपर अपनी रुचि सों रीझि स्याम बलि जाय।

८—सेत धरे सारी वृष भानु की कुमारी
जस ही की मनो बारी ऐसो रची है न को दई।
रंभा उरबसी और सची सी मँदोदरी
पै ऐसी प्रभा काकी जग बीच ना कछू भई।
मोतिन के हार गरे डार रुचि सों सिगार
स्याम जू पै चली कवि स्याम रस के लई।
सेत साज साज चली साँवरे के प्रीति काज
चाँदनी में राधा मानो चाँदनी सो ह्वै गई।

गुरु गोविन्दसिह की भाषा साहित्यिक व्रजभाषा है, इसमे कोई सन्देह नहीं। उसमे व्रजभाषा-सम्बन्धी नियमो का अधिकतर पालन हुआ है। किसी किसी स्थान पर णकार का प्रयाग नकार के स्थान पर पाया जाता है। किन्तु यह पंजाब के बोलचाल का प्रभाव है। कोइ कोई शब्द भी पंजाबी ढंग पर व्यवहृत हुये है। इसका कारण भी प्रान्तिकता ही है। परन्तु इस प्रकार के शब्द इतने थोडे है कि उनसे व्रजभाषा की विशेषता नष्ट नही हुई है। कुल दशमग्रंथ साहब ऐसी ही भाषा में लिखा गया है, जिससे यह ज्ञात होता है कि उस समय व्रजभाषा किस प्रकार सर्वत्र समादृत थी। इस ग्रंथ मे कहीं कही पंजाबी भाषा को भी कुछ रचनाये मिल जाती है, किन्तु उनकी सख्या बहुत थोडी है। पौडियों मे लिखा गया चंडीचरित्र ऐसा ही है। जफरनामा फारसी भाषा मे है, यह मैं पहले बतला चुका हू। अपने ग्रंथ मे गुरुगोविन्द सिह ने इतने अधिक छदो का व्यवहार किया है जितने छंदो का व्यवहार आचार्य

केशवदास को छोड कर हिन्दी का अन्य कोई कवि नही कर सका। इस ग्रंथ मे युद्ध का वर्णन बडा ही ओजमय है। ऐसे ऐसे छंद युद्ध के वर्णनों मे आये है जो अपने शब्दो को युद्धानुकूल बना लेते है। कही कही इस प्रकार के शब्द लिखे गये है जो युद्ध-कालिक दृश्य को सामने ला देते है और जिनके पढने से युद्ध की मार काट शस्त्रो का झणत्कार, वाणो की सनसनाहट और अस्त्रो के परस्पर टकराने की ध्वनि श्रवणगत होने लगती है। जैसे,

तागिड़दं तीरं छागिड़दं छुट्टे ।
बागिड़दं बोरं लागिड़दं लुट्टे, इत्यादि

मेरा विचार है कि यह विशाल ग्रन्थ हिन्दीसाहित्य का गौरव है और इसकी रचना कर के गुरु गोविन्द सिह ने उसके भाण्डार को एक ऐसा उज्ज्वल रत्न प्रदान किया है जिसकी चमक दमक विचित्र और अद्भुत है।

आदि ग्रन्थ साहब मे शान्त रस का प्रवाह बहता है। उसमे त्याग और विराग का गीत गाया गया है उससे सम्बन्ध रखने वाली दया, उदारता, शान्ति एवं सरलता आदि गुणो की ही प्रशंसा को गयी है। यह शिक्षा दी गयी है कि मानसिक विकारो को दूर करो और दुर्दान्त इन्द्रियो का दमन। परन्तु उसकी दृष्टि संसार-शरीर के उन रोगो के शमन की ओर उतनी नही गयी जो उस पवित्र ग्रन्थ के सदाशय-मार्ग के कटक स्वरूप कहे जा सकते है। दशम ग्रन्थ साहबकी रचना कर गुरु गोविंदसिह ने इस न्यूनता की पूर्त्ति को है। उन्होंने अपने ग्रन्थ मे ऐसे उत्तेजक भाव भरे है जिससे ऐसी शक्ति उत्पन्न हो जो कटक भूत प्राणियो को पूर्णतया विध्वंस कर सके। इस शक्ति के उत्पन्न करने के लिये ही उन्होंने अपने ग्रन्थ में युद्धो का भी वर्णन ऐसी प्रभाव शाली भाषा मे किया है जो एक बार निर्जीव को भी सजीव बनाने मे समर्थ हो। इसी उद्देश्य से उन्होंने सप्तशती के तीन तीन अनुवाद किये। पौडियो मे जो तीसरा अनुवाद है, उसमे वह ओजस्विता भरी है जो सूखी रगों मे भी रक्त संचार करती है। कृष्णावतार मे खड्गसिह के युद्ध का ऐसा ओजमय वर्णन है जिसे

पढने से कायर-हृदय भी वीर बन सकता है। ऐसे ही विचित्र वर्णन और भी कई एक स्थलो पर है। यथा समय हिन्दू जाति मे ऐसे आचार्य्य उत्पन्न होते आये है जो समयानुसार उसमे ऐसी शक्ति उत्पन्न करत जिससे वह आत्म-रक्षण मे पूर्णतया समर्थ होती। उत्तर भारत मे गुरु गोबिंदसिह और दक्षिण भारत मे स्वामी रामदास सत्रहवी सदी के ऐसे ही आचार्य थे। गुरु गोविंदसिह ने पजाब मे सिक्खो द्वारा महान् शक्ति उत्पन्न की, स्वामी रामदास ने शिवा जो और महाराष्ट्र जाति की रगो मे बिजली दौडा दो। इस दृष्टि से दशम ग्रन्थ की उपयोगिता कितनी है, इसका अनुभव हिन्दो भाषा भाषी विद्वान् स्वयं उस ग्रन्थ को पढकर कर सकते है।

इस सत्रहवी शताब्दी मे एक प्रेम-मार्गी कवि नेवाज भी हो गये है। कहा जाता है कि ये जाति के ब्राह्मण थे और छत्रसाल के दरबार मे रहते थे। ये थे बडे रसिक हृदय। जहा गोरे लाल पुरोहित बीर रस की रचनायें कर महाराज छत्रसाल मे ओज भरते रहने थे। वहाँ ये शृंगार रस की रचनाये कर उन्हें रिझाते रहते थे। नेवाज नाम के तीन कवि हो गये है। इन तीनो की रचनायें मिल जुल गई है। किन्तु सरसता अधिक इन्हीं की रचना मे मानी गयी है। इनका नेवाज नाम भ्रामक है। क्यों एक ब्राह्मण ने कवितामे अपना नाम नेवाज' रक्खा, इसका उल्लेख कहीं नही मिलता। छत्रसाल ऐसे हिन्दू भाव-सम्पन्न राजा के यहा रह कर भी उनका नेवाज नाम से परिचित होना कम आश्चर्य्य जनक नहीं। जो हो, परन्तु हिन्दी संसार मे जितने प्रेमोन्मत्त कवि हुये है उनमे एक यह भी है। इनकी रचना की मधुरता और भावमयता को सभी ने प्रशंसा की है। इनकी भाषा सरस ब्रजभाषा है। बुन्देलखंड में रह कर भी वे इतनी प्राजल ब्रज-भाषा लिख सके, यह उनके भाषाधिकार को प्रकट करता है। उनके दो पद्य देखिये —

(१) देखि हमें सब आपुस में जो
कछू मन भावै सोई कहती हैं।

ए घरहाई लुगाई सबै निसि
द्यौस नेवाज हमें दहती हैं ।
बातें चबाव भरा सुनि कै
रिसिआवत पै चुप ह्वै रहती हैं।
कान्ह पियारे तिहारे लिये
सिगरे व्रज को हँसिबो सहती हैं।

(२) आगे तो कीन्हीं लगा लगी लोयन
कैसे छिपै अजहूं जो छिपावत।
तू अनुराग कौ सोध कियो
व्रज की बनिता सबयों ठहरावत।
कौन सकोच रह्यो है नेवाज
जौ तू तरसै उनहूं तरसावत।
बावरी जो पै कलंक लग्यौ तो
निसंक ह्वै क्यों नहीं अंक लगावत।

(२)

अठारहवी शताब्दी प्रारंभ करने के साथ सब से पहले हमारी दृष्टि महाकवि देवदत्त पर पडती है। जिस दृष्टि से देखा जाय इनके महाकवि होने मे सदेह नही। कहा जाता है इन्होने बहत्तर ग्रंथो की रचना की। हिन्दी भाषा के कवियो मे इतने ग्रंथो की रचना और किसो ने भी की है, इसमे संदेह है। इन के महत्व और गौरव को देख कर ब्राह्मण जाति के दो विभागो मे अब तक द्वंद चल रहा है। कुछ लोग सनाढ्य कह कर इन्हे अपनी ओर खीचते है और कोई कान्यकुब्ज कह कर इन्हे अपना बनाता है। पंडित शालग्राम शास्त्री ने, थोडे दिन हुये, 'माधुरी' मे एक लम्बा लेख लिख कर यह प्रतिपादित किया है कि महाकवि देव सनाढ्य थे। मैं इस विवाद को अच्छा नही समझता। वे जो हो, किन्तु है ब्राह्मण जाति के

और ब्राह्मण जाति के न भी हो तो देखना यह है कि साहित्य मे उनका क्या स्थान है। मेरा विचार है कि सब बातो पर दृष्टि रख कर यह कहना पडेगा कि व्रजभाषा का मुख उज्ज्वल करनेवाले जितने महाकवि हुये है उन्हीं मे एक आप भी है। एक दो विषयो मे कवि-कर्म्म करके सफलता लाभ करना उतना प्रशंसनीय नहीं, जितना अनेक विषयो पर समभाव से लेखनी चला कर साहित्य-क्षेत्र मे कीर्ति अर्जन करना। वे रीति-ग्रंथ के आचार्य ही नही थे और उन्होने काव्य के दसो अंगों पर लेखनी चला कर ही प्रतिष्ठा नहीं लाभ की, वेदान्त के विषयो पर भी बहुत कुछ लिख कर वे सर्व देशीय ज्ञान का परिचय प्रदान कर सके है। इस विषय पर उनकी 'ब्रह्मदर्शन-पचीसी', 'तत्वदर्शन पचीसी', 'आत्म दर्शन-पचीसी' और 'जगत दर्शन पचीसी' आदि कई अच्छी रचनाये है। उनके 'नीत शतक', 'रागरत्नाकर', 'जाति विलास', 'वृक्ष विलास' आदि ग्रंथ भी अन्य विषयो के है और इनमे भी उन्होने अच्छी सहृदयता और भावुकता का परिचय दिया है। उनका देव प्रपंच माया' नाटक भी विचित्र है। इसमे भी उनका कविकर्म्म विशेष गौरव रखता है। शृंगार रस का क्या पूछना! उसके तो वे प्रसिद्धि-प्राप्त आचार्य है, मेरा विचार है कि इस विषय मे आचार्य केशवदास के बाद उन्ही का स्थान है। उनकी रचनाओं मे रीति ग्रंथों के अतिरिक्त एक प्रवन्ध-काव्य भी है जिसका नाम 'देव-चरित्र' है, उसमे उन्होने भगवान कृष्ण चन्द्र का चरित्र वर्णन किया है। 'प्रेम चंद्रिका' भी उनका एक अनूठा ग्रंथ है, उसमे उन्होने स्वतत्र रूप से प्रेम के विषय मे अनूठी रचनाये की है। कवि-कर्म्म क्या है? भाषा और भावों पर अधिकार होना और प्रत्येक विषयो का यथा तथ्य चित्रण कर देना। देव जी दोनों बातो मे दक्ष थे। सत्रहवीं और अट्ठारहवीं शताब्दी में यह देखा जाता है कि उस समय जितने बडे बडे कवि हुये उनमे से अधिकाश किसी राजा-महाराजा अथवा अन्य प्रसिद्ध लक्ष्मी पात्र के आश्रय में रहे। इस कारण उनकी प्रशंसा मे भी उनको बहुत सी रचनाये करनी पडीं। कुछ लोगों की यह सम्मति है कि ऐसे कवि अथवा महाकवियो से उच्च कोटि की रचनाओ और सच्ची भावमय कविताओं के रचे जाने की आशा

करना विडम्बना मात्र है। क्योंकि ऐसे लोगो के हृदय में वह उच्छ्वासमय उच्च भाव उत्पन्न हो ही नही सकते जो एक आत्म-निर्भर स्वतंत्र अथच मनस्वी कवि अथवा महाकवि मे स्वभावत उद्भूत होते है। उन्मुक्त कवि कर्म्म हो कवि-कर्म्म है, जिसका कार्य्य चित्त का स्वतत्र उद्गार है। जो हृदय किसी की चापलूसी अथवा तोषामोद मे निरत है और अपने आश्रय-दाता की इच्छानुसार कविता करने के लिये विवश है, या उसकी उचित अनुचित प्रशंसा करने मे व्यस्त है, वह कवि उसरत्न को केसे प्राप्त कर सकता है जो स्वभावतया तरंगायमान मानस-उदधि से प्राप्त होते है। मेरा विचार है, इस कथन मे सत्यता है। परन्तु इससे इस परिणाम पर नहीं पहुचा जा सकता कि कोई कवि किसी के आश्रित रह कर सत्कवि या महाकवि हो ही नहीं सकता। क्योकि प्रथम तो कवि स्वाधीनता-प्रिय होता है, दूसरी बात यह कि कवि का अधिकतर सम्बन्ध प्रतिभा से है। इसलिये किसो का आश्रित होना उसके कवित्व गुण का बाधक नहीं हो सकता। किसी आत्म विक्रयी की बात और है। हा, बंधन-रहित किसो स्वतंत्र कवि का महत्व उससे अधिक है, यह बात निस्संकोच भाव से स्वीकार की जा सकती है। कविवर देवदत्त मे जो विलक्षण प्रतिभा विक-सित दृष्टिगत होती है उसका मुख्य कारण यही है कि वे स्वतंत्र प्रकृति के मनुष्य थे, जिससे वे किसी के आश्रय मे चिरकाल तक न रह सके। जिस दरबार मे गये उसमे अधिक दिन ठहरना उन्हे पसंद नही आया। मालूम होता है कि बंधन उनको प्रिय नहीं था। मै समझता हू इससे हिन्दी साहित्यको लाभ ही हुआ। क्योंकि उनके उन्मुक्त जीवनने उनसे अधिकतर ऐसी रचनाये करायीं जो सर्वथा स्वतंत्र कही जा सकती है। प्रत्येक भाषा के साहित्य के लिये ऐसी रचनायें ही अधिक अपेक्षित होती है, क्योकि उनमे वे उन्मुक्त धारायें बहती मिलती है जो पराधीनता एवं स्वार्थपरता दोष से मलिन नहीं होती। कविवर देवदत्त की रचनाओ का जो अंश इस ढंग मे ढला हुआ है वही अधिक प्रशंसनीय है और उसी ने उनको हिन्दी साहित्य मे वह उच्च स्थान प्रदान किया है जिसके अधिकारी हिन्दी संसार के इनेगिने कवि-पुंगव ही है। मिश्र बंधुओ ने अपने ग्रंथ मे देव

जी के सम्बन्ध मे निम्नलिखित कवित्त लिखा है —

सूर सूर तुलसी सुधाकर नच्छत्र केसौ,
सेस कविराजन कौ जुगनू गनाय कै।
कोऊ परिपूरन भगति दिखरायो अब,
काव्यरीति मोसन सुनहु चित लाय कै।
देव नभ मंडल समान है कबीन मध्य,
जामैं भानु सितभानु तारागन आय कै।
उदै होत अथवत चारों ओर भ्रमत पै,
जाको ओर छोर नहि परत लखाय कै।

इसमे अधिक लोग सहमत नहीं है, इस पद्य ने कुछ काल तक हिन्दी संसार मे एक अवांछित आंदोलन खडा कर दिया था। कोई कोई इस रचना को अधिक रंजित समझते है। परन्तु मै इसको विवाद-योग्य नही समझता। प्रत्येक मनुष्य अपने विचार के लिये स्वतत्र है। जिसने इस कवित्त की रचना की उसका विचार देव जी के विषय मे ऐसा ही था। यदि अपने भाव को उसने प्रगट किया तो उसको ऐसा करने का अधिकार था। चाहे कुछ लोग उसको वक्रदृष्टि से देखे, परन्तु मेरा विचार है कि यह कवित्त केवल इतना ही प्रगट करता है कि देव जी के विषय मे हिन्दी संसार के किसी किसी विदग्ध जन का क्या विचार है। मै इस कवित्त के भाव को इसी कोटि मे ग्रहण करता हू और उससे यही परिणाम निकालता हू कि देव जी हिन्दी साहित्य-क्षेत्र मे एक विशेष स्थान के अधिकारी है। कोई भाषा समुन्नत होकर कितनी प्रौढता प्राप्त करती है देव जी की भाषा इसका प्रमाण है। उनका कथन है —

कविता कामिनि सुखद पद सुबरन सरस सुजाति
अलंकार पहिरे बिसद अद्भुत रूप लखाति।

मै देखता हू कि उनकी रचना मे उनके इस कथन का पूर्ण विकास है जितनी बाते इस दोहे मे है वे सब उनकी कविता मे पायी जाती है।

उनकी अधिकतर रचनाये कवित्त और सवैया मे है। उनके कवित्तो मे जितना प्रबल प्रवाह ओज, अनुप्रास और यमक की छटा है, वह विलक्षण है। सवैयो मे यह बात नही है, परन्तु उनमे सरसता और मधुरता छलकती मिलती है। दो प्रकार के कवि या महाकवि देखे जाते है, एक की रचना प्रसादमयी और दूसरे की गम्भीर, गहन विचारमयी और गूढ होती है। इन दोनो गुणो का किसी एक कवि मे होना कम देखा जाता है देव जो मे दोनो बाते पाई जाती है और यह उनकी उल्लेखनीय विशेषता है। मानसिक भावो के चित्रण मे, कविता को सगीतमय बनाने मे भावानुकूल शब्द-विन्यास मे, भावानुसार शब्दो मे ध्वनि उत्पन्न करने मे और कविता को व्यंजनामय बना देने मे महाकवियो की सी शक्ति देव जी मे पायी जाती है।

प्राय ऐसे अवसर पर लोग तुलनात्मक समालोचना को पसन्द करते है। इसमे संदेह नही कि ऐसा करनेसे एक से दूसरे का उत्कर्ष दिखाने मे बहुत बडी सहायता प्राप्त होती है। परन्तु ऐसी अवस्था मे, निर्णय के लिये दोनो कवियो की समस्त रचनाओ को आलोचना होना आवश्यक है यह नही कि एक दूसरे के कुछ समान भाव के थोडे से पद्यो को ले कर समालोचना की जाय और उसी के आधार पर एक से दूसरे को छोटा या बडा बना दिया जाय। यह एक देशिता है। कोई कवि दस बिषयो को लिख कर सफलता पाता है और कोई दो चार बिपयों को लिख कर ही कृतकार्य्य होता है। ऐसो अवस्था मे उन दोनो के कतिपय विषयों को लेकर ही तुलनात्मक समालोचना करना समुचित नही। समालोचना के समय यह भी बिचारना चाहिये कि उनकी रचना मे लोक-मंगल की कामना और उपयोगिता कितनी है। उसका काव्य कौन सा संदेश देता है। और उसकी उपयुक्तता किस कोटि की है। बिना इन सब बातों पर विचार किये कुछ थोड़ेसे पद्योंको लेकर किसी का महत्व प्रतिपादन युक्ति संगत नही। अतएव मै यह मीमासा करनेके लिये प्रस्तुत नहीं हू कि जो हिन्दी संसारके महाकवि है उनमेसे किससे देव बडे है और किससे छोटे। प्रत्येक विषय में प्रत्येकको महत्व प्राप्त नहीं होता, ओर न सभी विषयों मे सब को उत्कर्ष

मिलता। अपने अपने स्थान पर सब आदरणीय है, और भगवती वीणा पाणिके सभी वर पुत्र है। कविवर सूरदास और गोस्वामी तुलसीदास क्षण-जन्मा पुरुष है उनको वह उच्चपद प्राप्त है जिसके विषय मे किसी को तर्क वितर्क नही। इसलिये मैने जो कुछ इस समय कथन किया है, उससे उनका कोई सम्बन्ध नही॥

अब मै आप लोगो के सामने देव जो की कुछ रचनाये उपस्थित करता हूं। आप उनको अवलोकन करे और यह बिचारे कि उनकी कविता किस कोटि की है और उसमे कितना कवि-कर्म्म है—

(१) पॉयन नूपुर मंजु बजैं कटि
किंकिनि मैं धुनि की मधुराई।
सॉवरे अंग लसै पट पीत हिये
हुलसै बन माल सुहाई।
माथे किरीट बड़े दृग चंचल
मंद हँसी मुखचन्द जुन्हाई।
जै जग मंदिर दीपक सुन्दर
श्री व्रज दूलह देव सहाई।

(२) देव जू जो चित चाहिये नाह तो
नेह निबाहिये देह हर्‍यो परै।
जौ समझाइ सुझाइये राह
अमारग मैं पग धोखे धर्‍यो परै।
नीके मैं फीके ह्वै आँसू भरो कत
ऊंचे उसास गरो क्यों भर्‍यो परै।
रावरो रूप पियो अँखियान भरोसो
भर्‍यो उबर्‍यो सो ढर्‍यो परै।

(३) भेष भये विष भावते भूषन
भूख न भोजन की कछु ईछो।
मीचु की साध न सोंधे की साध
न दूध सुधा दधि माखन छी छो।
चंदन तौ चितयो नहि जात
चुभीचित माहि चितौन तिराछो।
फूल ज्यों सूल सिला सम सेज
बिछौनन बीच बिछी जनु बाछो।

(४) प्रेम पयोधि परे गहिरे अभिमान
को फेन रह्यो गहि रे मन।
कोप तरंगनि सों बहिरे पछिताय
पुकारत क्यों बहिरे मन।
देव जू लाज-जहाज ते कूदि
रह्यो मुख मूंदि अजौं रहि रे मन।
जोरत तोरत प्रीति तुही अब
तेरी अनीति तुही सहिरे मन।

(५) आवत आयु को द्योस अथोत
गये रवि त्यों अँधियारियै ऐहै।
दाम खरे दै खरीद करौ गुरु
मोह की गोनी न फेरि बिकै है।
देव छितीस की छाप बिना
जमराज जगाती महादुख दैहै।
जात उठी पुर देह की पैठ अरे
बनिये बनियै नहिँ रैहै।

(६) ऐसो जो हौं जानतो कि जै है तू विषै के संग
एरे मन मेरे हाथ पाँव तेरे तोरतो।
आजु लौं हौं कत नरनाहन की नाहीं सुनि
नेह सों निहारि हेरि बदन निहोरतो।
चलन न देतो देव चंचल अचल करि
चाबुक चितावनीन मारि मुंह मोरतो।
भारो प्रेम पाथर नगारो दै गरे सों बाँधि
राधावर बिरद के बारिधि में बोरतो।

(७) गुरु जन जावन मिल्यो न भयो दृढ़ दधि
मथ्यो न विवेक रई देव जो बनायगो।
माखन मुकुति कहाँ छाड्यो न भुगुति जहाँ
नेह बिनु सगरो सवाद खेह नायगो।
बिलखत बच्यो मूल कच्यो सच्यो लोभ भांड़े
नच्यो कोप आँच पच्यो मदन छिनायगो।
पायो न सिरावनि सलिल छिमा छींटन सों
दूध सो जनम बिनु जाने उफनायगो।

(८) कथा मैं न कंथा मैं न तीरथ के पंथा मैं न
पोथी मैं न पाथ मैं न साथ की बसीति मैं।
जटा मैं न मुंडन न तिलक त्रिपुंडन न
नदी कूप कुंडन अन्हान दान रीति मैं।
पीठ मठ मंडल न कुंडल कमंडल न
मालादंड मैं न देव देहरे की भीति मैं।
आपु ही अपार पारावार प्रभु पूरि रह्यो
पाइए प्रगट परमेसर प्रतीति मैं।

(९) संपति मैं ऐंठि बैठे चौतरा अदालति के
बिपति मैं पैन्हि बैठे पाँय झुन झुनियां।
जे तो सुख संपति तितोई दुख बिपति मैं
संपति मैं मिरजा विपति परे धुनियां।
संपति ते बिपति बिपति हूं ते संपति है
संपति औ बिपति बराबरि कै गुनियां।
संपति मैं कांय कांय बिपति मैं भांय भांय
कांय कांय भांय भांय देखी सब दुनियां।

१०--आई बरसाने ते बुलाई बृषभानु सुता
निरखि प्रभानि प्रभा भानुकी अथै गयी।
चक चकवान के चकाये चक चोटन सों
चौंकत चकोर चकचौंधी सी चकै गयी।
देव नन्द नन्दन के नैनन अनन्दमयी।
नन्द जू के मंदिरनि चंदमयी छै गयी।
कंजन कलिनमयी कुंजन नलिन मयी।
गोकुल की गलिन अलिनमयी कै गयी।

११--औचक अगाध सिंधु स्याही को उमड़ि आयो
तामैं तीनो लोक बूड़ि गये एक संग मैं।
कारे कारे आखर लिखे जु कारे कागर
सुन्यारे करि बाँचै कौन जांचै चित भंग मैं।
आंखिनि मैं तिमिर अमावस की रैनिजिमि
जम्बू जल बुंद जमुना जल तरंग मैं।
यों ही मन मेरो मेरे काम को न रह्यो माई
स्याम रङ्ग ह्वै करि समायो स्याम रङ्ग मैं।

१२--रीझि रीझि रहसि रहसि हँसि हँसि उठै,
सांसैं भरि आँसू भरि कहति दई दई ।
चौंकि चौंकि चकि चकि उचकि उचकि देव
जकि जकि बकि बकि परति बई बई ।
दुहुँन को रूप गुन दोउ बरनत फिरैं
घर न थिराति रीति नेह की नई नई ।
मोहि मोहि मन भयो मोहन को राधिका मै
राधिका हूं मोहि मोहि मोहनमयी भई ।
१३--जबते कुँवर कान्ह रावरी कलानिधान
कान परी वाके कहूं सुजस-कहानी सी ।
तब ही ते देव देखी देवतासी हँसति सी
खीझति सी रीझति सी रूसति रिसानी सी ।
छोही सी छली सी छीनि लीनी सी छकी सी छिन
जकी सी टकी सी लगी थकी थहरानीसी ।
बीधी सी बिधी सी बिष बूड़ी सी बिमोहित सी
बैठी बाल बकति बिलोकति बिकानी सी ।
१४-- देखे अनदेखे दुख दानि भये सुखदानि
सूखत न आँसू सुख सोइबो हरे परो ।
पानि पान भोजन सुजन गुरुजन भूले
देव दुरजन लोग लरत खरे परो ।
लागो कौन पाप पल एकौ न परति कल
दूरि गयो गेह नयो नेह नियरे परो ।
हो तो जो अजान तौ न जानतो इतीकु विथा
मेरे जिये जान तेरो जानिबो गरे परो ।

१८--तेरो कह्यो करि करि जीव रह्यो जरि जरि
हारी पाँय परि परि तऊ तैं न की सम्हार।
ललन बिलोके देव पल न लगाये तव
यों कल न दीनी तैं छलन उछलनहार।
ऐसे निरमोही सों सनेह बाँधि हौं बँधाई
आपु विधि बूड्यो मांझ वाधा सिंधु निराधार
एरे मन मेरे तैं घनेरे दुख दीने अब
ए केवार दैकै तोहि मूंदि मारौं एक बार।

देव की भाषा साहित्यक व्रजभाषा है और उनकी लेखनी ने उसमे साहित्यिकता की पराकाष्ठा दिखलायी है। उनकी रचनाओं मे शब्द लालित्य नर्तन करता दृष्टिगत होता है। और अनुप्रास इस सरसता से आते है कि अलंकारो को भो अलंकृत करते जान पडते है, यह मै स्वीकार करूंगा कि उन्होने कहीं कहीं अनुप्रास- यमक आदि के लोभ में पड कर ऐसे शब्दों का प्रयोग किया है जो गढे अथवा तोडे-मोरोडे जान पडते है। परन्तु वे बहुत अल्प है और उनकी मनोहर रचना मे आकर मनोहरता ही ग्रहण करते है अमनोहर नहीं बनते। व्रजभाषा के जितने नियम है उनका पालन तो उन्होंने किया ही है, प्रत्युत उसमे एक ऐसी सरस धारा भी बहा दी है जो बहुत ही मुग्ध करी है और जिसका अनुकरण बाद के कवियो ने अधिकतर किया है। उनकी रचनाओं मे अन्य प्रान्तो के भी शब्द मिल जाते है, इसका कारण उनका देशाटन है। परंतु वे उनमे ऐसे बेठाले मिलते है जैसे किसी सुन्दर स्वर्णाभरणमे कोई नग। इसमे कोई सन्देह नहीं कि कविवर देवदत्त महाकवि थे और उनकी रचनाओ मे अधिकाश महाकवि कीसी महत्तायें मौजूद है॥

इस शताब्दी मे देव के अतिरिक्त भिखारी दास, श्री पति, कवीन्द्र गुमान मिश्र, रघुनाथ, दूलह, तोष और रसलीन ये आठ प्रधान रीति ग्रंथ कार हुये है। ये सब व्रजभाषा के कबि है, परन्तु प्रत्येक मे कुछ न कुछ

विशेषता है। इसलिये मै प्रत्येक के विषय में कुछ लिख देना चाहता हू। मैं इस उद्देश्य से ऐसा करता हू कि जिससे ब्रजभाषा की परम्परा का यथार्थ और पूर्ण ज्ञान हो सके ॥

(१)

भिखारीदासजी की गणना हिन्दी संसार के प्रतिष्ठित रीति ग्रन्थकारो मे है। उन्होंने भी काव्य के सब अङ्गो पर ग्रन्थ लिखे है और प्रत्येक विषयों का विवेचन पाडित्य के साथ किया है। कुछ नई उद्भावनाये भी की है। परन्तु ये सब बाते संस्कृत काव्य-प्रकाश आदि ग्रन्थों पर ही अवलम्बित है। हा, हिन्दी-साहित्य-क्षेत्र मे उनकी चर्चा करने का श्रेय उन्हे अवश्य प्राप्त है। अब तक इनके नौ ग्रन्थो का पता लग चुका है जिनमें काव्य-निर्णय और शृंगार–निर्णय विशेष प्रसिद्ध है। ये श्री वास्तव कायस्थ थे और प्रतापगढ के सोमवंशी राजा पृथ्वीपतिसिह के भाई बाबू हिन्दूपतिसिह के आश्रय मे रहते थे, इनकी कृति में वह ओज और माधुर्य्य नही है जैसा देवजीकी रचनाओ में है, परन्तु प्राजलता उनसे इन मे अधिक है। जैसा शब्द संगठन देवजी की कृति में है वह इनको प्राप्त नहीं, परन्तु इनकी भाषा अवश्य परिमार्जित है। इनके ग्रन्थ की मुख्य भाषा व्रजभाषा है और उस पर इनको पूर्ण अधिकार है। किन्तु प्रौढता होने पर भी अनेक स्थानों पर इनकी रचना शिथिल है। ये कविता मे विविध प्रकार की भाषा के शब्दो के ग्रहण के पक्षपाती थे। जैसा इनके दोहों से प्रकट है —

तुलसी गङ्ग दुवौ भये सुकविन के सरदार।
इनकी रचना में मिलो भाषा विविध प्रकार।
ब्रजभाषा भाषा रुचिर कहै सुमति सब कोय।
मिलै संसकृत पारसिहुं पै अति प्रगट जु होय।

यही कारण है कि इनकी रचना में ऐसे शब्द भी मिल जाते है जो व्रजभाषा के नहीं कहे जा सकते। ये अवध प्रान्त के रहनेवाले थे।

इसलिये इन्होंने इच्छानुसार अवधी भाषा के शब्दो का भी प्रयोग किया है। फिर भी इनकी भाषा असयत नही है और एक प्रकार को नियम बद्धता उसमें पायो जाती है। इनका 'काव्य निर्णय नामक ग्रन्थ साहित्य सेवियो मे आदर को दृष्टि से देखा जाता है। मै इनकी कुछ रचनाये नीचे लिखता हूं। इनके द्वारा आप इनकी कविता-गत विशेषताओ को बहुत कुछ जान सकेंगे।

१—सुजस जनावै भगतन ही सों प्रेम करै
चित्त अति ऊजड़े भजत हरि नाम हैं।
दीन के दुख न देखै आपनो सुखन लेखै
विप्र पाप रत तन मैन मोहै धाम हैं।
जग पर जाहिर है धरम निबाहि रहै
देव दरसन ते लहत बिसराम हैं।
दास जू गनाये जे असज्जन के काम हैं
समुझि देखो येई सब सज्जन के काम हैं।

२—कढ़ि कै निसंक पैठि जात झुंड झुंडन मैं
लोगन को देखि दास आनँद पगति है।
दौरि दौरि जहीं तहीं लाल करि डारति है
अङ्क लगि कंठ लगिबे को उमगति है।
चमक झमकवारी ठमक जमक वारी
रमक तमकवारी जाहिर जगति है।
राम असि रावरे की रन मैं नरन मैं
निलज वनिता सी होरी खेलन लगति है।

३—नैनन को तरसैये कहाँ लौं कहाँ
लौं हियो बिरहागि मैं तैये।

एक घरी न कहूं कल पैये कहाँ
लगि प्रानन को कलपैये ।
आवै यही अब जी में विचार
सखी चलि सौतिहुं के घर जैये ।
मान घटे ते कहा घटि है जुपै
प्रान पियारे को देखन पैये ।

४—दृग नासा न तौ तप जाल खगी
न सुगन्ध सनेह के ख्याल खगी ।
स्रुति जीहा विरागै न रागै पगी
मति रामै रँगी औ न कामै रँगी ।
तप में ब्रत नेम न पूरन प्रेम न
भूति जगी न विभूति जगी ।
जग जन्म बृथा तिनको जिनके
गरे सेली लगी न नवेली लगी ।

५—कंज सकोच गड़े रहे कीच मैं
मीनन बोरि दियो दह नीरन ।
दास कहै मृग हूं को उदास कै
बास दियो है अरन्य गँभीरन ।
आपुस मैं उपमा उपमेय ह्वै
नैन ये निंदित हैं कवि धीरन ।
खंजन हूं को उड़ाय दियो हलुके
करि डाऱ्यो अनङ्ग के तीरन ।

आप लोगों ने मतिराम के सीधे सादे शब्द-विन्यास देखे है । वे न तो अनुप्रास लाने की चेष्टा करते है और न अलङ्कार पर उनकी अधिक

दृष्टि है। फिर भी वैदर्भी गीति ग्रहण करके उन्होंने बडी सरस रचना की है। यही बात दासजी के विषय मे भी कही जा सकती है। परन्तु मतिराम के शब्दों मे जितना कल्लोल है, जितना सङ्गीत है, जितना मनोमोहनी शक्ति है उतनी दासजी की रचना मे नही पायी जाती। उनके कोई कोई पद्य इस प्रकार के है। परन्तु मतिराम के अधिकाश पद्य ऐसे ही है। दासजी ने श्रीपतिजी के भावो का अधिकतर अपहरण किया है और उनकी प्रणाली को ग्रहण कर अपने पद्यो मे जीवन डाला है। परन्तु श्रीपति की शब्द-माला मे जो मंजुता मिलती है, दासजी में नहीं पायी जातो। फिर भी उनकी रचना कवि-कर्म्म से रहित नही है। उन्होने 'बिष्णु-पुराण' का भी अनुवाद किया है और अमरकोश का भी, जिससे पाया जाता है कि उनका संस्कृत का ज्ञान भी अच्छा था। बिष्णु पुराण की रचना उतनी सरस और सुन्दर नहीं है। जितनी शृंगार निर्णय अथवा काव्य-निर्णय की। फिर भी उसमे कवितागत सौन्दर्य्य है। हा, शिथिलता अवश्य अधिक है। दासजीका काव्य-शास्त्र का ज्ञान उल्लेखनीय है। इसी शक्ति से उन्होने काव्य-रचना मे अपनी यथेष्ट योग्यता दिखलाई है। रीति ग्रन्थ के जितने आचार्य्य हिन्दी साहित्य मे है उनमे इनका भी आदरणीय स्थान है।

(२)

भाव-सौन्दर्य्य-सम्पादन और सुगठित शब्द-विन्यास करने मे इस शताब्दी मे देव जो के बाद श्री पति का ही स्थान है। देव जी की रचना मे कहीं कही इतनी गंभीरता है कि उसका भाव स्पष्ट करने के लिये अधिक मनोनिवेश की आवश्यकता होती है। किंतु श्री पति जी की रचनाओ में यह बात नही पाई जाती। वह चाँदनी के समान सुविकसित है और मालती के समान प्रफुल्ल। जैसी चाँदनी सुधामयी है, वैसी ही वह भी सरस है। जैसी मालती की सुरभि मुग्धकरी है वैसी ही वह भी बिमोहक है। श्रीपति जी कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे, उनका निवास स्थान कालपी में था। उनकी विशेषता यह है कि उनका स्वच्छन्द जीवन था और हृदय के स्वाभाविक उल्लास से वे कविता करते थे। इसलिये उनकी रचना भी उल्लासमयी है।

सलिल का वह निर्मुक्त प्रवाह जो अपनी स्वतंत्र गति से प्रवाहित होता रहता है, जेसा होता है, वेसी ही उनकी स्वत प्रवाहिनी कविता भी है। उनका 'काव्य-सरोज' नामक ग्रंथ साहित्य-क्षेत्र मे उच्च स्थान रखता है। दोषो का जैसा विशद वर्णन समालोचनात्मक दृष्टि से उन्होने किया है वेसा उनके पहले का कोई कवि अथवा महाकवि नही कर सका। दोषो का इतना सूक्ष्म विवेचन उन्होने किया है कि महाकवि केशवदास की उच्चतम रचनाये भी उनकी दोषदर्शक दृष्टि से न बच सकी। इसग्रंथ के अतिरिक्त उनके छ' ग्रंथ और है जिनमे 'कवि-कल्पद्रुम', 'रससागर' 'अनुप्रास-विनोद' और अलंकार-गंगा' विशेष उल्लेखनीय है। उन्होने भी काव्य के सब अंगों का वर्णन किया है। और वह भो इस शैली से जो विशदता और विद्वत्ता से पूर्ण है, सेनापति के समान उन्होने भो ऋतुओ का वर्णन बडो भावुकता के साथ किया है। परंतु यह मै कहूगा कि उनके वर्णन मे सरसता अधिक है। उनका बर्षा का वर्णन बहुत ही हृदय ग्राही है। एक विशेषता उनमे और पायी जाती है। वह यह कि उन्होने नैतिक रचनाये भी की है और उसमे अन्योक्ति के आधार अथवा भावमय व्यंजनाओं के अवलम्बन से ऐसी भावुकता भरदी है कि उनके द्वारा हृदय अधिकतर प्रभावित होता है और उसमें सत्प्रवृत्ति जागृत होतो है। उनके इस विषय के कोई कोई कवित्त बड़े ही अनूठे और उपयोगी है, जो एक आचरणशील उपदेशक का काम यथावसर करदेते है। उनकी कुछ रचनाये नीचे लिखी जाती है —

१— सारस के नादन को बाद ना सुनात कहूं
नाहक ही बकवाद दादुर महा करै।
श्री पति सुकबि जहां ओज ना सरोजन को
फूल ना फुलत जाहि चितदै चहा करै।
बकन की बानी की बिराजत है राजधानी
काई सो कलित पानी फेरत हहा करै।
घोंघन के जाल जामैं नरई सिवाल ब्याल
ऐसे पापी ताल को मराल लै कहा करै।

२—ताल फीको अजल कमल बिन जल फीको
कहत सकल कवि हवि फीको रूम को।
बिनु गुन रूप फीको, असर को कूप फीको
परम अनूप भूप फीको बिन भूम को।
श्रीपति सुकवि महा वेग बिनु तुरी फीको
जानत जहान सदा जोन्ह फीको धूम को।
मेँह फीको फागुन अबालक को गेह फीको
नेह फाको तिय को सनेह फीको सूम को।

३—तेल नीको तिल को फुलेल अजमेर ही को
साहब दलेल नीको सैल नीको चंद को।
विद्या को विवाद नीको राम गुन नाद नीको
कोमल मधुर सदा स्वाद नीको कंद को।
गऊ नवनीत नीको ग्रीषम को सीत नीको
श्रीपति जू मीत नीको बिना फरफंद को।
जात रूप घट नीको रेसम को पट नीको
बंसीबट तट नीको नट नीको नंद को।

४—बेधा होत फूहर कलपतरु थूहर
परमहंस चूहर की होत परिपाटी को।
भूपति मँगैया होत काम धेनु गैया होत
चूवत मयंद गज चेरा होत चाटी को।
श्री पति सुजान भनै बैरी निज बाप होत
पुत्र माहिं पाप होत साँप होत साटी को।
निर्धन कुबेर होत स्यार समसेर होत
दिनन को फेर होत मेर होत माटी को।

५—जल भरे झूमैं मानों भूमैं परसत आय
दसहूं दिसान घूमैं दामिनी लये लये।
धूरि धार धूमरे से धूम से धुंधारे कारे
धुरवान धारे धावैं छवि सों छये छये।
श्रीपति सुकबि कहै घोरि घोरि घहराहि
तकत अतन तन ताप तें तये तये।
लाल बिनु कैसे लाज चादर रहैगी आज
कादर करत मोहि बादर नये नये।

६—हारि जात बारि जात मालती बिदारि जात
बारिजात पारिजात सोधन मैं करीसी।
माखन सी मैन सी मुरारी मखमल सम
कोमल॰ सरस तन फूलन की छरी सी।
गहगही गरुई गुराई गोरी गोरेगात
श्रीपति बिलौर सीसी ईंगुर सों भरीसी।
बिज्जुथिर धरी सी कनक-रेख करी सी
प्रवाल छबि हरी सी लसत लाल लरीसी।

७—भौंरन की भीर लैके दच्छिन समीर धीर
डोलत है मंद अब तुम धौं कितै रहे।
कहै कबि श्रीपति हो प्रबल बसंत
मति मंत मेरे कंत के सहायक जितै रहे।
जागहि बिरह जुर जोर ते पवन ह्वै कै
पर धूम भूमि पै सम्हारत नितै रहे।
रति को बिलाप देखि करुना अगार कछू
लोचन को मूंदि कै तिलोचन चितै रहे।

इनकी रचना में अनुप्रासों की कमी नहीं हैं, परन्तु अनुप्रास इस प्रकार से आये हैं कि शब्द माला उनसे कंठगत पुष्पमाला समान सुसज्जित होती रहती है। वास्तवमें ये ब्रजभाषा-साहित्य के आचार्य्य हैं और इनकी रचना भाव रूपी भगवान शिव के शिर की मन्दार माला है। इनकी भाषा साहित्यिक ब्रजभाषा है और उसमें उसकी समस्त विशेषतायें पायी जाती हैं।

कवीन्द्र (उदयनाथ) कालिदास त्रिवेदी के पुत्र थे। इनका एक ग्रंथ 'रस-चन्द्रोदय' नामक अधिक प्रसिद्ध है। पिता के समान ये भी सरस हृदय थे। अपनी रचनाओं ही के कारण इनका कई राज-दर्बारों में अच्छा आदर हुआ। इनकी भाषा साहित्यिक ब्रजभाषा है और उसकी बिशेषता यह है कि उसमें श्रृंगार रस का वर्णन उन्होंने बड़ी ही सरसता से किया। उनके कुछ पद्य देखियेः—

१—कैसी ही लगन जामैं लगन लगाई तुम
प्रेम की पगनि के परेखे हिये कसके।
केतिको छपाय के उपाय उपजाय प्यारे
तुम ते मिलाय के चढ़ाये चोप चसके।
भनत कबिंद हमैं कुंज मैं बुलाय कर
बसे कित जाय दुख दे कर अबस के।
पगन में छाले परे, नाँघिबे को नाले परे
तऊ लाल लाले परे रावरे दरस के।

२—छिति छमता की, परिमिति मृदुता की कैधों
ताकी है अनीति सौति जनताकी देह की।
सत्य की सता है सीलतरु की लता है
रसता है कै विनीत पर नीत निज नेहकी।

भनत कविंद सुर नर नाग नारिन की
सिच्छा है कि इच्छा रूप रच्छन अछेहकी।
पतिव्रत पारावार वारी कमला है
साधुता की कै सिला है कै कला है कुलगेह को।

'तोष' का मुख्य नाम तोषनिधि है। ये जाति क ब्राह्मण और इलाहाबाद जिले क रहने वाले थे। सुधानिधि' नामक नायिका भेद का एक प्रसिद्ध ग्रन्थ इन्होने रचा। यही इनका प्रधान ग्रन्थ है। 'विनय शतक और 'नख शिख नामक और दो ग्रन्थ भी इनके बताये जाते है। तोष की गणना व्रजभाषा के प्रधान कवियो मे होती है। इनकी विशेषता यह है कि इनकी भाषा प्रौढ और भावमयी है। मिश्र बन्धुओं ने इनका एक काल ही माना है और उसके अन्तर्गत बहुत से कवियों को स्थान दिया है। उन्हो ने इनकी रचना को कसौटी मान कर और कवियों की रचनाओं को उसी पर कसा है। इस प्रकार जो कविता उन्हों ने प्रौढ और गम्भीर पायो उसे तोष की श्रेणी मे लिखा। अन्य हिन्दी साहित्य का इतिहास लिखनेवालो ने भी तोष को आदर्श कवि माना है। इनमे यह विशेषता अवश्य है कि इन्हो ने अपनी रचनाओ मे शिथिलता नही आने दी, और भाषा भी ऐसी लिखी जो टकसाली कही जा सकतो है। उनकी भाषा साहित्यिक व्रजभाषा है। और अधिकाश निर्दोष है। उनके कुछ पद्य नीचे लिखे जाते है।

१—भूषन भूषित दूषन हीन
प्रवीन महारस मैं छवि छाई।
पूरी अनेक पदारथ तें जेहि
में परमारथ स्वारथ पाई।
औ उकतैं मुकतैं उलही कवि
तोष अनोखी भरी चतुराई।

होनि सबै सुख की जनिता बनि
आवत जो बनिता कविताई ।
२—श्रीहरि की छवि देखिबे को अँखियां
प्रति रोमन में करि देतो ।
बैनन के सुनिबे कहँ श्रौन
जितै चित तू करतो करिहेतो ।
मोढिग छोड़न काम कछू कहि
तोष यहै लिखतो बिधि एतो ।
तौ करतार इती करनी करि कै
कलि मैं कल कीरति लेतो ।

रघुनाथ बंदीजन महाराज काशिराज बरिवंड सिंह के राजकवि थे। उन्होने इनको काशी क सन्निकट चौरा नामक एक ग्राम ही देदिया था। रघुनाथ ने 'रसिक मोहन', काव्य कलाधर' और 'इश्कमहोत्सव' नामक ग्रथों की रचना की है और बिहारो सतसई की टीका भी बनाई है। इनकी विशेषता यह है कि इन्होने खडी बोलचाल मे भी कुछ कविता की है। इनकी भाषा साहित्यिक व्रजभापा है। इनके कुछ पद्य देखियेः—

१—ग्वाल संग जैबो ब्रजगायन चरैबो ऐबो
अब कहा दाहिने ये नैन फरकत हैं।
मोतिन की माल वारि डारौं गुंज माल पर
कुंजन की सुधि आये हियो दरकत है।
गोबर को गारो रघुनाथ कछू याते भारो
कहा भयो पहलनि मनि मरकत है
मंदिर हैं मंदर ते ऊंचे मेरे द्वारिका के
ब्रज के खरक तऊ हिये खरकत हैं।

२—फूलि उठे कमल से अमल हितू के नैन
कहै रघुनाथ भरे चैन-रस सियरं ।
दौरि आये भौंर से करत गुनी गुन गान
सिद्धि से सुजान सुखसागर सों नियरे।
सुरभी सी खुलन सुकवि की सुमति लागी
चिरिया सी जागी चिन्ता जनक के जियरें।
धनुष पै ठाढ़े राम रवि से लसत आजु
भोर कैसे नखत नरिद भये पियरं ।

३—सूखति जात सुनी जब सों
कछु खात न पीवत कैसे धौं रैहै ।
जाकी है ऐसी दसा अबहीं
रघुनाथ सो औधि अधार क्यों पैहै ।
ताते न कीजिये गौन बलाय
ल्यों गौन करे यह सीस बिसैहै ।
जानत हौ दृग ओट भये तिय
प्रान उसासहि के सँग जैहै ।

४—देखिबे को दुतिपूनो के चंद की
हे रघुनाथ श्रीराधिका रानी ।
आई बुलाय कै चौतरा ऊपर
ठाढ़ी भई सुख सौरभ सानी ।
ऐसी गयी मिलि जोन्ह की जोत
मैं रूप की रासि न जाति बखानी ।
बारन ते कछु भौंहन ते कछु
नैनन की छवि ते पहिचानी ।

एक खड़ी बोली की रचना देखिये —

५—आप दरियाव पास नदियों के जाना नहीं
दरियाव पास नदी होयगी सो धावैगी।
दरखत बेलि आसरे को कभी राखत ना
दरखत ही के आसरे को बेलि पावैगी।
लायक हमारे जो था कहना सो कहा मैंने
रघुनाथ मेरी मति न्याव ही को गावैगी।
वह मुहताज आपकी है आप उसके न
आप कैसे चलो वह आप पास आवैगी।

गुमान मिश्र इसलिये प्रसिद्ध हैं कि उन्होंने संस्कृत के नैषध काव्य का अनुवाद व्रजभाषा में किया। उनके रचे अलंकार नायिका-भेद आदि काव्य-सम्बन्धी कतिपय ग्रंथ और 'कृष्णचन्द्रिका' नामक एक अन्य ग्रंथ का भी पता चला है। परन्तु इनमें अबतक कोई प्रकाशित नहीं हुआ। ये संस्कृत के विद्वान् थे और हिन्दी भाषा पर इनका बड़ा अधिकार था। परंतु इनका नैषध का अनुवाद उत्तम नहीं हुआ। उसमें स्थान स्थान पर बड़ी जटिलता है। वाच्यार्थ भी स्पष्ट नहीं और जैसी चाहिये वैसी उसमें सरसता भी नहीं। फिर भी उसके अनेक अंश सुंदर और मनोहर हैं। ग्रंथ की भाषा साहित्यिक व्रजभाषा है किंतु उसमें संस्कृत का पुट अधिक है। कुछ पद्य देखिये —

—हाटक हंस चल्यो उड़ि कै नभ में
दुगुनी तन ज्योति भई।
लीक सी खैंचि गयो छन में
छहराय रही छबि सोनमई
नैनन सों निरख्यो न बनाय कै
कै उपमा मन मांहि लई।

स्यामल चीर मनो पसर्‌यो
तेहि पै कलकंचन बेलि नई।

२—दिग्गज दबत दबकत दिगपाल भूरि
धूरि की धुंधेरी सों अँधेरी आभा भानुकी।
धाम औ धरा को माल बाल अबला को अरि
तजत परान राह चाहत परान की।
सैयद समर्थ भूप अली अकबर दल
चलत बजाय मारू दुंदुभी धुकान की।
फिरि फिरि फननु फनीस उलटतु ऐसे
चोली खोलि ढोली ज्यों तमोली पाके पानकी।

कहा जाता है कि पिता का गुण यदि पुत्रमे नही तो पौत्रमे आता है। दूलह कालिदास त्रिवेदी के पौत्र थे, किंतु वे भाग्यवान थे कि उनके पिता कवीन्द्र भी सत्कवि थे। वास्तव मे उनमे तीन पीढ़ियों द्वारा संचित कवि-कर्म्म का विकास था। दूलह की गणना हिन्दी संसार के प्रसिद्ध कवियो मे है। उनका 'कवि कुल-कंठाभरण' नामक अलंकार का केवल एक ग्रंथ है किन्तु इसी ग्रंथ के आधार से वे ख्याति-प्राप्त हैं। उनकी कुछ स्फुट रचनाये भी मिलती हैं, परन्तु उनकी सख्या भी अधिक नहीं। 'कवि कुल कंठाभरण' कबित्तों और सवैयों मे रचा गया है। इसीलिये उसमे अलकारो का निरूपण यथातथ्य हो सका है। उसकी प्रसिद्धि का कारण भी यही है। इसी सूत्र से उस काल के अलंकारानुरागी कवियो मे उसका अधिक आदर हुआ। ग्रंथ की रचना साहित्यिक व्रजभाषा मे है उसमें यथेष्ट सरसता और मनोहरता भी है। उनकी अन्य रचनायें भी ऐसी ही है। कुछ पद्य नीचे लिखे जाते है —

१—उत्तर उत्तर उत करख बखानौं 'सार'
दीरघ ते दीरघ लघू ते लघू भारीको

सब ते मधुर ऊख ऊख ते पियूख औ
पियूख हूं ते मधुर है अधर पियारी को ।
जहां क्रमिकन को क्रमै ते यथा क्रम
'यथासंख्य' बैन नैन नैन कोन ऐसे धारा को
कोकिल ते कल कंज दल ते अदल भाव
जीत्यो जिन काम की कटारी नोकवारी को

२—माने सनमाने तेई माने सनमाने
सनमाने सनमाने सनमान पाइयतु है ।
कहै कवि दूलह अजाने अपमाने
अपमान सों सदन तिनही को छाइयतु है ।
जानत हैं जेऊ तेऊ जात हैं बिराने द्वार
जान बूझ भूले तिनको सुनाइयतु है ।
काम बस परे कोऊ गहत गरूर है तो
अपनी जरूर जा जरूर जाइयतु है ।

बेनी नाम के दो कवि हो गये है। दोनो बदी जन थे। पहले बेनी असनो के निवासो थे इनका समय सत्रहवीं ईस्वी शताब्दी का प्रारम्भ है। ये अपनी कविता मे बेनी नाम ही रखते थे। दूसरे बेनी जिला गयबरेली के थे। ए इस शताब्दी में हुए। पद्योमे अपने नामके बाद ए प्राय. कवि भी लिखते है यही दोनो की पहचान है। पहले बेनी का कोई ग्रंथ अब तक नहीं मिला। उनको स्फुट रचनाये अधिक मिलती है। शिव सिंह सरोज कार ने इनके एक ग्रंथ की चर्चा की है। पर वह अब तक अप्रकाशित है। संभव है कि वह अप्राप्य हो। इनमें दूसरे बेनी के समान विशेषताये नहीं है। परंतु ये एक सरस हृदय कवि थे इनकी भाषासे रस निचुडा पडता है। इनके दो पद्य नीचे लिखे जाते है .—

१—छहरै सिर पै छवि मोर पखा
उनकी नथ के मुकता थहरैं।
फहरै पियरो पट बेनी इतै
उनकी चुनरी के झवा झहरैं।
रस रंग भिरे अभिरे हैं तमाल
दोऊ रस ख्याल चहैं लहरैं।
नित ऐसे सनेह सों राधिका
स्याम हमारे हिये में सदा बिहरैं।

२—कवि बेनी नई उनई है घटा
मोरवा बन बोलत कूकन री।
छहरैं बिजुरी छिति मंडल छ्वै
लहरै मन मैन भभूकन री।
पहिरौ चुनरी चुनि कै दुलही
सँग लाल के झूलहु झूकन री।
ऋतु पावस योंही बितावति हौ
मरिहौ फिर बावरी हूकन री।

दूसरे बेनो रोति ग्रन्थकार है, उन्हो ने 'टिकैतराय प्रकाश' और 'रसविलास, नामक दो ग्रथो की रचना की है। पहला ग्रन्थ अलंकार का और दूसरा रस सम्वन्धो है। भाषा इनकी भी सरस और सुदंर है। भावानुकुल शब्द-विन्यास मे ये निपुण है। इनमे विशेषता यह है कि इन्होने हास्यरस की भो प्रशंसनाय रचना की है और अधिकतर उसमे ब्यंग से काम लिया है। ये हिन्दो संसार के 'सौदा' कहे जा सकते है। जैसे उर्दू कवियो मे हजो कहने मे सौदा का प्रधान स्थान है उसी प्रकार किसी की हँसी उड़ाने अथवा किसी पर व्यंग-वाण बर्षा करने मे ये भी हिन्दी कवियो के अग्रणी है। ये जिससे खिजे या बिगड़े उसीकी गत बना दी

चाहे वह कोई स्थान हो वा कोई मनुष्य। परन्तु इनकी भाषा की विशेषता सर्वथा सुरक्षित रहती है। इनकी अन्य रचनाये भी मनोहारिणी और ललित है। हा, चटपटी प्रकृति उनमे भी प्रतिबिम्बित मिलती है। कुछ पद्य देखिये —

१—घर घर घाट घाट बाट बाट ठाट ठटे
बेला औ कुबेला फिरैं चेला लिये आस पास।
कबिन सों बाद करैं भेद बिन नाद करैं
सदा उनमाद करैं धरम करम नास।
बेनी कबि कहै बिभिचारिन को बादसाह
अतन प्रकासत न सतन सरम तास।
ललना ललक नैन मैन की झलक
हँसि हेरत अलक रद खलक ललक दास।

इस पद्य मे ललकदास एक महत की पगडी उतारी गई है।

२—कारीगर कोऊ करामात कै बनाय लायो
लीनो दाम थोरो जानि नई सुघरई है।
राय जू को राय जू रजाई दीन्हीं राजी ह्वै कै
सहर में ठौर ठौर सुहरत भई है।
बेनी कबि पाय कै अघाय रहे घरी द्वैक
कहत न बनै कछु ऐसी मति ठई है।
साँस लेत उड़िगो उपल्ला औ भितल्ला सबै
दिन द्वै के बाती हेत रूई रहि गई है।

इस पद्य मे एक रायजी की गत बनाई गयी है।

३—संभु नैन जाल औफनी को फूतकार कहा
जाके आगे महाकाल दौरत हरौली तें।

सातो चिरजीवी पुनि मारकंडे लोमस लौं
देखि कंपमान होत खोलें जब झोली तें।
गरल अनल औ प्रलय दावानल भर
बेनि कवि छेदि लेत गिरत हथोली नें।
बचन न पावैं धनवंतरि जो आवैं
हरगोबिँद बचावैं हरगोबिँद की गोली तें।

इस पद्य मे एक वैद्य जी की नाडी बेतरह टटोली गयी है।

४—गड़िजात बाजी औ गयंद गन अड़ि जात
सुतुर अकड़ि जात मुसकिल गऊ की।
दाँवन उठाय पाय धोखे जो धरत कोऊ
आप गरकाप रहि जात पाग मऊ की।
बेनी कवि कहै देखि थर थर काँपै गात
रथन के पथ ना बिपद बरदऊ की।
बार बार कहत पुकार करतार तो सों
मीच है कबूल पै न कीच लखनऊ की।

इस पद्य मे लखनऊ पर बेतरह कीच उछाली गई है।

५—चींटी की चलावै को मसा के मुख आय जाय
साँस की पवन लागे कोसन भगत है।
ऐनक लगाय मरू मरू कै निहारे परैं
अनु परमानु की समानता खगत हैं।
बेनी कवि कहै हाल कहाँ लौं बखान करौं।
मेरी जान ब्रह्म को विचारिवो सुगत है।

ऐसे आम दीन्हें दयाराम मन मोद करि
जाके आगे सरसों सुमेरु सी लगन है ।

इस पद्य मे बेचारे दयागम को खटाई मे डाल दिया गया है। दो पद्य इनके शान्तरस के भी देखिये'—

१—पृथु नल जनक जजाति मानधाता ऐसे
केते भये भूप जस छिति पर छाइगे।
कालचक्र परे सक्र सैकरन होत जात
कहाँ लौं गनावौं विधि बासर बिताइगे।
बेनी साज संपति समाज साज सेना कहाँ
पाँयन पसारि हाथ खोले मुख बाइगे।
छुद्र छिति पालन की गिनती गिनावै कौन
रावन से बली तेऊ बुल्ला से बुलाइगे।

२—राग कीने रंग कीने तरुनी प्रसंग कीने
हाथ कीने चीकने सुगंध लाय चोली में।
देह कीने गेह कीने सुंदर सनेह कीने
बासर बितीत कीने नाहक ठिठोली में।
बेनी कबि कहै परमारथ न कीने मूढ़
दिना चार स्वाँग सो दिखाय चले होली में।
बोलत न डोलत खोलत पलक हाय
काठ से पड़े हैं आज काठ की खटोली में।

दो रचनाये श्रृंगार रस की भी देखिये:—

१—बिपत बिलोकत ही मुनि मन डोलि उठे
बोलि उठे, बरही बिनोद भरे बन बन।

अकल विकल ह्वै बिकाने हैं पथिक जन
ऊर्ध मुख चातक अधोमुख मराल गन।
बेनी कवि कहत मही के महाभाग भये
सुखद संजोगिन बियोगिन के ताप तन।
कंज पुंज गंजन कृषी दल के रंजन
सो आये मान भंजन ए अंजन बरन घन।

२ करि की चुराई चाल सिंह को चुरायो लंक
ससि को चुरायो मुख नासा चोरी कीर की।
पिक को चुरायो बैन मृग को चुरायो नैन
दसन अनार हाँसी बीजुरी गँभीर की।
कहै कवि बेनी बेनी ब्याल की चुराय लीनी
रती रती सोभा सब रति के सरीर की।
अब तो कन्हैया जू को चित हूं चुराय लीनो
छोरटी है गोरटी या चोरटी अहीर की।

इस कवि का वाच्यार्थ कितना प्राजल है और उसके कथन मे कितना प्रवाह है, इसके बतलाने की आवश्यकता नही, पद्य स्वयं इसको बतला रहे है। ये उर्दू फारसी अथवा अन्य भाषा के शब्दो को जिस प्रकार अपनी रचना के ढंग मे ढाल लेते है, वह भी प्रशंसनीय है। मेरा विचार है कि हिन्दी साहित्य के प्रधान कवियो मे ये भी स्थान लाभ के अधिकारी है।

प्रत्येक शतक मे कोई न कोई सहृदय मुसलमान हिन्दी देवी की अर्चना करते दृष्टिगत होता है। सैयद गुलाम नबी (रसलीन) बिलग्रामी ऐसे ही सहृदय कवि है। मेरा विचार है कि अवधी की रचना मे जो गौरव मलिक महम्मद जायसी को प्राप्त है ब्रजभाषा की सरस रचना के लिये उसी गौरव के अधिकारी रसखान मुबारक और रसलीन है। रसलीन ने 'अंग दर्पण,' और 'रस प्रबोध' नामक ग्रन्थों की रचना की है। ये अरबी

फारसी के नामी विद्वान् थे। फिर भी इन्होने व्रजभाषा मे रचना की और इस निपुणता से की जो उल्लेखनीय है। इनके दोनो ग्रंथ दोहो मे है। पहले मे अंगो का वर्णन है और दूसरे मे नव रसो पर सरस और भावमयी कविता है। इनको फारसी और उर्दू के शेरो का अनुभव था जो दो चंदो मे ही बहुत कुछ चमत्कार दिखला जाते है। इसलिये इन्हो ने उन्हीं का अनुकरण किया और अपने दोहो को वैसा ही चमत्कारक बनाया। इनकी सुन्दर सरस और भावमयी भाषा व्रजभाषा देवी के चरणो पर चढ़ाने के लिये मुग्ध कर सुमनावलि-माला समान है। इनके दोहो को सुनकर यह जो कहने लगता है कि क्या कोई मुसल्मान भी ऐसी टकसाली भाषा लिख सकता है ? किंतु रसलीन ने इस शंका का समाधान कर दिया है। इनकी कुछ रचनाये देखिये —

१—अमी हलाहल मद भरे स्वेत स्याम रतनार।
जियत मरत झुकि २ परत जेहि चितवत एकबार

२—मुख ससि निरखि चकोर अरु तन पानिप लखि मीन।
पद पंकज देखत भँवर होत नयन रसलीन।

३—सौतिन मुख निसि कमल भो पिय चख भये चकोर।
गुरुजन मन सागर भये लखि दुलहिन मुख ओर।

४—मुकुत भये घर खोय कै कानन बैठे आय।
अब घर खोवत और के कीजै कौन उपाय।

५—धरति न चौकी नगजरी याते उर में लाइ।
छाँह परे पर पुरुष की जनि तिय धरम नसाइ।

इस शताब्दी मे बहुत अधिक रीति ग्रंथकार हुये है। सब के विषय मे कुछ लिखना हमारे उद्देश्य से सम्बन्ध नहीं रखता। सबकी भाषा लगभग एक ही है और एक ही विषय का वर्णन प्राय सभी ने किया है। उनमें जो आदर्श थे और जिनमे कोई विशेषता थी उनके विषय मे जो लिखना था

लिखा गया। परन्तु अब भी ऐसे कतिपय रीति-ग्रंथकार शेष है जिनका ब्रजभाषा-साहित्य मे अच्छा स्थान है और जो प्रतिष्ठा की दृष्टि से देखे जाते है। सब के सविशेष वर्णन के लिये मेरे पास स्थान नही। हा मै यह अवश्य चाहता हू कि उनकी रचना-शैली का ज्ञान आपलोगो को करा दूं, जिससे यह यथातथ्य ज्ञात हो सके कि इस शताब्दी मे ब्रजभाषा का वास्तविक रूप क्या था इसलिये कुछ लोगो की रचनाये आपलोगो के सामने क्रमश उपस्थित करता हू —

सूरति मिश्र आगरे के निवासी कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। ये विहारी सत-सई के प्रसिद्ध टीकाकार है, रीति-सम्बन्धी सात आठ ग्रन्थों की रचना भी इन्होंने की है। इनका एक पद्य देखिये —

तेरे ये कपोल बाल अति ही रसाल
मन जिनकी सदाई उपमा विचारियत है।
कोऊ न समान जाहि कीजै उपमान
अरु बापुरे मधूकन की देह जारियत है।
नेक दरपन समता की चाह करी कहूं
भये अपराधी ऐसो चित धारियत है।
सूरति सो याही ते जगत बीच आज हूं लौं,
उन के बदन पर छार डारियत है।

कृष्ण कवि विहारीलाल के पुत्र कहे जाते है। इन्होने विहारीलाल के दोहो पर टीका की भाति एक एक सवैया लिखा है। वार्तिक मे काव्य के समस्त अंगोका पूर्णतया निरूपण भी किया है। उनका एक पद्य देखिये —

१—थोरे ई गुन रीझते बिसराई वह बानि।
तुमहूं कान्ह मनौं भये आजु कालिह के दानि।

२—ह्वै अति आरत मैं बिनती,
बहुबार करी करुना रस भीनी ।
कृष्ण कृपानिधि दीन के बंधु,
सुनी असुनी तुम काहे को कीनी ।
रीझते रंचक ही गुनसों वह बानी,
बिसारि मनों अब दीनी ।
जानि परी तुम हूं हरि जू,
कलि काल के दानिन की मत लीनी ।

अमेठी के राजा गुरुदत्त सिंह ने 'भूपति' नाम से कवितायें की है। उनके तीन ग्रंथ बतलाये जाते है। 'कंठभूषण' और 'रस रत्नाकर' दो रीतिग्रंथो के अतिरिक्त उन्होंने एक सतसई भी बनाई थी। ये कवियो का बडा आदर सम्मान करते थे। इनकी रचनायें भी सरस है। दो दोहे देखिये —

१—घूंघट पट की आड़ दै हँसति जबै वहदार ।
ससि मंडल ते कढति छनि जनु पियूख की धार ।
२—भये रसाल रसाल हैं भये पुहुप मकरंद
मान सान तोरत तुरत भ्रमत भ्रमर मद मंद ।

सोमनाथ माथुर ब्राह्मण थे, भरतपुर दरबार मे रहते थे। इनका 'रस पियूषनिधि' नामक प्रसिद्ध ग्रंथ है, जिसमे काव्य के समस्त लक्षणों का विस्तृत वर्णन है। इसके अतिरिक्त इन्हों ने एक प्रबन्ध काव्य भी लिखा है। यह सिहासन बतीसी का छंदबद्ध रूप है। इसका नाम सुजन बिलास है। इनके दो ग्रंथ और है जिनमे से एक नाटक है, जिसका नाम माधव विनोद है। दूसरे का नाम 'लीलावती' है। 'माधव विनोद' का नाम भर नाटक है वास्तव मे वह प्रेम-सम्बन्वी प्रबंध ग्रंथ है। इनकी रचना सुन्दर और सरस है। इनका एक पद्य देखिये —

दिसि बिदिसन ते उमड़ि मढ़ि लीन्हों नभ,
छाड़ि दीन्हें धुरवा जवासे जूथ जरिगे।
डहडहे भये द्रुम रंचक हवा के गुन
कहूं कहूं मोरवा पुकारि मोद भरिगे।
रहि गये चातक जहाँ के तहाँ देखत ही
सोमनाथ कहै बूंदा बूंदि हूं न करिगे।
सोर भयो घोर चारों ओर महि मंडल मैं
आये घन आये घन आय कै उघरिगे।

शंभुनाथ मिश्र ने 'रस-कल्लोल, रस-तरंगिणी और 'अलंकार दीपक' नामक तीन ग्रंथ बनाये है। ये फतेहपुर के रहने वाले थे। इनकी रचना सुन्दर है। पर राजा भगवंत राय खीची की प्रशंसा ही उसमे अधिक है। वे उनके आश्रयदाता थे। एक पद्य देखिये —

आजु चतुरंग महाराज सेन साजत ही
धौंसा की धुकार धूर परी मुँह याही के।
भय के अजोरन ते जीरन उजीर भये
सूल उठी उर में अमीर जाही ताही के।
बीर खेत बीच बरछी लै बिरुझानो
इतै धीरज न रह्यो संभु कौन हूं सिपाही के।
भूप भगवंत बीर ग्वाही कै खलक सब
स्याही लाई बदन तमाम पादसाही के।

ऋषिनाथ वंदी जन और असनी के रहने वाले थे। 'अलंकार मणि-मजरी' नामक एक ग्रंथ इन्होंने बनाया है। उसका एक पद्य देखिये। इनकी रचनाओं मे प्रतिभा झलकती मिलती है.—

छाया छत्र ह्वै कर करत महिपालन को
पालन को पूरो फैलो रजत अपार है ।
मुकुत उदार ह्वै लगत सुख श्रौनन में
जगत जगत हंस हास हीर हार है ।
ऋषि नाथ सदानंद सुजस बलंद
तमबृंद के हरैया चंद्र चंद्रिका सुढार है ।
हीतल को सीतल करत घनसार है
महीतल को पावन करत गंगधार है ।

रतन कवि गढवाल के राजा फतेह साह के यहा थे। उन्होंने ' फतेह-भूषण' और 'अलंकार-दर्पण' नाम के दो ग्रंथ रचे । इनकी रचना-शैली सुंदर और विशद है। एक पद्य देखिये —

काजर की कोरवारे भारे अनियारे नैन
कारे सटकारे बार छहरे छवानि छ्वै ।
स्याम सारी भीतर भभक गोरे गातन की
ओप वारी न्यारी रही बदन उँजारी ह्वै ।
मृगमद बेंदी भाल अनमोल आभरन
हरन हिये की तू है रंभा रति ही अवै ।
नीके नथुनी के तैसे युगल सुहात मोती
चंद पर च्वै रहे सु मानों सुधा बुंद द्वै ।

चंदन बंदी जन पुवाया के रहने वाले थे। राजा केसरीसिह के यहाँ रहते थे । इन्हों ने दस बारह ग्रंथों की रचना की है, जिनमे से 'श्रृंगार-सागर' 'काव्याभरण' और कल्लोल तरंगिणी' अधिक प्रसिद्ध है। इन्हो ने एक प्रवन्ध काव्य भी लिखा है जिसका नाम 'शीत वसंत' है । ये फारसी के भी शायर थे। इनका एक पद्य देखियेः—

ब्रजवारी गँवारी दै जानै कहा यह चातुरता न लुगायन मैं।
पुनि वारिनी जानि अनारिनी है रुचि एती न चंदन नायन मैं।
छवि रंग सुरंग के बिंदु बने लगैं इन्द्र बधू लघुतायन मैं।
चित जो चहैं दी चकसी रहैं दो केहिंदी मेंहदी इन पायन मैं।

देवकी नंदन ब्राह्मण और कन्नौज के पास के रहनेवाले थे। इन्होने चार पाच ग्रंथो की रचना को है, जिनमे 'शृंगार चरित्र' और 'अवधूत-भूषण' अधिक प्रसिद्ध है । इनका ' सरफराज-चन्द्रिका ' नामक ग्रंथ भी अच्छा है। इनकी भाषा टकसाली है और उसमे सहृदयता पाई जाती है। एक पद्य देखिये .—

मोतिन की माल तोरि चीर सब चीरि डारे
फेरि कै न जैहों आली दुख बिकरारे हैं।
देवकी नंदन कहैं धोखे नाग छौनन के
अलकैं प्रसून नोचि नोचि निर वारे हैं।
मानि मुखचंद भाव चोंच दई अधरन
तीनों ए निकुंजन में एकै तार तारे हैं।
ठौर ठौर डोलत मराल मतवारे
तैसे मोर मतवारे त्यों चकोर मतवारे हैं।

भानु कवि ने 'नरेन्द्र भूषण' नाम का एक ग्रन्थ लिखा है। उसमे विशेषता यह है कि अलंकारो के उदाहरण सब रसों के दिये है। इनकी रचना अच्छी है। ये बुन्देले थे और राजा रनजोर सिह के यहा रहते थे। इनका एक पद्य देखिये —

घन से सघन स्याम इंदु पर छाय रहे
बैठी तहां असित द्विरेफन की पाँति सी।
तिनके समीप तहाँ खंज की सी जोरी लाल
आरसी से अमल निहारे बहुभांति सी।

ताके ढिग अमल ललौहैं बिबि बिद्रुम से
फरकति ओप जामैं मोतिन की कांति सो।
भीतर ते कढ़ति मधुर बीन कैसी धुनि
सुन करि भानु परि काननसुहाति सी।

थान कवि वंदी जन थे। इनका मुख्य नाम थान राय था। इनकी भाषा ललित है और 'दलेल प्रकाश' नामक एक रीति-ग्रंथ ही इनका पाया जाता है। पद-विन्यास देखने से यह प्रतीति होती है कि भाषा पर इनको अच्छा अधिकार था एक पद्य देखिये —

दासन पै दाहिनी परम हंस वाहिनी हो,
पोथी कर बीना सुर मंडल मढ़त है।
आसन कँवल अंग अंबर धवल
मुखचंद सो अमल रंग नवल चढ़त है।
ऐसी मातु भारती की आरती करत थान
जाको जस विधि ऐसो पंडित पढ़त है।
ताकी दया दीठि लाख पाथर निराखर के
मुखते मधुर मंजु आखर कढ़त है।

रीति ग्रंथकारो के बाद अब मैं उन प्रेम-मार्गी कवियो की चर्चा करूंगा जो प्रेम मे मत्त होकर अपने आनरिक अनुराग से ही कविता करते थे। उनका प्रेममय उल्लास उनकी पंक्तियो मे बिलसित मिलता है और उनके हृदय का मधुर प्रवाह प्रत्येक सहृदयको विमुग्ध बना देता है। इस शताब्दीमें मुझको इस प्रकारके चार पाच कवि-पुंगवही ऐसे दिखलायी पडते हैं जो उल्लेख योग्य है और जिनमे विशेषता पायी जाती है। वे है— घन आनन्द, नागरीदास सीतल, बोधा और रसनिधि। क्रमश इनका परिचय मैं आपलोगों को देता हू।

घन आनंद वास्तव मे आनन्द-घन थे। वे जाति के कायस्थ और निम्बार्क सम्प्रदाय के वैष्णव थे। कहा जाता है कि वे दिल्ली के बादशाह मुहम्मद शाह के मुंशी थे। ये सरस हृदय कवि तो थे ही, गान विद्या मे भी निपुण थे। इनके रचे छ ग्रन्थ बतलाये जाते है, जिनमे 'सुजान-सागर' 'घनानंद कवित्त और 'रसकेलि-बल्ली' नामक ग्रंथ अधिक प्रसिद्ध है जनश्रुति है कि ये 'सुजान' नामक एक वेश्या पर अनुरक्त थे। इनकी रचनाओ मे उसका नाम बहुत आता है। उस वेश्या के दुर्भाव से ही इनके हृदय मे विरक्ति उत्पन्न हुई और ये दिल्ली छोडकर वृन्दावन चले गये। और वहीं युगलमूर्त्ति के प्रेम मे मत्त होकर अपना शेष जीवन व्यतीत किया। सुना जाता है नादिरशाही ने इनके जीवन को समाप्त किया था। अंतिम समय मे इन्हो ने यह रचना की थीः—

बहुत दिनन की अवधि आस पास परे
खरे अरबरनि भरे हैं उठि जान को।
कहि कहि आवत छबीले मन भावन को
गहि गहि राखत ही दै दै सनमान को।
झूठी बतियानि की पत्यानि ते उदास ह्वै कै
अब ना घिरत घन आनँद निदान को।
अधर लगे हैं आनि करिकै पयान प्रान
चाहत चलन ये सँदेसो लै सुजान को।

ये शुद्ध ब्रजभाषा के कबि माने जाते है। इनका दावा भी यही है, जैसा इस पद्य से प्रगट होता है।

नेही महा ब्रजभाषा प्रवीन
औ सुन्दरता हुं के भेद को जानै।
योग वियोग की रीति में कोविद
भावना भेद सरूप को ठानै।

चाह के रंग में भीज्यो हियो
बिछुरे मिले प्रीतम सांति न मानै।
भाषा प्रवीन सुछंद सदा रहै
जो धन जू के कबित्त बखानै।

परन्तु मेरा विचार है कि इनकी भाषा साहित्यिक ब्रजभाषा ही है, क्योंकि ये ब्रजभाषा के ठेठ शब्दों का प्रयोग करते नहीं देखे जाते। इसी प्रकार ये स्थान स्थान पर ऐसे शब्द लिख जाते हैं जो ब्रजभाषा के नियमानुकूल नहीं कहे जा सकते। निम्नलिखित सवैया को देखिये.—

हमसों हित कै कित को नितहीं
इत बीच वियोगहि पोइ चले।
सु अखैबट बीज लौं फैलि पर्‌यो
बनमाली कहाँ धौं समोइ चले।
घन आनँद छांह बितान तन्यो
हमैं ताप के आतप खोइ चले।
कबहूं तेहि मूल तौ बैठिये आय
सुजान जो बीजहि बोइ चले।

इस सवैयामे 'पोइ', समोइ', 'खोइ', बोइ',के 'इ'के स्थानपर ब्रजभाषा के नियमानुसार यकार होना चहिये। परन्तु इन्होने अवधी के नियमानुसार 'इ' लिखा। इन्हीं को नहीं ब्रजभाषा के अन्य कवियो और महाकवियों को भी इस प्रकार का प्रयोग करते देखा जाता है। कविवर सूरदास जी की रचनाओ मे भी ऐसे प्रयोग अधिकता से — मिलते है। यदि कहा जाय कि प्राचीन ब्रजभाषा मे ऐसे प्रयोग होते थे तो यही मानना पड़ेगा कि ब्रजभाषा मे दोनो प्रकार के प्रयोग होते आये है। ऐसी अवस्था में यह नियम स्वीकृत नहीं हो सकता कि ऐसे स्थलों पर अवधी मे जहाँ इ' का

प्रयोग होता है। ब्रजभाषा मे 'य' लिखा जाता है। मैं तो देखता हू कि सूरदास के समय से अब तक के ब्रजभाषा के कवि दोनो प्रयोग करते आये है। और इसी लिये मै घन आनन्द की भाषा को भी साहित्यिक ब्रज-भाषा ही मानता हूं। घन आनन्द जी की भाषा मे इतनी विशेषता अवश्य है कि उसमे ब्रजभाषा-सम्बन्धी प्रयोग ही अधिक पाये जाते है। यह दिख-लाने के लिये कि वे 'इ' के स्थान पर य' का प्रयोग भी करते है, मैं नीचे एक पद्य और लिखता हूं। उसके चिन्हित शब्दो को देखिये.—

तब तो दुरि दूरहि ते मुसुकाय
बचाय कै और की दीठि हँसे।
दरसाय मनोज की मूरति ऐसी
रचाय कै नैनन मैं सरसे।
अबतौ उर माहि बसाय कै मारत
ए जू बिसासी कहाँ धौं बसे।
कछु नेह निबाह न जानत हे तौ
सनेह की धार मैं काहे धँसे।

घन आनन्द जी के पद्यों की यह विशेषता है कि उससे रस निचुडा पड़ता है। जो वे कहते हैं इस ढंग से कहते है कि उनकी पंक्तियों मे उनके आतरिक अनुराग की धारा बहने लगती है। उनके पद्य का एक एक शब्द ऐसा ज्ञात होता है कि साँचे मे ढला हुआ है और उसमे उनके भाव दर्पण मे बिम्ब के समान प्रतिबिम्बित हो रहे है। इनके समस्त ग्रन्थो की रचना वैदर्भी वृत्ति मे है। इसीलिये उनमें सरसता और मनोहरता भी अधिक पायी जाती है। ब्रजभाषा के मुहावरो और बोलचाल की मधुरताओं को उन्होंने जिस सफलता से अंकित किया है, वैसी सफलता कुछ महाकवियो को ही प्राप्त हुई है। उन्होने अपनी 'बिरह लीला' अरबी बह्र मे लिखी है, जिससे यह पाया जाता है कि उस समय अरबी बह्र भी हिन्दी रचना मे स्थान पाने लगे थे। इनके कुछ सरस और हृदयग्राही पद्य और देखिये.—

१— गुरनि बतायो राधा मोहन हूं गायो
सदा सुखद सुहायो बृन्दावन गाढ़े गहुरे।
अद्भुत अभूत महि मंडन परे ते परे
जीवन को लाहु हाहा क्यों न ताहि लहुरे।
आनँद को घन छायो रहत निरंतर ही
सरस सुदेय सों पपीहा पन बहुरे।
जमुना के तीर केलि कोलाहल भोर
ऐसे पावन पुलिन पर पतित परि रहुरे।

२— अति सूधो सनेह को मारग है जहाँ
नेको सयानप बाँक नहीं।
तहाँ साँचे चलैं तजि आपनपौ
झिझकैं कपटी जेनिसाँक नहीं।
घन आनँद प्यारे सुजान सुनो
इत एक ते दूसरो आँक नहीं।
तुम कौन धौं पाटी पढ़े हौ लला
मन लेहु पै देहु छटाँक नहीं।

३— पर कारज देह को धारे फिरौ
परजन्य यथारथ ह्वै दरसौ।
निधि नीर सुधा के समान करौ
सब ही बिधि सज्जनता सरसौ।
घन आनँद जीवन दायक हौ
कछु मेरीयौ पीर हिये परसौ।
कबहूं वा बिसासो सुजान के
आँगन मो अँसुआन को लै बरसौ

४ — पहले अपनाय सुजान सनेह
सों क्यों फिर नेह कौ तोरिये जू।
निरधार अधार दै धार मँझार
दई गहि बाँह न बोरिये जू।
घन आनँद आपने चातक को
गुन बाँधि कै मोह न छोरिये जू।
रस प्याय कै ज्याय बँधाय कै
आस बिसास मैं क्यों बिष घोरिये जू।

उर्दू का एक शेर है, 'कागज पे रख दिया है कलेजा निकाल के'। सच्ची बात यह है कि घन आनंद जो कागज पर कलेजा निकाल कर रख देते है। एक नायिका कहती है कि काढि करेजो दिखेबो परो'। मैं सोचता हूं, यदि उस नायिका के पास घन आनंद की सी सरस रचना की शक्ति होती तो उसको यह न कहना पडता। इनका बाच्यार्थ जितना प्राजल है उतनी ही उसमे कसक है। दोनो के समागम से इनकी रचना मे मणि-काचन-योग हो गया है। वियोग-शृंगार की रचना मे इन्होने जो वेदना उत्पन्न की है, ऐसा कौन है कि जिसके हृदय पर वह प्रभाव नही डालती। वास्तव मे घन आनंद जो ने इस प्रकार की रचना करने मे बडी सफलता लाभ की है। इनकी कृति मे आन्तरिक पीडा प्रवाहित मिलती है, परंतु हृदयों मे वह सृजन करती है विचित्र मधुरता।

नागरीदास जो कृष्णगढ के महाराज थे। इनका मुख्य नाम सामंत सिह था। वीर इतने बडे थे कि बूंदी के हाडा राजा को समर मे पराजित कर स्वर्ग लोक पहुचाया। साहसी इतने बडे कि अपने छिन गये राज्य को भी अपने पौरुष से पुन प्राप्त कर लिया। किंतु त्याग उनमे बडा था और भगवान कृष्णचन्द्र की भक्ति उत्तरोत्तर वृद्धि पा रही थी। इसलिये उन्होंने राज्य को तृण समान त्यागा और वृंदाबन धाम मे पधार कर भगवल्लीला मे तल्लीन हो गये। जब तक जिये कृष्ण भक्ति-सुधा पान कर जिये, राज्य

भोगो और विभवो की ओर फूटी आख से भी नहीं देखा । राज्यसिहासन से उनको ब्रज रज प्यारी थी और राजसी ठाटों से भक्ति मयो भावना । उनमे तडोयता इतनो थी कि वे सदा भगवद्भजन मे ही मत्त रहते । और संसार के समस्त सुखो की ओर आख उठा कर भी न देखते । राजा-महाराजाओ मे ऐसा सच्चा त्यागी कोई दृष्टिगत नहीं होता । वे गोस्वामी हित हरिवंश वा चैतन्य महाप्रभु के सम्प्रदाय मे थे अतएव उन्ही के समान उनमे आत्म विस्मृति मो थी । वे दिनरात भगवद्गुणगानमे रत रहते और हरि-यश वर्णन कर के स्वर्गीय आनंद लाभ करते मिलते । उनकी यह वृत्ति उनकी समस्त रचनाओ मे दृष्टिगत होती है । उन्होने लगभग सत्तर बहत्तर ग्रंथो की रचना की है । परन्तु उन सब मे ललित पदो मे भगवल्लीला ही वर्णित है । अधिकाश ग्रंथ ऐसे ही है कि जिनमे थोडे से पद्यों मे भगवान की किसी लीला का गान है । इन ग्रंथो को भाषा यद्यपि सरस ब्रजभाषा है फिर भी उसमे कहीं कही राजस्थानी भाषा के शब्द भी मिल जाते है । इनके पदो मे बहुत अधिक मोहकता एवं मधुरता है । सवेयाओ में भी बडा लालित्य है । अन्य रचनाये इस कोटि की नहीं है । परन्तु प्रेमधारा उनमे भी बहती मिलती है, जिसको अनेक भावो की तरंगे बडीही मुग्ध करी है। ब्रजभाषा की जितनी विशेषताये है वे सब उनकी रचनाओं मे मिलती, है और कहीं कहीं उनमे ऐसीं अनूठी उक्तिया पाई जाती है जो स्वर्णाभरण मे मणि सी जटित जान पडती है । कुछ रचनाये नीचे लिखी जाती है:—

१—उज्ज्वल पख की रैन चैन उज्ज्वल रस दैनी ।
उदित भयो उडुराज अरुन दुति मन हर लैनी ।
महा कुपित ह्वै काम ब्रह्म अस्त्रहिं छोड्यो मनु ।
प्राची दिसिते प्रजुलित आवति अगिनि उठीजनु ।
दहन मानपुर भये मिलन को मन हुलसावत ।
छावत छपा अमंद चंद ज्यों ज्यों नभ आवत ।
जगमगाति बन जोति सोत अमृत धारा से ।

नव द्रुम किसलय दलनि चारु चमकति तारा से।
स्वेत रजत की रैन चैन चित मैन उमहनी।
तैसी मंद सुगंध पवन दिन मनि दुख दहनी।
सिला सिला प्रति चंद चमकि किरननि छबिछाई।
बिच बिच अंब कदंब झंब झुकि पायँन आई।
ठौर ठौर चहुं फेर ढेर फूलन के सोहत।
करत सुगंधित पवन सहज मन मोहन जोहत।
ठौर ठौर लखि ठौर रहत मनमथ सो भारी।
बिहरत बिबिध बिहार तहाँ गिरिवर गिरधारी।

२—भादौं की कारी अँध्यारी निसा
झुकि बादर मंद फुही बरसावै।
स्यामा जू आपनी ऊंची अटा पै
छकी रसरीति मलारहि गावै।
ता समै मोहन को दृग दूरि ते
आतुर रूप की भीख यों पावै।
पौन मया करि घूंघट टारै
दया कर दामिनी दीप दिखावै।

३—जौ मेरे तन होते दोय।
मैं काहू ते कछु नहि कहतो
मोते कछु कहतो नहि कोय।
एक जो तन हरि बिमुखन के
सँग रहतो देस बिदेस।

विविध भांति के जब दुख सुख
जहँ नहीं भक्ति लवलेस ।
एक जो तन सतसंग रंग रंगि
रहतो अति सुखपूर ।
जनम सफल करि लेतो ब्रज
बसि जहँ ब्रज जीवन मूर ।
द्वै तन बिन द्वै काज न ह्वै हैं
आयु तौ छिन छिन छीजै ।
नागरिदास एक तन ते अब
कहौ काह करि लीजै ।

आप को फारसी भाषा का अच्छा ज्ञान था । इसलिये कुछ कवितायें ऐसी भी हैं जिनमें फारसी शब्दों का प्रयोग अधिकता से है। इन्होंने 'इश्क चमन' नाम का एक ग्रंथ भी लिखा था। कुछ उसके पद्य भी देखिये —

१—इश्क़ चमन महबूब का वहां न जावै कोय।
जावै सो जीवै नहीं जियै सो बौरा होय।
२—ऐतबीब उठि जाहु घर अबस छुवै का हाथ।
चढ़ी इश्क़ की कैफ़ यह उतर सिर के साथ।
३—सब मज़हब सब इल्म अरु सबै ऐश के स्वाद।
अरे इश्क़ के असर बिन ये सब ही बरबाद।
४—आया इश्क़ लपेट में लागी चश्म चपेट।
सोई आया खलक में और भरैं सब पेट।

नागरीदास की सहचरी 'बनी ठनी' नाम की एक स्त्री थी। उनके सतसंग से वह भी युगल मूर्त्ति के प्रेम की प्रेमिका थी और उन्हीं के

समान सरस रचना करती थी। परंतु उसकी रचना मे राजस्थानी शब्द अधिक आये है। एक पद्य देखिये —

रतनारी हो थारी आखड़ियां।
प्रेम छकी रस बस अलसाणी
जाणि कमल की पॉखड़ियां।
सुंदर रूप लुभाई गति मति
हो गईं ज्यों मधु माखड़ियां।
रसिक बिहारी वारी प्यारी
कौन बसे निसि कॉखड़ियां।

स्वामी हरिवंस के टट्टी सम्प्रदाय मे एक महन्त शीतल नाम के हो गये है। इन्होंने इश्कचमन नाम की एक पुस्तक चार भागो मे लिखी है। ये संस्कृत के विद्वान थे और फ़ारसी का भी इन्हे अच्छा ज्ञान था। ये टट्टी सम्प्रदाय के महन्त तो थे ही, साथ ही प्रेममय हृदय के अधिकारी थे। इनकी रचना खडी बोली मे हुई है, जिसमे फ़ारसी और ब्रजभाषा के शब्द भी अधिक आये है। हिन्दी मे खडी बोली की नींव डालनेवाले प्रथम पुरुष यही है। इनकी भाषा ओजमयी और रचनाशैली सरस है, भाषा मे प्रवाह है और कविता पढते समय यह ज्ञात होता है कि सरस साहित्य का दरिया उमडता आ रहा है। इनमे लगन मिलती है और इनका प्रेम भी तन्मयता तक पहुंचा ज्ञात होता है। इस शताब्दी मे यही एक ऐसे कवि पाये गये जिन्होंने ब्रजभाषा मे कविता की ही नही। फिर भी इनकी रचना मे ब्रजभाषा का पुट कम नहीं। इनकी रचनाओ मे भक्ति की मर्म-स्पर्शिनी मधुरता नही पायी जाती। परन्तु उनका मानसिक उद्गार ओजस्वी है, जिसमे मनस्विता की पूरी मात्रा मिलती है। प्रेम के जिस सरस उद्यान मे घूम कर रसखान और घन आनन्द बडे सुन्दर कुसुम चयन कर सके उसमे इनका प्रवेश जैसा चाहिये वैसा नही। इनकी रचना मे संस्कृत तत्सम शब्दो का बाहुल्य है मै समझता हू, वह वर्त्तमान खड़ी बोली के रूप की पूर्व सूचना है।

इन्हों ने इच्छानुसार लघु को दीर्घ और दीर्घ को लघु बनाया है और सस्कृत के तत्सम शब्दो को यत्र-तत्र व्रजभाषा के रूप मे भी ग्रहण किया है। एक बात और इनमे देखी जाती है। वह यह कि नायिका के शिख नख से सम्बन्ध रखने वाले कतिपय फ़ारसी उपमानो को भी इन्होने अपनी रचना मे ग्रहण कर लिया है, जैसा इनके पहले के किसी हिन्दी के कवि अथवा महाकवि ने नहीं किया था। उन्हों ने शब्दो को इच्छा-नुसार तोडा मरोडा भी है और कई प्रान्तिक शब्दो से भी काम लिया है। इनके कुछ पद्य नीचे लिखे जाते है। उनको पढिये और चिन्हित शब्दो पर विचार भी करते जाइये।

शिव विष्णु ईश बहु रूप तुई।
नभ तारा चारु सुधा कर है।
अंबा धारानल शक्ति स्वधा
स्वाहा जल पौन दिवाकर है।
हम अंशा अंश समझते हैं
सब ख़ाक जाल से पाक रहैं।
सुन लाल बिहारी ललित ललन
हम तो तेरे ही चाकर हैं।

२—कारन कारज ले न्याय कहै
जोतिस मत रवि गुरु ससी कहा।
ज़ाहिद ने हक्क़ हसन यूसुफ़
अरहन्त जैन छवि वसी कहा।
रति राज रूप रस प्रेम इश्क
जानी छवि शोभा लसी कहा।
लाला हम तुम को वह जाना जो
व्रह्म तत्व त्वम असी कहा।

३—मुख सरद् चन्द् पर ठहर गया
जानो के बुंद् पसोने का ।
या कुन्दन कमल कली ऊपर
झमकाहट रक्खा मीने का ।
देखे से होश कहां रहवै जो
पिद्र बूअली सीने का ।
या लाल बद्ख़्शां पर खींचा
चौका इल्मास नगीने का ।
४—हम ख़ूब तरह से जान गये
जैसा आनँद् का कन्द् किया ।
सब रूप सील गुन तेज पुंज
तेरे ही तन में बन्द् किया ।
तुझ हुस्न प्रभा की बाकी ले
फिर विधि ने यह फरफन्द् किया
चंपकद्ल सोनजुही नरगिस
चामीकर चपला चंद् किया ।
५—मुख सरद् चन्द्र पर स्रमसीकर
जगमगैं नखत गन जोती से ।
कै द्ल गुलाब पर शबनम
के हैं कनके रूप उद्योती से ।
हीरे की कनियां मंद् लगै हैं
सुधा किरन के गोती से ।

आया है मदन आरती को
धर कनक थार में मोती से।
६—चंदन की चौकी चारु पड़ी
सोता था सब गुन जटा हुआ।
चौके की चमक अधर बिहँसन
मानो एक दाड़िम फटा हुआ।
ऐसे में ग्रहन समै सीतल इक
ख्याल बड़ा अटपटा हुआ।
भूतल ते नभ नभ ते अवनी,
अग उछलै नट का बटा हुआ।

इनकी कविता की भाषा कवि-कल्पित स्वतंत्र भाषा है। उसमे किसी भाषा के नियम की रक्षा नही की गयी है। सौन्दर्य के लिये हमारे यहा काम उपमान बनता है, परन्तु इन्हों ने यूसुफ़ को उपनाम बनाया यह फारसी का अनुकरण है। इसी प्रकार की काव्य-नियम-सम्बन्धी अनेक अवहेलनाये इनकी रचना मे पायी जाती है। परन्तु यह अवश्य है कि ये इस विचित्रता के पहले उद्भावक है।

बोधा प्रेमी जीव थे, कहा जाता है प्रेम अन्धा होता है (Love is Blind) प्रेम क्यो अन्धा होता है? इसलिये कि वह अपने रंग मे मस्त होकर केवल अपने प्रेम पात्र को देखता है, और किसी को नहीं, संसार को भी नहीं। इसीलिये वह अन्धा है। जब किसी का प्रेम वास्तविक रूप से हृदय मे जाग्रत हो जाता है, उस समय न तो हम उसके गुण दोष को देखते है न उसके व्यवहार की परवा करते है, न उसकी कठोरता को कठोरता मानते है, न उसकी कटुता को कटुता समझते है, और न उसकी पशुता को पशुता। प्रेमोन्माद मे न तो हम लोक मर्य्यादा का ध्यान करते है न शिष्टता का, न कुल परम्परा का, न इसबात का कि हमको संसार क्या कहता है यदि यह अंधापन नही है तो क्या है? यदि यह प्रेम ईश्वरोन्मुख

हो तो उसमे यह शक्ति होती है कि वह दुर्गुण को गुण बना देता है, पशुता को मानवता से बदल देता है, दुर्जनता को सुजनता मे परिणत कर देता है और इस बात का अनुभव कराता है कि 'सर्वखल्विदं ब्रह्म' जो कुछ विश्व मे है, ब्रह्म है। अतएव उसका संसार सोने का हो जाता है ओर सब ओर उसको सत्यं शिवं सुदरं' दृष्टिगत होता है। किंतु जब यह प्रेम मनुष्य तक हो परिमित होता है तो उसमे स्वार्थपरता की बू आने लगती है ओर मनुष्य का इतना पतन हो जाता है कि वह उस उच्च सोपान पर नही चढ सकता जो जीवन को स्वर्गीय बना देता है। 'घन-आनन्द', 'रसखान' का आदिम जीवन कैसा हो रहा हो, यौवन-प्रमाद इनको कुछ काल के लिये भले ही भ्रात बना सका हो, किन्तु उनका अन्तिम जीवन उज्ज्वल है और वे उस महान-हृदय के समान है, जो पथ-च्युत होकर भी अंत में सत्पथावलंबी हो जाता है। मानव-प्रेम यदि उच्च होकर आदर्श प्रेम में परिणत हो जाये तो वह मानव-प्रेम अभिनन्दनीय है। जिस मानव-प्रेम मे स्वार्थ को बू नहीं, वासनाओ का विकार नहीं, इन्द्रिय लोलुपता की कालिमा नहीं, लोभ लिप्सा का प्रलोभन नहीं, कर्तव्य ज्ञान की अवहेलना नहीं, वह स्वर्गीय है और उसमे लोक-कल्याण की विभूति विद्यमान है। इसीलिये वह वाछनीय है। दुःख है कि प्रेमिक जीव होने पर भी बोधा इस तत्व को यथातथ्य नहीं समझ सके। वे सरयूपारीण ब्राह्मण थे, परन्तु एक यवनी के प्रेम मे ऐसे उन्मत्त हुए कि अपनी कुल मर्य्यादा को ही नहीं विसर्जन कर दिया' अपनी आत्मानुभूति को भी तिलाजलि दे दी। उनके मुख से प्रेम-मंत्र-स्वरूप जब निकलता है तब 'सुभान अल्लाह' निकलता है। उनके पद्यों मे 'सुभान' ही का गुणगान मिलता है। उसमे ईश्वरानुराग की गंध भी नहीं आती। अच्छा होता यदि उन्होंने उस पथ को स्वीकार किया होता, जिसको घनानंद और रसखान ने मानवी प्रेमोन्माद की समाप्ति पर ग्रहण किया, संतोष इतना हो है कि उन्होंने अपने धर्म को उस पर उत्सर्ग नहीं किया। हम अपने क्षोभ का शमन उसी से करते है। बोधा अपनी धुन के पक्के थे। प्रेम उनकी रग रग मे भरा था। उनमें जब इतनी आत्म-विस्मृति हो गयी थी कि वे

सुभान के अभाव से संसार को अन्धकारमय देखते थे और वही उन की स्वर्गीय विभूति थी तो लोक परलोक से उनका सम्बन्ध हो क्या था ? देखिये, वे प्रेम के कंटकाकीर्ण मार्ग का चित्रण किस प्रकार करते हैं:—

१—अति खीन मृनाल के तारहुँ ते
तेहि ऊपर पाँव दै आवनो है।
सुई बेह हूं बेधि सकी न तहाँ
परतीति को टाँडो लदावनो है।
कवि बोधा अनी घनी नेजहुँ की
चढ़ि तापै न चित्त डगावनो है।
यह प्रेम को पंथ करार महा
तरवार की धार पै धावनो है।

२—लोक की लाज औ सोक प्रलोक को
वारिये प्रीति के ऊपर दोऊ।
गांव को गेह को देह को नातो
सनेह में हां तो करै पुनि सोऊ।
बोधा सुनीति निबाह करै
धर ऊपर जाके नहीं सिर होऊ।
लोक की भीति डेरात जो मीत
तो प्रीति के पैंड़े परै जनि कोऊ

कवि के लिये सहृदय होना प्रधान गुण है। जिसका हृदय स्वभावत द्रवणशील नहीं, जिसके हृदय मे भावों का विकास नहीं, उसकी रचना मे वह बात नही होती जिसको मर्मस्पर्शी कहा जाता है। बोधा की अधिकाश रचनाये ऐसी ही है, जिनसे उनका सरस हृदय कवि होना सिद्ध है। उनके दो ग्रन्थ बतलाये जाते है। एक का नाम है 'विरह वारीश' और

दूसरे का इश्कनामा'। इन दोनों मे उन्हो ने प्रेम सम्बन्धी सूक्ष्म से सूक्ष्म भावो का बडा ही सुन्दर चित्रण किया है। इश्कनामा सुभान की प्रशंसा से पूर्ण है। उनके कुछ मानसिक उद्गार ऐसे है जिनमे भावुकता की मात्रा अधिक पायी जाती है उनका वाच्यार्थ बहुत साफ है। उनकी भाषा ललित ब्रजभाषा है यद्यपि उसमे कहीं कही खडी बोली के प्रयोग भी मिल जाते है। उनकी रचना मे जितने शब्द आते है वे उनके हृदय के रंग मे रँगे होते है। इसलिये यदि वे कही शब्दो को तोड मरोड देते है या अन्य भाषा के शब्दो को लाते है तो उनका प्रयोग इस प्रकार करते है जिससे वे उनकी शैली के ढंग मे ढले मिलते हैं। उनकी कुछ रचनायें देखिये —

१—एक सुभान के आनन पै
कुरबान जहाँ लगि रूप जहाँ को।
कैयो सतक्रतु की पदवी लुटिये
लखिकै मुसकाहट ताको।
सोक जरा गुजरा न जहाँ कबि
बोधा जहाँ उजरा न तहाँ को।
जान मिलै तो जहान मिलै नहि जान
मिलै तो जहान कहाँ को।

२—बोधा किसू सों कहा कहिये
सो बिथा सुनि पूरि रहै अरगाइ कै।
याते भलो मुख मौन धरैं उपचार
करैं कहूं औसर पाइ कै।
ऐसो न कोऊ मिल्यो कबहूं
जो कहै कछु रंच दया उर लाइ कै
आवत है मुख लौं बढ़ि कै
फिर पीर रहै या सरीर समाइ कै।

३—कबहूं मिलिबो कबहूं मिलिबो
यह धीरज ही में धरैबो करै ।
उर ते कढ़ि आवै गरेते फिरै
मन की मन ही में सिरैबो करै ।
कवि बोधा न चाव सरो कबहूं
नितहूं हरबा सो हरैबो करै ।
सहतेइ बनै करते न बनै
मन ही मन पीर पिरैबो करै ।
हिलि मिलि जानै तासों मिलि कै जनावै हेत,
हित को न जानै ताको हितू न बिसारिये ।
होय मगरूर तापै दूनी मगरूरी कीजै
लघु ह्वै चलै जो तासों लघुता निबाहिये ।
बोधा कवि नीति को निबेरो यही भांति अहै
आप को सराहै ताहि आप हूं सराहिये ।
दाता कहा सूर कहा सुन्दर सुजान कहा
आप को न चाहै ताके बाप को न चाहिये ।

रसनिधि का मुख्य नाम पृथ्वी सिह था वे दतिया राज्य के एक जागीर दार थे । उनका रचा हुआ 'रतन हजारा' नामक एक ग्रंथ है । यह विहारी सतसई के अनुकरण से लिखा गया है । बिहारी के दोहो से टकर लेने की इसमे चेष्टा की गई है । किन्तु कवि को इसमे सफलता नहीं प्राप्त हुई । उनके कुछ दोहे अवश्य सुन्दर है । उन्होने 'अरिल्लों' और 'माझो' की भी रचना की है, वे भी संगृहीत हो चुके है । उनके कुछ स्फुट दोहे भी है । वे शृंगार रस के ही कवि थे । अन्य रसों की ओर उनकी दृष्टि कम गयी । महंत सीतल की तरह वे भी फ़ारसी के शब्दों, मुहावरों, उपमाओं और मुस्लिम संसार के आदर्श पुरुषों के भी प्रेमी थे अपनी रचनाओ मे यथा

स्थान उन्होने इन को ग्रहण किया है। उनकी कविता की भाषा व्रजभाषा है परन्तु उन्होंने अन्य भाषा के शब्दों का व्यवहार भी स्वतंत्रता पूर्वक किया है। बिहारी लाल के भावो ही को नहीं उनके शब्दों और वाक्यो तक को आवश्यकतानुसार ले लिया है। फिर भी यह स्वीकार करना पड़ेगा कि रसनिधि चाहे रसनिधि न हों पर वे रसिक हृदय अवश्य थे। उनकी अनेक रचनायें सरस है और उनमें मधुरता पायी जाती है, उन्होंने फारसी के कुछ ऐसे विषय भी ले लिये है जो अशिष्ट कहे जा सकते हैं। किन्तु उनकी मात्रा थोड़ी है। उनके कुछ पद्य नीचे दिये जाते है —

१—रसनिधि वाको कहत हैं याही ते कर तार
रहत निरंतर जगत कों वाही के करतार।
२—हित करियत यहि भाँति सों मिलियत है वहि भाँति
छीर नीर तैं पूछ लै हित करिबे की बात।
३—सुन्दर जोबन रूप जो बसुधा में न समाइ।
दृग तारन तिल बिच तिन्हैं नेही धरत लुकाइ।
४—मन गयंद छबि मद छके तोर जँजीरन जात।
हित के झीने तार सों सहजै ही बँधि जात।
५—उड़ो फिरत जो तूलसम जहाँ तहाँ बेकाम।
ऐसे हरुए को धर्‍यो कहा जान मन नाम।
६—अद्भुत गति यह प्रेम की लखो सनेही आइ।
जुरै कहूं, टूटै कहूं, कहूं गाँठ परि जाइ।
७—कहनावत मैं यह सुनी पोषत तन को नेह।
नेह लगाये अब लगी सूखन सगरी देह।
८—यह बूझन को नैन ये लग लग कानन जात।
काहू के मुख तुम सुनी पिय आवन की बात।

९—जेहि मग दौरत निरदई तेरे नैन कजाक ।
तेहि मग फिरत सनेहिया किये गरेबां चाक ।
१०—लेउ न मजनूं गोर ढिग कोऊ लैला नाम ।
दरदवंत को नेक तौ लैन देउ बिसराम ।

इन पद्यो मे से छठे दोहे का उत्तरार्द्ध अक्षरशः बिहारीलाल के दोहे से ग्रहण कर लिया गया है । नवे दोहे मे गरेबा चाक' बिलकुल फ़ारसी का मुहावरा है । दसवे दोहे मे लैला मजनू मुस्लिम संसार के प्रेमी और प्रेमिका है, जिनकी चर्चा कवि ने अपनी रचना मे की है। ब्रजभाषा के नियमो का भी इन्होने कही कही त्याग किया है । चौथे दोहे के 'तोर' पाचवे दोहे के जान' और आठवे दोहे का लग लग' शब्दो के अन्तिम अक्षरो को ब्रजभाषा के नियमानुसार इकार युक्त होना चाहिये । कवि ने ऐसा नही किया । दसवे दोहे का 'दरदवंत' शब्द भी इन्होने गढ लिया है । 'दरद' फारसी शब्द है और वंत' संस्कृत प्रत्यय है इन दोनो को मिला कर जो कर्तृवाचक संज्ञा बनायी गई वह उनकी निरंकुशता है। इस प्रकार की शब्द-रचना युक्ति-संगत नही। उनकी रचना मे इस तरह की बाते अधिकतर पायी जाती है । फिर भी वह आदरणीय कही जा सकती है ।

इस शताब्दी के नीतिकार कवि, वृन्द, बैताल, गिरधर कविराय और वाघ है । इनकी रचनाओ ने हिन्दी संसार मे नूतनता उत्पन्न की है, अच्छे अच्छे उपदेशों और हितकर वाक्यों से उसे अलंकृत किया है । इसलिये मैं इन लोगो के विषय मे भी कुछ लिख देना आवश्यक समझता हू । इस उद्देश्य से भी उन लोगो के विषयमे कुछ लिखने की आवश्यकता है, जिससे यह प्रकट हो सके कि अट्ठारहवीं शताब्दी मे कुछ ऐसे नीतिकार कवि भी हुये जिन्होंने अपना स्वतन्त्र पथ रक्खा, फिर भी उनकी रचनामें ब्रजभाषा का पुट पाया जाता है । समाज के लिये नीति सम्बन्धी शिक्षा की भी यथा समय आवश्यकता होती है । इन कवियोंने इस बातको समझा और साहित्य के इस अंग की पूर्ति की, इस लिये भी उनकी चर्चा यहाँ आवश्यक है ।

वृन्द औरंगजेब के दरबारी कवि थे। यह देखा जाता है कि अकबर के समय से ही मुगल सम्राटों के दरबार में कुछ हिन्दी कवियों का सम्मान होता आया है। अकबर के बाद जहांगीर और शाहजहां के दरबारों में भी हिन्दी-सत्कवि मौजूद थे। इसी सूत्र से औरंगजेब के दरबार में भी वृन्द का सम्मान था। औरंगजेब के पौत्र अज़ीमुश्शान ने ब्रजभाषा और उर्दू दोनों में अच्छी रचनायें की हैं। वृन्द प्राय उन्हीं के साथ रहते थे। अज़ीमुश्शान बंगाल, बिहार एवं उड़ीसे का सूबेदार था। वह ढाके में रहता था और वृन्द को भी अपने साथ ही रखता था। बिहारी लाल ने यदि शृंगार रस की सतसई बनाई तो वृन्द ने नीति सम्बन्धी विषयों पर सतसई की रचना कर ब्रजभाषा को एक उपयोगी उपहार अर्पण किया। कहा जाता है कि वृन्द संस्कृत और भाषा के विद्वान् थे और गौड़ ब्राह्मण कुल में उत्पन्न हुये थे। वे कृष्णगढ़ के राजा राजसिंह के गुरु थे, मारवाड़ प्रांत उनका जन्म स्थान था। वृन्दके तीन ग्रंथ बतलाये जाते हैं, 'शृंगार शिक्षा', 'भावपंचाशिका' और 'वृन्द सतसई'। प्रधानता वृन्द सतसई को ही प्राप्त है, यही उनका प्रसिद्ध ग्रंथ है। उनकी रचनायें सरस एवं भावमयी हैं और कोमल शब्दों में की गयी हैं। उनका वाच्यार्थ प्रांजल है और कथन-शैली मनोहर। उपयोगिता की दृष्टि से वृन्द सतसई आदरणीय ग्रन्थ है, उसका यथेष्ट सम्मान हुआ भी। ग्रन्थ की भाषा साहित्यिक ब्रजभाषा है। नीति विषयक रचना होने पर भी वह कवितागत विशेषताओं से रहित नहीं है। कुछ पद्य देखिये —

१—जो कछु वेद पुरान कही
सुन लीनीसबै जुग कान पसारे।
लोकहुं में यह ख्यात प्रथा छिन में
खल कोटि अनेकन तारे।
वृन्द कहै गहि मौन रहे किमि हौं
हठि कै बहु बार पुकारे।

बाहर ही के नहीं सुनौ हे हरि
भीतर हूं ते अहौ तुम कारे।
२—जो जाको गुन जानही सो तेहि आदर देत।
कोकिल अंबहि लेत है काग निबौरी हेत।
३—ओछे नर की प्रीति की दीनी रीति बताय।
जैसे छीलर ताल जल घटत घटत घटि जाय।
४—करिये सुख को होत दुख यह कहु कौन सयान।
वा सोने कौ जारिये जासों टूटै कान।
५—भले बुरे सब एक सों जौ लौं बोलत नाहिं।
जानि परत हैं काक पिक ऋतु बसंत के मांहिँ।

इनके दोहो मे विशेपता यह है कि प्रथमार्ध मे जो बिपय कहा गया है उत्तरार्द्ध मे दृष्टात देकर उसी को पुष्ट किया गया है। यह दृष्टान्तालंकार का रूप है। इस प्रणाली के ग्रहण से उन्होने जो बात कही है उसको अधिक पुष्टि प्राप्त हो गयी है और इसी से इनकी सतसई की उपयोगिता बहुत बढ गई है। वृन्द पहले कवि है जिन्होने इस मार्ग को ग्रहण कर पूरी सफलता लाभ की। स्फुट श्लोक और दोहे इस प्रकार के मिलते है, परंतु ऐसे सात सौ दोहो का एक ग्रन्थ निर्माण कर देना वृन्द का ही काम था इस दृष्टि से ब्रजभाषा साहित्य मे उनका बिशेप स्थान है।

नीति विपयक रचनाओ मे वृन्द के बाद बैताल का ही स्थान है। वे जातिके बंदीजन थे और चरखारी के राजा विक्रमशाह के दरबार मे रहते थे। उनका कोई ग्रन्थ नही है। परन्तु स्फुट छप्पय अधिक मिलते हैं जो नीति-सम्बन्धी है। उनकी मुख्य भाषा व्रजभाषा है, परन्तु वे शब्द विन्यास मे अधिक स्वतंत्र है। कभी ग्रामीण शब्दों का प्रयोग करने लगते हैं, कभी बैसवाडी और अवधी का। उनकी भापा चलती और प्राजल अवश्य है। भाव प्रकाशन-शेली भी सुन्दर है, यद्यपि उसमे कहीं कहीं उच्छृङ्खलता पायी जाती है। वे इच्छानुसार शब्द और मुहावरे भी गढ़

लेते हैं, फारसी और श्रुति कटु शब्द का प्रयोग भी ऐसे ढंग से करते है जिससे भाषा पर उनका पूर्ण अधिकार नहीं पाया जाता। रोचकता उनकी रचना मे है, साथ ही कटुता भी। कुछ पद्य उनके देखिये --

१—दया चट्ट ह्वै गई धरम धँसि गयो धरन में।
पुन्न गयो पाताल पाप भो बरन बरन में।
राजा करै न न्याय प्रजा की होत खुआरी।
घर घर में बे पीर दुखित भे सब नर नारी।
अब उलटि दान गजपति मँगै सील सँतोष कितै गयो।
बैताल कहै बिक्रम सुनो यह कलियुग परगट भयो।

२—ससि बिनु सूनी रैनि ज्ञान बिनु हिरदय सूनो।
कुल सूनो बिनु पुत्र पत्र बिनु तरुवर सूनो।
गज सूनो इक दंत ललित बिनु सायर सूनो।
बिप्र सून बिनु बेद और बन पुहुप बिहूनो।
हरि नाम भजन बिनु संत अरुघटा सून बिनु दामिनी
बैताल कहै बिक्रम सुनो पति बिनु सूनी कामिनी।

३—बुधि बिनु करै बेपार दृष्टि बिनु नाव चलावै।
सुर बिन गावै गीत अर्थ बिनु नाच नचावै।
गुन बिन जाय बिदेस अकल बिन चतुर कहावै।
बल बिन बाँधे जुद्ध हौस बिन हेत जनावै।
अन इच्छा इच्छा करे अन दीठी बातां कहै।
बैताल कहै बिक्रम सुनो यह मूरख की जात है।

४—पग बिन कटे न पन्थ बाहु बिन हटे न दुर्जन।
तप बिन मिलै न राज्य भाग्य बिन मिलै न सज्जन।

गुरु बिन मिलै न ज्ञान द्रव्य बिन मिलै न आदर।
बिना पुरुष शृंगार मेघ बिन कैसे दादुर।
बैताल कहै विक्रम सुनो बोल बोल बोली हटे।
धिक धिक ता पुरुष को मन मिलाइ अन्तर कटे।

चिन्हित शब्दों और वाक्यो को देखिये। उनसे ज्ञात हो जावेगा कि जो दोष मैने उनकी रचना मे बतलाये है, वे सब उनमे विद्यमान है। फिर भी उपयोगिता-दृष्टि से बैताल की रचना सम्मान योग्य है।

गिरधर कविराय इस शताब्दी के तीसरे नीतिकार है। इन्हो ने अपनी प्रत्येक कुंडलिया के अन्त मे अपने को गिरधर कविराय लिख कर प्रकट किया है। कविराय शब्द यह बतलाता है कि वे जाति के ब्रह्म-भट्ट थे। किसी दरबार से इनका सम्बन्ध नही पाया जाता। यदि हो भी तो इस विषय मे कहीं कुछ लिखा नहीं मिलता। जिस भाषा मे उन्हो ने अपनी रचनाये की है उससे ये अवध प्रान्त के मालूम होते है। इनकी भाषा मे खडी बोली, अवधी (बैसवाड़ी) और ब्रजभाषा तीनो का मेल है। भाषा का झुकाव अधिकतर अवधी की ओर है। ये अनगढ और भद्दे शब्दों का प्रयोग भी कर जाते है, जिससे भाषा प्राय कलुषित हो जाती है। ये सब दोष होने पर भी इनमे सीधे सादे शब्दो में यथार्थ बात कहने का अनुराग पाया जाता है, जो गुण है। इसी से इनकी रचनाये अधिकतर प्रचलित भी है। इस कवि का उद्देश्य जनता मे नीति-सम्बन्धी बातो का प्रचार करना ज्ञात होता है। इसलिये उसने ठेठ ग्रामीण शब्दो के प्रयोग करने मे भी संकोच नहीं किया। इनका कोई ग्रन्थ नहीं मिलता। स्फुट रचनाये ही पायी जाती है जो कुछ लोगो के कण्ठ से सुनी जाती है। जो पठित नहीं है उनके मुख से भी कभी कभी कविरायजी की कुंडलिया सुन पडती है। इससे उनकी रचना की व्याप-कता प्रकट होती है। यह तो नहीं कहा जा सकता कि सन्तों की बानियो के समान उनकी रचना मे भी साहित्यिकता नहीं मिलती, किन्तु यह सत्य

है कि उनका शब्द-विन्यास संयत नहीं। वे ऊटपटॉग बाते नहीं कहते, परंतु ऊटपटॉग शब्दो से अवश्य काम लेते है। उनके कुछ पद्य देखिये और उन शब्दो और वाक्यो पर भी विचार-दृष्टि डालते जाइये जो चिन्हित है —

१—रहिये लटपट काटि दिन बरु घामे मां सोय।
छॉह न वाकी बैठिये जो तरु पतरो होय।
जो तरु पतरो होय एक दिन धोखा दैहै।
जा दिन बहै बयारि टूटि तब जर से जैहै।
कह गिरधर कविराय छाँह मोटे की गहिये।
पाता सब झरि जाय तऊ छाया में रहिये।

२—साँईं घोड़े आछतहि गदहन पायो राज।
कौआ लीजे हाथ में दूरि कीजिये बाज।
दूरि कीजिये बाज राज पुनि ऐसो आयो।
सिंह कीजिये कैद स्यार गजराज चढ़ायो।
कह गिरधर कविराय जहाँ यह बूझि बड़ाई।
तहाँ न कीजे भोर साँझ उठि चलिये साँईं।

३—साँईं बेटा बाप के बिगरे भयो अकाज।
हरिनाकस अरु कंस को गयउ दुहुन को राज।
गयउ दुहुँन को राज बाप बेटा में बिगरे।
दुसमन दावादार भये महिमंडल सिगरे।
कह गिरिधर कविराय युगन याही चलि आई।
पिता पुत्र के बैर नफा कहु कौने पाई।

४--बेटा बिगरे बाप सों करि तिरियन सों नेहु।
लटापटी होने लगी मोहिँ जुदा करिदेहु।
मोहि जुदा करि देहु घरी मां माया मेरी।
लैहौं घर अरु द्वार करौं मैं फजिहत तेरी।
कहगिरिधर कविराय सुनो गदहा के लेटा।
समै पर्‍यो है आय बाप से झगरत बेटा।

इनको दो सरस रचनाये भी सुनिये —

५—पानी बाढ़ो नाव में घर में बाढ़ो दाम।
दोनों हाथ उलीचिये यही सयानो काम।
यही सयानो काम राम को सुमिरन कीजै।
परस्वारथ के काज सीस आगे धरि दीजै।
कहगिरिधर कबिराय बड़ेन की याही बानी।
चलिये चाल सुचाल राखिये अपनो पानी।

६—गुन के गाहक सहस नर बिनु गुन लहै न कोय।
जैसे कागा कोकिला सब्द सुनै सब कोय।
सब्द सुनै सब कोय कोकिला सबै सुहावन।
दोऊ को एक रंग काग सब भये अपावन।
कह गिरिधर कविराय सुनौ हो ठाकुर मन के।
बिनु गुन लहै न कोय सरस नर गाहक गुन के।

इनकी एक श्रृंगार रसकी रचना भी सुनिये —

७—सोना लादन पिय गये सूना करि गये देस।
सोना मिला न पिय मिले रूपा ह्वै गये केस।

रूपा ह्वै गये केस रोय रँग रूप गँवावा।
सेजन को बिसराम पिया बिन कबहुँ न पावा।
कह गिरिधर कविराय लोन बिन सबै अलोना।
बहुरि पिया घर आउ कहा करिहौं लै सोना।

इनके किस किसी पद्य मे साँईं शब्द मिलता है। यह किंवदन्ती है कि जिन कुंडलियाओ मे साँईं शब्द आता है वे उनकी स्त्री की बनाई हुई है। सम्भव है कि ऐसा हो। परन्तु निश्चित रूप से कोई बात नहीं कही जा सकती। जो दो सरस पद्य मैंने ऊपर लिखे है और एक पद्य जो श्रृंगार रस का लिखा गया है उनसे कवि का सरस हृदय होना स्पष्ट है। श्रृंगार रस के पद्य मे कितनी भावुकता है! इसका वाच्यार्थ कितना साफ़ है। मेरी सम्मति है कि गिरिधर कविराय वास्तव मे कवि हृदय थे। हाँ, कुछ पद्यो में वे असयत शब्द-प्रयोग करते देखे जाते है। इसका कारण पद्य गत बिपय के यथार्थ चित्रण की चेष्टा है। प्रमाण-स्वरूप चौथे पद्य को देखिये। शिष्टता को दृष्टि से उसमे असंयत-भाषिता अवश्य है। परन्तु विषयानुसार वह बुरा नही कहा जा सकता। इस दृष्टि से अपने इस प्रकार के प्रयोगो के बिषय मे वे इस योग्य नहो कि उन पर कटाक्ष किया जाय। उनकी भाषा मे भी अधिकतर अवधी और व्रजभाषा के ही शब्द आते है। अन्य भाषा के या ग्रामीण शब्द जो यत्र तत्र आ गये है उनके लिये केवल इतना ही कहा जा सकता है कि वे यदि और अधिक संयत होते तो अच्छा था। कुछ लोगो की सम्मति है कि बेताल की भाषा इनकी भाषा से अच्छी है। निस्संदेह शब्द-विन्यास मे बेताल उनसे अधिक संयत है। परंतु दोनो के हृदय मे अंतर है। वे असरस हृदय है और ये सरस-हृदय।

घाघ कौन थे, किस जातिके थे, यह नही कहा जा सकता। उनका नाम भी विचित्र है। उससे भी उनके विषयमें कुछ अनुमान नही किया जा सकता। कुछ लोग कहते है, वे कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे वे जो हों परंतु उनके अनुभवी पुरुष होनेमें सन्देह नहीं। उन्होंने जितनी बाते कही है, वे सब नपी-तुली है

और उनमे समाजके मानसिक भावो का अनेक स्थल पर सुन्दर चित्र है। उन्होंने ऋतुओंके परिवर्त्तन और कृषि आदिके विषयमे कुछ बाते ऐसी कही है जिनसे समय-ज्ञान पर उनका अच्छा अधिकार पाया जाता है। कैसी हवा बहने पर कितनी वृष्टि होने की आशा होती है वर्षाके किन नक्षत्रोंका क्या प्रभाव होता है, और किस नक्षत्र मे कृषिकार्य्य किस प्रकार करने से क्या फल होगा, इन सब बातो को उन्होने बडे अनुभव के साथ कहा है। भाषा उनकी ग्रामीण है और उसमे अवधी एवं बैसवाडी का मिश्रण पाया जाता है, उसमे ग्रामीणों की बोल चाल और मुहावरों का भी बहुत सुंदर व्यवहार है। उनके कथन मे प्रवाह है और भाषा उनकी चलती है। कुछ रचनाये तो उनकी ऐसी है जो समाज के हृदय का दर्पण है। यही कारण है कि उनकी रचनाओं का युक्त प्रान्त के पूर्वी भाग मे अधिक प्रचार है। प्रचार ही नहीं, उसके अनुसार लोग किसानी का काम करने मे ही सफलता की आशा करते है। मूर्ख किसानो को भी उनकी रचनाओं को पढते और उनके अनुसार कार्य करते देखा जाता है। नीति और लौकिक व्यवहार-सम्बन्धी बाते भी उन्होंने अधिकता से कही है। उनकी रचना मे विशेषता यह है कि जिस भाषा में उन्होंने रचना की है उस पर उनका पूरा अधिकार ज्ञात होता है। उनकी दृष्टि इस ओर भी पाई जाती है कि उसमे सरलता और स्वाभाविकता की न्यूनता न हो। उनके कुछ पद्य देखिये'—

१—भुइयां खेड़े हर होइ चार।
घर होइ गिहिथिन गऊ दुधार।
रहर दाल जड़हन का भात।
गागल निबुआ औ घिउ तात।

२—सहरस खंड दही जो होइ।
बाँके नैन परोसै जोइ।
कहै घाघ तब सबही झूठा।
उहां छाड़ि इहवैं बैकूंठा।

३—नसकट खटिया दुलकन घोड़ ।
कहै घाघ यह बिपति क ओर ।
बाछा बैल पतुरिया जोय ।
ना घर रहै न खेती होय ।

४—बनियां क सखरज ठकुर क हीन ।
बैद क पूत रोग नहि चीन्ह ।
पंडित चुप चुप बेसवा मइल ।
कहै घाघ पाँचों घर गइल ।

५—माघ क ऊषम जेठ क जाड़ ।
पहिले बरषे भरि गये गाड़ ।
कहै घाघ हम होब बियोगी ।
कुआँ खोदि कै धोइहैं धोबी ।

६—मुये चाम से चाम कटावै ।
सकरी भुइं महँ सोवै ।
कहै घाघ ये तीनों भकुआ ।
उढरि गये पर रोवै ।

७—गया पेड़ जब बकुला बैठा ।
गया गेह जब मुड़िया पैठा ।
गया राज जहँ राजा लोभी ।
गया खेत जहँ जामी गोभी ।

८—नीचे ओद उपर बदराई ।
कहै घाघ तब गेरुई खाई ।
पछिवाँ हवा ओसावै जोई ।
घाघ कहै घुन कबहुं न होई ।

घाघ की रचनाये ग्रामीण भाषा मे होने के कारण प्रायः हिन्दी साहित्य के इतिहासकारो ने उनकी उपेक्षा की है। परन्तु मैं समझता हू कि ऐसा करना उचित नही। घाघ ने जिस भाषा मे अपनी रचना की है वह हिन्दी ही है और वास्तव मे बोलचाल की भाषा है। साथ ही उनकी उक्तिया उपयोगिनी है। इस लिये उनकी रचना का महत्व कम नहीं। जिस समय ब्रजभाषा और अवधी मे रचना हो रही थी, उस समय एक ग्रामीण भाषा को रचना लेकर घाघ का सामने आना साहस का काम था उनका यह साहस प्रशंसनीय है, निन्दनीय नही। विषय की दृष्टि से भी उनकी रचना कम आदरणीय नही। उनकी रचनाओ मे वह अनुभव भरा हुआ है, जिसका ज्ञान सब के लिये समान हित कारक है।

इन्ही नीतिकार कवियो के साथ प्रीतम कवि की चर्चा भी उचित जान पडती है। इनका असली नाम मुहिब्ब खा था। ये आगरे के रहने वाले थे। इन्होंने 'खटमलबाईसी' नामक एक छोटे से ग्रंथ की रचना की है, जिसमे बाईस कवित्त हास्य रस के है। शायद यही हिन्दी संसार का एक ऐसा कवि है जिसने एक रस पर इतनी थोडी रचना करके बहुत कुछ प्रसिद्धि प्राप्त की। हास्य रस की चर्चा होने पर प्रीतम को हिन्दी संसार का प्रत्येक सहृदय कवि प्रीति के साथ स्मरण करता है और उनकी रचनाओ को पढकर खिलखिला उठता है। उनकी रचना सरस है और साहित्यिक ब्रजभाषा मे लिखी गयी है। उसमे प्रतिभा झलकती है और वह चमत्कार दृष्टिगत होता है जो हास्य रस का चित्र सामने खडा कर देता है। दो पद्य देखिये –

१—जगत के कारन करन चारों बेदन के
कमल में बसे वै सुजान ज्ञान धरिकै।
पोषन अवनि दुख सोषन तिलोकन के
समुद में जाय सोये सेस सेज करिकै।
मदन जरायो जो सँहारैं दृष्टि ही में सृष्टि
बसे हैं पहार वेऊ भाजि हरिबरिकै।

बिधि हरि हर और इनसे न कोऊ
तेऊ खाट पै न सोवैं खटमलन सों डरिकै ।
२—बाघन पै गयो देखि बनन मैं रहैं छकि
साँपन पै गयो ते पताल ठौर पाई है ।
गजन पै गयो धूलि डारत हैं सीस पर
वैदन पै गयो काहू दारू ना बताई है ।
जब हहराय हम हरि के निकट गये
हरि मों सों कही तेरी मति भूल छाई है ।
कोऊ ना उपाय भटकति जिन डोलै सुन
खाट के नगर खटमल की दोहाई है ।

इस शताब्दी मे तीन प्रसिद्ध प्रबधकार भी हुये है। एक सूदन, दूसरे ब्रजबासी दास और तीसरे मधुसूदन दास। सूदन माथुर ब्राह्मण थे और भरतपुर के राजा सूरजमल के यहाँ रहते थे। भूषण और गोरे लाल के उपरात हिन्दो संसार के वीर रस के अन्यतम प्रसिद्ध कवि सूदन ही है। इनका सुजान चरित्र बडा विशद ग्रन्थ है, इसमे उन्हो ने सूरजमल के अनेक युद्धो का वर्णन बडी ही ओज पूर्ण भाषा मे किया है। इस ग्रन्थ की भाषा खडी बोल चाल मिश्रित ब्रजभाषा है। इसमे उनकी पंजाबी भाषा की कुछ रचनाये भी मिलती है। इसका कारण यह है कि प्रसंग वश जब किसी पजाबी से कुछ कहलाना पडा है तब उसको उससे उन्होने पंजाबी भाषा मे ही कहलाया है इसलिये उनकी कृति में पंजाबी शब्दोंका प्रयोग भी मिलता है। किंतु उनकी संख्या थोडी है। अपने इस एक ग्रंथ के कारण ही हिन्दी संसार मे सूदन को वीर रस के कवियो मे एक विशेष स्थान प्राप्त है। इनके ग्रंथ मे नाना छंद है, उनमे कवित्तो की संख्या भी पर्याप्त है। दशम ग्रंथ साहब मे वीर रस के जैसे 'तागिडदं तीरं' इत्यादि छंद लिखे गये है उसी प्रकार और उसी ढंग के कितने छंद इस ग्रंथ मे भी है। कुछ पद्य नीचे लिखे जाते है : —

१—एकै एक सरस अनेक जे निहारे तन
भारे लाज भारे स्वामि काज प्रतिपाल के।
चंग लौं उड़ायो जिन दिली की वजीर भोर
मारी बहु मीरन किये हैं बेहवाल के।
सिंह बदनेस के सपूत श्री सुजान सिंह
सिंह लौं झपटि नख दीन्हें करवाल के।
वेई पठनेटे सेल सांगन खखेटे
भूरि धूरि सों लपेटे लेटे भेंटे महाकाल के।
२—सेलन धकेला ते पठान मुख मैला होत
केते भट मेला हैं भजाये भ्रुव भंग मैं।
तंग के कसेते तुरकानी सब तंग कीनी
दंग कीनी दिली औ दुहाई देत बंग मैं।
सूदन सराहत सुजान किरवान गहि
धायो धीर धारि बीरताई की उमंग मैं।
दक्खिनी पछेला करि खेला तैं अजब खेल
हेला मारि गंग मैं रुहेला मारे जंग मैं।
३—बंगन के लाज मऊ खेत की अवाज यह
सुने ब्रजराज ते पठान वीर बबके।
भाई अहमद खान सरन निदान जानि
आयो मनसूर तौ रहै न अब दब के।
चलना मुझे तो उठ खड़ा होना देर क्या है
बार बार कहेते दराज सीने सब के।
चण्ड भुज दण्ड वारे हयन उदण्ड वारे
कारे कारे डोलनि सवारे होत रब के।

एक पद्य इनका और सुनिये, जिस में श्रीमती पार्वती अपने घर का विचित्र हाल वर्णन कर रही हैं —

आप विष चाखै भैया षट मुख राखै
देखि आसन मैं राखै बसवास जाको अचलै।
भूतन के छैया आस पास के रखैया
और काली के नथैया हूं के ध्यान हूं ते न चलै।
बैल बाघ वाहन वसन को गयन्द खाल
भांग को धतूरे को पसारि देत अँचलै।
घर को हवाल यहै संकर की बाल कहै
लाज रहै कैसे पूत मोदक को मचलै।

सूदन की रचना की विशेषता यही है कि उन्हो ने प्रौढ भाषा मे वीर रस का एक उल्लेखनीय ग्रन्थ लिखा। ये व्रजभूमि के ही निवासी थे और व्रजराज कहलाने वाले राज दरबार मे रहते थे इसलिये वे अपने ग्रंथ को साहित्यिक व्रजभाषा मे ही लिख सकते थे। परन्तु उन्हो ने ऐसा नहीं किया। अनेक भाषाओं पर अपना अधिकार प्रकट करने के लिये पंजाबी और खडी बोली के वाक्य और शब्द भी उस मे मिलाये। ऐसा करने से उनको अनेक भाषाभिज्ञता तो प्रकट हुई परन्तु व्रजभाषा की साहित्यिकता सुरक्षित न रह सकी। उनकी व्रजभाषा उतनी प्रौढ नहीं है जितनी उसे होना चाहिये था। फिर भी सुजान चरित्र मे उसका बडा सुन्दर साहित्यिक रूप कहीं कहीं दृष्टिगत होता है, जिससे उनका कविकर्म्म अपनी महत्ता बनाये रखता है।

व्रजबासी दास अपने 'व्रजविलास' के कारण बहुत प्रसिद्ध है। ये जाति के ब्राह्मण और वल्लभ सम्प्रदाय के शिष्य थे। मथुरा या वृन्दावन में इनका निवास था। इन्हों ने संस्कृत 'प्रबोध चन्द्रोदय' नाटक का विविध छन्दो में अनुवाद किया परन्तु यह ग्रन्थ सर्व साधारण को उतना

प्रिय नहीं हुआ जितना 'व्रज विलास' व्रज विलास को रचना उन्हो ने सूरदास के पदों के आधार से की है। वरन यह कहा जा सकता है कि उनके पदों को, चौपाइयों, दोहाओं सोरठाओ और विविध छन्दों मे परिणत कर दिया है। ये स्वयं इसको स्वीकार करते है। यथा —

भाषा को भाषा करौं छमिये सब अपराध।
जेहि तेहि विधि हरि गाइये कहत सकल श्रुति साध।
या मैं कछुक बुद्धि नहि मेरी।
उक्ति युक्ति सब सूरहि केरी।
मोते यह अति होत ढिठाई।
करत विष्णु पद की चौपाई।

व्रजवासी दास का यह महत्व है कि वे व्रजविलास को रचना से अपनी प्रतिभा का कोई सम्बन्ध स्वीकार नही करते। परंतु उसमे उनका निजस्व भो देखा जाता है। उन्होने स्थान २ पर कथाओको संगठित रूपमे इस सरलता के साथ कहा है कि उनमे विशेष मधुरता आ गयी है। यह उनकी भावमयो और सरस प्रकृति काही परिणाम है। उन्होने गोस्वामी जी का अनुकरण किया है, परन्तु उनकी भाषा साहित्यिक व्रजभाषा है, जिससे सरसता टपकी पडती है। उनके ग्रंथ का शब्द-विन्यास इतना कोमल है और उसमे कुछ ऐसा आकर्षण मिलता है जो स्वभावतया हृदयो को अपनो ओर खीच लेना है। उनके इस ग्रंथ का प्रचार भो अधिक है, विशेष कर व्रजप्रात और युक्त प्रान्त के पश्चिमोय भाग मे।' प्रवोध चन्द्रोदय' का अनुवाद मेरे देखने मे नही आया। सुना है उसको भाषा भी ऐसी ही ललित है। मैं उनके कुछ पद्य व्रजविलास से उठाता हू। उनके पढने से आपको यह अनुभव होगा कि उनको रचनामे कितना लालित्य है। चन्द्रमा को देख कर कृष्णचन्द्र मचल गये है और उसको लेना चाहते है। माताने एक थाली मे जल भर कर चन्द्रमा को उनके पास पकड मँगाया। उसी समय का यह वर्णन है। देखिये उसकी मनोहरता और स्वाभाविकता. —

लेहु लाल यह चन्द्र मैं लीन्हों निकट बुलाय।
रोवै इतने के लिये तेरी स्याम बलाय।
देखहु स्याम निहारि या भाजन में निकट ससि।
करी इती तुम आरि जा कारन सुन्दर सुअन।
ताहि देखि मुसुकाइ मनोहर।
बारबार डारत दोऊ कर।
चंदा पकरत जल के माहीं।
आवत कछू हाथ में नाहीं।
तब जल पुट के नीचे देखे।
तहँ चंदा प्रतिबिंब न पेखे।
देखत हँसीं सकल व्रज नारी।
मगन बाल छबि लखि महतारी।
तबहि स्याम कछु हँसि मुसकाने।
बहुरो माता सों बिरुझाने।
लउँगौ री या चंदा लउँगौ।
वाहि आपने हाथ गँहूगौ।
यह तो कलमलात जल माहीं।
मेरे कर में आवत नाहीं।
बाहर निकट देखियत नाहीं।
कहौ तो मैं गहि लावौं ताही।
कहत जसोमति सुनहु कन्हाई।
तुअ मुख लखि सकुचत उडुराई।
तुम तेहि पकरन चहत गुपाला।
ताते ससि भजि गयो पताला।

अब तुमते ससि डरपत भारी।
कहत अहो हरि सरन तुम्हारी।
बिरुझाने सोये दै तारी।
लिय लगाय छतियां महतारी।
लै पौढाये सेज पर हरि को जसुमति माय।
अति बिरुझाने आज हरि यह कहि कहि पछिताय।

देखिये इस पद्य मे वालभाव का अथच माता के प्यार का कितना स्वाभाविक वर्णन है। निस्सन्देह यह प्रवाह सूर-सागर से आया है। परन्तु उसको अपने ढंग से प्रवाहित कर व्रजवासी दास ने बहुत कुछ सहृदयता दिखलायी है और यही उनका निजस्व है। जो लोग सूर-सागर मे धँस कर उसका पूर्ण आनन्द लाभ करने के अधिकारी नहीं है उनके लिये व्रजविलास को रचना है जो सर्व साधारण के हृदय में चिरकाल से आनन्द रस-धारा बहाती आयी है।

मधुसूदन दास माथुर चौबे थे इन्होंने रामाश्वमेध' नामक एक बडा मनोहर प्रवन्ध काव्य लिखा है, इसको संस्कृत रामाश्वमेध का अनुवाद नहीं कह सकते। यह अवश्य है कि उसी के आधार से इस ग्रंथ की रचना हुई है। परन्तु मधुसूदन दास ने अनेक स्थानों पर स्वतंत्र पथ भी ग्रहण किया है। उनके इस ग्रन्थ को हम रामचरित मानस का परिशिष्ट कह सकते है रामाश्वमेधकार ने राम चरित मानस का हो अनुकरण किया है और उसमे अधिकतर सफलता लाभ की है। उनकी यह रचना कही कहीं रामचरित मानस को भाषा से इतनी मिल जाती है कि वह ठीक गोस्वामी जी की कृति जान पडती है। अवधो भाषा ही मे यह ग्रंथ लिखा गया है। परन्तु गोस्वामी जी की रचना के समान उसमें भी सँस्कृत के तत्सम शब्द अधिक आते है। उनको भाषा को हम परिमार्जित अवधी कह सकते है जिसमें कहीं कहीं गोस्वामी जी के समान ही व्रजभाषा का पुट पाया जाता है। इस ग्रंथ का प्रचार बहुत कम हुआ, परन्तु ग्रंथ सुंदर और पठनीय है। इसके कुछ पद्य देखियेः—

सिय रघुपति पद कंज पुनीता।
प्रथमहि बंदन करौं सप्रीता।
मृदु मंजुल सुन्दर सब भाँती।
ससि कर सरिस सुभग नखपाँती।
प्रणत कल्पतरु तरु सब ओरा।
दहन अज्ञ तम जन चित चोरा।
त्रिविध कलुष कुंजर घनघोरा।
जग प्रसिद्ध केहरि बरजोरा।
चिंतामणि पारस सुर धेनू।
अधिक कोटि गुन अभिमत देनू।
जन मन मानस रसिक मराला।
सुमिरत भंजन बिपति बिसाला।

इस शताब्दी मे निर्गुण बादियों मे चरन दास का नाम ही अधिक प्रसिद्ध है। उनके बाद उनकी शिष्या सहजोबाई और दयाबाई का नाम लिया जा सकता है। चरन दास जो राजपुताना-निवासी थे। कहा जाता है कि उन्नीस वर्ष की अवस्था में उनको वैराग्य हो गया था। वे बाल ब्रह्मचारी थे। उनके शिष्यो की संख्या बावन बतलायी जाती है। उनकी बावन गद्दिया अबतक वर्त्तमान है। उनके पंथवाले चरन दासी कहलाते है। उनके दो ग्रन्थ मिलते है, एक का नाम है 'ज्ञान स्वरोदय' और दूसरे का 'चरन दास की बानी' दादूदयाल का जो सिद्धान्त था लगभग वही सिद्धान्त उनका भी था। कबीर पंथ की छाया भी उनके पंथ पर पडी है। वे भी एक प्रकार से अपठित थे उनकी भाषा भी संत बानियो की सी ही है। उसमे किसी भाषा का विशेष रंग नही। परन्तु ब्रजभाषा के शब्द उसमें अधिक मिलते है और कही कहीं राजस्थानी की झलक भी दृष्टिगत होती है। 'स्वरोदय' की रचना जटिल है। उसमे संस्कृत के तत्सम शब्द भी अधिक आये है, और वे कहीं कहीं उसमे अव्यवस्थित रूप मे पाये

जाते है जिसमे भाषा का माधुर्य्य बहुत कुछ नष्ट हो जाता है। यत्र तत्र छन्दोभंग भी है। उनके कुछ पद्य देखिये और जो चिन्हित शब्द है उन पर विशेष ध्यान दीजिये।

१—चार वेद का भेद है गीता का है जीव।
चरनदास लखु आप को तोमैं तेरा पीव।
२—मुक्त होय बहुरै नहीं जीव खोज मिटि जाय।
बुंद समुंदर मिलि रहै दुनिया ना ठहराय।
३—सूछम भोजन कीजिये रहिये ना पड़ सोय।
जल थोरा सा पीजिये बहुत बोल मत खोय।
४—सतगुरु मेरा सूरमा करै शब्द की चोट।
मारे गोला प्रेम का ढहै भरम का कोट।
५—धन नगरी धन देस है धनपुर पट्टन गाँव।
जहँ साधू जन उपजियो ताका बल बल जाँव।
६—जग माँही ऐसे रहो ज्यों अम्बुज सर माहि।
रहै नीर के आसरे पै जल छूवै नाहि।
७—दया नम्रता दीनता छिमा सील संतोष।
इनकहं लै सुमिरन करै निहचै पावै मोख।
८—चरनदास यों कहत हैं सुनियो संत सुजान।
मुक्ति मूल आधीनता नरक मूल अभिमान।
९—चंद सूर्ज दोउ सम करै ठोढ़ी हिये लगाय।
षट चक्कर को बेध कर शून्य शिखर को जाय।
१०—ब्याह दान तीरथ जो करै। बस्तर भूषण घरपगधरै।
११—दहिने स्वर झाड़े फिरै, बाएं लघुशंकाय।
मुक्ती ऐसी साधिये, दोनों भेद बताय।

सहजोबाई और दयाबाई दोनों चरनदास की शिष्या थीं और दोनों ही ढूसर वंश की थी। दोनों ही आजन्म उनकी सेवा मे रहीं और परमार्थ मे ही अपना जीवन व्यतीत किया। इन दोनो की गुरु-भक्ति प्रसिद्ध है। इनकी रचनाओं मे भी इसकी झलक पायी जाती है। भाषा इनदोनो की ब्रजभाषा है। परंतु निर्गुणवादियो का ढंग भी उसमे पाया जाता है। ये दोनो भी चित्त की उमंग से ही कविता करती थीं। उनके बोध पर सत्संग का प्रभाव था, पढी-लिखी वे थी या नहीं, इस विषय मे कहीं कुछ लिखा नही मिलता। सहजोबाई ने कोई ग्रंथ नहीं बनाया। उनकी स्फुट कवितायें पायी जाती है। उनमे से कुछ यहा लिखी जाती है.—

१—निश्चय यह मन डूबता लोभ मोह की धार।
चरनदास सतगुरु मिले सहजो लई उबार।
२—सहजो गुरु दीपक दियो नैना भये अनंद।
आदि अंत मध एक ही सूझि परै भगवंत।
३—जब चेतै जहँ ही भला मोह नींद सूं जाग।
साधू की संगति मिलै सहजो ऊंचे भाग।
४—अभिमानी नाहर बड़ो भरमत फिरत उजार।
सहजो नन्हीं बाकरी प्यार करै संसार।
५—सीस कान मुख नासिका ऊंचे ऊंचे नाँव।
सहजो नीचे कारने सब कोई पूजे पाँव।

दयाबाई का एक ग्रंथ है, जिसका नाम है 'दयाबोध'। उसके आधार से उनके कुछ पद्य नीचे दिये जाते है.—

१—बौरी ह्वै चितवत फिरूं हरि आवैं केहि ओर।
छिन उट्ठूं छिन गिरि परूं रामदुखी मन मोर।
२—प्रेम पुंज प्रगटै जहां तहां प्रगट हरि होय।
दयादया करिदेत हैं श्री हरिदरसन सोय।

३—दया कुँवरि या जगत में नहीं रह्यो थिर कोय।
जैसो बास सराय को तैसो यह जग होय।
४—बड़ो पेट है काल को नेक न कहूं अघाय।
राजा राना छत्र पति सबकूं लीले जाय।
५—दुख तजि सुख की चाह नहि नहि बैकुंठ विमान।
चरन कमल चित चहत हौं मोहि तुम्हारी आन।

उन्नीसवी शताब्दी जेसे भारतवर्ष के लिये एक विचित्र शताब्दी है वैसे ही हिन्दी भापाके लिये भी। इस शताब्दीमे धार्मिक, सामाजिक और राजनीतिक बडे २ परिवर्तन जिस प्रकार हुये वैसे ही भापा सम्बन्धी अनेक लौट फेर भी हुये। हिन्दी भाषा ही नही, भारतवर्ष की समस्त प्रान्तिक भाषाओं का काया कल्प इसी शताब्दी मे हुआ। उर्दू भाषा की नींव अठारहवीं शताब्दीके उत्तरार्ध मे पड चुकी थी। इस शताब्दी मे वह भी खूब फली फूली। मीर, इंशा जौक और नासिख ऐसे महाकविओं ने उसका लोकोत्तर श्रृंगार किया। मुसल्मान राज्य का वह अतिम प्रदीप जो दिल्ली मे धुँधली ज्योति धारण कर जलरहा था, उसका निर्वाण इसी शताब्दीमे हुआ। जिससे ब्रिटिश सूर्य्य अपनी अतुल आभा भारतवर्ष के प्रत्येक प्रान्तो मे विस्तार करने मे समर्थ हुआ। परिणाम उसका यह हुआ कि नवीन ज्योति के साथ नये नये भाव एव बहुत से नूतन विचार देश मे फैले और एक नवीन जागर्ति उत्पन्न हो गयी। इस जागर्ति ने भारत की वर्त्तमान सभ्यतामे हलचल मचा दी और उसमे नवीन आविष्कारो का उदय हुआ।

राजा राममोहन राय, परमहस राम कृष्ण स्वामी दयानद सरस्वती, स्वामी विवेकानद, स्वामी रामतीर्थ ऐसे धर्म संस्कारक, न्यायमूर्त्ति महादेव गोविन्द रानाडे ऐसे समाज सुधारक, दादा भाई नौरोजी लोकमान्य बालगंगाधर तिलक, माननीय गोपालकृष्ण गोखले, बाबू सुरेन्द्र नाथ बेनर्जी एवं महात्मा गाधी ऐसे राजनीतिक नेता, महर्षि मालवीय जैसे हिन्दू धम के रक्षक, समाज के उन्नायक अथच राजनीतिके धुरंधर संचालक इसी शताब्दी

मे उत्पन्न हुये। ऐसी दशा मे यदि साहित्य मे नव-स्फूर्ति उत्पन्न और हिन्दीभाषा को भी नवजीवन इस शताब्दी मे प्राप्त हो तो कोई आश्चर्य्य नही। क्योकि साहित्य सामाजिक भावो के विकास का ही परिणाम होता है। साहित्य के लिये अनुकूल भाषा की बडी आवश्यकता होती है। यही कारण है कि इस शताब्दी मे हिन्दी भाषा ने अपना कलेवर विचित्र रूप से बदला। उसमे यह परिवर्त्तन इस शताब्दी के उत्तरार्द्ध मे हुआ। पूर्वार्द्ध मे पूर्वागत परम्परा ही अधिकतर दृष्टिगत होती है, यद्यपि उसमे परिवर्तन के लक्षण प्रगट हो गये थे। मै क्रमश परिवर्तन प्रणाली को आप के सामने उपस्थित करूंगा।

इस शताब्दी मे निम्न-लिखित प्रसिद्ध गीति ग्रंथकार हुये है। क्रमश मै इनका परिचय आप को दूंगा और यह भी बतलाता चलूंगा कि इनके समय मे भाषा का क्या रूप था और उस पर समय का क्या प्रभाव पडा — पद्माकर ग्वाल राय रणधीर सिह लछिराम, गोविदगिल्लाभाई, प्रताप शाह।

पद्माकर का कविता काल अठारहवी शताब्दीसे प्रारम्भ होता है, किंतु उनकी प्रौढ कविता का काल यही शताब्दी है। इसलिये हमने इसी शताब्दी में उनको रक्खा है। हिन्दी साहित्य ससार मे पद्माकर एक विशेष स्थान के अधिकारी है। उनकी रचना मे ऐसा प्रवाह है जो हृदय को रस-सिक्त किये बिना नहीं रहता। शब्द विन्यास मे उन्होने ऐसी सहृदयता का परिचय दिया है जैसी महाकवियो मे ही दृष्टिगत होती है। भाव को मूर्त्तिमन्त बनाकर सामने लाना उनकी विशेषता है। शब्द मे झंकार पैदा करना, उसको भावचित्रण के अनुकूल बना लेना, अपनी उपज से उसमे अनोखे बेल बूटे तराशना, जिनमे रस छलकता मिले, ऐसी उक्तियो को सामने लाना उनकी रचना के विशेष गुण है। अनुप्रास एवं वर्ण मैत्री उनकी कविता का प्रधान अंग है, किन्तु इस सरसता और निपुणता से वे उसका प्रयोग करते है कि उनके कारण से न तो भाषा दब जाती है और न भाव के स्फुटन मे व्याघात उपस्थित होता है। जैसे

दर्पण में से आभा फूटती है, वैसे ही उनकी वाक्यावली मे से भाव विकसित होता रहता है। अलंकार इनकी कृति मे आते है, किंतु उसे अलंकृत करने के लिये, दुरूह बनानेके लिये नहीं, उनकी भापा साहित्यिक व्रजभाषा है। उसमे कहीं कहीं अन्य भाषा के शब्द भी आजाते है, परन्तु वे आभूपण मे नग का काम देते है। उन्होने कुछ भाव सस्कृत और भापा के अन्य कवियो के भी लिये है, किंतु उनको बिलकुल अपना बना लिया है। साथ ही उनमे एक ऐसो मौलिकता उत्पन्न कर दी है, जिससे यह ज्ञात होता है कि वे उन्हीं की सम्पत्ति है।

पदमाकर जी बडे भाग्यशाली कवि थे। वे उस वंश के रत्न थे जो सर्वदा बड़े बडे राजाओ, महाराजाओ द्वारा आदृत होता आया था। जितने राजदरबारो मे उन का प्रवेश हुआ और जितने राजाओं-महाराजाओ से उन्हे सम्मान मिला, हिन्दी संसार के किसी अन्य कवि को वह संख्या प्राप्त नही हुई। वे तैलंग ब्राह्मण थे। इसलिये उनकी पूजा कहीं गुरुत्व लाभ करके हुई, कही कवि-कर्म्म द्वारा। उनके पूर्व पुरुष भी विद्वान् और कवि थे और उनके पुत्र एव पौत्र भी। उनके पौत्र गदाधर हिन्दी संसार के परिचित प्रसिद्ध कवि है। वे कवि-कर्म्म मे तो निपुण थे ही, सम्मान प्राप्त करने में भी बड़े कुशल थे। उन्होने अनेक ग्रंथो की रचना की है। कहा जाता है कि रामरसायन' नामक एक राम-चरित्र सम्बन्धी प्रबंध काव्य भी उन्हो ने लिखा था। परंतु उसकी कविता ऐसी नहीं है जैसी उनके जैसे महाकवि की होनी चाहिये। इसलिये कुछ लोगों की यह सम्मति है कि वह ग्रंथ उनका रचा नहो है। उनका सबसे प्रसिद्ध ग्रंथ जगद्विनोद है, जो हिन्दी भाषा-कवि-कुल का कण्ठहार है। प्रबोध पचासा और गंगालहरी भी उनके सुंदर ग्रंथ है। इन ग्रंथों मे निर्वेद जैसा मूर्तिमन्त हो कर विराजमान है वैसी ही उनमे मर्म-स्पर्शिता भी है। पदमाकर के ग्रंथो की संख्या एक दर्जन से अधिक है, और उन सबों मे उनकी प्रतिभा सुविकसित मिलती है। उनमें से कुछ कवितायें नीचे लिखी जाती है:-

१—ब्याधहूँ ते बिहद असाधु हौं अजामिल लौं
ग्राह ते गुनाही कहो तिन में गिनाओगे।

स्योरी हौं न सूद हौं न केवट कहूं को
त्यों न गौतमी तिया हौं जापैपगधरि आओगे।
राम सों कहत पद्माकर पुकारि
तुम मेरे महापापन को पारहूं न पाओगे।
झूठो ही कलंक सुनि सीता ऐसो सती तजी
साँचो ही कलंकी ताहि कैसे अपनाओगे।

२—जैसो तैं न मोसों कहूं नेकहूं डरात हुतो
तैसो अब हौंहूं नेक हूं न तोसों डरिहौं।
कहै पद्माकर प्रचंड जो परैगो
तो उमंड करि तोसों भुजदंड ठोंकि लरिहौं।
चलो चलु चलो चलु बिचलु न बीच ही ते
कीच बीच नीच तौ कुटुंब कौ कचरिहौं।
एरे दगादार मेरे पातक अपार तोहि
गंगा की कछार में पछारि छार करिहौं।

३—हानि अरु लाभ जानि जीवन अजीवन हूं
भोगहूं वियोगहूं सँयोगहूं अपार है।
कहै पद्माकर इते पै और केते कहौं
तिनको लख्यो न वेदहूं मैं निरधार है।
जानियत याते रघुराय की कला कौ कहूं
काहू पार पायो कोऊ पावत न पार है।
कौन दिन कौन छिन कौन घरी कौन ठौर
कौन जानै कौन को कहा धौं होनहार है।

४—सोरह सिंगार कै नवेली के सहेलिन हूं
कीन्हीं केलि मन्दिर मैं कलपित केरे हैं ।
कहै पद्माकर सु पास ही गुलाब पास
खासे खस खास खुसबोइन के ढेरे हैं ।
त्यों गुलाब नीरन सों हीरन को हौज भरे
दम्पति मिलाय हित आरती उंजेरे हैं ।
चोखी चांदनीन पर चौरस चमेलिन के
चन्दन की चौकी चारु चांदी के चँगेरे हैं ।

५—चहचही चहल चहूंधा चारु चन्दन की
चन्द्रक चुनिन चौक चौकन चढ़ी है आब ।
कहै पद्माकर फराकत फ़रसबंद
फहरि फ़ुहारनि की फरस फ़बी है फाब ।
मोद मद माती मन मोहन मिलै के काज
साजि मन मन्दिर मनोज कैसो महताब ।
गोलगुलगादी गुल गोल में गुलाब गुल
गजक गुलाबी गुल गिंदुक गले गुलाब ।

६—कूलन में केलि में कछारन में कुंजन में
क्यारिन में कलिन कलीन किल कंत है ।
कहै पद्माकर परागन में पौन हूं मैं
पानन में पीक में पलासन पगंत है ।
द्वार में दिसान में दुनी मैं देस देसन मैं
देखौ दीप दीपन मैं दीपति दिगन्त है ।
बीथिन में ब्रज में नवेलिन में बेलिन में
बनन में बागन में बगर्यो बसन्त है ।

७—पात बिन कीन्हें ऐसी भांति गन बेलिन के
परत न चीन्हें जे ये लरजत लुंज हैं।
कहै पद्माकर बिसासी या बसन्त के सु
ऐसे उतपात गात गोपिन के भुंज हैं।
ऊधो यह सूधो सो सँदेसो कहि दीजो भलो
हरि सों हमारे ह्यां न फूले बन कुंज हैं।
किसुक गुलाब कचनार औ अनारन की
डारन पै डोलत अँगारन के पुंज हैं।

८—संपति सुमेर की कुबेर की जो पावै ताहि
तुरत लुटावत बिलम्ब उर धारै ना।
कहै पद्माकर सुहेम हय हाथिन के
हलके हजारन के बितर बिचारै ना।
दीन्हें गज बकस महीप रघुनाथ राय
याहि गज धोखे कहूँ काहू देइ डारै ना।
याहि डर गिरिजा गजानन को गोय रही
गिरि ते गरे ते निज गोद ते उतारै ना।

९—झांकति है का झरोखा लगो
लगि लागिबे को इहां फेल नहीं फिर।
त्यों पद्माकर तीखे कटाछनि की
सर कौ सर सेल नहीं फिर।
नैनन ही की घलाघल के घन
घावन को कछु तेल नहीं फिर।

प्रीति पयोनिधि मै धँसि कै हँसि कै
कढ़िबो हँसी खेल नहीँ फिर ।

१०—ए ब्रज चन्द चलौ किन वा ब्रज
लूकै बसन्त की ऊकन लागीं ।
त्यों पद्माकर पेखौ पलासन
पावक सी मनो फूँकन लागीं ।
वै ब्रजनारी बिचारी बधू बन
बावरी लौं हिये हूकन लागीं ।
कारी कुरूपकसाइनैं ये सु कुहू
कुहू कैलिया कूकन लागीं ।

ग्वाल कवि मथुरा के रहने वाले ब्रह्मभट्ट थे । जगदम्बा का उनको इष्ट था । वे प्रतिमावान कवि माने जाते हैं । कहा जाता है किसी सिद्ध तपस्वी की कृपा से यह प्रतिभा उनको प्राप्त हुई थी । उनके बनाये ग्रंथो की संख्या साठसे ऊपर है, जिनमे अधिकनर 'गोपी-पचीसी,' 'रामाष्टक', 'कृष्णाष्टक' और गणेशाष्टक आदि के समान छोटे छोटे ग्रन्थ हैं । उनके 'साहित्यानंद, 'साहित्य-दर्पण, 'साहित्य-दूषण' इत्यादि पाच चार बड़े ग्रन्थ है । इनमे साहित्य के समस्त अंगो का विशेष वर्णन है वे राज दरबारों मे घूमा करते थे । महाराज रणजीत सिंह से भी मिले थे । उन्हों ने इन्हे कुछ पुरस्कार भी दिया था । देशाटन अधिक करने के कारण उनको अनेक भाषाओं का ज्ञान था, उनमे उन्हो ने कविता भी की है। वेब्रज निवासीथे और ब्रजभाषापर उनको अधिकार भी था। परंतु स्वतंत्र प्रकृतिके थे, इसलिये उनकी रचनामें ब्रजभाषाके साथ खडी बोलीका मिश्रण भी है। उनकी कविता में जेसो चाहिये वैसो भावुकता भी नहीं । आन्तरिक प्रेरणाओ से लिखी गयी कविताओं मे जो बल होता है, उनकी रचनाओं मे वह कम पाया जाता है । उन्होंने बहुत अधिक रचनाये की है इस लिये सबमे कवि-कर्म्म का उचित निर्वाह नही हो सका, उनकी कविता मे प्रवाह पाया

जाता है, परन्तु यथेष्ट नही। उर्दू और फारसी शब्दो का प्रयोग उनकी कविता मे प्राय देखा जाता है। ज्ञात होता है कि उनपर उर्दू शायरी का भो कुछ प्रभाव था। उनके कुछ पद्य देखिये —

१—मोरन के सोरन की नेकौ ना मरोर रहो
घोर हूं रही न घन घने या फरद की।
अंबर अमल सर सरिता बिमल भल
पंक को न अंक औ न उड़नि गरद की।
ग्वाल कवि चित में चकोरन के चैन भये
पंथिन की दूरि भई दूखन दरद की।
जल पर थल पर महल अचल पर
चांदी सी चमकि रही चॉदनी सरद की।

२—ग्रीषम की गजब धुकी है धूप धाम धाम
गरमी झुकी है जाम नाम अति पापिनो।
भींजे खस बीजन झले हूं ना सुखात स्वेद
गात ना सुहात बात दावा सी डरापिनी।
ग्वाल कवि कहै कोरे कुंभन ते कूपन ते
लै लै जलधार बार बार मुख थापिनी।
जब पियो तब पियो अब पियो फेर अब
पीवत हूं पीवत मिटै न प्यास पापिनी।

३—जेठ को न त्रास जाके पास ये बिलास होंय,
खस के मवास पै गुलाब उछर्‌यो करै
बिहा के मुरब्बे डब्बे चांदी के वरक़ भरे,
पेठे पाग केवरे मैं बरफ पर्‌यो करै।

ग्वाल कवि चंदन चहल में कपूर चूर,
चंदन अतर तर बसन खर्‍यो करै ।
कंज मुखी कंज नैनी कंज के बिछौनन पै
कंजन की पंखी कर कंज ते कर्‍यो करै ।
४—गीधे गीधे तार कै सुतारि कै उतारि कै जू
धारि कै हिये में निज बात जटि जायगी ।
तारि कै अवधि करी अवधि सुतारिबे की
बिपति बिदारिबे की फाँस कटि जायगी ।
ग्वाल कवि सहज न तारिबो हमारो गिनो
कठिन परैगी पाप-पांति पटि जायगी ।
यातें जो न तारिहौ तुम्हारी सौंह रघुनाथ
अधम उधारिबे की साख घटि जायगी ।
५—जाकी खूब खूबी खूब खूबन कै खूबी यहाँ
ताकी खूब खूबी खूब खूबी नभ गाहना ।
जाकी बद जाती बद जाती इहां चारन में
ताकी बद जाती बद जाती ह्वां उराहना ।
ग्वाल कवि येही परसिद्ध सिद्ध ते हैं जग
वही परसिद्ध ताकी इहाँ ह्वां सराहना ।
जाकी इहां चाहना है ताकी वहाँ चाहना है
जाकी इहाँ चाहना है ताकी उहाँ चाह ना ।
६—चाहिये जरूर इनसानियत मानस को
नौबत बजे पै फेर भेर बजनो कहा ।
जाति औ अजाति कहा हिंदू औ मुसलमान
जाते कियो नेह ताते फेर भजनो कहा ।

ग्वाल कवि जाके लिये सीस पै बुराई लई
लाजहूँ गँवाई ताते फेर लजनो कहा।
या तो रंग काहू के न रंगिये सुजान प्यारे
रँगे तो रँगेई रहे फेर तजनो कहा।
७—दिया है खुदा ने खूब खुसी करो ग्वाल कबि
खाओ पियो देव लेव यही रह जाना है।
राजा राव उमराव केते बादसाह भये
कहाँ ते कहाँ को गये लाग्यो ना ठिकाना है।
ऐसी जिदगानी के भरोसे पै गुमान ऐसे
देस देस घूमि घूमि मन बहलाना है।
परवाना आये पर चले ना बहाना
इहां नेकी कर जाना फेर आना है न जाना है।

उनको अन्य भाषाओं की भी रचनाये है। पर मै अब उनको उठाना नहीं चाहता। एक एक पद उन भाषाओ का देख लीजिये —

पूरबी भाषा—मोर परवा सिर ऊपर सोहै
अधर बँसुरिया राजत बाय।
गुजराती भाषा—तुम तो कहो छो
छैया मोटो ऊधमी छै
म्हारी मटकी मठानी ढुलकावा नो निदान छै।
पंजाबी भाषा—सादी खुशी एहो आप
आरांदी खुशी दे बिच।
जेही चाहो तेही करो नेही कानूं नस्स दे।

गोकुलनाथ महाराज काशिराज के दरबार के प्रसिद्ध कवि थे ये कविवर रघुनाथ के पुत्र थे, इनका भाषा-साहित्य का ज्ञान उच्च कोटि का माना

जाता है। इन्होने साहित्य के सब अंगो पर रचनाये की है, रीति-सम्बन्धी सुन्दर ग्रन्थ भो वनाये है। 'कवि मुखमंडन राधाकृष्ण बिलास, और 'चेत-चन्द्रिका, इनके प्रसिद्ध ग्रन्थ है। इन्होंने अध्यात्म रामायण का अनुवाद भी किया है। 'सीताराम गुणार्णव' उसका नाम है। यह इनका प्रवन्य ग्रन्थ है इन्होंने एक बहुत बडा कार्य अपने पुत्र गोपीनाथ और शिष्य मणिदेव की सहायता से किया। वह है समस्त महाभारत और हरिवश पर्व का ब्रज भापामे सरस अनुवाद। यह अनुवाद काशीके महाराज उदित नारायण सिं की बहुत बडी उदारताका फल है। यह कार्य्य लगभग पचास वर्षमे हुआ और इसमे उन्हो ने लाखो रुपये व्यय किये। यह मुझे ज्ञात है कि महाराज रणजीत सिह ने भी समस्त महाभारत का अनुवाद सुन्दर व्रजभाषा मे किसी कवि से कराया था। उन्होने भी यह कार्य्य बहुत व्यय स्वीकार करके किया था मैने इस ग्रन्थ को पढा और देखा भी है। निजामाबाद निवासी स्व० बाबा सुमेर सिह के पास इसकी एक हस्त लिखित प्रति मौजूद थी। परन्तु अब वह अप्राप्य है। जहा तक मुझे ज्ञात है, यह ग्रन्थ मुद्रित भी नहीं हुआ परन्तु काशिराज के अनुवाद के तीन सॅस्करण हो चुके है। इस ग्रन्थ की सुन्दर और मधुर रचना की बहुत अधिक प्रशंसा है। गोकुलनाथ ने ऐसे विशाल ग्रन्थ का अनुवाद अशिथिल और भावमयी मापामे करके बहुत बड़ा गौरव प्राप्त किया है। इतना बडा प्रवन्ध काव्य अब तक हिन्दी के किसी कवि अथवा महाकवि द्वारा नहीं लिखा जा सका। सच बात तो यह है कि अकेले एक बहुत बडा प्रतिभाशाली कवि भी इस कार्य को नहीं कर सकता था। गोपीनाथ और मणिदेव भी गण्य कवियो मे है। उनको पूर्ण सहायता से ही गोकुलनाथ को इतनी बडी कीर्ति प्राप्त होसकी। इस लिये वे भी कम प्रशंसनीय नहीं। इस अवनुाद की एक विशेषता यह है कि यदि यह न बताया जाय कि तीनो कवियो मे से किस कवि ने किस पर्व का अनुवाद किया है तो ग्रन्थ की भाषा के द्वारा यह ज्ञात नही होसकता कि उसमे तीन कवियों की रचनाये है। वास्तव बात यह है कि तीनों ने इतनी योग्यता और विलक्षणता के साथ अनुवाद कार्य्य किया है कि भाषा मे विभिन्नता आयी ही नहीं। ग्रन्थ की भाषा साहित्यिक व्रजभाषा है, उसमे उर्दू

फारसी अथवा अन्य भाषाके शब्द यत्र-तत्र आये है, परन्तु उसके अंग भूत बनकर, इस प्रकार नही कि जिससे भापा की शैली मे कोई व्याघात अथवा विषमता उत्पन्न हो। इन तीनो सुकवियो की रचनाओ के कुछ उदाहरण नीचे लिखेजाते है —

१—सखिन के स्रुति मैं उकुति कल कोकिल की
गुरुजन हू के पुनि लाज के कथान की।
गोकुल अरुन चरनांबुज पै गुंज पुंज
धुनि सी चढ़ति चंचरीक चरचान की।
पीतम के स्रवन समीप ही जुगुति होति
मैन मंत्र तंत्र के बरन गुनगानी की।
सौतिन के कानन मैं हालाहल ह्वै हलति
एरी सुखदानि तौन बजनि बिछुवानि की।

२—पेंच खुले पगरी के उड़ैं फिरै
कुंडल की प्रतिमा मुख दौरी।
तैसियै लोल लसैं जुलफैं रहैं
एहो न मानति धावति धौरी।
गोकुल नाथ किये गति आतुर
चातुर की छबिदेखत बौरी।
ग्वालनि ते कढ़ि जात चल्यो
फहरात कँधा पर पीत पिछौरी।

गोकुलनाथ

३—विहँग अगनित भाँति के तहँ रमत बोलत बैन।
मृगा आवत तासु तर ते लहत अतिसय चैन।

पलित नामक मूष शतमुख विवर करि तर तासु।
भयो निवसत अति विचच्छन चपल लच्छन जासु।

गोपीनाथ

४—काक के ये बचन सुनि कै कह्यो हंस सुजान।
एक गति सब बिहग की तुम काक शतगतिवान।
एक गति सों उड़ब हम तुम यथा रुचित सुबंस।
बाँधि यहि बिधि बहस लागे उड़न वायस हंस।

मणिदेव

भाषा के विषय मे इतना और कहना आवश्यक होता है कि अनुवादकों की प्रवृत्ति कही कहीं संस्कृत के शब्दो को तत्सम रूप मे रखने ही की है इसलिये व्रजभाषा के नियमानुसार शकार को सकार न करके प्राय शकार ही रहने दिया गया है। इसो प्रकार अनुप्रास आदि के आधार से अधिक ललित बनाने की चेष्टा न कर सरलता ही पर विशेष दृष्टि रखी गयी है।

राय रणधीर सिह ज़िला जौनपुर, सिंगरामऊ के निवासी थे। आप वहा के एक प्रतिष्ठित ज़मींदार थे। आप के यहाँ पण्डितो, विद्वानो, एवं कवियो का बडा आदर था। कविता मे उनकी इतनी रुचि थी कि वह उनका एक व्यसन हो गया था उन्होने पाँच ग्रन्थो की रचना की थी। उनमे से 'नामार्णव' पिगल का, 'काव्यरत्नाकर' नायिका भेद और अलंकार का और 'भूषण-कौमुदी, साहित्य-सम्बन्धी ग्रन्थ है। ये एक सरस हृदय कवि थे इनका एक पद्य देखिये —

मंजुल सुरंगवर सोभित अचिंत चारु
फल मकरंद कर मोदित करन हैं।
प्रमित विराग ज्ञान के सर सरस देस
विरद असेस जसु पांसु प्रसरन हैं।
सेवित नृदेव मुनि मधुप समाज ही के
रनधीर ख्यात द्रुत दच्छिन भरन हैं।

ईस हृदि मानस प्रकासित सहाई लसैं
अमल सरोज वरस्यामा के चरन हैं।

लछिराम ब्रह्मभट्ट थे और अमोढा जिला बस्ती उनका जन्म स्थान था। उन्होने महाराज मान सिंह अवध नरेश के दरवार मे रह कर साहित्य का अच्छा ज्ञान प्राप्त किया था। उन्ही से उन्होने कविराज की पदवी भी प्राप्त की थी। वे उनके दरवार की शोभा तो थे ही, उनकी कृपा के कारण अवध प्रात के अनेक राजाओ के यहा भी सम्मानित थे। उन्होंने अलंकार के कई ग्रन्थ लिखे है, जो उस राजा के नाम से ही प्रख्यात है जिसकी कीर्ति के लिये उनकी रचना हुई है—जैसे 'प्रताप रत्नाकर 'लक्ष्मीश्वर रत्नाकर', 'रावणेश्वरकल्पतरु', 'महेश्वर-बिलास' आदि। इन्होने नायिका-भेद अलंकार और अन्य कुछ बिषयो पर भी ग्रन्थ लिखे है और इस प्रकार इनके ग्रन्थो की संख्या दस-पन्द्रह है। कविता-शक्ति इनमे अच्छो थी, इनकी रचना भी सरस होती थी। परन्तु अधिकतर इनकी कृतिमे अनुकरण मात्र है। मौलिकता खोजने पर भी नही मिलती। इनकी भाषा ब्रजभाषा है और उसमे साहित्यिक गुण भी है। कोमल और सरस शब्दविन्यास करनेमे भी वे दक्ष थे। कुछ पद्य देखिये —

१—भरम गँवावै झरबेरी संग नीचन ते
कंटकित बेल केतकीन पै गिरत है।
परिहरि मालती सुमाधवी सभासदनि
अधम अरूसन के अंग अभिरत है।
लछिराम सोभा सरवर में बिलास हेरि
मूरख मलिद मन पल ना थिरत है।
रामचन्द्र चारु चरनांवुज बिसारिदेस
बन बन बेलिन बबूर मैं फिरत है।

२—भानु बंस भूषन महीप राम चन्द्र बीर
रावरो सुजस फैल्यो आगर उमंग मैं।

कवि लछिराम अभिराम दूनो सेस हू सों
चौगुनो चमकदार हिम गिरि गंग मैं।
जाको भट घेरे तासों अधिक परे हैं और
पँच गुनो हीरा हार चमक प्रसंग मैं।
चंद मिलि नौगुनो नछत्रन सों सौगुनो ह्वै
सहस गुनो भो छीर सागर तरंग मैं।

३—सजल रहत आप औरन को देत ताप
बदलत रूप और बसन बरेजे मैं।
तापर मयूरन के झुंड मतवाले साले
मदन मरोरैं महा झरनि मरेजे मैं।
कवि लछिराम रंग साँवरो सनेही पाय
अरज न मानै हिय हरष हरेजे मैं।
गरजि गरजि बिरहीन के बिदारैं उर
दरद न आवै धरे दामिनी करेजे मैं।

गोविन्द गिल्ला भाई चौहान राजपूत थे। उनकी शिक्षा तो साधारण थी, किन्तु उन्होने परिश्रम करके हिन्दी साहित्य मे अच्छा ज्ञान प्राप्त किया था उन्होने तीससे अधिक ग्रन्थोंकी रचनाकी है। जिनमें 'साहित्य-चिन्तामणि,' श्रृंगार सरोजिनी', 'गोबिन्द हजारा' और 'विवेक-विलास' आदि बड़े ग्रन्थ है। इनमे 'श्रृगार सरोजिनी' और साहित्य चिन्तामणि' रीति ग्रंथ है। ये काठियाबाड (गुजरात) के रहने वाले थे। फिर भी उन्होंने व्रजभाषामें रचना की है। भाषा टकसाली तो नही कही जा सकती। परन्तु यह अवश्य स्वीकार करना पडता है कि उसपर उनको अच्छा अधिकार था। उनकी रचना मे सहृदयता है और कोमलता भी। परन्तु जैसी चाहिये वैसी भावुकता उसमे नहीं मिलती। कुछ पद्य देखिये —

१—संपति करन और दारिद दरन सदा
कष्ट के हरन भव तारन तरन हैं।
भौन के भरन चारों फल के फरन
महाताप के हरन असरन के सरन हैं।
भक्त उद्धरन और बिघन हरन सदा
जनम मरन महादुख के दरन हैं।
गोविद कहत ऐसे बारिज बरन बर
मोद के करन मेरे प्रभु के चरन हैं।

२—दाहिबो सरीर अरु लहिबो परमपद
चाहिबो छनिक माहि सिधुपार पाइबो।
गहिबो गगन अरु बहिबो बयारि संग
रहिबो 'रिपुन संग त्रास नहिँ लाइबो।
सहिबो चपेट सिह लहिबो भुजंग मनि
कहिबो कथन अरु चातुर रिझाइबो।
गोबिँद कहत सोई सुगम सकल
पर कठिन कराल एक नेह को निभाइबो।

प्रताप साहि बंदीजन थे। और चरखारी के महाराज विक्रम शाह के दरबारी कवि थे। इन्होने आठ दस ग्रंथो की रचना की है, जिनमे से अधिकतर साहित्य सबधी है। व्यंग्यार्थ कौमुदी नामक एक ध्वनि-सम्बन्धी ग्रन्थ भी इनका लिखा हुआ है जो अधिक प्रशसनीय है। कहा जाता है कि रीति ग्रन्थो के अन्तिम आचार्य्य ये ही है। साहित्य मे इनका ज्ञान विस्तृत था। इसलिये हिन्दी मे साहित्य-विषयक जो न्यूनताये थी उनको उन्होने पूरी करने की चेष्टा की और बहुत कुछ सफलता भी लाभ की। इनकी भाषा सरस व्रज भाषा है। साथ ही वह बडी भावमयी है। कोमल

और मधुर शब्दविन्यास पर भी इनका अच्छा अधिकार देखा जाता है।
कुछ रचनायें देखिये —

१—सीख सिखाई न मानति है बरही
बससंग सखीन के आवैं।
खेलत खेल नये जग में बिन काम
वृथा कत जाम बितावैं।
छोड़ि कै साथ सहेलिन को रहि कै
कहि कौन सवादहिँ पावैं।
कौन परी यह बानि अरी
नित नीर भरी गगरी ढरकावैं।

२—चंचलता अपनी तजि कै रस ही रस
सों रस सुन्दर पीजियो।
कोऊ कितेक कहै तुमसों तिनकी
कही बातन को न पतीजियो।
चोज चवाइनि के सुनियो न यही
इक मेरी कही नित कीजियो।
मंजुल मंजरी पै हो मलिंद
विचारि कै भारसँभारि कै दीजियो।

३—तड़पै तड़िता चहुं ओरन ते
छिति छाई समीरन की लहरैं।
मदमाते महा गिरि सृंगन पै
गन मंजु मयूरन के कहरैं।
इनकी करनी बरनी न परै
मगरूर गुमानन सों गहरैं।

घन ये नभ मंडल में छहरैं
घहरैं कहुँ जाय कहूं ठहरैं।

४—चंचला चपल चारु चमकत चारों ओर
झूमि झूमि धुरवा धरनि परसत है।
सीतल समीर लगै दुखद बियोगिन
सँयोगिन समाज सुख साज सरसत है।
कहै परताप अति निबिड़ अँधेरी माँहि
मारग चलत नाहिँ नेकु दरसत है।
झुमड़ि झलानि चहुं कोद ते उमड़ि आज
धाराधर धारन अपार बरसत है।

५—महाराज रामराज रावरो सजत दल
होत मुख अमल अनंदित महेस के।
सेवत दरीन केते गब्बर गनीम रहैं
पन्नगपताल त्योंही डरन खगेस के।
कहै परताप धरा धँसत चसत कसमसत
कमठ पीठि कठिन कलेस के।
कहरत कोल हहरत हैं दिगीस दस
लहरत सिधु थहरत फन सेस के।

इस शताब्दी के प्रबंध कारों मे महाराज रघुराज सिह का नाम विशेष उल्लेख-योग्य है। गोकुल नाथ की चर्चा पहले मैं कर चुका हूं। वे भी बहुत बड़े प्रबंधकार इस शताब्दी के है। परन्तु उनकी कृति मे दो और कवियो का हाथ है। वे प्रसिद्ध रीतिग्रन्थकार भी है। इसलिये मैंने उनकी चर्चा रीति ग्रंथकारों मे ही की है। महाराज रघुराज सिह की जितनी रचनाये है सब उन्हीं की कृतिया है और उनमे प्रबंध ग्रन्थो की संख्या

अधिक है । इसलिये मै उन्नीसवी शताब्दी का सर्व श्रेष्ठ प्रबंधकार उन्हीं को मानता हूं । रीवा राज्य वंश वैष्णव है । उसकी धर्म्म परायणता प्रसिद्ध है । महाराज रघुराज सिंह के पितामह महाराज जै सिंह बडे भक्त और सच्चे वैष्णव थे । उन्होने अपने जीवन काल मे ही अपने पुत्र विश्वनाथ-सिंह को अपना राज्य भार सौंप दिया था । भगवद्भजन मे ही वे रत रहते थे और भक्ति-सुख को राज्य-सुख से उच्च मानते थे । वे बड़े सहृदय कवि भी थे, लगभग अठारह ग्रन्थो की उन्हो ने रचना की थी । उनमे से हरिचरित चंद्रिका, हरेचरितामृत, कृष्णतरंगिणी आदि अधिक प्रसिद्ध है । 'निर्णयसिद्धान्त' और 'वेदान्त प्रकाश' भी उनके सुन्दर ग्रन्थ है। उनकी रचना बडी ललित होती थी और कोमल एवं सरस पदविन्यास उनकी रचना का प्रधान गुण था । उन्हो ने अधिकतर प्रबंध ग्रन्थ ही लिखे और वह आदर्श उपस्थित किया जिसका अनुकरण बाद को उनके पुत्र महाराज विश्वनाथ सिंह और पौत्र महाराज रघुराज सिंह ने बडी श्रद्धा के साथ किया । उनकी भाषा साहित्यिक ब्रजभाषा है । परन्तु उसमे अवधीके शब्द भी प्रायः आते रहते है । इनकी अधिकांश रचनाये दोहां और चौपाइयो मे है । उनके कुछ पद्य देखियेः—

१—परसि कमल कुवलय बहत, वायु ताप नसि जाइ ।
सुनत बात हरि गुननयुत, जिमि जन पाप पराइ ।

२—बन वाटिका उपवन मनोहर फूल फल तरु मूल से ।
सर सरित कमल कलाप कुवलय कुमुद बन बिकसे लसे ।
सुख लहत यों फल चखत मनुपोयत मधुप सों नीतिसों ।
मन मगन ब्रह्मानंद रस जोगीस मुनिगन प्रीति सों ।

३—कूजि रहे खग कुल मधुप, गूँजि रहे चहुं ओर ।
तेहि बन लै गोगन सकल प्रविसे नंद किसोर ।

उनके पुत्र महाराज विश्वनाथसिंहने भी अनेक ग्रन्थोकी रचना की है । उन्होंने कबीरके बोजक और विनय पत्रिका की भी सुन्दर टीकाये लिखी है।

'आनंद रघुनंदन' नामक एक नाटक भो बनाया है। छोटे मोटे कई प्रबन्ध ग्रन्थ भी लिखे हैं। अपने पिता के समान इन्होंने भी अनेक धार्म्मिकग्रन्थों की रचना की है। इन्होंने संस्कृत में भी ग्रन्थ लिखे हैं उनमें से 'राधावल्लभी भाष्य', 'सर्व सिद्धांत' आदि अधिक प्रसिद्ध हैं। इन्होंने भी कविता रचने में पिता का ही अनुकरण किया है। परंतु इनकी भाषा उतनो ललित नहीं है। संयुक्त वर्ण भी इनकी रचना में अधिक आये हैं। फिर भी इनकी अधिकतर कवितायें मनोहर हैं। एक पद्य देखियेः—

१—बाजी गज सोर रथ सुतुर कतार जेते,
प्यादे ऐंडवारे जे सबीह सरदार के।
कुँवर छबीले जे रसीले राजबंस वारे,
सूर अनियारे अति प्यारे सरकार के।
केते जातिवारे केते केते देसवारे जीव,
स्वान सिंह आदि सैल वारे जे सिकार के।
डंका की धुकार ह्वै सवार सबै एकै बार
राजैं वार पार बीर कोसल कुमार के।

महाराज रघुराज सिंह में पिता से पितामह का गुण अधिक है। इनकी कितनी ही रचनायें बड़ी सरस हैं। इन्होंने भी अनेक ग्रन्थों की रचना की है, जिसमें 'आनन्दांबुनिधि' जैसे विशाल ग्रंथ भी हैं। वंशपरम्परा से यह राज्य कवियों का कल्पतरु रहा है। महाराज रघुराज सिंह के आश्रय में भी अनेक कवि थे, जो उनके लिये कल्पतरु के समान ही कामद थे। आनंदांबुनिधि श्रीमद्भागवत का अनुवाद है। मैंने बाल्यावस्था में इस ग्रन्थ का कई पारायण किया है। इस ग्रंथ को भाषा चलती और सुन्दर है। इनका भक्ति भाव अपने पिता पितामह के समान ही मधुर और स्निग्ध था उसी की स्निग्धता और माधुरी इनकी रचनाओं में पायी जाती हैं। इन्होंने भी साहित्यिक व्रजभाषा ही लिखी है, जिसमें यत्र तत्र अवधी का पुट भी पाया जाता है। उनके ग्रन्थों की संख्या जब देखी जाती है और कई वि-

शाल ग्रन्थों की विशालता पर जब ध्यान दिया जाता है तोबडा आश्चर्य होता है। राज्य-कार्य्य का संचालन करते हुये जो इनकी लेखनी धारावाहिक रूप से सदा चलती ही रही यह कम चकितकर नहीं। उनके 'राम-स्वयंबर,' रुक्मिणी परिणाय' आदि ग्रन्थ भी सुन्दर सरस और मनोहर है। उनकी कुछ रचनाये देखिये —

१—कल किसलय कोमल कमल पद-तल सरि नहिं पाय।
एक सोचत पियरात नित एक सकुचत झरि जाय।
२—बिलसत जदुपति नखनि मैं अनुपम दुति दरसाति।
उडुपति जुत उडु अवलि लखि सकुचि २ दुरिजाति।
३—सविता दुहिता स्यामता सुरसरिता नख जोत।
सुतल अरुनता भारती चरन त्रिबेनी होत।
१—गुलुफ कुलुफ खोलनि हृदै हो तौ उपमा तूल।
ज्यों इंदीवर तट असित ह्वैगुलाव के फूल।
५—चारु चरन की आंगुरी मोपै बरनि न जाय।
कमल कोस की पाँखुरी पेखत जिनहिं लजाय।
६—जदुपति नैन समान हित बिधि ह्वै बिरचै मैन।
मीन कंज खंजन मृगहुँ समता तऊ लहै न।
७—सखि लखन चलो नृप कुँवर भलो।
मिथिला पति सदन सिया बनरो।
सिरमौर बसन तन में पियरो।
हठहेरि हरत हमरो हियरो।
८—उर सोहत मोतिन को गजरो
रतनारी अँखियन में कजरो।
चितये चित चोरत सखि समरो
चितये बिन जिय न जियै हमरो।

९—अलकैं अलि अजब लसैं चेहरो ।
झपि झूलि रह्यो कटि लौं सेहरो ।
चित चहत अरी लगि जाउँ गरे ।
रघुराज त्यागि जग को झगरो ।

१० —माधुरी माधवकी वह मूरति देखत ही दृगदेखे बनैरी ।
तोनहूं लोककी जो रुचिराई सुहाईअहैतिनहीतेघनैरी
सोभा सचीपति औ रति के पति की कछु आयी न मेरे मनैरी
हेरि मैं हार्योहिये उपमा छबि हूं छबि पायी विराजित नैरी

महाराज रघुराज सिह के वाच्यार्थ मे कही कही अस्पष्टता है, कहीं कही शब्दोंका समुचित प्रयोग भी नहीं है। फिर भी यह स्वीकार करना पड़ेगा को साहित्य के अधिकतर उत्तम गुण उनकी रचनाओं मे पाये जाते है । उनकी रचनाये भगवती वीणापाणि के चरणो मे अर्पित सुन्दर सुमनमालाओ के समान है ।

इन भक्त महाराजाओं के साथ हम एक और सहृदय भक्त की चर्चा करना चाहते है । वेहै दीनदयाल गिरि । इनकी गणना दसनामी सन्यासियो में है । कोई इन्हे ब्राह्मणसंतान कहता है और कोई क्षत्रियसंतान । वे जोहो परंतु त्यागी पुरुष थे हृदय भो उदार था और भावुकता उसमे भरी थी । इनके बनाये पाच ग्रंथ है । उनके नाम है अनुराग बाग दृष्टान्त तरंगिणी, अन्योक्ति माला, वेराग्यदिनेश और अन्योक्ति कल्पद्रुम । इन ग्रन्थों का बिषय इनके नामानुकूल है । ये थे शेव किंतु हृदय उदारथा इस लिये इनकी रचना मे वह कटुता नहीं आयी है, जिसकी जननी साम्प्रदायिकता है । वह बडी ही सरस और मधुर है साथ ही बडो उपयोगिनी । इन्होने सन्यासो का कार्य्य ही अधिकतर किया है । समाज को सत् शिक्षा देने ही मे वे आजन्म प्रवृत्त रहे । इनकी भाषा टकसाली ब्रजभाषा है । वे संस्कृत के विद्वान् हो कर भी अपनी रचना मे सस्कृत के शब्दा का अधिक व्यवहार

नही करते थे। इनकी रचना मे प्रवाह है और उसमे एक बडी ही मनोहर गति पायी जाती है। अन्य भापा या उर्दू के शब्द भी कही कही इनके पद्यो मे आ जाते है परंतु वे नियमित होते है। उनकी व्यंजनाये मधुर है और भाव स्पष्ट। कही कही उत्तमोत्तम ध्वनिया भी उनमे मिल जाती है। अन्योक्ति की रचनाये जितनी सुन्दर और सरस इन्होंने की उसकी बहुत कुछ प्रशंसा की जा सकती है। इनके कुछ पद्य देखिये —

१—छोड़्यो गृहकाज कुल लाज को समाज सबै
एक ब्रजराज सों कियोरी प्रीतिपन है।
रहत सदाई सुखदाई पद पंकज में
चंचरीक नाईं भई छांड़ै नाहि छन है।
रति-पति मूरति विमोहन को नेमधरि
विषै प्रेमरंग भरि मति को सदन है ।
कुंवर कन्हाई की लुनाई लखि माई मेरो
चेरो भयो चित औ चितेरो भयोमन है ।

२—कोमल मनोहर मधुर सुरताल सने
नूपुर निनादनि सों कौन दिन बोलि हैं।
नीके मम ही के बुंद बृंदन सुमोतिन को
गहि कै कृपा की अब चोंचन सों तोलि हैं।
नेम धरि छेम सों प्रमुद होय दीन द्याल
प्रेम कोकनद बीच कब धौं कलोलि हैं।
चरन तिहारे जदुवंस राजहंस कब
मेरे मन मानस में मंद मंद डोलि हैं।

३—पराधीनता दुख महा सुखी जगत स्वाधीन।
सुखी रमत सुक बनविषै कनक पींजरे दीन।

४—केहरि को अभिषेक कब कीन्हों विप्र समाज।
निज भुजबल के तेज तें विपिन भयो मृगराज।
५—नाहीं भूलि गुलाब तू गुनि मधुकर गुंजार।
यह बहार दिन चार को बहुरि कटीली डार।
बहुरि कटीलो डार होहिगी ग्रीषम आये।
लुवैं चलेंगो संग अंग सब जैहैं ताये।
बरनै दीन दयाल फूल जौ लौं तौ पाहीं।
रहे वेरि चहुं फेर फेरि अलि ऐहैं नाहीं।
६—चारों दिसि सूझै नहीं यह नद धार अपार।
नाव जर्जरी भार बहु खेवनहार गँवार।
खेवनहार गँवार ताहि पै है मतवारो।
लिये भँवर में जाय जहां जल जंतु अखारो।
बरनै दीन दयाल पथी बहु पौन प्रचारो।
पाहि पाहि रघुबीर नाम धरि धीर उचारो।

उन्नीसवी शताब्दी के पूर्वार्द्ध मे कुछ ऐसे कवि भी हुये है जो न तो रीति ग्रंथकार है न प्रबंधकार, बरन प्रेम मार्गी है अथवा शृंगारिक कवि। उनकी संख्या बहुत बडो है, परन्तु मै उनमे से कुछ विशेषता-प्राप्त सहृदयों का ही उल्लेख करूंगा, जिससे यह ज्ञान हो सके कि उन्होने अपनी रचनाओ द्वारा किस प्रकार हिन्दी साहित्य को अलंकृत किया। इन लोगों मे से सब से पहिले हमारे सामने ठाकुर कवि आते है। ठाकुर तीन हो गये है। इनमे से दो ब्रह्मभट्ट थे, और एक कायस्थ। असनी के रहनेवाले प्राचीन ठाकुर सत्रहवी सदी के अन्त मे या अठारहवी के आदिमे पडते है। इन तीनों ठाकुरो की रचनाये एक दूसरे के साथ इतनी मिल गयी है कि इनको अलग करना कठिन है। तीनों ठाकुरों की सवेयाओ मे कुछ ऐसी मधुरता है कि वह अपनी ओर हृदय को खीच लेती है इससे अनेक सह-

दयों को ठाकुर की सवैयाओं को पढते सुना जाता है। प्राचीन ठाकुर के विषय मे कोई ऐसा परिचय चिन्ह नहीं मिलता कि जिसके आधार से उनको औरो से अलग किया जा सके। परन्तु जो दो ठाकुर उन्नीसवीं शताब्दी मे हुये है उनका अंतर जानने के लिये जो बाते कही जाती है वे ये है। असनी वाले ब्रह्मभट्ट की रचना अधिकतर कवित्तों मे है। उन्होंने सवैया भी लिखे है, किंतु उसके अत मे कोई कहावत लाने का नियम उन्होने नही रक्खा है। दूसरे ठाकुर, जो कायस्थ थे, उन्होने प्राय अपनी रचना सवैया मे की है और उसके अ त मे कोई न कोई कहावत अवश्य लाये है। इसी परिचय-चिन्ह के आधार से उनलोगों की रचना आपलोगो के सामने उपस्थित करूंगा। प्राचीन ठाकुर की रचना मैं हिन्दी साहित्य का इतिहास से लेता हूं, क्योकि उसके रचयिता ने यह बतलाया है कि यह रचना उन्ही की है। प्राचीन ठाकुर के विषय मे यह तो सभी स्वीकार करते है कि वे असनी के ब्रह्मभट्ट थे। परन्तु उनकी और बातो के विषय मे सभी चुप है। ऐसी अवस्था मे मुझको भी चुप रहना पडता है। उनकी रचनाओं के पढने से यह ज्ञात होता है, कि वे एक सरस-हृदय कवि थे और ब्रजभाषा पर उनको अच्छा अधिकार था। दो पद्य देखिये:—

१—सजि सूहे दुकूलनि बिज्जु
छटा सी अटान चढी घटा जोवति हैं।
सुचितो ह्वै सुनैं धुनि मोरन की
रसमाती सँजोग सँजोवति हैं।
कवि ठाकुर वै पिय दूरि बसैं
हम आँसुन सों तन धोवति हैं।
धनिवै धनि पावस की रतियाँ
पति की छतियाँ लगि सोवति हैं।

२—बौर रसालन की चढ़ि डारन
कूकत कैलिया मौन गहै ना।

ठाकुर कुंजन कुंजन गुंजत
भौंरन भीर चुपैबो चहै ना ।
सीतल मंद सुगंधित बीर
समीर लगे तन धीर रहै ना ।
व्याकुल कीन्हों बसंत बनाय कै
जाय कै कंत से कोऊ कहैना ।

दूसरे ठाकुर भी असनी के रहने वाले थे उन्होने विहारी की सतसई पर टीका भी लिखी है। उनकी रचनाये भी सुंदर और सरस होती थी उन्हों ने नीति सम्बन्धी जो कवित्त बनाये है वे बडे ही उपयोगी और उपदेशमय है। जैसे ही उनके शृंगार रस के कबित्त सुंदर है वैसे ही नीति सम्बन्धी भी। उनके कुछ सवेये भी बड़े ही हृदयग्राही है। नीति-सम्बन्धी कबित्त यदि विवेकशील मस्तिष्क की उपज है तो सरस सवैये उनकी सहृदयता के नमूने है। उनमे से कुछ नीचे लिखे जाते है —

१ बैर प्रीति करिबे की मन में न राखै संक
राजा राव देखि कै न छाती धक धा करी।
आपने अमेंड के निबाहिबे की चाह जिन्हें
एक सो दिखात तिन्हें बाघ और बाकरी।
ठाकुर कहत मैं बिचार कै बिचारि देख्यो
यहै मरदानन की टेक औ अटाकरी।
गही तौन गही जौन छाड़ी तौन छाड़ी
जौन करी तौन करीबात ना करी सो नाकरी।
२—सामिल में पीर में सरीर में न भेद राखै
हिम्मत कपाट को उघारै तौ उघरि जाय ।

ऐसो ठान ठानै तो बिनाहूं जंत्र मंत्र किये
सांप के जहर को उतारै तौ उतरि जाय।
ठाकुर कहत कछु कठिन न जानौ मीत
साहस किये ते कहौ कहा ना सुधरि जाय।
चारि जने चारि हूं दिसा ते चारो कोन गहि
मेरु को हलाय कै उखारै तो उखरि जाय।
३—हिलिमिलि लीजिये प्रवीनन ते आठो जाम
कीजिये अराम जासों जिय को अराम है।
दीजिये दरस जाको देखिबे को हौस होय
कीजिये न काम जासों नाम बदनाम है।
ठाकुर कहत यह मन में बिचारि देखो
जस अपजस को करैया सब राम है।
रूप से रतन पाय चातुरी से धन पाय
नाहक गँवाइबो गँवारन को काम है।
४—ग्वालन को यार है सिँगार सुभ सोभन को
साँचो सरदार तीन लोक रजधानी को।
गाइन के संग देखि आपनो बखत लेखि
आनँद बिसेख रूप अकह कहानी को।
ठाकुर कहत साँचो प्रेम को प्रसंगवारो
जा लखि अनंग रंग दंग दधिदानी को
पुत्र नंद जी को अनुराग ब्रजबासिन को
भाग जसुमति को सुहाग राधारानी को।
५—कोमलता कंज ते गुलाब ते सुगंध लैके
चंद ते प्रकास गहि उदित उँजेरो है।

रूप रति आनन ते चातुरी सुजानन ते
नीर लै निवानन ते कौतुक निबेरो है।
ठाकुर कहत यों सँवार्‌यो विधि कारीगर
रचना निहारि जनचित होत चेरो है।
कंचन को रंग लै सवाद लै सुधा को
बसुधा को सुख लूटि कै बनायो मुख तेरो है।

६—लगी अंतर में करै बाहिर को
बिन जाहिर कोऊ न मानतु है।
दुख औ सुख हानि औ लाभ सबै
घर की कोऊ बाहर भानतु है।
कवि ठाकुर आपनी चातुरी सों
सब ही सब भांति बखानतु है।
पर बीर मिले बिछुरे की बिथा
मिलि कै बिछुरै सोई जानतु है।

७—एजे कहैं ते भले कहिबो करैं मान
सही सो सबै सहि लीजै।
ते बकि आपुहिँ ते चुप होंयगी
काहे को काहुवै उत्तर दीजै।
ठाकुर मेरे मतै की यहै धनि
मान कै जोबन रूप पतीजै।
या जग में जनमें को जिये को
यहै फल है हरि सों हित कीजै।

८—वह कंज सोँ कोमल अङ्ग गुपाल
को सोऊ सबै तुम जानती हौ।

बलि नेकु रुखाई धरे कुम्हिलात
इतोऊ नहीं पहचानती हौ।
कवि ठाकुर या कर जोरि कह्यौ
इतने पै बिनै नहीं मानती हौ।
दृग बान औ भौंह कमान कहो
अब कान लै कौन पै तानती हौ।

तीसरे ठाकुर बुंदेलखण्डी थे और सरस रचना करते थे। मैं यह बतला चुका हूं कि उनकी रचनाओं के अन्त मे प्राय कहावतें आती हैं। दो पद्य उनके भी देखिये

१—यह चारहूं ओर उदौ मुख चन्द की
चाँदनी चारु निहारि लैरी।
बलि जो पै अधीन भयो पिय प्यारी
तौ ए तौ विचार विचारि लैरी।
कवि ठाकुर चूकि गयो जु गोपाल तौ
तू बिगरी को सम्हारि लैरी।
अब रैहै न रैहै यहौ समयो बहती
नदी पाँव पखारि लैरी।
२—पिय प्यार करैं जेहि पै सजनी
तेहि की सब भांतिन सैयत है।
मन मान करौं तौ परौं भ्रम में
फिर पाछे परे पछतैयत है।
कवि ठाकुर कौन की कासों कहौं
दिन देखि दसा बिसरैयत है।

अपने अटके सुन एरी भटू
निज सौत के माय के जैयत है ।

इन तीनों ठाकुरों की रचना मे यह बडी विशेषता है कि सीधे सादे शब्दो मे रस की धारा बहा देते है । न अनुप्रास की परवा, न यमक की खोज, न वर्ण मैत्री की चिन्ता । वे अपनी बाते अपनी ही बोलचाल मे कह जाते है और हृदय को अपनी ओर खींच लेते है । कवि कर्म्म है भी यही । जो बाते आगे-पीछे होती रहती है उनको ले कर उनका चित्र बोलचाल मे खींच देना सब का काम नही, सरस हृदय कवि ही ऐसा कर सकते है ।

रामसहाय दास, भवानीदास के पुत्र थे । वे जाति के कायस्थ थे और काशिराज महाराज उदित नारायण सिंह के आश्रय मे रहते थे । उन्होने चार ग्रंथो की रचना की है—वृत्ततरंगिनी', ककहरा', रामसतसई' और 'वाणीभूपण' । 'वाणी भूपण' अलकार का, वृत्ततरंगिनी' पिंगल का, और ककहरा' नीति सम्बन्धी ग्रथ है । राम सतसई बिहारी सतसई के अनुकरण से लिखी गयी है । बिहारी ने अपने सतसई का नाम अपने नाम के आधार पर रक्खा है तो रामसहायदास ने भी अपनी सतसई का नाम अपने नाम के सम्बन्ध से ही रक्खा । इतना ही अनुकरण नही, उन्होंने बिहारी सतसई का अनुकरण सभी बातो मे किया है । उनके दोहे बिहारी के दोहों के टक्कर के है । परंतु सहृदयता और भावुकता मे बिहारी की समता वे नहीं कर सके । चंदन सतसई और विक्रम सतसई भी बिहारी सतसई के ही आधार से लिखी गयी है । परंतु उन सतसइयों को भी बिहारी लाल की सतसई की सी सफलता भाव चित्रण मे नही प्राप्त हुई । शब्द विन्यास मे बोल चाल की भाषा लिखने मे व्रजभाषा के टकसाली शब्दो मे सरसता कूट कूट भरदेने मे बिहारी लाल अपने जैसे आप है । राम सतसई के कुछ पद्य नीचे लिखे जाते है –

१—गुलफनि लौं ज्यों त्यों गयो करि करि साहस जोर ।
फिरि न फिर्‌यो मुरवान चपि चित अति खात मरोर ।

२—यों विभाति दसनावली ललना बदन मँझार।
पति को नातो मानि कै मनु आई उडुनार।

३—सखि सँग जाति हुती सुती भट भेरो भो जानि।
सतरौंही भौंहनि करी बतरौंही अँखियाँनि।

४—सतरौहैं मुख रुख किये कहै रुखौहैं बैन।
रैन जगे के नैन ये सने सनेह दुरैं न।

५—खंजन कंज न सरि लहैं बलि अलिको न बखानि।
एनी की अँखियानि तें ए नीकी अँखियानि।

पजनेस एक प्रतिभाशाली कवि माने जाते है। इनका जन्म-स्थान पन्ना कहा जाता है। और परिचय के विषय मे कुछ विशेष ज्ञात नही। इन्होने 'मधुर प्रिया' और 'नखशिख' नामक दो ग्रंथ बनाये थे। किंतु दोनो ग्रंथ अमुद्रित है। इनकी स्फुट रचनाये कुछ पायी जाती है, जिनसे ज्ञात होता है कि उनको सस्कृत और फारसीका भी अच्छा ज्ञान था। इनकी रचनाओ की मुख्य भाषा व्रजभापा है, किंतु उनमे अन्य भापाओ के शब्द अधिकता से पाये जाते है, इस विपय मे वे अधिक स्वतंत्र है। इनकी रचनाओं मे अकोमल शब्दों का प्रयोग भी अधिक मिलता है। परुषा वृत्ति इन्हे अधिक प्यारी है। जो स्फुट पद्य मिले है, वे सब शृंगार रस के ही है। अवध नरेश महाराज मानसिह इनकी रचनाओ को लोहे का चना कहते थे। तो भी यह नही कहा जा सकता कि उन्होने सरस पद-विन्यास किया ही नहीं। दोनो प्रकार के दो पद्य नीचे लिखे जाते है—

१—छहरै छबीली छटाछूटि छिति मंडलपै
उमँग उँजेरो महा ओज उजबक सी।
कवि पजनेस कंज मंजुल मुखी के गात
उपमाधिकात कल कुंदन तबक सी।

फैली दोप दीप दीप दोपति दिपति जाकी
दोप मालिका की रही दीपनि दबकि सो।
परत न ताब लखि मुखमहताब
जब निकसी सिताब आफताब के भभक सो।

२—मानसो पूजामयी पजनेस
मलेछन हीन करी ठकुराई ।
रोके उदोत सबै सुर गोत
बसेरन पै सिकराली बसाई।
जानि परै न कला कछु आज की
काहे सखी अजया इकल्याई।
पोखे मराल कहो केहि कारन एरो
भुजंगिनी क्यों पुसवाई ।

पजनेस की रचना पद्माकर को रचना से सर्वथा विपरीत है। जेसो ही वह सरस, मधुर और प्रसाद गुणमयो है वेसो ही इनकी रचना जटिल परुष और अस्पष्ट है। किन्तु इनकी प्रसिद्धि ऐसी ही रचनाओ के कारण हुई है।

महाराज मानसिह अवध नरेश थे। नीतिज्ञता, गुणज्ञता, सहृदयता, उदारता भावुकता अथच वहुदर्शिता के लिये प्रसिद्ध थे। आप के दरबार में कवियो का बडा सम्मान था क्योकि उनमे कवि-कर्म्म की यथार्थ परख थो। वे स्वयं भी बडी सुन्दर कविता करते थे। कविता मे अपना नाम 'द्विजदेव' लिखते थे। वे अवधी की गोद मे पले थे, परन्तु कविता टकसाली व्रजभाषा मे लिखते थे। इस सरसता से पदविन्यास करते थे कि कविता पक्तियो मे मोती पिरो देते थे। जेसी सुन्दर ध्वनि होती थी वैसी ही सुन्दर व्यंजना। वास्तव बात यह है कि इनकी कविता भाव प्रधान है इसी से उसमे हृदय ग्राहिता भी अधिक है। केवल एक ग्रन्थ

'शृंगार-लतिका' इनका पाया जाता है। उसमे से कुछ पद्य नीचे लिखे जाते है —

१—बाँके संक हीने राते कंज छवि छीने माते
झुकि झुकि झूमि झूमि काहू को कछू गनैन।
द्विजदेव की सौं ऐसी बानक बनाय बहु
भाँतिन बगारे चित चाह न चहूंघा चैन।
पेखि परे पात जो पै गातन उछाह भरे
बार बार तातैं तुम्हैं बूझती कछूक बैन।
एहो ब्रजराज मेरे प्रेम-धन लूटिबे को
बीरा खाइ आये कितै आप के अनोखे नैन।

२—घहरि घहरि घन सघन चहूंघा घेरि
छहरि छहरि विष बूंद बरसावै ना।
द्विजदेव की सौं अब चूक मत दाँव अरे
पातकी पपीहा तू पिया की धुन गावै ना।
फेरि ऐसो औसर न ऐहै तेरे हाथ एरे
मटकि मटकि मोर सोर तू मचावै ना।
हौं तो बिन प्रान प्रान चाहत तजोई अब
कत नभ चन्द तू अकास चढि धावै ना।

३—चित चाहि अबूझ कहैं कितने छबि
छीनी गयंदनि की टटकी।
कवि केते कहैं निज बुद्धि उदै
यह लीनी मरालनि की मटकी।
द्विजदेव जू ऐसे कुतर्कन में सब की
मति यों ही फिरै भटकी।

वह मन्द चलै किन भोरी भटू

पग लाखन की अँखियाँ अटकी ।

गिरधरदास का मुख्य नाम गोपाल चन्द्र था। आप भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र के पिता थे। इन्होने चालीस ग्रन्थ बनाये, जिनके आधार से बाबू हरिश्चन्द्रजी की यह गर्वोक्ति है —

जिन पितु गिरिधर दासने रचे ग्रन्थ चालीस ।

ता सुत श्री हरिचन्द को को न नवावै सीस ।

ग्रन्थो की संख्या अवश्य बडी है, पर अधिकाश ग्रन्थ छोटे और स्तोत्र-मात्र है। 'जरासन्ध-वध' महाकाव्य बडा ग्रन्थ है, परन्तु अधूरा है। इनकी अधिकांश रचनाये नैतिक है और उनमे सदाचार आदि की अच्छी शिक्षा है। इनकी भाषा ब्रजभाषा है, परन्तु उसे हम टकसाली नहीं कह सकते। इनकी रचना जितनी युक्तिमयी है उतनी ही भावमयी। युक्तिया उत्तम है, परन्तु उनमे उतनी सरसता और मधुरता नहीं। कहीं कही रचना बडी जटिल है फिर भी यह कहा जा सकता है कि हिन्दी देवी की अर्चा इन्हो ने सुन्दर सुमनो से की है। इनके कुछ पद्य देखिये —

१—सब के सब केसव केसव के हित के

गज सोहते सोभा अपार है ।

जब सैलन सैलन ही फिरै सैलन

सैलन सैलहि सीस प्रहार है ।

गिरि धारन धारन सों पद के

जल धारन लै बसुधारन कार है ।

अरि बारन बारन पै सुर बारन

बारन बारन बारन बार है ।

२—बातन क्यों समुझावत हो मोहि

मैं तुमरो गुन जानति राधे ।

प्रीति नई गिरधारन सों भई
कुंज में रीति के कारन साधे।
घूंघट नैन दुरावन चाहति दौरति
सो दुरि ओट ह्वै आधे।
नेह न गोयो रहै सखि लाज सों
कैसे रहै जल जाल के बाँधे।

३—जाग गया तब सोना क्या रे।
जो नरतन देवन को दुरलभ
सो पाया अब रोना क्या रे।
ठाकुर से कर नेह आपना
इंद्रिन के सुख होना क्या रे।
जब बैराग्य ज्ञान उर आया
तब चाँदी औ सोना क्या रे।
दारा सुवन सदन में पड़ि कै
भार सबों का ढोना क्या रे।
हीरा हाथ अमोलक पाया
काँच भाव में खोना क्या रे।
दाता जो मुख माँगा देवे
तब कौड़ी भर दोना क्या रे।
गिरिधर दास उदर पूरे पर
मीठा और सलोना क्या रे।

उन्नीसवी शताब्दी के पूर्व्वार्द्ध मे कोई ऐसा निर्गुणवादी संत सामने नहीं आता जिसने अपने सम्प्रदाय मे कोई नवीनता उत्पन्न की हो या जिसने ऐसी रचनाये की हो जिनका प्रभाव साहित्य पर ऐसा पडा हो जो

अंगुलि-निर्देश-योग्य हो। सत्रहवी शताब्दी में पारी साहब नामक एक मुसलमान ने कबीर साहब का मार्ग ग्रहण कर कुछ हिन्दी के शब्द (भजन) बनाये। ये सूफी सम्प्रदाय के थे, परन्तु हिन्दी मे प्रचार करने के कारण हिन्दुओं पर भी इनका प्रभाव पडा। इनके दो शिष्य थे—केशवदास और बुल्ला साहब। पहले हिन्दू थे और दूसरे मुसलमान। ये अठारहवीं शताब्दी मे हुये। इनकी रचनाये भी हिन्दी मे हुई और इन्होंने भी हिन्दू जनता को अपनी ओर आकर्षित किया। बुल्ला साहब के शिष्य गुलाल साहब हुये-ये जाति के क्षत्रिय थे, और इन्होने भी निर्गुण वादियों की सी रचनाये हिन्दी मे की। पारी साहब अथवा बुल्ला साहब के रहन-सहन की प्रणाली अधिकतर हिन्दुओंके ढंगमे ढली हुई थी। गुलाल साहब तक पहुंच कर वह सर्वथा हिन्दू भावापन्न हो गयी। वैष्णवों की तरह इन्होने तिलक और माला इत्यादि का प्रचार किया और सत्य राम मंत्र का उपदेश। इनके शिष्य भीखा साहब हुये। ये जाति के ब्राह्मण थे। इस लिये इनके समय मे इस परम्परा मे ऐसे परिवर्त्तन हुये जो अधिकाश मे वैष्णव सम्प्रदाय की अनुकूलता करते थे। ये अठारहवीं शताब्दी के अन्त मे हुये और इन्हो ने भी हिन्दी भाषा मे रचनाये की, जो वैसी ही है जैसी निर्गुणवादी साधुओं की होती है। इनके शिष्य गोबिन्दधर हुये जो गोबिन्द साहब के नाम से प्रसिद्ध है। इन्होने अपना एक अलग सम्प्रदाय चलाया, जिसका मंत्र है 'सत्य गोबिंद। ये भी ब्राह्मण और संस्कृत के विद्वान् थे। इसलिये इनके सम्प्रदाय की ओर हिन्दू जनता भी अधिक आकर्षित हुई। इनकी हिन्दी रचनायें भी पायी जाती है, परन्तु थोडी है और उनमे गंभीरता अधिक है। इस लिये सर्व साधारण मे उसका अधिक प्रचार नहीं हुआ। इन्हीं के शिष्य पलटू दास हुये जो इस उन्नीसवी शताब्दी के पूर्वार्द्ध मे जीवित थे। पारी साहब की परम्परा, इनके साथ ही समाप्त होती है। पलटू साहब जाति के बनिया थे, किन्तु सहृदय थे। जितनी रचनाये उन्हों ने की, चलती और सरल भाषा में। इस लिये उनकी रचनाओं का प्रचार अधिक हुआ। वे अपने को निर्गुण बनिया कहा करते और लिखते थे। कबीर साहब के समान कभी कभी ऊँची उडान भी भरते थे। उनके कुछ पद्य देखिये —

१—पलटू हम मरते नहीं ज्ञानी लेहु बिचार।
चारो जुग परलै भई हमहीं करनेहार।
हमहीं करनेहार हमहिँ कर्त्ता के कर्त्ता।
कर्त्ता जिसका नाम ध्यान मेरा ही धरता।
पलटू ऐना संत हैं सब देखै तेहि माँहिँ।
टेढ़ सोझ मुंह आपना ऐना टेढा नाहिँ।
जैसे काठ में अगिन है फूल में है ज्यों बास।
हरिजन में हरि रहत हैं ऐसे पलटू दास।
सुनि लो पलटू भेद यह हँसि बोले भगवान।
दुख के भीतर मुक्ति है सुख में नरक निदान।
मरते मरते सब मरे मरै न जाना कोय।
पलटू जो जियतै मरै सहज परायन होय।

उन्नीसवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध ऐसा काल है जिसमे बहुत बडे बडे परिवर्त्तन हुये। मै पहले इस बिषय मे कुछ लिख चुका हू। परिवर्त्तन क्यो उपस्थित होते है, इस विषय मे कुछ अधिक लिखने की आवश्यकता नही। किन्तु मैं यह बतलाऊगा कि उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध मे राजनीतिक धार्मिक और सामाजिक अवस्था क्या थी। मुसलमानो के राज्य का अन्त हो चुका था और व्रिटिश राज्य का प्रभाव दिन दिन विस्तार लाभ कर रहा था। अंगरेजी शिक्षा के साथ साथ योरोपीय भावों का प्रचार हो रहा था और 'यथा राजा तथा प्रजा' इस सिद्धान्त के अनुसार भारतीय रहन-सहन-प्रणाली भी परिवर्त्तित हो चली थी। अंगरेजो का जातीय भाव बडा प्रबल है। उनमे देश प्रेम की लगन भी उच्चकोटि की है। विचार स्वातंत्र्य उनका प्रधान गुण है। कार्य्य को प्रारम्भ कर उसको दृढता के साथ पूर्ण करना और उसे बिना समाप्त किये न छोडना यह उनका जीवन व्रत है। उनके समाज मे स्त्री जाति का उचित आदर है, साथ ही पुरुषों के समान उनका स्वत्व भी स्वीकृत है। वृटिश राज्य के संसर्ग

से और अंगरेजी भाषा की शिक्षा पाकर ये सब बाते और इनसे सम्बन्ध रखनेवाले और अनेक भाव इस शताब्दी के उत्तरार्द्ध मे और प्रान्तों के साथ साथ हमारे प्रान्त मे भी अधिकता से फैले। स्वामी दयानंद सरस्वती ने आर्यसमाज का डंका बजाया और हिन्दुओं मे जो दुर्बलताये रूढिया और मिथ्याचार थे उनका विरोध सबल कण्ठ से किया। इन सब बातो का यह प्रभाव हुआ कि इस प्रकार के साहित्य को देश को आवश्यकता हुई जो कालानुकूल हो और जिससे हिन्दू समुदाय की वह दुर्बलतायें दूर हों जिनसे उसका प्रतिदिन पतन हो रहा था। यही नही, इस समय यह लहर भी वेग से सब ओर फैली कि किस प्रकार देशवासी अपने कर्त्तव्यो को समझे और कौनसा उद्योग करके वे भी वैसे ही बने जैसे योरोप के समुन्नत समाजवाले है। कोई जाति उसी समय जीवित रह सकती है जब वह अपने को देशकालानुसार बना ले और अपने को उन उन्नतियो का पात्र बनावे जिनसे सब दुर्वलताओ का संहार होता है, और जिनके आधार से लोग सभ्यता के उन्नत सोपानों पर चढ सकते है। इन भावों का उदय जब हृदयो मे हुआ तब इस प्रकार की साहित्य-सृष्टि की ओर समाज के प्रतिभा-सम्पन्न विबुधो की दृष्टि गयी और वे उचित यत्न करने के लिये कटिबद्ध हुए। अनेक समाचार-पत्र निकले और विविध पुस्तक-प्रणयन द्वारा भी इष्ट-सिद्धि का उद्योग प्रारम्भ हुआ।

बाबू हरिश्चन्द्र इस काल के प्रधान कवि है। प्रधान कवि ही नही, हिन्दी साहित्य मे गद्य की सर्व-सम्मत और सर्व-प्रियशैली के उद्भावक भी आप ही है। हम इस स्थान पर यही विचार करेगे कि उनके द्वारा हिन्दी पद्य में किन प्राचीन भावो का विकास और किन नवीन भावो का प्रवेश हुआ। बाबू हरिश्चन्द्र महाप्रभु वल्लभाचार्य्य क सम्प्रदाय के थे। इसलिये भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र और श्रीमती राधिका मे उनका अचल अनुराग था। इस सूत्र से वे व्रजभाषा के भी अनन्य प्रेमी थे। उनकी अधिकाश रचनायें प्राचीन शैली की है और उनमे राधाकृष्ण का गुणानुवाद उसी भक्ति और श्रद्धा के साथ गाया गया है जिससे अष्टछाप के वैष्णवो की रचनाओं को महत्ता प्राप्त है। उन्हों ने न तो कोई रीति ग्रंथ लिखा है और न कोई

प्रबंध-काव्य। किंतु उनकी स्फुट रचनायें इतनी अधिक हैं जो सर्वतोमुखी प्रतिभावाले मनुष्य द्वारा ही प्रस्तुत की जा सकती है।

उन्होंने होलियों पर्वों त्योहारों और उत्सवों पर गाने योग्य सहस्रों पद्यों की रचना की है। प्रेम-रस से सिक्त ऐसे ऐसे कबित्त और सवैये बनाये हैं जो बड़े ही हृदयग्राही हैं। जितने नाटक या अन्य गद्य ग्रन्थ उन्होंने लिखे हैं, उन सब में जितने पद्य आये हैं वे सब ब्रजभाषा ही में लिखे गये हैं। इनके प्राचीनता प्रेमी होने पर भी उनमें नवीनता भी दृष्टिगत होती है। वे देश दशा पर अश्रु बहाते हैं, जाति-ममता का राग अलापते हैं जाति की दुर्बलताओं की ओर जनता की दृष्टि आकर्षित करते हैं, और कानों में वह मन्त्र फूंकते हैं जिससे चिरकाल की बंद आँखें खुल सकें उनके 'भारत-जननी' और 'भारत-दुर्दशा' नामक ग्रन्थ इसके प्रमाण हैं। बाबू हरिश्चन्द्र ही वह पहले पुरुष हैं जिन्हों ने सर्व प्रथम हिन्दी साहित्य में देश-प्रेम और जाति ममता की पवित्र धारा बहायी। वे अपने समय के मयंक थे। उनकी उपाधि 'भारतेन्दु' है। इस मयंक के चारों ओर जो जगमगाते हुये तारे उस समय दिखला पड़े, उन सबों में भी उनकी कला का विकास दृष्टिगत हुआ। सामयिकता की दृष्टि से उन्हों ने अपने विचारों को कुछ उदार बनाया। और ऐसे भावों के भी पद्य बनाये जो धार्मिक संकीर्णता को व्यापकता में परिणत करते हैं। 'जैन-कुतूहल' उनका ऐसा ही ग्रंथ है। उनके समय में उर्दू शाइरी उत्तरोत्तर समुन्नत हो रही थी। उनके पहले और उनके समय में ऐसे उर्दू भाषा के प्रतिभाशाली कवि उत्पन्न हुये जिन्होंने उसको चार चाँद लगा दिये। उनका प्रभाव भी इन पर पड़ा और इन्होंने अधिक उर्दू शब्दों को ग्रहणकर हिन्दी में 'फूलों का गुच्छा' नामक ग्रंथ लिखा जिसमें लावनियाँ हैं जो खड़ी बोली में लिखी गयी हैं। वे यद्यपि हिन्दी भाषा ही में रचित हैं, परंतु उनमें उर्दू का पुट पर्याप्त है। यदि सच पूछिये तो हिन्दी में स्पष्टरूप से खड़ी बोली रचना का प्रारम्भ इसी ग्रन्थ से होता है। मैं यह नहीं भूलता हूं कि यदि सच्चा श्रेय हिन्दी में खड़ी बोली की कविता पहले लिखने का किसी को प्राप्त है तो वे महंत सीतल हैं। वरन मैं यह कहता हूं कि इस उन्नीसवीं

शताब्दी मे पहले पहल यह कार्य्य भारतेन्दु जी ही ने किया। कुछ लोग उसको उर्दू की ही रचना मानते है। परंतु मै यह मानने के लिये तैयार नही। इसलिये कि जैसे हिन्दी भाषा और संस्कृत के तत्सम शब्द उसमे आये है वैसे शब्द उर्दू की रचना मे आते ही नहीं।

बाबू हरिश्चन्द्र नवीनता-प्रिय थे और उनकी प्रतिभा मौलिकता से स्नेह रखती थी। इसलिये उन्होने नई नई उद्‌भावनाये अवश्य की, परंतु प्राचीन ढंग की रचना ही का आधिक्य उनकी कृतियो मे है। ऐसी ही रचना कर के वे यथार्थ आनन्द का अनुभव भी करते थे। उनके पद्यो को देखने से यह बात स्पष्ट हो जाती है। उनके छोटे बडे ग्रन्थों की संख्या लगभग १०० तक पहूचती है। इनमे पद्य के ग्रन्थ चालीस पचास से कम नही है। परंतु ये समस्त ग्रन्थ लगभग व्रजभाषा ही मे लिखे गये है। उनकी भाषा सरस और मनोहर होती थी। वैदर्भी वृत्ति के ही वे उपासक थे। फिर भी उनकी कुछ ऐसी रचनाये है जो अधिकतर संस्कृत गर्भित है। वे सरल से सर **को पावैं।** रूढ़ भाषा लिखने मे सिद्धहस्त थे। गजलें भी उन्होने ि जो उर्दू के उस्तादों के शेरो की समता करने मे समर्थ है। चुका हूं कि वे प्रेमी जीव थे। इसलिये उनकी कविता **सुनावैं।** डा गहरा है। उनमे भक्ति भी थो और भक्ति मय स्तो ष्टदेव के लिखे है, परंतु जैसी उच्च कोटि की उनकी प्र **कंठ लगावैं।** ी अन्य नहो। उनकी कविता को पढ कर यह ज्ञ कृति इसी मे अपनी चरितार्थता समझती है कि व रूप -मयो हो। वे विचित्र स्वभाव के थे। कभी तो यह कहते —

जगजिन तृण सम करि तज्यो अपने प्रेम प्रभाव।
करि गुलाब सों आचमन लीजत वाको नॉव।
परम प्रेम निधि रसिकबर अति उदार गुनखान।
जग जन रंजन आशु कवि को हरिचंद समान।

कभी सगर्व होकर यह कहते—

चंद टरै सूरज टरै टरै जगत के नेम ।
पै दृढ़ श्री हरिचंद को टरै न अविचल प्रेम ।

जब वे अपनी सासारिकता को देखते और कभी आत्म-ग्लानि उत्पन्न होती तो यह कहने लगते ।

जगत-जाल में नित बँध्यो पर्‌यो नारि के फंद ।
मिथ्या अभिमानी पतित झूठो कवि हरिचंद ।

उनकी जितनी रचनाये है इसी प्रकार विचित्रताओ से भरी है। कुछ उनमें से आप लोगो के सामने उपस्थित की जाती है—

१—इन दुखियान को न सुख सपने हूँ मिल्यो
यों ही सदा व्याकुल विकल अकुलायँगी ।
प्यारे हरिचंद जूकी बीती जानि औधि जोपै
ऊ एतो संग ना समायँगी ।
। उनकी उपा
दे जगमगाते हुये ँ न नैन भरि तोहि यातें
की कला का वि लोक जैहैं तहाँ पछतायँगी ।
ने अपने बिचारो रे भये दरस तिहारे हाय
द्य बनाये जो धार्मिक वैँ ये खुली ही रह जाँयगी ।
मन-कुतूहल' उनका ऐसा ह च में बिचारत रही रे काहें
तर समुन्नत हो रहो था ।
कवि उत ते न छिन बिसरत है ।
त्योंही हरिचंद जू वियोग औ सँजोग दोऊ
एक से तिहारे कछु लखि न परत है ।
जानी आज हम ठकुरानी तेरी बात तू तो
परम पुनीत प्रेम-पथ बिचरत है ।
तेरे नैन मूरति पियारे की बसति ताहि
आरसी में रैन दिन देखिबो करत है ।

३—जानि सुजान हौं नेह करी सहि कै
बहुभाँतिन लोक हँसाई।
त्यों हरिचंद जू जो जो कह्यो
सो करयो चुपह्वै करि कोटि उपाई।
सोऊ नहीं निबही उन सों
उन तोरत बार कछू न लगाई।
साँची भई कहनावतिया अरी
ऊँची दूकान की फीकी मिठाई।

४—आजु लौं जौन मिले तो कहा
हम तौ तुम्हरे सब भाँति कहावैं।
मेरो उराहनो है कछु नाहि सबै
फल आपने भाग को पावैं।
जो हरिचंद भई सो भई अब
प्रान चले चहैं याते सुनावैं।
प्यारे जू है जग की यह रीति
बिदा के समै सब कंठ लगावैं।

५—पियारो पैये केवल प्रेम में
नाहि ज्ञान मैं, नाहि ध्यान मैं, नाहि करम कुल नेम मैं।
नहिँ मंदिर मैं नहिँ पूजा मैं, नहिँ घंटा की घोर मैं।
हरीचंद वह बाँध्यो डोलै एक प्रेम की डोर मैं।

६—सम्हारहु अपने को गिरिधारी।
मोर मुकुट सिरपाग पेच कसि राखहु अलकसँवारी।
हिय हलकत बनमाल उठावहु मुरली धरहु उतारी।

चक्रादिकन सानदै राखो कंकन फँसन निवारी।
नूपुर लेहु चढ़ाय किंकिनी खीँचहु करहु तयारी।
पियरो पट परिकर कटि कसिकै बाँधो हो बनवारी।
हमनाहीं उनमें जिनको तुम सहजहिँ दीन्हों तारी।
बानो जुगओ नीके अबकी हरीचंद की बारी।

एक उर्दू की गजल भी देखिये'—

दिल मेरा ले गया दग़ा कर के।
बेवफ़ा होगया वफ़ा कर के।
हिज्र की शब घटाही दी हमने।
दास्तां ज़ुल्फ़ की बढा करके।
वक्ते रहलत जो आये बालीं पर।
ख़ूब रोये गले लगा कर के।
सर्वे क़ामत ग़ज़बकी चालसे तुम।
क्यों क़यामत चले बपा कर के।
ख़ुद ब ख़ुद आज जो वह बुत आया।
मैं भी दौड़ा ख़ुदा ख़ुदा कर के।
दोस्तो कौन मेरी तुरबत पर।
रोरहा है रसा रसा कर के।

८—श्रीराधामाधव युगल प्रेम रसका अपने को मस्त बना।
पी प्रेम-पियाला भर भरकर कुछ इसमैका भी देखमज़ा।
इतबार न हो तो देख न ले क्या हरीचंद का हाल हुआ।

९—नव उज्ज्वल जलधार हार हीरक सी सोहति।
बिच बिच छहरति बूंद मध्य मुक्ता मनि पोहति।

लोल लहर लहि पवन एक पै इक इमि आवत।
जिमि नर गन मन विविध मनोरथ करत मिटावत।
१०—तरनि तनूजा तट तमाल तरुवर बहुछाये।
झुके कूल सों जल परसन हित मनहुं सुहाये।
किधौं मुकुर मैं लखत उझकि सब निज निज सोभा।
कै प्रनवत जल जानि परम पावन फल लोभा।
मनु आतप वारन तीर को सिमिटि सबै छाये रहत।
कै हरि सेवा हित नै रहे निरखि नयन मन सुख लहत।

उनकी इस प्रकार की रचनाये भी मिलती है जिनमे खडी बोली का पुट पाया जाता है। जैसे यह पद्य —

डंका कूच का बज रहा मुसाफ़िर जागो रे भाई।
देखो लाद चले पंथी सब तुम क्यों रहे भुलाई।
जब चलना ही निश्चय है तो लै किन माल लदाई।
हरीचंद हरिपद बिनु नहिं तो रहि जैहौ मुंह बाई।

किंतु उनको इस प्रकार की रचना बहुत थोडी है। क्योकि उनका विश्वास था कि खडी बोल चाल मे सरस रचना नही हो सकती। उन्हों ने अपने हिन्दी भाषा नामक ग्रंथ मे लिखा है कि खडी बोली मे दीर्घान्त पद अधिक आते है, इसलिये उसमे कुछ न कुछ रूखापन आही जाता है। इस विचार के होने के कारण उन्होंने खडी बोल चाल की कविता करने की चेष्टा नही की। किन्तु आगे चल कर समय ने कुछ और ही दृश्य दिखाया, जिसका वर्णन आगे किया जावेगा। बाबू हरिश्चन्द्र जो रत्न हिन्दी भाषा के भाण्डार को प्रदान कर गए है वे बहुमूल्य है, यह बात मुक्त कंठ से कही जा सकती है।

पंडित बदरीनारायण चौधरी बाबू हरिश्चन्द्र के मित्रों मे से थे। दोनो के रूप रंग मे समानता थी और हृदय मे भी। दोनो ही रसिक थे और

दोनों ही हिन्दी भाषा के प्रेमी। दोनो ही ने आजन्म हिन्दी भाषा की सेवा की और दोनो ही ने उसको यथा शक्ति अलंकृत बनाया। दोनों ही अमीर थे और दोनो ही ऐसे हँसते मुख, जो रोते को भी हँसादे। आज दोनो ही संसार मे नही है, परन्तु अपनी कीर्त्ति द्वारा दोनो ही जीवित है। चौधरी जी की रचनाये अधिक नहीं है। किंतु जो है वे हिन्दी भाषा का शृंगार है। पंडित जी सरयूपारीण ब्राह्मण और प्रचुर सम्पत्ति के अधिकारी थे। फारसी और संस्कृत का उन्हे अच्छा ज्ञान था, अंगरेजी भी कुछ जानते थे। उन्होने मिर्ज़ापुर मे रसिक समाज आदि कई सभाये स्थापित कीथी और 'आनंदकादम्बिनी' नामक मासिक पत्रिका तथा 'नागरी-नीरद' नामक साप्ताहिक पत्र भी निकाला था। दोनो ही सुदर थे और जब तक रहे अपने रस से हिन्दी ससार को सरस बनाते रहे। और क्यो न बनाते जब प्रेमघन उनके संचालक थे? घन आनंद के उपरात कविता मे चौधरी जी ने ही ऐसा सरस उपनाम अपना रक्खा जिसके सुनते ही प्रेम का घन उमड पडता है। वे आनन्दी जीव थे और अपने रंग मे सदा मस्त रहते थे इस लिये कुछ लोग यह समझते थे कि वे जैसा चाहिये वैसे मिलनसार नही थे। किंतु ऐसा वेही कहते है जो उनके अंतरंग नही। वास्तवमे वे बड़े सहृदय और सरस थे और जिस समय जी खोलकर मिलते रस की वर्षा कर देते। उनकी रचनाये सब प्रकार की है। किंतु ग्रंथाकार बहुत कम छपीं। भारत-सौभाग्य-नाटक उनका प्रसिद्ध नाटक है। जहा तक मुझे स्मरण है उन्होने 'वेश्या-विनोद' नामक एक महानाटक लिखा था। परंतु वह छप न सका और कदाचित् पूरा भी नहीं हुआ। कुछ छोटी छोटी कविताये उनकी छपी है, जो विशेष अवसरो पर लिखी जा कर वितरण की गयी। उन्हों ने हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के सभापति-पद को भी सुशोभित किया था। सभापतित्व के पद से जो भाषण उन्हों ने दिया था वह बडा ही विद्वत्तापूर्ण था, वह छप भी चुका है। उनके बहुत से सुंदर लेख और कितनी ही सरस कविताये उनके सम्पादित पत्रों मे मोजूद है। परन्तु दुःख है कि न तो अब तक उनका संकलन हुआ और न वे ग्रंथ रूप मे परिणत हुये। उनकी अधिकाश रचनाये

व्रजभाषा मे है और आजीवन उन्हो ने उसी की सेवा की। अंतिम समय मे जब खडी बोली का प्रचार हो चुका था, उन्होने कुछ खडी बोली की रचनाये भी की थीं। उनके कुछ पद्य देखिये —

१—बगियान बसंत बसेरो कियो
बसिये तेहि त्यागि तपाइये ना।
दिन काम कुतूहल के जे बने
तिन बीच बियोग बुलाइये ना।
घन प्रेम बढ़ाय कै प्रेम अहो
विथा वारि वृथा बरसाइये ना।
इतै चैत की चाँदनी चाह भरी
चरचा चलिबे की चलाइये ना।

२—अब तो लखिये अलि ए अलियन
कलियन मुख चुंबन करन लगे।
पीवत मकरंद मनो माते,
ज्यों अधर सुधा रस मैं राते।
कहि केलि कथा गुंजरन लगे।
रस मनहुं प्रेम घन बरसत घन निज प्यारी के
करि आलिगन लिपटे लुभाय मन हरन लगे।

उनके हृदय मे भी समय के प्रभाव से देश प्रेम जाग्रत था। अतएव उन्हों ने इस प्रकार की रचनाये भी की है। एक पद्य देखिये —

जय जय भारत भूमि भवानी।
जाकी सुजस पताका जग के दसहूं दिसि फहरानी।
सब सुख सामग्री पूरित ऋतु सकल समान सुहानी।
जा श्री सोभा लखि अलका अरु अमरावती खिसानी।

प्रनमत तीस कोटि जन अजहूं जाहि जोरि जुग पानी ।
जिन मैं झलक एकता की लखि जग मति सहमिसकानी ।
ईस कृपा लहि बहुरि प्रेम घन बनहु सोई छवि खानी ।
सोइ प्रताप गुन जन गरवित ह्वै भरी पुरी धन धानी ।

उनकी एक खडी बोली की रचना भी देखिये जो अंतिम दिनो मे की गई है ।

मन की मौज ।

१—मन की मौज मौज सागर सी सो कैसे ठहराऊँ ।
जिसका वारापार नहीं उस दरिया को दिखलाऊँ ।
तुमसे नाजुक दिल को भारी भँवरों में भरमाऊँ ।
कहो प्रेमघन मन की बातें कैसे किसे सुनाऊँ ।
२—तिरछी त्योरी देखि तुम्हारी क्यों कर सीस नवाऊँ ।
हौ तुम बड़े ख़बीस जान कर अन जाना बन जाऊँ ।
हर्फ़ शिकायत ज़बाँ प आये कहीं न यह डरलाऊँ ।
कहो प्रेमघन मन की बातें कैसे किसे सुनाऊँ ।
३—लूट रहे हो भली तरह मैं जानूं बले छुपाऊँ ।
करते हो अपने मन की मैं लाख चहे चिल्लाऊँ ।
डाह रहे हो ख़ूब परा परवस मैं गो घबराऊँ ।
कहो प्रेमघन मन की बातें कैसे किसे सुनाऊँ ।

प्रेमघन जी ने गद्य में बहुत बडा कार्य्य किया है, उनके गद्यों मे विलक्षणताये और माधुर्य्य भी अधिक है । इसका वर्णन आगे गद्य-विभाग में होगा । इसलिये उसकी यहा कुछ चर्चा नहो की जाती ।

पं० प्रतापनारायण मिश्र भारतेन्दु काल के एक जगमगाते हुए नक्षत्र

थे। प्रकृति बडी स्वतंत्र थी, लगी—लिपटो बाते पसंद नही थीं। इसलिये खरी बाते कहना ही उनका व्रत था। वे बाबू हरिश्चन्द्र के बड़े प्रेमी थे और अपने 'ब्राह्मण' मासिक पत्र पर 'हरिश्चन्द्राय नम' लिखा करते थे। इससे उनका हिन्दी भाषा-प्रेम प्रकट है। वे अधिक अर्थकृच्छ होने पर भी अपने 'ब्राह्मण' को बराबर निकालते रहे और उस समय तक अपने इस धर्म को निबाहा जब तक उनकी गॉठ मे दाम रहा। देश-ममता, जाति-ममता, और भाषा-प्रेम उनकी रग रग मे भरा था। आजीवन उन्हो ने इसको निबाहा। इन तीनो विषयो पर उन्होने बडी सरस रचनाये की है। जितनी पक्तियॉ उन्होने अपने जीवन मे लिखी, वे चाहे गद्य की हो या पद्य की, उन सबो मे इन तीनो विषयो को धारा ही प्रबल वेग से बहती दृष्टिगत होती है। वे मूर्तिमन्त देश-भक्त थे। इसी लिये उनको सब रचनायें इसी भाव से भरी है। उन्हो ने एक दर्जन पुस्तके बॅगला से अनुवादित की और पन्द्रह बीस पुस्तके स्वय लिखी जिनमे से 'प्रताप-संग्रह', 'मानस-विनोद', 'मन की लहर', 'ब्रेडला-स्वागत', 'लोकोक्तिशतक', 'तृप्यंताम्' आदि अनेक ग्रन्थ पद्य मे लिखे गये है। इन सब मे उनकी मानसिक प्रवृत्ति स्पष्टतया दृष्टिगत होती है। उन्होने प्रार्थना और विनय के पद भी कहे है और ईश्वर एवं धर्म-सम्बन्धी रचनाये भी की है, परन्तु उनमे वह ओज और आवेश नही पाया जाता, जो देश-अथवा जाति-सम्बन्धी रचनाओ मे मिलता है। उनके पद्यो की एक ही भाषा नहीं है। कभी उन्हों ने अपनी बैसवाडी बोलचाल मे रचना की है, कभी उर्दू मिश्रित खडी बोली मे, और कभी व्रजभाषा मे। अधिकाश रचनाये व्रजभाषा ही मे है। जितने पद्य उन्होने देश और जाति-सम्बन्धी लिखे है, उनमे उनके हृदय का जीवन्तभाव बहुत ही जाग्रत मिलता है जो हृदयो मे तीव्रता के साथ जीवनी-धाराये प्रवाहित करता है। जब ब्रेडला साहब भारत मे पधारे उस समय उन्होने उनके स्वागत मे जो कविता लिखी, उसमे देश की दशा का ऐसा सच्चा चित्रण किया कि उसको बडी प्रशंसा हुई, यहा तक कि विलायत तक मे उसकी चर्चा हुई। उनकी अधिकाश रचनाये इसी प्रकार की है। उनमे से कुछ मैं आप लोगो के सामने रखूगा। पहले देखिये वे 'हिन्दी,

हिन्दू और हिन्दुस्तान' के विषय में क्या कहते हैं —

चहहु जो साँचो निज कल्यान ।
तो सब मिलि भारत संतान ।
जपो निरंतर एक ज़बान ।
हिन्दी हिन्दू हिन्दुस्थान ।
तबहि सुधरि है जन्म निदान ।
तबहि भलो करि है भगवान ।
जब रहि है निसि दिन यह ध्यान ।
हिन्दी हिन्दू हिन्दुस्तान ।

अपनी 'तृप्यंताम्' नामक कविता मे वे किस प्रकार अपने जातीय दुःख को प्रकट करते हैं, उसे भी सुनिये —

केहि विधि वैदिक कर्म होत
कब कहा बखानत ऋक यजु साम।
हम सपने हूं में नहिं जानैं
रहैं पेट के बने गुलाम ।
तुमहि लजावत जगत जनम ले
दुहुँ लोकन मे निपट निकाम।
कहैं कौन मुख लाइ हाय
फिर ब्रह्मा बाबा तृप्यंताम् ।

अपने बैसवाडी बोलचाल मे देखिये, गोरक्षा के विषय मे क्या कहते हैं —

गैया माता तुम काँ सुमिरौं
कीरति सब ते बड़ी तुम्हारि ।

करौ पालना तुम लरिकन कै
पुरिखन बैतरनी देउ तारि ।
तुम्हरे दूध दही की महिमा
जानैं देव पितर सब कोय ।
को अस तुम बिन दूसर जेहि
का गोबर लगे पवित्तर होय ।

बुढापा का वर्णन अपनी ही भाषा मे देखिये किस प्रकार करते है —

हाय बुढापा तोरे मारे अब तो
हम नकन्याय गयन ।
करत धरत कछु बनतै नाहीं
कहाँ जान औ कैस करन ।
छिन भरि चटक छिनै मां मद्धिम
जस बुझात खन होइ दिया ।
तैसे निखवख देखि परत हैं
हमरी अक्किल के लच्छन ।
अस कुछु उतरि जाति है जीते
बाजी बिरियां बाजी बात ।
कैसेउ सुधि ही नाहीं आवत
मूंडुइ काहें न दै मारन ।
कहा चहौं कुछु निकरत कुछु है
जीभ राँड़ का है यहु हालु ।
कोऊ येहका बात न समझै
चाहे बीसन दाँय कहन ।

दाढी नाक याकमाँ मिलिगै
बिन दाँतन मुंहु अस पोपलान ।
दढ़िही पर बहि बहि आवति है
कबौं तमाखू जो फाँकन ।
बारौ पकिगै रीरौ झुकिगै
मूंड़ौ सासुर हालन लाग ।
हाथ पाँव कछु रहे न आपन
केहि के आगे दुख रूवावन ।

उनकी एक गजल देखिये —

वो बदखू राह क्या जाने वफ़ा की ।
अगर ग़फ़लत से बाज़ आया जफ़ा की ।
मियां आये हैं बेगारी पकड़ने,
कहे देती है शोख़ी नक़शे पा की ।
पुलिसने और बदकारों को शहदी,
मरज़ बढ़ता गया ज्यों ज्यों दवा की ।
उसे मोमिन न समझो ऐ बिरहमन,
सताये जो कोई ख़िलक़त ख़ुदा की ।
बिधाता ने याँ मक्खियां मारने को,
बनाये हैं ख़ुशरू जवां कैसे कैसे ।
अभी देखिये क्या दशा देशकी हो,
बदलता है रंग आसमां कैसे कैसे ।

एक भजन भी देखिये —

माया मोह जनम के ठगिया
तिनके रूप भुलाना ।

छल परपंच करत जग धूनत
दुख को सुख करि माना ।
फिकिर वहाँ की तनक नहीं है
अंत समै जहँ जाना ।
मुख ते धरम धरम गुहरावत
करम करत मनमाना ।
जो साहब घट घट की जानत
तेहि ते करत बहाना ।
येहि मनुआ के पीछे चलि के
सुख का कहाँ ठिकाना ।
जो परताप सुखद को चीन्हे सोई परम सयाना ।

दो सवैयाओ को भी देखिये —

बनि बैठी है मान की मूरति सी, मुख खोलत बोलै न 'नाहीं' न 'हाँ' । तुमहीं मनुहारि कै हारि परे सखियान की कौन चलाई तहाँ । बरषा है प्रताप जू धीर धरौ अब लौं मन को समझायो जहाँ । यह ब्यारि तबै बदलैगी कछू पपिहा जब पूछि है 'पीव कहाँ' । आगे रहे गनिका गज गीध सुतौ अब कोऊ दिखात नहीं है । पाप परायन ताप भरे परताप समान न आन कहीं है । हे सुखदायक प्रेम निधे जग यों तो भले औ बुरे सबही हैं । दीनदयाल औ दीन प्रभो तुमसे तुमहीं हमसे हमहीं हैं ।

पंडित अम्बिका दत्त व्यास संस्कृत के प्रसिद्ध विद्वान् थे । बाबू हरिश्चन्द्र आप को बहुत आदर की दृष्टि से देखते थे । बिहार प्रान्त मे

आप का बडा सम्मान था। वहाँ आप संस्कृत के प्रोफेसर थे। वे संस्कृत के बिद्वान् ही नही थे, बहुत बडे वक्ता भी थे। व्याख्यान के समय जनता को अपनी मूठियो मे कर लेना उनके बाये हाथ का खेल था। बिहार मे आर्य्यसमाज के सग जब जब उनका शास्त्रार्थ हुआ तब तब उन्हों ने विजय-पत्र प्राप्त किये। धारा प्रवाह संस्कृत बोलते थे और कठिन से कठिन शास्त्रीय बिषयो को इस प्रकार सुलझाते थे कि प्रति पक्षियो के दाँत खट्टे हो जाते थे। वे शास्त्र-पारगत बिद्वान् तो थे ही, उनकी धारणाशक्ति भी बडी प्रवल थी। एक काल मे वे कई कार्य्य साथ साथ कर सकते थे। इस बिषय मे उनकी कई बार परीक्षा ली गयी और वे सदा उसमे सफलता के साथ उत्तीर्ण हुये। उन्होंने संस्कृत ग्रंथो की भी रचना की है। बाबू हरिश्चन्द्र की ललिता' नाटिका का अनुवाद संस्कृत मे किया था। वेघटिका शतक थे। एक घटे मे संस्कृत के १०० अनुष्टुप वृत्तो की रचना कर देते थे। संस्कृत के इतने बडे बिद्वान् होने पर भी हिन्दी भापा के बड़े अनुरागी थे। उन्हो ने हिन्दी भाषा मे 'पीयूष-प्रवाह' नाम का एक मासिक पत्र भी निकाला था। उनकी गद्य और पद्य दोनो की रचनाये सुंदर और सरस होती थीं। वे आशु कवि थे। इस लिये हिन्दी समस्याओ की पूर्त्ति बात की बात् मे कर देते थे। उनके पिता पंडित दुर्गादत्त भी हिन्दी भाषा के बड़े अच्छे कवि थे। उन्ही के प्रभाव से ये सब बिलक्षणताये उनमे एकत्रीभूत थीं। एक बार उन्हे समस्या दी गयी।—

मूंदि गयी आंखैं तब लाखैं कौन काम की।

उन्हों ने तत्काल उसको पूर्त्तिया की। —

चमकि चमाचम रहे हैं मनिगन चारु
सोहत चहूँघा धूम धाम धन धाम की।
फूल फुलवारी फलफैलि कै फबे हैं तऊ
छबि छटकीली यह नाहिन अराम की।
काया हाड़ चाम की लै रामकी बिसारी सुधि
जामकी को जानै बात करत हराम की।

अम्बादत्त भाखैं अभिलाखैं क्यों करत झूठ
मूंदि गयीं आंखैं तब लाखैं कौन काम की।

वे साहित्याचार्य तो थे ही, 'भारतरत्न', 'बिहार भूषण, शतावधान' और 'भारत भूषण' आदि पदविया भी उन्हे राजे-महाराजाओ तथा सनातन धर्म मण्डल दिल्ली से प्राप्त हुई थी। उनको कितने ही स्वर्णपदक भी मिले थे। जब तक जीवित रहे, पटना कालेज की प्रोफेसरी बडी ख्याति के साथ की। उनके जीवन का बहुत बडा काम यह है कि उन्होने बिहार मे 'संस्कृत-सजीवनी-समाज' नाम की एक संस्था स्थापित की थी। इस समाज के द्वारा संस्कृत की अनिमियत शिक्षा-प्रणाली का ऐसा सुधार हुआ कि अब भी उसकी सहायता से सैकडो विद्यार्थी संस्कृत शिक्षा पा कर प्रतिवर्ष नाना उपाधिया प्राप्त करते है। सस्कृतके अतिरिक्त वे बॅगला, मराठी, गुजराती और कुछ अॅगरेजी भी जानते थे। उनकी संस्कृत और हिन्दी की छोटी-बडी पुस्तकों की संख्या लगभग ७८ है, जिनमे 'बिहारी-बिहार' जैसे बडे ग्रंथ भी है। बिहारी लाल के ७०० दोहो पर उन्होने जो कुंडलियाँ बनायी थीं, मुद्रित रूप मे उन्ही का नाम 'बिहारी-बिहार' है। इस ग्रंथ की भूमिका भी बडी विशद और सुन्दर है। उसी से इनके कुछ पद्य नीचे लिखे जाते है। इनका हिन्दी उपनाम सुकवि था —

१—मेरी भव बाधा हरो राधा नागरि सोय।
जा तन की झाईं परे स्याम हरित दुति होय।
स्याम हरित दुति होय परत तन पीरी झाईं।
राधाहूँ पुनि हरी होति लहि स्यामल छाईं।
नैन हरे लखि होत रूप औ रंग अगाधा।
सुकवि जुगुल छवि धाम हरहु मेरी भव बाधा।

२—सोहत ओढ़े पीत पट स्याम सलोने गात।
मनो नील मनि सैल पर आतप पर्यो प्रभात।

आतप पर्‌यो प्रभात ताहि सों खिल्यो कमल मुख
अलक भौंर लहराय जूथ मिलि करत विविधमुख।
चकवा से दोउ नैन देखि एहि पुलकत मोहत।
सुकवि विलोकहु स्याम पीतपट ओढ़े सोहत।

देखिये 'भौंह -सम्बन्धी उनकी यह रचना कितनी सुन्दर है —

३—नैन कमल लखि उमँग भरे से।
भृकुटि ब्याज जनु पाँति करे से।
फरफरात पुनि ठटकारे से।
घूमत मलिद मतवारे से।

उनके दो दोहे भी देखिये —

४—गुंजा री तू धन्य है बसत तेरे मुख स्याम।
याते उर लाये रहत हरि तोको बसुयाम।
५—मोर सदा पिउ पिउ करत नाचत लखि घनश्याम।
या सों ताकी पाँख हूँ सिर धारी घनश्याम।

व्यास जी जयपुर निवासी थे। इसलिये बडी सरस व्रजभाषा मे रचना करते थे। जिसे इसके प्रमाण की आवश्यकता हो वह इनकी रची 'सतसई' को देखे। वे जब तक जीवित रहे, हिन्दी संसार मे भारतेन्दु के समान ही उनकी कीर्ति भी थी। उन्होने हिन्दी-संसार को गद्य और पद्य के जितने ग्रंथ दिये है वे बडे अमूल्य है और उनके लिये हिन्दी संसार उनका सदा ऋणी रहेगा।

बाबा सुमेर सिंह सिक्ख गुरु और पटने के महंत थे। जिला आजमगढ़ के निजामाबाद कस्बे मे उनका निवास था। वे सिक्खो के तीसरे गुरु अमरदास के वंशज थे। इसलिये साहब जादे कहे जाते थे। जाति के भल्ले खत्री थे। परमात्मा ने उनको बडा सुन्दर रूप दिया था। जैसा

सुन्दर स्वरूप था, वैसा ही सुदर उनका हृदय भी था। हिन्दी भाषा के बड़े प्रेमी थे, इस भाषाका ज्ञान भी उन्हे अच्छा था। वे संस्कृत भी जानते थे। बाबू हरिश्चन्द्र से उनकी बडी मैत्री थी। बनारस के महल्ले रेशम कटरे की बडी संगत मे आ कर वे प्राय रहते थे और यहीं दोनोका बडा सरस समागम होता था। बाबा सुमेर सिह ब्रजभाषा की बडी सरस कविता करते थे। उन्होने इस भाषा मे एक विशाल प्रबंध काव्य लिखा था, जो लगभग नष्ट हो चुका है केवल उसका दशम मडल अबतक यत्र-तत्र पाया जाता है इस ग्रंथ का नाम प्रेम-प्रकाश था। इसमे उन्हो ने सिक्खो के दश गुरुओ की कथा दश मंडलो मे वृहत् रूप से बडी ललित भाषा मे लिखी थी। दशम मंडल मे गुरु गोविन्द सिंह का चरित्र था। गुरुमुखी मे वह मुद्रित हुआ और वही अब भी प्राप्त होता है। शेष नौ मण्डल कराल काल के उदर मे समा गये। बहुत उद्योग करने पर भी न तो वे प्राप्त हो सके न उनका पता चला। उन्होंने 'कर्णाभरण' नामक एक अलंकार ग्रंथ भी लिखा था। अब वह भी अप्राप्य है। गुरु गोविंदसिंह ने फारसी मे जो 'जफरनामा' लिखा था उसका अनुवाद भी उन्हो ने 'विजय पत्र के नाम से किया था। वह भी लापता है। उन्होने संत निहाल सिंह के साथ दशम ग्रंथ साहब के जाप जी की बडी वृहत् टीका लिखी थी, जो बहुत ही अपूर्व थी। वह मुद्रित भी हुई है किंतु अब उसका दर्शन भी नही होता। उन्हो ने छोटे छोटे और भी कई ग्रथ धार्म्मिक और रससम्बन्धी लिखे थे। परन्तु उनमे से एक भी अब नही मिलता। उन्होने जितने ग्रंथो की रचना की थी उन सब मे हिन्दू भाव ओतप्रोत था और यही उनकी रचनाओं का महत्व था। आज कल कुछ सिख सम्प्रदायवाले अपने को हिन्दू नही मानते, वे उनके विरोधी थे। इसलिये भी उनके ग्रंथ दुष्प्राप्य हो गये। फिर भी उनकी स्फुट रचनाये सुंदरी तिलक' इत्यादि ग्रंथो मे मिल जाती है। जब वे पटने मे महन्त थे तो वहाँ से उन्होने एक कविता-सम्बन्धी मासिक पत्रिका भी हिन्दी मे निकाली थी। वह एक साल चल कर बन्द हो गयी। उसमे भी उनकी अनेक कविताये अब तक विद्यमान है। उनकी दो कविताये मुझे याद है। उनको मैं यहा लिखता

हू। उन्ही से आप लोग उनकी कविता की भाषा और उनके विचार का अनुमान कर सकते है.—

१—सदना कसाई कौन सुकृत कमाई नाथ
मालन के मनके सुफेरे गनिका ने कौन।
कौन तप साधना सों सेवरी ने तुष्ट कियो
सौचाचार कुबरी ने कियो कौन सुख भौन।
त्यों हरि सुमेर जाप जप्यो कौन अजामेल
गज को उबार्‌यो बार बार कवि भाख्यो तौन।
एते तुम तारे सुनो साहब हमारे राम
मेरी बार विरद् विचारे कौन गहि मौन।

२—बातें बनावती क्यों इतनी हमहूं
सों छप्यो नहीं आज रहा है।
मोहन के बनमाल को दाग दिखाइ
रह्यो उर तेरे अहा है।
तू डरपै करै सौहैं सुमेर हरी
सुन सांच को आँच कहाँ है।
अंक लगी तो कलङ्क लग्यो जो
न अङ्क लगी तो कलङ्क कहा है।

बाबा सुमेरसिह ने आजीवन कविता देवी ही की आराधना की। उन्होंने न तो गद्य लिखने की चेष्टा की और न गद्य ग्रन्थ रचे। उनका जीवन काव्यमय था और वे कविता पाठ करने और कराने मे आनन्द लाभ करते थे। अपनी कविता के विषय मे उनकी बडी बडी आशाये थीं। वे उसका बहुत प्रचार चाहते थे और कहा करते थे कि हिन्दू सिक्खों की भेद-नीति का संहार इसी के द्वारा होगा। परन्तु दुख से

कहना पडता है कि अपने उद्योग मे सफलता लाभ करने के पहले ही उनका स्वर्गवास हुआ और उनके स्वर्गवास होने पर उनकी कविता का अधिकाश लोप हो गया। जो कुछ शेष है वह यद्यपि उनकी वास्तविक कीर्ति के विस्तार के लिये पर्य्याप्त नहीं है फिर भी अब उसी पर संतोष करना पडता है। काल की लीला ही ऐसी है।

भारतेन्दु का काल गद्य के उत्थान का काल था। सामयिक आवश्यकताओ के कारण इस समय गद्य का बहुत अधिक प्रचार हुआ। इन दिनों अनेक पत्र पत्रिकाये निकलीं और गद्य की पुस्तके भी अधिक छपी। स्कूलो एवं ग्रामीण पाठशालाओ केलिये कोर्स की बहुत अधिक पुस्तके भी गद्य मे हो लिखो गयी। सनातन धर्म और आर्य्य समाज के विवाद के कारण अधिकतर वादसम्बन्धी ग्रन्थ भो गद्य मे ही लिखे गये। इसो प्रकार बहुत सो सामाजिक और राजनीतिक पुस्तको को भो गद्य का अवलम्बन ग्रहण करना पडा, क्योकि पद्य द्वारा ये सब कार्य्य न तो व्यापक रूप से किये जा सकते थे और न वह सुविधा ही प्राप्त हो सकती थी जो गद्य द्वारा प्राप्त हो सकी। पश्चिमोत्तर प्रात मे ही नहीं, विहार मध्यभारत और पंजाब तक मे हिन्दो भाषा का विस्तार इन दिनो हुआ और इसका आधार गद्य ही था। जितनी हिन्दी पत्र पत्रिकाये इन प्रातों मे निकली या जो ग्रन्थ आवश्यकतानुसार लिखे गये उनमे से अधिकाश का आधार भी गद्य ही था। इसलिये इस समय के जितने विद्वान् धार्मिक अथवा राजनीतिक पुरुष किवा शिक्षा प्रचारक साहित्य क्षेत्र मे उतरे उनको गद्य से ही अधिकतर काम लेना पडा फिर क्यो न इस समय अधिकतर गद्य ग्रन्थकार ही उत्पन्न होते। बाबू हरिश्चन्द्र के समय मे जितने हिन्दी के प्रसिद्ध लेखक हुये वे अधिकतर गद्य ग्रन्थकार हैं। उनका वर्णन मैं आगे चलकर करूंगा। गद्य के साथ साथ उस समय जिन प्रतिष्ठा प्राप्त लेखकों ने पद्य रचनाये भी की उनका वर्णन मैं ऊपर कर चुका। महामहोपाध्याय पं० सुधाकर द्विवेदी ऐसे कुछ मान्य पुरुषों ने भी उस समय गद्य के साथ कुछ पद्य रचना भी की थी। परन्तु उनको पद्य रचनाये बहुत थोडो है। इसलिये पद्य विभाग मे मैने उन्हें स्थान नही दिया।

यद्यपि किसी किसी के कुछ पद्य बडे सुन्दर हैं। द्विवेदीजी की भी कोई कोई रचना बडी ही हृदय-ग्राहिणी है, एक पद्य देखिये —

१—पिया हो कसकत कुस पग बीच।
लखन लाज सिय पिय सन
बोलीं हरुए आइ नगीच।
सुनि तुरंत पठयो लखनहि
प्रभु जलहित दूरि सुजान।
लेइ अंक सिय जोवत कुस
कन धोवत पग अँसुआन।
बार बार झारत कर सों रज
निरखत छत बिललात।
हाय प्रिये मान्यो न कह्यो
लखु नहि बन बिचकुसलात।
सहस सहचरी त्यागि सदन
मधि सासु ससुर सुखकारि।
हठ करि लगि मो संग सहत
तुम हाहा यह दुख भारि।
कहत जात यों प्रभु बहु बतियां
तिया पिया की छांह।
दइ गल बहियाँ चलीं बिहँसि
कहि यह सुख नाथ अथाह।

तो भी यह उचित नहीं ज्ञात हुआ कि उनको पद्य-विभाग मे स्थान दिया जाय। क्योकि उल्लेख योग्य पद्य-ग्रंथों के रचयिताओ को ही उसमे अब तक स्थान मिलता आया है। बाबू हरिश्चन्द्र के स्वर्गारोहण

के उपरान्त हिन्दी संसार में एक बहुत बड़ा आन्दोलन उठ खड़ा हुआ। वह विवाद यह था कि हिन्दी पद्य-रचना भी ब्रजभाषा के स्थान पर खड़ी बोली में होनी चाहिये। उनके सामने इसका सूत्रपात्र मात्र हुआ था। कुछ लोगों के जी में यह बात उत्पन्न हो रही थी और आपस में इसकी चर्चा भी होने लगी थी। परंतु विचार ने आन्दोलन का रूप नहीं ग्रहण किया था। अब वह वास्तविक आन्दोलन बन गया था और ब्रजभाषा एवं खड़ी बोली के पक्षपातियों में द्वन्द्व होने लगा था। इसका कारण सामयिक परिस्थिति थी। उर्दू का इस समय बोलबाला था और सरकारी कचहरियों में उसको स्थान प्राप्त हो गया था। वह दिन दिन वृद्धि लाभ कर रही थी और हिन्दी-क्षेत्रों पर भी अधिकार करती जाती थी। पंजाब से बिहार की सीमा पर्यन्त उसका डंका बज रहा था और अन्य प्रान्तों में भी प्रवेश-लाभ की चेष्टा वह कर रही थी। उसके पृष्ट पोषक मुस्लिम समाज और उसके नेता ही नहीं थे, हिन्दुओं का एक बहुत बड़ा दल भी उसका पक्षपाती था। उसके जहाँ और गुण वर्णन किये जाते थे वहाँ यह भी कहा जाता था कि उर्दू की गद्य और पद्य की भाषा एक है, हिन्दी को तो यह गौरव भी नहीं प्राप्त है। वास्तव बात यह है कि इन सुविधाओं के कारण वह उत्तरोत्तर उन्नत हो रही थी और उसका साहित्य-भाण्डार दिन-दिन उपयोगी ग्रन्थों से भर रहा था। उस समय जितने ग्रन्थ हिन्दी के निकले उनकी गद्य की भाषा तो खड़ी बोली की और पद्य की भाषा ब्रजभाषा होती थी। यह पद्य की भाषा युक्त प्रान्त के सब विभागों में तो किसी प्रकार समझ भी ली जाती थी परन्तु बिहार या पंजाब या मध्य हिंद में उसका समझना दुस्तर था, क्योंकि वह एक प्रान्तीय भाषा थी। यद्यपि यह कहा जा सकता है कि उसका विस्तार एक प्रान्त ही तक परिमित नहीं था, वह अन्य प्रान्तों तक विस्तृत हो चुकी थी, जिसकी चर्चा मैं पहले कर भी चुका हूं। फिर भी यह स्वीकार करना पड़ेगा कि उस समय जैसी सुगमता से खड़ी बोल चाल या गद्य की भाषा को लोग पश्चिमोत्तर प्रान्त या अन्य प्रान्तों में समझ लेते थे, ब्रजभाषा को नहीं समझ सकते थे। इस कारण हिन्दी भाषा उतना निर्बाध रूप से उन्नति नहींकर सकती थी जितना

उर्दू। यह एक ऐसो बान थी जिसमे उक्त आन्दोलन को उस समय बहुत बडा बल मिला। उन दिनो यह भो देखा जाता था कि अङ्गरेजो स्कूलो और ग्रामीण पाठशालाओ के अधिकतर हिन्दू लडके कोर्स मे उर्दू लेना हो पसद करते थे। जहाँ और कारण थे वहाँ एक यह कारण भी उपस्थित किया जाता था कि हिन्दी पुस्तको की गद्य की भाषा और होती है और पद्य की और जिससे हिन्दू बालको को एक प्रकार से कठिनता का सामना करना पडता है ओर विवश होकर उन्हें (सुविधा की दृष्टि से) हिन्दीके स्थान पर उर्दू लेना पडता है। उन दिनो इस बिचार से भी उक्त आन्दोलन को बहुत कुछ सहायता मिलो थी। मुझको स्मरण है कि इस आन्दोलनको लेकर उस समय के दैनिक 'हिन्दुस्थान' तथा अन्य पत्रो मे उभय पक्ष के लोगो में बडा द्वंद्व हुआ था। बिहार प्रान्त के बाबू अयोध्या प्रसाद खत्री के हाथ मे इस आन्दोलन का झंडा था, वे बिहार और पश्चिमोत्तर प्रान्तो के अनेक स्थानो मे घूम घूम कर उन दिनो यह प्रयत्न कर रहे थे कि पद्यमे भी खडी बोली को स्थान मिले और व्रजभाषा का बहिष्कार किया जाय। यह आन्दोलन सामयिक परिस्थिति के कारण सफल हुआ और हिन्दी साहित्यिको का एक दल इसके लिये कटिवद्ध हो गया कि व्रजभाषा के स्थान पर वह खडी बोलचाल मे कविता करे। इस दल के नेता प० महाबीर प्रसाद द्विवेदी कहे जा सकते है। सरस्वती' के सम्पादन काल मे उन्होने खडी बोली का बडा आदर किया और बहुतो को उत्साहित कर खडी बोलो की रचनाये उनसे करायीं। स्वयं भी उन्होने खडी बोली की कविताये लिखीं परन्तु स्व० पं० श्रीधर पाठक ही ऐसे पहले पुरुष है जिन्होंने खडी बोलचाल मे एक कविता पुस्तक आदि में लिखी। यह कविता पुस्तक 'हरमिट' (Hermit) का अनुवाद है जिसका हिंदी नाम एकान्तवासी योगी है। उन्होंने पं० महाबीर प्रसाद द्विवेदी के पहले ही इस आन्दोलन मे अग्र भाग लिया था और पडित प्रतापनारायण मिश्र से खडी बोली के पक्ष मे खडे होकर पूरा वाद-विवाद किया था। मै ऊपर लिख आया हू कि बाबू हरिश्चन्द्र ने भी खडी बोली की कविता की है। ऐसे हो पं० बदरीनारायण चौधरी, पं० प्रतापनारायण मिश्र को भी कुछ रचनाये खडो बोलो की है। परन्तु ग्रन्थ

रूप मे खडी बोली मे सर्व प्रथम रचना करने का श्रेय पं० श्रीधर पाठक ही को प्राप्त है।

खड़ी बोली और व्रजभाषा मे क्या अन्तर है, यहाँ यह प्रश्न उपस्थित हो सकता है। यहा यह भी ध्यान रखना चाहिये कि व्रज भाषा के विरोध के अन्तर्गत अवधी भाषा भी है। विवाद के समय खडी बोली के सामने व्रजभाषा ही इसलिये रखी गयी कि जिस समय आन्दोलन आरम्भ हुआ उस समय व्रजभाषा ही सर्वोत्तम समझी जाती थी और उसी का व्यापक विस्तार था, अवधी लगभग साहित्य ससार से उठ चुकी थी। कभी कभी कोई उसको निस्सदेह स्मरण कर लेता था। वास्तव बात तो यह है कि दोनो का बहुत बडा सम्बन्ध प्राकृत भाषा से है। दोनो अनेक अशो मे प्राकृत भाषा के ढंग मे ढली हुई है। दोनो मे प्राकृत भाषा के कई शब्द बिना परिवर्त्तित हुये पाये जाते है। दोनो का बहुत बडा सम्बन्ध बोल चाल को भाषा से है। परन्तु खडी बोलचाल जिस रूप मे गृहीत है उस रूप मे न तो वह जनता की बोलचाल की भाषा से अपेक्षित मात्रा मे सम्बन्ध रखती है न प्राकृत भाषा से। और यह बहुत बडा अन्तर व्रजभाषा और खडी बोली मे है। इस बात को और स्पष्ट करने के लिये मै दोनो की विशेषताओ पर विशेष प्रकाश डालना चाहता हू।

ब्रजभाषा और अवधी की विशेषताये मैं पहले बता चुका हू। उनसे आप लोग अभिज्ञ है। अब मै खडी बोली की विशेषताओ को बतलाऊँगा जिससे उनके परस्पर अंतर का ज्ञान यथातथ्य हो सके। हिन्दी भाषा के अब तक जितने व्याकरण बने है उनका सम्बन्ध खडी बोली से ही है। न तो कभी व्रजभाषा और अवधी का व्याकरण बना और न इधर किसी की दृष्टि गई। आज कल कुछ लोगो का ध्यान इधर आकर्षित है। नहीं कहा जा सकता कि यह कार्य्य होगा या नही। खडी बोली भाग्यवान है कि गद्य मे स्थान मिलते ही उसके एक क्या कई व्याकरण बन गये। मुझको व्याकरण-सम्बन्धी सबबाते यहा नहीं लिखनी है। और न ब्रजभाषा अवधी और खडी बोलीके कारक चिन्हो, सर्वनामो और धातु-सम्बन्धी नाना रूपों के पारस्परिक अन्तरो को विशद रूप मे दिखलाना इष्ट है। मैं यहा

केवल यही दिखलाना चाहता हू कि अवधी और व्रजभाषासे खडी बोलचाल मे कविता-गत शब्द-विन्यास और प्रयोगो का क्या अन्तर है। अवधी एवं व्रजभाषा का अधिकतर सम्बन्ध तद्भव और अर्द्ध तत्सम शब्दो से है। इसके विरुद्ध खडी बोली का सम्बन्ध अधिकतर तत्सम शब्दो से है। खडी बोलचाल का यह नियम है कि उसमे संस्कृत के तत्सम शब्दो को शुद्ध रूप मे ही लिखने की चेष्टा की जाती है। खडी बोली वालो को तद्भव शब्द लिखने मे कोई आपत्ति नही। परन्तु वे जहा तक हो सकेगा हिन्दी के शब्दो को तत्सम रूप मे ही लिखेगे। व्रजभाषा और अवधी मे शकार, णकार, क्षकार आते ही नही। परन्तु खडी बोलचाल मे ये तीनो अपने शुद्ध रूपमे आते है। उसमे लोग 'गुन', 'ससि', और 'पच्छ' कभी न लिखेगे। जब लिखेगे तब 'गुण', 'शशि' और 'पक्ष' ही लिखेगे जो संस्कृत के तत्सम शब्द है। व्रजभाषा और अवधीवाले शब्दके आदि के यकार को प्राय 'ज' लिखते है, परन्तु खडी बोलचाल वाले ऐसा नहीं करेगे। वे 'जोग', 'जस' 'जाम', 'जम' न लिख कर 'योग', 'यश', 'याम' ही लिखेगे युक्त विकर्ष अवधी और व्रजभाषा का प्रधान गुण है। परन्तु खडी बोल चाल वाले ऐसा करना उचित नही समझते। वे 'गरब' 'दरप', 'सरप', 'बरन', 'धरम', 'करम' न लिख कर 'गर्व', 'दर्प', 'सर्प', 'वर्ण' 'धर्म', 'कर्म' आदि ही लिखेगे। व्यजनो का पञ्चम वर्ण व्रजभाषा और अवधी मे प्राय अनुस्वार बन जाता है। खडी बोलचाल वाले संस्कृत के शुद्ध रूप की धुन मे उनको मुख्य रूप मे ही लिखना अच्छा समझते है। जैसे 'कलङ्क' 'अञ्जन', 'कण्ठ', 'अन्त', 'लम्पट' को 'कलंक' 'अंजन', 'कंठ' 'अंत', 'लंपट' न लिखेगे। किन्तु कुछ लोग ऐसा करना पसद नही करते। वे इस विषय मे व्रजभाषा की प्रणाली ही ग्रहण करते है। मेरा विचार है कि सुविधा की दृष्टि से ऐसाही होना चाहिये, विशेष अवस्थाओ की बात दूसरी है। अवधी और व्रजभाषा में संस्कृत के तत्सम शब्दो के वकार प्राय. बकार बन जाते है, किन्तु खडी बोली मे वे अपने शुद्ध रूप मे ही रहते है। अधिकाश यह बात शब्द के आदिगत वकार के स्थान मे ही कही जासकती है। मध्य-गत या शब्दातके

वकार के विषय मे नहो। खड़ी बोलचाल के कवियों की रुचि यह देखी जाती है कि वे 'मुंह' के स्थान पर 'मुख', सिर' के स्थान पर शिर', होंठ' या 'ओठ' के बजाय 'ओष्ठ', 'बाँह' के स्थान पर 'बाहु' इत्यादि लिखना ही पसंद करेगे यद्यपि उनका हिन्दी रूप लिखा जाय तो भाषा सदोष न हो जायगी। कुछ इस विचार के लेग है कि 'स्नेह', के स्थान पर 'सनेह', 'आलाप' क स्थान पर 'अलाप' 'केश के स्थान पर केस', पलाश' के स्थान पर 'पलास', 'कमल' के स्थान पर कँवल' या कौल' लिखना ठीक नही समझते, यद्यपि इनका लिखा जाना अनुचित नहीं। क्योकि बोलचाल मे वे इसी रूप मे गृहीत है। ये, वे तद्भव शब्द है हिन्दी भाषा जिनके आधार से ही प्राकृत भाषा से अलग होकर अपने मुख्यरूप मे परिणत हुई। ब्रजभाषा और अवधी मे समस्त कारक-चिन्हो का आवश्यकतानुसार लोप कर दिया जाता है, विशेष कर कर्त्ता कर्म, करण और अधिकरण के चिन्हो का। किन्तु खडी बोलचाल की रचनाओ मे इनमे से किसी एक का भी लोप नही किया जाता। गद्य के अनुसार समस्त कारक-चिन्हो का अपने स्थान पर विद्यमान रहना नियम के अंतर्गत माना जाता है। उन्ही अवस्थाओ मे ऐसा नही किया जाता जब वाक्य मुहावरे के अंतर्गत हो जाता है। जैसे 'कान पडी आवाज़', 'आखो देखी बात' 'रात बसे' इत्यादि। ब्रजभाषा और अवधी में आवश्यकता होने पर लघु को दीर्घ और दीर्घ को लघु प्रायः करदेते है और ऐसा करना उनमे नियमानुकूल माना जाता है। किन्तु खडी बोली इस प्रणाली को सदोष समझती है, इस लिये उस से बचती है। हा पढने के समय वह दीर्घ कारकचिन्हो और सर्वनामोको ह्रस्व अवश्य पढ लेती है और पदान्त मे ह्रस्ववर्ण को दीर्घ मान लेती है। परंतु कभो कभी सब जगह नही। शब्दो का तोडना मरोड़ना और शब्द गढ लेना भी खडी बोली के नियमानुकूल नहीं है। वह ऐसा करना अच्छा नही समझती। खडी बोली में एक यह बात भी देखी जाती है कि संस्कृत के जिन शब्दो से अवधी या ब्रजभाषा का लिंग-भेद हो गया है उनको वह संस्कृत के अनुसार लिखती है। पवन, वायु इत्यादि शब्द इसके उदाहरण है। ब्रजभाषा और अवधी मे प्राय ये शब्द स्त्रीलिंग

लिखे जाते हैं, परन्तु खडी बोली मे अब ये पुल्लिंग लिखे जाने लगे है, यद्यपि यह सिद्धान्त अभी सर्व-सम्मत नही है। संस्कृत का यह नियम है कि संयुक्त वर्णों के आदिका अक्षर दीर्घ समझा जाता है। और उसका उच्चारण भी वैसा ही होता है। ब्रजभाषा और अवधी मे ऐसा सब अवस्थाओं मे नहीं होता, विकल्प से होता है। किन्तु खडी बोली मे उसको दीर्घही माना जाता है और प्राय उसका उच्चारण भी संस्कृत के अनुसार ही होता है। जैसे 'रामप्रसाद' 'देवस्वरूप', गर्वप्रहारी' इत्यादि। इन तीनों शब्दो मे हिन्दी बोलचाल मे राम' के म का देव' के व का और गर्व' के व का उच्चारण विशेष कर अवधी और ब्रजभाषा मे ह्रस्व ही करेंगे। परंतु खडी बोली मे उसका दीर्घ उच्चारण करने की चेष्टा की जाती है, यद्यपि अब तक यह प्रणाली हिन्दी भाषा मे कुछ संस्कृत प्रेमियो ने ही ग्रहण की है। मेरा विचार है कि ऐसा करने से सरल हिन्दी भाषा मे एक प्रकार की कठोरता आ जाती है। विशेष अवस्था अथवा विकल्प की बात दूसरी है। ब्रजभाषा और अवधी के नियमो के बहिष्कार के साथ साथ उनके सुन्दर और मधुर शब्दों का भी खडी बोली मे परित्याग किया जारहा है। वरन यह कहना चाहिये कि लगभग परित्याग कर दियागया है। तो भी कुछ क्रियायें ऐसी है जो अबतक खडीबोली के गद्य पद्य दोनो मे गृहीत है मै समझता हू ऐसी क्रियाओं का संयत प्रयोग अनुचित नही। जैसे लखना,' 'निहारना, 'निरखना' इत्यादि। ब्रजभाषा मे 'दरसाना' एक क्रिया है जो संस्कृत के 'दर्शन' शब्द का तद्भव रूप है। कुछ लोग खडी बोलचाल मे इसको अब इस रूप मे लिखना पसन्द नही करते। वे उसके स्थान पर 'दर्शाना' लिखते है। ब्रजभाषा और अवधी दोनो मे न' 'नि' और 'न्ह' को शब्दो के अन्त मे लाकर एक बचन से बहुबचन बनाया जाता है। खडी बोली मे ऐसा नही किया जाता। उसने अपने गद्य की प्रणाली ही को स्वीकृत कर लिया है। विशेष विशेष बाते मैने बतला दीं। इस विषय मे और अधिक लिखना बाहुल्य होगा।

खडी बोली की कविता मे अधिकतर संस्कृत तत्सम शब्दो को ग्रहण कर लेने और उसको बिल्कुल गद्य की प्रणाली मे ढाल देने का यह परिणाम हुआ है कि वह कर्कश हो गई है। उसमे जैसा चाहिये वैसा

माधुर्य्य अब तक नही आया। खडी बोली की कविता ने प्राय. वही मार्ग ग्रहण किया है जो उर्दू भाषा की कविता का है। परंतु ब्रजभाषा या अवधी के शब्दो को लेने मे वह उससे भी संकीर्ण है वरन संकीर्णतम है। उर्दू मे आवश्यकतानुसार अबभी ब्रजभाषा के कोमल शब्द गृहीत है यहाँ तक कि सस्कृत के शब्द भी अपने ढंग मे ढाल कर लेलिये जाते है। परंतु खडी बोली के प्रेमी ऐसा करना पाप समझते है। यद्यपि वे अपने इस उद्योग मे पूर्णतया सफलता नही लाभ कर सके। उर्दू भाषा की कविता अधिकाश अरबी बह्र मे की जाती है, जिसमे अधिकतर ध्यान वजन पर रक्खा जाता है। इसलिये उसकी कविताओ का शब्द-विन्यास शिथिल नही जान पडता। वरन उसमे एक प्रकार का विचित्र ओज आ जाता है। हा, यह अवश्य है कि इस ओज के प्रपंच मे पड कर हिन्दी के कितने शब्दो, सर्वनामो कारक चिन्हो का कचूमर निकल जाता है और कितने बेतरह पिस जाते है। परंतु उर्दू वालो के छन्दोनियम कुछ ऐसे है कि वे इस प्रकार शब्दो की तोड मरोड को सदोष नहीं मानते। हिन्दी भाषा मे यह प्रणाली गृहीत नही हो सकती, क्योकि उससे कविता की भाषा अधिकतर दूषित हो जावेगी। ऐसी दशा मे मेरा विचार है कि खडी बोली के पद्यकारो को हिन्दी के उपयुक्त शब्दो का परित्याग कभी नही करना चाहिये, चाहे वह अवधी का हो, चाहे ब्रजभाषा का। इससे भाषा सरस और ललित बन जावेगी और उसका कर्कशपन जाता रहेगा।

आन्दोलन के समय मे बहुत सी ऐसी बाते भी गृहीत हो जाती है जो यथार्थ उपयोगिनी नही होतीं, किंतु स्थिरता आने पर उनका परित्याग ही उचित समझा जाता है। खडी बोली के आन्दोलन काल मे कुछ ऐसे नियम स्वीकृत हुये है जो पद्य को सरस, सुन्दर, मनोहर और कोमल बनाने के बाधक है मै सोचता हू अब उनका विचार पूर्वक परित्याग किया जाना अनुचित नहीं। परिस्थिति के अनुसार सदा त्याग और ग्रहण होता आया है। अब भी इस सिद्धान्त से काम लिया जा सकता है। कुछ भाषा मर्मज्ञो का यह कथन है कि भाषा की कोमलता और मधुरता का बहुत अधिक सम्बन्ध सँस्कार से है। यदि यह हम स्वीकार भी कर ले तो भी यह

नहीं कहा जा सकता कि गद्य और पद्य की भाषा में कोई अन्तर नहीं होता। और पद्य के लिये कोमल, सरस और मधुर शब्द चुनने की आवश्यकता नहीं होती। संसार के साहित्य पर दृष्टि डाल कर देखिये, सब जगह इस सिद्धान्त का पालन हुआ है और वर्त्तमान काल मे भी हो रहा है। फिर संस्कार विषयक तर्क कैसा? मेरा कथन इतना ही है कि पद्य की भाषा को यदि पद्य के योग्य बनाना अभीष्ट हो तो उसी भाषा के विभिन्न अंगो के उपयुक्त शब्दो का त्याग नही होना चाहिये। विशेष कर ऐसे शब्दो का जो व्यापक हो और जिनमे प्रान्तिकता अथवा ग्रामीणता की छूत अधिक न लगी हो। मै यह भी मानता हू कि हिन्दी भाषा राष्ट्रीयता की ओर बढ रही है, इस लिये उसके गद्य और पद्य मे भी ऐसे ही शब्द प्रयुक्त होने चाहिये जो अन्य प्रान्तो मे भी सुगमता से समझे जा सके। निस्सदेह अगर ऐसे शब्द है तो संस्कृत ही के शब्द है। इसी लिये मै भी उनके अधिक व्यवहार का विरोधी नही हू। परन्तु क्या संस्कृत मे कोमल, मधुर, और सरस शब्द नही है। फिर क्यो खडी बोली के पद्यों मे संस्कृत के परुष शब्दो का प्रयोग प्राय किया जाता है। दूसरी बात यह कि अवधी अथवा व्रजभाषा के ऐसे ही शब्दो के लेने का अनुरोध किया जाता है जो व्यापक, उपयुक्त और संस्कृत सम्भूत हो। बिदेशी भाषा के शब्द लिये जॉय और उनको खडी बोली की रचना मे स्थान दिया जाय और अपने उपयोगी शब्दो को यह कह कर त्याग किया जावे कि वे व्रजभाषा या अवधी के है तो यह कहॉ तक युक्ति सगत है। व्रज-भाषा, खडी बोली और अवधी अन्य नही है वे एक ही है, आवश्यकता और देशकालानुसार हम उनके भाण्डार से उपयुक्त शब्द-संचय कर सकते है। इससे सुविधा ही होगी, असुविधा नही। मत-भिन्नता भी हितकारी है, यदि उसमे व्यर्थ ईर्ष्या-द्वेष की मात्रा न हो॥

जिस समय यह खडी बोली और व्रजभाषा का आन्दोलन चल रहा था उस समय एक और आन्दोलन भी बल प्राप्त कर रहा था। वह था सरकारी कचहरियो मे हिन्दी भाषा के प्रचलित होने का उद्योग। हिन्दी हितैषियों का दल महर्षि-कल्प पूज्य पं० मदन मोहन मालवीय जी के

नेतृत्व मे उस काल इस आन्दोलन को ओर विशेष आकर्षित था। इस लिये हिन्दी को समुन्नति के लिये उन दिनों जो साधन उपयुक्त समझे गये काम मे लाये गये। नगर नगर मे नागरी प्रचारिणी सभाओं का जन्म हुआ। नागरी के स्वत्व और उसके महत्व-सम्बन्धी छोटी बडी अनेक पुस्तिकायें निकाली गईं। स्थान स्थान पर नागरी लिपि के प्रचार की महत्ता का राग अलापा गया और दूसरे यत्न जो उचित समझे गये काम मे लाये गये। इस आन्दोलन से भी खडी बोली की कविता के आन्दोलन को बडी सहायता पहुँची क्योंकि विपक्षी हिन्दी भाषा पर जो दोषारोपण करते थे, उचित मात्रा मे उनका निराकरण करना भी आवश्यक ज्ञात हुआ। उस समय ऐसी बात अवश्य कही गयीं कि खडी बोली की कविता ऐसी हो जो उर्दू कविताओं से पूरी तौर पर टक्कर ले सके। इस अवसर से कुछ कट्टर खडी बोली के प्रेमियों ने लाभ उठा कर इस बात का अवश्य प्रचार किया कि जहाँ तक हो ब्रजभाषा के साथ खडी बोली का कोई सम्पर्क न रहे। इसको बहुत कुछ व्यवहारिक रूप भी दिया गया, परन्तु यह उत्तेजना के समय की बात थी। वह समय निकल जाने पर इस विषय मे जो कट्टरता व्यापक रूप ग्रहण कर रही थी वह बहुत कुछ कम हो गयी और विवेकशील हृदयों से वह दुर्भाव निकल गया जो ब्रजभाषा से किसी प्रकार की सहायता न लेने के पक्ष मे था। इस स्थिरता के समय मे खडी बोलचाल की जो रचनायें हुई है, उनमे ब्रज-भाषा के सरस शब्दों का प्रयोग देखा जाता है। परन्तु अब तक इस विषय मे सतोष जनक प्रवृत्ति नही उत्पन्न हुई। मेरी सम्मति यह है कि अब वह समय आ गया है जब संयत चित्त से भाषा मर्मज्ञ लोग इस विषय पर विचार करें और खडी बोली की कविता को कर्कशता दोष से दूषित होने से बचावें।

इस खडी बोली के आन्दोलन के समय मे जो कवि उत्पन्न हुये और कार्य्य-क्षेत्र मे आये उनकी चर्चा इस स्थान पर आवश्यक है, जिससे यह ज्ञात हो सके कि किस प्रकार खडी बोली की कविता साहित्य-क्षेत्र मे अग्रसर हुई। यहाँ यह बात स्मरण रखना चाहिये कि ब्रजभाषा के कवि

उस समय भी थे अब भी है और आगे भी रहेगे । केवल अन्तर इतना ही है कि अब हिन्दी-साहित्य-क्षेत्र मे खडी बोली को प्रधानता प्राप्त हो गयी है। आन्दोलन के पहले बाबू हरिश्चन्द्र और उनके समसामयिक कवियो को भी खडी बोली की दो एक स्फुट कवितायें करते देखा जाता है, यद्यपि उनमे खडी बोली का वह आदर्श नही पाया जाता जो बाद को दृष्टि गत हुआ। बाबू हरिश्चन्द्र के एक पद्य का कुछ अंश नीचे दिया जाता है जिससे आप अनुमान कर सकेंगे कि वे भी उस समय खडी बोली की रचना की ओर कुछ आकर्षित हुये थे। वे पंक्तिया ये है —

कहां हो ऐ हमारे रामप्यारे।
किधर तुम छोड़ कर हमको सिधारे।
बुढ़ापे में यह दुख भी देखनाथा।
इसी के देखने को मैं बचा था।

इनके उपरान्त प० बदरीनारायण चौधरी और पं० प्रताप नारायण मिश्र को भी हिन्दी भाषा मे खडी बोली की दो एक स्फुट कविता करते देखा जाता है। मै इनकी कवितायें पहले के पृष्ठो मे उद्धृत कर आया हू। इसके बाद हमारे सामने श्रीधर पाठक आते है जिन्होने 'एकान्तवासी योगी' नामक खडी बोली चाल की एक पद्य पुस्तक ही लिख डाली।

पं० श्रीधर पाठक ब्रजप्रान्त के रहने वाले थे, आगरे मे उनका निवास था। इसीलिये ब्रजभाषा से उनको स्वाभाविक प्रेम था। वे अँगरेजी और संस्कृत दोनो के विद्वान् थे। किंतु सरस-प्रकृति होने के कारण कविता रचने की ओर उनको विशेष प्रवृत्ति थी। पहले वे ब्रजभाषा मे ही कविता करते थे। परंतु समय की गति उन्हो ने पहिचानी और बाद को खड़ी बोली की ओर आकर्षित हुये। वे हिन्दी संसार मे खडी बोली के पहले पद्यकार होने की दृष्टि से ही आदृत है। हिन्दी के कुछ स्फुट गद्य लेख और 'तिलस्माती मुँदरी' नामक एक उपन्यास भी उन्होंने लिखा है। परंतु कीर्ति उन्होने पद्य-ग्रंथ लिख कर ही पाई।

संयुक्त प्रान्त की गवर्नमेंट के दफ्तर मे पहले वे डिप्टी सुपरिटेन्डेन्ट थे, किन्तु बाद को सुपरिन्टेंडेन्ट हो गये थे। इस कारण उनको समयाभाव था। फिर भी वे यथावकाश हिन्दी देवी की सेवा मे रत रहे। खडी बोली का उनका पहला पद्य ग्रंथ एकान्तवासी योगी है। इसके बाद उन्होने जगत सचाई सार और श्रान्त पथिक नामक दो और छोटे ग्रंथ लिखे। जगत सचाई सार उनका स्वरचित ग्रंथ है, शेष दोनो ग्रंथ अंगरेजी ग्रंथो के अनुवाद है। ये दोनो ग्रन्थ भी छोटे है परन्तु इन्ही के द्वारा उनको खडी बोली का पहला ग्रन्थकार होने का गौरव प्राप्त है। इनदोनो ग्रंथो की भाषा अधिकतर संस्कृत गर्भित है, उनमे खडी बोलचाल के नियमो की रक्षा भी यथार्थ रीति मे नही हुई है। किसी भाषा की आदिम रचना मे जो त्रुटियां होती है वे सब उनमे मौजूद है। फिर भी यह स्वीकार करना पडेगा कि उन्होने इन ग्रंथो की रचना कर के खडी बोली की कविता का मार्ग बहुत कुछ प्रशस्त बनाया। उनके कुछ पद्य देखिये —

१—साधारण अति रहन सहन
मृदु बोल हृदय हरने वाला।
२—मधुर मधुर मुसक्यान मनोहर
मनुज बंश का उँजियाला।
३—सभ्य सुजन सत्कर्म परायण सौम्य सुशील सुजान।
४—शुद्ध चरित्र उदार प्रकृति शुभ विद्या बुद्धि निधान।
५—प्राण पियारे की गुण गाथा साधु कहां तक मैं गाऊं।
६—गाते गाते नहीं चुके वह चाहे मैं ही चुक जाऊं।
७—विश्व निकाई विधि ने उसमें की एकत्र बटोर।
८—बलिहारौं त्रिभुवन धन उसपर वारौं काम करोर।

एकान्त वासी योगी।

९—शीतल मृदुल समीर चतुर्दिक
सुखित चित्त को करती है ।
१०—कोमल कल संगीत सरस ध्वनि
तरु तरु प्रति अनुसरती है ।
११—सकल सृष्टि की सुघर सौम्य
छवि एकत्रित तहँ छाई है ।
१२—अति की बसै मनुष्यों ही के
मनमें अति अधिकाई है ।
१३—मनन वृत्ति प्रति हृदय-मध्य
दृढ अधिकृत पाई जाती है ।
१४—अति गरिष्ट साहसिकलक्ष्य
उत्साह अमित उपजाती है ।
१५—गति में गौरव गर्व दृष्टि में
दर्प धृष्टता युत धारी ।
१६—देखूं हूं मैं इन्हें मनुज कुल
नायकता का अधिकारी ।
१७—सदा वृहत व्यवसाय निरत
सुविचारवंत दीखैं सारे ।
१८—सुगम स्वल्प आचार शील
औ शुद्ध प्रकृति के गुण धारे ।
१९—कृषिकर भी प्रत्येक स्वत्व की
जाँच गर्व युत करता है ।

२०—त्यों मनुष्य होने का मान
सबके समान मन धरता है ।
२१—धन तृष्णा का घृणित एक
सामान्य कुण्ड बन जावैगा ।
२२—नृपति शूर विद्वान आदि
कोई भी मान नहिं पावैगा ।

श्रान्त पथिक ।

१—इन पद्यों मे किस प्रकार सस्कृत तत्सम शब्दो का आधिक्य है यह कथन करने को आवश्यकता नही । यह मै स्वीकार करूंगा कि चन्द बरदाई के समय से ही हिन्दी भाषा की कविता मे सस्कृत तत्सम शब्दो का प्रयोग होने लगा था । उत्तरोत्तर यह प्रवृत्ति बढती गई । यहा तक कि अवधी भाषा के मुसलमान कवियो ने भी अवसर आने पर संस्कृत के तत्सम शब्दो का व्यवहार किया । परंतु इन लोगों का सस्कृत तत्सम शब्दो का प्रयोग परिमित है । उनकी प्रवृत्ति तद्भव या अर्ध तत्सम शब्दो के व्यवहार को ओर ही अधिक देखी जाती है । संस्कृत तत्सम शब्दो का प्रयोग वे किसी कारण विशेष के उपस्थित होजाने पर ही करते थे । हॉ, गोस्वामी तुलसी दास अथवा प्रज्ञाचक्षु सूरदास आदि कुछ महाकवियो ने किसी किसी रचना मे विशेष कर स्तुति और वदना-सम्बन्धी पद्योमे संस्कृत शब्दों का प्रयोग बहुत अधिक किया है । और इस प्रकार किसी किसी पद्य को सस्कृतमय बना दिया है । परंतु ऐसे पद्यो की सख्या बहुत थोडी है, हम उनका अपवाद मानते है, वे नियम क अंतर्गत नही । पाठकजी के पद्यो में संस्कृत शब्दो का बाहुल्य नियम के अतर्गत है और यही खडी बोलचाल की रचना को बहुत बडी विशेषता है । तत्सम शब्दो के प्रयोग का जो आदर्श इन पद्यो मे पाया जाता है, वह खडी बोली-संसार मे आज तक गृहीत है । किसी किसी ने पॉव आगे भी बढाया है और इससे अधिक संस्कृत-परुष-शब्दों से गर्भित रचनाये की है । अब तक यह प्रवाह चल

रहा है। परन्तु कुछ लोगों ने इसका पूरा अनुकरण नही किया, उन्होंने कोमल तथा ललित शब्दों को ही अपनी रचनाओं मे स्थान दिया। आज कल विशेष कर कोमल और सरस शब्दो मे रचना करने की ओर लोगों की दृष्टि आकर्षित है, और पहले से खडी बोलचाल की रचनाये अधिक कोमल और सरस होने लगी है। प्राकृत भाषायें संस्कृत तत्सम शब्दों के प्रयोग के प्रतिकूल थी। इसकी कुछ प्रतिक्रिया अवधी और ब्रजभाषा मे हुई। खडी बोली की रचना मे वह पूर्णता मे परिणत हो गई।

२—ब्रजभाषा और अवधी मे हलंत का सस्वर प्रयोग होता है। प्राकृत मे भी अनेक स्थलों पर यह प्रणाली गृहीत है। श्री धर जी ने अपनी खडी बोली की रचना मे इस प्रणाली को स्वीकार कर लिया है। इसीलिये उनके ऊपर के पद्यों मे 'चतुर्दिक', 'बृहत', एवं 'विद्वान' के अंतिम अक्षर जिन्हे हलत होना चाहिये, सस्वर लिखे गये है। आज कल कुछ लोगो को देखा जाता है कि हलन्त वर्णों को हलन्त ही लिखना चाहते है। मैं समझता हूँ ऐसा करने से मुद्रण कार्य्य मे ही असुबिधा न होगी, अनेक खडी बोली के पद्यों की रचना मे भी कठिनता होगी। विशेषकर उन रचनाओं मे जो संस्कृत वृत्तों मे की जॉयगी। इस लिये मेरा विचार है कि इस प्रणाली को स्वीकृत रहना चाहिये।

३—संस्कृत का नियम है कि सयुक्त वर्ण के पहले जो वर्ण होता है उसका उच्चारण दीर्घ होता है। एक शब्द के अन्तर्गत इस प्रकार का उच्चा-रण स्वाभाविक होता है। इस लिये उसमे जटिलता नही आती। वह स्वयं सरलता से दीर्घ उच्चरित होता रहता है। जैसे समस्त 'कलत्र', 'उन्मत्त' आदि। परंतु जहॉ वह समस्त रूप मे होता है वहॉ उसका उच्चारण दीर्घ रूप मे करने से हिन्दी रचनाओं मे एक प्रकार को जटिलता आजाती है। इसलिये विशेष अवस्थाओं को छोड कर, मेरा विचार है कि उसका ह्रस्व उच्चरित होना ही सुविधा जनक है। ऊपर के पद्यों मे 'सरस ध्वनि' और 'बृहत व्यवसाय' ऐसे ही प्रयोग है। संस्कृत के नियमानुसार 'सरस' के अंतिम 'स' को और 'बृहत' के 'त' को दीर्घ होना चाहिये। किंतु उसको दीर्घ बनाने से छन्दो भंग होगा। इसी लिये पद्यकार ने उसको ह्रस्व रूप

ही मे ग्रहण किया। हिन्दी भाषा के पहिले आचार्य्यों की भी यही प्रणाली है। मेरा विचार है इस प्रणाली को स्वीकृत रहना चाहिये। विशेष अवस्थाओं मे उसके दीर्घ करने का मै विरोधी नही।

४ ऊपर के पद्यो मे एक स्थान पर आया है 'तरुतरुप्रति' और दूसरे स्थान पर आया है मन धरता है'। खडी बोलचाल के नियमानुसार इनको तरुतरु के प्रति' और मन मे धरता है' होना चाहिये। इनमे कारक चिन्हो का लोप है। यह प्रयोग खडी बोलचाल के नियम के विरुद्ध है। 'के, का प्रयोग क्षम्य भी हो सकता है क्योकि वहॉ उसके बिना अर्थ की भ्रांति नही होता। परंतु मे' का प्रयोग न होने से वाक्य का यह अर्थ होता है कि मन स्वयं किसी वस्तु को धरता या पकडता है। कवि का भाव यह नही है। वह यह कहता है कि अपने 'मन मे कोई कुछ रखता या धरता है। ऐसा प्रयोग निस्सन्देह सदोष है। ऐसा होना नियमानुकूल नही। कवि ने ऐसा प्रयोग संकीर्णता मे पड कर किया है। इससे उसकी असमर्थता प्रगट होती है। मेरा विचार है कि खडी बोलचाल के कवियों को इस असमर्थता-दोष से बचना चाहिये। खडी बोलचाल की रचनाओं मे वहीं ऐसा प्रयोग करना चाहिये जहॉ वह मुहावरे के अतर्गत हो, जैसा मै ऊपर लिख आया हू।

५—समस्त पदो को पद्य मे यदि लाया जावे तो उसको उसी रूप मे लाया जाना चाहिये जो शुद्ध है उनके शब्दो को उलटना—पुलटना नहीं चाहिये। परन्तु प्राय हिन्दी पद्यो मे इस नियम की रक्षा पूर्णतया नहीं हो पाती। प्रयोजन यह कि सुन्दर वालक, कमल-दल, कमल-नयन, पचमुख और बहुचिन्तित इत्यादि वाक्यो को इसी रूप मे लिखा जाना चाहिये किन्तु वृत्त एव छन्द के बन्धनो मे पड कर उनके शब्दो को उलट-पुलट दिया जाता है। ऐसा अन्य भाषाओं मे भी होता है। किन्तु यथा सम्भव इस दोष से बचना चाहिये। विशेष कर तत्पुरुष और बहुव्रिहो समासो मे। ऊपर के पद्यों में एक स्थान पर साधारण अति' लिखा गया है। ऐसा प्रयोग उचित नही था। बिशेषकर उस अवस्था मे जब अति साधारण'

लिखा जा... किया था। मैं समझता हूं ऐसा अमनोनिवेश के कारण असावधानी से हो गया है। ऐसी असावधानी कदापि वाञ्छनीय नहीं॥

६—ऊपर के पद्यों मे एक स्थान पर 'तहाँ' के स्थान पर 'तहँ' और दूसरी जगह 'नही' के स्थान पर 'नहि' आया है। खडी बोलचालके नियमानुसार उनको शुद्धरूप मे ही आना चाहिये था। संस्कृत मे 'नहि' का प्रयोग 'नही' के अर्थ मे होता है जैसे नहि नहि रक्षति डुक्रिय करणम्। इस दृष्टि से देखा जावे तो 'नहि' का प्रयोग सदोष नही है। क्योंकि वह संस्कृत का तत्सम शब्द है। यहा यह कहा जा सकता है कि गद्य मे 'नहि' का प्रयोग न होना इस विचार का बाधक है। किन्तु मैं इस बात को इसलिये नही मानता कि इससे पद्यको वह सुविधा नष्ट होती है जो गद्य की अपेक्षा उसे अधिक प्राप्त है। मेरा विचार है कि पद्य मे संस्कृत के तत्सम शब्द होने का ध्यान रख कर यदि उसका प्रयोग संकीर्ण स्थलों पर किया जाय तो वह सदोष न होगा हाँ, 'नहि' के 'हि' पर बिन्दी नही लगानी चाहिये। पद्य की बीसवी पंक्ति का 'का' और बाईसवी पंक्ति का 'भी' लघु पढा जाता है यद्यपि वह लिखा गया है दीर्घ। हिन्दी भाषा के प्रचलित नियमानुसार दीर्घ को लघु पढना छन्दोनियम के अन्तर्गत है। सवैया मे प्रायः ऐसा किया जाता है। परन्तु इस प्रकार का प्रयोग न होना ही वाञ्छनीय है, क्योंकि प्राय लोग ऐसे स्थानों पर अटक जाते है और छन्द को ठीक ठीक नही पढ सकते यद्यपि उर्दू मे ऐसे प्रयोगों की भरमार है। उर्दू मे इस प्रकार का प्रयोग इसलिये नही खटकता कि उर्दू वाले इस प्रकार के प्रयोगों के पढने के अभ्यस्त है। हिन्दी पद्यों मे इस प्रकार के प्रयोग बहुत ही अल्प मिलते है, इसलिये प्राय पढने मे रुकावट उत्पन्न करते है। ऐसी दशा मे जहाँ तक सम्भव हो इस प्रकार के प्रयोग से बचने की चेष्टा की जानी चाहिये।

७—अठारहवी पंक्ति मे 'और' के स्थान पर 'औ' लिखा गया है। खडी बोलचाल की कविता मे प्राय 'और' ही लिख जाना अच्छा समझा जाता है। कुछ लोग अँगरेजी प्रणाली के अनुसार 'औ' के ऊपर 'कामा'

लगा कर उसके 'र' को उड़ा देते है उनका कथन है कि जब 'औ' से और का भाव प्रगट हो जाता है, तो संकीर्ण स्थलो मे उसका प्रयोग क्यो न किया जाय। मै भी इस विचारसे सहमत हू। उर्दू वाले लिखनेको तो अपने पद्योमे 'और' लिख देते है, परन्तु अनेक स्थानोंमे उसका उच्चारण औ' ही कर लेते है। यह प्रणाली अच्छी नही, और न हिन्दी के लिये उपयुक्त है। इसलिये जहाँ तीन मात्रा वाला और' न प्रयुक्त हो सके द्विमात्रिक 'औ' का लिखना आक्षेप-योग्य नही।

८—पक्ति सात और आठ मे निकाई' ओर 'करोर' शब्द आये है। 'निकाई ठेठ व्रजभाषा है, 'करोर' व्रजभाषा के नियमानुसार अनुप्रास के झमेले मे पड कर करोड' से बनाया गया है। पाठक जी के बाद के खडी बोलो के कवि गण इस प्रकार के प्रयोग को अच्छा नही समझते और वे व्रजभाषा के इस प्रकार के शब्दो से बचना चाहते है। परन्तु फिर भी 'निकाई, की निकाई पर कुछ लोग मुग्ध है। वे अबतक इसको अपनी रच-नाओं मे स्थान देते है। मेरा विचार है कि व्रजभाषा के ऐसे सरस शब्दों का बहिष्कार उचित नही ऐसे शब्दों के ग्रहण करने से ही खडी बोली की कर्कशता दूर होगी। 'करोड' को करोर' करदेना मैं भी अच्छा नही समझता। ऐसे परिवर्त्तनो से बचना चाहिये यदि भावुकता भी साथ दे।

९—दसवी पंक्तिमे अनुसरती है ओर अठारहवी पक्तिमे धारे' क्रियाओं का प्रयोग है। न तो खडी बोली मे अनुसरना' कोई क्रिया है न धरना'। खडी बोलचाल मे धरना' के स्थान पर रखना का प्रयोग होता है। फिर भी उन्होंने इन क्रियाओं का प्रयोग अपनी खडी बोली की रचना मे किया है। धारना क्रिया के रूपो का व्यवहार अब तक खडी बोल चाल की कविता मे हो रहा है २१ वीं ओर २२ वी पक्तियों मे जावेगा', पावेगा' लिखा गया है। ये दोनो क्रियाये हिन्दी की है और अब तक इनका प्रयोग भी खडी बोली की रचना मे हो रहा है। अन्तर इतना ही है कि 'जा-वेगा', 'पावेगा' अथवा जाएगा', पाएगा' लिखा जाता है। 'जावेगा', 'पावेगा' के विषय मे मुझ को कुछ अधिक नही कहना है। यदि थोडा

समझ्ल कर प्रयोग किया जावे तो खडी बोल चाल मे उसका प्रयोग शुद्ध रूप मे हो सकता है। हा, धारना' क्रिया के रूपो का प्रयोग अवश्य विचारणीय है। क्योकि उसका प्रयोग दो अर्थो मे होता है एक रखना' के और दूसरा पकडना' क्रिया के। उर्दू वाले इसके स्थान पर रखना' और 'पकडना' क्रिया के रूपो हो का प्रयोग करते है। हिन्दी गद्य मे भी ऐसा ही होता है। इस लिये उसका प्रयोग खडी बोली की कविता के लिये अधिक अनुकूल नहीं है। उसमे एक प्रकार की ग्रामीणता है। परन्तु यह क्रिया उपयोगिनी बडी है। अनेक अवसरो पर वह अकेली दो दो क्रियाओ का काम दे जाती है और इसी लिये वह अब तक खडी बोली के पद्यों मे स्थान पाती आती है। मेरा विचार है कि उसका सर्वथा त्याग उचित नहीं। हॉ, उसका बहुल प्रयोग अच्छा नही कहा जा सकता। अब रहा अनुसरती है' का प्रयोग। निस्सन्देह अनुसरना' हिन्दी मे कोई धातु नही है। यह क्रिया ब्रजभाषा से ही आयी है, परन्तु उसको खडी बोली का रूप दे दिया गया है। क्रिया है बडी मधुर। इस पर कवित्व की छाप है। मेरा बिचार है कि ब्रजभाषा की ऐसी क्रियाओ को खडी बोलचाल का रूप दे कर ग्रहण कर लेना युक्ति-सगत है। इससे खडी बोली वह सिद्धि प्राप्त कर लेगी जो सरसता की जननी है। पंक्ति १२ मे 'अधिकाई' और 'बसैहै' का प्रयोग है। बसैहै मे गहरा दूरान्वय दोष है। वह तो ग्रहणीय नहीं। अब रहा यह कि बसैहै, 'जलैहै' इत्यादि प्रयोग खडी बोलचाल की कविता मे होना चाहिये या नही। किसी क्रिया का वर्त्तमान काल का रूप खडी बोलचाल मे इस प्रकार नही बनता। इस लिये इस प्रकार का प्रयोग अच्छा नहीं अधिकाई' लिखा जाना भी असुन्दर है। 'देखूंहू' और दीखै' क्रियाओ का प्रयोग पक्ति १६ और १७ मे हुआ है, यह प्रयोग भी खडी बोलीके नियमो के अनुकूल नही है। इसी प्रकार पक्ति ८ के बलिहारौं' वारौं' क्रियाओ का व्यवहार भी खडी बोली के नियमो के अनुसार नहीं। इसलिये मेरी सम्मति यही है कि इस प्रकार की क्रियाओं से खडी बोलचाल की रचनाओ को सुरक्षित रखना चाहिये। पाठक जी की खडी बोली की आदिम रचनाओ मे इस प्रकार की क्रियाओं का आना

उतना तर्क-योग्य नहो, क्योकि वह खडी बोली के प्रसार का आदिम काल था। मुझे हर्ष है कि उनके बाद के सहृदय कवियो ने इस प्रकार के प्रयोगों की उपेक्षा कर के खडी बोली की कविता का मार्ग अधिकतर निर्दोष बना दिया है।

आपलोग यदि एक बार सिंहावलोकन से काम लेंगे तो यह ज्ञात हो जायगा कि खडी बोली का अस्तित्व उसी समय से है जब से ब्रजभाषा अथवा अवधी का। खुसरो की कवितामे उसका प्रभाव स्पष्ट दिखाई पडता है। वरन यह कहा जा सकता है कि जेसा सुन्दर आदर्श खडी बोली की कविता का उन्होने उपस्थित किया उन्नीसवी शतब्दी के अंततक वसा आदर्श नहीं उपस्थित किया जा सका। कबीर साहब की रचनाओ मे भी उसका रंग पाया जाता है। भूषण के कवित्तो मे भी उसकी झलक मिलती है। महन्त सीतल ने तो एक प्रकार से उसकी बाह ही पकड ली और उस निरावलम्बा को बहुत कुछ अवलम्बन दिया। इंशा अल्ला खा ने अपनी रानो केतकी की कहानी मे और नजीर अकबराबादी ने अपनी स्फुट रचनाओं मे उसका रङ्ग रूप दिखलाया। रघुनाथ, ग्वाल कवि और सूदन की रचनाओं मे भी उसकी छटा दृष्टिगत होती है और वह करवट बदलती ज्ञात होती है। बाबू हरिश्चन्द्र, पं० प्रतापनारायण और पं० बदरी नारायण चौधरी ने तो उसके कतिपय स्फुट पद्य बना कर उसे वह शक्ति प्रदान की जिसके आधार से पं० श्रीधर पाठक ने उसको दो सुन्दर पुस्तके भी प्रदान की। इसी समय पं० अम्बिका दत्त व्यास ने कंस वध' नामक एक साधारण काव्य निदर्शन रूप में लिखा परन्तु अपने उद्योग मे वे सर्वथा असफल रहे। खडी बोल चाल की कविता का रूप इन लोगों की रचनाओ मे अधिकतर अस्पष्ट है और उसके शब्द विन्यास भी अनियम बद्ध पाये जाते है। परन्तु पाठक जी के दो ग्रन्थों (एकान्तवासी योगी और श्रान्त पथिक) मे उसका रूप बहुत कुछ स्पष्ट हो गया है और उसके शब्द-विन्यास के नियम भी बहुत कुछ व्यवस्थित देखे जाते है। पाठक जी का हृदय वास्तव मे ब्रजभाषा मय था। उनकी ब्रजभाषा की रचनाये जितनी है बडी सरस और सुन्दर है।

उनकी काश्मीर-सुखमा' नाम की पुस्तिका उनकी समस्त रचनाओं मे सर्वोत्तम हे किन्तु उसकी भाषा व्रजभाषा है। उनके जीवन का अन्तिम समय भी व्रजभाषा की सेवा ही मे बीता। यदि वे इस स्वाभाविक प्रेम के जाल मे न फँसते ओर दो एक मौलिक ग्रन्थ खडी बोल चाल के पद्यों मे और लिख जात तो उस समय वह कुछ और अधिक उन्नत हो जाती। फिर भी उन्हों ने पहले पहल जितना किया उसके लिये वे चिर स्मरणीय हैं और खडी बोली कविता का क्षेत्र उसके लिये उनका कृतज्ञ है।

पाठक जी के उपरान्त खडी बोली के कविता-क्षेत्र मे हमको पं० नाथूराम शङ्कर शर्मा का दर्शन होता है। ये व्रजभाषा के ही कवि थे और उसमे सुन्दर और सरस रचना करते थे। परन्तु सामयिक रुचि का इन पर भी प्रभाव पडा और ये खडी बोली मे ही कविता लिखने लगे। शर्मा जी आर्य समाजी विचार के है। आर्य समाज की कट्टरता प्रसिद्ध है। शर्म्मा जी भी अपने विचार के कट्टर है। इनकी यह कट्टरता इनकी रचना मे हो नहो, इनके शब्दो मे भी फूटी पडती है। आर्य-समाज के सिद्धान्त के अनुसार समाज संशोधन सम्बन्धी विचार प्रगट करने के लिये इनको खडी बोली उपयुक्त ज्ञात हुई। इस लिये इनका उसकी ओर आकर्षित होना स्वाभाविक था। इनके धार्मिक विचारों मे भी उग्रता है। इस सूत्र से भी इनको खडी बोली की कविता करनी पडी क्योंकि उस समय आर्य्य समाज की जनता में अपना सिद्धान्त प्रचार करने के लिये व्रजभाषा से खडी बोली ही उन्हे अधिक प्रभाव जनक ज्ञात पडी। फिर भी यह स्वीकार करना पड़ेगा कि इनकी खडी बाली की रचना मे व्रजभाषा का पुट बराबर आवश्यकता से अधिक रहा और अब तक है। इन्हों ने छोटी मोटी कई पुस्तके बनाई है किन्तु इनकी छपी हुई चार पुस्तकें अधिक प्रसिद्ध है। इनके नाम ये है—शङ्कर सरोज, अनुराग रत्न, गर्भ रण्डारहस्य और वायस विजय। इनकी रचना की विशेषता यह है कि उसमे समाज संशोधन, मिथ्याचार खण्डन और परम्परागत रूढियोका निराकरण उत्कट रूप मे पाया जाता है। इनसे पहले इस ढंग की रचनाओं का अभाव था। समय ने इनके ही द्वारा इस अभाव की पूर्ति करायी। खडी बोल चाल मे

आप की ही ऐसी पहली रचना है जिसमे समाज को उसके अन्ध विश्वासो के लिये गहरी फटकार मिलती है। इस विषय मे हिन्दी साहित्य क्षेत्र मे कबीर के बाद इनका ही स्थान है। मुँहफट और अक्खड भी ये वसे ही है। जब आवेश मे आते है तो इनके उद्‌गार मे ऐसे शब्द भर जाते है जिन से एक प्रकार का स्फोट सा होता ज्ञात होता है। शर्मा जी हिन्दी संसार के एक ख्याति प्राप्त और मान्य कवि है। इनको गुण ग्राहको ने पदक और उपयुक्त पदविया भी प्रदान की है। इनका व्रजभाषा का एक पद्य नीचे लिखा जाता है

१—मंगल करन हारे कोमल चरन चारु
मंगल से मान मही गोद में धरत जात।
पंकज की पाँखुरी से आँगुरी अँगूठन की
जाया पंचबान जो को भँवरी भरत जात।
शंकर निरख नख नग से नखत स्रेनी
अंबर सों छूटि छूटि पाँयन परत जात।
चाँदनी में चाँदनी के फूलन की चाँदनी पै
हौले हौले हंसन की हाँसी सी करत जात।

एक पद्य खडी बोल चाल का देखिये —

२—कज्जल के कूट पर दीप शिखा सोती है
कि श्याम घन मंडल में दामिनीकी धारा है।
यामिनी के अंक में कलाधर की कोर है
कि राहु के कबंध पै कराल केतु तारा है।
शंकर कसौटी पर कंचन की लीक है
कि तेज ने तिमिर के हिये में तीर मारा है।
काली पाटियों के बीच मोहिनी की माँग है
कि ढाल पर खाँड़ा कामदेव का दुधारा है।

एक पद्य ऐसा देखिये जिसमे खडी बोली और ब्रजभाषा दोनो का गहरा रग है —

३—ताकत ही तेज न रहैगो तेजधारिन में
मंगल मयंक मंद पीले पड़ जायँगे।
मीन बिन मारे मर जायँगे तड़ागन में
डूबडूब शंकर सरोज सड़ जायँगे।
खायगो कराल काल केहरी कुरंगन को
सारे खंजरीटन के पंख झड़ जाँयगे।
तेरी अँखियान सों लड़ैंगे अब और कौन
केवल अड़ीले दृग मेरे अड़ जायँगे।

एक पद्य डॉट फटकार का भी देखिये —

४—ईश-गिरिजा को छोड़ यीशु गिरजा में जाय
शंकर सलोने मैन मिस्टर कहावेंगे।
बूट पतलून कोट कमफ़ाट टोपी डाटि
जाकेट की पाकेट में बाच लटकावेंगे।
घूमेंगे घमंडी बने रंडी का पकड़ हाथ
पियेंगे बरंडी मीट होटल में खावेंगे।
फारसी की छार सी उड़ाय अँगरेज़ी पढ़ि
मानो देवनागरी का नाम ही मिटावेंगे।

इनकी एक रचना बिचित्र भापा भाव की देखिये —

बाबा जी बुलाये बीर डूंगरा के डोकरा ने
जैमन को आसन बछेल के बिछाये री।
ओंड़े ऊदला महेरी के सपोट गये झार
गये झोर रोट झार पेट भरे खाये री।

छोड़ी न गजरमत नेक हूं न दोरिया में
रोंथ रोंथ रूखी दर भुजिया अघायेरी।
संतन के रेवड़ जो चमरा चरावत हैं
शंकर सो बाने बंद बेडुआ कहाये री।

एक पद्य ऐसा देखिये जिसमे फारसी के मुहावरे और शब्द दोनो कसरत से शामिल है —

बाग़ की बहार देखो मौसिमे बहार में तो
दिले अन्दलीप को रिझाया गुले तरसे।
हम चकराते रहे आसमाँ के चक्करमें
तौभी लौ लगी ही रही माह के महर से।
आतिशे मुसीबत ने दूर की कुदूरत को
बात की नबात मिली लज्ज़ते शकर से।
शंकर नतीजा इस हाल का यही है बस
सच्ची आशिकी में नफ़ा होता है ज़रर से।

एक उर्दू पद्य देखिये जो हसब हाल है —

बुढापा नातवानी ला रहा है।
ज़माना ज़िन्दगी का जा रहा है।
किया क्या ख़ाक आगे क्या करेगा।
अख़ीरी वक्त दौड़ा आरहा है।

इस खडी बोली के उत्थान के समय मे ब्रजभाषा के कवियो की कमी नही है। इस समय भी ब्रजभाषा के सुकवि उत्पन्न हुये और उन्हो ने उसी की सेवा आजन्म की। उनमे से जो दो अधिक प्रसिद्ध है वे है लाला सीताराम बी० ए० और स्वर्गीय रायदेवीप्रसाद पूर्ण। लाला सीताराम बी० ए० बहुभाषाविद् है। उनको संस्कृत, अंगरेजी, फारसी अरबी आदि

कई भाषाओं का अच्छा ज्ञान है। उन्होने कई अँग्रेजी नाटकों का अनुवाद उर्दू मे भी किया है। ब्रजभाषा को उन्हों ने यह सेवा की कि "मेघदूत" ऋतु-संहार' 'रघुवश' का पद्यानुवाद सरल भाषा मे कर के उसे सौंपा। सस्कृत के 'मालती माधव' उत्तर राम चरित्र' आदि नाटकों का अनुवाद भी गद्यपद्यमयी भाषा मे किया। आप गद्य पद्य दोनो लिखने मे अभ्यस्त है। अपनी वृद्धावस्था मे भी कुछ न कुछ हिन्दी-सेवा करते ही रहते है। आप के पद्यके कुछ नमूने नीचे दिये जाते है जो रघुवंशके पद्यानुवादसे लिये गये है —

भये प्रभात धेनु ढिग जाई।
पूजि रानि माला पहिराई।
बच्छ पियाइ बाँधि तब राजा।
खोल्यो ताहि चरावन काजा।
परत धरनि गा चरन सुहावन।
सो मग धूरि होत अति पावन।
चली भूप तिय सोई मग माहीं।
स्मृति, श्रुति अर्थ संग जिमि जाहीं।
चौसिंधुन थन रुचिर बनाई।
धरनिहिँ मनहुँ बनी तहँ गाई।
प्रिया फेरि अवधेश कृपाला।
रक्षा कीन्ह तासु तेहि काला।
कबहुँक मृदु तृन नोचि खिलावत।
हाँकि माछि कहुँ तनहिँ खुजावत।
जो दिसि चलत चलत सोई राहा।
एहि विधि तेहि सेवत नर नाहा।

राय देवीप्रसाद 'पूर्ण' कानपुर के एक प्रसिद्ध वकील थे। आपने

आजन्म हिन्दी भाषा की सेवा की और जबतक जिये उसको अपनी सरस रचनाओं से अलंकृत करते रहे। आप बड़े सहृदय कवि और वक्ता थे, धर्म्म प्रेमी भी थे। ब्रह्मावर्त्त सनातनधर्म मण्डल की स्थापना भी आप ही ने की थी। 'काव्य शास्त्र विनोदेन कालो गच्छति धीमताम्' के आप प्रत्यक्ष प्रमाण थे। उन्होने रसिक वाटिका नामक एक मासिक पत्रिका भी निकाली थी। पीछे से धर्म कुसुमाकर नामक एक मासिक पत्र भी प्रकाशित किया। आपने ब्रजभाषा मे अनेक सुन्दर रचनाये की है। उनमे से कुछ पुस्तकाकार भी छपी है। उन्होंने मेघदूत का 'धाराधर धावन' नाम से बड़ा सुन्दर और सरस अनुवाद किया है। उनका 'चन्द्र कला भानुकुमार' नाटक भी अच्छा है। उनके कुछ पद्य नीचे दिये जाते है —

बर्षा आगमन।

१—सुखद सीतल सुचि सुगन्धित पवन लागी बहन।
सलिल बरसन लगो बसुधा लगी सुखमा लहन।
लहलही लहरान लागीं सुमन बेली मृदुल।
हरित कुसुमित लगे झूमन बृच्छ मंजुल बिपुल।
हरित मनि के रंग लागी भूमि मन को हरन।
लसति इन्द्र वधून अवली छटा मानिक बरन।
बिमल बगुलन पाँति मनहुँ बिसाल मुक्तावली।
चन्द्रहाँस समान-दमकति चंचला त्यों भली।
नील नीरद सुभग सुरधनु बलित सोभाधाम।
लसत मनु बनमाल धारे ललित श्री घनस्याम।
कूप कुंड गँभीर सर वर नीर लाग्यो भरन।
नदी नद उफनान लागे लगे झरना झरन।
रटत दादुर त्रिविधि लागे रुचन चातक बचन।
कूक छावत मुदित कानन लगे केकी नचन।

मेघ गरजत मनहुँ पावस भूप को दल सकल ।
विजय दुंदुभि हनत जग में छीनि ग्रीसम अमल ।

२—तुम्हरे अद्भुत चरित मुरारी ।
कबहूं देत बिपुल सुख जग में कबहुँ देत दुख भारी ।
कहुँ रचि देत मरुस्थल रूखो कहुँ पूरन जल रासि ।
कहुँ ऊसर कहुँ कुंज विपिन कहुँ कहुँ तम हूँ परकास ।

३—माता के समान पर पतिनी बिचारी नहीं,
रहे सदा पर धन लेन ही के ध्यानन मैं ।
गुरुजन पूजा नहीं कीन्हीं सुचि भावन सों,
गीधे रहे नानाविधि विषय विधानन मैं ।
आपुस गँवाई सबै स्वारथ सँवारन मैं,
खोज्यो परमारथ न वेदन पुरानन मैं ।
जिनसों बनो न कछु करत मकानन मैं,
तिनसों बनैगी करतूत कौन कानन मैं ।

उनका एक बिरहा भी देखिये —

१—अच्छे अच्छे फुलवा बीन री मलिनियाँ
गूँधि लाओ नीके नीके हार ।
फूलन को हरवा गोरी गरे डरिहौं
सेजिया में होइ है बहार ।

चौथा-प्रकरण

वर्त्तमान काल

यह वर्त्तमानकाल बीसवीं ईस्वी शताब्दी के आदि से ही प्रारम्भ होता है। हिन्दी भाषा के लिये इसको स्वर्णयुग कह सकते है। इस काल मे जितना वह विस्तृत हुई फूली फली उन्नत बनी वह उल्लेखनीय है। कोई वह समय था जब हिन्दी भाषा के विद्वान् इने गिने थे और उसको एक साधारण भाषा समझ कर हिन्दी संसार के प्रतिष्ठित पुरुषो की दृष्टि भी उसकी ओर आकर्षित होते संकुचित होती थी। किंतु वर्त्तमान काल मे संस्कृत और अँगरेजी के उच्च कोटि के विद्वान् ही क्या उसके पुनीत चरणो पर भारतवर्ष के वे महापुरुष भी पुष्पाञ्जलि अर्पण करते दृष्टिगत होते है जो लोकमान्य और देश-पूज्य है। मेरा अभिप्राय महर्षिकल्प पं० मदन-मोहन मालवीय और महात्मा गाधी से है। मालवीय जी चिरकाल से हिन्दी भाषा के लिये बद्ध-परिकर और उत्सर्गीकृत—जीवन है। वर्त्तमान काल मे उनको महात्मा गाधी की सहयोगिता भी प्राप्त हो गयी है जिससे हिन्दी भाषा की समुन्नति और सौन्दर्य्य वृद्धि के लिये मणि-काचन-योग उपस्थित हो गया है। राष्ट्रीयता के भावो के साथ देश मे एक भाषा का प्रश्न भी छिडा। इस आन्दोलन ने हिन्दी भाषा को उस उच्चसिंहासन पर बैठाला जिसकी वह अधिकारिणी थी। आजदिन देश के बडे बडे नेता तथा अधि-कतर सर्वमान्य विद्वान् सम्मिलित स्वर से यही कह रहे है कि राष्ट्रभाषा यदि हो सकती है तो हिन्दी भाषा। इस विचार से उसमे एक नवीन स्फूर्ति आगयी है और उसके प्रत्येक विभागो मे यथेष्ट उन्नति होती दृष्टिगत हो रही है। भारतवर्ष का कोई प्रान्त ऐसा नही है जहाँ इस समय हिन्दी भाषाकी पहुँच न हो और जहाँ से हिन्दी भाषा का कोई न कोई पत्र अथवा पत्रिका न निकल रही हो। उसके प्रसार का भी यथेष्ट यत्न किया जा रहा है और उसके प्रत्येक विभागो के भाण्डार की वृद्धि मे लोग सयत्न है। इस समय मेरे सामने उसके पद्य-विभाग का विषय है। मैं देखना चाहता हू कि

इस शताब्दी के आरम्भ से आज तक वह किस प्रकार उत्तरोत्तर उत्कर्ष लाभ कर रहा है।

मैं खड़ी बोली की कविता के अन्दोलन के विषय मे पहले चर्चा कर आया हूं। यह आन्दोलन सबलता से चला और उसको सफलता भी प्राप्त हुई। परन्तु नियम बद्धता और स्थिरता का इसमे अभाव था। कोई ऐसा संचालक उस समय तक उसको प्राप्त नही हुआ था जो उसका मार्ग प्रशस्त करे और तन मन से इस कार्य्य मे लग कर वह आदर्श उपस्थित करे जिस-पर अन्य लोग चल कर उसको उन गुणो से अलंकृत कर सके जो सत्क-विता के लिये वाछनीय होते है। सौभाग्य से उस समय प्रसिद्ध मासिक पत्रिका 'सरस्वती' का सम्पादकत्व लाभ कर प० महावीर प्रसाद द्विवेदी कार्य्य-क्षेत्र मे उतरे और उन्होने इस दिशा मे प्रशंसनीय प्रयत्न किया। कविताप्रणाली का मार्ग धीरे धीरे प्रशस्त होता है। काल पा कर ही उसकी कोई पद्धति सुनिश्चित होती है। कार्य्य-क्षेत्र मे आने पर ज्यो ज्यो उसके दोष प्रकट होते है, उस पर तर्क-वितर्क और मीमासाये होती है त्यों त्यों वह परिमार्जित बनती है और उसमे आवश्यकतानुसार सरस, सुंदर और भावमयी पदावली का समावेश होता है। पं० महावीर प्रसाद द्विवेदी ने जिस समय अपना कार्य्य प्रारम्भ किया उस समय हिन्दी खड़ी बोली की कविता का आरम्भिक काल था। उल्लेख योग्य दस-पॉच पद्य-ग्रंथ उस समय तक निर्मित हुये थे और भाषा एक अनिश्चित और असंस्कृत मार्ग पर चलरही थी। प्रत्येक लेखक खड़ी बोली की कविता-रचना का एक अपना सिद्धात रखता था और उसी के अनुसार कार्य-रत था। यह मैं स्वीकार करूंगा कि उर्दू भाषा का आदर्श उस समय सब के सामने था जो यथेष्ट उन्नत थी। किन्तु कई विशेष कारणो से उसका यथातथ्य अनुकरण हिन्दी भाषा की खड़ी बोली की कविता नही कर सकती थी। हिन्दी और उर्दू मे बहुत साधारण अन्तर है। उर्दू की जननी हिन्दी भाषा ही है। कुछ लोगों का यह विचार है कि हिन्दी उर्दू के आदर्श पर बनी है। कम से कम मेरा हृदय इसको स्वीकार नहीं करता। उर्दू के क्रियापद अधिकाश हिन्दी भाषा के है। हिन्दी भाषाके सर्वनाम कारक और अनेक प्रत्यय उर्दू भाषा

के जीवन है। उनके अभाव मे उर्दू का अस्तित्व लोप हो जायगा। वह फारसी बन जायगी अथवा कोई ऐसी भाषा जिसका नामकरण भी न हो सकेगा। फारसी, अरबी के अधिक शब्द हिन्दी मे मिला कर उर्दू गढी गयी है अथवा उसका आविर्भाव हुआ है। ऐसी दशा मे वह हिन्दी भाषा का रूपान्तर छोड और कुछ नही है। जब उर्दू की प्रवृत्ति अधिकतर फारसी और अरबी प्रयोगो की ओर झुकी और लम्बे लम्बे समस्त पद भी उसमे इन भाषाओ के आने लगे उस समय वह हिन्दी से सर्वथा भिन्न ज्ञात होने लगी। यह बात हिन्दी के अस्तित्व का बाधक थी इस लिये उसका कोई निज का मार्ग होना आवश्यक था जिसमे वह अपने मुख्य-रूप को सुरक्षित रख सके। उसका अपने वास्तविक रूप मे विकसित होना भी बाछनीय था। अतएव खडी बोली की कविता उस मार्ग पर चली जो उसका लक्ष्य था। उसके कुछ पथ-प्रदर्शक इस मार्ग को जानते थे। अतएव वे उसके लक्ष्य की ओर सतर्क हो कर चल रहे थे। परन्तु कुछ लोग उर्दू की अनेक बातो का अन्धानुकरण करना चाहते थे। ऐसे अवसर पर जिन लोगो ने खडी बोली की कविता को उचित पथ पर चलाया उनमे से पंडित महावीर प्रसाद द्विवेदी अन्यतम है। अपनी 'सरस्वती' नामक मासिक पत्रिका मे उन्होने अधिकतर खडी बोली की कविता ही प्रकाशित करने की ओर दृष्टि रखी और अनेक कृत-विद्यो को इस कार्य्य के लिये उत्साहित करके अपनी ओर आकर्षित किया। मुझको यह ज्ञात है कि जो खडी बोलचाल की कवितायें उनके पास उस समय 'सरस्वती' मे प्रकाशित करने के लिये जाती थी उनका संशोधन वे बड परिश्रम से करते थे और संशोधित कविता को ही 'सरस्वती' मे प्रकाशित करते थे। इससे बहुत बडा लाभ यह होता था कि खडी बोली की कविता करनेवालों का ज्ञान बढता था और वे यह जान सकते थे कि उनको किस मार्ग पर चलना चाहिये। इस प्रणाली से धीरे धीरे खडी बोली की कविता का मार्ग भी प्रशस्त हो रहा था। पं० महाबीर प्रसाद द्विवेदी ने इतना ही नही किया उन्होने कुछ खडी बोली की रचनाये भी की और इस रीति से भी उन्होंने खडी बोली की कविता-प्रणाली जनता के सामने उपस्थित की। उनका कुमार-

सम्भव-सार' यद्यपि छोटी पुस्तक है परंतु उसकी खड़ी बोली की कविता बहुत परिमार्जित और सुंदर है। उसका प्रभाव भी उस काल की खड़ी बोली की कविता पर बहुत कुछ पड़ा। पंडित महावीर प्रसाद द्विवेदी संस्कृत के विद्वान् और उसके प्रेमी हैं। इस लिये उनके गद्य और पद्य दोनों की भाषा संस्कृत बहुला है। गद्य तो गद्य उनके पद्य मे भी सँस्कृत के कर्कश शब्द आ गये है। जिसका प्रभाव उनके शिष्यों की रचना पर भी पड़ा है। आदिम अवस्थाओं मे ऐसा होना स्वाभाविक था। सुधार विशेषकर कविता मे, यथाक्रम ही होता है।

जो भाषा साहित्यिक बन कर बोलचाल की भाषा से अधिक दूर पड़ जाती है, काल पा कर वह साहित्य ही मे रह जाती है और उसका स्थान धीरे धीरे एक नयी भाषा ग्रहण करने लगती है। इस दृष्टि मे और इस विचार से भी कि उर्दू और हिन्दी भाषा की रचनाये अधिकतर पास पास हो जाये, कुछ मननशील विद्वानों का यह विचार हुआ कि खड़ी बोलचाल की कविता की भाषा जहाँ तक हो बोलचाल के निकट हो और उसमे अधिकतर संस्कृत के तत्सम शब्द न भरे तो अच्छा। संस्कृत शब्दमयी रचना को सर्व साधारण समझ भी नही सकते। इस लिये भी बोलचाल की सरल भाषा मे कविता रचने की आवश्यकता होती है। यह मैं स्वीकार करूंगा कि अन्य प्रान्तों से सम्बन्ध स्थापित करने के लिये यह आवश्यक है कि जैसे गद्य संस्कृत भाषामय होता है वैसे ही पद्य भी हो क्योंकि संस्कृत के शब्द समान रूप से सब प्रान्तों मे समझे जाते है। मेरा 'प्रिय-प्रवास' इसी विचार से अधिकतर संस्कृत गर्भित है। मै इसका विरोध नही करता। आवश्यकतानुसार कुछ ऐसे ग्रन्थ भी लिखे जॉय। परन्तु अधिकतर ऐसे ही ग्रन्थों की आवश्यकता है जिनकी भाषा बोलचाल की हो, जिससे अधिक हिन्दी भाषा-भाषी जनता को लाभ पहुँच सके। अभी इधर ध्यान बहुत कम गया है, उस समय भी ऐसी भाषा लिखने वालों को लोग कड़ी दृष्टि से देखते थे और समझते थे कि ऐसा कर के वह हिन्दी भाषा के उच्च आदर्श को अधःपतित कर रहा है। सन् १९०० ईस्वी मे नागरी प्रचारिणी सभा का भवन-प्रवेशोत्सव था। उस समय मैने एक

लम्बी कविता हिन्दी भाषा सम्बन्धिनी लिखी थी यह कविता प्रेम-पुष्पोपहार के नाम से अलग पुस्तकाकार छपी है । मैने उसे बोलचाल की भाषा मे लिखा है । उत्सव मे बाबू अयोध्या प्रसाद खत्री भी आये थे । उन्होंने मेरे पठन से पहले ही उस कविता को मुझसे लेकर पढ लिया । पढ कर बहुत आनन्दित हुये, बोले खडी वाली की कविता ऐसी ही भाषा मे होनी चाहिये । परन्तु मेरी इस कविता को स्व० प० बदरीनारायण चौधरी (प्रेमघन) ने उनकी दृष्टि से नही देखा । जब मैने उत्सव के समय सभा मे यह कविता पढी तो कविता समाप्त होने पर वे मेरे पास अपने स्थान से उठ कर आये और कहा कि यह उर्दू कविता है । आप इसे हिन्दी क्यो कहते है । मुझसे उन्होंने सभाभवन से बाहर आकर भी उसके विषय मे बडा तर्क-वितर्क किया । बाबू काशी प्रसाद जायसवाल से भी उन्होने उसके विषय मे अनेक तर्क किये ।

उस ग्रन्थ के कुछ पद्य नीचे लिखे जाते है —

चारडग हमने भरे तो क्या किया
है पड़ा मैदान कोसों का अभी ।
काम जो है आज के दिन तक हुए ।
हैं न होने के बराबर वे सभी ।
हो दशा जिस जाति की ऐसी बुरी ।
बन गयी हो जो यहाँ तक बेखबर ।
फिर भले ही जाय गरदन पर छुरी ।
पर जो उफ़ करने में करती है कसर ।
आप ही जिसकी है इतनी बेबसी ।
है तरसती हाथ हिलाने के लिये ।
आस हो सकती है उससे कौन सी ।
हो सके है क्या भला उसके किये ।
कम नहीं जिन से अँधेरी टूटती ।
भूल सकता है समय जिनको नहीं ।

पर अमावस के सितारों की तरह।
लोग जो इसमें चमकते हैं कहीं।

ये पद्य बिलकुल बोलचाल क है। इनमे कुछ शब्द फारसी के भी आ गये है। इस लिये प्रेमघन जी ने इनको हिन्दी का पद्य नही माना। इतना ही नही मुझ से ही तर्क-वितर्क कर के वे शान्त नही हुये, उसकी चर्चा उन्होने उक्त बाबू साहब से भी की जिससे पाया जाता है कि उस समय हिन्दी के ऐसे लब्ध-प्रतिष्ठ विद्वान भी हिन्दीका खडी बोली रचनाके विषय मे क्या विचार रखते थे। पंडित जी का तर्क यह था कि जो हिन्दी छन्दो मे कविता की जावे और सस्कृत तत्सम शब्द जिसमे अधिक आवे वही खडी बोली की हिन्दी कविता मानी जा सकती है अन्यथा वह उर्दू है। मेरी रचना मे हिन्दी के तद्भव शब्द अधिक आये है, और कहीं कही फारसी के शब्द भी आ गये है, संस्कृत के तत्सम शब्द कम है, इसीलिये वे उसको हिन्दी की रचना मानने के लिये तैयार नही थे। उस समय हिन्दी की खडी बोली कविता के लिये अधिकतर लोगो के यही विचार थे। अब भी कुछ लोगो के येही विचार है। मै इस विचार से सहमत नहीं हूं। तद्भव शब्दो मे लिखी गयी शिष्ट बोलचाल की हिन्दी ही वास्तव मे खडी हिन्दी भाषा की रचना कही जा सकती है और ऐसी ही रचना सर्व साधारण के लिये विशेष उपकारक हो सकती है। इस तर्क का कोई अर्थ नहीं कि यदि अइली गइली का प्रयोग किया जावे और ग्रामीण भाषा लिखी जावे तब तो वह हिन्दी है और यदि शिष्ट बोलचाल की भाषा के आधार से तद्भव शब्दो मे हिन्दी भाषा की कविता लिखी जावे तो वह उर्दू है। यह बिलकुल अयथा विचार है। कुछ मुसलमान विद्वानो का विचार भी ऐसा ही है। वे 'ज़फ़र' और 'नज़ीर' की निम्न लिखित रचनाओ को उर्दू की कहते है हिन्दी की नही —

१—यों ही बहुतदिन गुड़िया मैं खेली।
कभी अकेली कभी दुकेली
जिससे कहा चल तमाशा दिखला।
उसने उठा कर गोदी में लेली।

कुछ कुछ मोहिं समझ जोआई ।
एक जा ठहरी मोरी सगाई ।
आवन लागे बाम्हन नाई ।
कोई ले रुपया कोई ले धेली ।
ब्याह का मेरे समाँ जब आया ।
तेल चढाया मढा छवाया ।
सालू सूहा सभी पिन्हाया ।
मेंहदी से रँग दिये हाथ हथेली
सासरे के लोग आये जो मेरे ।
ढोल दमामे बजे घनेरे ।
सुभ घड़ी सुभ दिन हुये जो फेरे ।
सइयां ने मोहिं हाथ में लेली ।

जफर

२—यारो सुनो ए दधि के लुटैया का बालपन ।
औ मधुपुरी नगर के बसैया का बालपन ।
मोहन सरूप नृत्य करैया का बालपन ।
बन बन में ग्वाल गौएं चरैया का बालपन ।
ऐसा था बाँसुरी के बजैया का बालपन ।
क्या क्या कहूं मैं कृष्ण कन्हैया का बालपन ।
परदे में बालपन के ये उनके मिलाप थे ।
जोती सरूप कहिये जिन्हें सो वो आप थे ।

नजीर

परंतु, हम देखते है कि इंशा अल्ला खा ठेठ हिन्दी लिखने का प्रण करके भी अपनी रानी केतकी' की कहानी मे निम्न लिखित पद्यों को लिखते है.—

आंतिया जातियां जो साँसें ह ।
उनके बिन ध्यान यह सब फांसें हैं ।

बात यह है कि इशा इनको हिन्दी का पद्य ही समझते है । शिष्ट भाषा मे लिखे जाने के कारण वे उनका उर्दू नही मानते । यदि वे उनको उर्दू मानते तो उन्हे अपने ठेठ हिन्दी के ग्रन्थ मे स्थान न देते । उनका सोचना ठीक था । जो उन पद्यो को उर्दू कहते है वे यह समझते ही नहीं कि हिन्दी किसे कहते है । तद्भव शब्दो मे लिखी गयी हिन्दी वास्तविक हिन्दी है । उसमे सस्कृत के तत्सम शब्द मिल जॉय तो भी वह हिन्दी है । उर्दू उसको किसी प्रकार मे नही कहा जा सकता । बोलचाल के उर्दू शब्द मिल जाने पर भी वह हिन्दी ही रहेगी, उर्दू तब भी न होगी । अधिकतर फारसी अरबी के शब्द मिलने ही पर उसको उर्दू नाम दिया जा सकेगा । फिर भी वह हिन्दी का रूपान्तर मात्र है । क्योकि जब तक क्रिया कारक सर्वनाम हिन्दी क रहेगे तब तक कुछ अन्य भाषा के शब्द उसके हिन्दी कहलाने का अधिकार नही छीन सकते । मुझको इसकी चर्चा यहाँ इस लिये करनी पडी कि इस शताब्दी के आरम्भ मे खडी बोली की पद्य रचना का विषय कितना विवादास्पद था । इस समय यह विषय बहुत स्पष्ट हो गया है, पर अब भी अधिकतर खडी बोलचाल की हिन्दी कविता मे तत्सम संस्कृत शब्दो का ही प्रयोग होता है । मेरा विचार है कि अब वह समय आ गया है कि सरल और तद्भव शब्दो ही मे खड़ी बोली की कविता की जावे, जिसमे कहीं कही कोमल, मधुर एव सरस संस्कृत शब्दो का प्रयोग भी हो । मैने अपने चुभते चौपदे, चोखे चौपदे, बोलचाल नामक ग्रंथों की रचना इसी आदर्श पर की है ।।

पण्डित महाबीर प्रसाद द्विवेदी के उपरान्त बहुत मे खडी बोली के कवि हिन्दी संसार के सामने आये । उनमे कुछ ऐसे है जिन्हो ने इस क्षेत्र मे उल्लेखनीय कार्य किया है । मै उनकी चर्चा यहा कर देना आवश्यक समझता हूं । इन कवियों मे अधिकतर पं० महाबीर प्रसाद द्विवेदी

के 'स्कूल' वाले ही है। कोई कोई ऐसे है जिनका मार्ग भिन्न है। भिन्न मार्गियो मे सब से पहले मेरी दृष्टि स्व० लाला भगवानदीन की ओर जाती है। इसलिये पहले मै उनकी चर्चा करके तब आगे बढ़ूंगा ॥

१—लाला भगवानदीन प्रसिद्ध साहित्य-सेवियो मे थे। प्राचीन साहित्य के अच्छे मर्मज्ञ थे। उन्हो ने कई ग्रन्थो की सुन्दर टीकाये लिखो है और अलकार का भी एक ग्रंथ प्रचलित गद्यमे निर्माण किया है। वे अच्छे समालोचक भो थे। उन्हो ने पद्य मे भी चार-पॉच ग्रंथ लिखे है। वे व्रजभाषा मे ही पहले कविता करते थे। बाद को खडी बोली की ओर प्रवृत्त हुये। वे कायस्थ थे, इसलिये फारसी और उर्दू का ज्ञान भी उनका यथेष्ट था। उनको खडो बोली को हिन्दी कविता को विशेषता यह है कि उन्होने उसमे उर्दू का रग उत्पन्न करने की चेष्टा की और अरबी वहो से भो काम लिया। उनके 'वीर पञ्चरत्न' और 'वीरमाता' नामक ग्रंथ ऐसे ही है। उनकी रचना के कुछ नमूने नोचे दिये जाते है —

॥ चांदनी ॥

१—खिल रही है आज कैसी
भूमि तल पर चाँदनी ।
खोजती फिरती है किसको
आज घर घर चाँदनी ।
घन घटा घूँघट हटा मुसकाई
है कुछ ऋतु शरद ।
मारी मारी फिरती है इस
हेतु दर दर चाँदनी ।
रात को तो बात क्या दिन में
भी बन कर कुंद कास

छाई रहती है बराबर
भूमि तल पर चाँदनी ।
सेत सारी युक्त प्यारी
की छटा के सामने ।
जँचती है ज्यों फूल के
आगे हो पीतर चाँदनी ।
स्वच्छता मेरे हृदय की
देख लेगी जब कभी ।
सत्य कहता हूं कि कँप
जायेगी थर थर चाँदनी ।
नाचने लगते हैं मन
आनन्दियों के मोद से ।
मानुषी मन को बना
देती है बन्दर चाँदनी ।
भाव भरती है अनूठे
मन में कवियों के अनेक ।
इनके हित हो जाती है
जोगी मछन्दर चाँदनी ।
वह किसी की माधुरी
मुसकान की मनहर छटा ।
'दीन' को सुमिरन करा
देती है अकसर चाँदनी ।

२—होमर जो यूनान का कवि आदि कहाया ।
उसने भी सुयश वीरों का है जोश से गाया ।

फिर दोसी ने भी नाम अमर अपना बनाया।
जब फ़ारसी वीरों का सुयश गाके सुनाया।
सब बीर किया करते हैं सम्मान कलम का।

एक पद्य ब्रजभाषा का देखिये।

सघन लतान सों लखात बरसात छटा
सरद सोहात सेत फूलन की क्यारी में।
हिमऋतु काल जल जाल के फुहारन में
शिशिर लजात जात पाटल कनारी में।
सौरभित पौन ते बसन्त दरसात नित
ग्रीषम लौं दुख दहक्यो है चटकारी में।
दीन कवि सोभाषट ऋतु की निहारी सदा
जनक कुमारी की पियारी फुलवारी में।

२ पं० गयाप्रसाद शुक्ल वर्तमान कवियोमे विशेष स्थानके अधिकारी है। आप की राष्ट्रीय रचनाये बडी ओजस्विनी है और खडी बोली के क्षेत्र मे आप का यही उल्लेखनीय कार्य्य है। खडी बोली की कविता मे आपने जातीयता का वह राग अलापा है जिसकी ध्वनि हृदयो मे ओज का सचार करती रहती है। आप की राष्ट्रीय कविताये त्रिशूल नामसे निकली है। आपने अपने सनेही' उपनाम से जो रचनाये की है वे बडी ही सरस और मधुर है। आप ब्रजभाषा और खडी बोली दोनों ही भाषाओं मे रचना करते है। किंतु आप को प्रसिद्धि खडी बोली की रचनाओ के लिये ही है। क्योकि उनकी पक्तिया प्राय बडी सजीव होती है। आप 'सुकवि' नामक एक मासिक पत्रिका भी निकालते है। उनकी दोनों भाषाओ की कुछ कविताये नीचे लिखी जाती है।

वह बेपरवाह बने तो बने
हमको इसकी परवाह का है।

वह प्रीति का तोड़ना जानते हैं
ढँग जाना हमारा निबाह का है।
कुछनाज़ जफ़ा पर है उनको
तो भरोसा हमें बड़ा आह का है।
उन्हें मान है चन्द्र से आनन पै
अभिमान हमें भी तो चाह का है।
दाह रही दिल में दिन द्वैक बुझी
फिर आपै कराह नहीं अब।
मानि कै रावरे रूरे चरित्र गुन्यो
हिय में कि निबाह नहीं अब।
चाहक चारु मिले तुमको चित
मॉहि हमारे भी चाह नहीं अब।
जो तुममें न सनेह रहा हमको भी
नहीं परवाह रही अब।

रावन से बावन बिलाने हैं बचे न एक
चाल नहि काल से किसी की चल पाई है।
कौरव कुटिल कुल कुल के कुठार भये
कृष्ण जू से कंस की न दाल गल पायी है।
हाय की हवा सों जल गये है जवन जूथ
हासिल हुकुम पै न लागे पल पायी है।
याते बल पाय फल पाय लेहु जीवन को
दोन कलपाय कहो कौने कलपाई है।

चित्त के चाव चोचले, मन के
वह बिगड़ना घड़ी घड़ी बन के।

चैन था नाम था न चिन्ता का
थे दिवस और ही लड़कपन के।
झूठ जाना कभी न छल जाना
पाप का पुण्य का न फल जाना।
प्रेम वह खेल से खिलौनों से
चन्द्र तक के लिये मचल जाना।
चन्द्र था और और ही तारे
सूर्य्य भी और थे प्रभाधारे।
भूमि के ठाट कुछ निराले थे
धूलिकण थे बहुत हमें प्यारे।
सब सखा शुद्ध चित्त वाले थे
प्रौढ़ विश्वास प्रेम पाले थे।
अब कहाँ रह गईं बहारें वे
उन दिनों रंग ही निराले थे।
सत्य रूप हे नाथ तुम्हारी शरण गहूंगा।
जो ब्रत है ले लिया लिये आमरण रहूंगा।
ग्रहण किये मैं सदा आप के चरण रहूंगा।
भीत किसी से और न हे भयहरण रहूंगा।
पहली मंज़िल मौत है प्रेम पंथ है दूर का।
सुनता हूं मत था यही सूली पर मंसूर का।

३—पंडित रामचरित उपाध्याय ने खड़ी बोली की कविता करने में कीर्ति अर्जन की है वे भी वर्तमान काल के प्रसिद्ध कवियों में हैं। वे संस्कृत के विद्वान् हैं और हिन्दी भाषा पर भी उनका अच्छा अधिकार है। पहले वे ब्रजभाषा में कविता करते थे। उन्होंने बिहारी लाल के ढंग पर

एक सतसई भी लिखी है। परन्तु अब तक वह हिन्दी संसार के सामने नहीं आई। उन्होंने 'रामचरित-चिन्तामणि' नामक एक बड़ा काव्य खड़ी बोली में लिखा है और इसके अतिरिक्त और भी पाँच सात पुस्तकें खड़ी बोली ही में लिखी हैं। खड़ी बोली की रचना करने में ये निपुण हैं और शुद्ध भाषा लिखने की अधिकतर चेष्टा करते हैं। इनकी भाषा प्रायः संस्कृत-शैली की होती है और उसमें संस्कृत के ढंग से ही भावप्रकाशन देखा जाता है। इनकी रचनाओं में भी सामयिकता पाई जाती है, अन्योक्ति द्वारा व्यङ्ग करने में आप अपने समान आप हैं। उनका वाक्य विन्यास प्रायः मधुर कोमल और सरस है। ये ही खड़ी बोली के ऐसे कवि हैं जिन्होंने जब से उसकी सेवा का व्रत लिया अन्य भाषा की ओर प्रवृत्त नहीं हुये। उनकी कुछ रचनायें नीचे दी जाती हैं —

सरसता सरिता जयिनी जहाँ
नव नवा नव नीति पदावली।
तदपि हा! वह भाग्य-विहीन की
सुकविता कवि ताप करी हुई।
मन रमा रमणी रमणीयता
मिल गयीं यदि ये विधि योग से।
पर जिसे न मिली कविता-सुधा
रसिकता सिकता सम है उसे।
सुविधि से विधि से यदि है मिली
रसवती सरसीव सरस्वती।
मन तदा तुझ को अमरत्वदा नव
सुधा वसुधा पर ही मिली।
चतुर है चतुरानन सा वही सुभग
भाग्य विभूषित भाल है।

मन जिसे मन में पर काव्य की
रुचिरता चिर ताप करी न हो।
बातें थी करती सखी सँग
मुझे तो भी रही देखती।
गत्वा सा कति चित् पदानि
सुमुखी आगे खड़ी हो गयी।
जाने क्यों हँसती चली फिर गयी
क्या मोहिनी मूर्ति थी।
स्वप्ने साद्य न दृश्यते क्षण
महो हा राम मैं क्या करूँ।
ऐनक दिये तने रहते हैं।
अपने मन साहब बनते हैं।
उनका मन औरों के काबू।
क्यों सखि सज्जन नहि सखि बाबू।
ठठरी उसकी बच जाती है।
जिसको हा वह धर पाती है।
छुड़ा न सकते उसे हकीम।
क्यों सखि डाइन नहीं अफ़ीम।

४ पं० रामचन्द्र शुक्ल हिन्दी गद्य के एक मननशील गम्भीर लेखक है। किन्तु उन्होने खडी बोल चाल के पद्य लिखने मे भी विशेषताये दिखलायीं है, इसलिये उनका कुछ वर्णन यहा भी आवश्यक ज्ञात होता है। वे भी व्रजभाषा ओर खडी बोली दोनों मे भाव मयो रचना करने मे समर्थ है। (लाइट आव् एशिया) Light of Asia' का जो अनुवाद उन्होने व्रजभापा मे किया है उसमे उनकी विलक्षण प्रतिभा का विकास हुआ है। पढने से

उस ग्रंथ मे मौलिकता का सा आनन्द आता है। ऐसा सरस और सुन्दर अनुवाद दुर्लभ है। खडी बोलचाल की रचनाये उनको थोडी ही है, परंतु उनमे भी विलक्षणता है। प्रकृति-निरीक्षण-सम्बन्धिनी कविताये हिन्दी साहित्य मे अल्प मिलती है। उन्होने यह कार्य कर के इस न्यूनता की बहुत कुछ पूर्ति की है और खडी बोली को एक नवीन उपहार प्रदान किया है। उनकी इस प्रकार की कुछ रचनाये नीचे लिखी जाती है —

दृग के प्रतिरूप सरोज हमारे
उन्हें जग ज्योति जगाती जहाँ;
जलबीच कलम्ब करम्बित कूल से
दूर छटा छहराती जहाँ;
घन अंजन वर्ण खड़े तृण ताल की
झांई पड़ी दरसाती जहाँ;
बिखरे बक के निखरे सित पंख
बिलोक बकी बिक जाती जहाँ;
निधि खोल किसानों के धूल सने
श्रम का फल भूमि बिछाती जहाँ;
चुनके कुछ चोंच चला करके
चिड़ियाँ निज भाग बँटातीं जहाँ;
कगरों पर कास की फैली हुई
धवली अवली लहराती जहाँ;
मिल गोपों की टोली कछार के
बीच है गाती औ गाय चराती जहाँ;
जननी धरणी निज अंक लिये
बहु कीट पतंग खिलाती जहाँ;

ममता से भरी हरी बाँह की छाँह
पसार के नीड़ बसाती जहाँ;
मृदु वाणी मनोहरवर्ण अनेक
लगा कर पंख उड़ाती जहाँ;
उजली कँकरीली तटी में धँसी
तनु धार लटो बल खाती जहाँ;
दल राशि उठो खरे आतप में
हिल चंचल औंध मचाती जहाँ;
उस एक हरे रँग में हलकी गहरी
लहरी पड़ जाती जहाँ;
कल कर्बुरता नभ की प्रतिबिम्बित
खंजन में मन भाती जहाँ;
कविता वह हाथ उठाये हुए
चलिये कविवृंद बुलाती वहाँ।

५—पंडित गोकुलचन्द्र शर्मा एम ए उन चुपचाप कार्य्य करनेवालोमे है जो ख्याति के पीछे न पड कर अपने कर्त्तव्य का पालन करते है। किसी जाति के उत्कर्ष और सभ्यता का परिमार्जित रूप से निष्पन्न करने के लिये महापुरुषों के चरित्रो और जीवनियों को बडो आवश्यकता होती है। विशेष कर उस अवस्था मे जब देश और समाज को प्रवृत्ति राष्ट्रीयता की ओर आकर्षित हो। खडो बोलो की कविता के उत्थान के समय यदि किसी सुकवि की दृष्टि इधर आकर्षित हुई तो वे पं० गोकुलचन्द्र शर्मा है। उनके गाधी गौरव' 'तपस्वो तिलक' नामक दो ग्रंथ महापुरुषोके इतिवृत्तके रूप मे लिखे गये है जो सामयिकता के आदर्श उपहार है। इन दोनो ग्रंथो की जैसी उत्तम और परिमार्जित भाषा है वैसी ही विचारशैली और भाव-प्रवीणता। उन्होंने और भो छोटे मोटे गद्य-पद्य-ग्रंथ लिखे है, परंतु

उनके प्रधान ग्रन्थ ये ही दो है। जो इस योग्य है कि उन्हे खडी बोली के कविता-क्षेत्र मे एक उल्लेख-योग्य स्थान प्रदान किया जावे। उनके कुछ पद्य देखिये —

इच्छा हमें नहीं है भगवन् हो सम्पत्ति हमारे पास।
नहीं चाहिये प्रासादों का वह विलास मय सुखद निवास।
सोवें सूखो तृण शय्या पर कर फल पत्तों पर निर्वाह।
पर समता का हृदय भूमि पर सञ्चालित हो प्रेम प्रवाह।
दृष्टि हमारो धुंधली होकर धोखा कभी न दे सर्वेश।
भ्रातृ भाव के शीशे में से देखें बन्धुवर्ग के क्लेश।
पतिता जन्म भूमि के हित हो बच्चा बच्चा बीर बराह।
रुधिर रूप में उमड़े अच्युत हृन्निर्झर से प्रेम प्रवाह ॥२॥

६—पडित रामनरेश त्रिपाठी एक प्रतिभावान पुरुष है। उनको समस्त रचनाओ मे कुछ न कुछ विशेषता पायी जाती है। यह उनकी प्रतिभा का ही फल है। उनकी लेखनी आदि से ही खडी बोली की सेवा मे रत है। उन्होने दो खण्ड काव्य खडी बोली मे लिखे है। दोनो सुन्दर है और सामयिकता पूर्णतया उनमे विराजमान है। उनकी भाषा परिमार्जित और सुन्दर है। खडी बोली का विशेष आदर्श सामने उपस्थित न होने पर भी उन्होने उसका रचना करने मे जितनी सफलता लाभ की है वह कम नहीं है। उनकी रचनाये भावमयी है और उनमे आकर्षण और मार्मिकता भी है। उन्हो ने कविता कौमुदी' नामक ग्रन्थ माला का संकलन कर और 'ग्रामगीत' नामक एक सुन्दर सग्रह प्रस्तुत कर हिन्दी भाषा की अच्छी सेवा की है। ऐसी रचनाये अथवा कविताये जो देश मे प्रचलित है पर्वोत्सवो पर गायी जाती है विवाह और यज्ञोपवीत आदि के अवसरो पर स्त्रियो के कण्ठो से सुनी जाती है, या जिनको ग्रामीण जन श्रुति परम्परा से स्मरण रखते आये है, उनके उद्धार की उनकी प्रवृत्ति आदरणीय है। इस प्रकार को रचनाओ मे सरसता, हृदय-ग्राहिता,

मधुरता की कमी नही है। उनमे आकर्षण भी बडा है, उपयोगिता भी कम नहीं। फिर भी अब तक वे कंठाग्र ही रहती आयी है। कुछ लोगों की प्रवृत्ति उनको पुस्तक रूप मे परिणत करने की पायी गयी, किन्तु जेसी चाहिये वैसो लगन के अभाव मे उनको इस विषय मे सफलता नहीं मिली। पंडित रामनरेश त्रिपाठी को इस विषय मे यथेष्ट सफलता मिल रही है। यह उनकी सच्ची लगन और वाछनीय प्रवृत्ति ही का फल है, जिसकी बहुत कुछ प्रशसा की जा सकती है। हिन्दी-संसार उनकी इस प्रकार की कृतियो का आदर कर रहा है और आशा है आगे भी वे आहत होगी। उनकी कुछ रचनाये नीचे दी जानी है—

होते जो किसी के विरहाकुल हृदय हम।
होते यदि आंसू किसी प्रेमी के नयन के।
गर पतझड़ में बसंत की बयार होते।
होते हम कहीं जो मनोरथ सुजन के।
दुख दलितों में हम आस की किरन होते।
होते यदि शोक अविवेकियों के मन के।
मानते तो विधि का अधिक उपकार हम
होते गाँठ के धन कहां जो दीन जन के।
मैं ढूँढ़ता तुझे था जब कुंज और बनमें।
तू खोजता मुझेथा तब दीन के वतन में।
तू आह बन किसी की मुझको पुकारता था।
मैं था तुझे बुलाता संगीत में भजन में।
मेरे लिये खड़ा था दुखियों के द्वार पर तू।
मैं बाट जोहता था तेरी किसी चमन में।
बन कर किसी का आँसू मेरे लिये बहा तू।
मैं देखता तुझे था माशूक़ के वदन में।

मैं था विरक्त तुझसे जग की अनित्यता पर।
उत्थान भर रहा था तवतू किसी पतन में।
तेरा पता सिकन्दर को मैं समझ रहा था।
पर तू बसा हुआ था फ़रहाद कोहकन में।

७—बाबू मैथिलीशरण गुप्त हिन्दी ससार के प्रसिद्धि प्राप्त सुकवि है। हिन्दी देवी की सेवा करने वाले और उसके चरणो पर अभिनव पुष्पाजलि अर्पण करने वाले जो कतिपय सर्व-सम्मत, सहृदय भावुक है उनमे आप भी अन्यतम है। आप खडी बोली कविताके अनन्य भक्त है और अबतक उसमे अनेक ग्रंथो की रचना आपने की है। उन्होने स्वयं ही रचना करके हिन्दी भाषा के भाण्डार को नही भरा है कई ग्रथो का सरस अनुवाद कर के भी उसकी पूर्ति की चेष्टा की है। अनुवादित ग्रंथो मे बॅगला मेघनाद का अनुवाद विशेष उल्लेख-योग्य है जो एक विशाल ग्रंथ है। उनका 'भारत-भारती' नामक ग्रंथ देश-प्रेम से ओत-प्रोत है। उसका आदर भी बहुत अधिक हुआ। खडी बोली के किसी ग्रथ के इतने अधिक सँस्करण नही हुये जितने भारत-भारती' के, काव्य की दृष्टि से वह उच्च कोटि का न हो, परतु उपयोगिता उसकी सर्व-स्वीकृत है। उनकी भाषा की शुद्धता की प्रशंसा है। वे निस्सन्देह शब्दो को शुद्ध रूप मे लिखते है। यद्यपि इससे उनकी भाषा प्राय क्लिष्ट हो जाती है। उन्होने 'साकेत' नामक एक महा-काव्य भी लिखा है जो प्रकाशित भी हो चुका है। उनकी रचना के समस्त गुण इस मे विद्यमान है। इस ग्रंथ मे भाषा की कोमलता, मधुरता और सरसता की ओर उनकी दृष्टि अधिक गयी है। इस लिये इसमे ये बाते अधिक मात्रा मे पायी जाती है। उन्होने कई खण्ड काव्य लिखे है। 'झंकार' नामक एक पुस्तिका भी उन्हो ने हाल मे प्रकाशित की है। यह पुस्तिका भी भाव, और भाषा दोनो की दृष्टि से सरस, सुन्दर और मधुर है। उनकी कुछ रचनायें नीचे लिखी जाती है —

१—इस शरीर की सकल शिरायें
हों तेरी तन्त्री के तार।

आघातों को क्या चिन्ता है
उठने दे उनकी झंकार।
नाचे नियति प्रकृति-सुर साधे
सब सुर हों शरीर साकार।
देश देश में काल काल में उठे
गमक गहरी गुंजार ।
कर प्रहार हाँ, कर प्रहार तू मार
नहीं यह तो है प्यार।
प्यारे और कहूं क्या तुझसे
प्रस्तुत हूं मैं हूं तैयार।
मेरे तार तार से तेरी तान तान
का हो विस्तार ।
अपनी अँगुली के धक्के से खोल
अखिल श्रुतियों के द्वार ।
ताल ताल पर भाल झुका कर
मोहित हों सब बारंबार ।
लय बँध जाय और क्रम क्रम से
सब में समा जाय संसार ।

२—तुम्हारी वीणा है अनमोल।
हे विराट जिसके दो तूंबे हैं भूगोल खगोल।
दयादण्ड पर न्यारे न्यारे चमक रहे हैं प्यारे प्यारे
कोटि गुणों के ताल तुम्हारे खुली प्रलय की खोल।
तुम्हारी वीणा है अनमोल।

हंसता है कोई रोता है जिसका जैसा मनहोता है
सब कोई सुध बुधखोता है क्या विचित्र हैं बोल।
तुम्हारी वीणा है अनमोल
इसे बजाते हो तुम जबलौं नाचेंगे हम सबभी तबलौं
चलने दो न कहो कुछ कबलौं यह क्रीड़ा-कल्लोल।
तुम्हारी वीणा है अनमोल

८—बाबू सियाराम शरण गुप्त बाबू मैथिली शरण गुप्त के लघुभ्राता है। वे भी सुन्दर कविता करते है। और वास्तव मे अपने ज्येष्ठ भ्राता की दूसरी मूर्त्ति है। वे उनके सहोदर तो है ही समान-हृदय भी है। उनकी रचना की विशेषता यह है कि उनकी पदावली कोमल एवं कान्त होती है। इस विषय में वे अपने बडे भाई से भी बडे है। उनकी रचना मे मार्मिकता के साथ मधुरता भी होती है। उन्होंने पॉच चारपद्य-ग्रंथो की रचना की है। उनकी भी समस्त रचनाये खडी बोली ही मे है। उनकी रचनाये थोडी भलेही हो, परन्तु खडी बोली की शोभा है। उनके कुछ पद्य देखिये —

जग में अब भी गूंज रहे हैं गीत हमारे।
शौर्य्य वीर्य्य गुण हुये न अब भी हमसेन्यारे।
रोम मिश्र चीनादि काँपते रहते सारे।
यूनानी तो अभी अभी हमसे हैं हारे।
सब हमें जानते हैं सदा भारतीय हम हैं अभय।
फिर एक बार हे विश्व तुम गाओ भारतकी विजय।

९—पंडित लोचन प्रसाद पाण्डेय मध्य प्रान्त के प्रसिद्ध कवि है। आपने छोटी बडी पचीस तीस गद्य पद्य-पुस्तके लिखी है। आप उडिया भाषा मे भी कविता करते है। मध्यप्रान्त जैसे दूर के निवासी हो कर भी उन्होंने खडी बोलचाल में सरस रचनाये की है। उनकी रचनाओ का आदर उनके प्रान्त

मे विशेष है और प्राय पाठशालाओ मे उनकी पुस्तके कोर्स के रूप मे गृहीत है। डाक्टर जी० ए० ग्रियर्सन ने भी उनकी कविता-पुस्तको की प्रशंसा की है। मध्य प्रदेश मे खडी बोली की कविता-सम्बन्धी जागर्त्ति उत्पन्न करने मे आप का विशेष हाथ है। इस विषय मे आपने अपनी कविता द्वारा भी विशेष प्रभाव डाला है। जैसा भावमय उनका हृदय है वैसी ही भावमयी उनकी भाषा। उनका पद विन्यास भी तुला हुआ और सरस होता है। भर्ती के शब्दो से वे बहुत बचते है। उनकी कविता मे ओज के साथ माधुर्य्य भी है और सहृदयता के साथ सामयिकता भी। उनके कुछ पद्य भी देखिये —

भोले भाले कृषक देश के अद्भुत बल हैं।
राज मुकुट के रत्न कृषक के श्रम के फल हैं।
कृषक देश के प्राण कृषक खेती की कल हैं।
राजदण्ड से अधिक मान के भाजन हल हैं।
हल की पूजा दिव्य देश गौरव-सम्बल है।
हल की पूजा सभ्य जाति का व्रत निर्मल है।
हल की पूजा देश शान्ति का नियम अचल है।
हल की पूजा भुक्ति मुक्ति का मार्ग विमल है।
कमल कुल छटा है लोचन प्राणहारी।
जिन पर करते हैं भृंग गुंजार प्यारी।
मधुमय बहती है माधव प्रीति धारा।
कब बन सकते हैं ये तुझे शान्तिद्वारा।
विधिवत् चलता है देख संसार सारा।
थकित कब हुई है लोक में कर्म-धारा।
दुख रज भय बाधा विश्व में है सदा से।
कब जग रुकता है एक की आपदा से।

१०—प० रूपनारायण पाण्डेय हिन्दी-संसार के प्रसिद्ध अनुवादक है। आप ने जितने ग्रन्थो का अनुवाद किया है उनकी संख्या पचास से भी ऊपर है। इस कार्य्य मे ये सिद्ध-हस्त है और ख्याति प्राप्त सहृदय है इस लिये सरस कविता भी करते है। आप की कुछ कविता-पुस्तकें छपी भी है और उनकी यथेष्ट प्रशंसा भी हो चुकी है। पहले ये ब्रजभाषा मे कविता करते थे, बाद खडी बोली के क्षेत्र मे आये और कीर्ति भी पायी। उनकी खडी बोली की कविता मे विशेषता यह है कि उसमे भावुकता तरङ्गायित मिलती है। उनका शब्द-विन्यास भी सुन्दर होता है जिसमे एक मधुर लचक पायी जाती है। कुछ पद्य ब्रजभाषा और खडी बोली दोनो के नीचे दिये जाते है—

सारद विसारद बिसारद को पारद
विरंचि हरि नारद अधीन कहियत है।
मण्डित भुजा मैं बर बीना है प्रवीना जू के
एक कर अभय बरादि गहियत है।
चहियत पद अवलम्ब अम्ब तेरे
पाय हरख कदम्ब ना बिलंब सहियत है।
हरन हजार दुख सुख के करन चारु
चरन सरन मैं सदा ही रहियत है।

बुद्धि विवेक की जोति बुझी
ममता मद मोह घटा घन घेरी।
है न सहारो अनेकन हैं
ठग पाप के पन्नग की रहै फेरी
त्यों अभिमान को कूप इतै
उतै कामना रूप सिलान की ढेरी।

तू मन मूढ सम्हारि चलै किन
राह न जानी है रैनि अँधेरी ।
अहह अधम आँधी आ गयी तू कहाँ से ।
प्रलय घन घटा सी छा गयी तू कहाँ से ।
पर दुख सुख तूने हा न देखा न भाला ।
कुसुम अधखिला ही हाय क्यों तोड़ डाला ।
तड़प तड़प माली अश्रु धारा बहाता ।
मलिन मलिनियाँ का दुःख देखा न जाता ।
निठुर फल मिला क्या व्यर्थ पीड़ा दिये से ।
इस नव लतिका की गोद सूनी किये से ।
सहृदय जन का जो कण्ठ का हार होता ।
मुदित मधुकरी का जीवनाधार होता ।
वह कुसुम रँगीला धूल में जा पड़ा है ।
नियति नियम तेरा भी बड़ा ही कड़ा है ।

११ – बाबू गोपालशरण सिंह ने खडी बोलचाल मे कवित्त और सवैयो की रचना कर थोडे ही समयमे अच्छी कीर्ति पायी है । खडी बोल-चाल के कवियो मे से कतिपय सुकवियो ने ही कवित्त और सवैयो की रचना कर सफलता लाभ की है । अधिकाश खडी बोली के अनुरक्त कवि कवित्त और सवैयो मे रचना पसन्द नहीं करते और रचना करने पर मफल भी नही होते । बाबू गोपालशरण सिंह की लेखनी ने यह दिखला दिया कि उक्त वर्ण वृत्तों मे भी खडी बोली की कविता उत्तमता के साथ हो सकती है । उन्हो ने अपनी रचनाओ मे खडी बोली की ऐसी मँजी भाषा लिखी है, जो उनकी कृति को मधुर और सरस तो बनाती ही है, हृदयग्राही भी कर देती है । वे शुद्ध भाषा लिखने की चेष्टा करते है । पर व्रजभाषा और अवधी के सुन्दर शब्दो का भी उपयुक्त स्थानो

पर प्रयोग करन मे संकोच नहीं करते । उन्हों ने अपनी कविताओ के संग्रह का नाम माधवी रक्खा है । मैं कहूंगा, उनकी कविता-पुस्तक का यह सार्थक नाम है। वास्तव मे वह मधुमयी है । उनके कुछ पद्य नीचे दिये जाते है —

बार बार मुख धनियों का नहीं देखता तू
झूठी चाटुकारी नहीं उनको सुनाता है ।
सुनता नहीं तू कटु वाक्य अभिमान सने ।
पीछे भी कदापि उनके नहीं तू धाता है ।
खाता है नवीन तृण तो भी तू समय में ही
सोता सुखसेही जब निद्राकाल आता है।
कौन ऐसा उग्र तप तूने था किया कुरङ्ग
जिस से स्वतंत्रता समान सुख पाता है ।

इस नादान निगोड़े मन को
किस प्रकार समझाऊँ ।
इसकी उलझन सुलझ न सकती
मैं कैसे सुलझाऊँ ।
स्वयं मुझे कुछ नहीं सूझना
क्या मैं इसे सुझाऊँ ।
बिना स्वाति जल के चातक की
किस विध प्यास बुझाऊँ।
होकर भी मैं विमन कहाँ
तक मनकी बात छिपाऊँ।
मन जिसके हित बिकल हो
रहा उसे कहाँ मैं पाऊँ।

है यह मचल रहा बालक सा
किस विधि मैं बहलाऊँ
इसके लिये कहाँ से मैं
वह चन्द्र खिलौना लाऊँ।

१२—मैं सुभद्रा कुमारी चौहान की चर्चा यहा गौरव पूर्वक करता हू। इसलिये कि उन्होने ही स्त्री-कवियो मे खडी बोली की रचना करने मे सफलता पाई। अभी हाल ही मे सुन्दर कृतिके लिये ५००) का सकसेरिया पुरस्कार साहित्य-सम्मेलन द्वारा उन्हे प्राप्त हुआ है। स्त्री सुलभ भाव उनकी कविताओ मे बडी सुन्दरतासे अंकित पाये जाते है। सामयिकताका विकास भी उनमे यथेष्ट देखा जाता है। उनकी भाषा अधिकाश सरल होती है, परन्तु सरस और मधुर। वाच्यार्थ उनका स्पष्ट है और भाव प्रकाशन-प्रणाली सुन्दर। वे क्षत्राणी है, इसलिये आवेश आने पर उनके हृदय से जो उद्‍गार निकलता है उसमे सच्ची वीरता झकृत मिलती है। कुछ पद्य नीचे दिये जाते है—

थीं मेरा आदर्श बालपन से
तुम मानिनि राधे।
तुम सी बन जाने को
मैंने व्रत नियमादिक साधे।
अपने को माना करती थी
मै बृषभानु किशोरी।
भाव गगन के कृष्णचन्द्र की
मैं थी चारु चकोरी।
बचपन गया नया रँग आया
और मिला यह प्यारा।

मैं राधा बन गयी न था वह
कृष्ण चन्द्र से न्यारा ।
किन्तु कृष्ण यदि कभी किसी
पर ज़रा प्रेम दिखलाता ।
नख सिख से तो जल जाती
खाना पीना नहिं भाता ।
मुझे बता दो मानिनि राधे
प्रीति रीति वह न्यारी ।
क्यों कर थी उस मन मोहन
पर निश्चल भक्ति तुम्हारी ।
ले आदर्श तुम्हारा मन को
रह रह समझाती हूं ।
किन्तु बदलते भाव न मेरे,
शान्ति नहीं पाती हूं ।

१२—प्रति शताब्दी मे कोई न कोई मुसलमान कवि हमको हिन्दी देवी की अर्चना करते दृष्टिगत होता है। हर्ष है इस शताब्दी के आरंभ मे ही हमको एक सहृदय मुसलमान सज्जन चिर-प्रचलित परम्परा की रक्षा करते दिखलायी देते है। वे है सैयद अमीर अली 'मीर' जो मध्यप्रान्त के निवासी है। पं० लोचन प्रसाद पाण्डेयके समान ये भी वहाँ प्रतिष्ठित हिन्दी भाषाके कवि माने जाते है। इनको पदवियां और पुरस्कार भी प्राप्त हुये है। ये प्राचीन हिन्दी-प्रेमी है। पहले व्रजभाषा मे कविता करते थे। अब वे समय देखकर खडी बोली की सेवा मे ही निरत है। इनकी खडी बोली की रचनाओ मे कोई विशेषता नहीं, परन्तु इनका खडी बोली की ओर आकर्षित होना ही उसको गौरवित बनाता है। उर्दू और फारसी मे सुशिक्षित होकर भी ये शुद्ध खड़ी बोली की हिन्दी मे रचना करके उसका सम्मान बढ़ाते है, यह कम आनन्द की बात नहीं, इनके कुछ पद्य देखिये।—

कोयल तू मन मोहि के गयो कौन से देस ।
तव अभाव में काग मुख लखनो परो भदेस ।
लखनो परो भदेस बेस तोही सो कारो ।
पै बोलत है बोल महा कर्कस कटु न्यारो ।
कहें मीर हे दैव काग को दूर करो दल ।
लाओ फेर बसन्त मनोहर बोलैं कोयल ।
आ गया प्यारा दसहरा छा गया उत्साह बल ।
मातृ पूजा पितृ पूजा शक्ति पूजा है बिमल ।
हिन्द में यह हिन्दुओं का विजय उत्सव है ललाम ।
शरद की इस सुऋतु में है खड्ग पूजा धाम धाम ।

इनके अतिरिक्त पं० जगदम्बा प्रसाद हितेषी, पं० अनूप शर्म्मा, बाबू द्वारिका प्रसाद रसिकेन्द्र इत्यादि अनेक कवि खडी बोली को सुन्दर रचनाये करने मे इस समय प्रसिद्ध है और उन लोगो ने कीर्ति भी पायी है ।

वर्तमान काल में व्रजभाषा की क्या दशा है, इस पर प्रकाश डालना भी आवश्यक जान पडता है । व्रजभाषा के जो कवि आज तक उसकी सेवा मे निरत है उनका स्मरण न करना अकृतज्ञता होगी । व्रजभाषा हो चाहे खडी बोली, दोनो ही हिन्दी भाषा है । अतएव व्रजभाषा देवी की अर्चना मे निरत सज्जन हिन्दी भाषा-सेवी ही है अन्य नहीं । उनकी अमूल्य रचनाये हिन्दी भाषा का ही शृंगार है और उनके अर्पण किये हुए रत्नो से हिन्दी भाषा का भाण्डार ही भर रहा है, इसको कौन अस्वीकार कर सकता है । व्रजभाषा के कुछ ऐसे अनन्य भक्त अब भी विद्यमान है जो उसकी कोमल कान्त पदावली ही के अनुरक्त है और इतने अनुरक्त है कि दूसरी भाषा की ओर आख उठा कर भी देखना नहीं चाहते । इनमे उल्लेख-योग्य बाबू जगन्नाथ दास रत्नाकर और पं० हरि प्रसाद द्विवेदी (उपनाम वियोगी हरि) है । इस शताब्दी मे ही ऐसे ही व्रजभाषा के एक

और अनन्य भक्त थे। परंतु दुःख है कि उनका स्वर्गवास हो गया। उनका नाम था पंडित सत्यनारायण उपाधि थी कविरत्न। वे बडे ही होनहार थे। परन्तु अकाल काल-कवलित हो जाने से वह सुधा-स्रोत बन्द हो गया जो प्रवाहित हो कर श्रोताओ मे सजीवन रस का सचार करता था। मै क्रमश इन तीनो कवियो के विमय मे कुछ लिख कर इनका परिचय आप लोगो को देना चाहता हू ॥

१—बाबू जगन्नाथ दास रत्नाकर की गणना इस समय के ब्रजभाषा के प्रसिद्ध कवियों मे है। वास्तव मे ब्रजभापा पर उनका बडा अधिकार है और वे उसमे बडी सुन्दर और सरस रचना करते है, उन्होने ब्रजभाषा के कई ग्रथ लिखे है, जिनमे 'गंगा-वतरण' अधिक प्रसिद्ध है। आप ग्रेजुएट है, फारसी भाषा का भी अच्छा ज्ञान रखते है। उर्दू शायरी अच्छी कर सकते है। खडो बोलचाल की कविता करने मे भी समर्थ है किन्तु ब्रजभाषा मे उनको कुछ ऐसी अनन्य भक्ति है कि वे अन्य भाषाओ मे रचना करना पसंद नही करते। उन के हृदय की यह प्रतिध्वनि है:—

"रह्यो उर में नाहिन ठौर।
नंद नंदन त्यागि कै उर आनिये केहि और।"
"ऊधो मन न भयो दस बीस।
इक मनहुतो स्याम सँग अटक्यो कौन भजै जगदीस।"

भगवान् कृष्णचन्द्र के प्रति गोपियो का जो भाव है वही भाव रत्नाकर जी का ब्रजभाषा के प्रति है। उनकी ब्रजभाषा की रचना मर्मभरी ओजस्विनी और सरस होती है। उन्होने आजन्म इसी भाषा की सेवा की है और अब तक इसी की समर्चना मे संलग्न है। उनके कुछ पद्य नीचे दिये जाते है -

बोधि बुधि बिधि के कमंडल उठावत ही
धाक सुर धुनि की धँसी यों घट घट मैं।

कहै रतनाकर सुरासुर ससंक सबै .
बिबस बिलोकत लिखे से चित्रपट मैं।
लोकपाल दौरन दसौ दिसि हहरि लागे
हरि लागे हेरन सुपात बर बट मैं।
खसन गिरीस लागे त्रसन नदीस लागे
ईस लागे कसन फनीस कटि तट मैं।

ढोंग जात्यो ढरकि हरकि उर सोग जात्यो
जोग जात्यो सरकि सकंप पँखियानि तें।
कहै रतनाकर न करते प्रपंच ऐंठि
बैठि धरा देखते कहूँधौ नखियानि तें।
रहते अदेख नहीं बेख वह देखत हूं
देखत हमारे जान मोर पखियानि तें।
ऊधो ब्रह्मज्ञान को बखान करते न नैकु
देखिलेत कान्ह जो हमारी अँखियानितें।

सीतल सुखद समीर धीर परिमल बगरावत।
कूजत विविध बिहंग मधुप गुंजत मनभावत।
वह सुगंध वह रंग ढंग की लखि चटकाई।
लगति चित्र सी नंदनादि बन की रुचिराई।

२—वियोगी हरिजी अपना जीवन प्राचीन भक्तो की प्रणालो से व्यतीत कर रहे है। व्रजभाषा की तदीयता के साथ उपासना करना और भगवद्भजन मे, देश-सेवा मे, सामयिक सुधारो के प्रचार मे निरत रहना ही इनका लक्ष्य है। वे गद्य-पद्य दोनो लिखने मे दक्ष है और दोनों ही में उन्होने कई एक सुन्दर ग्रंथों की रचना की है। 'वीर सतसई' उनका प्रसिद्ध ग्रन्थ है। साहित्य-सम्मेलन से उस पर उनको १२००) पुरस्कार

भी मिल चुका है। इस पुरस्कार को उन्होने साहित्य-सम्मेलन को ही अर्पण कर दिया, स्वयं नहीं लिया। उनका यह त्याग भी उनकी विरक्ति का सूचक है। उनकी व्रजभाषा की रचनाये अष्ट छाप के वैष्णवों के ढग की होती है, उनमे सरसता और सहृदयता भी प्रचुर मात्रा मे मिलती है। 'वीर सतसई' उनका आदर्श ग्रन्थ है। सामयिक गति पर दृष्टि रख कर उन्होंने इस ग्रन्थ मे जिस प्रकार देश और जाति की ऑखे खोली है, उसकी बहुत कुछ प्रशंसा की जा सकती है। लगभग उनकी अधिकाश रचनाये उपयोगिनी और भावमयी है। वर्त्तमान व्रजभाषा कवियो मे उनका भी विशेष स्थान है। कुछ कविताये नीचे लिखी जाती है —

जाके पान किये सबै जग-रस नीरस होत।
जयति सदा सो प्रेमरस उर आनन्द उदोत।
बैन थके तन मन थके थके सबै जग ठाट।
पै ये नैना नहि थके जोवत तेरो बाट।
प्रेम तिहारे ध्यान में रहे न तन को भान।
अँसुअन मग बहि जाय कुल कान मान अभिमान।
पावस ही में धनुष अब, नदी तीर ही तीर।
रोदन ही में लाल दृग नौरस ही में बीर।
जोरि नॉव सँग 'सिंह' पद करत सिंह बदनाम।
ह्वै हौ कैसे सिंह तुम करिस्रृगाल के काम।
या तेरी तरवार में नहि कायर अब आब।
दिल हूं तेरो बुझि गयो वामें नेक न ताब।

वियोगी हरि जो व्रजभाषा के अनन्य भक्त हो कर भी कभी कभी कुछ पद्य खडी बोली के भी लिख जाते है। दो ऐसे पद्य भी देखिये —

तू शशि मैं चकोर तू स्वाती मैं चातक तेरा प्यारे।
तू घन मैं मयूर तू दीपक मैं पतंग ऐ मतवारे।

तू धन मैं लोभी तू सर्वस मैं अति तुच्छ सखा तेरा।
सब प्रकार से परम सनेही मैं तेरा हूं तू मेरा।
देखी प्यारे गगन तल में लालिमा ज्यों प्रभा की।
धाया त्योहीं समझ कर मैं हाथ तेरे गहूंगा।
ठंडा होगा हृदय पर हा! नाथ धोखा दिया क्यों।
मेरा ही है रुधिर उसमें दुग्ध जो था बहाया।

३—जो फूल असमय कुम्हला कर सहृदय मात्र को व्यथित कर जाता है, पंडित सत्यनारायण कविरत्न वही प्रसून है। वे एक होनहार युवक थे और बडी तन्मयता के साथ ब्रजभाषा देवी की सेवा मे निरत थे। ब्रजभाषा से उनको इतना अधिक प्रेम था कि जब वे ब्रजभाषा की करुण कथा किसी सभा या किसी उत्सव मे अपने सुस्वर और सुमधुर कण्ठ से सुनाते तो सुनने वालो को मन्त्र-मुग्ध बना लेते थे। थोड़े ही समय मे उन्होने अच्छी ख्याति भी पायी। वे बी ए तक शिक्षा-प्राप्त थे और हिन्दी भाषा पर बडा अधिकार रखते थे। संस्कृत का ज्ञान भी उनका अच्छा था। जैसी उनकी रहन-सहन-प्रणाली सादी थी वैसा ही उनका जीवन भी सादा था। बडे विनीत थे, और नम्र भाव उनके हृदय का प्रधान सम्बल था। उनकी कविताओ मे उनका यह भाव स्फुटित होता रहता था। उन्होने कई संस्कृत नाटको का सरस ब्रजभाषा मे अनुवाद किया था, दो तीन उनके ब्रजभाषा के पद्य ग्रन्थ भी है। बडी सरस और टकसाली ब्रजभाषा लिखते थे। शुद्ध ब्रजभाषा लिखने की धुन मे कभी कभी ग्रामीण ब्रजभाषा शब्दो का प्रयोग भी कर जाते थे, जिससे कहीं कहीं उनकी रचना मे जैसी चाहिये वैसी सुबोधता नही रह जाती थी। ब्रजभाषा की सेवा के विषय मे उनके बहुत बडे बडे विचार थे किन्तु उसको पूर्ति किये बिना ही वे धराधाम से उठ गये। सच है man proposes God disposes, मेरे मन कछु और है, करता के मन और। उनकी कुछ कवितायें नीचे लिखी जाती है —

मृदु मंजु रसाल मनोहर मंजरी
मोर पखा सिर पै लहरैं ।
अलबेली नवेलिन बेलिन में
नव जीवन ज्योति छटा छहरैं ।
पिक भृंग सुगुंज सोई मुरली
सरसों सुभ पीत पटा फहरैं ।
रसवंत विनोद अनंत भरे
व्रजराज बसंत हिये बिहरैं ।
श्री राधाबर निज जन बाधा सकल नसावनि ।
जाकौ व्रजमन भावन जो व्रजकौ मन भावनि ।
रसिक सिरोमनि मन हरन निरमल नेह निकुंज ।
मोद भरन उर सुख करन अविचल आनँद पुंज ।

रँगीलो साँवरो ।

कंस मार भूभार उतारन खल दल तारन ।
विस्तारन विज्ञान विमल स्त्रुति सेतु सँवारन ।
जन मन रंजन सोहना गुन आगर चित चोर ।
भवभय भंजन मोहना नागर नंद किसोर ।

गयो ऊव द्वारिका ।

पावन सावन मास नई उनई घन पाँती ।
मुनि मन भाई छई रसमयी मंजुल काँती ।
सोहत सुन्दर चहुँ सजल सरिता पोखर ताल
लोल लोल तहँ अति अमल दादुर बोल रसाल ।

छटा चूई परे ।

अलबेली कहुं बेलि द्रुमन सों लिपटि सुहाई ।
धोये धोये पातन की अनुपम कमनाई ।
चातक सुक कोयल ललित बोलत मधुरे बोल ।
कूकि कूकि केको कलित कुंजन करत कलोल ।
निरखि घन की छटा ।

इंद्र धनुष अरु इंद्र बधूटिनि की सुचि सोभा ।
को जग जनम्यो मनुज जासु मन निरखि न लोभा ।
प्रिय पावन पावस लहरि लहलहान चहुँ ओर ।
छाई छबि छिति पै छहरि ताको ओर न छोर ।
लसै मन मोहना ।

४—इस खडी बोली के समुन्नत काल मे जिन युवको ने ब्रजभाषा की सेवा करना ही अपना ध्येय बना रक्खा है, जो उसकी कीर्ति-ध्वजा के उत्तोलन करने मे आज भी आनदानुभव करते है, उनमे पंडित रामशंकर शुक्ल एम० ए० प्रधान है । इन्होने प्रयाग मे ब्रजभाषा की हित-चेष्टा से एक रसिक मण्डल नामक संस्था ही स्थापित कर रक्खी है । वे और उनके लघु भ्राता पं० रामचन्द्र शुक्ल सरस उसकी वृद्धि करने और उसको प्रभाव शाली बनाने मे आज भी जी से यत्नवान है । सौभाग्य से उनको ब्रजभाषा प्रेमियो का एक दल भी प्राप्त हो गया है जो इस सत्कर्म मे उनकी यथेष्ट सहायता कर रहा है । इस दल मे डाक्टर राम-प्रसाद त्रिपाठी एम० ए० और पं० युगल किशोर 'जुगुलेश' बी० ए० ऐसे सहृदय और विद्वज्जन भी सम्मिलित है । त्रिपाठी जी इसके सभापति है और सच्ची लगन के साथ उसको समुन्नत बनाने मे सचेष्ट है । प० राम शंकर का उपनाम 'रसाल' है । वास्तव मे 'रसाल' रसाल और 'सरस' सरस है । इन दोनो बंधुओ को ब्रजभाषा की रचनाये सुन्दर सरस और भावमयी होती है । इन लोगो की विशेषता यह है कि ये लोग समय की गति पह-

चाहते है और ब्रजभाषा देवी का शृंगार सामयिक रुचि के अनुसार करना चाहते है। ये लोग दूर दूर तक कवि-सम्मेलनो मे जा कर ब्रजभाषा का रस आस्वादन बहुत बडी जनता को कराते है और ब्रजभाषा के उस अनुराग को सुरक्षित रखना चाहते है जो अब भी हिन्दी-प्रेमी जनता के हृदय मे वर्तमान है। 'सरस' जी का अभिमन्यु बध नामक एक काव्य-ग्रन्थ भी हाल मे निकला है। उसकी रचना ओजस्विनी और मनोहर है और उसमे सामयिक भावो का सफलता के साथ अनुकूल भाषा मे सुन्दर चित्रण है। जुगलेश' जी का भी 'श्रद्धांजलि नामक एक संग्रह ग्रन्थ निकल चुका है। उसकी कवितायें भी हृदय-ग्राहिणी और मनोमुग्धकर है। 'जुगलेश' और सरस' जी की कविता—पठन-शैली भी बहुत आकर्षक है। हम इस रसिक मण्डल की उन्नति के कामुक है। आशा है कि इन सहृदयो और ब्रजभाषा के सच्चे सेवको द्वारा वह यथेष्ट उन्नति लाभ कर सकेगा। 'रसाल' और सरस' की कुछ रचनाये नीचे लिखी जाती है —

१—जामैं न सुमन फैलि फूलत फबीले कहूं
जामैं गाँस फाँस को बिसाल जाल छायो है।
काया कूबरी है पोर पोर में पोलाई परी
जीवन बिफल जासु बिधि ने बनायो है।
ताहू पै दवारी बारि बंस-बंस नासिबे को
बिधि ने सकल बिधि ठाट ठहरायो है।
देखि हरियारी अपनायो ताहि बंसी करि
हरि ने रसाल अधरामृत पियायो है।

२—सुबरन स्यंदन पै सैलजा सुनंदन लौं
सुभट सुभद्रा सुत ठमकत आवै है।
'सरस' बखानै कर बीर बास पूरो किये
श्री हरि सिगार रस गमकत आवै है।

कैधों दिव्यदाम अभिराम आफताब आब
दाबतम तोम ताब तमकत आवै है ।
दमकत आवै चारु चोखो मुख मंद हास
कर बर चंद्रहाँस चमकत आवै है ।

५—आज दिन भी ब्रजभाषा के अनेक प्राचीन कवि जीवित है। खडी बोली की कविता करनेवालो मे भी अनेक कवि ऐसे है जो खडी बोली के साथ ब्रजभाषा की कविता करने मे प्रसिद्धि-प्राप्त है। अनेक युवको का प्रेम भी ब्रजभाषा के प्रति अब भी देखा जाता है और वे ब्रजभाषा की रचना करने मे ही आत्म-प्रसाद लाभ करते है। पडित गया प्रसाद शुक्ल 'सनेही' के नेतृत्व मे कानपुर मे भी ब्रजभाषा कविता की बहुत कुछ चर्चा पायी जाती है। उनकी मण्डली मे भी अनेक प्राचीन और नवयुवक जन ब्रजभाषा की सेवा के लिये आज भी कटिबद्ध है और तन्मयता के साथ अपने कर्तव्य का पालन कर रहे है। इसलिये यह नहीं कहा जा सकता कि ब्रजभाषा की ओर से सर्वथा हिन्दी-प्रेमियो को विरक्ति हो गयी है। 'सनेही' जी का एक सिद्धात है वे कहा करते है, जिस भाषा मे सुन्दर भाव मिले, जिस रचना मे कवित्व पाया जावे, जो सुन्दर, सरस पदावली का आधार हो उसका त्याग नही हो सकता। उनके इस विचार का उनकी मण्डलीवालो पर बडा प्रभाव है। और इस सूत्र से भी ब्रजभाषा को बडा सहारा मिल रहा है। यह स्वीकार करना पड़ेगा कि खडी बोलचाल की रचना का आजकल विशेष आदर है। कारण इसका यह है कि उसकी वही भाषा है जो गद्य की। उसमे सामयिकता भी अधिक है और वह समय की गति देख कर चल भी रही है। इसलिये उसे सफलता मिल रही है। फिर भी ब्रजभाषा अपना बहुत कुछ प्रभाव रखती है और आशा है, कि उसका यह प्रभाव अभी चिरकाल तक सुरक्षित रहेगा। आज दिन भी खडी बोली की कविता करनेवालो से ब्रजभाषा की कविता करने वालों की संख्या अधिक है।

इसी स्थान पर मैं ठाकुर गुरु भक्त सिंह बी० ए०, एल० एल० बी० की चर्चा भी आवश्यक समझता हूं। आप एक होनहार सुकवि हैं। आप की रचनाएं प्रकृति-निरीक्षण सम्बन्धिनी बिलकुल नये ढंगकी होती हैं। आपने अंगरेजी कवि वर्ड्सवर्थ का मार्ग ग्रहण किया है। प्राकृतिक छोटे से छोटे दृश्यों और पदार्थों का वर्णन वे बडी सहृदयता के साथ करते हैं। आप का भविष्य उज्ज्वल है। आप ने 'सरस सुमन' और 'कुसुम कुंज' नामक जिन दो ग्रंथों की रचना की है वे सरस और सुंदर हैं।

आज कल हिन्दी-संसार मे छाया-वाद की रचनाओं की ओर युवक दल की रुचि अधिकतर आकर्षित है। दस-बारह वर्ष पहले जो भावनायें कुछ थोडे से हृदयोंमे उदित हुई थी, इन दिनों वे इतनी प्रबल हो गयी हैं कि उन्हीं का उद्घोष चारों ओर श्रुति-गोचर हो रहा है। जिस नवयुवक कवि को देखिये आज वही उसकी ध्वनि के साथ अपना कण्ठस्वर मिलाने के लिये यत्नवान है। वास्तव बात यह है कि इस समय हिन्दी भाषा का कविता-क्षेत्र प्रति दिन छायावाद की रचना की ओर ही अग्रसर हो रहा है। इस विषय मे वाद-विवाद भी हो रहा है, तर्क-वितर्क भी चल रहे हैं, कुछ लोग उसके अनुकूल हैं, कुछ प्रतिकूल। कुछ उसको स्वर्गीय वस्तु समझते हैं और कुछ उसको कविता भी नहीं मानते। ये झगड़े हों, किन्तु यह सत्य है कि दिन दिन छायावाद की कविता का ही समादर बढ रहा है। यह देख कर यह स्वीकार करना पडता है कि उसमे कोई बात ऐसी अवश्य है जिससे उसकी उत्तरोत्तर वृद्धि हो रही है और अधिक लोगों के हृदय पर उसका अधिकार होता जाता है।

संस्कृत का एक सिद्धान्त है—'समयमेव करोति बलाबलम्'। समय ही बलप्रदान करता है और अबल बनाता है। मेरा बिचार है कि यह समय क्रान्ति का है। सब क्षेत्रों मे क्रान्ति उत्पन्न हो रही है तो कविता क्षेत्र मे क्रान्ति क्यों न उत्पन्न होती? दूसरी बात यह है कि आज कल योरोपीय बिचारों, भावों और भावनाओं का प्रवाह भारतवर्ष मे बह रहा है। जो कुछ विलायत में होता है उसका अनुकरण करने की चेष्टा यहां

की सुशिक्षित मण्डली द्वारा प्राय होती है। इस शताब्दी के आरम्भ मे ही रहस्यवाद की कविताओं का प्रचार योरप मे हुआ। उमर खय्याम की रुबाइयो का अनुवाद योरप को कई भाषाओं मे किया गया जिससे वहा की रहस्यवाद की रचनाओं को और अधिक प्रगति मिली। इन्ही दिनो भगवती वीणापाणि के वरपुत्र कवीन्द्र रवीन्द्र ने कबीर साहब की कुछ रहस्यवाद की रचनाओं का अँगरेजी अनुवाद प्रकाशित किया और उसकी भूमिका मे रहस्यवाद की रचनाओं पर बहुत कुछ प्रकाश डाला। इसके बाद उनकी गीताजलि के अँगरेजी अनुवाद का योरप मे बडा आदर हुआ और उनको नोबल प्राइज मिला। कवीन्द्र रवीन्द्र का योरप पर यदि इतना प्रभाव पडा तो उनकी जन्मभूमि पर क्यो न पडता। निदान उन्हीं की रचनाओ और कीर्ति-मालाओं का प्रभाव ऐसा हुआ कि हिन्दी भाषी प्रान्तवाले भी उनकी इस प्रकार की रचनाओं का अनुकरण करने के लिये लालायित हुए। उनकी रचनाओं का असर यहाँ की छायावाद की कविताओं पर स्पष्ट दृष्टिगत होता है। कुछ लोगो ने तो उनका पद्य का पद्य अपना बना लिया है।

हमारे प्रान्त के हिन्दी भाषाके कुछ प्राचीन ग्रथ ऐसे है जिनमे रहस्य-वाद की रचना पर्याप्त मात्रा मे पायी जाती है। ऐसी रचना उन लोगो की है जो अधिकतर सूफी सम्प्रदाय के थे। इस प्रकार की सबसे अधिक रचना कबीर साहब के ग्रंथो मे मिलती है। जायसी के 'पदमावत' और अखरावट' मे भी इस प्रकार की अधिक कवितायें है। यह स्पष्ट है कि इन दोनो की रचनाये सूफी प्रभाव से ही प्रभावित है। जायसी के अनुकरण मे बाद को जितने प्रबध-ग्रथ मुसलमान कवियो द्वारा लिखे गये है उनमे भी रहस्यवाद का रंग पाया जाता है। जब देखा गया कि इस प्रकार की रचनाये समय के अनुकूल है और वे प्रतिष्ठा का साधन बन सकती है तो कोई कारण नहीं था कि कुछ लोग उनकी ओर आकर्षित न होते। इस शताब्दी के आरम्भ मे सूफ़ियाना खयाल की जितनी उर्दू रचनाये हुई है उनका प्रभाव भी, ऐसे लोगो पर कम नहीं पडा इसके अतिरिक्त इस प्रकार की रचनाये शृंगाररस का नवीन संस्करण भी है।

जब देश मे देश-प्रेम का राग छिडा और ऐसी रचनाये होने लगीं जो सामयिक परिवर्त्तना के अनुकूल थी और शृंगार रस की कुत्सा होने लगी तो उसका छायावाद की रचना के रूप मे रूपान्तरित हो जाना स्वाभाविक था। एक और बात है। वह यह है कि जब वर्णनात्मक अथवा वस्तु प्रधान (Objective) रचनाओ का बाहुल्य हो जाता है तो उसकी प्रतिक्रिया भावात्मक अथवा भाव प्रधान (Subjective) रचनाओ के द्वारा हुये बिना नहीं रहती। दूसरी बात यह है कि व्यंजना और ध्वनि-प्रधान काव्य ही का साहित्य-क्षेत्र मे उच्च स्थान है। इसलिये चिन्ताशील मस्तिष्क और भाव प्रवण हृदय इस प्रकार की रचनाओं की ओर ही अधिक खिचता है। यह स्वाभाविकता भी है। क्योंकि वर्णनात्मक रचना मे तरलता होती है और भावात्मक रचनाओ मे गभीरता और मोहकता। ऐसी दशा मे इस प्रकार की रचनाओ की ओर कुछ भावुक एवं सहृदय जनो का प्रवृत्त हो जाना आश्चर्य्य जनक नही। क्योंकि प्रवृत्ति ही किसी कार्य का कारण होती है। छायावाद की कविताओं के विषय मे भी यही बात कही जा सकती है। 'छायावाद' शब्द कहाँ से कैसे आया इस बात की अब तक मीमासा न हो सकी। छायावाद के नाम से जो कविताये होती है उनको कोई हृदयवाद' कहता है और कोई प्रतिबिम्बवाद। अधिकतर लोगो ने छायावाद के स्थान पर रहस्यवाद कहने की सम्मति ही दी है। किन्तु अबतक तर्क-वितर्क चल रहा है और कोई यह निश्चित नहीं कर सका कि वास्तव मे नूतन प्रणाली की कविताओ को क्या कहा जाय। इस पर बहुत लेख लिखे जा चुके है, पर सर्व-सम्मति से कोई बात निश्चित नही की जा सकी। छायावाद की अनेक कविताये ऐसी है जिनको रहस्यवाद की कविता नही कह सकते, उनको हृदयवाद कहना भी उचित नही, क्योंकि उसमे अति व्याप्ति दोष है। कौन सी कविता ऐसी है जिससे हृदय का सम्बन्ध नहीं ? ऐसी अवस्था मे मेरा विचार है कि छायावाद' ही नाम नूतन प्रणाली की कविता का स्वीकार कर लिया जाय तो अनेक तर्कों का निराकरण हो जाता है। यह नाम बहुत प्रचलित है और व्यापक भी बन गया है।

रहस्य वाद शब्दमे एकप्रकारकी गंभीरता और गहनता है। उसमे एक ऐसे गंभीर भाव की ध्वनि है जो अनिर्वचनीय है और जिस पर एक ऐसा आवरण है जिसका हटाना सुगम नहो। किन्तु छायावाद' शब्द मे यह बात नहीं पायी जाती । उसमे कोई अज्ञेय दृष्टिगत न हो परन्तु कम से कम उसका प्रतिविम्ब मिलता है और कविकर्म के लिये इतना अवलम्बन अल्प नहो। इसलिये रहस्यवाद शब्द से छायावाद शब्द मे स्पष्टता और बोधगम्यता है। छायावादका अनेक अर्थ अपने विचारानुसार लोगो ने किया है। परन्तु मेरा विचार यह है कि जिस तत्व का स्पष्टीकरण असम्भव है, उसकी व्याप्त छाया का ग्रहण कर उसके विषय मे कुछ सोचना कहना अथवा सकेत करना असंगत नही। परमात्मा अचिन्तनीय हो, अव्यक्त हो, मन-वचन-अगोचर हो, परन्तु उसको सत्ता कुछ न कुछ अवश्य है। उसकी यही सत्ता ससार के वस्तुमात्र मे प्रतिबिम्बित और बिराजमान है । क्या उसके आधार से उसके विषय मे कुछ सोचना बिचारना युक्तिसंगत नहो। यदि युक्ति-संगत है तो इस प्रकार की रचनाओ को यदि छायावाद नाम दिया जावे तो क्या वह विडम्बना है? यह सत्य है कि वह अनिर्वचनीय तत्व अकल्पनीय एव मन बुद्धि चित्त से परे है, परन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि हम उसके विषयमे कुछ सोचविचार ही नही सकते। उसके अपरिमित और अनन्त गुणोको हम न कह सके यह दूसरी बात है, किन्तु उसके विषय मे हम कुछ कह ही नही सकते ऐसा नही कहा जा सकता। ससार-समुद्र अब तक बिना छाना हुआ पडा है। उसके अनन्त रत्न अब तक अज्ञातावस्था मे है। परन्तु फिर भी मनीषियो ने उसकी अनेक विभूतियो का ज्ञान प्राप्त किया है। जिससे एक ओर मनुष्यो को सासारिक और आध्यात्मिक कई शक्तिया प्राप्त हुई और दूसरी ओर संसार के तत्वो का विशेष ज्ञान प्राप्त करने को जिज्ञासा और जाग्रत् हो गयी। उस परम तत्व के विषय मे भी येही बात कही जा सकती है। मेरे कथन का अभिप्राय यह है कि छायावाद शब्द कीव्याख्या यदि कथित रूप मे ग्रहण की जाय तो उसके नाम की सार्थकता मे व्याघात उपस्थित न होगा। मेरी इन बातो को सुन कर कहा जा सकता है कि यह तो छायावाद को

रूपान्तर से रहस्यवाद का पर्य्यायवाची शब्द बनाना है। फिर रहस्यवाद शब्द ही क्यों न ग्रहण कर लिया जावे छायावाद शब्द की क्लिष्ट कल्पना क्यों की जावे? ईश्वर-सम्बन्धी विषयों के लिये यह कथन ठीक है। परन्तु सामाजिक अनेक विषय और तत्व ऐसे है कि छायावाद की कविता मे जिनका वर्णन और निरूपण होताहै। उन वर्णनों और निरूपणों को रहस्य-वाद की रचना नही कहा जा सकता। मै समझता हू इस प्रकार की कविताओं और वर्णनों के लिये ही छायावाद नाम की कल्पना की गयी है। दूसरी बात यह है कि 'छायावाद' कहने से आजकल जिस प्रकार की कविता का बोध होता है वह बोध ही छायावाद का अर्थ क्यों न मान लिया जावे? मेरा विचार यह है कि ऐसा मान लेने मे कोई आपत्ति नही। अनेक रूढि शब्दों की उत्पत्ति इसी प्रकार हुई है। आइए एक दूसरे मार्ग से इस पर और विचार करे।

प्रात काल फूल हँसते है। क्यों हँसते है? यह कौन जाने। वे रंग लाते है महकते है, मोती जैसी बूँदों से अपनी प्यास बुझाते है सुनहले तारों से सजते है किस लिये! यह कौन बतलावे। एक काला-कलूटा आता है, नाचता है, गीत गाता है भाँवरे भरता है झुकता है, उनके कानों मे न जाने क्या क्या कहता है रस लेता है और झूमता हुआ आगे बढता है क्यों? रंग-बिरंगी साडियाँ पहने, ताकती झाँकती अठखे-लियाँ करती एक रंगीली आती है उनसे हिलती मिलती है रंग रलियाँ मनाती है, उन्हे प्यार करती है, फिर यह गई वह गई, कहा गई? कौन कहे। कोई इन बातों का ठीक ठीक उत्तर नही दे सकता। अपने मन की सभी सुनाता है पर पते की बात किसने कही। आँख उठा कर देखिये, इधर उधर, हमारे आगे पाछे, पल पल ऐसी अनन्त लीलाये होती रहती है परन्तु भेद का परदा उठानेवाले कहाँ है? यह तो बहिर्जगत की बाते हुई। अन्तर्जगत और विलक्षण है वहाँ एक ऐसा खिलाडी है जो हवा को हवा बताता है, पानीमे आग लगाता है, आसमानके तारे तोडता है, आग चबाता है धरती को धूल मे मिलाता है, स्वर्ग मे फिरता है, नन्दनबन के फूल चुनता है और वैकुण्ठ मे बैठ कर ऐसी हसी हँसता है कि जिधर देखो

उधर बिजली कौंधने लगती है। संसार उसकी कल्पना है कार्यकलाप, केलि और उत्थान पतन रग-रहस्य। उसके तन नही परन्तु भव का ताना बाना उसी के हाथो का खेल है। वह अंधा है किन्तु वही तीनों लोक की आँखो का उँजाला है। वह देवतो के दाँत खट्टे करता है, लोक को उँगलियों पर नचाता है और उन गुत्थियों को सुलझाता है, जिनका सुलझाना हँसी खेल नही। जहाँ वह रहता है वहाँ की वेदनाओं मे मधुरिमा है, ज्वालाओं मे सुधा है नीरवता मे राग है, कुलिशता मे सुमनता है और है गहनता मे सुलभता। वहाँ चन्द्र नहीं, सूर्य्य नही तारे नहीं, किन्तु वहाँ का आलोक विश्वालोक है। वहाँ बिना तार की तन्त्री बजती है, बिना स्वर का आलाप होता है, बिना बादल रस बरसता है। और बिना रूप रंग के ऐसे मनोहर अनन्त प्रसून विकसित होते है कि जिनके सौरभ से संसार सौरभित रहता है। वहिर्जगत और अन्तर्जगत का यह रहस्य है। इनका सूत्र जिसके हाथ मे है, उसकी बात ही क्या! उसके विषय मे मुँह नही खोला जा सकता। जिसने जीभ हिलाई उसी को मुँह की खानी पडी। वहुतों ने सर मारा पर सब सर पकड के ही रह गये।

सब सही, पर रहस्यभेद का भी कुछ आनन्द है। यदि समुद्र की अगाधता देख कर लोग किनारा करलेते तो चमकते मुक्ता दाम हाथ न आते। पहाडो की दुर्गमता विचार कर हाथ पाँव डाल देते तो रत्न-राजि से अलंकृत न हो सकते। लोक ललाम लोकातीत हो उसकी लीलाये लोकोत्तर हों उनको लोचन न अवलोक सके, गिरा न गा सके। उनके प्रवाह मे पड कर विचार धारा डूब जावे मतितरी भग्न हो और प्रतिभा विलीन। किन्तु उनके अवलम्बन भी तो वे ही है। उनका मनन चिन्तन, अवलोकन ही तो उनके जीवन का आनन्द है। आकाश असीम हो, अनन्त हो तो हो, खगकुल को इन प्रपंचो से क्या काम? वह तो पर खोलेगा और जी भर उसमे उडेगा। उसके लिये यह सुख अल्प नही। पारावार अपार हो, लाखो मीलो मे फैला हो अतल स्पर्शी हो मीन को इससे प्रयोजन नहीं। वह जितनी दूर मे केलि करता फिरता है उछलता

रहता है उतना ही उसका सर्वस्व है और वही उसका जीवन और अवलम्बन है। मनुष्य भी अपने भावानुकूल लोक ललाम की कल्पना करता है संसार के विकास मे, उसकी विभूतियों मे उस लीलामय की लीलाये देखता, मुग्ध होता और अलौकिक आनन्दानुभव करता है। क्या इसमे उसके जीवन को सार्थकता नहीं है ? मनुष्यो मे जो विशेष भावुक होते है, वे अपनी भावुकता को जिह्वा परभी लाते है, उसको सुमनोपम कान्त पदावली द्वारा सजाते है तरह तरह के विचार-सूत्र मे गूथते है और फिर उसे सहृदयता सुन्दरी के गले का हार बनाते है। इस कला मे जो जितना पटु होता है, कार्य्य-क्षेत्र मे उसको उतनी हो सफलता हाथ आती है। उसकी कृतिया भी उतनी हो हृदय-ग्राहिणो और सार्वजनीन होती है। इसलिये परिणाम भी भिन्न भिन्न होता है। जो जितना ही आवरण हटाता है, जितना ही विषय को स्पष्ट करता है, जितना ही दुर्बोधता और जटिलताओ का निवारण करता है, वह उतना ही सफलीभूत और कृत कार्य समझा जाता है। यह सच है कि ऐसे भाग्यशाली सब नहीं होते। समुद्र मे उतर कर सभी लोग मौक्तिक ले कर ऊपर नहीं उठते। अधिकाश लोग घोंघे, सिवार पाकर ही रह जाते है। किन्तु इससे उद्योग शीलता और अनुशीलन परायणता को व्याघात नही पहुँचता। रहस्य की ओर सकेत किया जा सकता है। उसका आभास सामने लाया जा सकता है हृदय-दर्पण पर जो प्रतिविम्ब पडता है अन्तर्दृष्टि उसकी ओर खींची जा सकती है क्या यह कम सफलता है ? मनुष्य की जितनी शक्ति है उस शक्ति से यथार्थ रीति से, काम लेने से मनुष्यताकी चरितार्थता हो जाती है और चाहिये क्या ? रहस्य-भेद किसने किया ? परमात्मा को ला कर जनता के सामने कौन खडा कर सका ? तथापि संसार के जितने महज्जन है, उन्होने अपने कर्त्तव्य का पालन किया जिससे अनेक गुत्थिया सुलझीं। अब भी उद्योग करने से और वुद्धि से यथार्थता पूर्वक कार्य लेने से कितनी गुत्थिया सुलझ सकती है। इन गुत्थियोंके सुलझानेमे आनन्द है, तृप्ति है और है वह अलौकिक फल-लाभ जिससे मनुष्य जीवन स्वर्गीय बन जाता है। रहस्यवादकी रचनाओंकी ओर प्रवृत्त होनेका उद्देश्य यही है। जो लोग इस तत्वको यथार्थ

रीतिसे समझ कर उसकी ओर अग्रसर होते है वे वन्दनीय है और उनकी कार्य्यावली अभिनन्दनीय है। उनका विरोध नही किया जा सकता। आधिभौतिक और आध्यात्मिक जितने कार्य्य-कलाप है उनका यथातथ्य ज्ञान एक प्रकार से असम्भव है। परन्तु उसकी कुछ न कुछ छाया या प्रतिबिम्ब प्रत्येक हृदय दर्पण मे यथा समय पडता रहता है। कही यह छाया धुँधली होती है, कहीं उससे स्पष्ट, कहीं अधिकतर स्पष्ट। इसी का वर्णन अनुभूति और मेधा-शक्ति-द्वारा होता आया है अब भी हो रहा है, और आगे भी होगा। इन अनुभूतियो का प्रकाश वचन-रचना द्वारा करना प्रशंसनीय है, निन्दनीय नहीं। चाहे उसको रहस्यवाद कहा जावे अथवा छाया वाद। इसका प्राचीन नाम रहस्यवाद ही है, जिसे अँगरेजी मे (mysticism) मिस्टिसिज्म कहते है। उसी का साधारण सँस्करण छायावाद है। अतएव उस पर अधिक तर्क वितर्क उचित नही, उसके मार्ग को प्रशस्त और सुन्दर बनाना ही अच्छा है।

अब तक मैंने जो निवेदन किया है उसका यह अभिप्राय नहीं है कि छायावाद के नाम पर जो अनर्गल और बेसिर पैर की रचनाये हो रही है, मै उनको प्रश्रय दे रहा हू। मेरे कथन का यह प्रयोजन है कि गुण का आदर अवश्य होना चाहिये। अनर्गल प्रलाप कभी अभिनन्दनीय नहीं रहा उसका जीवन क्षणिक होता है, और थोड़े ही समय मे अपने आप वह नष्ट हो जाता है। दूसरी बात यह कि सच्चे समालोचक और सत्समालोचना का कार्य्य ही क्या है? यही न कि साहित्य से उसकी बुराइया दूर की जावे और जो भ्रान्त है उनको पथ पर लगाया जावे जो चूके है उनको सुधारा जावे और साहित्यमे जो कूडा-करकट हो उसको निकाल बाहर किया जावे। दोष-गुण सब मे है, गुण का ग्रहण और दोष का संशोधन एव परिमार्जन ही वाछनीय है। छायावाद की अनेक रचनाये मुझ को अत्यन्त प्रिय है और मै उन्हे बड़े आदर की दृष्टि से देखता हू। जिनमे सरस ध्वनि और व्यंजना है उनका आदर कौन सहृदय न करेगा? क्या काँटो के भय से फूल का त्याग किया जावेगा। यह भी मै मुक्त कंठ से कहता हू कि छाया-

वादी कवियों ने खड़ी बोलचाल की कर्कशता और क्लिष्टता को बहुत कम कर दिया है। जैसे प्राचीन खड़ी बोली की रचनाओं का यह गुण है कि उन्होंने भाषा को बहुत परिमार्जित और शुद्ध बना दिया, उसी प्रकार छायावादी कविता का यह गुण है कि उसने कोमल कान्त पदावली ग्रहण कर खड़ी बोलचाल की कविता के उस दोष को दूर कर दिया जो सहृदय जनों को काँटों की तरह खटक रहा था।

संसार में जितनी विद्यायें हैं सब नियम-बद्ध हैं जितनी कलायें हैं सब सीखनी पड़ती हैं। उनकी भी रीति और पद्धति है। उनकी उपेक्षा करना विद्या और कला को आघात पहुंचाना है। साहित्य का सम्बन्ध विद्या और कला दोनों से है। इस लिये जो उसकी पद्धतियाँ हैं उनका त्याग नहीं किया जा सकता। उनको परिवर्त्तित रूप में ग्रहण करें अथवा मुख्य रूप में परन्तु उनके ग्रहण से ही कार्य्य-सिद्धि-पथ प्रशस्त हो सकता है। साहित्य यदि साध्य है तो नियम उसके साधन हैं। इस लिये उनको अनावश्यक नहीं कहा जा सकता। प्रत्येक प्रतिभावान पुरुष नई उद्भावनायें कर सकता है, और ये उद्भावनायें भी साधनाओं में गिनी जा सकती हैं। परन्तु उनका उद्देश्य साध्य मूलक होगा अन्यथा वे उद्भावनायें उपयोगिनी न होंगी। गद्य लिखने के लिये छन्द की आवश्यकता नहीं। किन्तु पद्य लिखें और यह कहें कि छन्द प्रणाली बिलकुल व्यर्थ है तो क्या यह कहना यथार्थ होगा? यदि छन्द प्रणाली व्यर्थ है तो पद्य-रचना हुई कैसे? कुछ नियमित अक्षरों और मात्राओं में जो रचना होती है वही तो पद्य कहलाता है। यह दूसरी बात है कि पद्य की पंक्तियों और अक्षरों की गणना प्रथम उद्भावित छन्द—प्रणाली से भिन्न हो। किन्तु वह भी है छन्द ही, कोई अन्य वस्तु नहीं ऐसी अवस्था में छन्द की कुत्सा करना मूल पर ही कुठाराघात करना है और उसी डाल को काटना है जो उसकी अवलम्बन स्वरूपा है। ऐसी ही बातें साहित्य के और अंगों के विषय में भी कही जा सकती हैं। हिन्दी साहित्य का जो वर्त्तमान रूप है वह अनेक प्रतिभावान पुरुषों की चिन्ताशीलता का ही परिणाम है। वह क्रमशः उन्नत होता और सुधरता आया है और नयी नयी उद्भावनाओं से भी लाभ उठाता

आया है। अब भी इस विषय मे वह बहुत कुछ गौरवित हो सकता है, यदि उसका सुदृष्टि से देखा जाय। चाहिये यही कि उसका मार्ग और सुदर बनाया जावे न यह कि उसमे कॉंटे बिछाये जावे और उच्छृङ्खलता को स्वतंत्रता कह कर उसकी बची-खुची प्रतिष्ठा को भी पद-दलित किया जावे। परमात्माने जिसको प्रतिभा दी है कविता शक्ति दी है, विद्वत्ता दी है और प्रदान की है वह मनोमोहिनी उक्ति जो हृदयों मे सुधाधारा बहाती है वह अवश्य राका-मयंक के समान चमकेगा और उसकी कीर्ति कौमुदी से साहित्य-गगन जगमगा उठेगा और वे तारे जो चिरकाल से गगन को सुशोभित करते आये है अपने आप उसके सामने मलान हो जावेगे। वह क्यो ऐसा सोचे कि आकाश के तारक-चयको ज्योति-विहीन बना कर ही हम विकास प्राप्त कर सकेगे। हिन्दी साहित्य की वर्तमान परिस्थिति को देख कर मुझको ये कतिपय पंक्तियॉं लिखनी पडीं। मेरा अभिप्राय यह है कि साहित्य-क्षेत्र मे जो अवाछनीय असंयत भाव देखा जा रहा है उसकी ओर हमारे भगवती वीणापाणि के वर पुत्र देखे और वह पथ ग्रहण करे जिसमे सरसता से बहती हुई साहित्य-रस की धारा आविल होने से बचे और उनके 'छायावाद' की रचनाओं को वह महत्व प्राप्त हो जो वाछनीय है।

यह देखा जाता है कि युवकदल अधिकतर आजकल छायावाद की रचनाओं की ओर आकर्षित है। युवक-दल ही समाज का नेता है वही भविष्य को बनाता है और सफलता की कुंजी उसी के हाथ मे होती है। उसके छायावाद की ओर खिच जानेसे उसका भविष्य बडा उज्ज्वल है, किन्तु उसको यह विचारना होगा कि क्या हिन्दी भाषा के चिर-संचित भाडार को ध्वंस करके और उस भाण्डार के धन के सञ्चय करने वालो की कीर्ति को लोप कर के ही यह उज्ज्वलता प्राप्त होगी? इतिहास यह नहीं बतलाता। जो रत्न हमारी सफलता का सम्बल है, उसको फेक कर हमारी इष्ट-सिद्धि नही हो सकती। भविष्य बनाने के लिये वर्तमान आवश्यक है परन्तु भूत पर भी दृष्टि होनी चाहिये। हम योग्य न हो और योग्य बनने का दावा करे, हमारा ज्ञान अधूरा हो और हम बहुत बडे ज्ञानी होने की डीग हॉंके, हम कवि पुंगव होने का गर्व करे और साधारण कवि होने की भी योग्यता न

रक्ख, छायावाद की कविता लिखे और यह जाने भी नही कि कविता किसे कहते है, धूल उडावे प्राचीन कविवरो की और करने बैठे कवि-कर्म्म की मिट्टी पलीद, तो बताइये हमारी क्या दशा होगी ? हम स्वयं तो मुँह की खायेंगे ही, छायावाद की आँखे भी नीची करेंगे । आजकल छायावाद के नाम पर कुछ उत्साही युवक ऐसी ही लीला कर रहे है । मेरी उनसे यह प्रार्थना है कि यदि उनमे छायावाद का सच्चा अनुराग है तो अपने हृदय मे वे उस ज्योति की छाया पडने दे, जिससे उनका मुख उज्ज्वल हो और 'छायावाद' का सुन्दर कविताक्षेत्र उद्भासित हो उठे । मेरा विचार है कि छायावाद कविता-प्रणाली का भविष्य बहुत उज्ज्वल है । जैसे पावस का तमोमय पंकिल काल व्यतीत होनेपर ज्योतिर्मय स्वच्छ शरद ऋतु का विकास होता है वैसे ही जो न्यूनताये 'छायावाद के क्षेत्र मे इस समय विद्यमान है वे दूर होंगी और वह वाछनीय पूर्णता को प्राप्त होगी । किंतु यह तभी होगा जब युवक-दल अपनी इष्ट-सिद्धि के लिये भगवती वीणापाणि की सच्ची आराधना के लिये कटिबद्ध होगा ।

किसी किसी छायावादी कवि का यह विचार है कि जो कुछ तत्व है वह छायावाद को कविता ही मे है । कविता-सम्बन्धी और जितने विभाग है वे तुच्छ ही नहीं, तुच्छातितुच्छ है और उनमे कोई सार नहीं । अपना विचार प्रगट करने का अधिकार सब को है, किन्तु विचार प्रगट करने के समय तथ्य को हाथ से न जाने देना चाहिये । जो छायावाद के अथवा रहस्यवाद के आचार्य कहे जाते है, क्या उन्हों ने आजीवन रहस्यवाद की ही रचना की ? प्राचीन कवियों मे ही हम प्रसिद्ध रहस्यवादी कबीर और जायसी को ले ले तो हमे ज्ञात हो जायेगा कि सौ पद्यो मे यदि दस पॉच रचनाये उनकी रहस्यवाद की है तो शेष रचनाये अन्य विषयों की । क्या उनकी ये रचनाये निन्दनीय अनुपयुक्त तथा अनुपयोगी है ! नहीं, उपयोगी है और अपने स्थान पर उतनी ही अभिनन्दनीय है जितनी रहस्यवाद की रचनाये । एक देशीय ज्ञान अपूर्ण होता है और एकदेशीय विचार अव्यापक । जैसे शरीर के सब अंगो का उपयोग अपने अपने स्थानो पर

है, जैसे किसी हरे वृक्ष का प्रत्येक अंश उसके जीवन का साधन है, उसी प्रकार साहित्य तभी पुष्ट होता है जब उसमे सब प्रकार की रचनायें पायी जाती है, क्योकि उन सब का उपयोग यथा स्थान होता है। जो कविता आन्तरिक प्रेरणा से लिखी जाती है जिसमें हृतंत्री की झंकार मिलती है, भावोच्छ्वासका विकास पाया जाता है, जिसमे सहृदयता है, सुन्दर कल्पना है, प्रतिभा तरंगायित है, जिसका वाच्यार्थ स्पष्ट है, सरल है, सुबोध है, वही सच्ची कविता है, चाहे जिस विषय पर लिखी गयी हो और चाहे जिस भाषामे हो। कौन उसका सम्मान न करेगा और कहाँ वह आदृत न होगी ? कवि हृदय को उदार होना चाहिये, वृथा पक्षपात और खींच तान मे पड कर उसको अपनी उदात्त वृत्ति को संकुचित न करना चाहिये। मेरा कथन इतना ही है कि एक देशीय विचार अच्छा नही, उसको व्यापक होना चाहिये। किसी फूल मे रंग होता है, किसी को गठन अच्छी होती है, किसी का विकास सुन्दर होता है, किसी मे सुगन्धि पाई जाती है— सब बात सब फूलो मे नहीं मिलती। कोई ही फूल ऐसा होता है जिसमे सब गुण पाये जाते है। जिस फूल मे सब गुण है, यह कौन न कहेगा कि वह विशेष आदरणीय है। परन्तु अन्यों का भी कुछ स्थान है और उपयोग भी। इस लिये जिसमे जो विशेषता है वह स्वीकार-योग्य है, उपेक्षणीय नहीं। कला का आदर कला की दृष्टि से होना चाहिये। यदि उसमे उपयोगिता मिल जावे तो क्या कहना। तब उसमे सोना और सुगंध-वाली कहावत चरितार्थ हो जाती है।

कवि-कर्म्म का विशेष गुण वाच्यार्थ की स्पष्टता है। प्रसाद गुणमयी कविता ही उत्तम समझी जाती है। वैदर्भी वृत्ति का ही गुण गान अबतक होता आया है। किन्तु यह देखा जाता है कि छायावादी कुछ कवि इसकी उपेक्षा करते है और जान बूझ कर अपनी रचनाओ को जटिल से जटिल बनाते है, केवल इस विचार से कि लोग उसको पढ कर यह समझे कि उनकी कविता मे कोई गूढ तत्व निहित है, और इस प्रकार उनको उच्च कोटि का रहस्यवादी कवि होनेका गौरव प्राप्त हो। ऐसा इस कारण से भी होता है कि

किसी किसी का भावोच्छ्वास उनको उस प्रकार की रचना करने के लिये बाध्य करता है। वे अपने विचारानुसार उसको बोधगम्य ही समझते है पर भाव-प्रकाशन मे अस्पष्टता रह जाने के कारण उनकी रचना जटिल बन जाती है। कवि-कर्म्म की दृष्टि से यह दोष है। इससे बचना चाहिये। यह सच है कि गूढता भी कविता का एक अग है। गम्भीर विषयो का वर्णन करने मे या अज्ञेयवाद की ओर आकर्षित हो कर अनुभूत अंशो के निरूपण करने मे गूढता अवश्य आ जाती है किन्तु उसको बोधगम्य अवश्य होना चाहिये। यह नही कि कवि स्वय अपनी कविता का अर्थ करने मे असमर्थ हो। वर्त्तमान काल की अनेक छायावादी कवितायें ऐसी है कि जिनका अर्थ करना यदि असंभव नहीं तो वहु कष्ट साध्य अवश्य है। मेरा विचार है इससे छायावाद का पथ प्रशस्त होने के स्थान पर अप्रशस्त होता जाता है। यह स्वीकार करना पडेगा कि कविता मे कुछ ऐसी गिरह होनी चाहिये जिसके खोलने को नौबत आवे। जो कविता बिलकुल खुली होती है उसमे वह आनद नही प्राप्त होता, जो गिरह वाली कविता की गुत्थी सुलझाने पर मिलता है। किन्तु यह गिरह या गाँठ दिल-की गाँठ न हो जिसमे रस का अभाव होता है। सुनिये एक सुकवि क्या कहता है—

सम्मन रस की खानि, सो हम देखा ऊख में।
ताहू में एक हानि, जहाँ गाँठ तहँ रस नहीं।

कविता यदि द्राक्षा न बन सके तो रसाल हो बने नारिकेल कदापि नहो। साहित्य-मर्मज्ञों की यही सम्मति है। किसी किसी का यह कथन है कि भावावेश कितनो को दुरूहतर कविता करने के लिये वाध्य करता है। मेरा निवेदन यह है कि वह भावावेश किस काम का जो कविता के भाव को अभाव मे परिणत करदे। भावुकता और सहृदयता की सार्थकता तभी है जब वह असहृदय को भी सहृदय बना ले। जिसने सहृदय को असहृदय बना दिया वह भावुकता और सहृदयता क्या है, इसे सहृदय जनही समझें।

छायावाद की कवितायें व्यंजना और ध्वनि-प्रधान होती है। वाच्यार्थ से जहा व्यंजना प्रधान हो जाती है वही ध्वनि कहलाती है। छायावाद को

कविता मे इसको अधिकता मिलती है। इसी लिये वह अधिक हृदय-ग्राहिणी हो जाती है। छायावादी कवि किसी बात को बिलकुल खोल कर नहीं कहना चाहते। वे उसको इस प्रकार से कहते है जिससे उसमे एक ऐसी युक्ति पायी जाती है जो हृदय को अपनी ओर खींच लेती है। वे जिस विषय का वर्णन करते है उसकी ऊपरी बातो का वर्णन कर के ही तुष्ट नहीं होते। वे उसके भीतर घुसते हैं और उससे सम्बन्ध रखनेवाली तात्विक बातो को इस सुदरतासे अकित करते है, जिससे उनकी रचना मुग्धकारिणी बन जाती है। वे अपनी आन्तरिक वृत्तियो को कभी साकार मान कर इनकी बाते एक नायक नायिका की भाति कहते है कभी सासारिक दृश्य पदार्थों को लेकर उसमे कल्पना का विस्तार करते हैं और उसको किसी देव-दुर्लभ वस्तु अथवा किसी व्यक्ति-विशेषके समान अकित करते है। कभी वे अपनी ही सत्ता को प्रत्येक पदार्थ मे देखते है और उसके आधार से अपने समस्त आन्तरिक उद्गारोको प्रकट करते है। उनकी वेदनाये तडपती है रोती-कलपती है, कभी मूर्तिमयी आह बन जाती है, और कभी जलधरके समान अजस्र अश्रु विसर्जन करने लगती है। उनकी नीरवता मे राग है, उनके अन्धकार मे अलौकिक आलोक और उनकी निराशामे अद्भुत आशा का संचार। वे ससीम मे असीम को देखते है, बिन्दु मे समुद्र की कल्पना करते है, और आकाश मे उडने के लिये अपने विचारो को पर लगा देते है। आलोकमयी रजनी को कलित कौमुदी की साडी पहिना कर, और तारकावली की मुक्त माला से सुसज्जित कर, जब उसे चन्द्रमुख से सुधा बरसाते हुये वे किसी लोकरजन की ओर गमन करते अंकित करते है, तो उसमे एक लोकरंजिनी नायिका-सम्बन्धिनी समस्त लीलाओ और कलाओं को कल्पना कर देते है, और इस प्रकार अपनी रचनाओ को लालित्य मय बना देते है। उनकी प्रतिभा विश्वजनीन भावो की ओर कभी मन्थर गति से, कभी बड़े बेग से गमन करती है और उनके समागम से ऐसा रस सृजन करती है, जो अनेक रसिकों के हृदय में मन्द मन्द प्रवाहित हो कर उसे स्वर्गीय सुख का आस्वादन कराती है। थोड़े मे यह कहा जा सकता है कि उनकी रचना अधिकतर भाव प्रधान (Subjective)

होती है वस्तुप्रधान (objective) नही। इसीसे उसमे सरसता, मधुरता और मन मोहकता होती है। मैने उनके लक्ष्य की ही बात कही है। मेरे कथन का यह अभिप्राय नही कि छायावाद के नाम पर जितने कविता करनेवाले है, उनको इस लक्ष्य की ओर गमन करने मे पूरी सफलता मिलती है। छायावाद के कुछ प्रसिद्ध कवि ही इस लक्ष्य को सामने रख कर अपनी रचना को तदनुकूल बनाने मे कुछ सफल हो सके है। अन्यो के लिये अब तक वह वेसा ही है जैसा किसी बामन का चन्द्रमा को छूना। किन्तु इस ओर प्रवृत्ति अधिक होने से इन्ही मे से ऐसे लोग उत्पन्न होंगे जो वास्तव मे अपने उद्देश्य की पूर्ति मे सफल होगे। अभ्यास की आदिम अवस्था ऐसी ही होती है। किन्तु असफलता ही सफलता की कुंजी है। एक बात यह अवश्य देखी जाती हे कि छायावाद के अधिकाश कवियों की दृष्टि न तो अपने देश की ओर है, न अपनी जाति और समाज की ओर, हिन्दू जाति आज दिन किस चहले मे फँसी है, वे आँख से उसको देख रहे है पर उनकी सहानुभूति उसके साथ नहीं है। इसको दुर्भाग्य छोड और क्या कहे। जिसका प्रेम विश्वजनीन है वह अपने देश के, जाति के, परिवार के कुटुम्ब के दुख से दुखी नही इस को विधि-विडम्बना छोड और क्या कहे ? शृंगारिक कवियो की कुत्सा करने मे जिनकी लेखनी सहस्रमुखी बन जाती है, उनमे इतनी आत्म-विस्मृति क्यो है ? इसको वे ही सोचे। यदि शृंगार-रस मे निमग्न होकर उन्होंने देश को रसातल पहुचाया तो विश्वजनीन प्रेम का प्रेमिक उनको संजीवनी सुधा पिला कर स्वर्गीय सुख का अधिकारी क्यो नहीं बनाता ? जिस देश, जाति और धर्म की ओर उनकी इतनी उपेक्षा है उनको स्मरण रखना चाहिये कि वह देश जाति और धर्म ही इस विश्वजनीन महामंत्र का अधिष्ठाता, स्रष्टा और श्रृपि है। जो कवीन्द्र रवीन्द्र उनके आचार्य्य और पथ-प्रदर्शक है' उन्ही का पदानुसरण क्यो नही किया जाता ? कम से कम यदि उन्ही का मार्ग ग्रहण किया जाय तो भी निराशा मे आशा की झलक दृष्टिगत हो सकती है। यदि स्वदेश-प्रेम संकीर्णता है तो विश्वजनीन-प्रेम की दृष्टि से ही अपने देश को क्यो नही देखा जाता ? विश्व के अंतर्गत वह भी तो है।

यदि संसार भर के मनुष्य प्रेम-पात्र है तो भरत-कुमार स्नेह भाजन क्यों नहीं ? क्या उनकी गणना विश्व के प्राणियो मे नही है ? यदि सत्य का प्रचार किया जा रहा है, प्रेम की दीक्षा दी जा रही है, विश्व-बंधुत्व का राग अलापा जा रहा है, तो क्या भारतीय जन उनके अधिकारी नही । जो अपना है, जिस पर दावा होता है उसी को उपालम्भ दिया जाता है। जिससे आशा होती है, उसी का मुँह ताका जाता है। मैने जो कुछ यहा लिखा है वह ममता-वश होकर, मत्सर से नहीं। मैने इसकी चर्चा यहा इस लिये की कि यदि छायावाद की रचना ही सर्वे सर्वा है, तो इसमे इन भावो का सन्निवेश भी पर्य्याप्त मात्रा मे होना चाहिये, अन्यथा हिन्दी-साहित्य-क्षेत्र मे एक ऐसी न्यूनता हो जावेगी जो युवको के एक उल्लेख-योग्य दल को भ्रान्त ही नहीं बनावेगी, देश के समुन्नति-पथ मे भी कुसुम के बहाने वे कंटक बिछावेगी जो भारतीय-हित-प्रेमिक पथिकों के लिये अनेक असमंजसो के हेतु होंगे। मैने जो विचार एक सदुद्देश्य से यहाँ प्रकट किये है यदि कार्य्यत उनको भ्रान्त सिद्ध कर दिया जावेगा तो मैं अपना अहोभाग्य समझूंगा।

छायावाद की कविता पर मैने अपने विचारानुसार जो प्रकाश डाला, सम्भव है उस का कुछ अंश रंजित हो। परन्तु मैने सत्य बात को प्रकट करने ही की चेष्टा की है। सम्भव है, अपेक्षित ज्ञान न होने के कारण मैं उसके सर्व्वांशका परिचय न दे सका होऊँ। परन्तु जो कुछ मैने लिखा है, आशा है उससे उसको प्रणालीका कुछ न कुछ ज्ञान अवश्य पाठकोको होगा। अब मै उन लोगो की चर्चा करना चाहता हू जो उसके प्रसिद्ध कवि और उद्भावक है। उनकी रचनाओ को पढ कर आशा है, आप लोगो का ज्ञान छायावाद के विषय मे और अधिक हो जायेगा। छायावाद के कवियो की बहुत बड़ी संख्या है। परन्तु उनमे से अधिकाश ऐसे है जिन्होने थोडे ही दिन से इस क्षेत्र मे पदार्पण किया है। मै पहले उन्हीं लोगों के विषय मे कुछ लिखूंगा जिन्हो ने प्रसिद्धि प्राप्त कर ली है और जो छायावाद के मान्य कवि है। इसके उपरान्त कुछ ऐसे लोगो की भी चर्चा करूंगा, जो छायावाद के क्षेत्र मे बहुत कुछ अग्रसर हो चुके है —

१—सब से पहले मेरी दृष्टि बाबू जयशंकर प्रसाद पर पडती है। आप ने छायावाद के कई ग्रन्थ लिखे है। पहले आप भी व्रजभाषा मे ही कविता करते थे। खडी बोली के आन्दोलन के समय खडी बोली मे कविता करने लगे। अब छायावाद कविता का पथ प्रशस्त करने मे दत्तचित्त है। आप की रचना सुन्दर और भावमयी है, भाषा भी भावानुगामिनी है। आप के कुछ पद्य नीचे लिखे जाते है —

१—भूलि भूलि जात पद कमल तिहारो कहो
ऐसी नीति मूढ मति कीन्ही है हमारो क्यों।
धाय के धंसत काम क्रोध सिंधु संगम में
मन को हमारे ऐसी गति निरधारी क्यों।
झूठे जग लोगन में दौरि के लगत नेह
सांचे सच्चिदानन्द में प्रेम ना सुधारी क्यों।
बिकल बिलोकत न हिय पीर-मोचत हौ
ए हो दीनबन्धु दीन बन्धुता बिसारी क्यों ?

ले चल वहाँ भुलावा दे कर
मेरे नाविक धीरे धीरे ।
जिस निर्जन में सागर लहरी
अम्बर के कानों में गहरी।
निश्छल प्रेम-कथा कहती हो
तज कोलाहल की अवनी रे ।
जहाँ साँझ सी जीवन छाया
ढीले अपनी कोमल काया ।
नील नयन से ढुलकाती हो
ताराओं की पाँति घनी रे।

जिस गम्भीर मधुर छाया में
विश्व चित्रपट चल माया में ।
विभुता पड़े दिखायी विभुसी
दुख सुख वाली सत्य बनी रे ।
श्रम-विश्राम क्षितिज बेला से
जहाँ सृजन करते मेला से ।
अमर जागरण उषा नयन से
बिखराती हो ज्योति घनी रे ।

२—प० सुमित्रानंदन पन्त की गणना भो प्रसिद्ध छायावादी कवियो मे है। उन्होने दो तीन ग्रन्थ भो लिखे है, 'पल्लव' इन का सब से प्रसिद्ध ग्रन्थ है। इनकी रचनाये एक अनूठापन लिये हुये है, जिनमे इनकी हृत्तंत्री बडी मधुरता से झंकृत होती है। इनकी अधिकतर कवितायें भाव-प्रधान है, उस मे मार्मिकता भी पायी जाती है। जितने युवक छायावादी कवि है उनमे इनका प्रधान स्थान है, और वास्तव मे ये है भी इस योग्य। इनकी कुछ रचनाये देखिये —

॥ सुख-दुख ॥

मुझको न चाहिये चिर सुख
चाहिये न रे अविरत दुख ।
सुख दुख की खेल मिचौनी
खोले जीवन अपना मुख ।
सुख दुख के मधुर मिलन से
यह जीवन हो परिपूरन ।
फिर घन में ओझल हो शशि
फिर शशि से ओझल हो घन ।

जग पीड़ित है अति दुख से
जग पीड़ित रे अति सुख से।
दुख-सुख से औ सुख-दुख से
अविरत दुख है उत्पीड़न ।
अविरत सुख भी उत्पीड़न
सोता जगता जग-जीवन ।
यह साँझ उषा का आँगन
आलिंगन विरह मिलन का ।
चिरहास अश्रुमय आनन
रे इस मानव जीवन का ।

याचना ।

बना मधुर मेरा जीवन
नव नव सुमनों से चुन चुन कर
धूल सुरभि मधु-रस हिम कण ।
मेरे उरकी मृदु कलिका में
भरदे करदे विकसित मन ।
बना मधुर मेरा भाषण
वंशी से ही करदे मेरे सरल प्राण औ सरस बचन।
जैसा जैसा मुझको छेड़े बोलूं और अधिक मोहन।
जो अकर्ण अहि को भी सहसा करदे मंत्रमुग्ध नतफन।
रोम रोम के छिद्रों से मां फूटे तेरा राग गहन।
बना मधुर मेरा तन मन

३—पं० सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' छायावादियोमे सबसे निराले हैं। यदि प्राचीनों के प्रति किसी छायावादी मे कुछ श्रद्धा और प्रेम है तो इन्हीं मे। इनमे सहृदयता भी अधिक है। ये सरस और भावमय रचना का आदर करते है, वह चाहे जहाँ मिले। इनकी रचनाओं मे इस भावको सच्ची झलक मिलती है। इनमे मनस्विता अधिक है, इस लिये उसका विकास भी इनकी कृतियों मे यथेष्ट मिलता है। बगाल मे अधिकतर रहने के कारण उनकी रचनाओ मे बगभाषा के कवियो का भाव और ढंग भी पाया जाता है। भाव प्रकाशन-शैली इनकी गंभीर है किन्तु इतनी नही कि वह बोधगम्य न हो। छायावादी कवियो मे इनका भी विशेष स्थान है। इनकी दो कविता पुस्तके भी निकल चुकी है, जो सरस और सुन्दर है उनके कुछ पद्य देखिये —

॥ गीत ॥

जग का एक देखा तार
कण्ठ अगणित देह सप्तक मधुर स्वर झंकार।
बहु सुमन बहु रंग निर्मित एक सुन्दर हार।
एक मृदु कर से गुँथा उर एक शोभा भार।
गंध अगणित मंद नंदन विश्ववंदन सार।
सकल उर चंदन अलौकिक एक अनिल उदार।
सतत सत्य अनादि निर्मल सकल सुख-विस्तार।
अयुत अधरों में सुसिंचित एक किंचित प्यार।
तत्व नभ-तम में सकल भ्रम शेष प्रेमाकार।
अलक-मंडल में यथा मुखचन्द्र निरलंकार।

४—पं० मोहन लाल महतो कवि है और चित्रकार भी। इस लिये वे चित्रण कला का मर्म पहचानते है। यही कारण है कि उनकी रचनाओं का रंग मनोहर होता है। उसमे भावो का ऐसा सुन्दर विकास होता है कि जटिलता नही आने पाती। छायावादी कवि होकर भी प्राजल कविता

करन की ओर आप की रुचि अभिनन्दनीय है। आप के दो ग्रंथ निकल चुके है और दोनो सुन्दर है। उनकी कुछ रचनाये देखिये —

|| वरदान ||

मिले अधरों को वह मुसकान
जिसे देख सहृदय का अन्तर भर जावे भगवान।
नयनों को ऐसी चितवन दे जो करुणा छलकादे।
रो दें वीणापाणि कण्ठ को देना ऐसे गान।
मिले हृदय जिसकी धड़कन से मिलो विश्वतंत्री हो।
न्योछावर होना सिखला दें देना ऐसे प्राण।
इस कवि को ऐसे अवरोहण आरोहण सिखलाना।
हों जिसके अनुरूप जगत के पतन और उत्थान।
दे ऐसी तन्मयता जिसमें अपनापन खो बैठूं।
फिर तुझको अपने में पाऊं दे ऐसे वरदान।

तुम्हारे अश्रु कणों का दान
नयनों को इस सजल भीख पर है सकरुण अभिमान।
यौवन की मधुमय दोपहरी में अपनापन भूला।
शतदल की पंखड़ियों से मिल विकसित होते प्राण।
आलोकित था अन्तरतर किसकी मुसकान विभा से।
सुला रहे थे चेतनता को थपकी देकर गान।
था निसर्ग प्याला सारी सुखमा मादक मदिरा थी।
मैं पीता था और पिलाता था कोई अनजान।
तू करुणामय करुणा में था ये आँखे पगली थीं।
तू रोदन में मैं विनोद में था विलीन भगवान।

अच्छा किया छिपा छलना से ममता पूर्ण खिलौना।
मिथ्या सुख विस्मृति को अपनी ओर दिलाया ध्यान।
सर्वशून्य जीवन का तू है आशामय आधार।
तेरी निर्ममता में है करुणा का छिपा प्रमाण।

५—बाबू सत्यप्रकाश एम० एस० सी० की एक ही पुस्तक निकली है उसका नाम है प्रतिबिम्ब किन्तु उस एक ही पुस्तक से उनको सरस हृदयता का पता चलता है। उसमे जितनी रचनाये है परिमार्जित रुचि की है और यह बतलाता है कि उनका लेखक चिन्ताशील और कवि-कर्म्म का मर्मज्ञ है। उनकी रचनामे प्रवाह है और मधुरता भी। उन्होने अपनी रचनामे जटिलता नही आनेदी, यह प्रशंसा की बात है। उनके कुछ पद्य देखिये—

सान्त बना कर मुझ को नट वर का हो जाना परम अनन्त।
निर्जन बन में मुझे छोड़ कर भट काना जीवन पर्यंत।
संख्यातीत रुप धारण कर बहला कर भग जाना।
मेरी फिर इस विकट व्यथा पर कभी कभी मुसकाना।
लीला यह सर्वज्ञ शक्य की उसके यदि येही व्यापार।
तो फिर कैसे सान्त पथिक का हो सकता है अब उद्धार।

६—श्रीमती महादेवी वर्म्मा बी० ए० पहली महिला है जिन्होने छायावाद की रचना प्रारम्भ की है। स्त्री हृदय मे जो स्वाभाविक कोमलता होती है, इनकी रचनाओं म वह पायी जाती है। स्त्री-सुलभ भावो का चित्रण यथार्थ रीति से स्त्री ही कर सकती है। इनके पद्यो को पढकर यह बात असदिग्ध हो जाती है। उनमे स्थान स्थान पर जटिलता है, किन्तु मधुर कोमलकान्त पदावली मे वह छिप जाती है। इनके कोई कोई पद्य इतने भावमय है कि यह स्वीकार करना पडता है कि उनमे भावुकता की मात्रा यथेष्ट है। उनके कुछ पद्य देखिये—

कहीं से आयी हूं कुछ भूल।
रह रह कर आतीसुधि किसकी, रुकतीसी गति क्योंजीवनकी
क्यों अभाव छाये लेता, विस्मृति सरिता के कूल।

किसी अश्रु मय घन का हूं कन टूटी स्वर-लहरी का कम्पन।
या ठुकराया गिरा धूलि में हूँ मैं नभ का फूल।
दुख का कण हूँ या सुखका पल करुणा का घन या मरुनिर्जल
जीवन क्या है मिला कहाँ सुधि बिसरी आज समूल।
प्याले में मधु है या आसव बेहोशी है या जागृति नव।
बिन जाने पीना पड़ता है ऐसा विधि प्रतिकूल।

अब छायावाद के कुछ अग्रसर कविता लेखको की चर्चा करता हू -

१—पडित माखनलाल चतुर्वेदी आरम्भ काल से ही छायावादी कविता के प्रेमी है। जहा तक मेरा ज्ञान है उन्होंने जब लिखी तब छायावादी कविता ही लिखी। उनकी रचनाये थोडी है, परन्तु है बडी भावमयी और सुन्दर। यदि मैं भूलता नहीं हू तो यह कह सकता हूं कि पत्र-पत्रिकाओ मे भारतीय-आत्मा' के नाम से जितनी कविताये निकली है वे सब उन्हीं की कृति है। चतुर्वेदी जी की वक्तृताओ मे जैसा प्रवाह होता है वैसा ही प्रवाह उनकी रचनाओ मे भी है। उनकी अधिकाश रचनाये मर्म-स्पर्शिनी है। मै समझता हू, आप ही ऐसे छायावादी कवि है जिनकी रचनाओ मे देश प्रेम का रंग यथेष्ट पाया जाता है। उनकी कुछ रचनाये देखिये —

चाह नहीं मैं सुरबाला के गहनों में गूंथा जाऊँ।
चाह नहीं प्रेमी-माला में बिंध प्यारी को ललचाऊँ।
चाह नहीं सम्राटों के शव पर हे हरि डाला जाऊँ।
चाह नहीं देवों के सिर पर चढ़ूं भाग्य पर इठलाऊँ।
मुझे तोड़ लेना बन माली उस पथ पर तुम देना फेंक।
मातृ भूमि पर शीश चढ़ाने जिस पथ जावें वीर अनेक।

२—पं० बालकृष्ण शर्म्मा 'नवीन' छायावादी कविता करने मे कुशल है। वे अपनी रचनाओं के लिये बहुत कुछ प्रशंसा प्राप्त कर चुके है। उनका

मानसिक उद्गार ओजमय होता है। इसलिये उनकी रचनाओं मे भी यह ओज पाया जाता है। वे कभी कभी ऐसी रचनायें करते है जिनसे चिनगारिया कढती दृष्टिगत होती है। परन्तु जब शान्त चित्त से कविता करते है तो उनमे सरसता और मधुरता भी पायी जाती है। उनकी कविता भावमयी के साथ प्रवाहमयी भी होती है। उनमे देश प्रेम भी है, एक पद्य देखिये —

साक़ी

साक़ी मन घन गन घिर आये उमड़ी श्याम मेघमाला।
अब कैसा बिलम्ब तू भी भर भर ला गहरी गुल्लाला।
तनके रोमरोम पुलकित हों लोचन दोनों अरुण चकितहों।
नस नस नव झंकार कर उठे हृदय विकम्पित हो हुलसितहो।
कब से तड़प रहे हैं, ख़ाली पड़ा हमारा यह प्याला।
अब कैसा बिलम्ब साक़ी भर भर ला अंगूरी हाला।
और और मत पूछ दिये जा मुंह माँगे बरदान लिये जा।
तू बस इतना ही कह साक़ी और पिये जा और पियेजा।
हम अलमस्त देखने आये हैं तेरी यह मधुशाला।
अब कैसा बिलम्ब—
बड़े विकट हम पीने वाले तेरे गृह आये मतवाले।
इसमें क्या संकोच लाज क्या भर भर ला प्याले पर प्याले।
हमसे बेढब प्यासों से पड़ गया आज तेरा पाला।
अब कैसा बिलम्ब—
तू फैला दे मादक परिमल जगमें उठे मदिर रस छल छल।
अतल वितल चल अचल जगतमें मदिरा,
झलक उठे झल झल।

कल् कल् छल् छल् करती बोतल से उमड़े मदिरा वाला ।
अब कैसा विलम्ब—

३—बाबू रामकुमार वर्म्मा एम० ए० ने थोडे ही समय मे छायावाद के क्षेत्र मे अपना अच्छा नाम कर लिया । जैसा उनका कण्ठ मधुर है वैसी ही मधुर उनकी कविता भी है । कविता-पाठ के समय जैसा वे रस की वर्षा करते है वैसी ही रसमयी उनकी कविता भी है । इनका शब्द-चयन भी अच्छा है और भावानुकूल उसका प्रयोग करने मे भी वे समर्थ है । जिस प्रकार की कविता उनकी होती है, वैसी कविताओ को वे छायावाद कहने को प्रस्तुत नही है । परन्तु प्रचलित परम्परानुसार उन की कविता को भी मुझको छायावाद की कविता ही मानना पडा । उनकी कवितायें छायाबाद न हों, जो हो पर है हृदयग्राहिणी । इनके कुछ पद्य देखिये —

रूपराशि

यह प्रशान्त छाया ।
सोती है शिशु-पल्लव के हिलने से कम्पन आया ।
प्रेयसि शयन धरा पर करने में है स्वर्गोल्लास ।
देखो छाया पड़ी हुई है मृत पल्लव के पास ।
और तुम्हारे उर में जो है भाग्यवान वह हार ।
कभी गिरेगा भूपर लेकर अपना सूखा भार ।
आओ हम दोनों समीप बैठें देखें आकाश ।
वे दोनों तारे देखो कितने कितने हैं पास ।

उपसंहार

हिन्दी साहित्य का विकास किस प्रकार हुआ और कब कब वह किन किन रूपो मे कैसे परिणत हुआ, मुझको यही प्रकट करना इष्ट था । यह यथासम्भव प्रकट किया गया । इतना ही नही, इस विषय मे जितने

आवश्यक साधन थे उन को भी ग्रहण किया गया। हिन्दी भाषा का वर्त्तमान रूप बहुत समुन्नत है और वह दिन दिन विस्तृत और सुपरिष्कृत हो रही है। किन्तु एक बात मुझको यहाँ और निवेदन कर देने की आवश्यकता ज्ञात होती है। वह यह कि जितना सुगठित, प्राजल और नियमबद्ध हिन्दी-गद्य इस समय है, उतना उसका पद्य भाग नही। गद्य हिन्दी के अधिकाश नियम भारतवर्ष के उन सब प्रान्तो और भागों मे सर्वसम्मति से स्वीकृत है जहाँ उसका प्रचार अथवा प्रवेश है। किन्तु पद्य के विषय मे यह बात नही कही जा सकती। पद्य-विभाग मे अभी तक बहुत कुछ मनमानी हो रही है, जिसके मन मे जैसा आता है उस रूप मे उसको वह लिखता है। मै पहले खडी बोली के कुछ नियम बतला आया हू। उन नियमो का अब तक अधिकतर पालन हो रहा है। परन्तु थोडे दिनो से कुछ लोगो के द्वारा उनकी उपेक्षा हो रही है। यह उपेक्षा यदि भ्रान्ति अथवा बोध की कमी के कारण होती तो मुझको उसकी विशेष रूप से चर्चा करने की आवश्यकता नही थी। किन्तु कुछ लोग तो जान बूझ कर इस प्रकार के कितने प्रयोग कर रहे है, जिनको वे प्रचलित करना चाहते है और कुछ लोग इस विचार से ऐसा कर रहे है कि वे अपने विचारानुसार भाषा की उन्मुक्त धारा को बंधन मे डालना नहीं चाहते। सम्भव है कि कुछ भाषा-मर्मज्ञ इस को अनुचित न समझते हो। परन्तु मेरा निवेदन यह है कि यदि नियमो को आवश्यकता स्वीकृत न होगी तो न तो भाषा की कोई शैली निश्चित होगी और न काव्य शिक्षा-प्रणाली का कोई मार्ग निर्धारित हो सकेगा। किसी विद्या के पारंगत के विषय मे कुछ नही कहा जा सकता किन्तु प्रत्येक विद्या और कला सीखनी पडती है। कोई किसी विद्या का पारंगत यो ही नहीं हो जाता, पहले उसको शिक्षा लाभ करने की आवश्यकता होती है। यदि कोई नियम ही न होगा तो शिक्षा-सम्बन्धी इस आरम्भिक जीवन का मार्ग ही प्रशस्त न हो सकेगा। इसी लिये साहित्य और व्याकरण के नियम निश्चित किये गये है और उन नियमो का पालन कर के चलने से ही प्रत्येक शिक्षार्थी इष्ट को प्राप्ति कर सका। मै जानता हू कि भाषा परिवर्त्तन-शील है। वह बदलती है और उसके नियम

भी बदलते है। परन्तु नियम ही बदलते है यह नही होता कि उसका कुछ नियम ही न हो। ऐसी अवस्था मे नियम का त्याग नही हो सकता।

कहा जाता है कि स्वतंत्र विचार वाले परतंत्रता कभी स्वीकार नही करते। एक सज्जन कहत है कि जो लोग उच्छृंखलता का राग अलापते है उनको सोचना चाहिये कि उच्छृङ्खलता शब्द ही मे बंधन और परम्परागत पराधोनता का भाव भरा है। उनसे मेरा यह निवेदन है कि नियम के भीतर रह कर जो आवश्यक सुधार अथवा परिवर्त्तन किये जाते है उनको कोई उच्छृङ्खलता नही कहता। मनमानो करना ही उच्छृखलता है। इसी मनमानी से सुरक्षित रहने के लिये हो नियम की आवश्यकता होतो है। फिर उसमे क्या बंधन है और क्या परम्परागत पराधोनता ? प्रतिभावान और साहित्य-मर्मज्ञ जिस मार्ग पर चलते है उसका विरोध कुछ काल तक भले ही हो, परन्तु काल पाकर उनकी प्रणाली आदर्श बन जाती है और उसो पर लोग चलने लग जाते है। अतएव विचारणीय यह है कि क्या साहित्य-पारंगत और मर्मज्ञ जन उन्मार्गगामी होते है ? मेरा विचार है वे उन्मार्गगामो नही होते। वे सत्पथ-प्रदर्शक होते है। इसी लिये उनके पथ पर स्वीकृति की मुहर लग जाती है। इसका विरोध मै नहीं करता और न यह बात है कि मै इस स्वाभाविकता को स्वीकार नहीं करता हू। मेरा कथन यह है कि जो विविधरूपता और अनियमबद्धता साहित्य मे दिखलायी दे रही है उसका प्रतिकार किया जावे। और खडी बोलचाल की कविता की ऐसी प्रणाली निश्चित को जावे जिसमे एक रूपता हो, जो एक प्रकार से सर्वमान्य हो सके। इसी बात को सामने रख कर मै कुछ ऐसे प्रयोग भाषा मर्मज्ञों के सामने रखता हू जिन पर विचार होने की आवश्यकता है। यदि वे प्रयोग उचित है तो जाने दीजिये, मेरी बातो को न सुनिये। यदि अनुचित है तो उचित मोमांसा होकर उनके विषय में कोई सिद्धान्त निश्चित कीजिये।

आजकल उर्दू मे जिसको रोजमर्रा कहते है उसकी परवा हिन्दी रचनाओं मे, विशेषकर आधुनिक खड़ी बोली की कविताओं मे, कमको

जाती है। रोजमर्रा का अर्थ यह है कि जैसा आपस मे बोलते-चालते है वैसा ही शब्दो का व्यवहार गद्य और पद्य मे भी करे। यदि हम बोलते है 'ऑखदेखी बात' तो ऑखदेखो बात' ही लिखना चाहिये, 'ऑख विलोकी' या ऑख निहारी बात लिखना, संगत नही। बोलचाल है कि हमारा पाव दुख रहा है' यदि इसके स्थान पर हम लिखे कि हमारा पाव दुख पा रहा है' तो ऐसा लिखना उचित न होगा। इसी प्रकार मुहावरे के जितने वाक्य है वे उन्ही शब्दो मे परिमित है, जिन शब्दोमे बोले जाते है। उनके शब्दो को बदलदेना और उसी मुहावरे मे उस वाक्य को ग्रहण करना नियम-विरुद्ध है। मुहावरा है 'दॉत निकालना'। यदि हम 'दात' के स्थान पर दसन या दंत प्रयोग कर देगे तो यह प्रयोग नियमानुकूल न होगा। परंतु ऐसे प्रयोग किये जाते है। मेरा कथन यह है कि ऐसा होना उचित नही।

एक पक्ष वालो का यह सिद्धात है कि ब्रजभाषा के शब्द खडी बोल-चाल की कविता मे आने ही न चाहिये, उसकी क्रियाओं का प्रयोग तो किसी अवस्था मे न होना चाहिये। दूसरे पक्ष के लोग कहते है कि ब्रज-भाषाके कोमल और मधुर शब्द अवश्य ले लिये जॉय और विशेष अवस्थाओ मे क्रिया भी ले ली जाय, परंतु तब जब उसको खडी बोली का रूप दे दिया जावे। आज कल की रचनाओ मे दोनों प्रकार के प्रयोग मिलते है और उन लोगो को इस प्रकार का प्रयोग करते देखा जाता है जिनकी रच-नाये प्रामाणिक मानी जाती है। इस भिन्नता के दूर होने की आवश्यकता है। मेरा पक्ष दूसरा है। परंतु मै 'पत्ता' के स्थान पर 'पात', 'पुष्प' के स्थान पर 'पुहुप, 'हृदय' के स्थान पर हिय हिया' अथवा 'रिदै', 'आखे' के स्थान पर 'ॲखिया', समय' के स्थान पर 'समै', 'पवन' के स्थान पर 'पौन', 'भवन' के स्थान पर 'भौन', 'गमन' के स्थान पर 'गौन' 'नयन' के स्थान पर 'नैन', 'वचन' के स्थान पर 'बैन' या 'बयन, 'मदन' के स्थान पर 'मेन' या 'मयन'; 'यम' के स्थान पर 'जम', 'यज्ञ' के स्थान पर 'जग्य', 'योग' के स्थान पर 'जोग' आदि लिखना अच्छा नहीं समझता। इस लिये कि इससे शब्द अधिक बिगडते है और उस रूप में सामने आते है जो खडी बोली के नियम के विरुद्ध है॥

खडी बोली का यह नियम है कि उसके कारक के चिन्ह लोप नहीं किये जाते। पहले इस नियम की रक्षा सतर्कता के साथ की जाती थी। किन्तु अब यह देखा जाता है कि इस बात की परवा कम की जाती है, विशेषकर पद्य के अन्त मे। यह ब्रजभाषा का अनुकरण है। खडी बोल-चाल के नियमानुसार या मुहावरो मे जहाँ कारक के चिन्ह लुप्त रहते है उनके विषय मे मुझे कुछ नही कहना है। परन्तु अन्य अवस्थाओ मे कारक के चिन्हों का त्याग न होना चाहिये ॥

खडी बोली मे अब तक यह होता आया था कि 'न' का अनुप्रास 'ण' को मान लेते थे। परंतु 'प्राण' के स्थान पर 'प्रान' लिखना पसद नहीं करते थे। इसी प्रकार युक्त विकर्ष को भी अच्छा नही समझते थे। अब देखते है कि युक्त विकर्ष भी होने लगा है। और णकार का नकार किया जाने लगा है। शकार को भी सकार कर दिया जाता है, कभी अनुप्रास के लिये कभी कोमलता की दृष्टि से। जब सकार का अनुप्रास शकार मान लिया गया है तब अनुप्रास के लिये 'शकार' का सकार करना उचित नही। शब्द की कोमलता के ध्यान से शकार का सकार होना अच्छा नही। क्योंकि ऐसी अवस्था मे शब्द की शुद्धता का लोप हो जाता है।

यह देखा जाता है कि अङ्गरेजी मुहावरो का अनुवाद करके ज्यो का त्यों पद्यों मे रख दिया जाता है। जैसे, 'Golden end' का 'स्वर्ण अवसान' 'Golden dream' का 'स्वर्ण स्वप्न', 'Golden shadow' का 'कनक छाया', और 'Dreamy splendour' का 'स्वप्निल आभा'। इसका परिणाम यह होता है कि कोई अङ्गरेजी का विद्वान् उन अनुवादित मुहावरों का अर्थ भले ही समझ ले, परन्तु अधिकाश हिन्दी भाषा भाषी जनता उसको नहीं समझ सकती। इसका कारण पद्य की जटिलता और दुरूहता होती है। इसलिये इस प्रकार का प्रयोग वाछनीय नही। एक भाषा के मुहावरे का अनुवाद दूसरी भाषा मे नही होता। इसका नियम यह हैं कि या तो उसका भाव अपनी भाषा मे रख दिया जाय अथवा उसी भाव का द्योतक कोई मुहावरा अपनी भाषा का चुन कर पद्य मे रखा

जावे। मै यह नही कहता कि नये मुहावरे नही बनते या नहीं बनाये गये। मेरा कथन इतना ही है कि मुहावरो की रचना के भी नियम है। उर्दू मे कितने ही मुहावरे बन गये है, जैसे हवा बाँधना' हवा हो जाना', 'हवा बिगड जाना' इत्यादि। किन्तु विचारना यह है कि ये मुहावरे बने कैसे ? ये मुहावरे बोलचाल मे आरूढ़ बने और फिर कवियो और लेखको द्वारा गृहीत हुये। प्रमाण इसका यह है कि हिन्दी के जितने मुहावरे है, वे सब प्राय तद्भव शब्दोसे बने है। हिन्दीका कोई मुहावरा प्राय सस्कृत शब्दोसे नही बना है। कारण इसका यह है कि जनता की बोलचाल ही मुहावरो को जन्म देती है। सस्कृत के तत्सम शब्द कभी जनता की बोलचाल मे नहीं थे। इसलिये मुहावरो मे वे न आ सके। उर्दू के मुहावरो की भी उत्पत्ति ऐसे ही हुई है। यही प्रणाली ग्रहण कर यदि नये मुहावरे बनाये जॉय तो कोई आपत्ति नही। अन्यथा पद्यविभाग जटिल से जटिलतर हो जावेगा। दूसरी बात यह कि जब गद्य मे इस प्रकार के मुहावरे नही लिखे जाते तो पद्य मे उनका प्रयोग कहॉ तक संगत है। विशेषकर उस अवस्था मे जब गद्य और पद्य की भाषा की एकता का राग अलापा जाता है। मै यह जानता हू कि गद्य की भाषा से पद्य की भाषा का कुछ अन्तर होता है। किन्तु इसके भी कुछ नियम है। उन नियमो की रक्षा के विषय मे ही मेरा निवेदन है।

आजकल यह भी देखा जाता है कि कुछ ऐसे समस्त शब्द बना लिये जाते है जो सस्कृत के नियमानुसार अशुद्ध तो है ही हिन्दी भाषा के नियमानुसार भी वे न तो गृहीत होने योग्य है, न उनका इस प्रकार प्रयोग होना उचित है। ऐसे समस्त शब्द भी कुछ अंगरेज़ी प्रणाली के अनुसार बनाये जाते है, और कुछ कवि की अहमन्यता अथवा प्रमाद के परिणाम होते है। ऐसे शब्दों या वाक्यो का अर्थ इतना दुर्बोध हो जाता है कि उसके कारण प्राजल से प्राञ्जल पद्य भी जटिल बन जाते है। यदि कहा जाय 'उन्मत्त क्रोध', 'सरसईर्षा', 'ललित आवेश', 'विहॅसित क्रन्दन', 'रुदित हॅसी', 'खिलखिलाती चिन्ता', 'नाचती निद्रा', 'जागती नींद', 'उडता हृदय', सोता कलेजा' तो बतलाइये, इन शब्दो का क्या अर्थ होगा

बोलचाल मे तो इनका स्थान है ही नही, कवि-परम्परा मे भी ऐसे प्रयोग गृहीत नही है फिर कहिये इस प्रकार का प्रयोग यदि किया जाता है तो उसको निरकुशता छोड और क्या कह सकते है। जहाँ दोषो की गणना की गयी है वहा एक दोष 'अप्रयुक्त' भी माना गया है। जिसका प्रयोग न हुआ हो, उस शब्द या वाक्यका प्रयोग करना ही अप्रयुक्त दोष कहलाता है। जैसा वाक्य मैने ऊपर लिखा है, इस प्रकार का वाक्य-विन्यास तो अप्रयुक्त दोष से भी दो कदम आगे है। फिर भी आजदिन इस प्रकार के प्रयोग होते है। मेरा विचार है कि ऐसे प्रयोग चाहे नवीन आविष्कार कहलावे और प्रयोग कर्त्ता के सिर पर नवीन आविष्कारक होने का सेहरा बाध दे परन्तु भाषा मे ऐसा विप्लव उपस्थित करेगे जिससे वह पतनोन्मुख होगी और उसका स्थान कोई दूसरी उन्नतिशील और सुगठित भाषा ग्रहण कर लेगी। हम इस प्रकार के प्रयोगो को चमत्कृत बुद्धि का विलास नहीं कह सकते। और न वह विलक्षण प्रतिभा की ही विभूति है। हा, उसे किसी अवाछनीय मनोवृत्ति का फल अवश्य मान सकते है। यह मै मानूंगा कि इस प्रकार को निरंकुशता और उच्छृंखलता होती आयी है। यदि ऐसा न होता तो निरंकुशा. कवय' क्यो कहा जाना ? सब भाषाओ मे ऐसे लेखक और कवि मिलते है कि नियम बद्धता होने पर भो उनके विषय मे यह कहावत चरितार्थ होती है—मुरारे तृतीय पन्था। यह मान भी ले तो यह स्वीकार करना पडेगा कि सब बातो की सीमा होती है। सोमोल्लंघन होना अच्छा नहीं होता। दूसरी बात यह कि निरंकुशता निरकुशता ही है उस पर निन्दनोयता की मुहर लगो हुई है। वह नियम के अन्तर्गत नहीं है, अपवाद है। यदि उच्छृंखलता, एव निरंकुशता की उपेक्षा होती तो समालोचना-प्रणाली का जन्म ही न होता। समालोचना का कार्य्य यही है कि वह इस प्रकार की नियम-प्रतिकूलता को साहित्य मे स्थान न ग्रहण करने दे। जिससे किसी व्यक्ति विशेष का इस प्रकार का अनियम अन्यो का आदर्श बन सके। यह भी देखा गया है कि समालोचना के आतक ने उनको भो सावधान कर दिया है, जो निरंकुश कहलाने ही मे अपना गौरव समझते थे। साराश यह कि साहित्य के

हित की दृष्टि से जो बात उचित हो उसकी ओर साहित्य-मर्मज्ञों की दृष्टि का आकर्षित होना आवश्यक है, जिससे साहित्य लांछित होने से बचे और इसी सदुद्देश्य से इस बात की चर्चा यहाँ की गयी है ।

मेरा विचार है और मुझको आशा है कि खड़ी बोली का पद्य विभाग सुविकसित होकर बहुत उन्नत होगा और वह साहित्य सम्बन्धी ऐसे आदर्श उपस्थित करेगा जो उसके सामयिक विकाश के अनुकूल होगा । यहाँ जो कुछ लिखा गया वह इसी विचार से लिखा गया कि हमारी यह आशा फलीभूत हो और इस मार्ग मे जो बाधाये है उनका नियन्त्रण हो और जो बाते सुधार-योग्य हो उनका सुधार हो, मुझको यह भी विश्वास है कि यदि मेरी बातो मे कुछ भी सार होगा तो अवश्य वे सुनी जाँयगी और उनका प्रभाव भी होगा ।

॥ तथास्तु ॥

तीसरा खण्ड ।

गद्य—विभाग ।

पहला—प्रकरण ।

गद्य—मीमांसा ।

संस्कृत का एक वाक्य है— गद्यं कवीनाम् निकषं वदन्ति'। इसका अर्थ यह है कि गद्य हो, विद्वानो की सम्मति मे, कवियो की कसौटी है। प्रकट रूप मे यह वाक्य कुछ विचित्र जान पडता है परन्तु वास्तव मे उसके भीतर एक गहरा मर्म है। साधारणतया अपने भावो और विचारों को कवि पद्य-बद्ध भाषा मे व्यक्त करता है, पद्य मे उसकी निरंकुशता के लिये यथेष्ट अवकाश है तुक छन्द आदि बंधनों मे बँधे हुये होने के कारण उसे अनेक असुविधाओ का सामना करना पडता है और विचारो तथा भावो की अभिव्यक्ति मे उसकी कठिनाइयो पर दृष्टिपात कर के पाठक उसकी अनेक त्रुटियो को क्षमा कर सकता है। परन्तु गद्य मे अपनी योग्यता और प्रतिभा प्रदर्शित करने के लिये लेखक को इतना चौडा मैदान मिलता है कि उसको कोई अवसर अपनी असमर्थता के निराकरण का नही रह जाता। न यहॉ छदकी व्यवस्था उसकी वाक्यावली के पॉवो को जकडती है न तुक का बखेडा उसको प्रगति मे बाधा डालता है। जी चाहे बडे वाक्य लिखिये, जी चाहे छोटे न कल्पना की उडान मे आपको कोई रुकावट रहेगी और न अलकारो की संयोजना मे किसी प्रकार को बाधा। अतएव यह स्पष्ट है कि संस्कृत का उक्त कथन सत्यता मूलक है।

मनुष्य उस आनद को प्राय छन्द, लय, सगीत, आदि से अलंकृत वाक्यावलीही मे व्यक्त करता है जो ससारमे चारो ओर दिखायी पडनेवाले सौन्दर्य्य के कारण उसके हृदयमे उत्पन्न होता रहता है। दैनिक जीवन मे आठो पहर प्रत्येक विचार को पद्य-बद्ध भाषा मे व्यक्त करना उसके लिये संभव नही। साधारण बात चीत के लिये, समाज मे काम-काज के लिये

पद्य का उपयोग नहीं किया जा सकता। प्रत्येक जाति के जीवन के प्रारंभिक-काल से, निस्संदेह, पद्य की ही ओर विशेष प्रवृत्ति देखी जाती है। परन्तु इसका यह अर्थ नही है कि उस समय गद्य का व्यवहार हो नही होता था। वास्तव मे अपने शैशव-काल मे प्रत्येक जाति उन साधनो और सुविधाओं से रहित होती है जो एक मनुष्य का दूसरे मनुष्य के साथ मिलन अधिक मात्रा मे सम्भव बना सकता है, और न समाज मे दैनिक जीवन की कार्य्यावली ही मे इतनी जटिलता का समावेश हुआ रहता है कि अपनी सिद्धिके लिये वह अधिक-सख्यक मनुष्योंके सहयोगकी अपेक्षा करे। ऐसी अवस्था मे न तो एक मनुष्य के विचारो का दूसरे मनुष्य के विचारो के साथ संघर्ष होता है और न वह आघात प्रतिघात होता है जो सामूहिक जीवन के अन्योन्याश्रित होने का एक स्वाभाविक परिणाम है। इसी कारण प्रत्येक जाति के साहित्य मे सबसे पहले पद्य का और बाद को क्रमश गद्य का विकाश हुआ है।

मनुष्य को अन्य पशुओ की भाँति सबसे पहले अपने लिये आवश्यक भोजन की चिन्ता करनी पडती है। किन्तु उसकी इस चिता मे एक विशेषता है। एक असाधारण बुद्धि उसे अन्य पशुओ से पृथक् करती है। इसी बुद्धि के परिणाम-स्वरूप वह वर्त्तमान ही की चिन्ता से मुक्त होकर सतुष्ट नहीं हो सकता भविष्य के लिये भी प्रयत्न करता रहता है। उसके स्वभाव की यह विशेषता उसे चिरकाल तक अव्यवस्थित जीवन नही व्यतीत करने देती। क्रमश स्त्री-पुत्र आदि से सयुक्त हो कर एक समुचित स्थान मे गृहस्थ जीवन व्यतीत करने मे वह अपने जीवन की सफलता का अनुभव करता है। उसीके ऐसे अनेक परिवारो के एकत्र हो जाने से अथवा एक ही परिवार के कालान्तर मे विकसित हो जाने से एक ग्राम उत्पन्न हो जाता है। शत्रु से अपनी रक्षा करने के लिये इस प्रकार के प्रत्येक ग्राम अपना संगठन व्यक्तियो और परिवारों के पारस्परिक सहयोग पर अवलम्बित रखते है। इस सहयोग का क्षेत्र जितना ही व्यापक होता जाता है, मानव प्रकृति की विभिन्नताओं के कारण पारस्परिक सामञ्जस्य के मार्ग मे उतनी ही पेचीदगी बढती जाती है। फलत. इस सामञ्जस्य की सिद्धि

के लिये मानव मस्तिष्क तरह तरह के व्याख्यानो मे प्रवृत्त होता है। ये व्याख्यान जीवन के व्यवसायिक अङ्ग से इतना अधिक सम्पर्क रखते है कि वे काव्य के विषय हो ही नही सकते । वे सफलतापूर्वक जब चलेगे तब उसी ढग से जिस ढग से वे बातचीत मे व्यक्त होते है। कहने की आवश्यकता नहीं कि बातचीत मे वे गद्य रूप ही मे प्रकट होत है और इस कारण गद्य ही मे उनको अभिव्यक्ति का एक विशेष सस्कार हो जाता है जिससे पाठक को अपने विचार हृदयगम कराने मे लेखक को सुविधा होती है। उक्त व्याख्यान, राजनीति शास्त्र, अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र आदि विषयो से सम्बन्ध रखते है। काल पाकर व्यक्तियो, परिवारो, जातियो का इतिहास लिखा जाता है, जिसमे उन बातो की चर्चा की जाती है जो याद रह कर भविष्य मे आनेवाली पीढियो को किसी भ्रम प्रमाद आदि से बचा सकती है। क्रमश इतिहास, भूगोल ज्योतिष गणित, यात्रा, आदि विषयों की ओर भी ध्यान जाता है और गद्य ही मे इनके लिखे जाने की विशेष उपयुक्तता होने के कारण क्रमश गद्य का विकास हो जाता है।

मानव-समाज के विकास की प्रारम्भिक अवस्था मे कहानिया पद्य ही में लिखी जाती है। ये कहानिया प्राय. वही होती है, जो बच्चो की कल्पना पर प्रभाव डालती है। किंतु ज्यो २ समाज विकसित होता है त्यो त्यो बच्चो की भी प्रवृत्ति सरल बोलचाल की भाषा मे कहानी सुनने और पढने की हो जाती है। विकसित समाज मे व्यक्तियो को अधिकार और कर्त्तव्य का, दैनिक जीवन की छोटी छोटी घटनाओं के क्षेत्र मे सामजस्य करने की इतनी प्रबल आवश्यकता खडी हो जाती है कि कहानी का सहारा लिये बिना काम चलना कठिन हो जाता है। यह कहानी भी पद्य मे किसी भाति लिखी ही नही जा सकती, उसका रूप और प्रकार ही कुछ ऐसा विभिन्न होता है कि पद्य के ढाँचे को वह स्वीकार ही नही कर सकती।

समाज का, एवं व्यक्ति का जीवन किस आदर्श के साँचे मे ढाला जाय—इस प्रश्न की आकर्षकता भी कभी घट नहीं सकती। मृत्यु क्या है? मनुष्य उससे क्यो डरता है? उसका इस भय से किस प्रकार छुटकारा हो सकता है? किस प्रकार का जीवन स्वीकार करने से मनुष्य को अधिक से

अधिक आनन्द मिल सकता है—इन समस्याओ की व्याख्या जितनी उत्त-मता से गद्य मे हो सकती है उतनी पद्य मे नही। आयुर्वेद, विज्ञान, व्याकरण आदि विषयो के सम्बन्ध मे भी यही बात कही जा सकती है।

हिन्दी साहित्य मे गद्य का विकास बहुत विलम्ब से हुआ। इस का प्रधान कारण यह है कि शासको की ओर से हिन्दी गद्य के विकसित होने के लिये सुविधाये नहीं प्रस्तुत की गयीं। हिन्दू राजाओं ने अपने दरबार मे हिन्दी कवियो को तो आश्रय दिया, किन्तु कोई ऐसा काम नहीं किया जिससे हिन्दी गद्य को उभडने का अवसर मिलता। इसका एक कारण यह भी हो सकता है कि हिन्दू समाज का जीवन इतनी संकुचित परिधि के भीतर व्यतीत हो रहा था कि अधिकाश मे उसका ध्यान ही उन दिशाओ मे आकर्षित नही हो सकता था जिनमे गद्य की प्रगति होती है। हिन्दी-गद्य का विकास, संभव है, मुगल राजत्वकाल मे कुछ अग्रसर होता, किंतु टोडरमल ने अदालतो से हिन्दी का बहिष्कार कर के उसे जनता की दृष्टि मे प्राय सर्वथा अनुपयोगी सिद्ध कर दिया। ऐसे समाज मे जिसमे संस्कृत की तुलना मे हिन्दी योही निरादृत थी, जिसमे केशव तुलसी आदि समर्थ कवियो ने भी विद्वानों के विरोध की अवहेलना सकुचते हुये ही किया और जिसमे अब तक अधिकाश मे उतना ही गद्य-साहित्य प्रस्तुत हो सका था जितना भक्तो और धार्म्मिक नेताओ ने अपने श्रद्धालु किन्तु साधारण विद्या-बुद्धि के श्रोताओ और पाठको के लिये टीका-टिप्पणी अथवा कथा वार्त्ता के रूप मे प्रस्तुत किया, कचहरियो से हिन्दी का बहिष्कार बहुत ही हानि कारक मनोवृत्ति का उत्पन्न करने वाला सिद्ध हुआ। यदि हिन्दी को राजाश्रय प्राप्त रहता तो संभवतः हिन्दू समाज मे हिन्दी का सम्मान थोडा बहुत बढता और उससे संस्कृत के धुरंधर विद्वानो को भी हिन्दी में शास्त्रीय विवेचना आदि मे प्रवृत्त होने का प्रलोभन प्राप्त होता। प्रतिभा-शाली हिन्दू लेखकों ने जिस प्रकार उर्दू के विकास मे सहायता पहुँचाई उससे यह स्पष्ट हो जाता है कि समाज मे हिन्दी की तिरस्कृत अवस्था भी हिन्दी-गद्य को प्रगति मे अत्यन्त बाधक सिद्ध हुई।

प्रस्तुत साहित्य के पठन-पाठन एवं, आलोचना-प्रत्यालोचना से भी गद्य-साहित्य का निर्माण होता है। हिन्दी भाषा-भाषी प्रदेश के शासको ने अपनी प्रजा के कल्याणार्थ हिन्दी के विद्यालय स्थापित करने की ओर भी कभी ध्यान नही दिया। सभी साहित्यो मे कहानी और उपन्यास सहज ही बहुत अधिक लोकप्रियता प्राप्त कर लेते है। किन्तु जब तक इनके प्रचार के साधन उपलब्ध न हो तब तक इनका पूरा प्रभाव पडना कठिन हो जाता है। प्रचार की कठिनाइयो के कारण यह स्पष्ट था कि कहानियो और उपन्यासो के लेखको को जनता से कोई सहायता नही मिल सकती थी। रहे राजे महाराजे और कोई कोई हिन्दी कवियो के सरक्षक मुसलमान राज-कुमार और नवाबगण सो उन्हे शृंगारिक अथवा अन्य कविताओ से ही इतना अवकाश नही था कि वे कहानी और उपन्यास रचना को प्रोत्साहन दे कर उसकी ओर समाज की रुचि को बढाते। कहानी और उपन्यास का विकास न होने का एक अन्य कारण भी है और वह यह कि अँगरेजी साहित्य के साथ सम्पर्क होने के पहले हिन्दी लेखको के सम्मुख कहानी और उपन्यास-रचना का वह आदर्श उपस्थित नही था जो समाज की दैनिक समस्याओ को हल करने की ओर विशेष ध्यान देता है, जो कुप्रथाओ पर प्रहार कर के नवीन संस्थाओ और नवीन विचार-शैलियो को रचनात्मक दिशा मे अग्रसर करता है। संस्कृत के 'कादम्बरी' और दशकुमार चरित्र' नामक उपन्यासो से यथेष्ट उपयोगी आधार नही मिल सकता था और न 'हितोपदेश' और 'पचतंत्र' की कहानिया विशेष रूप से मार्ग-प्रदर्शक हो सकती थी। ऐसी अवस्था मे हिन्दी गद्य के विकास मे विलम्ब होना कोई आश्चर्य्य जनक बात नही ।।

दूसरा प्रकरण ।

आदि—काल ।

जैसे राजपूत नरेशों के दरबार मे हिन्दी पद्य का आदिम विकास हुआ वैसे ही गद्य का उद्भव भी वहीं हुआ। बारहवी ई० शताब्दी के बहुत पहले

हो हिन्दी मे पुस्तको की रचना होने लगी थी। किन्तु ये पुस्तके पद्य ही मे लिखी जाती थी। हिन्दी बोलचाल की भाषा थी, किंतु उस बोलचाल का ऐसे गम्भीर अथवा उपयोगी विषयो से सम्बन्ध नही था कि वह लिपि-बद्ध कर ली जावे। धार्मिक आन्दोलनो का भी सम्बन्ध अधिकतर जनता से नही रहता था। हिन्दू आचार्य्यों ने भी उस समय इस बात का प्रयत्न नही किया कि जनसाधारण के लिये धार्मिक सिद्धान्त सुलभ हो जॉय। राजनीतिक हलचल होने पर भी समाचारो के प्रचार का कोई साधन न होने के कारण इस दिशा मे भी गद्य की प्रगति असम्भव थी। शासन-पद्धति एकाधिपत्य मूलक होने के कारण जहॉ कही हिन्दी भाषी नरेशो के राज्य थे वहॉ भी अनेक व्यक्तियो, अथवा व्यक्ति-समूहो के वाद-विवाद का कोई अवसर नही था। ऐसी परिस्थिति मे हमे हिन्दी गद्य का आदिम स्वरूप यदि उन थोडे से परवानो के रूप मे मिलता है जो हिन्दू नरेशो ने अपने कृपा-पात्रो के लिये जारी किये तो आश्चर्य्य ही क्या ? रावल समर सिह और महाराज पृथ्वीराज के ऐसे नौ दान पत्र अबतक उपलब्ध हो सके है। उनमें से दो, मै नीचे लिखता हू। आप उनकी भाषा पर दृष्टिपात करे —

१— स्वस्ति श्री श्री चीत्रकोट महाराजाधीराज तपे राज श्री श्री रावल जी श्री समरसी जो बचनातु दा अमा आचारज ठाकर रुसीकेष कस्य थाने दलीसु डायजे लाया अणी राज मे ओषद थारी लेवेगा, ओषद ऊपरे माल की थाकी है ओजनाना मे थारा वंसरा टाल ओ दुजो जावेगा नही और थारी बेठक दली मे ही जी प्रमाणे परधान बरोबर कारण देवेगा ओर थारा वंस क सपूत कपूत वेगा जी ने गाय गोणो अणी राज मे खाप्या पाप्या जायेगा ओर थारा चाकर घोडा को नामो कोठार सूं चला जायेगा ओर थूं जमाखातरी रीजो मोई मे राज थान बाद जो अणी परवाना री कोई उलंगण करेगा जी ने श्री एक लीग जो की आण हे दुवे पचोली जानकी दास सं० ११३९ कैाती बदी ३ ”

२—“श्री श्री दलीन महाराजं धीराजंनं हिन्दुस्थान राजंधानं संभरी नरेस पुरबदली तषत श्री श्री माहानं राजंधीराजनं श्री पृथीराजी सु साथनं

आचारज रुषीकेस धनत्रि अप्तन तमने का का जीनं के दुवा की आरामं चओजोर्न के रीज मे रोकड रुपीआ ५०००) तुमरे आहाती गोडे का परचा सीवाअ आवेगे। खजानं से इनको कोई माफ करेगे जीन को नेर को के अर्धकारी होवेगे सई दुवे हुकुम के हउमंत राअ संमत ११४५ वर्षे आसाढ सुदी १३'

इस प्रकार के परवाने हिन्दू राज दरबारो मे राज्य की ओर से निकला करते थे। इनकी भाषा तो राजस्थानी है ही, किंतु उसमे एक बात उल्लेख नीय है। उसमे लेवेगा', जायगा', 'करेगा', लाया' आदि खडी बोली की क्रियाओ का व्यवहार किया गया है। ये लेख आनंद संबत् के अनुसार क्रमश सं० ११३९ और स० ११४५ मे लिखे गये। इनमे ९० जोड देने से विक्रमी सं० क्रमश १२२९ और १२३५ हुआ। अतएव स्पष्टहै कि ईस्वी सन् के अनुसार ये बारहवी शताब्दो मे पडते है। इस समय के पूर्व भारतवर्ष मे मुसल्मानो और हिन्दुओ का सम्पर्क हो चुका था, विशेष कर मुसल्मानो और राजपूतो का सम्बन्ध युद्ध के कारण प्राय होता ही रहता था। खडी बोली की जिन क्रियाओ की चर्चा ऊपर की गयी है वे इसी सम्पर्क का फल जान पडती है।

राजस्थानी बोलीके इस गद्य को अधिक विकसित होनेका कोई अवसर नहीं मिला। कारण वही क्षेत्र-विस्तार का अभाव। इस ओर से निराश हो कर हिन्दी गद्य को किसी अन्य दिशा मे पनपने की प्रतीक्षा करनी पडी। चौदहवी शताब्दी में ऐसा समय भी आ गया. सातवीं शताब्दी से ले कर बारहवीं शताब्दी तक बौद्धों के असंयत जीवनके कलुषित आदर्श से हिन्दू समाज म्लान हो रहा था। स्वामी शंकराचार्य्य ने बौद्धमत के पॉव तो उखाड दिये थे, किन्तु उसके मूल सिद्धान्तों, उपदेशों आदि को भूल कर उच्छृंखल जीवन व्यतीत करनेवाले सिद्धो तथा अन्य साधुओ पर से समाज की श्रद्धा का सर्वथा लोप करा देने का अवकाश और अवसर उन्हे प्राप्त नहीं हो सका था। यह काम सन् १३५० ई० के लगभग महात्मा गोरखनाथ ने किया। उन्हों ने सदाचार और धर्म्म के तत्व

की ओर समाज का ध्यान आकर्षित किया और इसी सूत्र से हिन्दी के गद्य-साहित्य की सृष्टि कर प्रथम हिन्दी-गद्य-लेखक के रूप मे वे कार्य-क्षेत्र मे अवतीर्ण हुये ।

गुरु गोरखनाथकी पद्य की भाषासे गद्यकी भाषामे कुछ विशेषता है। पद्य की भाषा मे उन्हो ने अनेक प्रान्तो के शब्दो का प्रयोग किया है । किन्तु गद्य की भाषा मे यह बात नहीं है, वह कही कहीं राजस्थानी मिश्रित व्रज-भाषा मे है। उसमे संस्कृत तत्सम शब्दो का अधिक प्रयोग अवश्य मिलता है। यह बात आप नीचे के अवतरण को देख कर सहज मे ही समझ सकेगे —

" सो वह पुरुष संपूर्ण तीर्थ अस्नान करि चुकौ, अरु संपूर्ण पृथ्वी ब्राह्मननि को दै चुकौ, अरु सहस्र जग करि चुकौ, अरु देवता सर्व पूजि चुकौ, अरु पितरनि को संतुष्ट करि चुकौ, स्वर्गलोक प्राप्त करि चुकौ जा मनुष्य के मन छन मात्र ब्रह्म के बिचार बैठो ।, "

'श्री गुरु परमानन्द तिन को दण्डवत है । है कैसे परमानन्द आनन्द स्वरूप है सरीर जिन्हि कौ । जिन्हों के नित्य गाये ते सरीर चेतन्नि अरु आनन्दमय होतु है। मै जु हौ गोरष सो मछन्दरनाथ को दण्डवत करत हौ । है कैसे वै मछन्दरनाथ। आत्मा जोति निश्चल है, अन्तहकरन जिन्ह कौ अरु मूल द्वार तै छह चक्र जिन्हि नीकी तरह जानै । अरु जुग काल कल्प इनि को रचना तत्व जिनि गायो । सुगन्ध को समुद्र तिन्हि कौ मेरो दण्डवत । स्वामी तुम्हे तो सत गुरु अम्है तौ सिषसबद एक पुछिबा दया करि कहिबा मनि न करिबा रोस । '

उक्त अवतरण मे 'सम्पूर्ण', 'प्राप्त', 'मनुष्य', 'कल्प , 'स्वरूप', 'नित्य' सन्तुष्ट', 'स्वर्ग', 'ब्रह्म', 'निश्चल , 'समुद्र , रचना', तत्व , आदि शब्द संस्कृत के है। 'पुछिबा' 'कहिबा' 'करिबा' अम्है' आदि शब्द राज स्थानी बोली के है । अवतरण का शेष भाग प्राय पूरा का पूरा शुद्ध व्रजभाषा मे लिखा गया है।

तीसरा प्रकरण ।

विकास-काल ।

गोरखनाथ के बाद लगभग दो शताब्दियां गद्य-रूपी नव जात पौधे के लिये मरुभूमिसी सिद्ध होकर बीत गयीं । सोलहवीं शताब्दी मे महाप्रभु श्री वल्लभाचार्य ने राधा-कृष्ण विषयक भक्ति का एक प्रवल स्रोत उत्तरी भारत मे प्रवाहित किया । इस अपूर्व प्रवाह ने हिन्दू समाज के हृदय को इतना अधिक आकर्षित किया कि थोडे ही काल मे कृष्णावत सम्प्रदाय की विशाल मण्डली उत्तरीय भारत मे अतुल प्रभाव-विस्तार करती जन समुदाय को दृष्टिगत हुई । उसी समय महाप्रभु के पुत्र गोस्वामी विट्ठलनाथ ने 'राधाकृष्ण-विहार' नाम की एक पुस्तक लिखी । इस पुस्तक की भाषा व्रजभाषा है, किंतु कही कहीं उसमे अन्य प्रान्तीय शब्दो का भी समावेश कर लिया गया है । निम्नलिखित अवतरण देखिये —

'जम के सिषर पर शब्दायमान करत है, त्रिविध वायु बहत है, हे निसर्ग स्नेहार्द्र सषी कू संबोधन प्रिया जू नेत्र कमल कूं कछुक मुद्रित दृष्टि होय के बारंबार कछु सखी कहत भई यह मेरो मन सहचरी एक क्षण ठाकुर को त्यजत भई ।" इस छोटे से अवतरण मे 'शब्दायमान', 'त्रिविध', 'निसर्ग, 'स्नेहार्द्र', 'नेत्र', 'मुद्रित', 'दृष्टि', 'क्षण', आदि संस्कृत शब्दो का प्रयोग स्वतंत्रता के साथ किया गया है । श्री मद्भागवत का प्रचार और राधा-कृष्ण-लीला का साहित्य क्षेत्र में विषय के रूप में प्रवेश करना ही इस सस्कृत-शब्दावली की लोक-प्रियता तथा उसके फलस्वरूप हिंदी गद्य मे उसके स्थान पाने का कारण जान पडता है। प्रान्तीय भाषाओ के प्रभाव भी उक्त अवतरण मे दिखायी पडते है 'पै' के स्थान मे 'पर' और को', कौ अथवा 'को' के स्थान पर कूं' का प्रयोग ऐसे ही प्रभावो का परिणाम है । गोस्वामी विट्ठलनाथ के पुत्र गोस्वामी गोकुलनाथ ने भी २५२ एवं ८४ वैष्णवो की वार्त्ता नामक दो ग्रंथ बनाये जिनमे उन्होंने बहुत मधुर भाषा मे उक्त वैष्णवों के सम्बन्ध मे कुछ ज्ञातव्य बाते लिखीं । गोस्वामीजी की भाषाके दो नमूने दिये जाते है

१—"ऐसौ पद श्री आचार्य जी महाप्रभून के आगे सूरदास जी ने गायौ से सुनि के श्री आचार्यजी महाप्रभून ने कह्यौ जो सूर ह्वै के ऐसो घिघियात काहे को है कछू भगवल्लीला वर्णन करि। तब सूरदास ने कह्यौ जो महाराज हौं तो समझत नाही। तब श्री आचार्यजी महाप्रभून ने कह्यौ जो जा स्नान करि आउ हम ताको समझावेगे तब सूरदासजी स्नान करि आये तब श्री महाप्रभू जी ने प्रथम सूरदास जी को नाम सुनायौ पाछे समर्पण करवायौ और फिर दशम स्कंध की अनुक्रमणिका कही सो ताते सब दोष दूर भये। तातै सूरदास जी कौ नवधा भक्ति सिद्ध भयी। तब सूरदास जी ने भगवल्लीला वर्णन करी।'

२—"सो श्री नन्दग्राम मे रहतो हतो। सो खंडन ब्राह्मण शास्त्र पढ्यो हतो। सो जितने पृथ्वी पर मत है सब को खण्डन करतो ऐसो वाको नेम हतो। याही ते सब लोगन वाको नाम खण्डन पार्‍यो हतो। सो एक दिन श्री महाप्रभू जी के सेवक वैष्णवन की मण्डली मे आयो। सो खंडन करन लाग्यों। वैष्णवन ने कहो जो तेरो शास्त्रार्थ करनो होवे तो पंडितन के पास जा हमारी मडली मे तेरे आयबे को काम नाहीं। इहा खंडन मंडन नहीं है।"

३—'नन्ददास जो तुलसी दास के छोटे भाई हते। सो विनकू नाच तमासा देखबे को तथा गान सुनबे को शोक बहुत हतो।"

गोस्वामी गोकुलनाथ की भाषा मे फारसी के शब्द भी आये है— यह बात ऊपर दिये गये तृतीय अवतरण के तमासा' और शोक' आदि शब्दो को देखने से प्रमाणित होती है। उसमे गोस्वामी विट्ठलनाथ की अपेक्षा अधिक विशुद्ध ब्रजभाषा लिखने का प्रयत्न भी किया गया है। यह बात गोस्वामी विट्ठलनाथ जी और गोकुलनाथ जी के कुछ क्रियापदो की तुलना करने से स्पष्ट हो जायगी। जहाँ गोस्वामी विट्ठलनाथ ने त्यजत भयी और 'कहत भयी' आदि लिखा है वहा गोकुलनाथ ने लगनो', धातु के भूत काल के रूप मे 'लगत भयी' न लिख कर 'लाग्यौ' ही लिखा है। फिर भी दोनो

मे एक समानता अवश्य है और वह है खडी बोली के शब्दों की ओर कम या अधिक मात्रा मे प्रवृत्ति । उनको नीचे की पक्तियो के क्रियापदो को भी देखिये । चिन्हित शब्द स्पष्ट रूप से खडी बोली के है ।

"सो एक दिन नन्ददास जो के मन मे ऐसी आई । जो जैसे तुलसी दास जी ने रामायण भाषा करी है । सो हमहू श्री मद्भागवत भाषा करे । ये बात ब्राह्मण लोगन ने सुनी तब सब ब्राह्मण मिलके श्री गुसाई जो के पास गये । सो ब्राह्मणो ने बिनती करी । जो श्री मद्भागवत भाषा होयगी तो हमारी आजीविका जाती रहेगो"

गोस्वामी गोकुलनाथ ने भी 'जितने,' 'होवे', 'नही' आदि शब्दो का समावेश करके उनके प्रति अपनी अनुकूलता प्रकट की है ।

खडी बोली को ओर इस प्रवृत्ति के बढने के कारण थे । मुसलमान शासको ने हिन्दू जनता के भावो से परिचय प्राप्त करने के लिये न केवल हिन्दी बोलने की ओर ध्यान दिया था बल्कि उसमे रचनाये करना भी प्रारम्भ किया था । उन्हे किसी विशेष प्रान्तीय भाषा से द्वेष न था न असाधारण अनुराग किन्तु सबसे पहले उनका सम्पर्क ऐसे प्रान्तो से हुआ जिनमे खडी बोली का विशेष प्रचारथा । इसमे सन्देह नही कि अमीर खुसरो ने खडी बोली और ब्रजभाषा दोनो मे कविता की, किन्तु ब्रजभाषा के काव्य-विषयक संस्कार के कारण हो कभी कभी वे उसकी ओर झुक जाते थे । जहाँ कहीं पहेलियों, मुकरियों आदिपर उनकी लेखनी चली है वहाँ खडी बोली का अधिक मात्रा मे शुद्ध और सरसरूप ही देख पडता है । मुसलमानो की खडी बोली के प्रति इस अनुकूल प्रवृत्ति ने हिन्दी भाषी प्रान्तों की जनता मे इस बोली के अनेक शब्दो को क्रमश लोक-प्रिय बना दिया, और जनता मे आदृत होकर धीरे धीरे कथा वाचको, महात्माओं और अन्त मे लेखको की रचनाओं मे भी वे शब्द पहुँचे । नीचे सन् १५७२ के लगभग 'चन्द छन्द बरनन की महिमा' नामक पुस्तक लिखने वाले गंगाभाट की भाषा के दो नमूने देखिये । उनमे आप को

गोकुलनाथजी की भाषाकी अपेक्षा अधिक खडी बोलीके शब्दों का व्यवहार मिलेगा:—

१— 'तब दामोदर दास हरसानी ने बिनती कीनी जो महाराज आप याको अङ्गीकार कब करोगे तब श्री आचार्य्य जी महाप्रभून ने दामोदरदास सो कह्यो जो यासो अब वैष्णव को अपराध पडैगो तौ हम याको लक्ष जन्म पाछे अङ्गीकार करंगे।"

२—सिद्धि श्री १०८ श्री श्री पात साहि जी श्री दलपति जी अकबर-साह जो आम खास मे तषत ऊपर बिराजमान हो रहे। और आम खास भरने लगा है जिसमे तमाम उमराव आय आय कुर्निश बजाय जुहार कर के अपनी अपनी बैठक पर बैठ जाया करे अपनो अपनी मिसिल से।"

उक्त अवतरणो मे करोगे', कहैंगे', ऊपर', हो रहे', 'भरने लगा है', 'जिसमे' 'जुहार करके', 'अपनी' आदि शब्दो पर ध्यान देनेसे यह बात स्पष्ट हो जायगी। 'आम' 'खास', 'तमाम', 'उमराव', 'कुर्निश' 'मिसिल', आदि शब्दो के समावेश से'हिन्दी लेखन-शैली पर राज दरबार के फ़ारसी भाषा विषयक प्रभाव की सूचना मिलती है।

सत्रहवीं शताब्दी के आरम्भ मे भक्तवर नाभादास ने गोस्वामी बिट्ठल नाथ की भाषा से मिलती जुलती भाषा लिखी। उनकी निम्नलिखित पंक्तियों के रेखाङ्कित शब्दोकी ओर आप ध्यान दे।

तब श्री महाराज कुमार प्रथम वशिष्ट महाराज के चरन छुइ प्रनाम करत भये। फिर अपर वृद्ध समाज तिनको प्रनाम करत भये। फिर श्री राजाधिराज जू को जोहार करि कै श्री महेन्द्र नाथ दशरथ जू के निकट बेठत भये।

इसी शताब्दी के प्रथम चरण मे महात्मा तुलसी दास द्वारा लिखित एक पंच नामा मिलता है जिसमे उन्होने यत्र-तत्र फारसी भाषा के शब्दों का भी व्यवहार किया है। उसकी कतिपय पंक्तियों को देखिये —

म० १६६९ समये कुआर सुदी तेरसी बार शुभ दिने लिखीत पत्र अनन्दराम तथा कन्हई के अ श विभाग पूर्व मु आगे जे आग्य दुनहु जने मागा जे आग्य मै शे प्रमान माना दुनहु जने विदित तफसील अंश टोडरमलु के माह जे विभाग पदु होत ग । मोजे भदेनीमह अ श पाँच तेहिमँह अंशदुइ आनन्दराम तथा लहरतारा सगरेउ तथा छितुपुरा अंश टोडरमलुक तथा तमपुरा अंश टोडरमल की हील हुज्जती नास्ती ।

तफसीलु', माह' 'हुज्जती' आदि शब्द फारसी के है और तुलसीदास जी द्वारा उनका ग्रहण उनकी उस प्रवृत्ति का सूचक है जिसका अनुसरण उन्होने यत्र-तत्र अपनी पद्यात्मक रचनाओं मे भी किया है ।

महाकवि देव का काव्य-रचना काल सोलहवी शताब्दी के प्रारम्भिक बर्षो तक रहा है । इन्होने गद्य मे भी कुछ लिखा हे । इनकी गद्य की भाषा मे सस्कृत के तत्सम शब्दो की बहुलता दर्शनीय है । निम्न लिखित पंक्तियो को देखिये —

'महाराज राजाधिराज ब्रजजन समाज विराजमान चतुर्दश भुवन विराज वेदविधि विद्या सामग्री सम्राज श्री कृष्णदेव देवाधि देव देवकी नंदन जदुदेव यशोदानन्द हृदयानद कंसादि निकंदन वंसावतंस असावतार सिरोमणि विष्ठपत्राय निविष्ट गरिष्ट पद त्रिविक्रमण जगत्कारण भ्रम निवारण मायामय विभ्रमण सुररिषि संगमन राधिका रमण सेवक वरदायक गोपी गोप कुल सुखदायक गोपाल बाल मंडली नायक अघघायक गोवर्धन धारण महेन्द्र मोहापहरण दीन जन सज्जन सरण ब्रह्मविस्मय विस्तरण परब्रह्म जगज्जन्म मरण दु ष संहरण अधमोद्धरण विश्वभरण विमल जस कलिमल बिनासन गरुडासन कमल नयन चरण कमल जल त्रिलोको पावन श्री वृन्दावन विहरण जय जय ।

देव महाकवि थे और साधारण सी बात को भी अत्यन्त अलंकृत शैली मे लिखने की उनकी प्रवृत्ति सर्वथा स्वाभाविक थी ।

सत्रहवी शताब्दी के अन्य लेखक, जिनके गद्य का कुछ परिचय हमे

मिलता है, बनारसीदास और जटमल है। बनारसीदासकी भाषामे तो खडी बोलीकी कुछ क्रियाओंका असंदिग्ध प्रयोग भी मिलता है। वे लिखते है —

' सम्यग् दृष्टि कहा सो सुनो। संशय विमोह विभ्रम तीन भाव जामै नाही सो सम्यग् दृष्टी । संशय, विमोह, विभ्रम कहा ताको स्वरूप दृष्टान्त करि दिखाइयतु है सो सुनो।"

इन तीन वाक्यो के भीतर 'सम्यग् ', 'दृष्टि' संशय', 'विमोह वि-भ्रम' 'स्वरूप', 'दृष्टान्त' आदि संस्कृत के तत्सम शब्दो के प्रयोग के साथ साथ 'कहा', 'सुनो' आदि क्रियाओका प्रयोग ध्यान देने योग्य है। गोराबादल की कथा लिखने वाले जटमल की रचना से भी यही बात पायी जाती है। उनकी भाषा के दो नमूने देखिये —

१—"हे बात की चीतौडगडको गोरा बादल हुआ है, जिनकी वार्ता को किताब हिदवी मे बना कर तय्यार करी है। गोरे का भाव रत आवे का बचन सुन कर आपने षावन्द की पगडी हाथ मे लेकर बाहा सती हुई सो सिवपुर मे जाके बाहा दोनो मेले हुवे।"

" उस जग आलीषान बाबा राज करता है। मसीहका लडका है सो सब पठानों मे सरदार है, जयसे तारो मे चन्द्रमा सरदार है ओयसा वो हे।

२—" ये कथा सोल से असी के साल मे फागुन सुदी पूनम के रोज बनाई। ये कथा मे दो रस है—वीर रस व सिंगार रस है, सो कथा मोर-छडो नाँव गाँव का रहनेवाला कबेसर । उस गाँव के लोग भोहोत सुखी हे। घर घर मे आनन्द होता है कोई घर मे फकीर दीखता नही।

उक्त अवतरण मे 'हुआ है', 'सुन कर', 'लेकर', 'हुई', 'जाके', हुवे', 'करता है', 'बनायी', 'रहनेवाला', 'होता है', 'दीखता नही' आदि खडी बोली के क्रिया पदो और संज्ञा-शब्दों का व्यवहार हुआ है। साथ ही 'किताब', 'षावन्द', 'सरदार' आदि फारसी शब्दो का समावेश इसमे भी किया गया है। 'जयसा' और 'ओयसा 'जैसा' और 'वैसा' के बहुत निकट है यह स्पष्ट है। यदि थोड़े से राजस्थानी प्रयोगो की ओर ध्यान न दिया जाय तो यह अवतरण खडी बोलीका गद्य कहा जा सकता है।

सोलहवी शताब्दी मे धार्मिक आन्दोलनो के कारण जनता और महात्माओ का जो सम्पर्क बढा था, वह सत्रहवी शताब्दी मे आकर शिथिल पड गया। इस शिथिलता के कारण तथा अन्य किसी विचार-प्रवाह के अभाव मे गद्य के सामने फिर एक रुकावट खडी हो गयी। किन्तु वह ठहर न सकी, कारण यह हुआ कि हिन्दी के कुछ महाकवियो की रचनाओका बहुत प्रचार हो जानेके कारण जनताकी उनके प्रति कुछ जिज्ञासा बढी कुछ इस कारणसे कुछ धार्मिक सस्कारोसे प्रेरित होकर कुछ काव्य-कौशल के सम्बन्ध मे अधिक परिचय प्राप्त करने की इच्छा से रामचरित मानस' कवि प्रिया' आदि माननोय ग्रथो पर टोकाओ की माँग हुई। इन टोकाओ के रचयिताओ ने यद्यपि गद्य की भाषा का परिष्कार करने मे कोई सफलता लाभ नही की, तथापि अन्धकारमयी रात्रिमे नक्षत्रोंकी भाति उजाला फैलाने का उद्योग जारी रक्खा।

सत्रहवी शताब्दी मे केशवदास कृत कवि प्रिया की टोका सुरतिमिश्र ने सन १७१० के लगभग लिखी। उनकी भाषा के नमूने देखिये.—

१—"सीसफूल सुहाग अरु बेदा भाग ए दोऊ आये पॉवडे सोहे सोने के कुसुम तिन पर पैर धरि आये है।"

२—"कमल नयन कमल से है नयन जिनके कमलद बरन कमलद कहिये मेघ को वरण है स्याम स्वरूप है कमल नाभि श्रीकृष्णको नाम हो है कमल जिनकी नाभि ते उपज्यो है कमलाप कमला लक्ष्मी ताके पति है तिनके चरण कमल समेत गुन को जाप क्यों मेरे मन मे रहो"।

अठारहवीं शताब्दी मे भिखारीदास ने काव्य-रचना के अतिरिक्त जो थोडा बहुत गद्य लिखा उसका नमूना नोचे दिया जाता है -

'धन पाये ते मूर्ख हू बुद्धिवन्त ह्वै जातु है और युवावस्था पायेते नारी चतुर ह्वै जाति है यह व्यंग्य है। उपदेश शब्द, लक्षण सो मालूम होता है औ वाच्य हू मे प्रगट है।'

इसी शताब्दी मे किशोरदास ने 'शृंगार शतक' की टीका लिखी।

इनका कुछ विशेष परिचय नहीं प्राप्त है। इन्हें कुछ लोग सत्रहवीं शताब्दी में उत्पन्न बतलाते हैं। इनकी भाषा का नमूना देखिये:—

"तब इतने बीच कस्यप की स्त्री दिति कस्यप के आगे ठाढ़ो भई ठाढ़े ह्वै करि कहनि लगो कि अहो प्राणेश्वर कस्यप देषतु अदितिहिँ आदि दै जितीक मेरी सब सपत्नी हैं सु तिन सपत्नीन के पुत्रन को मुषु देषतु मेरे परमु संताप होतु है तब यह सुनि कस्यप यह विचारी कि स्त्री की संगति अर्थु, धर्मु, काम मोछ होतु है। अरु स्त्री की संगति ग्रहस्थु और तिनिहूँ आश्रमनि की पालना करतु है। अरु अपुन संसार समुद्र के पार होतु है।"

चौथा प्रकरण

विस्तार—काल

उन्नीसवीं शताब्दी में हिन्दी गद्य को सबल बनाने के लिये ख़ूब उद्योग किया गया। इसके पूर्वार्द्ध में उसे विभिन्न मार्गों से विस्तार प्राप्त हुआ और उत्तरार्द्ध में वह समुन्नति को ओर अग्रसर हुआ। इसीसे हमने पूर्वार्द्ध को विस्तारकाल माना है। और उत्तरार्द्ध को उन्नति काल॥

मैं यह कह चुका हूं कि सत्रहवीं और अठारहवीं शताब्दीमें टीकाकारों ने हिन्दी गद्य के मैदान को उत्सन्न हो जाने से बहुत कुछ बचाया। उन्नीसवीं शताब्दी के आरम्भ में भी उनकी एक श्रेणी कार्य्य करती दृष्टिगोचर होती है। इन टीकाकारों में जानकी प्रसाद और सरदार कवि मुख्य थे। जानकी प्रसाद को भाषा का एक नमूना देखिये:—

१—बालक जैसे पगं से दाबि पङ्क कहे कीच को पेलि के पताल को पठावत है तैसे ये (गनेश जो) कलुष जे पाप हैं तिनका पठावत हैं। इहाँ गजराज को त्याग करि बालक सम यासों कह्यो, पद्मिनी पत्रादि

तोरन मे बालक का उत्साह रहत है तैसे गणेश जू को विपत्यादि विदारण मे बडो उत्साह रहत है कौतुक ही विदारत है ।

स्वभावत हिन्दी के इन टीकाकारो ने सस्कृत के टीकाकारो का पदानुसरण किया, क्यो कि उनके सामने संस्कृत ही की टीकाओ का आदर्श उपस्थित था। हिन्दी की इन टीकाओ की भाषा जो विशेष जटिल हो गयी है उसका कारण बहुत कुछ इस सस्कृत शैली का अनुसरण है। मै यह कह आया हू कि व्रजभाषा गद्य सबल आन्दोलनो और महापुरुषों के विचार प्रगट करने का साधन होने के अभाव मे परिष्कार से वंचित रहा। यहा यह भी कह देना चाहता हूं कि क्रमश समय का प्रवाह भी उसे ऐसे अवसर देने के प्रतिकूल हो गया था। इसका कारण है क्रमश खडी बोली की क्रियाओ और सज्ञा-शब्दो का उर्दू के सहयोग से बहुत अधिक लोक-प्रियता प्राप्त कर लेना । सरकार की कृपा से उन्नीसवीं शताब्दी के आरम्भ मे उर्दू का प्रवेश कचहरियो मे हो गया था, सर्व-साधारण का सम्बन्ध कचहरी से होता ही है, ऐसी अवस्था मे उर्दू से उनका प्रभावित होना स्वाभाविक था। मुसलमान लेखक अपना रंग अलग जमा रहे थे। प्रोफेसर मुहम्मद हुसेन आज़ाद के निम्नलिखित अवतरण को देखिये। उसमे पूर्वकालिक हिन्दी गद्यका काया पलट मूर्तिमन्त होकर विराजमान है ।

फूलो के गुच्छे पड़े झूम रहे है, मेवेदाने ज़मीन को चूम रहे है। नीम के पत्तो को सब्ज़ी और फूलो की सफेदी बहार पर है। आम के मोर मे फूलो की महँक आती है। भीनी भीनी बू जी को भाती है। जब दरख्तो की टहनिया हिलती है, मौलसिरी के फूलो का मेँह बरसना है, फल फलारी की बौछाड हो जाती है। धीमी धीमी हवा उनकी बू बास मे लसी हुई रविशो पर चलती है। टहनियाँ ऐसी हिलती है जैसे कोई जोबन की मतवाली अठखेलियाँ करती चली जाती है। किसी टहनी मे भौंरे की आवाज किसी मे मक्खियो की भनभनाहट, अलग ही समाँ बाध रही है। परिन्द दरख्तों पर बोल रहे है और कलोल

कर रहे है ।" मुसलमान लेखको ने फारसी और अरबी के शब्दो का सम्मिश्रण कर के खडी बोली को खूब मॉजा, राजाश्रय भी उसको प्राप्त हो हो गया था, ऐसी दशा मे ब्रजभाषा गद्य को उससे सफलता पूर्वक भिड सकने का अवसर ही नहीं रह गया । खडी बोली के विशेष बलशाली हो जाने का एक कारण यह भी था कि उसका प्रचार किसी प्रान्त विशेष तक परिमित नही था । मुसल्मानो का शासन, शासन नहीं तो प्रभाव अनेक शताब्दियो तक भारतवर्ष के प्राय समस्त भागो पर पडा । इस लिये मुसल्मानो द्वारा प्रभावित खडी बोली को, जिसका नाम कालान्तर मे उर्दू पड गया, प्राय समस्त प्रान्तो मे वह अनुकूलता प्राप्त हुई जो ब्रजभाषा-गद्य को अपने सर्वोच्च गौरव के दिनो मे भी नहीं मिल सकी । धीरे धीरे अनेक हिन्दू लेखको ने भी मुसलमान लेखको द्वारा प्रस्तुत भाषा मे रचना आरंभ की । मुंशी सदा सुख लाल 'नियाज़', जो अठारहवी शताब्दी के अन्तिम दशक मे ईस्ट इन्डिया कम्पनी की नौकरी मे थे और चुनार मे काम करते थे, उन हिन्दू लेखको मे से एक थे, जिन्होने उर्दू और फारसी मे रचनाये कीं । मुन्शी जी भगवद्भक्त थे, जहॉ उन्होने अधिकाश परिश्रम उर्दू और फारसी ही मे किया, वहॉ भगवद्भजन के उद्देश्य से श्री मद्भागवत का अनुवाद हिन्दी मे भी किया । उनका यह अनुवाद 'सुख सागर के नाम से प्रसिद्ध है । सुखसागर की भाषा का एक नमूना देखिये —

'यद्यपि ऐसे विचार से हमे लोग नास्तिक कहेगे हमे इस बात का डर नहीं । जो बात सत्य होय उसे कहा चाहिये कोई बुरा माने कि भला माने विद्या इसी हेतु पढते है कि तात्पर्य इसका (जो) सतोवृत्ति है वह प्राप्त हो और उससे निज स्वरूप मे लय हूजिये । इस हेतु नहीं पढते है कि चतुराई की बाते कह के लोगों को बहकाइये और फुसलाइये और सत्य छिपाइये व्यभिचार कीजिये और सुरापान कीजिये, और धन द्रव्य इकठौर कीजिये और मनको जो तमोवृत्ति से भर रहा है निर्मल न कीजिये । तोता है सो नारायण का नाम लेता है, परन्तु उसे ज्ञान तो नही है ।"

उर्दू लिखने मे मँजी हुई लेखनी से लिखा हुआ होनेपर भी फारसी का

एक शब्द इस अवतरण मे नही दिखायी पडता। इसका कारण धार्म्मिक संस्कार था जो फ़ारसी शब्दो का समावेश करने के अनुकूल नहीं था। मुन्शी सदासुख लाल ने एक ओर तो कथा-वार्त्ता की पूर्व शैलो के अनुसार कुछ प्रचलित शब्दो और वाक्यो को ग्रहण किया, दूसरी ओर खडी बोली की क्रियाओ, सर्वनामो और सज्ञा शब्दो को। इस सयोग ने सोने मे सुहागे का काम किया।

सैयद इन्शा अल्ला खा के पूर्वज समरकद से भारत मे आये थे। वे पहले तो मुगल दरबार के आश्रित हो कर रहे। किंतु जब मुग़ल साम्राज्य का अन्त हो गया तब इन्शा के पिता दिल्ली से मुर्शिदाबाद चले गये। इन्शा की शिक्षा बहुत अच्छी हुई। अल्प वय मे वे फारसी और उर्दू मे अच्छी कविता करने लगे थे। इनकी विलक्षण प्रतिभा ने हिन्दी गद्य मे भी अपनी विलक्षणता दिखलायी। व्रजभाषा के गद्य मे कथा-वार्ता का एक देशीय विकाश हुआ था। अब यदि खडी बोली मे मुन्शी सदासुख लाल ने धार्मिक कथा का वर्णन किया तो इन्शा अल्ला खा ने बहुत ही रोचक और सरल तथा महावरेदार ठेठ भाषा मे प्रेम कहानी लिखी, जिसकी लोक प्रियता का क्षेत्र स्वभावत बहुत चौडा होता है, और जो अधिकाधिक प्रचलित होकर गद्य के स्वरूप को निखारने मे बहुत बडा काम करती है। इन्शा की भाषा के दो नमूने देखिये —

१— 'एक दिन बैठे बैठे यह बात अपने ध्यान मे चढी कि कोई कहानी ऐसी कहिये कि जिसमे हिन्दवी छुट और किसी बोली का पुट न मिले तब जाके मेरा जी फूल को कली क रूप मे खिले। बाहर की बोली और गॅवारी कुछ उसके बीच मे न हो एक कोई बडे पढ़े-लिखे पुराने धुराने, डॉग, बूढ़े घाग यह खटराग लाये और लगे कहने यह बात होती दिखायी नहीं देती। हिन्द्वीपन भी न निकले और भाषापन भी न हो। बस जैसे भले लोग —अच्छो से अच्छे—आपस मे बोलते चालते है ज्यो का त्यों वही सब डौल रहे और छॉव किसी की न पडे, यह नहीं होने का।

२—'जब दोना महाराजों मे लडाई होने लगी, रानी केतकी सावन-भादों के रूप रोने लगी।'

३— इस सिर झुकाने के साथ हो दिन रात जपता हू उस अपने दाता के भेजे हुये प्यारे को।"

४—' सिर झुका कर नाक रगडता हू उस अपने बनाने वाले के सामने जिसने हम सब को बनाया और बात को बात मे वह कर दिखाया कि जिसका भेद किसी ने न पाया।'

इन्शा अल्ला को भाषा मे जहाँ सरलता है जनता को देनिक बोलचाल की भाषा से शब्दावली चुनने को प्रवृत्ति है वहा उनकी शैली पर फारसी का प्रभाव स्पष्ट रूप से दृष्टि गोचर होता है। तीसरे अवतरण मे आप देखेगे कि वाक्य की वर्तमान कालिक सकर्मक किया जपता हू' पहले लिखी गयी है और उस क्रिया का कर्म 'उस अपने दाता के भेजे हुए प्यारे को' बाद को। भारतोय शैली मे कर्म पहले लिखा जाता है और उसकी क्रिया बाद को। चौथे अवतरण मे नाक रगडता हू' पहले लिख कर 'उस अपने बनाने वाले के सामने जिसने हम सब को बनाया लिखना भी प्राय उक्त शैली का ही अनुसरण है।

इंशा की भाषा मे जीवन है, चचलता है—वह जीवन और चंचलता जो प्रेम-कथा को अत्यन्त सरस और आकर्षक बना देती है। कतिपय आलोचको ने इ शा की भाषा मे गूढ विषयो के प्रतिपादन की क्षमता का अभाव बतलाया है। यह बात सच है। उनकी भाषा अपने ही आनन्द के उन्माद से नृत्य करती सो चलती है। शब्द विन्यास अनुप्रास से अलंकृत है, जिससे वाक्यो के शरीर मे एक अपूर्व सौष्ठव दृष्टि गोचर होता है। पुराने-धुराने, डॉग, बाग, खटराग, 'पुट न मिले', 'कली के रूप मे खिले', 'हिन्दवी छुट और किसी बोली का पुट' आदि प्रथम अवतरण के रेखाङ्कित शब्दो को देख कर आप को मेरे इस कथन की सत्यता ज्ञात हो जायगी। इन सब बातो के अतिरिक्त इंशा ने जिस बहुत बडी विशेषता

का हिन्दी गद्य मे समावेश किया वह है मुहावरों और कहावतों का प्रयोग, निम्न लिखित वाक्यो के चिन्हित शब्दों और पदो को देखिये —

१— जिसका जी हाथ मे न हो, उसे ऐसी लाखो सूझती है।'

२— चूल्हे और भाड मे जाय यह चाहत

३ अब मैं निगोडी लाज से कुट करती हू।'

४—'मै कुछ ऐसा बडबोला नहीं जो राई को पर्बत कर दिखाऊँ और झूठ-सच बोल कर उँगलिया नचाऊँ और बेसिर बे ठिकाने की उलझी-सुलझी बाते पचाऊँ।'

५— दहना हाथ मुंहपर फेर कर आप को जताता हू, जो मेरे दाता ने चाहा तो वह ताव भाव और कूद-फाद और लपक-झपक दिखाऊँ जो देखते ही आप के ध्यान का घोडा, जो बिजली से भी बहुत चंचल चपलाहट मे है, अपनी चौकडी भूल जाय।'

अब कान लगा के, आखे मिला के, सन्मुख हो के टुक इधर देखिये, किस ढब से बढ चलता हू और अपने फूल की पंखडी जैसे होठो से किस रूप के फूल उगलता हू।'

संस्कृत के तत्सम शब्दों का प्रयोग सर्वथा त्याग कर, अरबी फारसी के शब्दो से मुंह मोड कर केवल तद्भव शब्दविशिष्ट ठेठ भाषा मे कहावतों आदि का आश्रय ले कर इशा ने जिस चमत्कार की सृष्टि की वह उस समय के हिन्दी गद्य के लिये एक अपूर्व बात थी। उनकी भाषा ने आगे के लेखको के लिये सरल और मुहावरेदार भाषा का एक सुंदर आदर्श उपस्थित किया। किन्तु उसका अनुकरण नहीं हो सका, कारण इसका यह है कि वह गढी भाषा है और उसमे चलतापन अथवा प्रवाह भी नहीं पाया जाता। वह बोलचाल की भाषा भी नहीं है, और न उसमे जैसी चाहिये वैसी लचक है। परन्तु पहले पहल खडी बोली का एक उल्लेख-

योग्य आदर्श उपस्थित कर के इंशा अल्लाह खाने अपनी उद्भाविनी प्रतिभा का पूर्ण परिचय दिया है ॥

हिन्दी गद्य के विस्तार का तीसरा द्वार एक अन्य दिशा से खुला। जिस प्रेरणा से अमीर ख़ुसरो जैसे लेखक हिन्दी-साहित्य-विकास के प्रारम्भिक काल मे हिन्दी की ओर प्रवृत्त हुये थे ठीक उसी प्रकार की प्रेरणा से हिन्दी-गद्य के विकास का यह नया अवसर प्राप्त हुआ। ईस्ट इंडिया कंपनी को अपने कर्मचारियो को देशी भाषाओं का ज्ञान कराना भी आवश्यक समझ पडा। इस उद्देश्य से उसने कलकत्ते मे फ़ोर्ट विलियम कालेज की स्थापना की, जिसमे लल्लूलाल और सदल मिश्र हिन्दी के अध्यापक नियत हुये। इस कालेज के प्रधानाध्यापक जान गिलक्रिस्ट ने सन् १८०३ मे इन दोनो सज्जनो को हिन्दी पाठ्य पुस्तके तैयार करने का काम सौपा। इस समय भी शासकों का ध्यान खडी बोली ही की ओर गया। शिक्षित कर्मचारियो तथा समाज के सरकारी प्रतिष्ठा-प्राप्त व्यक्तियो के सम्पर्क के कारण वे कमसे कम खडी बोलीके ढॉचे से परिचित थे। परन्तु अरबी और फारसी के तत्सम शब्दो से लदी हुई भाषा की आवश्यकता उन्हे नहीं थी। उनको उर्दू का ज्ञान भी था परन्तु वे देश की प्रधान जनता के भावो का परिचय कराने वाली भाषा की टोह मे थे। वे ऐसी भाषा के लिये उत्सुक थे जो खडी बोली का ढॉचा स्वीकार करती हुई, उस शब्दावली को ग्रहण करे जिसके प्रति अधिकाश हिन्दू समाज के हृदय मे एक विशेष सस्कार चिरकाल से चला आता था। संयोग से खडी बोली के गद्य ने बीज से अंकुर रूप धारण कर लिया था और मुंशी सदासुखलाल तथा सैयद इंशा अल्ला अपना अपना हिन्दी गद्य का आदर्श उपस्थित कर चुके थे, कि लल्लू लाल जी और सदल मिश्र इस क्षेत्र मे उतरे। लल्लू लाल जी ने प्रेमसागर की रचना की। इस ग्रंथ की भाषा देखिये

१—' राजा परीक्षित बोले कि महाराज राजसूय यज्ञ होने से सब कोई प्रसन्न हुये। एक दुर्योधन अप्रसन्न हुआ। इसका कारण क्या है तुम मुझे समुझाय के कहो जो मेरे मन का भ्रम जाय। श्री शुकदेव जी बोले,

राजा तुम्हारे पितामह ज्ञानी थे। उन्होने यज्ञ मे जिसे जैसा देखा तैसा काम दिया।"

२— इतना कह महादेव जी गिरिजा को साथ ले गगा तीर पर जाय, नीर मे न्हाय, न्हिलाय अति लाड प्यार से लगे पार्वती जी को वस्त्र-आभूषण पहिराने।"

३—'तिस समय घन जो गरजता था सोई तो धौंसा बजता था और वर्ण वर्ण की घटा जो घिर आती थी, सोई शूरबीर रावत थे, तिनके बीच बिजली की दमक शस्त्र की सी चमकती थी बगपाँत ठौर ठौर ध्वजा सी फहराय रही थी दादुर मोर कडखैतो की भाति यश बखानते थे और बडी बडी बूंदो की झडी बाणो की सी झडी लगी थी।'

४— बालो की श्यामता के आगे अमावस्या की अँधेरी फीकी लगने लगी। उसकी चोटी सटकाई लख नागिन अपनी केंचली छोड सटक गयी। भौंह की बॅकाई निरख धनुष धकधकाने लगा। आखो की बडाई चंचलाई पेख मृग मीन खजन खिसाय रहे।'

लल्लू लाल को कहानी कहनी थी। ऐसी अवस्था मे भाषा की रोचकता और सरसता विषय के सर्वथा उपयुक्त है। फिर भी सैयद इशा अल्ला खा की भाषा से उनकी भाषा की तुलना करने पर दोनों का वास्तविक अंतर प्रकट हुये बिना नही रहेगा। लल्लू लाल जी की भाषा मे विशेष ध्यान देने योग्य बात यह है कि उन्होने प्रेम सागर मे फ़ारसी शब्दों का प्रयोग बिल्कुल ही नहीं किया है, यद्यपि उनके 'सिंहासन बतीसी' नामक ग्रंथ मे यह प्रवृत्ति नही पाई जाती। लल्लूलाल जी आगरे के रहने वाले थे, इसलिये उनकी रचना मे ब्रजभाषा के शब्दो की भरमार होना स्वाभाविक था। उस समय भाषा का कोई सर्वमान्य आदर्श उनके सामने नही था जिस प्रकार सदासुख लाल और इंशा अल्लाह खा ने अपने अपने अनुमित विचार के अनुसार अपने अपने ग्रंथों की हिन्दी भाषा रखी, उसी प्रकार लल्लू लाल जी ने भी प्रेम सागर को अपनी

अनुमानी हिन्दी मे बनाई। उन दोनों के सामने उर्दू का आदर्श था, इसलिये उनकी भाषा विशेष परिमार्जित और खडी बोली के रंग मे ढली हुई है, परन्तु ये उर्दू के आदर्श को त्याग कर चले, इसलिये वास्तविक खडी बोली न लिख सके। उर्दू शब्दो को भी बचाया इसलिये आवश्यकता से अधिक ब्रजभाषा के शब्द उनकी रचना मे घुस गये। अवतरणो के उन शब्दो को देखिये जो चिन्हित है। आज का समय होता तो संभव था कि इन तीनो को एक दूसरी की पुस्तक देखने के लिये मिल गयी होती और इस प्रकार एक दूसरे की प्रणाली से वे कुछ सहायता प्राप्त कर सकते। परन्तु उस समय तो यह भी संभव नही था, अपने जीवन मे वे एक दूसरे का नाम भी न सुन सके होगे। जिस समय प्रेम सागर लिखा गया, उस समय वहीं बागबहार नामक उर्दू ग्रंथ भी लिखा गया, उसमे भी अनुप्रासो की अधिकता है। उर्दू मे यह प्रणाली फारसी से आई है, फारसी मे अरबी से। मै समझता हूं प्रेम सागर पर अनुप्रास के विषय मे बागो बहार का प्रभाव पडा है, वह भी गद्य ग्रंथ ही है। या यह कहे कि उक्त ग्रंथ की स्पर्द्धा से ही प्रेम सागर की भाषा सानुप्रास है। विशुद्ध संस्कृत और ब्रजभाषा शब्दो के आधार पर प्रेम सागर का निर्माण खडी बोली मे करके लल्लू लाल ने उस प्रवाह मे परिवर्त्तन उपस्थित करने का प्रयत्न किया जो अब तक फारसी शब्दो के व्यवहार के प्रतिकूल नहीं था। मुंशी सदा सुख लाल की भाषा कुछ पडिताऊ है, और कुछ अस्त व्यस्त। इंशा अल्लाह खा की भाषा का ढाँचा उर्दू है। लल्लू लाल का ढग इन दोनों से भिन्न है, उनकी भाषा चलती और हिन्दी के ढंग मे ढली हुई है और यही उनकी प्रणाली की विशेषताये है।

सदल मिश्र कलकत्ते के फोर्ट विलियम कालेज मे लल्लू लाल के साथ अध्यापक थे। जान गिलक्रिस्ट महाशय के आज्ञानुसार उन्हो ने 'नासिकेतोपाख्यान नामक पुस्तक तैयार की। उनकी भाषा देखिये'—

१—तब नृप ने पंडितों को बोला दिन बिचार बड़ी प्रसन्नता से सब

राजा वो ऋषियों को नेवत बुलाया। लगन के समय सबो को साथ ले मंडप मे जहाँ सोनन्ह के थम्भ पर मानिक दीप बलते थे जा पहुँचे।

२— इतने मे जहाँ से सखी सहेली और जात भाइयों की स्त्री सब दौडी हुई आई, समाचार सुनि जुडाई, मगन हो हो नाचने गाने बजाने लगी वो अपने अपने देह से गहना उतार उतार सेवकों को देने लगी और अगणित रुपया अन्न वस्त्र राजा रानी ने ब्राह्मणों को बोला बोला दान दिया। आनंद बधावा बाजने लगा।

३— राजा रघु ऐसे कहते हुये वहा से तुरन्त हर्षित हो उठे। वो भीतर जा मुनि ने जो आश्चर्य बात कही थी सो पहिले रानी को सब सुनाई। वह भी मोह से व्याकुल हो पुकार रोने लगी वो गिडगिडा कहने कि महाराज, जो यह सत्य है तो अब ही लोग भेज लडके समेत झट उसको बुला ही लीजिये क्यो कि अब मारे शोक के मेरो छाती फटती है। कब मै सुन्दर बालक सहित चंद्रावती के मुंह को जा बन के रहने से भोर के चन्द्रमा सा मलीन हुआ होगा देखोंगी।'

उक्त अवतरणो के चिन्हित शब्दो को देखने पर आप को यह स्पष्ट हो जायगा कि सदल मिश्र की भाषा न तो लल्लू लाल की भाषा की तरह ब्रजभाषा के शब्दों से भरी है न शुद्ध खडी बोली है वह दोनो को बीच की है। ऐसा होना परिवर्त्तन काल की भाषा के लिये स्वाभाविक था। सदल मिश्र कही 'ब्राह्मण का बहुवचन 'ब्राह्मणो लिखत है और कहीं 'सोन' का बहुवचन 'सोनन्ह'। आश्चर्य बात वो' आदि शब्दो का प्रयोग भी वे करते है। संस्कृत के तत्सम शब्द भी उनकी रचना मे आये है, 'नृप' 'स्त्री', 'अगणित', 'शोक', 'चन्द्रमा, आदि शब्द इसके प्रमाण है। 'सखी सहेली', जात भाइयों' आदि दोहरे पदों का प्रयोग भी उन्होने किया है।

इसी समय हिन्दी गद्य के विस्तार का एक मार्ग और खुला। सन

१८०९ ई० मे विलियम केटे नाम के एक पादरी ने इंजील का अनुवाद हिन्दी मे नये धर्म-नियम' नाम से प्रकाशित किया। इस अनुवाद तथा ऐसी ही अन्य पुस्तकों के प्रकाशन का उद्देश्य यह था कि हिन्दी भाषा-भाषी जनता ईसाई धर्म के सिद्धान्तो से परिचय प्राप्त करे। सदा सुखलाल और लल्लू लाल ने क्रमश 'सुख सागर' और 'प्रेमसागर' की रचना करके धार्मिक जनता के सामने लोक प्रिय कथाओ को सरल भाषा मे उपस्थित किया था इसलिये कि जिसमे वे इधर आकर्षित हो। उनका उद्देश सफल भी हुआ। लल्लू लाल का प्रेम सागर जितना ही पाठ्य पुस्तक के रूप मे आदृत था, उतनी ही धार्मिक जनता मे भी उसकी प्रतिष्ठा थी। इन दोनो ग्रंथो की भाषा मे फ़ारसी भाषा के शब्दो का समावेश प्राय नहीं के बराबर है। अतएव ईसाई धर्म-प्रचार के इच्छुको ने भी उन्हीं की शैली का अनुसरण किया। फिर भी ईसाई पुस्तको की भाषा मे एक विशेषता देखने मे आती है जो उसे पूर्व आदर्शो से कुछ पृथक करती है। वह है कुछ ऐसे शब्दो का प्रयोग। जो उसे एक ओर तो सैयद इंशा अल्लाह खा की भाषा से अलग करती है और दूसरी ओर मुंशी सदा सुख लाल और लल्लू लाल की भाषा से। ये शब्द ठेठ भाषा से लिये गये ज्ञात होते है। नीचे के अवतरणो को देख कर आप लोगो को मेरे कथन की सत्यता विदित होगी --

१— यीशु ने उसको उत्तर दिया कि जो कोई यह जल पीएगा वह फिर पियासा होगा। स्त्री ने उससे कहा मै जानती हूं कि मसीह जो ख्रीष्ट कहलाता है आने वाला है।

यीशु ने उनसे कहा मेरा भोजन यह है कि अपने भेजने वाले की इच्छा पर चलूं और उसका काम पूरा करूं। क्या तुम नहीं कहते कि वे कटनी के लिये पक चुके है। और काटने वाला मजदूरी पाता और अनन्त जीवन के लिये फल बटोरता है कि बोने वाला और काटने वाला दोनों मिल कर आनन्द करे।

२— बियारी से उठ कर अपने कपडे उतार दिये और अँगोछा लेकर अपनी कमर बाँधी।

३— तब उन्होने उसके पिता से सेन किया कि तू उसका नाम क्या रखना चाहती है।

४ अर्थात् वह किरिया जो उसने हमारे पिता इब्राहीम से खायी थी।

५— यह हमारे परमेश्वर की उसी बडी करुणा से होगा जिसके कारण ऊपर से हम पर भोर का प्रकाश उदय होगा।

६— तब महायाजक और प्रजा के पुरनिए काइफा नाम महायाजकके आगन मे इकट्ठे हुये।

७— यह देख कर उसके चेले रिसियाये और कहने लगे इसका क्यों सत्यानाश किया गया।

उक्त अवतरणो के रेखाकित शब्द ठेठ हिन्दी भाषा के है। 'उत्तर' 'स्त्री', 'इच्छा', अनन्त', 'जीवन', 'आनंद' पिता', परमेश्वर', करुणा', कारण', 'प्रकाश', उदय' 'महायाजक', 'प्रजा' आदि संस्कृत के तत्सम शब्दो का प्रयोग भी इनमे किया गया है। एक जगह फारसी से गढा हुआ मजदूरी' शब्द भी आया है – परन्तु यह स्वीकार करना पडेगा कि पादरी साहब की भाषा अपने पूर्ववर्ती लोगो से अधिक प्राञ्जल है और उसमे खडी बोली का अधिकतर विशुद्ध रूप पाया जाता है। वह हरिश्चन्द्र कालिक हिन्दी के सन्निकट है। उसको देख कर यह विश्वास नही होता, कि उस समय किसी पादरी की लेखनी से ऐसी भाषा लिखी जा सकती है। मुझको इसमे किसी योग्यतम हिन्दू के हाथ की कला दृष्टिगत होती है॥

उन्नति-काल ।

विस्तार-काल के लेखकों ने हिन्दी-गद्य का क्षेत्र विस्तृत तो किया, किन्तु भाषा के सम्बंध मे वे कोई निश्चित आदर्श उपस्थित न कर सके मुंशी सदासुख लाल लल्लू जी लाल पं० सदल मिश्र, सय्यद इंशा अल्ला खा आदि लेखको ने भिन्न भिन्न प्रकार की भाषा लिखी। प्रथम तीनों की भाषा मे ब्रजभाषा का यथेष्ट पुट था। अतएव वह खडी बोली के प्रारम्भिक काल की सूचक ही हो कर रह गयी। रही इंशा अल्ला खा की भाषा, वह उनकी व्यक्तिगत रुचि से बहुत अधिक प्रभावित है। उनकी प्रकृति के अनुरूप उसमे विलासविभ्रममयी कामिनी के समान चटक मटक अधिक है वह अधिकतर ऐसी है कि कहानी किस्सो ही मे काम दे सकती है, अन्य विषयो मे नहीं। पादरी साहब की भाषा का प्रचार परिमित क्षेत्र मे ही था। अतएव यह स्पष्ट है कि गद्यपरिधि के विस्तार ने भाषा का स्वरूप निश्चित कर के उसे सर्व्वोपयोगी, तथा सब प्रकार के विचारो को प्रगट करने के योग्य बनाने की समस्या उन्नति काल के लेखको के सामने उपस्थित की ॥

अनेक श्रेणियो के लेखको की प्रतिभा के संघर्ष से यह समस्या इसी काल मे हल हुई। निबन्ध, नाटक उपन्यास और समालोचना आदि के क्षेत्रो मे प्रचुर व्यवहृत होने से इसी समय गद्य की एक सुन्दर शैली का विकास मे आकर समुन्नत होना स्वाभाविक था। उन्नति क्रम क्या था, मै अब यह दिखलाऊँगा।

राजा शिवप्रसाद उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध मे हुये। उन्ही के समय से हमने हिन्दी-गद्य का उन्नति-काल माना है। सन् १८५४ मे सर चार्ल्स उड ने देशी भाषाओंमे ग्रामवासियो के शिक्षा देनेकी जो योजना बना कर भेजी थी उसमे हिन्दी को स्थान ही न मिलता, यदि राजा साहब ने अपार परिश्रम करके हिन्दी मे कुछ पाठ्य पुस्तके तैयार न की होतीं। यदि शिक्षा योजना मे हिन्दी को स्थान न मिलता, तो उस समय न तो उसका उन्नति पथ प्रशस्त होता और न वह जैसा चाहिये वैसा

अपना पाँव आगे बढ़ा सकती, इस लिये उसकी उस काल की उन्नति मे राजासाहब का हाथ होना स्पष्ट है। सन् १८४५ मे उन्होंने 'बनारस अख़-बार' नामक जो समाचार पत्र निकाला था, उसकी भाषा यद्यपि फ़ारसी के तत्सम शब्दो से लदी हुई होती थी, परन्तु उसको वे देवनागर अक्षरों मे ही प्रकाशित करते थे और उसे हिन्दी का समाचार-पत्र ही कहते थे। इन बातों से उनका हिन्दी प्रेम प्रकट होता है, परन्तु हिन्दी की भाषा के विषय मे उनका कोई निश्चित सिद्धान्त नही था कभी वे उसे फ़ारसी शब्दों से मिश्रित लिखते थे और कभी संस्कृत शब्दो से गर्भित। कभी कभी उन्होंने बडी सरल हिन्दी लिखी है परन्तु बोलचाल पर दृष्टि रख कर उसमे भी फ़ारसी और अ़रबी के ऐसे शब्दों का त्याग नही किया, जिनको सर्व साधारण बोलते और समझ लेते है ॥

सन् १८३५ मे अँगरेजी और फ़ारसी लिपि मे लिखी जानेवाली तथा फारसी और अ़रबी के शब्दो तथा खडी बोली की क्रियाओं के सहयोग से उत्पन्न उर्दू भाषा सर्कारी कचहरी की भाषा बन गई। यह उर्दू का सौभाग्य सूर्योदय था। इस घटना से हिन्दी-गद्य के विस्तार कार्य्य को बहुत बडा धक्का लगा। उर्दू का यों भी बोलचाल मे प्रचार था। किन्तु इस घटना से उसे इतना अधिक प्रश्रय मिला कि वह सहज ही हिन्दी को पछाड देने में सफल हुई। कारण यह कि स्वयं हिन्दू प्रतिभा और साहित्य-सृजनकारिणी शक्ति ऐसी भाषा के विकास मे योग देने के विरुद्ध हो गया, जिसका आदर शिक्षित वर्ग मे नहीं रह गया था। ऐसी दशा मे मुन्शी सदासुख लाल और लल्लू लाल द्वारा प्रचारित गद्य-शैली का कुछ समय के लिये दब जाना स्वाभाविक था ॥

राजा शिवप्रसाद का हिन्दी-रचना काल इसी समय प्रारम्भ होता है। लल्लू लाल की तरह शुद्ध गद्य लिखने के पक्ष मे वे इस कारण नहीं हुए कि उनकी समझ मे वैसा गद्य उस समय प्रचलित करना उचित नहीं था। उस समय की परिस्थिति पर दृष्टि रख कर एक जगह वे यह लिखते है.—

'शुद्ध हिन्दी चाहने वाले को हम यह यकीन दिला सकते है कि जब

तक कचहरी में फारसी हरफ जारी है इस देश में संस्कृत शब्दों को जारी करने की कोशिश बे फायदा होगी।" राजा शिवप्रसाद क्यों फारसी अरबी शब्दों से मिश्रित हिन्दी लिखने के पक्षपाती थे यह बात, आशा है, अब आपलोगों की समझ में आगयी होगी उनके गद्य का निम्नलिखित नमूना देखने से यह विषय और स्पष्ट हो जावेगा।

हम लोगों की जुबान का व्याकरण (चाहे आप उसको उर्दू कहे चाहे हिन्दी) किसी कद्र कायम हो गया है। जो बाकी है जिस कदर जल्द कायम हो जावे बेहतर। इस जबान का दरवाजा हमेशा खुला रहा है और अब भी खुला रहेगा। उसमे शब्द बेशक आये और बराबर चले आते हैं क्या भूमियों की बोली क्या संस्कृत क्या यूनानी (यहाँ तक कि यूनानी लफ्ज 'दीनार' पुरानी संस्कृत पोथियों में भी पाया जाता है और नानक भी यूनानीसे निकला है।) क्या रूमी, क्या फारसी, क्या अरबी, क्या तुर्की, क्या अँगरेजी क्या किसी मुल्क के शब्द जो कभी इस दुनिया के पर्दे पर बसे हैं या बसते हैं, सब के वास्ते इसका दरवाजा खुला रहा है और अब भी खुला रहेगा। अब इसे बन्द करने की कोशिश करना सिवाय इसके कि किस कद्र मूजिब हमारे हानि और नुकसान का है और कैसा असम्भव है, यह सोचना चाहिये। रोक टोक बेशक मुनासिब है और यही हो सकती है। वह कौन मनुष्य है कि अपने ताल में जिससे तमाम गाव सिंचता है पानी आने को नालियाँ बंद करे। गंगा की धारा का बहना तो आप बन्द नहीं कर सकते। लेकिन यह अवश्य कर सकते हैं कि बाँध और पुश्ते बना कर उन्ही के दर्मियान उसको रखे।'

उक्त अवतरण मे कद्र', 'कायम' बाकी', बेहतर', जबान' 'दरवाजा', बेशक, 'लफ्ज, 'मुल्क', 'दुनिया' कोशिश' कद्र' 'मूजिब', नुकसान', 'मुनासिब', 'दर्मियान' आदि शब्द फारसी से लिये गये हैं। 'व्याकरण', 'शब्द', 'हानि', अवश्य' आदि बहुत थोडे से ही शब्द इसमे संस्कृत के हैं। राजा शिव प्रसाद की भाषा सम्बन्धी यह नीति सफल होने-

वाली नही थी। हिन्दी-गद्य के पुराने सस्कार वास्तव मे सदा के लिये मिट नहीं गये थे केवल प्रतिकूल परिस्थिति के कारण वे दबे पडे थे। राजा लक्ष्मण सिह की सरस लेखनी का अवलम्बन पा कर वे फिर सामने आ गये उन्होंने अपनी भाषा-विषयक नीति निम्नलिखित शब्दो मे स्पष्ट रूप से व्यक्त कर दी —

'हिन्दी और उर्दू दो बोली न्यारी न्यारी है। हिन्दी इस देश के हिन्दू और उर्दू यहा के मुसलमानो और फारसी पढे हुये हिन्दुओ की बोल-चाल है। हिन्दी मे सस्कृत के शब्द बहुत आते है और उर्दू मे अरबी और फारसी के। किन्तु कुछ आवश्यक नही है कि अरबी फारसी शब्दों के बिना उर्दू न बोली जाय और न हम उस भाषा को हिन्दी कहते है जिसमे अरबी फारसी के शब्द भरे हो।"

अपनी इस मनोवृत्ति के साथ कार्यक्षेत्र मे अग्रसर होकर राजा लक्ष्मण सिह ने हिन्दी का असीम उपकार किया। वास्तव मे यदि राजा शिवप्रसाद ने हिन्दी गद्य के अस्थिपञ्जरावशिष्ट शरीर मे श्वास का आना जाना सुरक्षित रक्खा तो राजा लक्ष्मण सिह ने उसके शरीर मे अल्पाधिकमात्रा मे स्वास्थ्य का संचार किया और उसे नव जीवन दिया। इनकी भाषा के दो नमूने आप देखे —

१—"रास छोडते ही घोडे सिमट कर कैसे झपटे कि खुरो को धूल भी साथ न लगी। केश खडे कर के और कनौती उठा कर घोडे दौडे क्या है, उड आये है। जो वस्तु पहले दूर होने के कारण छोटी दिखायी देती थी सो अब बडी जान पडती है।"

२—तुम्हारे मधुर बचनो के विश्वास मे आकर मेरा जी यह पूछने को चाहता है कि तुम किस राजवंश के भूषण हो और किस देश की प्रजा को बिरह मे ब्याकुल छोड कर पधारे हो। क्या कारन है जिससे तुमने अपने कोमल गात को कठिन तपोबन मे आकर पीडित किया है।

इन अवतरणों की भाषा से राजा शिव प्रसाद जी की भाषा से तुलना कीजिये। यदि एक मे आप को उर्दू का स्पष्ट स्वरूप दिखायी पडेगा

तो दूसरी मे हिन्दी के प्रकृत स्वरूप को ग्रहण करने की चेष्टा प्रकट रूप से दिखायी पडती है। राजा लक्ष्मण सिह के उक्त अवतरणों मे एक भी फारसी शब्द का व्यवहार नहीं मिलता। संस्कृत के शब्दों की भी ठूंस ठास नहीं दिखाई पडती उतने ही सस्कृत शब्द उसमे आये है जितने भाषा को मनोहर बना कर भाव को सुन्दरता के साथ व्यक्त करने के लिये आवश्यक है।

परन्तु यह मानना पडेगा कि जहाँ राजा शिव प्रसाद एक ऐसी भाषा को प्रचलित करना चाहते थे जो हिन्दू समाज के सस्कारो के बिल्कुल ही प्रतिकूल थी, वहाँ राजा लक्ष्मण सिह ने इस तथ्य बात की ओर ध्यान नहीं दिया कि जीवित भाषा का लक्षण ही यह है कि अन्य भाषाओ के सम्पर्क मे आकर वह आदान-प्रदान से बिरत न हो। फिर भी यह कहा जा सकता है कि राजा लक्ष्मण सिह हिन्दी-गद्य-साहित्य मे उस प्रतिक्रिया के प्रतिनिधि है जो राजा शिव प्रसाद सितारे हिन्द की फारसी रंग मे रंगी हुई हिन्दी के विरुद्ध हिन्दू समाज मे इस समय उत्पन्न हो रही थी॥

यहाँ हिन्दी और उर्दू के पारस्परिक विभेद सम्बन्ध मे दो शब्द कह-देना आवश्यक जान पडता है। राजा शिव प्रसाद सितारे हिन्द की यह बहुत बडी शिकायत थी कि उन दिनो शिक्षित समाज मे प्रचलित फारसी शब्दावली से प्रभावित हिन्दी को न स्वीकार कर के संस्कृत-गर्भित हिन्दी लिखने और इस प्रकार एक नई भाषाके निर्माण करनेका प्रयत्न किया जा रहा था। निस्सन्देह हिन्दी और उर्दू की क्रियाओ मे अभिन्नता है और दोनो का व्याकरण प्राय एक ही है। परन्तु इतनी एकता होने पर भी धार्मिक और जातीय संस्कार ने दोनो बोलियो के बीच मे एक गहरी खाई उपस्थित कर दी है। जिस इस्लाम की उपासना भारतवर्ष के मुसल्मान करते है वह किसी देश की सीमाओ से प्रभावित नहीं होता, उसके आदेश के अनुसार भारतवर्ष और पेलेस्टाइन के मुसल्मान जितने निकट समझे जा सकते है उतने भारतवर्ष के मुसल्मान और हिन्दू नही। इस्लाम के इसी स्वरूप से प्रभावित होकर मुसल्मान कवि भारतवर्ष मे रह कर भी फारसी

काव्य-परम्परा ही को अधिक पसन्द करता है । जैसे मुसलमान अपने संस्कारों को नहीं छोडते उसी प्रकार यह भी असम्भव है कि हिन्दू-जाति की धार्मिक संस्कृति संस्कृत शब्दों का मोह त्याग दे। ऐसी दशा मे हिन्दी और उर्दू की एकता के लिये यह नितान्त आवश्यक है कि हिन्दू और मुसलमान जातियों के दैनिक सम्पर्क और सहयोग के लिये किसी जीवित सम्बन्ध की स्थापना की जाय और दोनों के व्यक्तिगत संस्कारो को एक दूसरे के साथ मिल कर सामञ्जस्य कर लेने का अवसर दिया जाय। जब यह सम्भव होगा तो इसे व्यक्त करनेवाली भाषा केवल मुस्लिम समाज अथवा हिन्दू समाज की नहीं होगी बल्कि भारतीय समाज की होगी, तभी हिन्दी और उर्दू का झगडा मिट जायगा। यह परिस्थिति जिस प्रकार सम्भव हो सके उसके लिये उद्योगशील न होकर जो लोग प्रति सौ फारसी अरबी शब्दोंके साथ पॉच संस्कृत के अथवा प्रति सौ संस्कृत शब्दोंके साथ पॉच फारसी अरबीके सार्वजनिक प्रयोग जात किन्तु संस्कार शून्य शब्दों का केवल इस लिये व्यवहार करते है, कि इससे उनकी एकता-हितैषिता की घोषणा हो वे समस्या के मूल पर कुठाराघात न करके केवल डालियों और पत्तों पर प्रहार करके पेड को भूमिशायी बनाना चाहते है। अतएव, जब तक मुसलमान लेखक अपने साहित्य-परम्परा-विषयक संस्कारो पर भारतीय रंग न चढने देंगे अथवा हिन्दू लेखक अपनी साहित्य-परम्परा-गत विशेषताओं के साथ मुसलमानों की शैली के साथ समझौता होना संभव न बनायेंगे तब तक हिन्दी और उर्दू का विभेद बना ही रहेगा और वे राजा लक्ष्मण सिंह के शब्दों मे दो न्यारी न्यारी बोली बनी ही रहेंगी ॥

राजा शिव प्रसाद और राजा लक्ष्मण सिंह जिस समय हिन्दी गद्य की शैली को एक स्थिर स्वरूप देने का प्रयत्न कर रहे थे उस समय गुजरात से सूर्य्य की तरह उदित होने वाले स्वामी दयानन्द सरस्वती ने हिन्दू जाति की रक्षा के लिये एक बडे प्रबल आन्दोलन को जन्म दिया। ईसाइयो के स्वधर्म-प्रचार के प्रयत्न की चर्चा की जा चुकी है। इस प्रयत्न का स्वरूप केवल अनुवादित पुस्तके जनता मे बॉटना ही नहीं था उसने इसमे

अधिक गम्भीर रूप पकड कर हमारे दैनिक जीवन के प्रभावशाली अंगों शिक्षा और चिकित्सा आदि से भी अपना सम्पर्क बढाने की कोशिश की। इसका परिणाम यह हुआ कि विभिन्न प्रान्तो के बहुसख्यक हिन्दू ईसाई धर्म को स्वीकार करने लगे। इसके अतिरिक्त हिन्दू-समाज के अनेक दुर्बल अगो पर आक्रमण करके मुसलमान लोग भी हिन्दुओ को हिन्दू धर्म की गोद मे से निकालने की चिन्ता मे लगे थे। स्वामी दयानन्द सरस्वती के आविर्भाव के पहले हिन्दू समाज, विशेप कर संयुक्तप्रान्त और पंजाब का हिन्दू समाज इस अन्धकार मे अपना समुचित पथ ढूँढ निकालने मे असमर्थ था। स्वामी दयानन्द ने देश और जाति की आवश्यकताओं को समझा और जो कुछ उचित समझा उसे अपने देश बन्धुओ को समझाने का प्रबल प्रयत्न किया। इससे स्वभावत हिन्दी गद्य को सहारा मिला, क्योंकि उनके और उनके अनुयायियो ने अपना आन्दोलन और प्रचार कार्य हिन्दी ही मे प्रारंभ किया। राजा शिव प्रसाद की भाषा-सम्बन्धी नीति को स्वामी दयानन्द के आन्दोलन से भी पनपने का अवसर नही मिला। क्योंकि तत्कालीन सामाजिक और धार्मिक प्रश्नो की मीमासा हिन्दी ही मे होने के कारण अधिकाश विचारशील हिन्दुओ को भी संस्कृत के अनेक तत्सम शब्दो की ओर झुकना पड़ा जिसका परिणाम कालान्तर मे पजाब जैसे उर्दू-प्रधान प्रान्त मे इस रूप मे दिखाई पड़ा कि भाषा तो हुई संस्कृत शब्दों से भरी किन्तु लिपि हुई फ़ारसी—राजा शिव प्रसाद की शैली का ठीक उलटा। स्वामी दयानन्द सरस्वती की भाषा का एक नमूना देखिये —

१—'तत्पश्चात् मै कुछ दिन तक स्थान टेहरी मे ही रहा और इन्हीं पंडित साहब से मैंने कुछ पुस्तको और ग्रंथो का हाल जो मै देखना चाहता था दरयाफ्त किया और यह भी पूछा कि ये ग्रंथ इस शहर में कहाँ कहाँ मिल सकते है। उनके खोलते ही मेरी निगाह एक ऐसे विषय पर पडी कि जिसमे बिल्कुल झूठी बाते, झूठे तरजुमे, और झूठे अर्थ थे।"

२—राजा भोज के राज्य मे और समीप ऐसे शिल्पी लोग थे कि

जिन्हो ने घोड़े के आकार का एक मान यन्त्र कलायुक्त बनाया था कि जो एक कच्ची घडी मे ग्यारह कोस और एक घण्टे मे सत्ताइस कोस जाता था वह भूमि और अन्तरिक्ष मे भी चलता था और दूसरा पखा ऐसा बनाया था कि बिना मनुष्य के चलाये कला-यन्त्र के बल से नित्य चला करता और पुष्कल वायु देता था जो ये दोनो पदार्थ आजतक बने रहते तो योरोपियन इतने अभिमान मे न चढ जाते , ।

इन अवतरणो की भाषा पर ध्यान दीजिये, द्वितीय अवतरण मे फारसो या अरबी का एक भी शब्द नही है, ससकृत के तत्सम शब्दो ही की उसमे प्रधानता देख पडती है। पहले अवतरण मे साहब' 'दरयाफ्त' निगाह', 'तरजुमे' आदि शब्द फ़ारसी के है। राजा लक्ष्मणसिह की भाषा मे जो सरलता और मधुरता है उसका स्वामी जी की भाषा मे सर्वथा अभाव है। कारण इसका यह है कि स्वामी जी को एक नवीन दिशा मे हिन्दी का उपयोग करना पडा। जिस प्रकार का शास्त्रार्थ उन्होने प्रचलित किया वैसा तब तक अज्ञात था। मौलवियो, पादरियो और पडितो के साथ विवाद मे पड कर हिन्दी भाषा से उन्हे ऐसा काम लेना पडा जो कभी लिया न गया था। दूसरी बात यह कि उनके विषय शास्त्रीय थे, वह भी वादग्रस्त, साहित्यक नहीं थे, अतएव उनकी भाषा मे कर्कशता और रूखापन मिलना आश्चर्य्यजनक नही ॥

राजा शिवप्रसाद, राजा लक्ष्मणसिह और स्वामी दयानन्द सरस्वती सम सामयिक थे। इन तीनो लेखको ने हिन्दी गद्य मे तीन प्रकार की शैलिया उपस्थित की, यह आप लोगो ने देख लिया। अब मै आप को हिन्दी गद्य-साहित्य के एक ऐसे उज्ज्वल नक्षत्रको निर्मल प्रभा से परिचित करना चाहता हू जिसने शैली-विकास-विषयक प्रयत्न को प्राय पूर्णता का रूप प्रदान कर के स्थिरता सञ्चार करने मे सफलता प्राप्त की, यह उज्ज्वल नक्षत्र भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र है। भारतेन्दु बाबू ने जैसे सामयिक हिन्दी पद्य के विकास मे पथ-प्रदर्शक का काम किया वैसे ही गद्य के विकास मे भी उनका सहयोग बहुत महत्वपूर्ण है। बात यह है कि साहित्यिक शैलियो

के विकास मे लेखक की अपेक्षा जनता का सहयोग कम प्रभावशाली नही होता। हम जो कुछ लिखते है उसका यही उद्देश्य है कि उसे लोग पढे और उचित मात्रा मे उससे प्रभावित हो। जब हम शैली-विशेष की उपयोगिता और ग्राम्यता पर विशेष बल देते हैं, तब हमारा तात्पर्य इससे भिन्न अन्य कुछ नही हो सकता कि उससे लेखक और पाठक का मानसिक-सम्बन्ध-स्थापन होने मे बहुत अधिक सरलता और सुगमता की सम्भावना है। राजा शिवप्रसाद ने फ़ारसी शब्दों से लदी हुई आम फ़हम' और 'खास पसद' भाषा के लिये जब 'जोरदार, 'वकालत' की थी तब इसी व्यापक सिद्धान्त का आश्रय उन्हे लेना पडा था। उनका ध्यान विशेष रूप से उन शिक्षित हिन्दू पाठकों की ओर था जिनके हिन्दी-प्रेम की अधिक से अधिक सीमा यह थी कि वे देवनागर अक्षरों मे उर्दू भाषा को पढ और समझ ले। किन्तु जब इसी पाठक-मण्डली के धार्मिक संस्कारो की सहानुभूति की आवश्यकता लेखक को प्रतीत हुई तब संस्कृत के तत्सम शब्दों ही की ओर उसे झुकना पडा। मै इस स्थान पर यह कथन करता हुआ इस बात को भी नहीं भूल रहा हूं, कि धार्मिक विषयो के स्पष्टीकरण, तथा तत्सम्बन्धी तर्क-वितर्क मे संस्कृत शब्दो की यथेस्ट मात्रामे आवश्यकता होती है। किन्तु साथ ही यह भी मेरा मत है कि स्वामी दयानन्द सरस्वती के लेखों मे संस्कृत के तत्सम शब्दो का जो बहुत अधिकता से प्रयोग हुआ है, उसका एक मात्र कारण यह अनिवार्य आवश्यकता ही नहीं थी, बल्कि जनता की वह रुचि भी थी जो संस्कृत के तत्सम शब्दो के प्रयोग मे एक विशेष धार्मिक सँस्कार का अनुभव करती थी। अतएव लेखक और पाठकमण्डली दोनो के सहयोग से हिन्दी भाषा का बहुत कुछ परिष्कार और परिमार्जन हो चला जिसका स्पष्ट परिचय भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र की भाषा मे दिखायी पडा। जनता की रुचि किस भाषा की ओर थी, यह ,भारतेन्दु द्वारा सञ्चालित कविवचनसुधा' नामक मासिक पत्र के प्रति उसके विशेष अनुराग से लक्षित हो गया। भारतेन्दु ने भाषा के सम्बन्ध मे एक ऐसी नीति ग्रहण की जो किसी विशेष पक्ष की ओर झुकी नही थी बल्कि समस्त पक्षों का समुचित समन्वय उपस्थित

करती थी। यदि वे राजा शिवप्रसादकी सी फारसी के भारसे दबी हुई हिन्दी नही लिखते तो राजा लक्ष्मण सिह अथवा 'प्रेमसागर' रचयिता लल्लू लाल की तरह उन फारसी शब्दो से भी नहीं बचते थे जो हिन्दी की बोलचाल मे आगये है। नीचे भारतेन्दु जी की भाषा के दो नमूने मैं उपस्थित करता हू। इन्हे देख कर आप यह समझ सकेंगे कि भारतेन्दु जी की भाषा-सम्बन्धी नीति किस प्रकार उस समय के एक महत्वपूर्ण प्रश्न को हल करती थीः –

१ – "नाम बिके, लोग झूठा कहे अपने मारे मारे फिरे, पर वाहरे शुद्ध 'बेहयाई'—पूरी निर्लज्जा ! लाज को जूतो मार के, पीट पीट के निकाल दिया है। जिस मुहल्लेमे आप रहते है लाज को हवा भी वहाँ नही जाती। हाय, एकबार भी मु ह दिखा दिया होता तो मत-वाले मतवाले बने क्यो लड़ लड़ कर सिर फोड़ते ? काहे को ऐसे बेशरम मिलेगे ?'

२ – जब मुझे अँगरेजी रमणी लोग मेदसिञ्चित केशराशि कृत्रिम कु तल जूट, मिथ्या रत्नाभरण, विविध वर्ण वसन से भूपित, क्षीण कटि देश कसे, निज निज पतिगण के साथ प्रसन्न वदन इधर से उधर फर फर कल की पुतली की भाँति फिरती हुई दिखलाई पडती है, तब इस देश की सीधी सादी स्त्रियों की हीन अवस्था मुझको स्मरण आती है और यही बात मेरे दु ख का कारण होती है।"

अवतरण नम्बर एक को देखिये। उसमे 'बेहयाई', 'बेशरम जैसे शब्दो का प्रयोग निस्संकोच भाव से किया गया है और यह भी स्वीकार करना पड़ता है कि इन शब्दो ने उक्त अवतरण की सरसता बढाने मे बहुत कुछ योग दिया है। संस्कृत के 'निर्लज्ज और निर्लज्जता शब्दो का प्रयोग यहा किया जा सकता था, किन्तु 'बेहयाई' और बेशरमी' का बोलचाल मे इतना अधिक अधिकार हो गया है कि उनको उपेक्षा, लेखक अपनो भापा की स्वाभाविकता और सहज ही सम्पादित हो सकने वाली सरसता को संकट मे डाल कर ही कर सकता था। दूसरे अवतरण मे भारतेन्दु संस्कृत के तत्सम शब्दो हो के प्रयोग की ओर अधिक प्रवृत्त पाये जाते है। इसका

कारण यह है कि यहा वे अपने उद्गार को व्यक्त करने के लिये कुछ ऐसे वाक्य लिखना चाहते थे जो साधारण बोलचाल मे नहीं आते । ऐसी परिस्थिति मे अपनी शब्दावली चुनने के लिये उनके सामने दो मार्ग थे, या तो वे संस्कृत के अपरिचित, किन्तु पाठको के अनुकूल संस्कारो के कारण सहज ही परिचित होने की क्षमता रखने वाले शब्दो को चुने अथवा फ़ारसी या अरबो के अप्रचलित और विदेशी शब्दो को। भारतेन्दु जी ने जेसी शब्दावली चुनी, उस परिस्थिति मे प्रत्येक विचारशील लेखक वैसी ही शब्दावली ग्रहण करने को ओर प्रवृत्त होगा। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि भारतेन्दु ने हिन्दी गद्य के विकास का एक स्वाभाविक पथ तैयार कर के उसे कार्य-क्षेत्र को ओर अग्रसर किया ॥

हिन्दी गद्य का कार्य्य-क्षेत्र भी बदलता जा रहा था और उसकी समस्त शक्तियों को प्रस्फुटित करनेवाले अवसर प्रस्तुत हो रहे थे। पाश्चात्य सभ्यता के सम्पर्क से जो हिन्दू समाज नितान्त विचलित और सम्मोहित हो गया था, वह बगाल मे राजा राममोहन राय और उत्तरी भारत मे स्वामी दयानन्द सरस्वती के प्रभाव से नव जीवन लाभ कर रहा था। राजा राममोहन राय ने उपनिषदो के महत्व को ओर शिक्षित समाज का ध्यान खींचा, स्वामी दयानन्दने वेदो को ओर। इस उद्योग का परिणाम यह हुआ कि शिक्षित जनता मे वह आत्म-विश्वास फिर उत्पन होने लगा जो उसके पहले लुप्त प्राय था। प्राय इसी समय समाचार-पत्रो का भी उदय हुआ। आत्माभिमान के जार्गारत होते ही देशानुराग के भाव का विकास भी हुआ। राजा शिव प्रसाद और राजा लक्ष्मण सिह ने तो इस ओर ध्यान नहीं दिया किन्तु बाबू हरिश्चन्द्र और उनके सहयोगियो ने देश और समाज के कष्टो को गहराई के साथ अनुभव करके भिन्न भिन्न रूपों मे उन्हे व्यक्त किया। यदि कहीं उन्हो ने मर्मभेदी बाते कहीं, कहीं पाठक के हृदय को करुणा और अनुताप के भावो से पूरित किया तो सामाजिक त्रुटियों को लक्ष्य कर के कहीं ऐसा व्यंगपूर्ण प्रहार और आक्षेप भी किया कि कुछ असहनशील पाठक की आन्तरिक सहानुभूति का उनसे चिरविच्छेद हो गया। उनका

पहला नाटक 'वैदिकी हिंसा हिसा न भवति' ऐसा ही था। उसमे उन्हो ने समाज मे प्रचलित बहुत सी दूषित बातों की ओर पाठकों और दर्शकों का ध्यान आकर्षित किया है। वास्तव मे भारतेन्दु की देशानुराग परायण बुद्धि ने उन सूक्ष्म जीवन-संचारक तत्वो को अच्छी तरह समझ लिया था जो हिन्दू समाज के पुनरुज्जीवन केलिये आवश्यक थे। उन्हो ने 'कर्पूरमञ्जरी', 'सत्य हरिश्चन्द', 'चन्द्रावली नाटिका', 'भारत-दुर्दशा', 'अन्धेर नगरो' 'नोलदेवी' आदि नाटको की रचना इसी उद्देश्य से की कि हिन्दू समाज के आरोग्य लाभ केलिये वे उन्हीं तत्वो को उपस्थित करे। इसमे तो वे सफल हुये ही, साथ ही नाटक-रचना के कार्य्य मे अग्रणी होने के कारण हिन्दी का प्रथम नाटककार होने का गौरव भी उन्हे प्राप्त हुआ।

भारतेन्दु की भाषा के जो दो नमूने ऊपर दिये गये है उनमे से नम्बर १ को देखने से आप को यह भी ज्ञात हो जायगा कि भारतेन्दु जी ने मुहावरेदार भाषा लिखने का उद्योग भी किया था। 'नाम बिकना', 'मारे मारे फिरना' आदि मुहावरे है जिनके व्यवहार ने भाषा की सरसता को बढा दिया है। अवतरण नम्बर २ मे इस प्रकार के मुहावरो का अभाव है इसका कारण भी स्पष्ट है। सस्कृत के तत्सम शब्दो के बहु-सख्यक प्रयोगो ने मुहावरो के प्रवेश मे रुकावट डाल दी है, प्राय मुहावरो को छटा बोलचाल की भाषा मे ही दृष्टिगत होती है।

समय के प्रभाव से उस समय बाबू हरिश्चन्द्र को अनेक सहयोगी भी प्राप्त हुये, उनमे से कुछ प्रमुख का वर्णन नीचे किया जाता है।

कानपूर के पं० प्रताप नारायण मिश्र विलक्षण प्रतिभा के मनुष्य थे देश प्रेम उनमे कूट कूट कर भरा था वे खरे थे, इसलिये खरी बाते भी कहते थे। स्वतन्त्र प्रकृति के थे, इसलिये उनकी सभी बातो मे स्वतंत्रता दिखाई पडती है। उनकी भाषा मे भी स्वतंत्रता का रङ्ग अधिक है। वे लिखते है, सामयिक हिन्दी, परन्तु उसमे मनमानापन भी मौजूद है। वे फारसी, संस्कृत और उर्दू के अच्छे जानकार थे। फिर भी

ग्रामीण बातों और कहावतों से उन्हे प्रेम है। उनको रचना की प्रधान विशेपता यह है कि वे मुहावरो आदि का व्यवहार अपनो भाषा में सफलता के साथ करते है। देश ममता उनमे इतनी थी, कि अपने यहॉ की छोटी छोटी बातों को भो महत्व देते थे, और उनका प्रतिपादन इस ढग से करते थे, कि उनकी इस प्रकार की लेख माला पढ कर चित्त प्रफुल्ल हो उठता है। किन्तु उनका भाग्य कभी नही चमका। अपने ब्राह्मण, नामक मासिक पत्र को भी वे थोडे ही समय तक चला सके। दैनिक 'हिन्दोस्तान' के सम्पादक हो कर कालाकॉकर गये, परन्तु कुछ दिन वहॉ भी ठहर नहीं सके। उनके गद्य के कुछ नमूने देखिये —

१—"घर की मेहरिया कहा नही मानती, चले है दुनिया भर को उपदेश देने। घर मे एक गाय बॉधी नही जाती, गोरक्षणी सभा स्थापित करेगे। तन पर एक सूत देशी कपडे का नहीं है, बने है देशहितैषी। साढे तीन हाथ का अपना शरीर है, उसकी उन्नति तो कर नहीं सकते, देशोन्नति पर मरे जाते है। कहॉ तक कहिये हमारे नौसिखिया भाइयो को माली खुलिया का आजार हो गया है, करते धरते कुछ नहीं है, बक बक बॉधे है।"

सच है 'सब ते भले है मूढ जिन्हे न व्यापै जगत गति, मजे से पराई जमा गपक बैठना, खुशामदियो से गप मारा करना' जो कोई तिथ त्यो-हार आ पडा, तो गङ्गा मे बदन धो आना, गङ्गापुत्र को चार पैसे दे कर सेत मेत मे, धरम मूरत धरमा औतार का खिताब पाना, संसार परमार्थ तो दोनो बन गये, अब काहे को है, है काहे को खै खै। मुँह पर तो कोई कहने ही नहीं आता, कि राजा साहब कैसे है, पीठ पीछे तो लोग नवाब को भी गालिया देते है इससे क्या होता है। आप रूप तो आप है, ही 'दुहू हाथ मुद मोदक मोरे' उनको कभी दुख काहे को होता होगा। कोई घर मे मरा मराया तो रो डाला। बस आहार, निद्रा, भय, मैथुन के सिवा पॉचवीं बात ही क्या है, जिसको झीखै। आफत तो बेचारे जिन्दा दिलो की है, जिन्हे न यो कल न वों कल।' जब स्वदेशी भापा का पूर्ण प्रचार था, तब

के विद्वान् कहते थे गीर्वाणवाणीषु विशाल बुद्धिस्तथान्यभाषा रस लोलु-पोहं, अब आज अन्य भाषा वरंच अन्य भाषाओं का करकट (उर्दू) छाती का पीपल हो रही है, तब यह चिन्ता खाये लेती है, कि कैसे इस चुडैल से पीछा छूटे। एक बार उद्योग किया गया तो एक साहब के पेट मे समा गया, फिर भी चिन्ता पिशाची गला दबाये है। प्रयाग हिन्दू समाज फिकर के मारे 'कशीदम नालओ बेहोश गश्तम, का अनुभव कर रही है।"

३—"अरे भाई पहले अपना घर तो बाँधो लाला मसजिद पिरशाद सिडी वासितम को समझाओ कि तुम्हारे बुजुर्गों की बोली उर्दू नही है, लाला लखमीदास मारवाडी से कहो कि तुम हिन्दू हो, लाला नोचीमल खन्ना से पूछो तुमलोग संकल्प पढते समय अपने को वर्मा कहते हो कि शेख ? पण्डित यूसुफ नरायण कश्मीरी से दरयाफ्त करो कि तुम्हारे दसो संस्कार (मुंडनादिक) वेद की रिचाओ से हुये थे कि हाफिज के दीवान से इसके पीछे जो सर्कार हिन्दी न कर दे तो ब्राह्मण के एडीटर को होली का गुडा बनाना।"

अहा ! भाषा हो तो ऐसी हो, क्या प्रवाह है ! क्या लोच है ! कैसी फडकती और चलती भाषा है ! दु ख है, यह भाषा प० जी के साथ ही चली गयी, फिर ऐसी भाषा लिखने वाला कोई उत्पन्न नहीं हुआ। मुहा-वरेदार भाषा लिखने मे जैसा भाव-विकाश होता है, वैसा अन्य भाषा लिख ने मे नहीं। यदि होता भी है, तो उतना प्रभावजनक नहीं होता। पं० जी की भाषा मे अनेक शब्द शुद्ध रूप मे नही लिखे गये है, कारण इसका यह है, कि उनको उस रूप मे उन्होंने लिखा है, जैसा वे बोलचाल मे है। उन की यह प्रणाली गृहीत नही हुई। कारण इसका यह है कि एक तो बोल-चाल पर इतनी दृष्टि कौन डाले दूसरी बात यह कि जब कुछ विशेष कारणों से शब्द को तत्सम रूप में लिखा जाना ही अच्छा समझा जाने लगा, तो व्यर्थ सर कौन मारे। चाहे जो हो, परन्तु ऐसी भाषा लिखना टेढी खीर है, सब ऐसी भाषा नहीं लिख सकते। यह गौरव पं० प्रताप नारायण मिश्र

को हिन्दी लिखनेवालों मे और पं० रत्ननाथ को उर्दू लिखने वालो मे प्राप्त हुआ, अन्य को नही। आश्चर्य नही कि कोई दिन ऐसा आवे जिस दिन यह भाषा ही आदर्श मानी जावे।

पण्डित प्रताप नारायण मिश्र के उपरान्त हमारी दृष्टि दो नारायणो पर पडतो है, एक है पण्डित गोबिन्द नारायण मिश्र और दूसरे है, पंडित बदरी नारायण चौधरी। परन्तु इनका पथ भिन्न है, यदि वे बोलचाल की हिन्दी लिखने मे सिद्धहस्त थे, तो ये दोनो सज्जन साहित्यिक हिन्दी लिखने मे प्रसिद्ध थे।

पं० गोविन्द नारायण मिश्र ने ऐसे बंश मे जन्म लियाथा जहाँ संस्कृत का विशेष प्रचार था। वे स्वयं भी सस्कृत के विद्वान् थे। अतएव यह स्वाभाविक था कि वे हिन्दी गद्य-रचना करते समय संस्कृत-गर्भित वाक्य-विन्यास की ओर झुके। उनकी भाषा का एक नमूना दिया जाता है —

१—जिस सुजन समाज मे सहस्रो का समागम बन जाता है, जह पठित, कोविद, क्रूर, सुरसिक, अरसिक सब श्रेणी के मनुष्यमात्र का समावेश है, वहाँ जिस समय सुकवि सुपंडितो के मस्तिष्क सुमेरु के सोते के अदृश्य प्रवाहसमान प्रगल्भ प्रतिभा स्रोत से, समुत्पन्न शब्द कल्पना कलित, अभिनव भावमाधुरी भरी, छलकती, अति मधुर रसोली स्रोत'स्वती उस हंस वाहिनो हिन्दी सरस्वती की कवि की सुवर्ण विन्यास समुत्सुक सरस रसना रूपी सुचमत्कारो उत्स (झरने से) कलरव कल कलित अति सुललित प्रबल प्रवाह सा उमड़ा चला आता, मर्मज्ञ रसिकों के श्रवण पुट रन्ध्र की राह, मन तक पहुच सुधा से सरस अनुपम काव्य रस चखाता है, उस समय उपस्थित श्रोता मात्र यद्यपि छन्द बन्द से स्वच्छन्द समुच्चारित्त शब्द लहरी प्रवाह पुञ्ज को समभाव से श्रवण करते है, परन्तु उसका चमत्कार, आनन्द, रसास्वादन, सब को समतुल्य नहीं होता।

एक अवतरण और देखिये —

२—"सरद पूनों के समुदित पूरन चन्द की छिटकी जुन्हाई, सकल

मनभाई के भी मुंह मसिमल, पूजनीय अलौकिक पद नख चन्द्रिका की चमक के आगे तेजहीन, मलीन, और कलंकित कर दरसाती लजाती, सरस सुधा धौली अलौकिक सुप्रभा फैलाती, अशेष मोह जड़ता प्रगाढ़ तमतोम सटकाती मुकाती निज भक्त जनमन वांछित वराभय भुक्ति मुक्ति सुचारु चारो मुक्त हाथो से मुक्ति लुटाती, सकल कला आलाप कलकलित सुललित सुरीली मीड गमक झनकार सुतार-तार सुग्राम अभिराम लसित बीन प्रवीन पुस्तकाकलित मखमल से समधिक सुकोमल अति सुन्दर सुविमल लाल प्रवाल से लाल लाल कर पल्लव सुहाती, बिबिध विद्याविज्ञान सुभ-सौरभ सरसाते पिकसे फूले सुमन प्रकाश हास बास बसे, अनायास सुगन्धि-तसित बसन लसन सोही सुप्रभा विकसाती. सुविमल मानस विहारी, मुक्ता-हारी नीर क्षीर बिचार सुचतुर कवि कोविद राज राज हियसिंहासन निवासिनी मन्दहासिनी त्रिलोक प्रकासिनी सरस्वती माता के अति दुलारे प्राणों से प्यारे पुत्रो की अनुपम अनोखी अतुल बलशाली परम प्रभावशाली सुजन मन मोहिनी नव रस भरी सरस सुखद विचित्र वचन-रचना का नाम ही साहित्य है।

पंडित गोविन्द नारायण मिश्र ने इस प्रकार का गद्य लिख कर हिन्दी भाषा मे कविवर वाण विरचित कादम्बरी की शब्दच्छटा दिखलाने की चेष्टा की है, वैसा ही माधुर्य्य भी उत्पन्न करना चाहा है। परन्तु वह बात नो प्राप्त हुई नहीं, भाषा अवश्य दुर्बोध हो गई । अधिकतर उन्होने ऐसी ही हिन्दी लिखी है, जब लेखनी उठाते थे, धारा प्रवाह रूप मे ऐसी हिन्दी लिखते चले जाते थे। उनको इस प्रकार की हिन्दी लिखने मे आनन्द भी बडा आता था, क्योकि दण्डी के ढंग की समस्त पदावली उनको बहुत प्यारी थी। इन अवतरणो को देख कर उनके भाषाधिकार की प्रशंसा करनी पडती है। इनमे जो कवि कर्म्म है, वह भी साधारण नही, परन्तु उनकी दुरूहता और जटिलता, उसका आनन्द उपभोग करने नहीं देतो। जिस गद्य मे छोटे छोटे वाक्य न हों, जो उद्वेलित समुद्र समान अपने प्रचुर समस्त पद प्रयोग उत्ताल तरंगों से आप ही विक्षुब्ध हो, वह औरों

को क्या विमुग्ध कर सकेगा ।' किन्तु इन अवतरणों को देख कर यह न समझना चाहिये कि उनकी समस्त गद्य रचनाये ऐसी ही है । ये रचनाये तो प० जी की विशेषता दिखलाने के लिये ही यहाँ उद्धृत की गई है । उनका साधारण गद्य सुन्दर है, और उसमे उसकी विशेषताये पाई जाती है । एक अवतरण ऐसे गद्य का भी देखिये -

"परंतु स्वच्छ दर्पण पर ही अनुरूप यथार्थ सुस्पष्ट प्रतिबिम्ब प्रतिफलित होता है । उससे सामना होते ही, अपनी ही प्रतिबिम्बित प्रतिकृति, मानो समता की स्पर्द्धा मे आ, उसी समय सामना करने आमने सामने आ खड़ी होती है । भला कहीं अँधेरी कोठरी की मिट्टी की, अति मलिन पुरानी भीत मे भी किसी का मुह दिखाई दिया है ? अथवा उस पर कभी क्या किसी बिम्ब का प्रतिबिम्ब पड सकता है ?" 'आत्माराम की टे टे' शीर्षक लेख-माला मे उनका गद्य और अधिक सरल एवं स्पष्ट है । उन्हो ने विभक्तियो को संज्ञापदो से मिलाकर लिखने की परिपाटी चलाई और 'विभक्ति-विचार, शीर्षक एक लेख लिखकर उसका समर्थन किया । हिन्दी के कुछ लेखको ने इस परिपाटी का अनुसरण भी किया किन्तु वह सर्व सम्मत नही हो सकी । पं० जी अपने समय के प्रभावशाली वक्ता और लेखक थे, उनका हिन्दी भाषा प्रेमियो पर अधिकार भी बडा था, इन्हीं गुणो के कारण अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन का सभापतित्व पद भी उन्हे प्राप्त हुआ था ।

पं० बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' ने भी अधिकतर साहित्यिक गद्य ही लिखने की चेष्टा की । बरन यह कहना चाहिये कि उन्हे साहित्यिक गद्य लिखना ही प्रिय था । यहाँ तक कि साधारण समाचार तक साहित्यिक अलंकारो द्वारा अलंकृत होकर ही उनकी 'आनन्द कादम्बिनी' नामक मासिक पत्रिका मे स्थान पाते थे । उनके गद्य मे एक अद्भुत सजीवता और सुन्दरता आरभ से अंत तक दिखलायी पडती, जिसे पढते ही पाठको का हृदय प्रसून समान उत्फुल्ल हो उठता । उनकी भाषा के दो नमूने देखिये —

१—"जैसे किसी देशाधीश के प्राप्त होने से देश का रंग ढंग बदल

जाता है, तद्रूप पावस के आगमन से, इस सारे संसार ने भी नया रंग रूप पकडा, भूमि हरी भरी होकर नाना प्रकार की घासो से सुशोभित भई, मानो मारे मोद के रोमाच की अवस्था को प्राप्त भई। सुन्दर हरित पत्रावलियो से भरित तरुगनों की सुहावनी लताये लिपट लिपट मानो मुग्धा मयंक मुखियों को अपने प्रियतमो के अनुरागालिगन की बिधि बतलातीं।'

२—"दिव्य देवी श्री महाराणी बडहर लाख झंझट झेल, और चिरकाल पर्यंत बड़े बडे उद्योग और मेल से, दु ख के दिन सकेल, अचल 'कोर्ट' का पहाड ढकेल, फिर गद्दी पर बैठ गईं।"

ईश्वर का भी क्या खेल है कि कभी तो मनुष्य पर दु ख की रेल पेल है और कभी उस पर सुख की कुलेल।

साहित्यिक गद्य मिश्र जी और चौधरी जी दोनो का है, परन्तु अन्तर यह है कि मिश्र जी का गद्य उद्विग्नकर है, और चौधरी जी का मनोहर। मिश्र जी का वाक्य दूर तक चलता है, परंतु चौधरी जी का वाक्य छोटा छोटा होता है, इस लिये उसमे हृदयग्राहिता अधिक है। मिश्र जी का जीवन सादा था, और वे पण्डित प्रकृति के थे, इस लिये उनकी रचना में न तो चटक मटक है, न लचकीलापन। चौधरी जी अमीराना ठाट के आदमी थे, रसिक तो थे ही, मनचले और बाके तिरछे भी, इस लिये उनकी भाषा भी कही चटकीली है, कहीं फडकती। कहीं अलकृत है, कहीं रसीली। कहीं ऐंठती चलती है, कही मचलती। कहीं अलंकारो के भार से दब जाती है कहीं बड़े ठाट से तनी फिरती है। इस लिये अन्तर होना स्वाभाविक है। चौधरी जी समालोचक भी थे, वरन् सच पूछिये तो हिन्दी साहित्य मे समालोचना प्रणाली का आरंभ उन्हीं से हुआ॥

एक ओर तो पं० गोबिंद नारायण मिश्र और पं० बदरीनारायण चौधरी सस्कृत के तत्सम शब्दों के प्रयोग की ओर विशेष दत्तचित्त होकर हिन्दी गद्य में एक विचित्र सरसता भर रहे थे दूसरी ओर पं० बालकृष्ण भट्ट शैली मे उक्त दोनों महोदयों से बहुत कुछ भिन्नता रखते हुये वही

काव्य करने मे संलग्न थे। पं० गोबिन्द नारायण मिश्र और पं० बदरी नारायण चौधरी को फारसी अरबी के शब्दो के प्रति कुछ भी आकर्षण नही था। परन्तु भट्ट जी फारसी अरबी के प्रचलित शब्दो का प्रयोग अपनी रचना मे स्वतन्त्रता से करते थे। उक्त दोनो महाशय राजा लक्ष्मण सिह की भाति फारसी अरबी शब्दो को अपनी रचना मे स्थान नही देना चाहते थे। यह दूसरी बात है कि किसी अवसर पर वे उन भाषाओ के किसी प्रचलित शब्द को अपनी रचनाओ मे स्थान दे देवे, परन्तु प्राय वे उनसे बचते थे। भट्टजी प० प्रताप नारायण की तरह इस बात की परवा नही करते थे। यदि उनको उक्त भाषा का कोई प्रचलित शब्द भाषा प्रवाह के अनुकूल ज्ञात होता था, तो वे उसका प्रयोग निस्संकोच भाव से करते थे। वे प० प्रताप नारायण की भाति ग्रामीण शब्दो का प्रयोग भी कर जाते थे। भाषा शैली के विषय मे भट्टजी का और पं० प्रताप नारायण का प्राय एक मार्ग है और चौधरी जी का एवं मिश्र जी का एक। ये लोग बाबू हरिश्चन्द्र के ही सहयोगी है और उन्ही की शैली का प्राय अनुसरण करते है। परन्तु स्वतंत्र बिचार होने के कारण सभी कुछ न कुछ स्वतन्त्रता रखते है। माला सबो की एक प्रकार की है, किन्तु फूलो में और सजावट मे अवश्य कुछ भिन्नता दृष्टिगत होती है। भट्ट जी के कुछ गद्य देखिये -

१— इस आँसू मे भी भेद है। कितनो का पनीला कपार होता है, बात कहते रो देते है। अक्षर उनके मुँह से पीछे निकलेगा, आँसुओ की झडी पहले ही शुरू हो जायगी। स्त्रियो के जो बहुत आँसू निकलता है मानो रोना उनके यहा गिरो रहता है, इसका कारण यही है कि वे नामही की अबला और अधीर है। दु ख के वेग मे आसू को रोकने वाला केवल धीरज है। उसका टोटा यहाँ हरदम रहता है, तब इनके आसू का क्या ठिकाना है। सत्वशाली धीरज वालों को आसू कभी आता ही नही। कडी से कडी मुसीबत मे दो चार कतरे आसू के मानो बडी बरकत है। बहुत मौकों पर आसू ने गजब कर दिया है। सिकंदर का कौल था कि

अपनी मा की आख के एक कतरा आसू की कीमत मे बादशाहत से भी बढ कर मानता हूं । रेणुका के अश्रुपात हो ने परशुराम से इक्कीसबार क्षत्रियो का सहार कराया । कितने ऐसे लोग भी है जिन्हे आसू नही आता । इसलिये जहाँ पर बडी जरूरत आसू गिराने की हो तो उनके लिये प्याज का गट्ठा पास रखना बडी सहज तरकीब निकाली गयी । प्याज जरा सा आख मे छू जाने से आसू गिरने लगता है ।

"किसी को बैगन बावले किसी को बैगन पत्थ" बहुधा आसू का गिरना भलाई और तारीफ मे दाखिल है । हमारे लिये आसू बडी बला है । नजले का जोर है, दिनरात आसू टपकता है, ज्यो ज्यो आसू गिरता है त्यो त्यों बीमारी कम होती जाती है । सैकड़ों तदबीरे हम कर चुके आसू का टपकना बद न हुआ । क्या जाने बगाल की खाडीवाला समुद्र हमारे कपार मे आकर भर रहा है । आख से तो आसू चला ही करता है, आज हमने लेख मे भी आसू ही पर कलम चला दी, पढनेवाले इसे निरी नहूसत की अलामत न मान हमे क्षमा करेंगे ।

२—' दर्शन (फिलासफी) का अनुशीलन करते करते जिनका मस्तिष्क यहाँ तक परिष्कृत और बुद्धि इतनी पैनी हो जाती है कि उनकी बहस और तकरीर के मुकाबले कोई बात कभी उनके अविश्वासी चित्त मे स्थान पा ही नही सकती • • ••••••।"

३ —' यद्यपि 'ब्रेन वर्क' मस्तिष्क का काम और शारीरिक कामो की अपेक्षा अधिक योग्यता प्रकट करता है किन्तु कसौटी के समय परख केवल दिल की की जाती है ।"

उक्त अवतरणों के रेखाकित शब्दो पर विचार कीजिये । वे सब के सब फारसी, अरबी के शब्द है । वे बोलचाल मे गृहीत हो गये है । अतएव हिन्दी गद्य लिखने मे उनका प्रयोग होना अनुचित नही । भट्ट जी 'हिन्दी प्रदीप,' नामक मासिक पत्र के सञ्चालक और सम्पादक भी थे ।

जहा इस पत्र द्वारा वे यह उद्देश्य सिद्ध करना चाहते थे कि शिक्षित लोगों का ध्यान हिन्दी साहित्य की ओर आकर्षित हो, वहाँ उन्हे इसबात का भी ध्यान बना रहता था कि 'हिन्दी-प्रदीप' मे हीन श्रेणी की साहित्य-सामग्री न निकले। अतएव उन्होने व्यग्यात्मक रोचक निबंध और शिक्षा-प्रद उपन्यास आदि से ही उसका कलेवर भरा। पं० बालकृष्ण भट्ट के हृदय मे देश की दुर्दशा के कारण बहुत अधिक पीडा थी। इससे उनके व्यग्यो मे हृदय के मर्म-स्थल पर आघात करने की ऐसी शक्ति देखी जाती है जिसका प्रभाव उनके समसामयिक समस्त लेखको पर पाया जाता है। पं० प्रताप नारायण मिश्र जैसे कुछ उदात्त विचार के लोगो की बात दूसरी है। अतएव भाषा के सम्बन्ध मे उन्होने जो नीति ग्रहण की उससे उनकी व्यग्यात्मक शैलीके विकासमे बहुत अधिक सहायता मिली, क्योंकि तत्कालीन पठित समाज की बोलचाल पर उर्दू का गहरा रंग चढा होने के कारण व्यंग्य को प्रभावशाली बनाने के लिये फ़ारसी अरबी के प्रचलित शब्दो का अङ्गीकार अनिवार्य्यत. आवश्यक था। वे 'कपार' 'धीरज', 'निरी', 'पेनी' आदि शब्दो का प्रयोग भी करते है, मेहरिया, तिथ' आदि शब्दो का प्रयोग करते पं० प्रताप नारायण जी को भी देखा जाता है। पं० गोविन्द नारायण मिश्र को रचना का दूसरा अवतरण देखिये, उसमे जिन शब्दो पर चिन्ह बना दिया गया है, वे सब ब्रजभाषा के शब्द है, और उनका प्रयोग भो ब्रजभाषा की भाति किया गया है, वे लौ का व्यवहार भी करते थे। प्रेमघन जी के गद्य मे भी भई, तरुगन, इत्यादि शब्दो का प्रयोग मिलता है। इससे पाया जाता है कि इन लोगो के समय मे भी जैसा चाहिये वैसा भाषा का परिष्कार नहीं हुआ था। वाक्य भी उन लोगो के अशुद्ध है, जिनपर मैंने लम्बी लकीरे खींच दी है, उनको देखिये। बाबू हरिश्चन्द्र की रचना मे भी ये बाते पाई जाती है। पंडित अम्बिकादत्त व्यास और गोस्वामी राधाचरण की लेख माला मे भी ए दोष देखे जाते है। इससे इस सिद्धान्त पर उपनीत होना पडता है, कि उस समय पूर्ण उन्नत होनेपर भी जैसा चाहिये वेसा गद्य परिष्कृत नही हुआ।

पांचवां-प्रकरण ।

प्रचार-काल ।

यह प्रचार-काल बाबू हरिश्चन्द्र के समय से ही प्रारम्भ होता है परन्तु वह विस्तृत एवं व्यापक उनके स्वर्गारोहण के बाद हुआ। किसी भाषा के प्रचार कार्य्य के साथ समाचार-पत्रो एवं मासिक-पत्रो आदि का घना सम्बन्ध है। इसी प्रकार प्रचारको और पुस्तक प्रणेताओं से भी उसका गहरा सम्पर्क है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र आदि प्रतिभाशाली लेखकों ने हिन्दी भाषा की सर्वतोमुखी उन्नति के लिये उद्योग शील होकर, साहित्य की जो धारा उन्नतिकाल मे बहा दी थी प्रचारकाल मे द्विगुणित वेग से वह गतिवती हुई।

इसकाल मे यदि एक ओर स्वामी दयानन्द सरस्वती के कुछ अनुयायी हिन्दी गद्य को अपने धार्मिक ग्रंथो की रचनाओ द्वारा अग्रसर बनाने मे तत्पर थे तो दूसरी ओर बाबू हरिश्चन्द्र के अनेक सम सामयिक विविध प्रकार के साहित्य पुस्तको का प्रणयन कर उसको सेवाके लिये कटिबद्ध थे। कचहरियो मे हिन्दी भाषा को स्थान दिलाने का उद्योग भी इसी समय मे प्रारंभ हुआ, अतएव इस सूत्र से भी अनेको सभा सोसाइटियो का जन्म हुआ। इनका उद्देश भी हिन्दी का प्रचार और विस्तार था। सनातन-धर्मियो का एक विशाल दल भी इस समय इस कार्य्य मे लग्न हुआ। आर्य्यसमाज की प्रतिद्वंदिता के कारण उन पंडितो ने भी हिन्दी भाषा मे ग्रंथ रचना के लिये लेखनी पकडी, जिन्हो ने आजीवन संस्कृत देवी की आराधना का ही व्रत ग्रहण कर लिया था। फिर क्या था अनेक पत्र-पत्रिकाये निकलीं, नाना प्रकार के ग्रंथ बने और तरह तरह के आन्दोलन उठ खडे हुये। मै क्रमश सबका वर्णन करूंगा।

१—पं० भीमसेन शर्म्मा स्वामी दयानन्द सरस्वती के शिष्य थे। अपने जीवनकाल मे वे स्वामी दयानन्द के आन्दोलन से बहुत दिनो तक सम्बद्ध रहे, जिसका परिणाम यह हुआ कि संस्कृत के साथ हिन्दी भाषाका

अनुराग भी उनके हृदय मे उत्पन्न हो गया। पण्डितजी संस्कृत भाषा के प्रकाण्ड पण्डित और अपने समय के अद्वितीय वेदवेत्ता थे। वेद विद्या पारंगत सामाश्रमी के स्वर्गारोहण के उपरान्त कलकत्ता के संस्कृत कालेजके वेदाचार्य्य का प्रधान पद आपको ही प्राप्त हुआ था। आप मे सत्य प्रियता इतनी थी कि वेद मंत्रो के अर्थ मे मत भिन्नता उत्पन्न होने के कारण ही आपका सम्बन्ध स्वामी दयानन्द से छूटा। उन्होने जैसे मार्मिक और विचारपूर्ण लेख वैदिक विषयो पर लिखे, शास्त्रीय सिद्धान्तो का विवेचन जिस विज्ञता के साथ किया। वह प्रशसनीय ही नही अभूतपूर्व है। ऐसे अपूर्व विद्वान् का हिन्दी क्षेत्र मे अवतीर्ण होना हिन्दी के लिये अत्यन्त गौरव की बात थी। उन्हो ने जैसे गम्भीर धार्मिक निबन्ध हिन्दी भाषामे लिखे है, जैसे शास्त्रीय ग्रंथ रचे है, ब्राह्मण सर्वस्व', निकाल कर हिन्दी भाषा को जो गौरव प्रदान किया है, उसके लिये हिन्दी संसार विशेष कर धार्मिक जगत उनका सदैव कृतज्ञ रहेगा। वे वाग्मी भी बड़े थे, जिन्होने उनके पाडित्यपूर्ण व्याख्यान सुने है, वे जानते है कि उनका भाषण कितना उपपत्तिमूलक और प्रौढ होता था। ऐसा ही उनका हिन्दी गद्य भी है। जहा तर्क पूर्ण और विवेचनात्मक शास्त्रीय विषय लिखा गया है वहा उनकी भाषा गहन से गहन है। परन्तु साधारण विषयो को उन्होने बडी सुलझी और परिष्कृत भाषा मे लिखा है। उनके गद्य मे प्रवाह और प्राञ्जलता दोनो है, भाषा भी उनकी मॅजी हुई है। देखिये —

"आत्म गौरव का संस्कार जागे बिना जातीय अभ्युत्थान का होना असम्भव है और जहॉ की भाषा अपने देश के उपकरणो से संगठित नहीं वहॉ आत्म गौरव के संस्कार का आविर्भाव होना असम्भव है। क्योकि ऐसी दशामे संसार यही कहेगा कि "कहीं की ईंट कहीका रोडा, भानमती ने कुनबा जोडा"। जहा आत्मगौरव का अभाव है, उस देश वा जाति का जातीय अभ्युत्थान होना भी असंभव ही जानो।'

'जो मनुष्य ऐसे वंश मे उत्पन्न हुआ है, जिसमे गौरव का चिन्ह भी नही, न कोई वैसा कर्त्तव्य पालन है, उसका उत्थान होना संभव नही है। क्योंकि जन्मान्तरीय संस्कार स्वच्छ होने पर भी उन संस्कारों के उद्-

बोधक निमित्त कारण उस जाति को प्राप्त नही है। इसी कारण ऐसे साधन हीन वंशो मे उच्चकोटि के विचारवान मनुष्यो का सदाही अभाव दीखता है। विचार का स्थान है कि मेवाड के महाराणा वीरो ने म्लेच्छो के समक्ष शिर नही झुकाया, तथा अन्य सभी राजाओ ने शाशक यवनों की अधीनता स्वीकार की। इसका कारण वंश परम्परागत आत्म गौरव ही था।"

इन दोनो अवतरणो को देख कर आप को पता चल गया होगा कि पण्डितजी की प्रवृत्ति किस प्रकार की भाषा लिखने की ओर थी, उनकी भाषा परिष्कृत है, परन्तु है संस्कृतगर्भित। आज कल ऐसी ही भाषा का अधिक प्रचार है, इसलिये हम यह कह सकते है कि इस शैली को प्रचलित और पुष्ट करनेवाले पुरुषो मे प्रथम स्थान पण्डितजी ही का है। उनमे इस प्रवृत्ति का उदय होना स्वाभाविक था क्योकि प्रथम तो वे सस्कृत के विद्वान् थे, दूसरे वे उन लोगो मे थे जो विजातीय भाषा के शब्दो को ग्रहण करना युक्ति सगत नहीं मानते थे। उनका विचार था ऐसा करना रूपान्तर से अपनी भाषा की न्यूनता स्वीकार करना है। अन्यो से इस विषय मे वे अधिक कट्टर थे। वे विदेशी और बिजातीय भाषा के शब्द न लेने की चर्चा करते हुये, एक स्थान पर यह लिखत है —

"शिकायत शब्द अन्य भाषा का है। परन्तु हिन्दी भाषा मे विशेष रूप से प्रचलित हो गया है। यदि इस शब्द के स्थान मे उपालम्भ का प्रयोग करने की रुचि नही है और यह इच्छा है कि इसी अर्थ का बोधक इसी से मिलता हुआ संस्कृत शब्द हो तो वसे शब्द भी संस्कृत भाषा की अद्भुत शक्ति होने से हमको प्राप्त हो सकते है, जिनका स्वरूप, और अर्थ दोनो मिल सकते है, जैसे 'शिक्षा यत्न' वा शिक्षा यंत्रि'। जिस मनुष्य की शिकायत की जाती है उसको कुछ शिक्षा वा दण्ड देने वा दिलाने का अभिप्राय होता है। जिससे वह आगे वैसा न करे, इससे 'शिकायत' शब्द के स्थान मे शिक्षायत्न शब्द का प्रयोग उचित है।

इस अवतरण में यह शिक्षा है कि यदि आवश्यकता वश विदेशी अथवा

विजातीय शब्दो को ग्रहण करना ही पड़े तो किस प्रकार उनको संस्कृत रूप दे दिया जावे। दूसरे स्थान पर वह यह कहते है, कि यदि विदेशी अथवा विजातीय शब्दो को मुख्य रूप मे ही लिखना पसन्द हो तो यह भी कर सकत हो परन्तु उसको संस्कृत का शब्द ही मान लो, क्योकि उसमे यह शक्ति है कि अन्य भाषा के शब्दो की व्युत्पत्ति वह उसी अर्थ मे कर लेती है। निम्न लिखित अवतरण को पढिये और उसमे उनका पाण्डित्य देखिये —

"यदि हम आस्मान शब्द को अपने व्यवहार मे लावे तो उसे असमान शब्द का अपभ्रंश मानें आसमन्तात्समानानमेव रूपं यदस्ति सर्वत्र विद्यते नचघटादिषु विकृतं भवति तदा समानम्। जो सब घटादि पदार्थों मे एक ही रूप रहता, जिसमे किसी प्रकार का विकार नहीं होता, वह आसमान नामक आकाश है, उसी का अपभ्रंश आस्मान हो गया। बन्ध धातु से उर प्रत्यय करने पर बन्धुर शब्द बनेगा, जिस समुद्र तट पर जहाज बाँधे जावे, वह स्थान बन्धुर हुआ, उसी का अपभ्रंश बन्दर शब्द को मान लेना चाहिये। अथवा स्तुति अर्थ वाले बदि धातु से औणादिक अर प्रत्यय करने पर प्रशस्त कार्य्यसाधक स्थान का नाम बन्दर हो सकता है"।

पंडित जी का बिचार आत्म निर्भरता मूलक है, उसका आधार वह आर्य्य संस्कृति है, जिसको परावलम्बन प्रिय नही और जो सर्वथा शुद्धता वादी है। किन्तु परिस्थिति उनके विचारो के अनुकूल नहीं थी, और आवश्यकताओ की दृष्टि किसी अन्य लक्ष्य की ओर थी, इसलिये उनका कथन नही सुना गया, किन्तु हिन्दी भाषा विकास की चर्चा के समय उनका स्मरण सदा होता रहेगा। जनता की बोलचाल की भाषा बडी शक्ति शालिनी होती है, भाषा कितनी ही साहित्यिक बने परन्तु वह उसके प्रभाव से मुक्त नही हो सकती विदेशीय और विजातीय जो शब्द अधिक प्रचलित हो जाने के कारण बोलचाल मे गृहीत हो जाते है, उनका सर्वथा त्याग असम्भव है। फारसी अरबी, अँगरेजी आदि भाषाओ के जो सहस्रो शब्द आज बोलचाल मे प्रचलित है, उनके स्थान पर गढे शब्द रखने से भाषा को जटि-

लता बढती है और वह बोधगम्य नही रह जाती। इस लिये ऐसे शब्दों का ग्रहण अनिवार्य हो जाता है। अनिच्छा अथवा संस्कृति उसके प्रसार मे बाधा नही पहुचा सकती क्योंकि संसार और समाज सुविधा प्रेमी है। फिर भी पण्डित जी की सम्मति उपेक्षा की दृष्टि से नही देखी जा सकती। इस प्रकार की सम्मतिया कार्य्य मे परिणत न हो कर भी भाषा को मर्य्यादित करने मे बडी सहायक होती है। इनको पढ कर वे लोग भी सावधानता पूर्बक पाव उठाने लगते है जिनको आख मूद कर चलना ही पसद आता है। पण्डित जी ने हिन्दी क्षेत्र मे साहित्य सम्बन्धी जितने कार्य्य किये है वे सब बहुमूल्य है, और उनके द्वारा हिन्दी संसार अधिक उपकृत हुआ है।

२—पण्डित भीमसेन जी के उपरान्त हिन्दी के धार्मिक क्षेत्र मे अपनी कृतियो द्वारा विशेष स्थान के अधिकारी विद्यावारिधि पं० ज्वाला प्रसाद है। आपने भी अनेक ग्रंथो की रचना की है और इस विषय मे बडा नाम पाया है। आप का हिन्दी का यजुर्वेद भाष्य बडा ही परिश्रम साध्य और महान् कार्य्य है। आप की रामायण की टीका बहुत प्रसिद्ध है, उसका प्रचार भी अधिक हुआ है। आप का दयानन्द तिमिर भास्कर नामक ग्रंथ भी उपादेय है। आपने कई पुराणों का अनुवाद भी हिन्दी भाषा मे किया है। आपके समस्त ग्रंथ वेंकटेश्वर प्रेस मे छपे है। आप बहुत बडे वाग्मी थे। आप जैसा सभा पर अधिकार करते मैने अन्य को नहीं देखा। आप के रचे ग्रंथो की संख्या भी अधिक है, परन्तु समस्त ग्रंथ धार्मिक विषयो पर ही लिखे गये है। केवल बिहारी सतसई की टीका ही ऐसी है जिसे हम धार्मिक ग्रंथ नही कह सकते। परन्तु यह टीका उनके पद मर्य्यादा से बहुत नीचे है। आजीवन धार्मिक क्षेत्र ही उनका था और इसी मे उनको अतुलनीय कीर्ति प्राप्त हुई। पण्डित बलदेव प्रसाद आप के लघु भ्राता थे। आपने भी अनेक हिन्दी ग्रथों की रचना की है, आप के ग्रंथ भी उपयोगी और सुन्दर है। आप अपने ज्येष्ट भ्राता की ही प्रतिमूर्ति थे॥

मिश्र जी के गद्य का उदाहरण भी देखिये —

"श्री गोस्वामी जी का जीवन चरित्र लिखने के लिये जिस जिस

सामग्री की आवश्यकता है. वह इस समय सर्वथा प्राप्त नहीं होती। इसलिये इनके चरित्र लिखने के लिये दूसरे ग्रंथों और कहावतों का संग्रह करना पड़ा है। सुनते हैं वेणीमाधव दास कृत एक गोसाईं चरित्र नामक ग्रंथ है, जो गोस्वामी जी के समय में ही रचा गया है, परंतु वह भी इस समय नहीं मिलता है। इस कारण भक्तमाल तथा दूसरे ग्रंथों के आधार पर कुछ लिखते हैं।'' "एक समय एक संतने कहा राम का अवतार तो द्वादश कला का है, कृष्ण का सोलह कला का है, सो तुम सोलह कलावतार को क्यों नहीं भजते। तुलसीदासजी यह सुनते ही दो घड़ीतक प्रेममें मग्न हो गये। और फिर बोले हम तो आजतक रामचन्द्र को कौशल राजकुमार जानते थे, पर तुमने तो बारह कला का ईश्वर का अवतार बता कर हमारी भक्ति और भी दृढ़ कर दी, अब उनको कैसे त्याग दूं। यह सुन अनन्य उपासी जान साधु ने उनके चरण पकड़ लिये। यद्यपि गोस्वामी जी कह सकते थे कि सूर्य बारह कला, और चन्द्र सोलह में पूर्ण होता है, यह उसी का उपलक्ष्य है, पर उन्होंने वही उत्तर देना उचित जाना॥

३—साहित्याचार्य्य पं० अम्बिकादत्त व्यास का वर्णन मैं पहले कर आया हूं। वे जैसे धर्माचार्य्य हैं, वैसे ही साहित्याचार्य। उनकी अनेक उपाधियां हैं। वे भारतेन्दु जी के समकालीन थे। पं० प्रतापनारायण मिश्र, प्रेमघन, पं० गोविन्द नारायण मिश्र और पं० बालकृष्ण भट्ट के समान उनका स्थान भी उस समय के साहित्य सेवियों में प्रधान है, अतएव उन्हीं के साथ उनका वर्णन भी होना चाहिये था। परन्तु धर्म क्षेत्र के उनके कार्य्य साहित्य क्षेत्र से भी अधिक हैं, विहार प्रान्त में धर्म के साथ उन्होंने हिन्दी का प्रचार भी बड़ी तत्परता के साथ किया, इसलिये मुझको प्रचार काल में ही उन्हें लाना पड़ा। वे विचित्र बुद्धि के मनुष्य थे। उन्होंने धार्मिक क्षेत्र में रह कर उस समय अवतार कारिका, अवतार मीमांसा आदि जितने ग्रंथों की रचना संस्कृत में की उनकी उस समय बड़ी प्रशंसा हुई थी। उनका मूर्ति पूजा नामक हिन्दी ग्रंथ भी इस विषय में अपूर्व है। विहार प्रान्त में उन्हों ने जिस प्रकार धर्म दुन्दुभी का निनाद किया, वह बड़ा ही व्यापक और प्रभावशाली था। उन्होंने गद्य के कई बड़े बड़े ग्रंथ लिखे, वे

पीयूष प्रवाह, नामक अपने मासिक पत्र को, चिरकाल तक निकालते रहे। धर्म्म क्षेत्र मे उनका कार्य्य जितना ठोस है, उतना ही साहित्य क्षेत्र मे। उनका 'गद्य मीमासा' नामक हिन्दी मे लिखा गया ग्रंथ भी अपूर्व है, उनके पहले किसी ने ग्रंथ लिख कर गद्य शैली निर्धारण की चेष्टा नहीं की थी। उनका गद्य भी विलक्षण और कई प्रकार का होता था, कुछ उदाहरण लीजिये —

"सम्बत् १९३४ मे एंग्लो की उत्तम वर्ग की पढाई मैंने समाप्त की। इसी वर्ष अभिनव स्थापित काश्मीराधीश के संस्कृत कालेजमे मैंने नाम लिखाया। वहाँ परीक्षा दी। कालेज की प्रधान अध्यक्षता जगत्-प्रसिद्ध स्वामी विशुद्धानंद जी के हाथ मे थी, उनने यावत् पंडितो के समक्ष मुझे ब्यास पद दिया। यों तो मैं पहले से ही व्यास जी कहा जाता था, परन्तु अब वह पद और पक्का हो गया।"

"थोडे ही दिनो के ही अनन्तर पोरबन्दर के गोस्वामी बल्लभ कुलावतंस श्री जीवनलाल जी महाराज से मेरा परिचय हुआ। वे मुझसे कुछ पढने लगे, उनके साथ कलकत्ते गया। वहाँ सनातन धर्म के विभिन्न विषयों पर मेरी २८ वक्तृताये हुईं। कई सभाओं में बंगदेशीय पण्डितो से गहन शास्त्रार्थ हुये।"

"अबदेखिये वही वेदान्तियो के सिद्धान्त मूर्त्तिपूजा द्वारा कैसे सुखपूर्वक सिद्ध होते है। जगत का सम्पर्क छोड परमात्मा मे एकदम लीन हो जाना, बात तो इतनी सी है और इसी के साधने मे अहन्ता ममतादि का त्याग है तो जगन्मिथ्या, जगन्मिथ्या कहते कहते, तो आप लोगो को बतलाया ही जाचुका है कि "पादागुष्ठ शिरोषाग्नि कदामौलिमवाप्स्यति" और बाबा किसी अधिकारी को उसी ढंग से शीघ्र जगत् से असम्पर्क हो, और आत्मानुभव हो तो हम उसके लिये कुछ मना भी नहीं करते, वह ब्रह्मानंद में डूबे, पर देखिये तो भक्तों का एक कैसा अद्भुत रास्ता है।"

'आहा! इस समय भी स्मरण करनेसे ऐसा जान पडता है, कि मानों रात्रि का अंधकार क्रमसे पीछे हट चला है चिड़ियोंने धीमे धीमे कोमल सुर

से कुछ कुछ चकचकाहट आरंभ की है और ठढी ठंढी हवा चल रही है । इसी समय नींद खुली और आख खोलते ही चट नारायण का नाम ले, कुछ आवश्यक कृत्यों से निपट जै जै करते मन्दिर की ओर दौड पडे ।"

४—फुल्लौर ज़िला जालंधर निवासी पं० श्रद्धारामजी पंजाब प्रान्त के प्रसिद्ध हिन्दू धर्म प्रचारक और हिन्दी भाषा के कई ग्रंथो के रचयिता है। जिन मे 'सत्यामृत प्रवाह' अधिक ख्याति प्राप्त है । मरने के समय उनके मुख से हठात् यह निकला था कि हिन्दी भाषा के दो बडे लेखक थे, एक पंजाब मे और एक बनारस मे अब केवल एक ही रह जायेगा ।" इससे स्पष्ट है कि उनका स्वर्गवास बाबू हरिश्चन्द्र के पहले ही हुआ, क्योंकि जिस शेष लेखक की ओर उनका संकेत है वे उक्त बाबूसाहब ही है । ऐसी अवस्था मे प्रचार काल मे उनकी चर्चा उचित नहीं । परन्तु मै पहले ही लिख चुका हू कि यह प्रचार काल उनके जीवन से ही प्रारम्भ होता है, इसलिये और इस कारण कि प० जी हिन्दी के प्रसिद्ध प्रचारक थे, उनकी चर्चा प्रचार-काल मे ही की गई । पण्डितजी ने जितने ग्रंथ लिखे है, वे बडे उपादेय है उनका 'आत्मचिकित्सा' नामक ग्रंथ भी बडा उत्तम है । वे अनीश्वरवादी थे, परन्तु हिन्दू शास्त्रोंपर उनकी बडी श्रद्धा थी और सामाजिक समस्त नियमो का पालन वे बडी तत्परता से करते थे। हिन्दूधर्म मे उनकी बडी ममता थी, और उसकी रक्षा के लिये वे सदा कटिवद्ध रहते थे। जिस समय काश्मीर के मुसल्मानो को हिन्दू बनाने की इच्छा काश्मीर नरेश की हुई, उस समय पं० जी ने इस बिषय मे उन्हे बहुत उत्साहित किया । किन्तु दुःख है कि हिन्दुओं के दुर्भाग्य और विशेष कारणो से मनकी बात मन ही मे रह गई । पण्डित जी ने भाग्यवती नामक एक उपन्यास भी लिखा है जो बडाही सुन्दर है । उन्होंने अपना जीवनचरित स्वयं १४०० पृष्ठो मे लिखा था, परन्तु अब वह प्राप्त नहीं होता । कहा जाता है, छपने के पहले ही गुम हो गया । उनके गद्य का कुछ अंश देखिये.—

'वह भी ईश्वर कृत नही, किन्तु समुद्र और अन्य नदीनालों का जल सूर्य की किरणद्वारा उदान वायु के वेग से ऊपर खैचा जाता है और सूर्य्य

की ताप से पिघलता पिघलता अति सूक्ष्म हो के आकाश मे मेघाकार दिखाई देता है। जब उसको ऊपर शीतल वायु मिले तो घृतकी नाई जम के भारी हो जाता और अपान वायु के वेग से नीचे गिरने लगता है। यदि ऊपर शीतल वायु बहुत लगे तो अत्यंत गरिष्ट हो के ओले बरसने लगते है।।"

सत्यामृतप्रवाह

५—श्रीमान् पं० मधुसूदन गोस्वामी हिन्दू-शास्त्र के पारंगत विद्वान् और हिन्दी भाषा के प्रौढ लेखक थे। उन्हो ने ग्रंथ भी बनाये है, किन्तु अधिकाश निबन्ध ही उनके लिखे है' जो प्राय पत्र और पत्रिकाओ मे मुद्रित होते रहते थे। वे प्रचार के लिये बाहर आते जाते नहीं देखे गये, लेखो के द्वारा ही उन्होने धर्म की अच्छी सेवा की है। जितने धर्म विषयक लेख उन्हो ने लिखे है वे पठनीय और आदरणीय है। आलाराम सागर सन्यासी भी उस काल के एक अच्छे प्रचारको मे थे। उन्होने विशेषत इस विषय पर लेख लिखे है कि सिक्खो के १० गुरु हिन्दू धर्म के रक्षक थे और सदा उन्होने हिन्दूधर्म भावो का ही प्रचार किया है। वे हिन्दू और सिक्खों मे सद्भाव स्थापन के बडे उद्योगी थे। इस विषय के टैक्ट और छोटे छोटे ग्रंथ लिख कर उन्होने उनका प्रचार अधिकता से किया था। इन सब ग्रथो और टैक्टो को उन्होने अधिकाश हिन्दी भाषा ही मे लिखा था। हिन्दी भाषा प्रचार के लिये भी वे बहुत उत्सुक रहते थे।

६- हिन्दी भाषा के प्रचार के लिये आर्य समाजियों ने भी इस समय बडा उद्योग किया था। पजाब प्रात मे हिन्दी भाषा के प्रचार का श्रेय उन्ही को प्राप्त है। इस समय आर्य समाज मे भी सस्कृत के धुरधर विद्वान् थे जो धर्म के साथ २ हिन्दी-भाषा का प्रचार भी करते थे। इन मे से स्वामी दर्शनानन्द, स्वामी श्रद्धानद पं० तुलसीराम, प० गणपति शास्त्री, पं० राजाराम और श्री युत आर्य मुनि का नाम विशेष उल्लेखनीय है। स्वामी दर्शनानन्द ने पत्र और पत्रिकाये भी निकाली और धार्मिक बिचारो पर उत्तमोत्तम ग्रंथ भी लिखे। उनके ग्रंथ प्रौढ विचारो से पूर्ण है उनमे दार्शनिकता भी पाई जाती है। ये समस्त ग्रंथ अधिकाश हिन्दी

भापा मे लिखे गये है। स्वामी श्रद्धानंद ने चिरकाल तक सत्यधर्म प्रचारक' का सम्पादन किया था और कतिपय धार्मिक पुस्तके भी लिखी थीं। उनके ग्रंथ भी उपादेय है और सामयिकता की दृष्टि से उनमे ऐसो बाते लिखी गयी है जो हिन्दू जाति को जाग्रत् करती है। आप लोग देश विदेशो मे जाते थे और वहा पर आर्य समाज के साथ हिन्दी भाषा का प्रचार मो करते थे। प० तुलसीराम और पं० गणपति शास्त्री का शास्त्र ज्ञान और वैदिक विपयो की अभिज्ञता प्रशंसनीय थो। दोनो सज्जनो की विचार शैली गहन और युक्ति मूलक होती थो। पं० तुलसीराम एक मासिक पत्र भी निकालते थे वे उसमे शास्त्रोय विषयो को मीमासा करते रहते थे। उनके भी अधिकाश ग्रंथ हिन्दी भाषा मे ही लिखे गये है और इस कारण हिन्दी-भाषा के प्रचार मे उनका उद्योग भी प्रशंसनीय था। पं० गणपति शास्त्री की भाषण शक्ति जैसो अपूर्व थी वैसी ही विषय-विवेचन को योग्यता भी उनमे थी। उनके लेख गंभीर होते थे, उनके ग्रथ भी उनके पाडित्य के प्रमाण है। पं० राजाराम ने उपनिषदादि अनेक प्राचीन ग्रंथो की टीका हिन्दी भाषा मे लिखी है, और कुछ स्वतंत्र ग्रंथो को भी रचना की है। श्री युत आर्य मुनि की कृतिया भो मूल्यवान है जो अधिकाश हिन्दी भाषा मे है, उनसे हिन्दी प्रचार की तत्कालिक प्रवृत्ति मे अच्छी सहायता प्राप्त हुई है।

७ इस काल मे अयोध्यानिवासी कुछ महात्माओ और विद्वानों ने भो हिन्दू धर्म हिन्दू जाति और हिन्दी भाषा की बहुत बडी सेवा की थी इनमे से स्वामो युगलानन्द शरण का नाम विशेष उल्लेखयोग्य है। स्वामी युगलानन्द शरण सस्कृत, अरबी एव फारसी के बडे विद्वान् थे, हिन्दो-भाषा के तो एक प्रकार से आचार्य्य हो थे। वे हिन्दी के सत्कवि थे। उन्होने राम लोला सम्बन्धी पद्यके सुन्दर ग्रन्थ बनाये है, उनमे धार्मिकभाव भी पर्य्याप्त मात्रा मे मौजूद है। उनकी जितनी रचनाये है, सब बडी सरस और मधुर है, उनमे हृदय ग्राहिता की मात्रा भी अधिक है। उन्होने कुछ गद्य ग्रन्थो की भी रचना की है और कतिपय ग्रन्थ की टीकाये भी लिखी है। उनकी शिष्य परम्परा मे भो उनके भाव गृहीत होते आये है इसी लिये वे लोग

भी हिन्दी सेवा मे वैसे ही निरत देखे जाते हैं। बाबा रामचरण दास ने इसी काल मे एक ऐसी विस्तृत रामायण की टीका लिखी है जो अद्वितीय कही जा सकती है। इसमे उन्होने वेद, शास्त्र उपनिषद, पुराण आदि के आधार से गो० तुलसी दास की रामायण की चौपाइयो का ऐसा विशद अर्थ किया है, जिसकी भूरि भूरि प्रशंसा करने पर भी तृप्ति नहीं होती। इस ग्रथ से भी तत्कालिक हिन्दू धर्म को अच्छा उत्तेजन मिला है, हिन्दी भाषा के भाण्डार को तो जगमगाता रत्न ही मिल गया है। बाबा रघुनाथ दास की रचनाये भी बहुमूल्य हैं, उनका अवधी भापा मे लिखा गया 'विश्राम सागर' अधिक प्रसिद्ध है। इसी प्रकार के कुछ और हिन्दी हितैपी महात्माओ और विद्वानो के नाम बताये जा सकते है, किन्तु व्यर्थ बाहुल्य होगा।

८—इसी काल मे तुलसी साहब ने घटरामायण नामक एक विशाल ग्रन्थ को रचना पद्य मे की, जो अपने ढङ्ग का अनूठा है। राधा स्वामी मत की स्थापना भी इसी काल मे हुई। उस संप्रदाय वालो की भी कुछ ऐसी रचनाये इस काल की है, जिनसे हिन्दी भाषा के प्रचार मे कुछ न कुछ सहायता अवश्य प्राप्त हुई। पं० ब्रह्मशङ्कर मिश्र का रचा हुआ ग्रन्थ प्रमाण मे उपस्थित किया जा सकता है, यह ग्रथ अपने ढङ्ग का उत्तम है। उसमे जो बाते वर्णन की गयी है वे कई एक सिद्धान्त की बातो पर अच्छा प्रकाश डालती है।

९—श्री युक्त राधाचरण गोस्वामी प्रसिद्ध साहित्य सेवियोंमे है, आप भी बाबू हरिश्चन्द्र के समकालीन सज्जनो मे है। आप की गणना भी उस समय के उन्हीं लोगो मे है जो उन के सच्चे सहयोगियो के नाम से प्रसिद्ध है। पण्डित बाल कृष्ण भट्ट, पं० प्रतापनारायण, पं० अम्बिका दत्त व्यास आदि के समान ही साहित्य सेवियो मे आप की भी गणना है। आप ने भारतेन्दु नामक एक मासिक पत्रिका उनकी कीर्ति की स्मृतिमे निकाली थी जो बहुत दिनो तक चलता रहा। आप बड़े मार्मिक लेखक थे। आप की लेख मालाये बड़े आदर से पढी जाती थीं। आप स्वतत्र विचार के

पुरुष थे, इस लिये सामयिकता के विशेष अनुरागी थे । उन्हो ने विदेश यात्रा और विधवा विवाह मण्डन पर भावमयी पुस्तके लिखी है। आप जैसे गद्य रचना मे निपुण थे वैसे ही पद्य रचना पटु भी । आप ने 'उत्तरार्द्ध' भक्त माल' नामक एक सुन्दर ग्रंथ पद्य मे बनाया है, उसमे नाभा जी के वाद के भक्तो की चर्चा की है रचना वैसी ही सुन्दर, सरस और ललित है जैसी नाभा जी रचित भक्त माल की । आप ने व्रजप्रान्त मे और युक्तप्रान्त के पश्चिमी जिलो मे हिन्दी भाषा के प्रचार का बडा उद्योग किया था । जिस समय कचहरियो मे हिन्दी भाषा के ग्रहण किये जाने का आन्दोलन पूज्यपाद मालवीय जी के नेतृत्व मे चल रहा था, उस समय आप भी उसके एक विशेष सहायक थे । आप ने हिन्दी मे कई ग्रन्थ की रचनाये की है जो मनोहर एवं मधुर है। उनमे सामयिकता भी पाई जाती है। उनके गद्य और पद्य का एक उदाहरण देखिये. --

'इसका नाम 'भारतेन्दु, रखने का कारण जानने के लिये शायद आप लोग उत्सुक होगे, क्योकि इस रूप तथा इस आकारके पत्र के लिये तनिक यह नाम अयोग्य सा मालूम होता है। परन्तु यह धृष्टता केवल इसे पूज्य पाद भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र का स्मारक स्वरूप बनाने के लिये की गई है। यो तो उनकी अटल कीर्ति जब तक हिन्दी भाषा की एक भी पुस्तक रहेगी तब तक इस भूमण्डल में वर्त्तमान रहेगी, तथापि इसी बहाने उनके प्रात. स्मरणीय नाम के उच्चारण का सौभाग्य प्राप्त होगा ।"

१०—अलीगढ निवासी बाबू तोताराम बी० ए० बाबू हरिश्चन्द्र के समकालीन हिन्दी सेवको मे है। उन्हों ने भी हिन्दी के प्रचार मे बडा उद्योग किया था । 'भारत-वन्धु' नामक एक साहित्यिक पत्र उन्हो ने निकाला था, कुछ ग्रन्थो की भी रचनाये की थीं। जिनमे 'केटो कृतान्त' नाटक और 'स्त्री 'सुबोधिनी' प्रसिद्ध है। इनकी गद्य रचना साधारण है, परन्तु उसमे नियमबद्धता पाई जाती है । इनकी गद्य रचना का एक अंश देखिये —

"कौन नही जानता ? परन्तु इस नीच संसार के आगे कीर्ति केतु

विचारे को क्या चलती है। जो पराधीन होने ही से प्रसन्न रहता है और सिसुमार की शरण जा गिरने का ही जिसे चाव है। हमारा पिता अत्रिपुर में बैठा हुआ वृथा रमावती नगरी की नाम मात्र प्रतिष्ठा बनाये है। नौपुर की निबल सेना और एक रीति मन्त्रागिणी सभा जो निष्फल युद्धों से शेष रह गई है वह उसके सङ्ग है।"

११—प० केशो राम भट्ट इस प्रचार काल के हो एक प्रसिद्ध हिन्दी सेवक है। उन्हो ने बिहार बन्धु नामक एक सप्ताहिक पत्र बिहार से ही निकाला था, जो कुछ दिनो तक वहाँ सफलता पूर्वक चलता रहा। उन्हो ने सज्जाद सबुल और शमशाद सौसन नामक दो नाटक भी बनाये थे और एक व्याकरण ग्रन्थ भी। यह व्याकरण ग्रंथ उस समय हिन्दी संसार मे आदर की दृष्टि से देखा गया था। उनके दोनो नाटक भी अच्छे है परन्तु उनकी भाषा खिचडो है। हिन्दी के साथ उसमे उर्दू शब्दो का प्रयोग अधिक है॥

१२—बाबू बालमुकुन्द गुप्त पहले उर्दू के प्रेमी थे। बाद को प० प्रतापनारायण मिश्र के सहबास के कारण हिन्दी प्रेमी बन गये। उन्होने उन्ही से हिन्दी लिखने की प्रणालो सीखी। अतएव उन्हीं की सो फडकती और चलती भाषा प्राय लिखी है। उन्होंने बहुत दिनो तक भारत-मित्र पत्र का सम्पादन किया था। दो तीन छोटी मोटी हिन्दी पुस्तके भी लिखी है। उर्दू मे पूरा अभ्यास होने के कारण उनकी भाषा मंजी हुई होती थी। वे सरस हृदय थे, इसलिये सुन्दर और सरस कविता भी कर लेते थे। उनकी हिन्दी भाषा की कविता थोडी है, पर अच्छी है। उनके कुछ गद्य पद्य देखिये —

"तीसरे पहर का समय था, दिन जल्दी जल्दी ढल रहा था। और सामने से संध्या फुर्ती के साथ पाँव बढाये चली आती थी। शर्मा महाराज बूटी की धुन मे लगे हुए थे। सिलबट्टा से भंग रगडी जा रही थी। मिर्च मसाला साफ हो रहा था। बादाम इलायची के छिलके उतारे जाते थे। नागपुरी नारंगिया छील छील कर रस निकाला जाता था। इतने मे देखा

कि बादल उमड रहे है, चीले नीचे उतर रही है, तबीअत भुरभुरा उठी। इधर भंग उधर घटा, बहार मे बहार। इतने मे वायु का वेग बढा, "चीले अदृश्य हुई अंधेरा छाया, बूंदे गिरने लगी, साथ ही तड तड धड धड होने लगी। देखो ओले गिर रहे है। ओले थमे, कुछ वर्षा हुई बूटी तयार हुई बमभोला कहकर शर्म्मा जी ने एक लोटा भर चढाई।"
उनके कुछ पद्य देखिये —

आ जा नवल बसंत सकल ऋतुओं में प्यारी।
तेरा शुभागमन सुन फूली केसर क्यारी।
सरसों तुझको देख रही है आंख उठाये।
गेंदे ले ले फूल खड़े हैं सजे सजाये।
आस कर रहे हैं टेसू तेरे दर्शन की।
फूल फूल दिखलाते हैं गति अपने मन की।
पेड़ बुलाते हैं तुझको टहनियां हिला के।
बड़े प्रेम से टेर रहे हैं हाथ उठा के।

१३—लाला श्रीनिवास दास इस काल के अच्छे लेखको मे थे। उन्होंने परीक्षा गुरु नामक एक मौलिक उपन्यास लिखा था। 'तप्ता संबरण', 'संयोगिता स्वयंबर' और 'रणधीर प्रेम मोहिनी' नामक तीन नाटकों की भी रचना की थी। ये तीनो नाटक अच्छे है, परन्तु रणधीर प्रेम मोहिनी सबसे सुन्दर है, इसका सस्कृत अनुवाद पं० विजयानन्द त्रिपाठी ने किया था। उन्होंने 'सदादर्श' नामक मासिक पत्र भी निकाला था। 'परीक्षा गुरु' की भाषा अच्छी है उसमे चलतापन भी पाया जाता है उस का एक अंश देखिये —

' जैसे अन्न प्राणाधार है, परन्तु अति भोजन से रोग उत्पन्न होता है लाला ब्रजकिशोर कहने लगे "देखिये परोपकार की इच्छा अत्यन्त उपकारी है, परन्तु हद से आगे बढाने पर वह भी फजूल खर्ची समझी जायेगी।

और अपने कुटुम्ब परिवारादि का सुख नष्ट हो जायेगा। जो आलसी अथवा अधर्मियो को सहायता की तो उससे संसार मे आलस्य और पाप की वृद्धि होगी।"

१४—राजकुमार ठाकुर जगमोहन सिह मध्य प्रदेश विजय राघव गढ के रहने वाले थे, मध्य प्रदेश मे उन्होने उस समय हिन्दी प्रचार का अच्छा उद्योग किया था। उन्होंने एक हो ग्रंथ लिखा है। 'श्यामा स्वप्न' परन्तु वह अपने ढंग का अनूठा है। उसमे प्राकृतिक दृश्यो का स्थान स्थान पर सुन्दर चित्रण है। उन्होने अपनी भाषा मे पं० बदरी नारायण की साहित्यिक भाषा का अनुकरण किया है' परन्तु उनके वाक्य अधिक लम्बे हो गये हैं और वाक्य के भीतर वाक्य खण्ड आकर उसको जटिल बना देते हैं। फिर भी यह स्वीकार करना पडेगा कि उन्होने जिस प्रकार प्राकृत दृश्यो का वर्णन किया है, वह संस्कृत कवियों के गंभोर निरीक्षण का स्मरण दिलाता है—

उनके गद्य का एक अंश देखिये.—

मैं कहा तक इस सुन्दर देश का वर्णन करूँ ? जहा की निर्झरिणी—, जिन के तीर वानीरसे भरे, मदकल कूजित विहंगमो से शोभित है, जिन के मूल से स्वच्छ और शीतल जलधारा बहती है और जिनके किनारे के श्याम जम्बू के निकुंज फल भार से नमित जनाते है—शब्दायमान होकर झरती है। जहाँ के शल्लकी वृक्षो की छाल मे हाथी अपना बदन रगड रगड खुजली मिटाते है ओर उनमे से निकला क्षीर बन के सीतल समीर को सुरभित करता है। मंजुवंजुल को लता और नोल निचुल के निकुंज जिनके पत्ते ऐसे सघन, जो सूर्य्य को किरणो को भी नहीं निकलने देते—इस नदी के तट पर शोभित है।'

१५—पंडित विनायकराव ने भी इस समय मध्य प्रदेश मे हिन्दी प्रचार का बहुत बडा कार्य्य किया, आप गद्य पद्य दोनो सुन्दर लिखते थे और अपने विद्यावल से राजा और प्रजा दोनों से आदृत थे। आप की अधिकाश पुस्तकों का प्रचार उस प्रदेश के हाई स्कूलो और पाठशालाओ मे

था, और इस सूत्र से उनके सुलिखित ग्रंथो ने आदर ही नही पाया, मध्य प्रदेश मे हिन्दी की धाक भी बिठला दी। आपकी लिखी रामायण को विनायकी टीका बहुत प्रसिद्ध है, जो कई जिल्दो मे है. इस ग्रंथ के देखने से उनके अगाध ज्ञान का पता चलता है और यह प्रकट होता है कि आप हिन्दी भाषा पर कितना अधिकार रखते थे। आपने पंद्रह बीस ग्रंथ लिखे है। अपनी हिन्दी की बहुमूल्य सेवा के कारण आप सर्कार और जनता दोनो से पुरस्कृत हुये है। सरकार ने एकबार आपको सहस्र रुपये पुरस्कार मे दिये थे, 'कविनायक' एव साहित्य भूषण की उपाधि भो आप को मिली थी।

१६—पडित विजयानन्द त्रिपाठी हिन्दी भाषा के धुरन्धर विद्वान् थे। जिस प्रकार संस्कृत के वे प्रकाण्ड पण्डित थे, वैसे ही हिन्दी भाषा के भी। वाग्मी इतने बडे थे कि जनता पर जादू करते थे। जब कभी उनका भाषण प्रारंभ होता, उस समय सब लोग आई खासी को भी मुँह के बाहर न निकलने देते। जनता उनके व्याख्यानो को सुन कर प्रस्तर की मूर्ति बन जाती थी। उपकार उनके रोम रोम मे भरा था, सर्व साधारण का काम निष्काम भाव से करते वे ही देखे गये। विद्यारत्न आप को उपाधि थी। बाकीपुर के बी० एन० कालेज मे प्रोफेसरी करने के उपरान्त वे बी० एन० कालेजियट स्कूल के हेडपण्डित बहुत दिनो तक रहे। कविता मे अपना नाम श्री कवि लिखते थे। उन्होने बाबू हरिश्चन्द्र की रत्नावली नाटिका को जो अधूरी रह गई थी, पूरा किया। 'रणधीर प्रेममोहिनी, नाटक का संस्कृत में अनुवाद किया, वह भी इस विशेषता के साथ, कि मुख्य ग्रथ मे जिस प्रकार शिष्ट और साधारण जन को भाषा मे अन्तर है वैसा ही उन्होने अपने ग्रंथ मे भी संस्कृत और प्राकृत भाषाओ के आधार से किया। बाबू हरिश्चन्द्र के स्वर्गवास होने पर जो लम्बा लेख उन्होंने लिखा था, वह इतना अपूर्व है, और ऐसी प्रौढ भाषा मे लिखा गया है, कि जिसने उसको एक बार पढा होगा, मेरा विश्वास है, वह उसको आजन्म न भूला होगा। भारत-जीवन पत्र का जन्म भी उन्ही के उद्योग का फल था। उनका लिखा हुआ महाअंधेर नगरी नाटक अपने ढंग का

बडा विचित्र ग्रंथ है। वास्तव बात यह है, कि पं० जी साहित्य कला के पारंगत थे और हिन्दी भाषा पर पूर्ण अधिकार रखते थे। उनके रचे संस्कृत और हिन्दो भाषा के अनेक ग्रंथ है। उनकी एक गद्य रचना देखिये.—

ईमान बेचने वाला———(सभो जात) ईमान ले ईमान टके सेर ईमान, टके पर हम ईमान बेचते है। ईमान ही क्या, जातपॉत कुलकानि धर्म्म कर्म्म बेद पुरान कुरान बाइबिल सत्य ऐकमत्य गुन गौरव इज़्ज़त प्रतिष्ठा मान ज्ञान इत्यादि सर्वस टके सेर !! एक टका दो हम तुमी को डिग्री देते है टकेपर हम अदालतमे तुमारी ऐसो कहैं टका खोलकर हमारी झोली मे रक्खो, अभी तुम्है के० सी० एस० आई० बल्कि ए० बी० सी० डी० इत्यादि छब्बीसो अक्षर और वर्णमाला भरका लम्बा पोछ बढा देवे।

महाअंधेर नगरी।

१७—इस प्रचार काल मे दो बडे उत्साही युवक हिन्दी संसार क सामने आते है, एक है बाबू राधाकृष्ण दास जो स्वर्गीय भारतेन्दु जी के फुफेरे भाई थे और दूसरे है बाबू रामकृष्ण वर्म्मा। बाबू राधाकृष्ण दास ने गद्य पद्य दोनो लिखा है और उसमे अच्छी सफलता पाई हे। उन्हों ने भारतेन्दु जी के चरणो मे बैठ कर हिन्दो अनुराग की शिक्षा पाई थी, उनकी गद्य पद्य शेली का अनुशोलन किया था, इस लिये उनको रचनाओं एव उनके हिन्दी प्रेम को झलक उनमे अधिक मात्रा मे पाई जाती है। उनमे देश प्रेम भी था, और मातृभूमि का प्यार भी, अतएव उनकी कृतियो मे उनके इन भावो का रङ्ग भी देखा जाता है। उन्हो ने भारतेन्दु जी की एक छोटी सो जोवनी लिखो है, जिसमे उनके जोवन से सम्बन्ध रखने वाली अनेक बातो पर प्रकाश डाला है। एक छोटी पुस्तिका मे उन्हों ने यह प्रमाणित करने की चेष्टा को है कि कविवर बिहारी लाल आचार्य केशवदास के पुत्र थे इस ग्रन्थ मे उनकी विषय प्रति-पादन शैली देखने योग्य है। उनका लिखा हुआ प्रताप नाटक भी अच्छा है, उसकी रचना ओजस्विनो और भावमयो है। वे बनारस की नागरो प्रचारिणी सभा के सस्थापकों मे अन्यतम है। उनका कुछ गद्याश देखिये.—

परिहास-प्रियता भी इनकी अपूर्व थी । अङ्गरेजी मे पहली अप्रेल का दिन मानो होली का दिन है। उस दिन लोगों को धोखा देकर मूर्ख बनाना बुद्धिमानी का काम समझा जाता है। इन्हो ने भी कई बेर काशी बासियो को यो ही छकाया था। एक बार छाप दिया कि योरोपीय विद्वान् आये है, जो महाराज बिजयानगरम् को कोठी मे सूर्य्य चन्द्रमा आदि को प्रत्यक्ष पृथ्वी पर बुला कर दिखलावेगे। लोग धोखे मे गये और लज्जित हो कर हँसते हुये लौट आये। एक बेर प्रकाशित किया कि बडे गवैये आये है, वह लोगों को हरिश्चन्द्र स्कूल मे गाना सुनावेगे।"

१८—बाबू रामकृष्ण वर्म्मा भारत-जीवन प्रेस के संस्थापक और भारत-जीवन नामक साप्ताहिक पत्र के सम्पादक थे। उन्होने उस समय इन दोनो के द्वारा हिन्दी भाषा का बहुत अधिक प्रचार किया। अपने प्रस से बहुत अधिक ग्रंथ हिन्दी भाषा के उन्होने निकाले जो अधिकतर साहित्य से सम्बन्ध रखने वाले थे। श्री युत पंडित विजयानन्द के सहयोग से उनका भारत जोवन भी खूब चमका और उसने हिन्दी देवी की सेवा भो अच्छो की। बाबू साहब सुलेखक ओर कवि भी थे, साथ हो सरस हृदय और भावुक भी। उनके रचे हुये ग्रंथ अब भो है, परन्तु खेद है कि प्रेस की उपस्थिति मे भी उनमे से कुछ ग्रंथो का भी द्वितीय सस्करण भी नहीं हुआ।

१९—मैं पहले राजा शिवप्रसाद की हिन्दीशैलो का ऊपर वर्णन कर आया हूं। उनको यह इच्छा थी, कि हिन्दो लिखने की शैली बिल्कुल बोलचाल को भाषा हो, इसलिये उन्हो ने अपनी रचना मे अरबी, फारसो के प्रचलित शब्दो का अधिक प्रयोग किया। आवश्यकता होने पर वे अपनी रचना मे फारसी-अरबी के अप्रचलित शब्दो का भी प्रयोग करते, और संस्कृत के तत्सम शब्दो का भी। कभी वे बडी सीधो सरल हिन्दो लिखते, जिसमे संस्कृत के बोलचाल मे गृहीत सुन्दर शब्द लाते। कभी ऐसी हिन्दी लिखने लगते जिसमे फारसी अरबी के शब्दो की भरमार तो होती हो, संस्कृत के अप्रचलित तत्सम शब्द भी भर जाते। यही

कारण है कि अपनी इच्छा के अनुकूल अपनी हिन्दी भाषा की शैली को वे बोलचाल के रङ्ग मे नहीं ढाल सके और न हिन्दी की कोई निश्चित शैली स्थापन कर सके। उनके रचे 'राजा भोज के सपना' की हिन्दी बडी सुन्दर है उसमे हिन्दी के मुहावरे भी बडी उत्तमता से आये है, परन्तु इतिहास तिमिर नाशक इत्यादि की भाषा ऐसी नही है उसको खिचडी भाषा कह सकते है। राजा लक्ष्मण सिंह और बाबू हरिश्चन्द्र आदि ने इसका प्रतिकार किया, उनको अपने कार्य्य मे सफलता भी प्राप्त हुई। इस समय कचहरियों मे हिन्दी के प्रवेश का आन्दोलन भी उठ खडा हुआ था पूज्य मालवीय जी के नेतृत्व मे युक्त प्रान्त के अनेक सम्भ्रान्त हिन्दू इस आन्दोलन के पृष्ठ पोषक बन कर कार्य्य-क्षेत्र मे अवतीर्ण हुये थे। फल यह हुआ कि सर्कार की दृष्टि भी इस ओर विशेष रूप से आकर्षित हुई और वह इस विचार मे पडी कि इस द्वन्द की निष्पत्ति क्या करे। अतएव भाषा के रूप को ओर उसका विशेष ध्यान गया क्योंकि पाठशाला और स्कूल की पुस्तकों की भाषा का प्रश्न भी सामने था। इस समय पण्डित लक्ष्मीशङ्कर एम० ए० कुछ हिन्दू अधिकारियों के साथ सम्मुख आये और एक नई भाषा गढी गई जिसका नाम बाद को हिन्दुस्तानी पडा। पण्डित जी के स्कूलों का इन्सपेक्टर नियत हो जाने के कारण इस भाषा मे बल आया और साधारणतया इसी भाषामे स्कूलों के कोर्स की अधिकतर पुस्तकोंकी रचना हुई। यह नई भाषा कोई दूसरी भाषा नहीं थी, राजा शिवप्रसाद की बोलचाल की भाषा ही थी जिसका कुछ परिमार्जन हुआ था। पण्डित लक्ष्मीशङ्कर के दल के लोग इसको हिन्दी ही कहते। परन्तु कुछ लोग उसको मुसलमानों को संतुष्ट करने केलिये हिन्दुस्तानी बतलाते। जो अर्थ हिन्दुस्तानी का है वही अर्थ हिन्दी का है। केवल वाद निराकरण केलिये ही नवीन नाम की कल्पना हुई। पण्डित लक्ष्मी शङ्कर की 'काशी पत्रिका इसी भाषा मे निकलती थी और देवनागरी एवं फारसी दोनों अक्षरों मे छपती थी। इस पत्रिका का ग्रामीण पाठशालाओं तक मे प्रवेश था। इस लिये इसके द्वारा हिन्दी के प्रचार मे कुछ न कुछ सुविधा अवश्य हुई। काशी पत्रिका की भाषा बोलचाल की भाषा

होती थी। और उसमे फारसी अरबी के वही शब्द आते थे जिनको जनता प्राय बोलती है, परतु कसर यह थी कि संस्कृत के तत्सम शब्द उसमे नही आने पाते थे। जहा काम पडने पर फारसी अरबी के कठिन से कठिन शब्द ले लिये जाते थे, वहा संस्कृत शब्दों को ऐसे अवसरो पर भी स्थान नही मिलता था, इस लिये अधिकाश हिन्दू लेखकों की दृष्टि मे यह भाषा नहीं जँची। परिणाम यह हुआ कि संस्कृत गर्भित हिन्दी ही का अधिक प्रचार हुआ और इस भाषा का क्षेत्र संकुचित हो कर रह गया। अन्त में पं० जी की दृष्टि भी इधर गई और उनके पदार्थ विज्ञान विटप आदि ग्रंथ ऐसी भाषा मे लिखे गये, जिसमे फारसी-अरबी के स्थान पर संस्कृत तत्सम शब्दो का ही प्रयोग अधिकतर हुआ था। उनके उन्नति प्राप्त प्रेस का नाम चन्द्रप्रभा' था, और उनकी पत्रिका का नाम था काशी पत्रिका ये दोनो नाम भी उनके मनोभावके सूचक है। मैंने अपनी आखों देखा है कि दौरेके दिनोमे जब लडके उनके पास हिन्दी कवित्ताये लेकर पहुचते, तो वे उनको प्रेमसे सुनते, लडकोंकी शाबाशी देते कभी कभी उनको पुरष्कृत भी करते। पहले पहल पद्मावतका सुन्दर सँस्करण उन्होने ही हिन्दीमे निकाला। उन्होने 'त्रिकोणमितिकी उपक्रमणिका' नामक एक सुन्दर ग्रन्थ हिन्दी में बनाया था, जिसका उस समय बडा आदर हुआ था। पण्डित रमाशङ्कर मिश्र उनके छोटे भाई थे, वे आजमगढमे ज्वाइण्ट मजिष्ट्रेट थे, बाद को कई जिलो मे कलक्टर रहे। उनकी स्कूली पुस्तके अधिकत्तर हिन्दुस्तानी भाषाहीमे लिखी गयी थीं, विभिन्न अक्षरोंमे छपकर वे हिन्दू मुसल्मान दोनों के लडकों के काम आती थीं। परन्तु उनमें भी हिन्दी प्रेम था। वे संस्कृत के विद्वान् थे, अतएव हिन्दी भाषा की रचनाओं को विशेष स्नेह दृष्टि से देखते थे। हिन्दी का लेखक होने के ही कारण मुझ पर भी उन्हों ने कई विशेष अवसरो पर बडी कृपा की थी। मेरा विचार है कि प्रचार काल मे इन दोनों भ्राताओं से भी हिन्दी भाषा की वृद्धि मे सहायता पहुँची है और उन्हो ने अपनी पत्रिका और ग्रंथों द्वारा हिन्दुओं के इस संस्कार को बहुत अधिक दूर किया है कि अरबी फारसी के शब्द हिन्दी मे आये नहीं कि वह उर्दू हुई नहीं। हिन्दी अक्षरों

में छपे हुये हिन्दुस्तानी भाषा के ग्रन्थों को पढ कर हिन्दू के लड़के उन्हे हिन्दी ही का ग्रन्थ समझते थे, उर्दू का नही। इससे भी बोल चाल की ओर प्रवृत्ति होने मे, हिन्दी को बडा अवसर मिला वह संकुचित होने के स्थान पर अधिक विस्तृत हो गयी। बाबू देवकीनन्दन खत्री के उपन्यास इसी परिणाम के फल हैं। आजकल के अनेक उपन्यास भी इसी मार्ग पर चल कर हिन्दी भाषा के विस्तार मे सहायक हो रहे है। इसलिये मेरा विचार है कि उस समय के हिन्दी भाषा के प्रचार मे पं० लक्ष्मीशङ्कर एम०ए० का भी विशेष हाथ है-उनक गद्यका एक नमूना देखिये —

'इस जमीन पर और इस जहान मे जिसमे कि हम लोग रहते है लाखो अजीब चीजे हमेशा दिखलाई देती है और हर रोज नई बाते हुआ करती है। जो कुछ कि इस जहान मे होता है, उसे गौर से देखने और उसके सबब को सोचने से जुरूर बडा फायदा होता है। बिजली के सब नियमो के जानने से कैसा फायदा हुआ है कि हजारो कोस की दूरी पर मुल्क मुल्क मे पल भर मे तार के सबब से खबर पहुचा सकते है। भाफ के जोर से कैसी अच्छी तरह से रेलगाडी और धूआकश चलते है।'

/ २०—काशी निवासी बाबू देवकीनंदन खत्री के 'चन्द्रकान्ता' और 'चन्द्रकान्ता सन्तति' नामक उपन्यासों से भी हिन्दी भाषा के प्रचार में कम सहायता नहीं मिली। इस समय इनके उपन्यासो ने इतना प्रचार पाया, कि उससे उपन्यास क्षेत्र मे युगान्तर उपस्थित हो गया। बहुत से लोगो ने उस समय हिन्दी इसलिये पढी कि वे चन्द्रकान्ता को पढ सके। इन उपन्यासो की भाषा हिन्दुस्तानी है केवल विशेषता इतनी ही है कि उसमे यथावसर संस्कृत के तत्सम शब्द भी आते है। भाषा चलती और मुहाविरेदार है, इसलिये भी उसकी अधिक पूछ हुई। इन उपन्यासों मे चमत्कृत घटनाओं का ही ऊहापोह और विस्तार है। उपदेश, शिक्षा और धार्मिक अथवा सामाजिक आघात प्रतिघात से उनको कोई सम्बन्ध नहीं रहा, फिर भी उनमे इतना आकर्षण है, कि हाथ मे लेकर उन्हे समाप्त किये बिना चैन नही आता। उनके गद्य का एक अंश देखिये —

"रोहतास गढ किले के अन्दर राजमहल की अटारियो पर चढी हुई बहुत सी औरते उस तरफ देख रही है, जिधर वीरेन्द्र सिंह का लश्कर पडा हुआ है। कुंअर कल्यान सिंह के गिरफ्तार हो जाने से किशोरी को एक तरह की निश्चिन्ती होगयी थी, क्यो कि ज्यादे डर उसे अपनी शादी उसके साथ हो जाने का था, अपने मरने की उसे जरा भी परवाह न थी। हाँ, कुँअर इन्द्रजीत सिंह की याद वह एक सायत के लिये भी नहीं भुला सकती थी, जिनकी तस्वीर उसके कलेजे मे खिँची हुई थी। वीरेन्द्रसिंह की लडाई का हाल सुन उसे बडी खुशी हुई और वह भी अपनी अटारी पर चढ कर हसरत भरी निगाहो से उस तरफ देखने लगी जिधर वीरेन्द सिंह की फौज पडी हुई थी।

२१—अन्य भाषा से अपनी भाषा मे ग्रंथो का अनुवाद करना भी भाषा के विस्तार का हेतु होता है, इस प्रचार काल मे यह कार्य्य भी अधिकता से हुआ। बंगभाषा के अनेक उपन्यास अनुवादित हो कर हिन्दी भाषा मे गृहीत हुये। बाबू गदाधर सिंह ने 'कादम्बरी', 'बंग बिजेता' एवं 'दुर्गेश नन्दिनी', का अनुवाद इसी समय किया। बाबू राधाकृष्णदास द्वारा 'स्वर्णलता' एवं मरता क्या न करता आदि कई उपन्यास अनुवादित हुये। बाबू रामदीनसिंह की इच्छा से पं० प्रतापनारायण मिश्र ने 'राजसिंह' आदि आठ दस उपन्यासो का अनुवाद किया। पं० राधाचरण गोस्वामी द्वारा 'मृण्मयी', 'बिरजा' और 'जावित्री' का अनुवाद हुआ। ये अनुवाद बाबू हरिश्चन्द्र की देखा देखी हुये थे। पहले पहल आपने ही बंगभाषा के एक उपन्यास का अनुवाद कर के मार्ग प्रदर्शन किया था। इसके उपरान्त उस से अनेक उपन्यासो और ग्रंथो का अनुवाद हुआ। अनुवाद कर्त्ताओं मे बाबू रामकृष्ण वर्म्मा, बाबू कार्तिक प्रसाद बाबू गोपाल राम गहमर, बाबू उदित नारायण लाल गाजीपुरी आदि का नाम विशेष उल्लेख योग्य है। बाद को इंडियन प्रेस ने तो अनुवाद का ताँता लगा दिया। उसने कवीन्द्र रवीन्द्र के उत्तमोत्तम उपन्यासो के अनुवाद कराये और कुछ बँगला जीवन चरित्रो के भी॥

२२—इस काल मे हिन्दी भाषा मे अनेक पत्र और पत्रिकाये भी निकली जिससे इसके प्रचार मे अधिकतर वृद्धि हुई। इस समय के पहले भी कुछ पत्र पत्रिकाये निकली थीं, जिनमे बनारस अखबार, कविवचन सुधा, और हरिश्चन्द्र चन्द्रिका का नाम विशेप उल्लेख योग्य है। बाबू हरिश्चन्द्र के सहयोगियों मे से लगभग सभी ने एक एक पत्र अथवा पत्रिका अवश्य निकाली। इसकी चर्चा मै कर चुका हू। इस काल मे इस कार्य्य की मात्रा बहुत बढ गई थी, सब प्रकार के पत्र अधिकता से इस समय ही निकले। कालाकाकर का दैनिक 'हिन्दोस्तान' पं० गोपीनाथ संपादित लाहौर का 'मित्र विलास' पं० सदानन्द मिश्र सम्पादित 'सार सुधानिधि', पं० दुर्गा प्रसाद मिश्र सम्पादित 'उचित वक्ता', सम्पादकाचार्य्य पं० रुद्रदत्त सम्पादित 'आर्यावर्त्त', उदयपूर का 'सज्जन कीर्ति सुधाकर', पं० देवकी नदन सम्पादित प्रयाग का 'प्रयाग समाचार' आदि उनमे विशेप उल्लेखनीय है। उस समय जो धार्मिक पत्र पत्रिकाये निकली थीं, उन्होने भी हिन्दी प्रचार सम्बन्ध मे विशेष कार्य्य किया था, क्योंकि जनता की रुचि इधर भी विशेष आकर्षित थी। इनमे कलकत्ता से निकलने वाला 'धर्म दिवाकर, बडा सुन्दर पत्र था, इसका सम्पादन पं० देवी सहाय करते थे। इसमे ऐसे सारगर्भ, संयत एवं मार्मिक लेख निकलते थे, जिनकी बहुत कुछ प्रशसा की जा सकती है। इसी समय 'सरस्वती' भी निकली, जो पं० महाबीर प्रसाद द्विवेदी के द्वारा सम्पादित होकर हिन्दी गद्य के विशेष संशोधन का कारण बनी। उस समय के निकले पत्र पत्रिकाओं मे अधिकाश अब लुप्त हो चुके है, परन्तु उनका प्रचार-कार्य्य और उनका सामयिक प्रभाव किसी प्रकार भूला नहीं जा सकता॥

अब तक जो लिखा गया और जितने अवतरण दिये गये, उनके देखने से यह ज्ञात होता है कि उन्नतिकाल से प्रचार काल की भापा अधिक परिमार्जित है। स्थान के संकोच के कारण मैं प्रधान् पत्र सम्पादकों की लेखमाला में से थोडे अवतरण भी न उठा सका, विशेष कर पं० सदानन्द और पं० दुर्गा प्रसाद मिश्र आदि के, यदि उठा पाता तो प्रस्तुत विषय और स्पष्ट हो जाता। उन्नति काल के प्रसिद्ध हिन्दी लेखक 'आचार्य' है, उन्होंने

ही आदर्श हिन्दी भाषा शैली उपस्थित की है। परन्तु वे लोग स्वच्छंदचारी और मनस्वी थे, जो लिखते थे, अपने विचारानुसार लिखते थे, वे परीक्षा की कसौटी पर कसे नहीं थे, इसलिये उनमे उतना परिमार्जन नहीं मिलता। कहीं कहीं उनकी स्वतंत्र गति भी देखी जाती है, उनके अवतरणो के वे अंश देखिये, जिन पर लम्बी लम्बी लकीरे खिची है। उनमे ब्रजभाषा के शब्द ही नही, क्रियाये भी मिलती है, ग्रामीण शब्द भी पाये जाते है, और सदोष प्रयोग भी। परन्तु प्रचार काल वाले विद्वज्जनो मे वह बात नहीं पाई जाती या यह कहे कि यदि पाई जाती है तो नाम मात्र को। इस काल मे यह बात स्पष्ट देखी जाती है, कि संस्कृत गर्भित भाषा ही अधिकतर लिखी जाती है, यद्यपि सरलता की ओर भी दृष्टि पर्याप्त थी। चाहे पं० भीमसेन जी की भाषा को देखिये, चाहे पं० अम्बिकादत्त व्यास की भाषा को, सबमे यह बात पाई जाती है। साहित्य लेखकों श्री निवास दास और बाबू राधा-कृष्ण दास इत्यादि मे यह बात और अधिक मिलती है। यद्यपि इस काल मे भी कुछ लोग अपनी भाषा मे विदेशी शब्दों को नहीं ग्रहण करना चाहते थे। परंतु साधारणतया यह विचार ढीला पड गया था और लोग आवश्यक विदेशी शब्दो का प्रयोग करने मे संकोच नहीं करते थे। इस काल मे ऐसे लोग भी पाये जाते है, जो उपन्यासों के लिये बोलचाल की भाषा लिखना ही पसंद करते है, और यथावसर मुहाविरे की रक्षा के लिये अथवा वाच्यार्थ को स्पष्ट करने एवं कथन को अधिक भावमय बनाने के लिये निस्संकोच भाव से फारसी अरबी अथवा अन्य बिदेशी भाषा के शब्दों का व्यवहार करते है। बाबू बालमुकुन्द आदि ऐसे ही लेखक है। परिहासमय व्यंग-पूर्ण लेखो मे बिदेशीय शब्दो की भरमार सभी करते है, कारण यह है कि बोलचाल मे ही अधिक व्यंगात्मक लेख लिखे जाते है और ऐसी अवस्था मे उन फारसी अरबी अथवा अन्य भाषा के शब्दों का त्याग नहीं हो सकता जो उसके अंग बन गये है। वरन् उनके आने ही से बोलचाल की भाषा अपने वास्तविक रूप मे प्रकट हो कर अधिक प्रभावशालिनी और चटपटी बन जाती है, अन्यथा वह कृत्रिम और बनावटी ज्ञात होती है। यदि हम व्यंग करते हुये कहे कि इनकी हवा बिगड़ गई, फिर भी ये हवा बाँध रहे

है, तो हमको हवा शब्द को लेना ही पडेगा, चाहे वह फारसी शब्द भले ही हो। क्यो कि हवा के स्थान पर दूसरा शब्द वायु या पवन आदि ग्रहण करने से न तो भाव स्पष्ट होगा, न व्यग सफल होगा, और न मुहावरा मुहावरा रह जायगा। इन बातो पर दृष्टि रख कर हिन्दी भाषा मे स्वभाव तया वही प्रणाली गृहीत हुई और चल पडी, जो उचित थी। आज दिन भी इसी प्रणाली का बोलबाला है। सब भाषाओं मे गंभीर विषयो की भाषा उच्च होती है और साधारण विषयो की चलती। दार्शनिक, वैज्ञानिक और इसी प्रकार के अन्य विषय, गहन और विवेचनात्मक होते है, इस लिये उनके लिये प्रौढ भाषा ही वांछनीय होती है। जो विषय सहज है, जिन मे आपस के व्यवहारो, बर्तावो, अथवा घरेलू बातों की चर्चा होगी, उसको सरल और बोलचाल की भाषा मे लिखना ही पडेगा, अन्यथा उनकी भाव व्यजना यथार्थ रीति से न हो सकेगी। हिन्दी भाषा के उन्नति काल के विद्वानो ने इन बातो पर दृष्टि रख कर ही उसकी शैलियो की स्थापना की, जिसका विशेष परिमार्जन इस काल मे हुआ।

प्रान्तीय भाषाओं के शब्दो और क्रियाओं का त्याग जिनमे ब्रजभाषा भी सम्मिलित है, अधिकतर संस्कृत तत्सम शब्दो के प्रयोगो द्वारा ही संभव था, इस लिये हिन्दी की वर्तमान शैली मे संस्कृत तत्सम शब्दो का बाहुल्य है। यह प्रणाली ग्रहण करने से ही भाषा ग्रामीण शब्दों से सुरक्षित हुई। अरबी फारसी शब्दो की भरमार भी इसी से दूर हुई। अतएव इस प्रणाली का ग्रहण युक्ति संगत था। उसका हिन्दी भाषा और संस्कृत के प्रसिद्ध हिन्दी लेखक विद्वानो द्वारा स्वीकृत हो जाना भी उसकी उपयोगिता का सूचक है। यह मै अवश्य कहूँगा, कि न तो संस्कृत शब्दो का भरमार होना उचित है न फारसी और अरबी के प्रचलित शब्दों का आग्रहपूर्वक त्याग, क्योकि ऐसा करने से भाषा दुर्बोध हो जाती है, जो उसकी उन्नति के लिये वांछनीय नहीं। यह उद्योग सरकारी अधिकारियो और जनता के कतिपय अग्रगन्ताओ द्वारा पहले से होता आया है, कि जहाँ तक संभव हो, हिन्दी भाषा की शैली ऐसी हो, जो बोलचाल के

अधिक निकटवर्त्ती हो और उसमे संस्कृत के शब्द यदि आवे भी तो थोडे, परन्तु यह शैली चलाई जाने पर भी व्यापक न हो सकी। कारण हिन्दी का राष्ट्रीयता सम्बन्धी विचार और वह निर्धारित सिद्धान्त था जिसका वर्णन मैं ऊपर कर चुका हू। संस्कृत के शब्द ही भारतवर्ष के सब प्रान्तो में अधिकता से समझे जा सकते है। इस लिये उसका अभाव हिन्दी की राष्ट्रीयता का बाधक होगा, यह समस्त हिन्दी ससार जानता है। निर्धारित शैली का त्याग युक्ति-संगत नहीं, क्योकि इससे उसकी प्रगति मे बाधा पड़ेगी। इससे यह निश्चित है कि संस्कृत गर्भित शैली गृहीत रहेगी, वही इस समय व्यापक भी है। इसको विशेष परिमार्जित करने का श्रेय प्रचार काल को है॥

इसी काल मे स्वर्गीय बाबू रामदीन सिह ने मुझको लिखा कि डा० जी० ए० ग्रियर्सन साहब की इच्छा है कि हिन्दी भाषा मे एक ऐसा ग्रंथ लिखा जावे जो ठेठ हिन्दी का हो, जिसमे न तो सस्कृत के शब्द हो न किसी अन्य भाषा के। मेरा 'ठेठ हिन्दी का ठाट' नामक ग्रन्थ उन्ही के अनुरोध का परिणाम है, उसकी भाषा का कुछ अंश यह है —

"सूरज वैसा ही चमकता है, बयार वैसी ही चलती है। धूप वैसी ही उजली है, रूख वैसे ही अपने ठौरो खडे है, उनकी हरियाली भी वैसी ही है, बयार लगने पर उनके पत्ते वैसे ही धीरे धीरे हिलते है, चिडिया वैसी ही बोल रही है। रात मे चॉद वैसा ही निकला, धरती पर चॉदनी वैसी ही छिटकी, तारे वैसे ही निकले, सबकुछ वैसा ही है। जान पडता है देवबाला मरी नहीं। धरती सब वैसी ही है, पर देवबाला मर गई। धरती के लिये देवबाला का मरना जीना दोनो एक सा है। धरती क्या गॉव मे चहल पहल वैसी ही है। हॅसना, बोलना गाना, बजाना, उठना बैठना, खाना, पीना, आना, जाना सब वैसाही है।"

डाक्टर साहब ने इस ग्रंथ को बहुत पसंद किया, इसे सिविल सर्विस की परीक्षा का कोर्स बनाया और उक्त बाबू साहब को यह पत्र लिखा।

प्रिय महाशय !

ठेठ" हिन्दी का ठाट" के सफलता और उत्तमता से प्रकाश होने के लिये मै आप को बधाई देता हू। यह एक प्रशंसनीय पुस्तक है। मुझे आशा है कि इसकी विक्री बहुत होगी, जिसके कि यह योग्य है। आप कृपा करके पंडित अयोध्या सिंह से कहिये कि मुझे इस बात का हर्ष है कि उन्होने सफलता के साथ यह सिद्ध कर दिया है कि बिना अन्य भाषा के शब्दोका प्रयोग किये ललित और ओजस्विनी हिन्दी लिखना सुगम है।"

आपका सच्चा

जार्ज ए० ग्रियर्सन

कुछ दिनों के बाद डाक्टर साहब की यह इच्छा हुई कि इसी भाषा मे एक ग्रंथ और लिखा जावे जो कुछ बडा हो और जिसमें हिन्दी भाषा के अधिक शब्द आवे। यह ज्ञात होने पर मैंने 'अधखिला फूल' की रचना की। उसकी भाषा का अश देखिये —

'भोर के सूरज की सुनहली किरने धीरे धीरे आकास मे फैल रही है पेडो की पत्तियों को सुनहला बना रही है, और पास के पोखरे के जल मे धीरे धीरे आकर उतर रही है। चारो ओर किरनों का ही जमघटा है छतो पर मुरेडो पर किरन ही किरन है। कामिनी मोहन अपनी फुलवारी मे टहल रहा है और छिटिकती हुई किरनो की यह लीला देख रहा है, पर अनमना है। चिडियाँ चहकती है, फूल मँहक रहे है, ठंढी ठंढी पवन चल रही है, पर उसका मन इनमे नहीं है, कहीं गया हुआ है। घडी भर दिन आया फुलवारी मे बासमती ने पाँव रक्खा। धीरे धीरे कामिनी मोहन के पास आकर खडी हुई।"

सुप्रसिद्ध बाबू काशी प्रसाद जायसवाल को वे एक पत्र मे यह लिखते है: -

रथफार्नहम-किंबरली-सरे

१०-१-१९०४

"मेरी इच्छा है कि और लोग भी 'हरिऔध' के बताये हुये 'ठेठ हिन्दी का ठाट' के स्टाइल मे लिखने का उद्योग करे और लिखे जब मै

देखूँगा कि पुस्तके वैसी ही भाषा मे लिखी जाती है, तो मुझको फिर यह आशा होगी कि आगामी समय उस भाषा का अच्छा होगा, जिसको कि मै तीस वर्ष से आनन्द के साथ पढ रहा हूँ ।"

आप का सच्चा

जार्ज ए० ग्रियर्सन

परन्तु हिन्दी संसार इन ग्रंथो की ओर आकर्षित हो कर भी उसकी भाषा की ओर प्रवृत्त नहीं हुआ, और न किसी ने ऐसी भाषा लिखने को चेष्टा की । कारण इसका यही है, कि समय की आवश्यकताओ को देख कर संस्कृत गर्भित भाषा लिखने की ओर ही उसकी प्रवृति है, सफलता भी उसको इसी मे मिल रही है । अतएव यही शैली अनुमोदनीय है । वर्त्तमान काल कटि बद्ध हो कर उसका अनुमोदन भी कर रहा है ॥

छठा प्रकरण

वर्त्तमान काल

यह देख कर सन्तोष होता है कि वर्त्तमान काल मे हिन्दी गद्य ने प्रशंसनीय उन्नति की है । विद्या के उन समस्त विभागो से अब उसका सम्बन्ध हो गया है, जो राष्ट्रीय जीवन को विकास की ओर ले चलते है । देश के सार्वजनिक जीवन ने ज्यो ज्यो उन्नत स्वरूप ग्रहण किया त्यो त्यो हिन्दी गद्य को फलने फूलने के लिये क्षेत्र प्राप्त होता गया । सरकार और जनता के पारस्परिक सहयोग ने भी हिन्दी गद्य को सुगठित और पुष्ट होने का अवसर दिया । उत्तरी भारत तथा मध्य प्रदेश के विश्वविद्यालयो मे देशी भाषा की शिक्षा का प्रवध हो जाने से हिन्दी काव्यों और अन्य ग्रंथो के सुव्यवस्थित पठन-पाठन का श्रीगणेश अभी थोड़े ही दिनों से हुआ है, किन्तु उसने प्रचार-काल मे जन्म अथवा पोषण प्राप्त पत्रों और पत्रिकाओं का साहित्यिक पद अधिक उन्नत करके गद्य-लेखन-शैली को बहुत शीघ्र सबल और परिपक्व बनाने मे उल्लेखनीय

सफलता प्राप्त कर ली है। समालोचना की प्राचीन शैली के साथ पाश्चात्य शैली ने कंधे से कंधा लगा कर हमे साहित्य के सबल और दुर्बल अंगो को परखने की कसौटियाँ बतलाई है, वे कसौटियाँ जिनकी अवहेलना नहीं की जा सकती। समालोचना का परिणाम भी देखने मे आ रहा है, प्राय लेखक गण अपनी रचनाओ के सम्बन्धमे अधिक सावधान हो गये है और बहुत परिश्रम तथा छानबीन के साथ ही ग्रन्थप्रणयन मे प्रवृत्त होते है। अब हम यह दिखलावेगे कि इस वर्त्तमान काल मे हिन्दी भाषा के प्रत्येक विभागो मे कितनी उन्नति हुई है और उनमे किस प्रकार समयानुकूल परिवर्द्धन एवं परिवर्त्तन हो रहा है। सुविधा के लिये प्रत्येक विभागों का वर्णन अलग अलग किया जावेगा, जिसमे प्रत्येक विषय का स्पष्टतया निरूपण किया जा सके। हिन्दी का कार्य्य-क्षेत्र इस समय बहुत विस्तृत है और वह लगभग सम्पूर्ण भारतवर्ष मे प्रसार पा रहा है। इसलिये हिन्दी उन्नायको, सेवको और ग्रन्थ-प्रणेताओं की संख्या भी बहुत अधिक है। सबका वर्णन किया जाना एक प्रकार से असम्भव है। इस लिये उल्लेख-योग्य कृतियो की ही चर्चा की जायगी, और उन्हीं हिन्दी-सेवा-निरत सज्जनो के विषय मे कुछ लिखा जायगा, जिनमे कोई विशेषता है या जिन्होने उसको उन्नत करने मे कोई अंगुलि निर्देश योग्य कार्य्य किया है, अथवा जिनके द्वारा हिन्दी भाषा विकास-क्षेत्र मे अग्रसर हुई है। अब तक मै कुछ अवतरण भी लेखको अथवा ग्रन्थकारो की रचनाओं का देता आया हूँ, किन्तु इस प्रकरण मे ऐसा करना ग्रंथ के व्यर्थ विस्तार का कारण होगा, क्योकि इस प्रकार के गण्य मान्य विवुधो एवं प्रसिद्ध पुरुषो की संख्या भी थोडी न होगी॥

(१)

साहित्य—विभाग (Literature)

आज कल हिन्दी साहित्य बहुत उन्नत दशा मे है। दिन दिन उसकी वृद्धि हो रही है। किन्तु यह कहा जा सकता है कि जिसमे सामयिकता अधिक हो और जो देश और जाति के लिये अधिक उपकारक हों ऐसे ग्रंथ अभी थोडे ही बने है। हॉ, भविष्य अवश्य आशापूर्ण है। विश्वास

है कि न्यूनताओं की पूर्ति यथा सम्भव शीघ्र होगी और उपादेय ग्रंथों की कमी न रह जायगी। मै यहाँ पर प्रस्तुत साहित्यिक ग्रंथो का थोडे मे दिग्दर्शन करूंगा, इसके द्वारा यह अनुमान हो सकेगा कि हिन्दी साहित्य के विकास की प्रगति क्या है। सम्भव है कि किसी उपयोगी ग्रंथ की चर्चा छूट जाये किन्तु ऐसा अनभिज्ञता के कारण ही होगा। कुछ सहृदयों का जीवन ही साहित्यिक होता है, वे साहित्य सेवा करने मे ही आनन्दानुभव करते है, उनकी इस प्रकृति के कारण आज कल हिन्दी साहित्य उत्तरोत्तर उत्तमोत्तम ग्रंथो से अलंकृत हो रहा है। प्रचार काल से आज तक उन लोगो ने इस क्षेत्र मे जो कार्य्य किया है, वह बहुत उत्साह वर्द्धक और बहुमूल्य है। अब से पचास वर्ष पहले साहित्य के दशाग पर लिखे गये गद्य ग्रन्थों का अभाव था, परन्तु इस समय उसकी बहुत कुछ पूर्ति हो गई है। ऐसे निवन्ध जो आत्मिक प्रेरणा से लिखे जाते है, और जिनमे भावात्मकता होती है, पहले दुर्लभ थे, किन्तु इन दिनों उनका अभाव नहीं है। कवि और कविता सम्बन्धी आलोचनात्मक निबंध कुछ दिन पहले खोजने से भी नही मिलते थे, परन्तु आज उधर भी दृष्टि है। कुछ ग्रंथ लिखे गये हैं, और कुछ विद्वज्जनो की उधर दृष्टि है। जिन्होंने इस क्षेत्र मे कार्य्य किया है और जो आज भी स्वकर्त्तव्य पालन मे रत है— अब मै उनकी चर्चा करूंगा। जिससे आप वर्त्तमानकालिक साहित्य भाण्डार की वृद्धि के विषय मे कुछ अनुमान कर सके ॥

पं० महावीर प्रसाद द्विवेदी ने अनेक साहित्यिक ग्रन्थों की रचना की है। वे जैसे बहुत बडे लेखक है वैसे ही बहुत बडे समालोचक भी। उन्हो ने हिन्दी साहित्य भाण्डार को वहुमूल्य ग्रन्थ रत्न दिये है और अपनी निर्भीक समालोचना से हिन्दी भाषा को परिष्कृत भी बनाया है। उनके रचे कई सुन्दर ग्रन्थ है। जिनमे 'वेकन विचार रत्नावली', 'स्वाधीनता', 'साहित्य-सीकर', 'रसज्ञ-रंजन', 'हिन्दी भाषा की उत्पत्ति', कालिदास की निरंकुशता' आदि ग्रन्थ उल्लेखनीय है ॥

बाबू श्याम सुन्दर दास बी० ए० नागरी प्रचारिणी सभा के जन्मदाताओं में अन्यतम है। हिन्दी गद्य के विकास मे तथा उसकी वर्त्तमान

कालीन उन्नति मे भी उनका हाथ है। हिन्दी के जितने ग्रन्थ आप ने सम्पादन किये और लिखे है उनकी बहुत बडी संख्या है। साहित्य के अनेक विषयो पर आपने लेखनी चलाई है। आप की लिखी गद्य-शैली का चमत्कार यह है कि उसमे प्रौढलेखनी की कला दृष्टिगत होती है। हा उसमे मस्तिष्क मिलता है, हृदय नही। रूक्षता मिलती है, सरसता नहीं। हाल मे आप का 'हिन्दी भाषा और साहित्य' नामक एक अच्छा ग्रन्थ निकला है।

बाबू जगन्नाथ प्रसाद 'भानु' एक बहुत बडे साहित्य सेवी है। काव्य प्रभाकर' और 'छन्द प्रभाकर' उनके प्रसिद्ध ग्रन्थ है। आजन्म उन्होने हिन्दी-देवी की सेवा की और इस वृद्धावस्था मे भी उसके चरणो मे पुष्पाजलि अर्पण कर रहे है।

बाबू कन्हैया लाल पोद्दार की साहित्यिक रचनाये प्रशंसनीय है। उनका 'काव्य कल्पद्रुम' एक उल्लेख-योग्य साहित्य-ग्रन्थ है। 'हिन्दी-मेघदूत विमर्श' भी उनकी साहित्यज्ञता का प्रमाण है। वे भी हिन्दी-सेवा व्रत के व्रती है और उसको चुने ग्रन्थ अर्पण करते रहते है।

पंडित रामचन्द्र शुक्ल बड़े गंभीर और मननशील गद्य लेखक है। कवीन्द्र रवीन्द्र की रचनाओं से जो गौरव बग भाषा को प्राप्त है वही प्रतिष्ठा पंडित जी की लेखनी द्वारा हिन्दी भाषा को प्राप्त हुई है। हिन्दी-संसार मे आप अद्वितीय समालोचक है। आप के गद्य मे जो विवेचन-गम्भीरता दार्शनिकता और विचार की गहनता मिलती है वह अन्यत्र दुर्लभ है। इनके हाल के निकले हुए काव्य मे रहस्यवाद' और 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' नामक ग्रन्थ इनके पाडित्य के जाज्वल्यमान प्रमाण है।

मिश्र बन्धुओ ने हिन्दी-भाण्डार को एक ऐसा अमूल्य रत्न प्रदान किया है जिससे उनकी कीर्ति चिरकाल तक हिन्दी संसार मे व्याप्त रहेगी। उनका मिश्र बन्धु विनोद नामक ग्रन्थ ऐतिहासिक दृष्टि से पूर्ण और अद्भुत गवेषणा और परिश्रम का परिणाम है। आज कल हिन्दीसाहित्य के

इतिहास लगातार लिखे जा रहे है। किन्तु इन सब तारक-मण्डल को ज्योति प्रदान करने वाला सूर्य्य उनका ग्रन्थ ही है। मिश्र बन्धुओ ने कुछ इतिहास ग्रन्थ भी लिखे है। वे भी कम उपयोगी नही। पं० रमाशंकर शुक्ल एम० ए० 'रसाल' ने एक वर्ष के भीतर ही दो प्रशंसनीय ग्रंथ प्रदान किये है। एक का नाम है 'अलंकारपीयूष' और दूसरेका नाम है हिन्दी साहित्य का इतिहास।' ये दोनो ग्रंथ अपने ढंग के अपूर्व है। अलंकार पीयूष में प्राचीन संस्कृत ग्रंथो की शास्त्रार्थ—परम्परा का सुन्दर विवेचन उन्होने जिस प्रकार किया है, वह हिन्दी-संसार के लिये एक दुर्लभ वस्तु है। उसमें उनकी प्रतिभा और विचार-शैली दोनो का विकास है। उनका हिन्दी साहित्य का इतिहास भी एक उल्लेखनीय और अभूतपूर्व ग्रंथ है। पं० रमाकान्त त्रिपाठी एम० ए० का 'हिन्दी-गद्य-मीमासा' नामक ग्रंथ भी अपूर्व है। यह पहला ग्रंथ है जिसमे हिन्दीभाषा पर पाश्चात्य प्रणाली से विवेचन किया गया है। थोडे समय मे इस ग्रन्थ का आदर भी अधिक हुआ है, यह इसकी उपयोगिता और बहुमूल्यता का प्रमाण है। श्रीमान् सूर्य्यकान्त शास्त्री एम० ए० का हिन्दी साहित्य का विवेचनात्मक इतिहास भी गहन विवेचना के लिये अपना प्रमाण आप है। पजाब जैसे सुदूरवर्त्ती प्रान्त मे रह कर भी आप ने हिन्दी के विषय मे जिस मर्मज्ञता का परिचय दिया है वह अभिनन्दनीय है। उनका यह ग्रंथ हिन्दी भाण्डार की आदरणीय सम्पत्ति है। बाबू रमाशकर श्रीवास्तव एम० ए० एल० एल० बी० का हिन्दी साहित्य का सक्षिप्त इतिहास भी उपयोगी ग्रन्थ है और परिश्रम से लिखा गया है। अंगरेजी स्कूलो में कोर्स मे उसका गृहीत हो जाना इसका प्रमाण है। पं० जगन्नाथ मिश्र एम० ए० का 'हिन्दी गद्य-शैली का विकास' नामकग्रन्थ भी सुन्दर है। लेखक का पहला ग्रंथ होने पर भी प्रशंसा-योग्य है। 'हिन्दी काव्य में नवरस' नामक एक ग्रंथ पं० बाबू रामबित्थरियाने और 'नवरस' नामक ग्रंथ बाबू गुलाब राय एम० ए० ने लिखा है। पहला ग्रंथ बहुत गवेषणा और विचार शीलता के साथ लिखा गया है। इस लिये वह बहुत उपयोगी बन गया है। दूसरा ग्रंथ छोटा है परंतु गुण मे बडा है। बाबू साहब बड़े चिन्ताशील लेखक है, इस लिये

उनकी लेखनी से जो निकला है, बहुमूल्य है। राय कृष्ण दास की 'साधना' उनकी किसी बड़ी साधना का फल है। यह ग्रंथ भावुकता की दृष्टि से आदरणीय है। उन्होंने कुछ कहानियां भी लिखी हैं, जो भावमयी और उपयोगिनी हैं। उनसे भी उनकी सहृदयता का परिचय मिलता है।

(२)

नाटक

नाटक लिखने में सफलता उन लोगों को आजकल प्राप्त हो रही है जो नाटक कम्पनियों में रहकर कार्य कर रहे हैं। फिर भी हिन्दी साहित्य-क्षेत्र में ऐसे नाटक भी लिखे जा रहे हैं जो साहित्यिक-दृष्टि से अपना विशेष स्थान रखते हैं। ऐसे नाटककारों में अधिक प्रसिद्ध बाबू जयशंकर प्रसाद हैं। उनके नाटकों में सुरुचि है, और कवित्व भी। किंतु उनका गद्य और पद्य दोनों इतना जटिल और दुरूह है कि वे अबतक नाट्य मंच पर नहीं आ सके। हां साहित्यिक दृष्टि से उनके नाटक अवश्य उत्तम हैं। उन्होंने कई नाटकों की रचना की है। उनमें अजातशत्रु, स्कन्दगुप्त और चन्द्रगुप्त उल्लेख-योग्य हैं। पंडित बदरीनाथ भट्ट बी० ए० ने दो तीन नाटकों की रचना की है। वे सब सुन्दर हैं और उनमें ऐसा आकर्षण है कि वे रंगमंच पर खेले भी गये। उपयोगिता की दृष्टि से इनके नाटक प्रशंसनीय हैं। प० बेचन शर्म्मा 'उग्र' का 'महात्मा ईसा' नाटक भी अच्छा है। पं० लक्ष्मीनारायण मिश्र बी० ए० ने दो नाटक लिखे हैं जो थोड़े दिन हुये प्रकाशित हुये हैं। एक का नाम है 'सन्यासी' और दूसरे का 'राक्षस का मन्दिर'। दोनों ही सामाजिक नाटक हैं और जिस उद्देश्य से लिखे गये हैं उसकी पूर्ति की ओर लेखक की दृष्टि पायी जाती है। परन्तु मैं इन दोनों नाटकों से अधिक उत्तम उनके अन्तर्जगत् नामक पद्य-ग्रंथ को समझता हूं। बाबू आनन्दी प्रसाद श्रीवास्तव ने 'अछूत' नामक एक नाटक लिखा है। यह नाटक अच्छा है और इसका लेखक इसलिये धन्यवाद का पात्र है कि उसकी ममता अछूतों के प्रति

देखी जाती है। ऐसे उपयोगी अनेक सामाजिक नाटको की आवश्यकता हिन्दू समाज को है। इसके बाद वे नाटककार आते है जिन्होंने नाटक कम्पनियो के आश्रय मे रहकर नाटको की रचना की। वे हैं पंडित राधेश्याम, बाबू हरिकृष्ण जौहर और आगाहश्र आदि। इन लोगो ने भी अनेक नाटको की रचना करके हिन्दी साहित्य की सेवा की है। इनमे से पडित राधेश्याम और बाबू हरिकृष्ण जौहर के नाटक अधिक प्रसिद्ध है। इनमे भावुकता भी पाई जाती है और हिन्दू सस्कृति की मर्य्यादा भी। अन्य नाटको मे रूपान्तर से हिन्दू सस्कृति पर प्रहार किया गया है और स्थान स्थान पर ऐसे अवाछनीय चरित्र अंकित किये गये है जो प्रशंसनीय नहीं कहे जा सकते। रंगमंच पर कारण-विशेष से वे भले ही सफलता लाभ कर ले, पर उनमे सुरुचि पर छिपी छुरी चलती दृष्टिगत होती है। इस दोष से यदि कोई प्रसिद्ध नाटककार मुक्त है तो वे है पंडित माधव शुक्ल। उनको आर्य संस्कृति की ममता है। उनका 'महाभारत' नामक नाटक इसका प्रमाण है। इनके विचार मे स्वातंत्र्य होने का कारण यह है कि वे किसी पारसी नाटक-मण्डली के अधीन नही है। वे उत्तम गायक और वाद्यकार ही नहीं है, नट कला मे भी कुशल है और सरस कविता भी करते है। दुःख है, कि हिन्दी संसार मे अबतक बंगाली नाटककार द्विजेन्द्रलाल राय और गिरीश चन्द्र का समकक्ष कोई उत्पन्न नही हुआ। साहित्य के इस अंग की पूर्ति के लिये समय किसी ऐसे नाटककार ही की प्रतीक्षा कर रहा है। बाबू हरिश्चन्द्र के नाटक छोटे ही हो, पर उनमे जो देश-प्रेम जाति-प्रेम तथा हिन्दू संस्कृति का अनुराग झलकता है, आजकल के नाटको मे वह विशेषता नही दृष्टिगत होती। श्री निवास दास के नाटको मे विशेष कर 'रणधीर प्रेम मोहिनी' मे जो स्वाभाविक आकर्षण है वैसा आकर्षण आज कल के नाटकों मे कहा? ये बाते उन्ही नाटकों मे पैदा हो सकती है जो चलती भाषा मे लिखे गये हो और जिनके पद्यों मे वह शक्ति हो कि उन्हे सुनते ही लोग मंत्र मुग्ध बन जावे। परमात्मा करे ऐसे नाटककार हिन्दी क्षेत्र मे आये जिससे देश, जाति और समाज का यथोचित हित हो सके।

(३)

उपन्यास

इस काल के प्रसिद्ध उपन्यास-लेखक पं० किशोरीलाल गोस्वामी और श्रीयुत प्रेमचन्द है। पं० किशोरीलाल गोस्वामी ने ६० से अधिक उपन्यास लिखे है। इसी सेवा और संस्कृत के विद्वान् तथा कवि-कर्म-निरत होनेके कारण हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनके बाइसवे अधिवेशन के सभापतित्व पद पर वे आरूढ हो चुके है। बाबू देवकी नदन खत्री के बाद यदि किसी ने हिन्दी-जनता को अपनी ओर अधिक आकर्षित किया तो वे गोस्वामी जी के उपन्यास ही है। इनके बहुत पीछे बाबू धनपतराय बी० ए० (प्रेमचंद) हिन्दी-क्षेत्र मे आये। परन्तु जो सफलता थोडे दिनों मे उन्होंने प्राप्त की वह गोस्वामी जी को कभी प्राप्त नही हुई। कारण इसका यह है कि प्रेमचद जी के उपन्यासों मे सामयिकता है और रुचि-परिमार्जन भी, गोस्वामी जी के उपन्यासो मे यह बात नहीं पाई जाती। इसलिये उनकी उपस्थिति मे ही उपन्यास-क्षेत्र पर प्रेमचन्द जी का अधिकार हो गया। उनकी भाषा भी चलती और फडकती होती है। उनमे मानसिक भावो का प्रकाशन भी सुन्दरता से होता है। इसलिये आजकल हिन्दी साहित्य-क्षेत्र मे उन्ही की धूम है। सुदर्शन जी को छोटी कहानिया लिखने मे यथेष्ट सफलता मिली है। आपकी भाषा सरस, सरल और मुहाविरेदार होती है तथा कहानियो का चरित्र-चित्रण विशेष उल्लेखनीय। कौशिकजी ने कहानियाँ और उपन्यास दोनों लिखने की ओर परिश्रम किया है। उनका पारिवारिक और सामाजिक भावों का चित्रण हृदय-ग्राही और मनोहर होता है। झासी के बाबू वृन्दाबनलाल बर्मा बी० ए० ने 'गढ कुण्डार' नामक सुन्दर उपन्यास लिख कर हिन्दी मे वह काम किया है जो सर वाल्टर स्काट ने अँगरेजी भाषा के लिये किया है।

पं० वेचन शर्मा उग्र ने कई उपन्यासो और बहुत सी कहानियो की रचना की है। भाषा उनकी फडकती हुई और मजेदार होती है, उसमे जोर भी होता है। यदि उसमे चरित्र-चित्रण भी सुरुचिपूर्ण

होता तो मणिकाञ्चन योग हो जाता। पं० भगवती प्रसाद बाजपेयी, बा० जगदम्बा प्रसादवर्म्मा और बाबू शम्भु दयाल सक्सेना ने 'मीठी चुटकी' नामक एक उपन्यास संयुक्त उद्योग से लिखा है। हिन्दी मे यह एक नया ढग है, जिसे इन सहृदय लेखको ने चलाया। प० भगवती प्रसाद बाजपेयी ने मुसकान, बाबू जगदम्बा प्रसाद वर्म्मा ने बडे बाबू तथा बाबू शम्भुदयाल सक्सेना ने 'बहूरानी' नामक उपन्यास लिखा है। ये लोग कहानियाँ भी अच्छी लिखते है। पं० प्रफुल्ल चन्द्र ओझा ने पतझड', 'जेल की यात्रा', 'तलाक' आदि उपन्यास लिखे है, जो अच्छे है। श्री मती तेजरानी दीक्षित प्रथम महिला है जो उपन्यासरचना की ओर प्रवृत्त हुई है। आप का 'हृदय का काँटा' नामक उपन्यास हिन्दी-संसार मे अच्छी प्रतिष्ठा लाभ कर चुका है। पं० गिरिजादत्त शुल्क बी० ए० 'गिरीश' ने 'प्रेम की पीडा', 'पाप की पहेली', 'जगद्गुरु का विचित्र चरित्र', 'बाबू साहब', 'बहता पानी', 'चाणक्य,' 'सन्देह' आदि उपन्यासो की रचना की है, जिनमे से 'बहता पानी और 'चाणक्य' अभी अप्रकाशित है। बाबूसाहब का दूसरा सँस्करण हो रहा है। इनके उपन्यासो मे चिन्ता शीलता, भावुकता और सामयिकता पाई जाती है। उपन्यास का प्रधान गुण रोचकता और रुचि-परिमार्जन है पर्य्याप्त मात्रा मे ये बाते इनके उपन्यासो मे है। भाषा भी इनकी चलती और ऐसी होती है जैसी उपन्यास के लिये होनी चाहिये। कहीं कहीं उसमे गम्भीरता भी यथेष्ट मिलती है। ये सहृदय कवि भी है। इनका 'रसाल बन नामक पद्य-ग्रंथ कीर्ति पा चुका है और हाथो हाथ बिक चुका है। कवि-हृदय होने के कारण इनके उपन्यासों मे कवित्व भी देखा जाता है और उसमे सरसता भी यथेष्ट मिलती है। लहरी बुक डिपो बनारस से कुसुम माला नाम से जो उपन्यासों की मालिका निकल रही है, उसमे भी कुछ अच्छे उपन्यास निकले है, ये उपन्यास बाबू दुर्गाप्रसाद खत्री के लिखे हुये है। इन उपन्यासो की भाषा बाबू देवकी नन्दन खत्री की चन्द्रकान्ता की सी है, जिनमे उर्दू के शब्दो का प्रयोग निस्संकोच भाव से किया जाता है। बाबू ब्रजनन्दन सहाय बी० ए० अच्छे उपन्यास लेखक है।

इन्होंने भी कई उपन्यास लिखे है। सौन्दर्य्योपासक इनका सबसे अच्छा उपन्यास है और प्रशंसा भी पा चुका है। मै समझता हू, बिहार प्रान्त मे ये पहले ऐसे लेखक है जिन्होने उपन्यास लिखने मे सफलता लाभ की है। बाबू जैनेन्द्र कुमार भी एक अच्छे उपन्यास और कहानी-लेखक है। इनकी भाषा ओजमयी और सुदर होती है, और शब्द विन्यास प्रशंसनीय। इनकी भाव-चित्रण-क्षमता भी अच्छी हे। हिन्दो-ससार के ये गण्य लेखको मे है। थोडे दिनो से उपन्यास क्षेत्र मे पं० बिनोद शंकर व्यास ने भी अपनी सहृदयता का परिचय देना प्रारम्भ किया है। उन्होने कहानियाँ भी लिखी है और कुछ उपन्यास भी। उनमे भावुकता है और सूझ भी। इसलिये उनको उपन्यास लिखने मे सफलता मिल रही है और वे अपने को इस कार्य्य मे योग्य सिद्ध कर रहे है। इनकी भाषा और भावो मे एक प्रकार का आकर्षण पाया जाता है। बाबू गोपाल राम गहमर जासूसी उपन्यास लिखने के लिये प्रसिद्ध है। इन्होंने भी बहुत अधिक उपन्यास लिखे है और कीर्ति भी पाई है। जासूसी उपन्यास लिखने मे हिन्दो संसार मे इनका समकक्ष कोई नही पाया जाता। यह इनकी विशेषता है। इनकी भाषा चलती और सर्व-साधारण के समझने योग्य होती है। इनमे उपज और भावुकता भी है।

मै समझता हू। हिन्दी मे जितने अधिक उपन्यास आज कल निकल रहे है उतने अन्य विषयों के ग्रन्थ नहीं। आज कल उपन्यास का क्षेत्र बडा विस्तृत है और उत्तरोत्तर बढता जाता है। उपन्यासों ने हिन्दू संस्कृति को आज कल उलझनों मे फँसा दिया है। आज कल की रुचि-भिन्नता अविदित नही। कोई हिन्दू सस्कृति का आमूल परिवर्तन चाहता है, कोई उसको बिल्कुल ध्वस कर देना चाहता हे, कोई उसका पृष्ठ पोषक है, कोई विरोधी। किसी के बिचार पर पाश्चात्य भावों का रंग गहरा चढा है। कोई भारतीय भावों का भक्त है। किसी के सिर पर जातीय पक्षपात का भूत सवार है और कोई सुधार के उन्माद से उन्मत्त। निदान इस तरह के भिन्न भिन्न भाव आज हिन्दू समाज के क्षेत्र मे कार्य्य कर रहे है। अधिकतर समाचार पत्रो के लेख और उपन्यास ही अपने अपने विचार प्रगट करने के प्रधान

साधन है। इसी लिये उपन्यासो का उत्तर दायित्व कितना बढ गया है, यह कहने की आवश्यकता नहीं। परंतु दुःख है कि इस उत्तर-दायित्व के समझने वाले इने गिने सज्जन है। आज कल अपनी अपनी डफली और अपना अपना राग वाली कहावत ही चरितार्थ हो रही है। जो लोग शृंगार रस को कुत्सा करते तृप्त नहीं होते, उन्हीं लोगो को उपन्यासों मे अश्लीलता का अभिनय करते अल्प सकोच भी नही होता। देश प्रेम का सच्चा राग, जाति-हित की सच्ची प्रतिध्वनि, आज भी बहुत थोडे उपन्यासों मे सुन पडती है। जिन दुर्वलताओ से हिन्दू समाज जर्जर हो रहा है, जिन कारणो से दिन दिन उसका अधःपतन हो रहा है, जो फूट उसको दिन दिन ध्वंस कर रही है जो अवाछनीय जातिभेद की कट्टरता उसका गला घोट रही है, जिन अन्ध विश्वासों के कारण वह रसातल जा रहा है, जो रूढियाँ मुँह फैला कर उसको निगल रही है, क्या सच्चाई के साथ किसी उपन्यास लेखक की उस ओर दृष्टि है? क्या हिन्दुओ की नाडी टटोल कर किसी उपन्यासकार ने हिन्दुओं को वह सजीवन-रस पिलाने की चेष्टा की है, जिससे उनके रग रग मे बिजली दौड जाय? स्मरण रखना चाहिये कि हिन्दू जातीयता की रक्षा ही भारतीयता की रक्षा है क्योकि हिन्दुओ मे ही ऐसे धार्मिक भाव है जो विजातीयो और अन्य धर्मावलम्बियो से भी आत्मीयता का निर्वाह कर सकते है। साराश यह कि आज कल के अधिकाश उपन्यास मनोवृत्ति मूलक है। थोडे ही उपन्यास ऐसे लिखे जाते है जिनमे आत्म भावो को देश जाति अथवा धर्म की बलिवेदी पर उत्सर्ग करने की इच्छा देखी जाती है। इधर यथार्थ रीति से दृष्टि आकर्षित होना ही वाछनीय है॥

(४)

जीवन-चरित

जीवन चरित्र की रचना भी साहित्य का प्रधान अंग है। जीवन-चरित्र और उपन्यास मे बडा अंतर होता है। उपन्यास काल्पनिक भी होता है। किन्तु जीवन चरित किसी महापुरुष की वास्तविक जीवन-

चर्य्या के आधार से लिखा जाता है। इसी लिये उसकी उपादेयता अधिक होती है,। हिन्दी मे जीवन-चरित बहुत थोड लिखे गये और जो लिखे गये है वे भी कला की दृष्टि से उच्च कोटि के नही कहे जा सकते। फिर भी यह स्वीकार करना पडेगा कि इस विषय मे आरानिवासी बाबू शिवनदन सहाय ने प्रशसनीय कार्य किया है। उनका लिखा हुआ गोस्वामी तुलसी-दास और बावू हरिश्चचन्द्र का जीवन चरित बहुत ही सुन्दर और अधिक-तर उपयोगी तथा गवेषणापूर्ण है। जीवन-चरित के लिये भाषा को भी ओजस्विनी और मधुर होना चाहिये। उनकी रचना मे यह बात भी पायी जाती है। उन्हो ने चैतन्यदेव एवं सिक्खो के दश गुरुओ की भी जीवनिया लिखी है। ये जीवनियाँ भी उत्तमता से लिखी गयी है इनमे भी उनकी सार ग्राहिणी प्रतिभा का विकास देखा जाता है। ये कवि भी है और सरस हृदय भी। इस लिये इनकी लिखी जीवनियो मे उपन्यासो कासा माधुर्य्य आगया है। प० माधव प्रसाद मिश्र की लिखी हुई विशुद्ध चरितावली भी आदर्श जीवनी है। पंडित जी की गणना हिन्दी भाषा के प्रौढ लेखको मे है। विशुद्ध चरितावली की भाषामे वह प्रौढता मौजूद है। उसमे उनकी लेखनी का विलक्षण चमत्कार दृष्टिगत होता है। पण्डित रामनारायण मिश्र बी० ए० बनारस नागरी प्रचारिणी सभा के स्थापको मे से अन्यतम है। आप का बनाया हुआ जस्टिस रानाडे का जीवन चरित' नामक ग्रंथ भी अच्छा है। उसकी अनेक शिक्षाये उपदेश-पूर्ण है। पं० जी अच्छे गद्य लेखक है, और यथावकाश हिन्दी की सेवा करते रहते है। पडित रामजी लाल शर्म्मा ने छोटी बडी कई जीवनियाँ लिखी है। जिस जीवनीमे उन्हो ने भगवान रामचन्द्र का चरित्र अंकित किया है, उसमे उनकी सहृदयता विकसित दृष्टिगत होती है। और भी बहुत सी छोटी छोटी जीवनियाँ स्वसंस्थापित हिन्दी प्रेस से उन्हो ने निकाली है, उनमें भी उनकी प्रतिभा की झलक मिलती है। पं० ओंकार नाथ वाजपेई ने अपने ओंकार प्रेस से छोटी छोटी अनेक जीवनियाँ निकाली है। वे भी सुन्दर और उपयोगिनी है। राजस्थान निवासी स्व० मुशी देवीप्रसाद ने कुछ मुसल्मान बादशाहों मीराबाई और राजा बीरबल की जीवनी लिखी है और

कुछ स्त्रियों की भी। परंतु वे प्राचीन ढंग से लिखी गयी है। फिर भी उनमे रोचकता और सरसता मिलती है और उनके पाठसे आनंद आता है। पं० ज्योतिप्रसाद मिश्र निर्मल ने स्त्री-कवि कौमुदी' नाम से हिन्दी स्त्रीक-वयित्रियो को एक जीवनी निकाली है। वह भो अच्छी है। पं० बनारसी दास चतुर्वेदो ने स्व० कविरत्न पं० सत्यनारायण को अच्छी जीवनी लिखी है। उसमे उन्हो ने जीवन-चरित लिखने की जिस शैली से काम लिया है वह प्रशसनीय है। उनके सरल और भोले हृदय का विकास इस जोवनी मे अच्छा देखा जाता है। वे एक उत्साही पुरुष है और उनके उत्साह का ही परिणाम यह जीवनी है, नही तो उसका लिखा जाना असंभव था।

५

इतिहास।

जीवन चरित और उपन्यास इन दोनो से भी इतिहास का स्थान बहुत ऊँचा है। जीवत-चरित का सम्बन्ध किसी एक महापुरुष अथवा उसके कुटुम्ब के कुछ प्राणियो या उससे सम्बन्ध रखने वाले कुछ विशेष मनुष्यो से होता है। उपन्याम की सोमा भो परिमित है वह भी कतिपय व्यक्ति विशेषों पर अवलम्बित होता है, चाहे वे काल्पनिक हो अथवा ऐतिहासिक। परंतु इतिहास का सम्बन्ध एक, देश एक राज्य, किंबा एक समाज अथवा किसो जाति-विशेष से होता है। उसमे नाना सासारिक घटनाओ के संघटन और मानव-समाज के पारस्परिक संघर्ष से उत्पन्न विभिन्न प्रकार के कार्य्य-कलाप सामने आते है, जो मानव जीवन के अनेक ऐसे आदर्श उपस्थित करते है, जिनसे सासारिकता के विभिन्न प्रत्यक्ष प्रमाण सम्मुख आजाते है। इस लिये उसको उपादेयता बहुत अधिक बढ जाती है और यही कारण है कि इतिहास साहित्य का एक प्रधान अंग है। हिन्दी संसार मे इसके आचार्य्य राय बहादुर पं० गौरीशंकर हीरा चंद ओझा है। आप ऐसे उच्च कोटि के इतिहास लेखक है कि उनको समस्त हिन्दी संसार मुक्त कण्ठ हो कर सर्वोत्तम इतिहासकार मानता है। उन्होने अपनी गवेषणाओ से बड़े बडे ऐतिहासिको को चकित कर दिया

है। शिलालेखों मुद्राओं एव अनेक प्राचीन पुस्तकों के आधार से ऐसी ऐसी ऐतिहासिक बातों को वे प्रकाश मे लाये है जो बिलकुल अंधकार मे पडी थीं, उनको इन कार्य्यों के लिये बडे बडे पुरस्कार मिले है। सरकार ने भी राय बहादुर की उपाधि देकर उनकी प्रतिष्ठा की है। हिन्दी ससार ने भी साहित्य-सम्मेलन के द्वारा उनको (१२००) का मंगला प्रसाद पारितोषिक दिया है। इन सब बातों पर दृष्टि रखकर विचार करने से यह ज्ञात हो जाता है कि आपका इतिहासकारों मे कितना उच्च स्थान है। आपने जितने ग्रंथ बनाये है वे सब बहुमूल्य है और तरह तरह की गवेषणाओं से पूर्ण है। आपके उपरान्त इतिहासकारों मे पंडित विश्वेश्वरनाथ रेऊ का स्थान है। आप उनके शिष्य है और योग्य शिष्य है। आप का भी ऐतिहासिक ज्ञान बहुत बढा हुआ है। श्रीयुत सत्यकेतु विद्यालकार ने 'मौर्य साम्राज्य का इतिहास' नामक एक अच्छा इतिहास ग्रथ लिखा है, उसके लिये १२००) पुरस्कार भी उन्हो ने साहित्य सम्मेलन द्वारा पाया है। आपका यह इतिहास गवेषणापूर्ण, प्रशसनीय और उल्लेख योग्य है। श्रीयुत जयचंद विद्यालंकार ने 'भारतवर्ष का इतिहास' नामक एक बडा ग्रथ लिखा है। यह ग्रंथ अभी प्रकाशित नही हुआ है, किन्तु मै जानता हू कि यह उच्च कोटि का इतिहास है और इसमे ऐसी अनेक बातो पर प्रकाश डाला गया है, जो पाश्चात्य लेखकों की लेखनी द्वारा अन्धकार मे पडी थीं। अध्यापक रामदेव का लिखा हुआ 'भारत का इतिहास' और गोपाल दामोदर तामसकर रचित 'मराठो का उत्कर्ष' नामक इतिहास भी प्रशंसनीय और उत्तम है। ये दोनो ग्रथ परिश्रम से लिखे गये है और उनके द्वारा अनेक तथ्यो का उद्घाटन हुआ है। पं० सोमेश्वरदत्त शुक्ल बी० ए० ने कुछ इतिहास ग्रंथ लिखे है और श्रीयुत रघुकुल तिलक एम० ए० ने 'इँगलैण्ड का 'इतिहास' बनाया है। इन दोनो ग्रंथो की भी प्रशंसा है। पडित मन्नन द्विवेदी गजपुरी का बनाया हुआ मुसलमानी राज्य का इतिहास' नामक ग्रंथ भी सुन्दर है और बडी योग्यता से लिखा गया है। भाषा इस ग्रथ की उर्दू मिश्रित है, परंतु उसमे ओज और प्रवाह है। लेखक की मनस्विता इस ग्रंथ मे स्थल स्थल पर झलकती दृष्टिगत होती है।

आप सुकवि थे, परन्तु जीवन् के दिन थोडे पाये, बहुत जल्द संसार से चल बसे"। भाई परमानंद एम० ए० ने योरप का एक सुन्दर इतिहास लिखा है और प्रसिद्ध वीर बन्दे गुरु का एक इतिवृत्त भी रचा है। आप एक प्रसद्धि विद्वान् है और हिन्दू जाति पर उत्सर्गी कृत जोवन है। इस लिये आप के ये दोनो ग्रंथ हिन्दू दृष्टि-कोण से ही लिखे गये है, जो बडे उपयोगी है।

(६)

धर्म-ग्रंथ

आर्य सभ्यता धर्म पर अवलम्बित है। धर्म ही उसका जीवन है और धर्म ही उसका चरम उद्देश्य। धर्म का अर्थ है धारण करना। जो समाज को, देश को, जाति को उचित रीति से धारण कर सके उसका नाम धर्म है। व्यक्ति की सत्ता धर्म पर अवलम्बित है। इसीलिये वैशेषिक दर्शनकार ने धर्म का लक्षण यह बतलाया है —

यतोऽभ्युदयनिःश्रेयस् सिद्धिः सधर्मः

जिससे अभ्युदय अर्थात् बढती और नि श्रेयस् अर्थात् लोक परलोक दोनो का कल्याण हो उसी का नाम हे धर्म। आर्य जाति और आर्य सभ्यता इसी मन्त्र का उपासक प्रचारक, एवं प्रतिपालक है। किन्तु दु ख है कि आजकल धर्म के नाम पर अनेक अत्याचार किये जा रहे है। अतएव कुछ लोग धर्म की जड खोदने के लिये भी कटिबद्ध है। वे अधर्म्म को धर्म समझ रहे है, यह उनकी भ्रान्ति है सामयिक स्वार्थ परायणता, अन्ध-विश्वास और दानवी वृत्तियो के कारण संसार मे जो कुछ Religion और मज़्हब के नाम पर हो रहा है वह धर्म नहीं है, धर्माभास भी नहीं है। वह मानवीय स्वार्थ परायणता और अहम्मन्यता का एकनिन्दनीयतम कार्य्य है जिसपर धर्म का आवरण चढाया गया है। वैदिक धर्म्म अथवा आर्य्य सभ्यता न तो उसका पोपक है और न उसका पक्षपाती। जो कुछ आजकल हो रहा है वह अज्ञान का अकाण्ड ताण्डव है। उसको कुछ भारतीय धर्मपरायण सज्जनो ने समझा है और वे उसके

निराकरणके लिये यत्नवान् है। इस दिशामे बहुत बडा कार्य्य कवीन्द्र रवीन्द्र कर रहे है, वे ससार भर मे भ्रमण कर यह बतला रहे है, धर्म क्या है। वे कह रहे है कि जबतक आर्य धर्म का अवलम्बन यथा रीति न किया जायगा उस समय तक न तो संसार मे शान्ति होगी और न उसकी दस्यु वृत्ति का निवारण होगा। दस्युवृत्ति का अर्थ परस्वापहरण है। भारतवर्ष मे भी अनेक विद्वान धर्म रक्षा के लिये यत्नवान् है और सत्य का प्रचार कर रहे है। प्रचार का एक अग ग्रंथ-रचना है, जिसका सम्बन्ध साहित्य से है। मेरा विषय यही है, इस लिये मै यह बतलाऊँगा कि वर्त्तमान काल मे कितने सदाशय पुरुषो ने इस कार्य्य को अपने हाथ मे लेकर उत्तमता पूर्वक किया है। मै समझता हू, इस दिशा मे कार्य करने वालो मे भारतधर्ममहामण्डल के स्वामी दयानन्द का नाम विशेष उल्लेख योग्य है। उनका सत्यार्थ-विवेक नामक ग्रथ जो कई खडों मे लिखा गया है, वास्तव मे आदर्श धर्म-ग्रथ है। आपने और भी धर्म-सम्बन्धी ग्रंथ लिखे है और आजतक इस विषय मे यत्नवान् है। आप जैसे संस्कृत के बहुत बडे विद्वान हे वैसे ही अंगरेजो के भी। आप के ग्रंथो की विशेषता यह है कि आप तात्विक विषय को लेकर उनकी मीमासा पाश्चात्य प्रणाली और वैदिक सिद्धान्तो के आधार से उपपत्ति पूर्वक करते है और फिर बतलाते है कि सत्य और धर्म क्या है। आप के ग्रथ अवलोकनीय है और इस योग्य है कि उनका यथेष्ट प्रचार हो। स्वर्गीय पं० भीमसेन जो के पुत्र प० ब्रह्मदेव शर्मा भी इस विषय मे बडे उद्योगशील है उनका 'ब्राह्मण सर्वस्व' नामक पत्र इस दिशा मे प्रशसनीय कार्य कर रहा है। उन्होने धर्म सम्बन्धी कई उत्तमोत्तम ग्रंथ भी निकाले है, जो पठनीय और मनन योग्य है। वास्तव मे आप बड़े बाप के बेटे है। प्रसिद्ध महोपदेशक कविरत्न पण्डित अखिलानन्द की अविश्राम शील महत्तामयी लेखनी भी अपने कार्य्य मे रत है, वह भी एक से एक अच्छे धार्मिक ग्रंथ लिखते जा रहे है और आज भी धर्म्म रक्षा के लिये पूर्ववत् बद्ध परिकर है। आपके जितने ग्रंथ है, सब बहुज्ञता और बहुदर्शिता से पूर्ण है, उनमे आपके पाण्डित्य का अद्भुत विकास देखा जाता है। लखनऊ के नारायण स्वामी द्वारा महर्षि

कल्प स्वामी रामतीर्थ के सद् ग्रंथों का जो पुनः प्रकाशन और प्रचार हो रहा है वह भी महत्व पूर्ण कार्य्य है। स्वामी जी के उपदेश और वचन भवभेषज और संसार तापतप्तों के लिये सुधा सरोवर हैं, उनका जितना अधिक प्रचार हो उतना ही अच्छा। पं० कालूराम शास्त्री का उद्योग भी इस विषय में प्रशंसनीय है। उन्होंने भी धर्म सम्बन्धी कई उत्तमोत्तम ग्रंथ लिखे हैं। पंडित चन्द्रशेखर शास्त्री का प्रयत्न भी उल्लेखनीय है। उन्होंने वाल्मीकि रामायण और महाभारत का सरल और सुन्दर अनुवाद करके उनका प्रचार प्रारम्भ किया है। उनमें धर्म्म-लिप्सा है। अतएव परमार्थ दृष्टि से उन्होंने अपने ग्रंथों का मूल्य भी कम रक्खा है। आज कल गोरखपुर के गीता प्रेस से जो धर्म्म-सम्बन्धी पुस्तकें निकल रही हैं वे भी इस क्षेत्र में उल्लेखयोग्य कार्य कर रही हैं। बाबू हनुमान प्रसाद पोद्दार का उत्साह प्रशंसनीय ही नहीं, प्रशंसनीयतम है। वे स्वयं धार्मिक ग्रंथ लिखते हैं और अन्य योग्य पुरुषों से धर्म्म ग्रंथ लिखा कर उनका प्रचार करने में दत्त-चित्त हैं। पंडित लक्ष्मीधर बाजपेयी का अनुराग भी इधर पाया जाता है। उन्होंने 'धर्म-शिक्षा' नामक एक पुस्तक और कुछ नीति-ग्रंथ भी लिखे हैं। उनके ग्रंथ अच्छे हैं और सामयिक दृष्टि से उपयोगी हैं। उनका प्रचार भी हो रहा है। आर्य्य समाज द्वारा भी कतिपय धर्म्म सम्बधी उत्तमोत्तम ग्रंथ निकले हैं।

(७)

विज्ञान।

साहित्य का एक विशेष अंग विज्ञान भी है। वाह्य जगत् के तत्व की अनेक बातों का सम्बन्ध विज्ञान से है। इस विषय के ग्रंथ अंग्रेज़ी भाषा में उत्तम से उत्तम मौजूद हैं परन्तु हिन्दी भाषा में अबतक उनकी न्यूनता है। डाक्टर त्रिलोकी नाथ वर्मा ने विज्ञान पर एक सुन्दर ग्रंथ दो भागों में लिखा है, उसका नाम है 'हमारे शरीर की रचना'। इस ग्रंथ पर उनको साहित्य-सम्मेलन से १२००) का पुरस्कार मिला है। इससे इस ग्रंथ का महत्व समझ में आता है। वास्तव में हिन्दी-संसार में विज्ञान का यह पहला ग्रंथ है, जो बड़ी योग्यता से लिखा गया है। प्रयाग में विज्ञान परि-

पन् नामक एक संस्था है। उसके उद्योग से भी विज्ञान के कुछ ग्रन्थ निकले है। उस संस्था से 'विज्ञान' नामक एक मासिक पत्र भी निकलता है। पहले इसका सम्पादन प्रसिद्ध विद्वान् बाबू रामदास गौड एम० ए० करते थे अब प्रोफेसर ब्रजराज एम० ए०, बाबू सत्यप्रकाश एम० एस० सी० के सहयोग से कर रहे है। पत्र का सम्पादन पहिले ही से अच्छा होता आया है, यही एक ऐसा पत्र है, जिसके आधार से हिन्दी-ससार मे विज्ञान की चर्चा कुछ हो रही है। डाक्टर मंगल देव शास्त्री एम० ए० और नलिनी मोहन सान्याल एम० ए० ने भाषा विज्ञान पर जो ग्रंथ लिखे है वे बडे सुन्दर है और ज्ञातव्य विषयो से पूर्ण है। उनके द्वारा हिन्दी भाण्डार गौरवित हुआ है। हाल मे एक ग्रंथ बाबू गोरख प्रसाद एम० ए० ने सौर परिवार नामक लिखा है, यह ग्रथ बडा ही उत्तम और उपयोगी है, उसको लिख कर ग्रंथकार ने एक बडी न्यूनता की पूर्ति की है ॥

(८)

दर्शन

भारत का दर्शन शास्त्र प्रसिद्ध है। वैदिक धर्म के षड् दर्शन को कौन नही जानता ? उसकी महत्ता विश्व-विदित है। बौद्ध दर्शन भी प्रशंसनीय है। स्वामी शंकराचार्य्य के दार्शनिक ग्रंथ इतने अपूर्व है, कि उन्हे विश्वविभूति कह सकते है संसार मे अब तक इतना बडा दार्शनिक उत्पन्न नही हुआ। श्री हर्ष का 'खण्डन खण्ड खाद्य' भी संस्कृत भाषा का अलौकिक रत्न है। परन्तु हिन्दी भाषा मे अब तक कोई ऐसा उत्तम दर्शन ग्रंथ नहीं लिखा गया था जो विशेष प्रशसा प्राप्त हो। केवल एक ग्रंथ साहित्याचार्य्य पंडित रामावतार शर्म्मा ने दर्शन का लिखा है, जिसे नागरी प्रचारिणी सभा, बनारस ने छापा है। इस ग्रंथ का नाम योरोपीय दर्शन' है। पंडित जी बडे प्रसिद्ध विद्वान् थे। उन्हो ने संस्कृत मे भी कई महत्वपूर्ण ग्रंथ लिखे है, परमार्थ दर्शन आदि। जैसे वे संस्कृत के उद्भट विद्वान् थे वैसा ही उनका अंगरेजी का ज्ञान भी बडा विस्तृत था। वे एम० ए० थे, किन्तु उनकी योग्यता उससे कहीं अधिक थी। इस लिये

उनका बनाया हुआ। 'योरोपीय दर्शन' नामक ग्रंथ पाडित्यपूर्ण है। लाला कन्नोमल एम० ए० ने भी गीता दर्शन नाम का एक अच्छा ग्रंथ लिखा है। यह ग्रंथ हिन्दी ससार मे आदर की दृष्टि से देखा जाता है। प० रामगोविन्द त्रिवेदी ने संस्कृत के दर्शनो पर एक अच्छा दर्शन ग्रंथ लिखा है। यह ग्रंथ भी सुन्दर और उपयोगी है। हाल मे श्रीयुत गंगाप्रसाद उपाध्याय ने एक सुन्दर दर्शन-ग्रंथ लिखा है। उसका नाम है 'आस्तिकवाद'। ग्रन्थ बडी योग्यता से लिखा गया है और उसमे लेखक ने अपने पाडित्य का अच्छा प्रदर्शन किया है। किन्तु उस ग्रंथ के मीमासित विषय अत्यन्त वाद-ग्रस्त है। इस लिये उसके विषय मे अनेक विद्वानो के विचार तर्क पूर्ण है। उस ग्रंथ पर थोडे दिन हुये कि ग्रन्थकार को हिन्दी साहित्य सम्मेलन से १२००) पुरस्कार प्राप्त हुआ है जो ग्रंथ की महत्ता को प्रकट करता है। बाबू वासुदेव शरण अग्रवाल एम० ए० दार्शनिक लेखो के लिखने में आज कल प्रसिद्धि प्राप्त कर रहे है। उनके लेख होते भी है बडे प्रभावशाली और गम्भीर। वे बडे चिन्ताशील पुरुष है। परन्तु जहाँ तक मैं जानता हू उन्हो ने अब तक कोई ग्रंथ नही लिखा॥

(६)

हास्य-रस

हास्यरस साहित्य के लिये ऐसा ही उपयोगी और प्रफुल्लकर है जैसा गगन-तल के लिये आलोक माला और धरातल के लिये कुसुमावली। विद्वानो का कथन है कि हास मूर्तिमन्त हृदय – विकास है। वह मनो मोहक तो है स्वास्थ्य वर्द्धक भी है। हृदय के कई विकार हास्यरस से दूर हो जाते है, मनका मेल तक उससे धुल जाता है। जी की कसर की दवा और हृदय को हर लेने की कला हँसी है। यह भी कहा जाता है कि रोग की जड खाँसी और झगडे की जड हाँसी। और यह भी सुना जाता है कि अनेक सुधारो का आधार परिहास है। किंतु देखा जाता है कि हास्यरस के लेखक प्रत्येक भाषा के साहित्यो मे थोड़े होते है। कारण यह है कि हास्यरस पर लेखनी चलाने की योग्यता थोड़े ही लोगो मे होती

है। हास्य—सम्बन्धी लेख प्राय अश्लील हो जाते हैं। इसका परिणाम सुफल न होकर कुफल होता है। हास्यरस मे तरलता है, गंभीरता नहीं। अतएव गंभीर लेखक उसको ओर प्रवृत्त नही होत। हँसी के लेखों में प्राय व्यंग से काम लिया जाता है। यह व्यंग मर्य्यादाशीलता का वाधक है, झगडे का घर भी। इससे भी लोग उससे बचते हैं। परन्तु जीवन में हास्यरस की भी बडी आवश्यकता है। इस लिये उसका त्याग नहीं हो सकता। सभाओं मे देखा जाता है कि जिस व्याख्यान दाता मे हँसाने की शक्ति नही होती वह जनता पर जैसा चाहिये वैसा अधिकार नही कर सकता। जो लोग अपने व्याख्यानो मे समय समय पर लोगो को हँसाते रहते है, अधिकतर सफलता उन्ही को मिलती है। हास्यरस के ग्रंथ आनन्द के साधन होते है। इस लिये ऐसे ग्रंथो की आवश्यकता भी साहित्य के लिये होती है। समाज के कदाचारों और अंधविश्वासो पर मीठी चुटकी लेने और उन पर व्यंगपूर्ण कटाक्ष करने के लिये हास्यरस के ग्रंथ ही विशेप उपयोगी होते है यदि अश्लोलता न आने पावे और उनमे ईर्ष्या द्वेष का रंग न हो। पंडित जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी इस कला मे कुशल है, हिन्दी संसार उनको हास्यरसावतार कहता है। उनका कोई ग्रंथ हास्यरस का नही है—परन्तु जितने लेख उन्होने लिखे है, और जो ग्रंथ बनाये है उन सबो मे हास्यरस का पुट मौजूद है। आप सहृदय कवि भो है आपकी कविताओं मे भी हास्यरस का रंग रहता है। आप जिस सभा में उपस्थित होते है, उसमे ठहाका लगता ही रहता है, बात बात मैं हँसाना आपके बाये हाथ का खेल है॥

हिन्दी संसार मे हास्य रस-सम्बन्धी रचना करने के लिये जी० पी० श्रीवास्तव अधिक प्रसिद्ध है। उनके रचित नाटकों मे हास्यरस की पर्य्याप्त मात्रा होती है। बाबू अन्नपूर्णानन्द ने हास्यरस के दो ग्रंथ लिखे है, जिनमे से एक का नाम है 'मगन रहु चोला'। ये दोनो भी हास्यरस के उत्तम ग्रंथ है। उनके पढने मे जी लगता है और उनसे आनन्द भी मिलता है। ग्रंथ अच्छे ढंग से लिखे गये है और उपयोगी है। यदि ये ग्रंथ अधिक संयत होते तो बहुत अच्छे होते। पं० शिवरत्न शुक्ल ने भी 'परिहास-प्रमोद'

नामक हास्यरस की एक अच्छी पुस्तक लिखी है। उसमे भी हॅसी की मात्रा यथेष्ट है। उन्हो ने कटाक्ष और व्यंग से अधिकतर काम लिया है, जिससे उनको अपने उद्देश्य मे अच्छी सफलता मिली है। पंडित ईश्वरी प्रसाद शर्म्मा बडे प्रसिद्ध हास्य रस के लेखक थे। उन्हो ने इस विषय मे कई ग्रथो की रचना की है। उन्हो ने अनेक बॅगला और अंगरेजीके उपन्यासो का अनुवाद किया है और कुछ नीति-ग्रंथ भी लिखे है। वे बहुत अच्छे पत्र-सम्पादक भी थे। उन्हो ने बहुत काल तक स्वय अपना 'हिन्दो मनोरंजन नामक मासिक पत्र निकाला। वे चिरकाल तक हिन्दू-पंच के भी सम्पादक रहे। उनके समय मे यह पत्र इतना समुन्नत हुआ कि फिर उसको वैसा सौभाग्य नही प्राप्त हुआ। वे बहुत अच्छे समालोचक भी थे।

(१०)

भ्रमण-वृत्तान्त।

'चातुर्य्य मूलानि भवन्ति पञ्च' मे देशाटन भी है। वास्तव मे सासारिक अनेक अनुभव ऐसे है जो विना देशाटन किये प्राप्त नहीं होते। इसीलिये भ्रमण-वृत्तान्तो के लिखने की प्रणाली है। अनेक देशो की सैर घर बैठे करना भ्रमण-वृत्तान्तो के आधार से होता है, उनके पढने से भ्रमणकर्त्ता के अनेक अर्जित ज्ञानो का अनुभव भी होता है। इसलिये साहित्य का एक अग वह भी है। मासिकपत्रो मे प्राय इस प्रकार के भ्रमण-वृत्तान्त निकला करते है। उनसे कितना मनोरंजन होता है, यह अविदित नही। ज्ञानवृद्धि मे भी उनसे बहुत कुछ सहायता प्राप्त होती है। हिन्दी मे, जहॉ तक मुझको ज्ञात है इस विषय के दो बडे ग्रंथ लिखे गये है। एक बाबू सत्य-नारायण सिंह का लिखा हुआ तीर्थयात्रा नामक ग्रंथ जो कई खंडो मे लिखा गया है। इस ग्रंथ मे भारतवर्ष के समस्त तीर्थों का सुन्दर और विशद वर्णन है, यात्रा-सम्बन्धी अनेक बाते भी उसमे अभिज्ञता के लिये लिखी गयी है। ग्रंथ की भाषा अच्छी और बोधगम्य है। कहीं कहीं प्राकृत विषयो का चित्रण भी सुन्दर है। दूसरी पुस्तक बाबू शिवप्रसाद गुप्त की लिखी हुई है। उसका नाम पृथ्वी परिक्रमा है। यह पुस्तक भाषा,

भाव, और विचार तीनों दृष्टियो से बडी उपयोगी है । उसमे योरोप के स्थानों एवं जापान इत्यादिक के कहीं कहीं बड़े मार्मिक वर्णन है, जिनके पढ़ने से देशानुराग हृदय मे जाग्रत् होता है और जातीयताका महत्व समझ मे आता है । इसमे अनेक स्थानों के बडे मनोहर चित्र है जो बहुत आकर्षक है । ग्रंथ संग्रहणीय और पठनीय है । इसी सिलसिले मे मै पंडित रामनारायण मिश्र बी० ए० रचित कतिपय भूगोल-सम्बन्वी ग्रंथोकी चर्चा भी कर देना चाहता हू । यद्यपि यह पृथक विषय है, परन्तु भ्रमण का सम्बन्व भी भूगोल से ही है । इसलिये यहो उनको पुस्तकों के विषय मे कुछ लिखना आवश्यक जान पडता है । पंडितजी ने भूगोल-सम्बन्धी दो तीन पुस्तके लिखी है जो अपनी विषय-नवीनता के कारण आदरणीय है। उन्हो ने इन ग्रंथो को खोज और परिश्रम से लिखा है । इसलिये वे अवलोकनीय है । उनमे मनोरंजन की सामग्री तो है ही, कतिपय देश-सम्बन्वी आनुषंगिक ज्ञान-वर्द्धन के साधन भी है ।

(११)

अर्थ-शास्त्र ।

'अर्थस्य पुरुषो दासो' प्रसिद्ध सिद्धान्त वाक्य है । वास्तव मे पुरुष अर्थ का दास है । 'सर्वेगुणा काञ्चनमाश्रयन्ति' और 'धनात् धर्म्म तत सुखम्' आदि वाक्य भी अर्थ की महत्ता प्रगट करते है । सासारिक चार महान् पदार्थों मे अर्थ का प्रधान स्थान है । ऐसी अवस्था मे यह प्रगट है कि साहित्य मे अर्थ-शास्त्र का महत्व क्या है । हमारा प्राचीन संस्कृत का कौटिलीय अर्थ-शास्त्र प्रसिद्ध है । अंगरेजी भाषा मे इस विषय के अनेक बडे सुन्दर ग्रंथ है । हिन्दी भाषा मे पूर्ण योग्यता से लिखे गये वैसे सुन्दर ग्रंथो का अभाव है । फिर भी वर्त्तमानकाल मे कुछ ग्रंथों की रचना हुई है। सबसे पहले प० महावीर प्रसाद द्विवेदी ने अर्थशास्त्र पर 'सम्पत्ति-शास्त्र' नामक एक ग्रंथ लिखा । इसके बाद श्रीयुत प्राणनाथ विद्यालंकार, पं० दयाशंकर दूबे एम० ए० और श्रीयुत् भगवानदास केला ने भी अर्थशास्त्र पर लेखनी चलायी । इनमे सबसे उत्तम ग्रन्थ प्राणनाथ विद्यालंकार का है ।

अन्य ग्रन्थ भी उपयोगी है और उस न्यूनता की पूर्त्ति करते है जो चिर-काल से हिन्दी साहित्य मे चली आती थी। यही पर मुझको पंडित राधाकृष्ण झा एम० ए० की स्मृति होती है। आप अर्थशास्त्र के बहुत बड़े विद्वान् थे। दुःख है कि अकाल काल-कवलित हुए। हिन्दी संसार को उनसे बडी बडी आशाए थीं। उनके बनाये हुए 'प्राचीन-शासन-पद्धति', 'भारत की साम्पत्तिक अवस्था' आदि ग्रंथ अपने विषय के अनूठे ग्रंथ है, वरन हिन्दी-भाण्डार के रत्न है। इनके अतिरिक्त श्रीयुत सुख-संपतिराय भाडारी का नाम भी उल्लेख-योग्य है। इन्हो ने भी अर्थशास्त्र के कुछ ग्रंथो की रचना की है।

(१२)

समालोचना सम्बन्धी ग्रंथ।

साहित्य के लिये समालोचना की बहुत बडी आवश्यकता है। समालोचक योग्य मालाकार समान है, जो वाटिका के कुसुमित पल्लवित पौधो, लता-बेलियो, यहा तक कि, रविश पर की हरी-भरी घासो को भी काट छाँट कर ठीक करता रहता है, और उनको यथारीति पनपने का अवसर देता है। समालोचक का काम बडे उत्तरदायित्व का है। उसको सत्य-प्रिय होना चाहिये, उसका सिद्धान्त 'शत्रोरपि गुणावाच्या दोषावाच्या गुरोरपि' होता है। प्रतिहिंसा-परायण की समालोचना समालोचना नही है। जो समालोचना शुद्ध हृदय से साहित्य को निर्दोष रखने और बनाने के लिये की जाती है वही आदरणीय और साहित्यके लिये उपयोगिनी होती है। समालोचक की तुला ऐसी होनी चाहिये जो ठीक ठीक तौले। तुलाके पलड़ेको अपनी इच्छानुसार नीचा ऊँचा न बनावे यदि वास्तविक समालोचना पूत-सलिला सुरसरी है तो प्रतिहिंसा-वृत्ति मयी आलोचना कर्मनाशा। वह यदि सब प्रकार की मालिनताओ को दूर भगाती है तो यह किये हुये कर्म्म का भी नाश कर देती है। हिन्दी संसार मे आज कल समालोचनाओं की धूम है। परन्तु उक्त कसौटी के अनुसार आलोचना का कार्य्य करने वाले दो चार सज्जन ही है। फिर भी यह नहीं कहा जा सकता कि जितनी समालोचनाये

की जाती है वे पक्षपातपूर्ण होती है या उनमे ईर्ष्या-द्वेषमय उदगार ही होता है। पंडित महावीर प्रसाद द्विवेदी की आलोचनाओ की चर्चा मै पहले कर चुका हू। उनसे जो लाभ हिन्दीसंसार के गद्य पद्य साहित्य को प्राप्त हुआ उसकी चर्चा भी हो चुकी है। बाबू बाल मुकुद गुप्त भी एक अच्छे समालोचक थे। वर्त्तमान लोगो मे पंडित पद्मसिह शर्मा अच्छे समालोचक माने जाते है। उनकी समालोचनाएं खरी होती है, इस लिये सर्व प्रिय नहीं बनतीं। कुछ लोग नाक भौं चढाते ही रहते है। फिर भी यह कहा जासकता है कि उनकी समालोचना अधिकतर उचित और वास्तवता-मूलक होती है। पं० कृष्ण विहारी मिश्र बी०ए०, एल० एल० बी० पं० अवध उपाध्याय, डाक्टर हेम चन्द्र जोशी, बाबू पदुम लाल बखशी बी० ए० तथा पं० रामकृष्ण शुक्ल एम०ए० गम्भीर समालोचक है और समालोचना का जो उद्देश्य है उस पर दृष्टि रख कर अपनी लेखनी का सञ्चालन करते है। मै यह जानता हू कि इनका विरोध करने वाले लोग भी है, क्योकि समालोचना कर्म्म ऐसा है कि वह किसी को निष्कलक नहीं रखता। फिर भी इस कथन मे वास्तवता है कि इन लोगो की समालोचनाये अधिकतर सयत और तुली हुई होती है। ये लोग भी मनुष्य है, हृदय इन लोगो के पास भी है, भावों का आघात-प्रतिघात इन लोगों के अन्त करण मे भी होता है। इस लिये सम्भव है कि उनके उदगार कभी कुछ कटु हो जावे। परन्तु मेरा विचार यह है कि ये लोग सचेष्ट हो कर ऐसा करने की प्रवृत्ति नहीं रखते। साहित्याचार्य्य पं० शालग्राम शास्त्री भी अच्छे समालोचक है। उनकी समालोचना पाडित्यपूर्ण होती है। परन्तु उनकी दृष्टि व्यापक है। वेसस्कृत के विद्वान् है और उनकी कसौटी सस्कृत की प्रणाली का रूपान्तर है। इस लिये उनका कसना भी साधारण नहीं, और उनकी तुला पर तुल कर ठीक उतर जाना भी सुगम नहीं। परन्तु वे आलोचना करते है बडी योग्यता से। पंडित किशोरीदास वाजपेयी, प० बनारसीदास चतुर्वेदी, और बाबू कृष्णानद गुप्त भी कभी २ आलोचना क्षेत्र मे आते है और अपनी सम्मति निर्भीकता से प्रगट करते है। यह भी समालोचना का एक गुण है, चाहे वह कुछ लोगो को अप्रिय भले ही हो। समालोचना-ग्रंथो मे पं० पद्मसिंह

शर्म्मा का बनाया (सतसई समालोचना) अधिक प्रसिद्ध है, इस ग्रंथ के लिये उनको साहित्य सम्मेलन द्वारा १२००) रुपये का पुरस्कार भी मिला था। पं० कृष्ण बिहारी मिश्र का बनाया (देव और बिहारी, नामक ग्रंथ भी उल्लेखनीय है। पं० राम कृष्ण शुक्ल और बाबू कृष्णानन्द गुप्त के समालोचना ग्रंथ भी अच्छे और उपयोगी है। प० महाबीर प्रसाद द्विवेदी के (काली दास की निरंकुशता) आदि ग्रंथ भी अवलोकनीय है॥

(१३)

उन्नति सम्बन्धी उद्योग।

हिन्दी भाषा विकसित हो कर वर्त्तमान काल मे जितना अग्रसर हुई है वह हिन्दी संसार के लिये गर्व की वस्तु है। परन्तु साहित्य के अनेक विभाग ऐसे है, जिनमे अब तक एक ग्रंथ भी हिन्दी मे नहीं लिखागया। विद्या-सम्बन्धी अनेक क्षेत्र ऐसे है, जिनकी ओर हिन्दी साहित्य-सेवियो की दृष्टि अभीतक नही गयी। उर्दू भाषा की न्यूनताओ की पूर्ति के लिये भारतीय मुस्लिम सम्प्रदाय बहुत बडा उद्योग कर रहा है। जब से हैदराबाद मे उर्दू यूनिवर्सिटी स्थापित हुई है उस समय से निजाम सरकार ने उसको अधिकतर समुन्नत बनाया है। उन्होने विद्या-सम्बन्धी समस्त विभागो पर दृष्टिरख कर उर्दू भाषा मे उनसे सम्बन्ध रखने वाले ग्रंथों की पर्याप्त रचना कराई है। परन्तु ऐसा सुयोग अब तक हिन्दी भाषा को नहीं प्राप्त हुआ इस लिये उसकी न्यूनताओं की पूर्तिभी यथार्थ रीतिसे नहीं हो रही है। उसको राष्ट्रीयता का पद प्राप्त हो गया है। इसलिये आशा है, उसकी न्यूनता की पूर्ति के लिये हिन्दीसंसार कटिबद्ध होगा और वह उन्नति करने मे किसी भाषा से पीछे न रहेगी। मै कुछ उन उद्योगों की चर्चा भी इस स्थान पर कर देना चाहता हू जो उसकी समुन्नति के लिये आज कल भारतवर्ष मे हो रहे है॥

(१४)

अनुवादित प्रकरण

अनुवाद भी साहित्य का विशेष अंग है। आज कल यह कार्य्य भी हिन्दी संसार मे बडी तत्परता से हो रहा है। प्रत्येक भाषा के उत्तमोत्तम

ग्रंथों का अनुवाद हिन्दी मे प्रस्तुत कर देने के लिये, अनेक कृतविद्यों को दृष्टि आकर्षित है। इस विषय मे उल्लेख योग्य कार्य्य पं० रूप नारायण पाण्डेय और बाबू रामचन्द्र वर्म्मा का है। इन दोनो हिन्दी प्रेमियो का विशिष्ट कार्य्य है इन लोगो ने अनेक ग्रंथ रत्नों का अनुवाद हिन्दी भाषा भाण्डार को अर्पण किया है। आजतक इन सज्जनो का उद्योग शिथिल नहीं है। वे पूर्ण उत्साह के साथ अब भी अपने कर्त्तव्य पालन मे रत है। पण्डित रूप नारायण ने अधिकतर अनुवाद उपन्यासों ही का किया है। परन्तु वर्म्मा जी का अनुवाद सब प्रकार की पुस्तको का है. उन्होने इस विषयमे विशेष ख्याति प्राप्त की है। पंडितजी की अन्य विशेषताओ का उल्लेख मै पहले कर चुका हूं।

बाल-साहित्य।

बाल-साहित्य भी साहित्य का प्रधान अंग है। हर्ष है कि इधर भी कुछ सहृदयों की दृष्टि गयी है। बाल सखा' बानर 'बालक, 'खिलौना' आदि मासिक पत्र इसके प्रमाण है। वाल-साहित्य सम्बन्धी रचनाएं भी अब अधिक होने लगी है। कुछ पुस्तके भी निकली है। पं० सुदर्शनाचार्य्य बी० ए०, बाबू श्रीनाथ सिह, बाबू रामलोचन शरण, श्री रामवृक्ष शर्म्मा बेनी पुरी आदि ने वाल-साहित्य पर सुन्दर रचनाये की है जो इस योग्य है कि आदर की दृष्टि से देखी जाये। इन लोगों की कुछ रचनाए पुस्तकाकार भी मुद्रित हुई है। पं० रामलोचन झा एम० ए० की रचनाएं भी इस विषय मे प्रशंसनीय है। इन्होंने पॉच किताबे लिखी है जो बिहार प्रान्त मे आदर के साथ गृहीत हुई है।

[१]

संघटित संस्थायें

यों तो पंजाब, युक्त प्रान्त, बिहार एवं मध्य प्रदेश मे हिन्दी की समुन्नति के लिये बहुत सी संस्थायें काम कर रही है. परन्तु विशेष उल्लेख योग्य तीन संस्थाये ही है—[१] नागरी प्रचारिणी सभा, बनारस, [२] हिन्दी साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग, [३] हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद।

१—नागरी प्रचारिणी सभाने हिन्दी भाषा की समुन्नति के लिये अपने जीवन काल मे बहुत बडा उद्योग किया, अपने उद्योग मे उसको अच्छी सफलता भी मिलती आयी है। विशाल हिन्दी कोश का प्रस्तुत करना, हिन्दी के प्राचीन अनेक ग्रंथो की खोज कराना मनोरंजन ग्रंथ माला की पुस्तके निकालना, हिन्दी भाषा के प्रचार के लिये बडे प्रयत्न करना, राजभवन सा प्रकाण्ड नागरी-प्रचारिणी सभा-भवन बनाना, सर्व्वांग पूर्ण हिन्दी व्याकरण की रचना कराना और एक अच्छा वैज्ञानिक कोश तैयार करा लेना उसके उल्लेखनीय कार्य्य है। आज भी वह शिथिल प्रयत्न नहीं है और हिन्दी भाषा के उत्कर्षसाधन मे पूर्ववत् दत्तचित्त है। भारतवर्ष के और हिन्दी-भाषा-भाषी प्रान्तो के अनेक विद्वान् और प्रभावशाली पुरुष आज भी उसके सहायक और संरक्षक है। युक्तप्रान्त की गवर्नमेण्ट की भी उस पर सुदृष्टि है। पाश्चात्य अनेक विद्वान् उसके हितैषी है। ये बाते उसके महत्व की सूचक है। उसके सञ्चालक गण यदि इसी प्रकार बद्ध-परिकर रहे तो आशा है उसका भविष्य और अधिक उज्ज्वल होगा और वह हिन्दी देवी की समुन्नति के और भी बडे बडे कार्य्य कर सकेगी ॥

२ दूसरी प्रसिद्ध सस्था हिन्दी साहित्य सम्मेलन है, जिसका केन्द्र स्थान प्रयाग है। इसने भी हिन्दी भाषा के उन्नयन के बहुत बडे बडे कार्य्य किये है। इसके द्वारा मद्रास प्रान्त और आसाम जैसे सुदूरवर्ती प्रदेशो मे हिन्दी-प्रचार का पूर्ण उद्योग हो रहा है। उसने प्रथमा, मध्यमा और उत्तमा परीक्षाओ का आविर्भाव कर के लगभग भारत के सभी प्रान्तों मे हिन्दी के प्रेमी और विद्वान् उत्पन्न कर दिये है, जिनकी संख्या सहस्रो से अधिक है। उसने विदुषी स्त्रिया भी उत्पन्न की है, जो अंगुलि-निर्देश-योग्य कार्य्य है। अनेक हिन्दू राज्यो मे हिन्दी भाषा को राज्य-कार्य्य की भाषा बनाना और अनेक राजाओं और महाराजाओ को हिन्दी भाषा के प्रति उनके कर्त्तव्य का ध्यान दिलाना भी उसका बहुत बडा कार्य्य है। उसका पुस्तक प्रकाशन-विभाग भी चल निकला है। वर्ष के भीतर निकले हिन्दी के सर्वोत्तम ग्रंथ के लेखक को मंगला प्रसाद पारितोषिक दे कर

एक प्रभावशाली आदर्श उपस्थित करना उसका बड़ा उत्साह बर्द्धक कार्य है। उसने एक विद्यापीठ की स्थापना भी की है। आशा है, उसका भविष्य भी उज्ज्वल होगा। इधर उसमे कुछ शिथिलता आ गयी है किन्तु विश्वास है कि श्रीयुत पं० रमाकान्त मालवीय वी० ए० एल० एल० वी० के प्रधान मंत्रित्व मे और श्रीयुत बाबू पुरुषोत्तम दासटंडन एम० ए० एल० एल० वी० के अधिक सतर्क और सावधान हो जाने से यह शिथिलता दूर होगी और फिर पूर्ववत् वह अपने कार्य्यों मे तत्पर हो जावेगा ॥

३—तीसरी संस्था हिन्दुस्तानी एकेडेमी है। इसकी स्थापना युक्त प्रान्त की सरकार ने की है। इसमे युक्त प्रान्त के हिन्दी भाषा और उर्दू के अधिकाश विद्वान् सम्मिलित है। सर तेजबहादुर सप्रू और सर मुहम्मद सुलेमान साहब जैसे गौरवशाली पुरुष इसके सभापति और प्रधान पदाधिकारी है। इसका कार्य्य-संचालन भी अब तक संतोष जनक रीति से हो रहा है। इस सँस्था से थोडे दिनों मे जैसे उत्तमोत्तम ग्रंथ प्रत्येक विषयो के निकले हैं, उनसे उसकी महत्ता और कार्यकारिणी शक्ति को बहुत बडा श्रेय मिलता है। उसने हिन्दी और उर्दू की जो त्रैमासिक पत्रिकाये निकाली है, वे भी उसको गौरवित बनाती है, और यह बिश्वास दिलाती है कि इसके द्वारा हिन्दी और उर्दू का भविष्य आशामय होगा और सम्मिलित रूप से उनकी यथेष्ट समुन्नति होगी। इसी स्थान पर मैं एक बहुत ही उपयोगिनी संस्था की चर्चा भी करना चाहता हू। वह है कलकत्ते की एकलिपि-विस्तार-परिषद्। दुःख है कि यह संस्था अब जीवित नहीं है। परन्तु अपने उदय-काल मे इसने हिन्दी के भाग्योदय की पूर्व सूचना दी थी। हिन्दी-संसार को इसने ही पहले पहल यह बतलाया कि यदि कोई लिपि भारत व्यापिनी हो सकती है तो वह नागरी लिपि है। इस परिषद् के संस्थापक जस्टिस शारदाचरण मित्र थे, जो अपने समय के बडे प्रसिद्ध पुरुष थे। इनके सहकारी थे पंडित उमापतिदत्त शर्म्मा और बाबू यशोदा नन्दन अखौरी। इस परिषद से 'देवनागर' नामक एक बहु-भाषी पत्र निकलता था जो नागरी लिपि मे मुद्रित होता था। यह बडा ही प्रभावशाली और सुन्दर पत्र था। इसका सम्पादन उक्त बाबू यशोदानं-

दन अखौरी करते थे। जब तक यह पत्र चला, इसने हिन्दी की बडी सेवा की।

आरा नागरी प्रचारिणी सभा जैसी छोटी मोटी और अनेक संस्थायें हिन्दी भाषा की उन्नति के लिये उद्योग कर रही है और उसका प्रचार दिन दिन बढा रही है जिसके लिये वे अभिनन्दनीय और धन्यवाद योग्य है। उन सबका वर्णन करने के लिये यहाँ स्थान नहीं है अतएव मै उन सबका उल्लेख न कर सका किन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि मै उन्हे उपयोगी नही समझता अथवा उपेक्षा की दृष्टि से देखता हू।

२—कतिपय प्रसिद्ध प्रेस

संस्थाओ के अतिरिक्त कुछ प्रसिद्ध प्रेस अथवा मुद्रण यन्त्रालय ऐसे है जिनसे हिन्दी भाषा की समुन्नति और विस्तार मे बहुत बडी सहायता मिली है। मै उनकी चर्चा भी कर देना यहा आवश्यक समझता हूं। युक्त प्रान्त मे दो बहुत बड़े प्रेस ऐसे है जिन्होने हिन्दी पुस्तको का प्रकाशन प्रकाण्ड रूप मे कर के अच्छी कीर्ति अर्जन की है और स्वयं लाभवान हो कर उसे भी विशेष लाभ पहुँचाया है। पहला है लखनऊ का नवल किशोर प्रेस। इसने प्राचीन नवीन अनेक हिन्दी-ग्रंथो को प्रकाशित और प्रचारित कर उसको विशेष ख्याति प्रदान की है। मै यह स्वीकार करूँगा कि उसका मुद्रण-कार्य अधिक सतोष जनक नहीं है, फिर भी यह कहने के लिये वाध्य हूँ कि उसने सब प्रकार के ग्रन्थों के प्रकाशन मे अच्छी सफलता लाभ की है। अब उसकी दृष्टि मुद्रण की ओर भी गयी है। आशा है, उसका मुद्रण-कार्य भी भविष्य मे यथेष्ट उन्नति लाभ करेगा। इस प्रेस से आज कल 'माधुरी' नामक एक सुन्दर मासिक पत्रिका निकल रही है। पहले इसका सम्पादन प० कृष्णविहारी मिश्र बी० ए० एल० एल० बी० और मुंशी दनपति राम बी० ए० करते थे। इस कार्य्य को इस समय सफलता पूर्वक पं० राम सेवक त्रिपाठी कर रहे हैं। वास्तव बात यह है कि इस पत्रिका से इस प्रेस का गौरव है॥

दूसरा सुप्रसिद्ध प्रेस प्रयाग का इण्डियन प्रेस है। हिन्दी भाषा के मुद्रण कार्य्य मे इसने युगान्तर उपस्थित कर दिया है। इस प्रेस से अनेक बहुमूल्य हिन्दी पुस्तके निकली और इस समय भी निकल रही है। स्वर्गीय बाबू चिन्तामणि घोष ने बंगाली होकर भी हिन्दी भाषा को जो सेवा की है वह प्रशंसनीय और अभिनन्दनीय है। इस प्रेस से 'सरस्वती' नामक मासिक पत्रिका अब तक निकल रही है, जिसका सम्पादन पहले पं० महावीर प्रसाद द्विवेदी करते थे और अब प० देवी दत्त शुक्ल सफलता के साथ कर रहे है। इस प्रेस का कार्य्य इस समय यद्यपि पहले का सा नही है, परन्तु विश्वास है कि वह सावधान होकर फिर पूर्ववत् हिन्दी के समुन्नति-कार्य्य मे संलग्न होगा।

तीसरा हिन्दी-उन्नायक बिहार का खड्ग विलास प्रेस है। इस प्रेस की स्थापना स्वर्गीय बाबू रामदीन सिंहने की थी। उन्हीं के समय में इस प्रेसको यथेष्ट प्रतिष्ठा प्राप्त हो गयी थी और वह अब तक उनके सुयोग्य पुत्रों राय बहादुर बाबू रामरण विजय सिंह, बाबू सारंगधर सिंह बी० ए० और बाबू रामजी सिंह के सम्मिलित उद्योग से सुरक्षित है। इस प्रेस ने बिहार प्रान्त मे हिन्दी भाषा की समुन्नति के लिये जो किया उसकी बहुत कुछ प्रशंसा की जा सकती है। इसने बहुत सी हिन्दीकी उपयोगी पुस्तके अपने प्रेससे निकाली और उनके द्वारा बिहार प्रान्त की जनता को बहुत अधिक लाभ पहुचाया। अन्य प्रान्तोमे भी उनकी पुस्तकों का आदर हुआ है और यह उनलोगो के सफल उद्योग का परिणाम है। बाबू हरिश्चन्द्र और पं० प्रताप नारायण मिश्र जैसे प्रसिद्ध और उद्भट हिन्दी साहित्य सेवियों की कुल पुस्तको का स्वत्व इस प्रेसही को प्राप्त है और इसने इनके प्रचारका भी उद्योग किया है। बाबू रामदीन सिंहजी क जीवन मे जिस प्रकार हिन्दी साहित्य के धुरन्धर विद्वान् इस प्रेस की ओर आकर्षित थे। उसी प्रकार अब भी वर्त्तमान कालक अनेक विद्वानों की सुदृष्टि इस पर है, जिससे यह पूर्ववत् उन्नत दशा मे रह कर अपने व्रतपालन मे संलग्न है। हिन्दी और हिन्दू जाति के सच्चे उपासक कतिपय सुन्दर हिन्दी ग्रन्थों के लेखक और प्रचारक बाबू रामदीन सिंह का यह कीर्ति-स्तम्भ है। इसको

अपने इस महत्व का ध्यान है और इसलिये यह अपने कर्त्तव्य-पालन मे आज भी पूर्णरूप से दत्त-चित्त है।

चौथा बम्बई का श्री वेंकटेश्वर प्रेस है। बहुत दूरवर्ती होने पर भी इस प्रेसने भी हिन्दी भाषा की बहुत बड़ी सेवा की है। धर्म-सम्बन्धी हिन्दी ग्रन्थों के प्रकाशन मे इसने जो अनुराग दिखलाया वह अत्यन्त प्रशंसनीय है। विद्यावारिधि पं० ज्वालाप्रसाद और उनके लघुभ्राता पं० बलदेवप्रसाद मिश्र के समस्त बहुमूल्य ग्रन्थों के प्रकाशन का श्रेय इसी को प्राप्त है। इन विद्वानों के अतिरिक्त हिन्दी भाषा के और संस्कृत के अनेक विद्वानों के बहुत से ग्रन्थों का प्रकाशन, इसने किया है, और आज भी इस कार्य मे पूर्ववत् दत्तचित्त है। इसके ग्रन्थों का आदर बम्बई प्रान्त मे तो हुआ ही, और प्रान्तों में भी अधिकता से हुआ, जिससे हिन्दी भाषा के विस्तार प्रचार, उन्नति मे बहुत बडी सहायता प्राप्त हुई है, इस प्रेससे 'वेङ्कटेश्वर समाचार' नामकचिरकालसे एक हिन्दी साप्ताहिक समाचार-पत्र निकलता है, जिसको धर्म-क्षेत्र मे आज भी बहुत गौरव प्राप्त है।

इन प्रेसों के अतिरिक्त बंगवासी प्रेस, स्वर्गीय पं० रामजी लाल शर्म्मा द्वारा स्थापित हिन्दी प्रेस, महार्षि-कल्प पं० मदनमोहन मालवीय द्वारा स्थापित अभ्युदय प्रेस, कानपुर का प्रताप प्रेस, लखनऊ का गंगा फाइन आर्ट प्रेस, वणिक् प्रेस, वर्म्मन प्रेस गीता प्रेस और काशी का ज्ञानमण्डल आदि प्रेस भी उल्लेखनीय है, जिनसे आज भी हिन्दी भाषा की बहुत कुछ सेवा हो रही है॥

३—पत्र और पत्रिकायें

किसी भाषा की उन्नति के लिये पत्र—पत्रिकाये अधिकतर उपयोगी है। आज कल हिन्दी—संसार मे जितनी पत्र-पत्रिकाये विभिन्न प्रान्तों से निकल रही है वे ही इस बात के प्रमाण है कि हिन्दी भाषा इस समय कितनी समुन्नत, बहुव्याप्त और वृद्धि-प्राप्त है। आज कल हिन्दी भाषा मे सातदैनिक पत्र निकल रहे हैं, इनमे से तीन कलकत्ते से, दो युक्त प्रान्त से, एक पंजाब से और एक मध्य प्रदेश से निकलता है। कलकत्ते के पत्रों मे 'भारतमित्र' सबसे पुराना दैनिक है। इसका सम्पादन योग्य हाथों

से होता आया है। किन्तु इस समय वह उन्नत दशा मे नही है। श्रीयुत पं० अम्बिका प्रसाद बाजपेयी द्वारा सम्पादित 'स्वतंत्र' और बाबू मूलचन्द अग्रवाल बी० ए० सम्पादित 'विश्वमित्र' यथेष्ट समुन्नत है। ये अपने कर्त्तव्य का पालन कर रहे है और अधिक संख्या मे उनका प्रचार भी है। युक्त प्रान्त का पं० बाबूरावविष्णु पराडकर सम्पादित 'आज' और पं० रमाशकर अवस्थी का 'वर्त्तमान' भी अच्छे दैनिक है, और समयानुकूल हिन्दी भाषा और देश को सेवा करने मे प्रसिद्ध है। प० द्वारका प्रसाद मिश्र बी० ए० सम्पादित जबलपुर का 'लोकमत' अच्छा दैनिक है। लाहौर का 'मिलाप' भी एक प्रकार से उत्तम है। इन दोनों दैनिको की यह विशेषता है कि ये ऐसे स्थान से निकल रहे है जो हिन्दी भाषा के लिये अब तक उर्वर नहीं सिद्ध हुये। फिर भी वे अपने अस्तित्व को सुरक्षित रख कर चल रहे है, यह हिन्दी भाषा के लिये हृदयो मे आशा का सचार करने वाली बात है। काशी का द्विदैनिक पत्र पं० जानकीशरण त्रिपाठीसम्पादित 'सूर्य्य' भी इस योग्य है कि उसका स्मरण किया जावे। वह शान्त भाव से अपने पथ पर अग्रसर हो रहा है और धीर भाव से धर्म औरदेश दोनो की सेवा कर रहा है। लीडर प्रेस का 'भारत' ही हिन्दी संसार का एक अर्द्ध साप्ताहिक पत्र है। इसका सम्पादन पं० नन्ददुलारे बाजपेयी एम० ए० करते है। ये प्रतिभावान् और चिन्ताशील लेखक है। इन्होने थोडे दिनो से पत्र - सम्पादन का कार्य प्रारम्भ किया है, फिर भी यह कार्य्य वे सफलता के साथ कर रहे है। साप्ताहिक पत्रों मे विशेष प्रसिद्ध 'अभ्युदय', 'प्रताप', 'बंगवासी', तरुण राजस्थान' देश', 'आर्य्य मित्र', 'सैनिक' कर्म-वीर, आदि है। उन सबका सम्पादन भी योग्यता से हो रहा है और ये सब सामयिक बिचारो के प्रचार और हिन्दी भाषा के विस्तार मे विशेष उद्योगवान् है। काशी से हाल मे 'जागरण' नाम का एक पाक्षिक पत्र बाबू शिवपूजन सहाय के सम्पादकत्व मे निकला है। बाबू शिवपूजन सहाय अनुभवी और सम्पादन कार्य्य मे पटु है। इन्होने दो तीन सुन्दर उपन्यास भी लिखे है जो भाषा और भाव दोनों की दृष्टि से उत्तम है। आशा है, कि उनके हाथ से सम्पादित हो कर 'जागरण' हिन्दी संसार मे

यथेष्ट प्रतिपत्ति लाभ करेगा। मासिक पत्रों की सख्या बडी है। उनमे से प्रसिद्धि-प्राप्त 'सरस्वती', 'माधुरी', 'सुधा', विशाल भारत', 'वीणा', 'चॉद', 'कल्याण, 'हस', 'विज्ञान' आदि है जिनका सम्पादन योग्यता पूर्वक होता है। ये हिन्दी संसार मे प्रतिष्ठा की दृष्टि से भी देखे जाते है। इनमे सुन्दर से सुन्दर लेख पढने के लिये मिलते है और उनमे ऐसी सरस कवितायें भी प्रकाशित होती है, जिनमे कवि कर्म्म पाया जाता है। जैसी मासिक पत्रिकाओं के प्रकाशित होने से साहित्य वास्तव मे साहित्यिकता प्राप्त करता है ये पत्रिकाये वेसी ही है। इनके अतिरिक्त स्त्रियो के लिये आर्य्य महिला', 'सहेली', 'त्रिवेणी' नाम की पत्रिकाये और बच्चो के लिये 'बालसखा', खिलौना', बानर' और बालक' नामक पत्र भी सुन्दरता से निकल रहे है एवं आद्दत भी है। हाल मे प्रेमा' नामक एक अच्छी पत्रिका भी निकली है। त्रैमासिक पत्रिकाओं मे नागरी --प्रचारिणी सभा की 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका' और हिन्दुस्तानी एकेडेमी का 'हिन्दुस्तानी उल्लेखयोग्य है। नागरीप्रचारिणी पत्रिका चिरकाल से निकल रही है और अपने गम्भीरतामय लेखोके लिये प्रसिद्ध है। इसके पुरातत्व सम्बन्धी लेख बडे मार्के के और उपयोगी होते है। इस पत्रिका का सम्पादन बडी योग्यता से होता है। हिन्दुस्तानी' के लेख भी चुने और ऊँचे दर्जे के होते है। सम्पादन की दृष्टि से भी वह अभिनन्दनीय है। यह अभी थोडे दिनो से निकल रहा है॥

अन्त मे मुझको यह कहते कष्ट होता है कि उर्दू भाषा के लिये निजाम हैदराबाद जैसा कल्पद्रुम अब तक कोई राजा महाराजा हिन्दी को नहीं मिला। किन्तु मुझको इसका गौरव और गर्व है कि राजा महाराजाओं से भी अधिक प्रभावशाली महर्षि कल्प पूज्य पं० मदनमोहन मालवीय और महात्मा गाधी उसके लिये उत्सर्गी-कृत-जीवन है, जिससे उसका भविष्य अधिक उज्ज्वल है। मुझको विश्वास है कि वह दिन दूर नहीं है जब हमारे राजे महाराजे भी अपना कर्त्तव्य समझेंगे और हिन्दी भाषा के विकास, परिवर्द्धन और प्रचार के सर्वोत्तम साधन सिद्ध होंगे। परमात्मा यह दिन शीघ्र लावे॥

नामों की

अनुक्रमणिका ।

बि

बी

बु

बे

बै

बो

ब्र

रा

श्र

स

सा

स्रि

सी

सु

सू

से